मार्कण्डेय पुराण।

* भाषा टीका सहित *

विषय-सूची

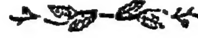


❁ इति शुभम्भूयात् ❁

* ॐ नमो भगवते वासुदेवाय *

मार्कण्डेयपुराण

भाषाटीका सहित



पहला अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतींचैव ततो जयमुदीरयेत् ॥
तपःस्वाध्यायनिरतं मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
व्यासशिष्यो महातेजा जैमिनिः पर्य्यपृच्छत ॥ १ ॥
भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना ।
पूर्णमस्तमलैः शब्दैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥ २ ॥
जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ।
पूर्व्वपक्षोक्तिसिद्धान्त-परिनिष्ठासमन्वितम् ॥ ३ ॥
त्रिदशानां यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा ।
भूषणानांच सर्व्वेषां यथा चूड़ामणिवरः ॥ ४ ॥
यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणां यथा मनः ।
तथेह सर्व्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम् ॥ ५ ॥
अत्राथश्चैव धर्म्मश्च कामो मोक्षश्च वर्ण्यते ।
परस्परानुवन्धाश्च सानुवन्धाश्च ते पृथक् ॥ ६ ॥
धर्म्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
कामशास्त्रमिदञ्चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ॥ ७ ॥
चतुराश्रमधर्म्माणामाचारस्थितिसाधनम् ।
मोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेन धीमता ॥ ८ ॥
तथा तात कृतं ह्येतद्व्यासेनोदारकर्म्मणा ।
यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते ॥ ९ ॥
व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा ।
वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता ॥ १० ॥
कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम् ।
कथाविस्तीर्णसलिलं कार्ष्णं वेदमहाह्रदम् ॥ ११ ॥
तदिदं भारताख्यानं वह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ।

श्रीनारायण, नरों में श्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा व्यासको नमस्कार करके जयरूप इस ग्रन्थका वर्णन करता हूँ। व्यासजी के शिष्य, परम तेज वाले जैमिनि ऋषि ने तप और धर्म में संयुक्त महामुनि श्रीमार्कण्डेयजीसे पूछा ॥१॥ हे महात्मन्! अनेक विमल एवं सुन्दर शास्त्रों के समूह से युक्त भारत आख्यान नाम महाभारत कथा को भगवान् व्यास ने कहा है ॥ २ ॥ वह प्राचीनतायुक्त, पवित्र तथा पूर्वापर उक्तियों और सिद्धान्तों से परिपूर्ण है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार देवताओं में विष्णु, मनुष्यों में ब्राह्मण और सब भूषणोंमें श्रेष्ठ चूड़ामणि है ॥४॥ तथा जिस प्रकार शस्त्रों में वज्र और इन्द्रियों में मन उत्तम है उसी प्रकार सब शास्त्रों में महाभारत उत्तम है ॥ ५ ॥ और यहाँ (महाभारत में) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध का पृथक् पृथक् वर्णन है ॥ ६ ॥ यही धर्मशास्त्र है, यही श्रेष्ठ अर्थ-शास्त्र तथा काम-शास्त्र और उत्तम मोक्ष शास्त्र है ॥ ७ ॥ हे महाभाग! महाबुद्धिमान् वेदव्यास ने इसमें चारों आश्रमों धर्म, आचार व साधन का वर्णन किया है ॥ ८ ॥ हे तात! उदार आशय वाले व्यासजी ने इसका ऐसा निर्माण किया है कि यह सर्वत्र व्याप्त है तथा इसका किसी महाशास्त्र से विरोध नहीं है ॥ ९ ॥ व्यासजी का वाक्य एक नदी के समान है जो कुतर्करूपी वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देती है और जो वेदरूपी पर्वत से निकल कर पृथ्वी को धूलि-रहित करती है ॥ १० ॥ उस कथा के सुन्दर वाक्य (नदी के) हंसों के समान हैं, बड़े-बड़े इतिहास कमलों के समान हैं, कथा फैले हुए जल के सदृश है तथा सम्पूर्ण वेद उसका हृदय-रूप है ॥११॥ हे भगवन्! मैं उस महाभारत की कथा को जो बहुत अर्थों से पूर्ण तथा वेद और विस्तार

तत्त्वतो ज्ञातुकामोऽहं भगवंस्त्वामुपस्थितः ॥१२॥
कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः।
वासुदेवो जगत्सूति-स्थिति-संयमकारणम् ॥१३॥
कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा।
पञ्चानां महिषी कृष्णा ह्यत्र नः संशयो महान्॥१४॥
भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः।
तीर्थयात्राप्रसंगेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥१५॥
कथञ्च द्रौपदेयास्तेऽकृतादारा महारथाः।
पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥१६॥
एतत् सर्व्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहार्हसि।
भवन्तो मूढ़बुद्धीनामवबोधकराः सदा ॥१७॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा मार्कण्डेयो महामुनिः।
दशाष्टदोषरहितो वक्तुं समुपचक्रमे ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

क्रियाकालोऽयमस्माकं सम्प्राप्तो मुनिसत्तम।
विस्तरे चापि वक्तव्ये नैष कालः प्रशस्यते ॥१९॥
ये तु वक्ष्यन्ति वक्ष्येऽद्य तानहं जैमिने तव।
तथा च नष्टसन्देहं त्वां करिष्यन्ति पक्षिणः ॥२०॥
पिङ्गाक्षश्च विबोधश्च सुपुत्रः सुमुखस्तथा।
द्रोणपुत्राः खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिंतकाः ॥२१॥
वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः।
विन्ध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्य च पृच्छ च ॥२२॥
एवमुक्तस्तदा तेन मार्कण्डेयेन धीमता।
प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥२३॥

जैमिनिरुवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् खगवागिव मानुषी।
यत् पक्षिणस्ते विज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥२४॥
तिर्य्यग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत्।
कथञ्च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्ते ते पतत्रिणः ॥२५॥
कश्च द्रोणः प्रविख्यातो यस्य पुत्रचतुष्टयम्।
जातं गुणवतां तेषां धर्म्मज्ञानं महात्मनाम् ॥२६॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा।

युक्त है तत्वरूप से जानने के लिए आपके पास उपस्थित हुआ हूँ ॥ १२ ॥ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संयम के आदि कारण जनार्दन ने निर्गुण होते हुए भी किस प्रकार मनुष्य का अवतार लिया और वासुदेव कहलाये ॥ १३ ॥ और राजा द्रुपद की पुत्री कृष्णा अर्थात् द्रौपदी किस प्रकार पाण्डु के पाँचों पुत्रों की रानी हुई इसमें हमको बड़ा सन्देह है ॥ १४ ॥ और महाबलवान् बलदेवजी ने तीर्थ यात्रा करके किस प्रकार ब्रह्महत्यारूपी रोग की औषधि की ? ॥ १५ ॥ और द्रौपदी के पाँचों अविवाहित कुमार जिनके अभिभावक महारथी पाण्डव थे किस प्रकार अनाथों की तरह मार दिये गये ॥ १६ ॥ वह सब (कथा) आप मुझसे विस्तार पूर्वक कहने के योग्य हैं। आप सदा मूर्खों को ज्ञान देने वाले हैं ॥ १७ ॥ उनके यह वचन सुनकर महामुनि मार्कण्डेय अठारहों दोषों से रहित वचन जैमिनि ऋषि से बोले ॥१८॥

मार्कण्डेय बोले—

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह हमारे अनेक कार्य करने का समय है। यह समय विस्तार पूर्वक कहने का नहीं है ॥ १९ ॥ हे जैमिनि ! जो कथा आप मुझसे कहलवाना चाहते हैं वह कथा मेरी ही सदृश पक्षीगण आपको सुनाकर आपका सन्देह दूर करेंगे ॥ २० ॥ वे श्रेष्ठ पक्षी पिङ्गाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख नाम वाले तथा शास्त्र के चिन्तक हैं ॥ २१ ॥ वेद शास्त्र के विज्ञान में उनकी बुद्धि अगाध है, वे विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में रहते हैं। उनके पास जाकर पूछो ॥ २२ ॥ परम विद्वान् मार्कण्डेयजी से यह सुनकर ऋषि श्रेष्ठ जैमिनि के नेत्र आश्चर्य से चकित होगये और वे बोले ॥२३॥

जैमिनि बोले—

हे ब्रह्मन् ! यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि पक्षियों की बोली मनुष्यों की सी है। ऐसे विज्ञानी पक्षी पाना बड़ा दुर्लभ है ॥ २४ ॥ पक्षि-योनि में उत्पन्न होकर उनको ज्ञान किस प्रकार हुआ और वे पक्षी द्रोण के पुत्र किस प्रकार कहलाये ॥ २५ ॥ और यह द्रोण कौन है जिसके चारों पुत्र इतने गुणवान, धर्मात्मा, ज्ञानी तथा महात्मा हुए ॥२६॥

मार्कण्डेय बोले—

ध्यान से सुनो, एक बार प्राचीन काल में इन्द्र अप्सराओं के साथ नन्दन बन में थे कि

शक्रस्याप्सरसांचैव नारदस्य च सङ्गमे ।२७।
नारदो नन्दनेऽपश्यत् पुंश्चलीगणमध्यगम् ।
शक्रं सुराधिराजानं तन्मुखासक्तलोचनम् ॥२८॥
स तेनर्षिवरिष्ठेन दृष्टमात्रः शचीपतिः ।
समुत्तस्थौ स्वकश्चास्मै ददावासनमादरात् ॥२६॥
तं दृष्ट्वा बलवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशाङ्गनाः ।
प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताः स्थिताः । ३०॥
ताभिरभ्यर्चितः सोऽप्युपविष्टे शतक्रतौ ।
यथार्हं कृतसम्भाषः कथाश्चक्रे मनोरमाः ॥३१॥
ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम् ।
देह्याज्ञां नृत्यतामासां तव याभिमतेति वै ॥३२॥
रम्भा वा मिश्रकेशी वा उर्व्वश्यथ तिलोत्तमा।
घृताची मेनका वापि यत्र वा भवतो रुचिः ॥३३॥
एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वचो शक्रस्य नारदः ।
विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनताः स्थिताः॥३४॥
युष्माकमिह सर्व्वासां रूपौदार्य्यगुणाधिकम् ।
आत्मानं मन्यते या तु सा नृत्यतु ममाग्रतः॥३५॥
गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्य नास्ति वै ।
चार्व्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

तद्वाक्यसमकालश्च एकैकास्ता नतास्ततः ।
अहं गुणाधिका न त्वं न त्वं चान्याऽब्रवीदिदम्॥३७॥
तासां सम्भ्रममालोक्य भगवान् पाकशासनः ।
पृच्छ्यतां मुनिरित्याह वक्तायांवोगुणाधिकाम् ३८॥
शक्रच्छन्दानुयाताभिः पृष्टस्ताभिः स नारदः ।
प्रोवाच यत् तदा वाक्यं जैमिने तन्निबोध मे ३९॥
तपस्यन्तं नगेन्द्रस्थं या वः क्षोभयते बलात् ।
दुर्व्वाससं मुनिश्रेष्ठं तां वो मन्ये गुणाधिकाम्॥४०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्व्वा वेपितकन्धराः ।
अशक्यमेतदस्माकं द्वन्द्वशश्चक्रिरे कथाः ॥४१॥
तत्राप्सरा वपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्व्विता ।
प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनिः॥४२॥
अद्य तं देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ।

दैवात् नारदजी का भी वहाँ समागम होगया ॥२७॥ नारद ने नन्दन वन में देखा कि देवराज इन्द्र अप्सराओं के मध्य में बैठकर उनके मुखों को आसक्त हुए नेत्रों से देख रहे हैं ॥ २८ ॥ इन्द्र ने नारद ऋषि को देखते ही उठकर उनको सम्मान पूर्वक अपना आसन स्वयं दिया ॥ २९ ॥ और अप्सराओं ने भी वलवृत्र के मारने वाले इन्द्र को उठते देखकर बड़ी विनयपूर्वक देवर्षि नारद को प्रणाम किया ॥ ३० ॥ अप्सराओं से वन्दित होकर नारदजी बैठगये और इन्द्र ने उनकी पूजा कर मनोहर वार्तालाप से उनका सत्कार किया ॥ ३१ ॥ वातचीत करने के बाद इन्द्र ने महर्षि नारद से कहा "आज्ञा दीजिये कि आपको इच्छानुसार अप्सराओंका गायन व नृत्य सुनाया तथा दिखाया जावे" ॥ ३२॥ रम्भा, मिश्रकेशी, उर्वशी, तिलोत्तमा, घृताची अथवा मेनका जिसपर भी आपकी रुचि हो ॥ ३३ ॥ इन्द्र का यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ नारद विचार करके विनयपूर्वक बैठी हुई अप्सराओं के प्रति बोले ॥ ३४ ॥ तुम सब में से जो अपने को रूप, औदार्य्य और गुणों की अधिकता में श्रेष्ठ मानती हो वह मेरे आगे नृत्य करे ॥ ३५ ॥ गुण और रूप से विहीन नृत्य अच्छा नहीं होता। नृत्य वही है जो गुण, रूप, ध्वनि आदि से युक्त है अन्यथा विडम्बना अर्थात् नकल मात्र है ॥ ३६ ॥

मार्कण्डेय बोले—

नारद के समयानुसार वचन सुनकर अप्सराएँ एक दूसरे के प्रति कहने लगीं 'मैं तुमसे अधिक गुणवान् हूँ' दूसरी कहतीथी कि तू नहीं मैं हूँ ॥३७॥ राजा इन्द्र ने उनका विभ्रम देखकर नारदजी से कहा कि आपही वताइये कि इन सब में अधिक गुणवाली कौन है ॥ ३८ ॥ इन्द्र के शब्द सुनने पर तथा अप्सराओं द्वारा पूछे जाने पर नारद ने जो वाक्य कहे हे जैमिनि ! वे मुझसे सुनो ॥३९ ॥ सब पर्वतों में श्रेष्ठ पर्वत पर तप करते हुए दुर्वासामुनि को जो अप्सरा अपने मन से लुभा ले वही सबसे अधिक गुणवाली समझी जावेगी ॥ ४० ॥ नारदजी की यह बात सुनकर सब अप्सराएँ कम्पित होगई और कहने लगीं कि यह बात हमारी सामर्थ्य से वाहर है ॥ ४१ ॥ फिर वपु नाम अप्सरा जिसको कि बहुत से मुनियों को लुभा लेनेका गर्व था वोली "जहाँ वह मुनि है वहाँ मैं जाऊँगी" ॥ ४२ ॥ और कहा कि मैं ऋषि की देह में अपने इन्द्रियरूपी अश्व जोत कर कामदेव के वाणों का वाग लगा

स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम् ॥४३
ब्रह्मा जनार्द्दनो वापि यदि वा नीललोहितः ।
तमप्यद्य करिष्यामि कामवाणक्षतान्तरम् ॥४४॥
इत्युक्त्वा प्रजगामाथ प्रालेयाद्रिं वपुस्तदा ।
मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४५॥
सा पुंस्कोकिलमाधुर्य्या यत्रास्ते स महामुनिः।
क्रोशमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराप्सराः ॥४६॥
तद्गीतध्वनिमाकर्ण्य मुनिर्विस्मितमानसः ।
जगाम तत्र यत्रास्ते सा बाला रुचिरस्वना ॥४७॥
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं मुनिः संस्तभ्य मानसम्।
क्षोभणायागतां ज्ञात्वा कोपामर्षसमन्वितः ॥४८॥
उवाचेदं ततो वाक्यं महर्षिस्तां महातपाः ॥४९॥
यस्माद्दुःखार्ज्जितस्येह तपसो विघ्नकारणात्।
आगतासि मदोन्मत्ते मम दुःखाय खेचरि ॥५०॥
तस्मात् सुपर्णगोत्रे त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।
जन्म प्राप्स्यसि दुष्प्रज्ञे यावद्वर्षाणि षोडश ॥५१॥
निजरूपं परित्यज्य पक्षिणीरूपधारिणी ।
चत्वारस्ते च तनया जनिष्यन्तेऽधमाप्सरः ॥५२॥
अप्राप्य तेषु च प्रीतिं शस्त्रपूता पुनर्दिवि ।
वासमाप्स्यसि वक्तव्यं नोत्तरं ते कथंचन ॥५३॥
इति वचनमसह्यं कोपसंरक्तदृष्टि-
श्चलकलवलयां तां मानिनीं श्रावयित्वा ।
तरलतरतरङ्गां गां परित्यज्य विप्रः
प्रथितगुणगणौघां सम्प्रयातः खगङ्गाम्॥ ५४ ॥

कर उनको कुसारथी बनाऊँगी ॥ ४३ ॥ यदि ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव भी हों तो उनको भी कामबाणों से वेधन करूँगी ॥ ४४ ॥ यह कहकर वह अप्सरा प्रालेय पर्वत पर दुर्वासा ऋषि के आश्रम पर जो कि ऋषि के तप के प्रभाव से आपत्तियों से रहित था, गई ॥ ४५ ॥ जहाँ दुर्वासा मुनि थे वहाँ से एक कोस की दूरी पर वह अप्सरा कोकिल के समान मधुरता से गायन करने लगी ॥४६॥ उसके गीत की ध्वनि सुनकर आश्चर्य मन वाले वे मुनि जहाँ वह सुन्दर मुखवाली थी वहाँ गये ॥ ४७ ॥ उस पूर्णाङ्गी अप्सरा को देखकर मुनि स्तम्भित होगये। फिर अपने लुभाये जानेका कारण जानकर क्रोधयुक्त होगये ॥ ४८ ॥ और फिर उन तपस्वी महर्षि ने उससे इस प्रकार कहा ॥४९॥ हे आकाश में विचरने वाली मूर्खे! यद्यपि तू मुझे दुःख देने तथा मेरे तप में विघ्न डालने के लिये आई है तथापि तूने अपने ही लिये दुःख उत्पन्न किया है ॥ अतः तू मेरे क्रोध से कलङ्कित होकर सुपर्ण पक्षीके गोत्र में जन्म लेकर सोलह वर्ष तक जीवित रहेगी ॥ ५१ ॥ हे नीच अप्सरा! अपने स्वरूप को छोड़कर तू पक्षी रूप धारण करेगी और तुझसे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ५२ ॥ फिर तू उनकी प्रीति छोड़कर किसी शस्त्र द्वारा मरण प्राप्त कर पवित्र होकर स्वर्ग में पहुँचेगी। इसके उत्तर में तुझको कुछ न कहना चाहिये ॥ ५३ ॥ क्रोध से रक्तवर्ण नेत्र होरहे हैं जिनके ऐसे दुर्वासा ऋषि के दुःसह वचनों को सुनकर वह अप्सरा कम्पायमान होगई और अपने सुन्दर स्वरूपको छोड़कर विप्र दुर्वासा द्वारा कथित पक्षी का रूप होगई ॥ ५४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में वपु शाप नाम प्रथम अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडो नाम पक्षिराट् ।
गरुडस्याभवत् पुत्रः सम्पातिरिति विश्रुतः ॥ १ ॥
तस्याप्यासीत् सुतः शूरः सुपार्श्वो वायुविक्रमः।
सुपार्श्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ॥ २ ॥
तस्यापि तनयावास्तां कंकः कन्धर एव च ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय बोले—

अरिष्टनेमि के पुत्र गरुड़ हुए जो सब पक्षियों के राजा थे। गरुड़ का पुत्र प्रसिद्ध सम्पाती हुआ ॥ १ ॥ उसका पुत्र शूरवीर तथा पवन के समान पराक्रम वाला सुपार्श्व नामक हुआ। सुपार्श्व का पुत्र कुन्ति और कुन्ति का पुत्र प्रलोलुप हुआ ॥२॥ प्रलोलुप के दो पुत्र हुए (१) कङ्क और (२)

कङ्कः कैलासशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् ।
ददर्शाम्बुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम् ॥ ४ ॥
आपानासक्तममल-स्रग्दामाम्बरधारिणम् ।
भार्य्यासहायमासीनं शिलापट्टेऽमले शुभे ॥ ५ ॥
तद्दृष्टमात्रं कङ्केन रक्षः क्रोधसमन्वितम् ।
प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमितो ह्यण्डजाधम ॥ ६ ॥
स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तं कस्मान्मामुपसर्पसि ।
नैष धर्म्मः सुबुद्धीनां मिथोनिष्पाद्यवस्तुषु ॥ ७ ॥

कङ्क उवाच

साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथा मम ।
अन्येषांचैव जन्तूनां ममता भवतोऽत्र का ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ब्रुवाणमित्थं खड्गेन कङ्कं चिच्छेद राक्षसः ।
क्षरत्क्षतजबीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम् ॥ ९ ॥
कङ्कं विनिहतं श्रुत्वा कन्धरः क्रोधमूर्च्छितः ।
विद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रेऽण्डजेश्वरः ॥१०॥
स गत्वा शैलशिखरं कङ्को यत्र हतः स्थितः ।
तस्य सङ्कालनं चक्रे भ्रातुर्ज्येष्ठस्य खेचरः ।
कोपामर्ष विवृत्ताक्षो नागेन्द्र इव निश्वसन् ॥११॥
जगामाथ स यत्रास्ते भ्रातृहा तस्य राक्षसः ।
पक्षवातेन महता चालयन् भूधरान् वरान् ॥१२॥
वेगात् पयोदजालानि विक्षिपन् क्षतजेक्षणः ।
क्षणात् क्षयितशत्रुः स पक्षाभ्यां क्रांतभूधरः ॥१३॥
पानासक्तमतिं तत्र तं ददर्श निशाचरम् ।
आताम्रवक्त्रनयनं हेमपर्य्यंकमाश्रितम् ॥१४॥
स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम् ।
केतकीगर्भपत्राभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥१५॥
वामोरूमाश्रितांचास्य ददर्शायतलोचनाम् ।
पत्नीं मदनिकां नाम पुंस्कोकिलकलस्वनाम् ॥१६॥
ततो रोषपरीतात्मा कन्धरः कन्दरस्थितम् ।

कन्धर ॥ ३ ॥ कैलाश पर्वत के शिखर पर विजलीके समान प्रकाशमान् कङ्क रहता था। उसने एक वार कमल के समान नेत्र वाले एक राक्षस को जो कुवेरका अनुचर था देखा ॥४॥ वह मदिरा आदिके नशे में चूर, स्वच्छ फूलों की माला तथा, सुन्दर वस्त्र पहिने हुये और एक स्वच्छ एवं पवित्र पत्थर पर अपनी स्त्री का सहारा लिये वैठा था ॥ ५ ॥ वह राक्षस उस कङ्क को देखते ही अत्यन्त क्रोधित होगया और उससे वोला, "रे दुष्ट पक्षी, तू यहाँ किस तरह आया" ॥ ६ ॥ अपनी स्त्री के साथ वैठे हुये मुझको तू क्यों देखता है, बुद्धिमानों का यह धर्म नहीं है। तू निश्चय ही इसी क्षण वध किया जाने के योग्य है ॥ ७ ॥

कङ्क बोला—

यह पर्वत जनसाधारण का है, यह जैसा तेरा है वैसा ही मेरा है, अन्य जीवों का भी यह पर्वत है। इसमें तुझको ममता क्यों हुई॥ ८ ॥

मार्कण्डेयजी वोले—

इस प्रकार कहते हुये कङ्क को उस राक्षस ने क्षणभर में तलवार से काट डाला। वह अचेत होकर गिर पड़ा और निर्जीव होगया ॥ ९ ॥ कङ्क के वध को सुनकर पक्षिराज कन्धर क्रोध से मूर्च्छित होगया और फिर अपने मनको स्थिर कर विजली के समान दौड़ा ॥१० ॥ वह उस पर्वत के शिखर पर पहुँचा जहाँ कङ्क मरा हुआ पड़ा था, उस पक्षी ने वड़े भाई का क्रियाकर्म किया फिर क्रोध से आँखें विकृत करके सर्प के समान फुसकार मारने लगा ॥ ११ ॥ वह वहाँ को चला जहाँ उसके भाई की हत्या करने वाला राक्षस मौजूद था। उसके पंखों की हवा से वड़े पहाड़ हिल गये ॥ १२ ॥ क्रोध से रक्तवर्ण हो रहे हैं जिसके ऐसा वह पक्षी क्षणभर में के समीप पहुँच गया और उसने अपने पंखों पर्वत को ढक लिया ॥ १३ ॥ उसने वहाँ राक्षस को शराव के नशे में चूर तथा मुख नेत्रों को तमतमाये हुये सोने के पलङ्ग पर देखा ॥ १४ ॥ फूलों की माला पहिने, चन्दन हुये, और केतकी के पुष्प की सदृश पीले वाले और भयानक मुख वाले ॥१५॥ तथा जिसकी वाईं जाँघ पर वड़ी-वड़ी आँखों वाली, कोकिल के समान मधुर कण्ठ वाली उसकी पत्नी नि नाम वैठी हुई है ॥ १६ ॥ क्रोध से वि कन्धर ने इस हालत में उस राक्षस को खोह

ाुवाच सुदुष्टात्मन्नेहि युध्यस्व वै मया ॥१७॥
ास्माज्ज्येष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया।
ास्मात्त्वां मदसंसक्तं नयिष्ये यमसादनम् ॥१८॥
वेश्वस्तघातिनां लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम्।
ास्यसे निरयान् सर्व्वांस्तांस्त्वमद्य मया हतः १६॥

मार्कण्डेय उवाच

ित्येवं पतगेन्द्रेण प्रोक्तं स्त्रीसन्निधौ तदा।
क्षः क्रोधसमाविष्टं प्रत्यभाषत पक्षिणम् ॥२०॥
यदि ते निहतो भ्राता पौरुषं तद्धि दर्शितम्।
ाामप्यद्य हनिष्येऽहं खड्गेनानेन खेचर ॥२१॥

तिष्ठ क्षणं न मे जीवन् पतगाधम यास्यसि।

ित्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभं विमलं खड्गमाददे ॥२२॥
ातः पतगराजस्य यक्षाधिपभटस्य च।
ाभूव युद्धमतुलं यथा गरुड़-शक्रयोः ॥२३॥
ातः स राक्षसः क्रोधात् खड्गमाविध्य वेगवत्।
चिक्षेप पतगेन्द्राय निर्व्वाणाङ्गारवर्च्चसम् ॥२४॥
ातगेन्द्रश्च तं खड्गं किंचिदुत्प्लुत्य भूतलात्।
ावक्त्रेण जग्राह तदा गरुड़ः पन्नगं यथा ॥२५॥
ावक्त्रपादतलैर्भङ्क्त्वा चक्रे क्रोधमथांडजः।
ास्मिन् भग्ने ततः खड्गे बाहुयुद्धमवर्त्तत ॥२६॥
ातः पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षसः।
ान्त्र-पाद-करैराशु शिरसा च वियोजितः ॥२७॥
ास्मिन् विनिहते सा स्त्री खगं शरणमभ्यगात्।
ाकिंचित् सञ्जातसन्त्रासा प्राह भार्य्या भवामि ते २८॥
ाामादाय खगश्रेष्ठः स्वकं गृहमगात् पुनः।
ात्वा स निष्कृतिं भ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥२६॥
ान्धरस्य च सा वेश्म प्राप्येच्छारूपधारिणी।
ानकातनया सुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे ॥३०॥
ास्यां स जनयामास तार्क्षीं नाम सुतां तदा।
ानिशापाग्निविप्लुष्टां वपुमप्सरसां वराम्।
ास्य नाम तदा चक्रे तार्क्षीमिति विहङ्गमः ॥३१॥

बैठा देखा और उससे कहा, "रे दुष्ट ! आ, मुझसे युद्ध कर" ॥ १७ ॥ जिस प्रकार तूने मेरे बड़े भाई को मार कर चैन लिया है उसी प्रकार मैं भी तुझ नशे में चूर को यमराज के घर भेजे देता हूँ ॥ १८ ॥ जहाँ विश्वासघाती अथवा बालक और स्त्रीघातक जाते हैं वहाँ ही तू मुझसे मारा जाकर आज पहुँचेगा ॥ १६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार स्त्री के सामने पक्षिराज द्वारा धमकाया हुआ वह राक्षस क्रोधितहो पक्षीके प्रति बोला ॥ २० ॥ हे पक्षी ! जिस प्रकार मैंने तेरे भ्राता का वध किया था उसी प्रकार तेरा भी पौरुष देखकर इस तलवार से तुझे मारूँगा ॥ २१ ॥ "रे नीच पक्षी ! तनिक ठहर, क्षणभर में तेरे जीवन का अंत होगा" यह कहकर उस राक्षस ने जिसका रङ्ग कालौंच के ढेर के समान था एक स्वच्छ तलवार हाथमें लेली ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर उस पक्षिराज कन्धर और यक्षों के राजा राक्षस में घोर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि गरुड़ और इन्द्र में हुआ था ॥ २३ ॥ इसके बाद उस राक्षस ने क्रोधित हो, तेजी से अङ्गारे के समान स्वच्छ तलवार को पक्षिराज कन्धर पर फेंका ॥ २४ ॥ उस पक्षियों के राजा ने पृथ्वी से कुछ उछल कर उस तलवारको चोंच से इस प्रकार उठा लिया जिस प्रकार गरुड़ सर्प को ले लेता है ॥ २५ ॥ फिर पक्षिराज कन्धर ने चोंच और पाँवों के बीच में रखकर उस तलवार को तोड़ डाला और फिर दोनों में द्वन्द युद्ध हुआ ॥ २६ ॥ फिर कन्धर ने राक्षस को अपने वक्षस्थल से दबाया और उसके शिर हाथ और पैरों को चोंच से काट डाला ॥ २७ ॥ उस राक्षस के मर जाने पर भय से सहमी हुई उसकी स्त्री पक्षी की शरण में आगई और उससे बोली, "मैं तेरी स्त्री होकर रहूँगी" ॥ २८ ॥ वह श्रेष्ठ पक्षी जिसका भाई कङ्क तो मरही चुका था उस स्त्री को लेकर बिजली की तरह वेग से अपने घर गया ॥ २६ ॥ इच्छानुसार रूप धारण करने वाली उस स्त्री ने जिसकी भौंहें बड़ी सुन्दर थीं और जो वस्तुतः मेनका की पुत्री थी कन्धर के घर आकर पक्षी का रूप धारण करलिया ॥ ३० ॥ उसी स्त्री से तार्क्षी नाम की कन्या उत्पन्न हुई जो कि दुर्वासा मुनि के शाप की अग्नि से वपु नाम अप्सरा की जगह पक्षिणी हो गई थी, उसी का नाम कन्धर ने तार्क्षी रक्खा ॥ ३१ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ

मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः ।
जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ता द्विजसत्तमाः ॥३२॥
तेषां जघन्यो धर्म्मात्मा वेदवेदांगपारगः ।
उपयेमे स तां तार्क्षीं कन्धरानुमते शुभाम् ॥३३॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य तार्क्षी गर्भमवाप ह ।
सप्तपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा ॥३४॥
कुरु-पाण्डवयोर्युद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे ।
भावित्वाच्चैव कार्य्यस्य रणमध्यं विवेश सा ॥३५॥
तत्रापश्यत युद्धं सा सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ।
शरशक्त्यष्टिभिर्भीमं यथा देवासुरं रणम् ॥३६॥
तत्रापश्यत् तदा युद्धं भगदत्त-किरीटिनोः ।
निरन्तरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव ॥३७॥
पार्थकोदण्डनिर्म्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् ।
तस्या भल्लमहिश्यामं त्वचं चिच्छेद जाठरीम् ॥३८॥
भिन्ने कोष्ठे शशांकाभं भूमावण्डचतुष्टयम् ।
आयुषः सावशेषत्वात् तूलराशाविवापतत् ॥३९॥
तत्पातसमकालंच सुप्रतीकाद्गजोत्तमात् ।
पपात महती घण्टा बाणसञ्छिन्नबन्धना ॥४०॥
समं समन्तात् प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला ।
छादयन्ती खगांडानि स्थितानि पिशितोपरि ॥४१॥
हते च तस्मिन् नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे ।
बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥४२॥
वृत्ते युद्धे धर्म्मपुत्रे गते शान्तनवान्तिकम् ।
भीष्मस्य गदतोऽशेषान् श्रोतुं धर्मान् महात्मनः ॥४३॥
घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्रांडानि द्विजोत्तम ।
आजगाम तमुद्देशं शमीको नाम संयमी ॥४४॥
स तत्र शब्दमशृणोच्चिचीकुचीति वाशताम् ।
बाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परे सति ॥४५॥
अथर्षिः शिष्यसहितो घण्टामुत्पाट्य विस्मितः ।
अमातृ-पितृपक्षांश्च शिशुकान् स ददर्श च ॥४६॥
तांस्तु तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान् मुनिः ।
दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टः प्रोवाचानुगतान् द्विजान् ॥४७॥
सम्यगुक्तं द्विजाग्र्येण शुक्रेणोशनसा स्वयम् ।

जैमिनि ! मन्दपाल नाम पक्षी के चार पुत्र थे ऐसा जानो। उनमें (उनके नाम) जरितारि से लेकर द्रोण तक थे ॥ ३२ ॥ उनमें द्रोण के साथ जो धर्मात्मा तथा वेद-वेदाङ्गमें पूर्ण था कन्धरने अपनी सुन्दरी कन्या तार्क्षी का विवाह कर दिया ॥ ३३ ॥ कुछ समय बाद तार्क्षी गर्भवती हुई और सात पखवाड़े अर्थात् साढ़े तीन महीने बाद वह कुरुक्षेत्र गई ॥ ३४ ॥ उस समय वहाँ कौरवों और पांडवों में घोर युद्ध हो रहा था। होनहार वश कार्य से वह रण के बीच में पहुँच गई ॥ ३५ ॥ उसने सब राजाओं का तीर, शक्ति और भालों से पूर्ण वह भीषण युद्ध इस प्रकार देखा जैसा कि देवताओं और असुरों में हुआ था ॥ ३६ ॥ इसके बाद उसने भगदत्त और अर्जुन का युद्ध देखा जिसमें निरन्तर तीरों से आकाश इस प्रकार आच्छादित होगया था जिस प्रकार टीढ़ीदल से होता है ॥ ३७ ॥ उस समय अर्जुन के धनुष से निकला हुआ एक तीर अत्यन्त वेग से काले सर्प के समान तार्क्षी के पेट में छिद गया ॥३८॥ उसके पेट के फटने पर चंद्रमा के समान प्रभा वाले चार अण्डे पृथ्वी पर गिर पड़े और वह भी निर्जीव होकर रुई के ढेर की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ३९ ॥ उसके मरकर गिरने के समय ही सुप्रतीक नाम उत्तम हाथी का बड़ा घण्टा भी बाण से कट जाने के कारण गिरा ॥ वह घण्टा इस प्रकार पृथ्वी पर गिरा कि बगैर टूटे हुएही उस पक्षिणी के अंडे उसके नीचे स्थित होगये ॥ ४१ ॥ फिर राजा भगदत्त के मारे जाने पर कौरवों और पांडवों की सेनाओं में बहुत दिन तक घोर युद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ युद्ध के समाप्त होने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर भीष्म के पास गये वहाँ उन्होंने उन महात्मा से बहुत सी धर्म की बातें सुनीं ॥ ४३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ जैमिनि ! जहाँ घण्टे के अन्दर अण्डे रक्खे हुए थे वहाँ दैवात् शमीक नामक ऋषि पहुँचे ॥ ४४ ॥ उन्होंने पक्षी के शावकों की आवाज सुनी परन्तु बालक के अस्पष्ट वाक्यों के कारण कुछ समझ में न आसकी ॥ ४५ ॥ इसके बाद मुनि ने अपने शिष्यों समेत उस घण्टे को उठाया तो विस्मित होकर मातृ-पितृविहीन उन पक्षी के बच्चों को देखा ॥ ४६ ॥ उनको पृथ्वी पर देखकर आश्चर्ययुक्त होकर मुनिश्रेष्ठ शमीकजी अपने शिष्यों से बोले ॥ ४७ ॥ देवताओं से मर्दित होकर राक्षसों की सेना जब भागी थी उस समय उनको भागते हुये देखकर जो कुछ ब्राह्मण श्रेष्ठ

पलायनपरं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं सुरार्दितम् ॥४८॥
न गन्तव्यं निवर्त्तध्वं कस्माद्व्रजथ कातराः।
उत्सृज्य शौर्य्ययशसी क्व गता न मरिष्यथ ॥४९॥
नश्यतो युध्यतो वापि तावद्भवति जीवितम्।
यावद्धातासृजत् पूर्व्वं न यावन्मनसेप्सितम् ॥५०॥
एके म्रियन्ते स्वगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः।
भुञ्जन्तोऽन्नं तथैवापः पिबन्तो निधनं गताः ॥५१॥
विलासिनस्तथैवान्ये कामयाना निरामयाः।
अविक्षताङ्गाः शस्त्रैश्च प्रेतराजवशं गताः ॥५२॥
अन्ये तपस्यभिरता नीताः प्रेतनृपानुगैः।
योगाभ्यासरताश्चान्ये नैव प्रापुरमृत्युताम् ॥५३॥
शम्बराय पुरा क्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना
हृदयेऽभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुरः ॥५४॥
तेनैव खलु वज्रेण तेनैवेन्द्रेण दानवाः।
प्राप्ते काले हता दैत्यास्तत्क्षणान्निधनं गताः॥५५॥
विदित्वैवं न सन्त्रासः कर्त्तव्यो विनिवर्त्तत।
ततो निवृत्तास्ते दैत्यास्त्यक्त्वा मरणजं भयम्॥५६॥
इति शुक्रवचः सत्यंकृतमेभिः खगोत्तमैः।
ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥५७॥
क्वाण्डानां पतनं विप्राः क्व घण्टापतनं समम्
क्व च मांस-वसा-रक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥५८॥
केऽप्येते सर्व्वथा विप्रा नैते सामान्यपक्षिणः।
दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ॥५९॥
एवमुक्त्वा स तान् वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत्।
निवर्त्तताश्रमं यात गृहीत्वा पक्षिबालकान् ॥६०॥
मार्ज्जाराखुभयं यत्र नैषामण्डजजन्मनाम्।
श्येनतो नकुलाद्वापि स्थाप्यन्तां तत्र पक्षिणः॥६१॥
द्विजाः किं वातियत्नेन मार्य्यन्ते कर्मभिः स्वकैः।
रक्ष्यन्त चाखिला जीवा यथैते पक्षिबालकाः ॥६२॥
तथापि यत्नः कर्त्तव्यो नरैः सर्वेषु कर्म्मसु।
कुर्व्वन् पुरुषकारन्तु वाच्यतां याति नो सताम्॥६३॥

इति मुनिवरचोदितास्ततस्ते मुनितनयाः परिगृह्य पक्षिणस्तान्। तरुविटपसमाश्रितालिसङ्घं ययुरथ तापसरम्यमाश्रमं स्वम् ॥६४॥

शुक्राचार्य ने कहा था वह बहुत ठीक था ॥ ४८ ॥ "भाग कर न जाओ, कातर होकर क्यों भागते हो? शूरता और यश को छोड़कर कहाँ जाकर न मरोगे" ॥ ४९ ॥ जब तक विधाता ने लिखा है युद्ध करने वाला भी नहीं मर सकता। अपनी इच्छा से विधाता के प्रतिकूल कोई जीवित नहीं रह सकता ॥ ५० ॥ कोई अपने घर में मर जाता है, कोई भागते समय मरता है, कोई अन्न खाते समय तथा कोई पानी पीते समय मरता है ॥ ५१ ॥ कितने ही विलास से, कुछ चोट से, कुछ विना बीमारी, कुछ विना घाव के और कुछ हथियारों से यमराज के घर पहुँचते हैं ॥ ५२ ॥ कुछ लोग तप में लीन हुए तथा कुछ योगाभ्यास में तत्पर होते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ५३ ॥ प्राचीन कालमें इन्द्र ने एक वार शम्बर नामक असुर को वज्र से छाती में मारा था परन्तु इससे वह असुर मृत्यु को प्राप्त न हुआ ॥ ५४ ॥ फिर उसी वज्र से उसी इन्द्र ने समय आने पर उस दैत्य को एक क्षण में मार डाला ॥ ५५ ॥ यह बात जानकर कि कोई भय नहीं है अपने-अपने कर्तव्य पर लौटो। मरने के भय को त्याग कर वे दैत्य रण करने को लौटे ॥ ५६ ॥ इन उत्तम पक्षियों ने शुक्राचार्य का वचन सत्य कर दिखाया कि युद्ध में रहकर भी ये मृत्यु को प्राप्त न हुए ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणो! कहाँ अण्डों का गिरना कहाँ घण्टे का गिरना और कहाँ मांस, मज्जा व रुधिर से भरी हुई पृथ्वी में इनका बचना ॥५८॥ हे ब्राह्मणो! सर्वथा ये साधारण पक्षी नहीं हैं, इस संसार में दैव की अनुकूलता बड़े सौभाग्य की द्योतक है ॥ ५९ ॥ यह कहकर उन बच्चों की ओर देखकर उन बालकों को लेकर अपने आश्रम को लौट गये और बोले ॥६०॥ जहाँ पर बिल्ली, मूषक, वाज व नकुल रहते हों वहाँ इन पक्षियोंकी स्थिति ठीक नहीं ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो! बहुत यत्न करने से क्या होता है? सम्पूर्ण जीवों की रक्षा अपने कर्म से होती है, जिस प्रकार ये पक्षी-बालक अपने भाग्य से जीवित हैं ॥ ६२ ॥ तथापि सब कर्मों में यत्न अवश्य करना चाहिये। यत्न करने से मनुष्य के प्रति कुछ कहना शेष नहीं रहता है ॥ ६३ ॥ इस प्रकार मुनि शमीक द्वारा कहे जाने पर वे शिष्यगण उन पक्षियों को अनेक वृक्षों से सुशोभित अपने आश्रम में ले आये ॥ ६४ ॥ उन्होंने भी वनके

स चापि वन्यं मनसाभिकामितं प्रगृह्य मूलं कुसुमं फलं कुशान्। चकार चक्रायुध-रुद्र-वेधसां सुरेन्द्र-वैवस्वत-जातवेदसाम् ॥६५॥

फूल, मूल, फल कुशों आदि से प्रसन्न मन होकर विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, अग्नि तथा ॥ ६५ ॥

अपाम्पतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणोः समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तमः। धातुर्विधातुस्त्वथ वैश्वदेविकाः श्रुतिप्रयुक्ता विविधास्तु सत्क्रियाः ॥६६॥

वरुण, बृहस्पति, कुबेर, पवन, धाता-विधाता अर्थात् ब्रह्मा व विश्वदेवियों की अनेक क्रियाओं से वेदविहित पूजा की ॥ ६६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में चटकोत्पत्ति नाम द्वितीय अध्याय समाप्त ।



तीसरा अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

अहन्यहनि विप्रेन्द्र स तेषां मुनिसत्तमः।
चकाराहारपयसा तथा गुप्तया च पोषणम् ॥ १ ॥
मासमात्रेण जग्मुस्ते भानोः स्यन्दनवर्त्मनि ।
कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्टा मुनिकुमारकैः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्वराम् ।
रथचक्रप्रमाणां ते पुनराश्रममागताः ॥ ३ ॥
श्रमक्लान्तान्तरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः।
ज्ञानञ्च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः ॥ ४ ॥
ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतो धर्म्मनिश्चयम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं सर्व्वे चरणावभ्यवादयन् ॥ ५ ॥
ऊचुश्च मरणाद्घोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने।
आवास-भक्ष्य-पयसां त्वं नो दाता पिता गुरुः॥६ ॥
गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवापि पालिताः।
त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः॥ ७ ॥
क्षितावक्षततेजास्त्वं कृमीणामिव शुष्यताम् ।
गजघण्टां समुत्पाट्य कृतवान् दुःखरेचनम् ॥ ८ ॥
कथं वर्द्धे सुरबलाः स्वस्थान् द्रक्ष्याम्यहं कदा ।
कदा भूमेर्द्रुमं प्राप्तान् द्रक्ष्ये वृक्षान्तरं गतान् ॥ ९ ॥
कदा मे सहजा कान्तिः पांशुना नाशमेष्यति।
एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपविचारिणाम् ॥१०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनिश्रेष्ठ जैमिनि ! दिन,दिन उन ब्राह्मणश्रेष्ठ शमीक मुनि ने दूध से उन बच्चों का यथाविधि पालन किया ॥ १ ॥ एक महीना व्यतीत होने पर वे बच्चे कौतूहल पूर्वक मुनि बालकोंके देखते-देखते एक दिन सूर्य के रथ तक उड़ गये ॥ २ ॥ सूर्य के रथ के पहिये के पास से उन्होंने पृथ्वी को नगर, समुद्र, नदी आदि से युक्त देखा तथा फिर अपने आश्रमको वे वापिस आगये ॥ ३ ॥ वे महान् आत्मा वाले पक्षी परिश्रम से थकित होगये परन्तु सूर्य के पास तक पहुँचने के प्रभाव से उनको ज्ञान प्रगट हुआ ॥ ४ ॥ जहाँ पर ऋषि शमीक अपने शिष्यों पर कृपा करके धर्म के तत्व को वर्णन करते थे वहाँ उन पक्षियों ने उनकी परिक्रमा कर उनके चरणों में प्रणाम किया ॥५॥ और बोले, " हे मुनि! आपने हमको घोर मृत्यु से बचाया है तथा दूध पिला कर हमारा पालन किया है अतः हमारे दाता, पिता, गुरु आप ही हैं ॥ ६ ॥ जब हम गर्भ में ही थे हमारी माता मरगई और न हमको पिता ने ही पाला है। आपने हमें पुत्रों की तरह दूध पिला-पिलाकर पाला है और हमारी रक्षा की है॥ इस पृथ्वी पर आपका तेज अक्षय है, कीड़ों की तरह सूखते हुए हमको आपने हाथी के घण्टे के नीचे से निकाल कर दुःख से मुक्त किया है ॥ ८ ॥ कब हम लोगों को बल की प्राप्ति होगी तथा अपने अपने स्थान को हम कब देखेंगे और पृथ्वी के वृक्षों पर पहुँच कर कब हम वृक्षों के अन्तर्गत पक्षियों से मिलेंगे ? ॥ ९॥ हमारी स्वाभाविक कांति हमको कब मिलेगी, नाना प्रकार की गर्द इत्यादि से हमारी सफाई कब होगी तथा हमारे पंखों से

इति चिन्तयता तात भवता प्रतिपालिताः ।
ते साम्प्रतं प्रवृद्धाः स्मः प्रबुद्धाः करवाम किम्॥११॥
इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत् स्फुटम् ।
शिष्यैः परिवृतः सर्वैः सह पुत्रेण शृङ्गिणा ॥१२॥
कौतूहलपरो भूत्वा रोमांचपटसम्वृतः ।
उवाच तत्त्वतो ब्रूत प्रवृत्तेः कारणं गिरः ॥१३॥
कस्य शापादियं प्राप्ता भवद्भिर्विक्रिया परा ।
रूपस्य वचसश्चैव तन्मे वक्तुमिहार्हथ ॥१४॥

पक्षिण ऊचुः

विपुलस्वानिति ख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः।
तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे सुकृषस्तुम्बुरुस्तथा ॥१५॥
सुकृषस्य वयं पुत्राश्चत्वारः संयतात्मनः ।
तस्यर्षेर्विनयाचार-भक्तिनम्राः सदैव हि ॥१६॥
तपश्चरणसक्तस्य शास्यमानेन्द्रियस्य च ।
यथाभिमतमस्माभिस्तदा तस्योपपादितम् ॥१७॥
समित्पुष्पादिकं सर्व्वं यच्चैवाभ्यवहारिकम् ।
एवं तत्राथ वसतां तस्यास्माकञ्च कानने ॥१८॥
आजगाम महावर्ष्मा भग्नपक्षो जरान्वितः ।
आताम्रनेत्रः स्रस्तात्मा पक्षी भूत्वा सुरेश्वरः ॥१९॥
सत्य-शौच-क्षमाचारमतीवोदारमानसम् ।
जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवाय च ॥२०॥

पक्ष्युवाच

द्विजेन्द्र मां क्षुधाविष्टं परित्रातुमिहार्हसि ।
भक्ष्यार्थी महाभाग गतिर्भव ममातुला ॥२१॥
विंध्यस्य शिखरे तिष्ठन् पत्रिपत्रेरितेन वै ।
पतितोऽस्मि महाभाग श्वसनेनातिरंहसा ॥२२॥
सोऽहं मोहसमाविष्टो भूमौ सप्ताहमस्मृतिः ।
स्थितस्तत्राष्टमेनाह्ना चेतनां प्राप्तवानहम् ॥२३॥
प्राप्तचेताः क्षुधाविष्टो भवन्तं शरणं गतः ।
भक्ष्यार्थी विगतानन्दो दूयमानेन चेतसा ॥२४॥
त्वमलमते मत्त्राणायाचलां मतिम् ।

हुवा कब निकलेगी ? ॥ १० ॥ अब हम यह सोचते हैं कि आपने हमारा पालन किया है. अब हम बड़े होगये हैं कृपा कर बताइये आपकी आज्ञा का पालन करें" ॥ ११ ॥ शमीक ऋषि ने इस प्रकार संस्कारयुक्त और स्पष्ट उन पक्षियों के वचनों को सुना। उस समय ऋषि अपने शिष्यों व पुत्र के साथ बैठे हुये थे ॥१२॥ कुतूहलवश तथा रोमांचित होकर ऋषि ने तत्वपूर्वक उनसे उनकी उत्पत्ति का कारण पूछा ॥ १३ ॥ किसके शाप से तुम इस विकृत रूप में आये और ये रूप तथा बोलने की शक्ति तुम्हें किस प्रकार प्राप्त हुई यह सविस्तर बतलाओ ॥ १४ ॥

पक्षी बोले—

हे मुनिवर ! प्राचीन काल में विपुलस्वान् नाम का एक पुरुष था जिसके दो पुत्र हुये जिनमें एक का नाम सुकृश और दूसरे का नाम तुम्बुरु था ॥ सुकृश के हम जितेन्द्रिय चार पुत्र हुये। हम लोगों की विनय, आचार, भक्ति और नम्रता सर्वदा ऋषियों की सी थी ॥१६॥ तपस्या करते हुये, तथा इन्द्रियों को जीतते हुये हमारे पिता, हम जिस वस्तु की अभिलाषा करते थे, उसी को उत्पादन करते थे ॥ १७ ॥ हमारे वन में जहाँ कि हम रहते थे शमी के फूल आदि जो भी व्यावहारिक वस्तुएं थीं सब मौजूद थीं ॥ १८ ॥ एक दफ़ा वहाँ राजा इन्द्र पक्षी के स्वरूप में आये । उस समय वे विशाल-काय, पंख टूटा हुआ, बुढ़ापा छाया हुआ, तांबे के से नेत्र वाले तथा डरे हुये से ऐसे रूप में थे ॥ १९ ॥ ऋषिश्रेष्ठ सुकृश के पास जो सत्यवादी पवित्र, क्षमावान्, सदाचारयुक्त एवं उदार चित्त थे, राजा इन्द्र शाप के भय से डरते हुए से उनकी परीक्षा के लिये आये ॥ २० ॥

इन्द्ररूपी पक्षी बोला—

हे विप्रवर महाभाग ! मैं भिक्षार्थी और क्षुधा से पीड़ित हूँ, मैं चलने फिरने में असमर्थ हूँ. आप मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥२१॥ हे भगवन् ! मैं विंध्याचल पर्वत की चोटी पर रहता था, वहाँ से पक्षियोंके राजाने मुझे निकाल दिया और उन्हों मुझे इस प्रकार हटाया कि मैं गिर पड़ा ॥ २२ ॥ मैं एक सप्ताह तक पृथ्वी पर अचेत पड़ा रहा। आठवें दिन मुझे चेत हुआ ॥ २३ ॥ होश आने पर भूख से व्याकुल होकर दुःखित मन हो आनन्द-रहित दशा में खाने की इच्छा से आपकी शरण में आया हूँ ॥ २४ ॥ हे विमल मति वाले ! हे ब्राह्मणों में ऋषि ! मेरी रक्षा करने के निमित्त अचल मति

प्रयच्छ भक्ष्यं विप्रर्षे प्राणयात्राक्षमं मम ॥२५॥
स एवमुक्तः प्रोवाच तमिन्द्रं पक्षिरूपिणम् ।
प्राणसन्धारणार्थाय दास्ये भक्ष्यं तवेप्सितम्॥२६॥
इत्युक्त्वा पुनरप्येनमपृच्छत् स द्विजोत्तमः ।
आहारः कस्तवार्थाय उपकल्प्यो भवेन्मया ।
स चाह नरमांसेन तृप्तिर्भवति मे परा ॥२७॥

ऋषिरुवाच

कौमारं ते व्यतिक्रान्तमतीतं यौवनञ्च ते ।
वयसः परिणामस्ते वर्त्तते नूनमण्डज ॥२८॥
यस्मिन् नराणां सर्व्वेषामशेषेच्छा निवर्त्तते ।
स कस्माद्वृद्धभावेऽपि सुनृशंसात्मको भवान्॥२९॥
क्व मानुषस्य पिशितं क्व वयश्चरमं तव ।
सर्व्वथा दुष्टभावानां प्रशमो नोपपद्यते ॥३०॥
अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ।
प्रतिश्रुत्य सदा देयमिति नो भावितं मनः ॥३१॥
इत्युक्त्वा तं स विप्रेन्द्रस्तथेति कृतनिश्चयः ।
शीघ्रमस्मान् समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ॥३२॥
उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरम् ।
विनयावनतान् सर्वान् भक्तियुक्तान् कृताञ्जलीन्॥३३॥
कृतात्मानो द्विजश्रेष्ठा ऋणैर्मुक्ता मया सह ।
जातं श्रेष्ठमपत्यं वो यूयं मम यथा द्विजाः ॥३४॥
गुरुः पूज्यो यदि मतो भवतां परमः पिता ।
ततः कुरुत मे वाक्यं निर्व्यलीकेन चेतसा ॥३५॥
तद्वाक्यसमकालञ्च प्रोक्तमस्माभिरादृतैः ।
यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्य्यताम् ॥३६॥

ऋषिरुवाच

मामेष शरणं प्राप्तो विहगः क्षुत्तृषान्वितः ।
युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवत्विति ।
तृष्णाक्षयश्च रक्तेन तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥३७॥
ततो वयं प्रव्यथिताः प्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः ।
कष्टं कष्टमिति प्रोच्य नैतत् कर्म्मेति चाब्रुवन्॥३८॥
कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः ।

वाले हो जाओ और मुझे भोजन को आहार दो जिससे मेरी जीवनकी यात्रा का अन्त न हो ॥२५॥ इस प्रकार कहे जाने पर ऋषि ने उन पक्षीरूपी इन्द्र से कहा, "तुम्हारी इच्छानुसार भोजन तुमको प्राण धारण करने के लिये दूँगा" ॥ २६ ॥ वह ब्राह्मण श्रेष्ठ यह कहकर उससे पूछनेलगे "तुम्हारे लिये कौनसा आहार हम प्रस्तुत करें" वह बोला कि मेरी तृप्ति मनुष्य का मांस भक्षण करने से होती है ॥ २७ ॥

ऋषि बोले—

हे पक्षी ! तुम्हारी कुमार अवस्था तथा जवानी बीत चुकी है और अब तुम इस बुढ़ापेकी अवस्था पर पहुँच चुके हो ॥ २८ ॥ इस अवस्था में मनुष्यों की इच्छाओं की समाप्ति होजाती है । इस लिये इस वृद्धावस्था में भी क्योंकर तुम इतने निर्दय आत्मा वाले हो ॥ २९॥ कहाँ तुम्हारी बुढ़ापे की अवस्था और कहाँ नर-मांस खानेकी लालसा ? यह सत्य है कि दुष्टों की दुर्भावनाओं की शान्ति कभी नहीं होती ॥ ३० ॥ अथवा यह कि मुझे इन सब बातों के कहने से क्या प्रयोजन है । जो कुछ तुमने माँगा है वह मुझे देना ही योग्य है ॥ ३१ ॥ वह ब्राह्मण शिरोमणि (सुकृश) उससे ऐसा कह कर तथा तदनुसार निश्चय करके हम सबको शीघ्र बुलाकर हमारे गुणों की प्रशंसा करने लगे ॥ फिर विनय से झुके हुये और भक्ति पूर्वक हाथ जोड़े हुये हम से दुखित हृदय मुनिने निठुर वचन कहने शुरू किये ॥ ३२ ॥ हे पुत्रो ! तुम मुझ से उत्पन्न हुये श्रेष्ठ ब्राह्मणों की तरह उत्तम सन्तान कहलाने योग्य हो तथा मेरे ऋण से अभी मुक्त नहीं हुए हो ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार गुरु पूज्य है उसी प्रकार पिता भी परम पूज्य है । इसलिये जो मैं कहूँ उसे विना किसी छल के करो ॥ ३५ ॥ हम सब ने कहा कि जो कुछ आप आज्ञा करेंगे उसको हम आदर पूर्वक शिरोधार्य करेंगे ॥ ३६ ॥

ऋषि बोले—

यह पक्षी भूख और प्यास से व्याकुल होकर मेरी शरण में आया है। तुम्हारे मांस से इसकी क्षणभरमें तृप्ति होजावेगी यह पक्षी तुम्हारे रक्त से अपनी तृषा शांत करेगा इसलिये शीघ्र तैयार हो जाओ ॥ ३७ ॥ इसके बाद हम लोग बहुत दुःखित हुए तथा भय से काँप गये और यह बोले, "यह काम बड़े कष्ट का है, हम से यह कर्म न होगा ॥ ३८ ॥ दूसरे के शरीर के लिये बुद्धिमान

विनाशयेद्घातयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः॥३९॥
पितृ-देव-मनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै।
तान्यपाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ॥४०॥
तस्मान्नैतत् करिष्यामो नो चीर्णं यत् पुरातनैः।
जीवन् भद्राण्यवाप्नोति जीवन् पुण्यं करोति च४१
मृतस्य देहनाशश्च धर्म्माद्युपरतिस्तथा ।
आत्मानं सर्व्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्म्मविदो जनाः ॥४२॥
इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन्।
प्रोवाच पुनरप्यस्मान् निर्दहन्निव लोचनैः ॥४३॥
प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत् करिष्यथ ।
तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्य्यग्योनौ प्रयास्यथ॥४४॥
एवमुक्त्वा तदा सोऽस्मांस्तं विहङ्गमथाब्रवीत्।
अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्द्ध्वदेहिकम्४५॥
भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम ।
आहारीकृतमेतत् ते मया देहमिहात्मनः ॥४६॥
एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्ष्यते ।
यावत् पतगजात्यग्र्य स्वसत्यपरिपालनम् ॥४७॥
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत् पुण्यं प्राप्यते महत्।
कर्म्मणान्येन वा विप्रैर्यत् सत्यपरिपालनात् ॥४८॥
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा सोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः।
प्रत्युवाच मुनिं शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा ॥४९॥
योगमास्थाय विप्रेन्द्र त्यजेदं स्वं कलेवरम् ।
जीवज्जन्तुं हि विप्रेंद्र न भक्षामि कदाचन ॥५०॥
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ।
तं तस्य निश्चयं ज्ञात्वा शक्रोऽप्याह स्वदेहभृत् ५१॥
भो भो विप्रेन्द्र बुध्यस्व बुद्ध्या बोध्यं बुधात्मक ।
जिज्ञासार्थं मयाऽयं ते अपराधः कृतोऽनघ ॥५२॥
तत् क्षमस्वामलमते का चेच्छा क्रियतां तव ।
पालनात् सत्यवाक्यस्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि॥५३॥
अद्य प्रभृति ते ज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति ।

अपने शरीर को क्यों नष्ट करे? जैसा अपना शरीर है वैसा ही पुत्र का होता है॥ ३९॥ मनुष्यों में पितृदेव का ऋणी तो पुत्र होता है परन्तु जो २ शुक्र ऋण हों उनको चुकाना चाहिये, पुत्र को प्राणों की वलि न देना चाहिये ॥ ४०॥ इसलिये हम ऐसा नहीं कर सकते, यदि जीवनहै तो शरीर के कल्याणके निमित्त बहुत पुण्य किया जा सकता है ॥ ४१ ॥ मर जाने पर तथा देह के नष्ट होजाने पर धर्मादि का शुभाचरण किस प्रकार होगा? इसलिए धर्म के तत्व को जानने वाले पुरुषों ने कहा है कि अपनी देह की सर्वथा रक्षा करनी चाहिये" ॥ ४२॥ हमारा इस प्रकार वचन सुनकर मुनि ने क्रोध से जलते हुए लाल-लाल आँखें कर हम से कहा ॥ ४३॥ तुम लोगों ने पहिले वचन देकर प्रतिज्ञा की और अब कहते हो ऐसा नहीं करेंगे। इसलिए मेरे शाप से भस्म होकर पक्षियों की योनिमें पहुँचोगे॥४४॥हमसे यह कहकर वह उस इन्द्ररूपी पक्षीसे बोले,"अपनी अंत्येष्टि शास्त्रानुकूल करके श्राद्ध किये लेता हूँ ॥ ४५॥ हे पक्षिराज! चूँकि तुमको विश्वास दिया जा चुका है इसलिए तुम मुझको भक्षण करो और मेरी देह को अपना आहार बनाओ॥ ४६ ॥ विप्र का ब्राह्मणत्व तभी तक समझना चाहिये जब तक कि वह अपने वचन व सत्य का पालन करता है ॥ ४७॥ जो महान् पुण्य यज्ञ करने, दक्षिणा देने और तप करने से भी नहीं होता वह केवल ब्राह्मणों द्वारा सत्य वचन पालन करने ही से हो जाता है" ॥४८॥ तब उस ऋषि के यह वचन सुनकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए पक्षीरूप राजा इन्द्र मुनि से यह बोले ॥ ४९॥ हे विप्रवर! योग की शरण लेकर अब मैं इस शरीर को छोड़ दूँगा। अब मैं कभी किसी जीव जन्तु को न खाऊँगा॥५०॥ उसके इस प्रकार वचन सुनकर सुकृश मुनि ने योगाभ्यास द्वारा विचारा। उनके इस प्रकार निश्चय को देखकर इन्द्र अपने असली शरीर को धारण कर बोला॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप निष्पाप और बुद्धिमान हैं, आप अज्ञानियों को बोध कराने वाले हैं। मैंने परीक्षा करने के हेतु यह अपराध अपने शिर पर लिया॥ ५२॥ अतः हे स्वच्छ बुद्धिवाले महात्मन्! मुझको क्षमा करो। आपकी क्या इच्छा है? उस की पूर्ति की जाय। आपके सत्य वचन पालन से आप में मेरी दृढ़ प्रीति होगई है॥ ५३॥ आज से आपका ज्ञान इन्द्र सम्बन्धी प्रगट होगा। आप

तपस्यथ तथा धर्म्मे न ते विघ्नो भविष्यति ॥५४॥
इत्युक्त्वा तु गते शक्रे पिता कोपसमन्वितः ।
प्रणम्य शिरसास्माभिरिदमुक्तो महामुनिः ॥५५॥
बिभ्यतां मरणात् तात त्वमस्माकं महामते ।
क्षन्तुमर्हसि दीनानां जीवितमिष्टता हि नः ॥५६॥
त्वगस्थिमांससङ्घाते पूयशोणितपूरिते ।
कर्त्तव्या न रतिर्यत्र तत्रास्माकमियं रतिः ॥५७॥
श्रूयतांच महाभाग यथा लोको विमुह्यति ।
कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशः प्रबलारिभिः ॥५८॥
मज्ज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणं पुरं महत् ।
चर्म्मभित्तिमहारोधं मांसशोणितलेपनम् ॥५९॥
नवद्वारं महायासं सर्व्वतः स्नायुवेष्टितम् ।
नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवस्थितः ॥६०॥
मन्त्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ ।
यतेते वैरनाशाय तावुभावितरेतरम् ॥६१॥
नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विषः।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यस्तथा रिपुः॥६२॥
यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्य तिष्ठति ।
तदा सुस्थबलश्चैव निरातङ्कश्च जायते ॥६३॥
जातानुरागो भवति शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥६४॥
यदा तु सर्व्वद्वाराणि विवृतानि स मुञ्चति ।
रागो नाम तदा शत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ॥६५॥
सर्व्वव्यापी महायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः ।
तस्यानुमार्गं विशति तदृ घोरं रिपुत्रयम् ॥६६॥
प्रविश्याथ स वै तत्र द्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः ।
रागः संश्लेषमायाति मनसा च सहेतरैः ॥६७॥
इन्द्रियाणि मनश्चैव वशे कृत्वा दुरासदः ।
द्वाराणि च वशे कृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ ॥६८॥
मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तत्क्षणात् ।
अमात्यरहितस्तत्र पौरवर्गोज्झितस्तथा ॥६९॥
रिपुभिर्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति ।

तपस्या कीजिये, आपके धर्म में कोई विघ्न न होगा ॥ ५४ ॥ यह कहकर इन्द्र चले गये और क्रोध से युक्त महामुनि अपने पिता से हम शिर से प्रणाम कर यह बोले ॥ ५५ ॥ "हे पिता ! हे महान् बुद्धि वाले ! हम लोगों को जीवन प्रिय है । हम दीनों को मरने के भय से आप मुक्त करने को समर्थ हैं ॥ ५६ ॥ यह शरीर चर्म, हड्डी, मांस, पीव और रुधिर से पूर्ण है इसमें अधिक आसक्ति न होनी चाहिये। हम इसमें अधिक रत होगये ॥५७॥ हे महाभाग ! सुनिये, जिस तरह संसार में हर एक प्राणी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि प्रबल शत्रुओं से मोहित होता हुआ अवश है ॥ ५८ ॥ यह शरीर एक महलके सदृश है जिसमें सुदृढ़ ... एक कोट के समान हैं चमड़ा जिसमें भीत समान है तथा मांस और रुधिर जिसका ले... अर्थात् प्लास्टर के समान है ॥ ५९ ॥ इसके न... बड़े-बड़े दरवाज़े हैं जिनपर स्नायुओं का पहरा है इसका राजा जो उसके अन्दर बैठता है ... पुरुष है ॥ ६० ॥ उसके दो मन्त्री हैं, वे हैं ... में एक दूसरे के विरोधी मन और बुद्धि, जहाँ ... एक दूसरे से झगड़ने लगते हैं वहाँ राजाका न... हो जाता है ॥ ६१ ॥ उस राजा का नाश बहुत ... वैरी चाहते हैं । उनमें काम, क्रोध, लोभ, ... आदि तथा और भी दूसरे इस राजा के शत्रु हैं। यदि राजा अपने द्वारों को बन्द करके रखा ... हुआ बैठता है तो वह स्वस्थ, बलवान् और भय रहित होता है ॥ ६३ ॥ वह सुखी रहता है और शत्रुओं से दलित नहीं होता है ॥ ६४ ॥ यदि वह सब द्वारों को खुले रखता है तो राग नाम क... शत्रु उसके नेत्र-द्वार में होकर प्रवेश करने ... इच्छा करता है ॥ ६५ ॥ वह राग नामक शत्रु ... व्यापी होता हुआ पाँच द्वारों से प्रवेश चाहता ... और उसके साथ तीन और शत्रु उसके मार्ग द्वारा प्रविष्ट होना चाहते हैं ॥ ६६ ॥ वह ... आदिक अनेकों द्वारों से घुस कर मन तथा रिपुओं से सहकारिता प्राप्त कर लेता है ॥ ६७ ॥ फिर वह इन्द्रियों और मन को वश में करके ... द्वारों को अधीन कर उस कोटको तोड़ता है ॥६८॥ मन को उसके आश्रित देखकर बुद्धि भी उसी क्ष... नष्ट हो जाती है और फिर चेतन पुरुष वि... मन्त्रियों के अकेला रह जाता है ॥६९॥ इस ... जिसके शत्रुओं ने छिद्रों को प्राप्त कर लिया ऐसा राजा नाश को प्राप्त होता है । यह तो ...

{एवं रागस्तथा मोहो लोभः क्रोधस्तथैव च ॥७०॥
प्रवर्त्तन्ते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः ।
रागात् क्रोधः प्रभवति क्रोधाल्लोभोऽभिजायते ७१॥
लोभाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति७२॥
एवं प्रनष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्त्तिनाम् ।
जीविते च स लोभानां प्रसादं कुरु सत्तम ॥७३॥
योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत् तथा ।
न तामसीं गतिं कष्टां व्रजेम मुनिसत्तम ॥७४॥

ऋषिरुवाच

यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यति कदाचन।
न मे वागनृतं प्राह यावदद्येति पुत्रकाः ॥७५॥
दैवमत्र परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।
अकार्य्यं कारितो येन वलादहमचिन्तितम् ॥७६॥
यस्माच्च युष्माभिरहं प्रणिपत्य प्रसादितः ।
तस्मात् तिर्य्यक्त्वमापन्नाः परं ज्ञानमवाप्स्यथ॥७७॥
ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निर्द्धूतक्लेशकल्मषाः ।
मत्प्रसादादसन्दिग्धाः परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥७८॥
एवं शप्ताः स्म भगवन् पित्रा दैववशात् पुरा ।
ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः ॥७९॥
जाताश्च रणमध्ये वै भवता परिपालिताः ।
वयमित्थं द्विजश्रेष्ठ खगत्वं समुपागताः ॥८०॥
नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन वाध्यते ।
सर्व्वेषामेव जन्तूनां दैवाधीनं हि चेष्टितम् ॥८१

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शमीको भगवान् मुनिः ।
प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान्॥८२॥
पूर्व्वमेव मया प्रोक्तं भवतां सन्निधाविदम् ।
सामान्यपक्षिणो नैते केऽप्येते द्विजसत्तमाः ।
ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥८३॥
ततः प्रीतिमता तेन तेऽनुज्ञाता महात्मना ।
प्रभुः शिखरिणां श्रेष्ठं विंध्यं द्रुमलतायुतम् ॥८४॥

का हाल कहा इसी प्रकार मोह, लोभ और क्रोध को समझना चाहिये ॥ ७० ॥ मनुष्य की स्मृति अर्थात् बुद्धि को नाश करने वाले ये दुरात्मा रूप शत्रु हर समय मौजूद रहते हैं । राग से क्रोध होता है और क्रोध से लोभ होता है ॥ ७१ ॥ लोभ से मोह और मोह से विभ्रम होता है। स्मृति के विभ्रम से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि नष्ट होने पर प्राणों का अपहरण हो जाता है ॥ ७२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! हम नष्ट बुद्धि वालों, राग और लोभ के पीछे चलने वालों तथा जीवन के लोभ करने वालों पर कृपा कीजिये ॥ ७३ ॥ हे मुनिवर ! जो यह शाप आपने दिया है वह न हो और हम तामसी गति को प्राप्त न हों" ॥ ७४ ॥

ऋषि बोले—

"जो मैंने कहा है वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता। हे पुत्रो ! मेरा वाक्य आज तक मिथ्या नहीं हुआ ॥ ७५ ॥ मैं यहाँ पर पुरुषार्थ से दैव को अधिक मानता हूँ जिसने वल पूर्वक यह अनर्थ रूप कार्य करा दिया ॥ ७६ ॥ अब जो कि तुमने मुझे प्रणाम कर प्रसन्न किया है इसलिये तुम पक्षी योनि में प्राप्त होकर भी परम ज्ञान से युक्त होगे ॥ ७७ ॥ ज्ञान द्वारा दिखाये हुए जितने मार्ग हैं उनपर चलने से तुम क्लेश और पाप से रहित होगे । मेरे प्रसाद से निश्चय ही तुम परम सिद्धि को प्राप्त होगे" ॥ ७८ ॥ हे भगवन् ! हे शमीक मुनि ! दैवयोग से पिता द्वारा इस प्रकार शापित हुए हम उस समय पक्षी योनि में पहुँच गये ॥ ७९ ॥ हे द्विजवर ! हम रणभूमि में आकर उत्पन्न हुए और आपने हमारा पालनकिया, इस प्रकार हम पक्षीरूप में मौजूद हैं ॥ ८० ॥ इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसको प्रारब्ध से बाधा न पहुँची हो । सब जीव-जन्तु दैव के ही आधीन वर्तन करते हैं ॥ ८१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार उनका वचन सुनकर महात्मा शमीक अपने पास बैठे हुए शिष्यों से बोले ॥८२॥ मैंने तुम लोगों को पहिले ही बताया था कि यह साधारण पक्षी नहीं है वरन् कोई श्रेष्ठ जीव है जो कि ये मानवी रणभूमि में भी मृत्यु को प्राप्त न हुये ॥ ८३ ॥ फिर प्रेम पूर्वक उन महात्मा ने उन पक्षियों को आदेश किया कि पर्वतों में श्रेष्ठ तथा पेड़ों और लताओं के सहित विंध्याचल पर्वत पर आप लोग जाइये ॥ ८४ ॥ हे पक्षियो ! वहाँ जाकर

यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नचले धर्म्मपक्षिणः ।
तपःस्वाध्यायनिरताः समाधौ कृतनिश्चयाः ॥८५॥

इति मुनिवरलब्धसत्क्रियास्ते मुनितनया विहगत्वमभ्युपेताः। गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोयेयतमनसो निवसन्ति विन्ध्यपृष्ठे॥८६॥

और रहकर तप, स्वाध्याय और समाधिमें निश्चय रूप से तत्पर रहिये ॥ ८५॥ इस प्रकार शमीकमुनि की आज्ञा पाकर और उनसे सदुपदेश ग्रहण करके वे पक्षीरूप मुनि-पुत्र अत्यन्त गहन विंध्याचल पर्वत की पीठ पर जहाँ अत्यन्त पवित्र जल बहता था प्रसन्न मन से रहने लगे ॥ ८६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में विन्ध्य-प्राप्ति नाम तीसरा अध्याय समाप्त ।



चौथा अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवं ते द्रोणतनयाः पक्षिणो ज्ञानिनोऽभवन् ।
वसन्ति ह्यचले विन्ध्ये तानुपास्स्व च पृच्छ च ।१ ।
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य जैमिनिः ।
जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्म्मपक्षिणः ॥ २ ॥
तन्नगासन्नभूतश्च शुश्राव पठतां ध्वनिम् ।
श्रुत्वा च विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास जैमिनिः । ३ ।
स्थानसौष्ठवसम्पन्नं जितश्वासमविश्रमम् ।
विस्पष्टमपदोषञ्च पठ्यते द्विजसत्तमैः ॥ ४ ॥
वियोनिमपि सम्प्राप्तानेतान् मुनिकुमारकान् ।
चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती ॥ ५ ।
बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे ।
त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्व्वं न जहाति सरस्वती ६॥
इति सञ्चिन्तयन्नेव विवेश गिरिकन्दरम् ।
प्रविश्य च ददर्शासौ शिलापट्टगतान् द्विजान् ।। ७ ।
पठतस्तान् समालोक्य मुखदोषविवर्जितान् ।
सोऽथ शोकेन हर्षेण सर्व्वानेवाभ्यभाषत ॥ ८ ।
स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा जैमिनिं मां निबोधत।
व्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवतां दर्शनोत्सुकम् । ६ ॥
मन्युर्न खलु कर्त्तव्यो यत् पित्रातीवमन्युना ।
शप्ताः खगत्वमापन्नाः सर्व्वथा दिष्टमेव तत् ॥१०॥
स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जाताः किल मनस्विनः ।
द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शवरेण सुसान्त्विताः ॥११॥
दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चापरे ।
पातयित्वा च पात्यन्ते त एव तपसः क्षयात् ॥१२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनि जैमिनिजी ! इस प्रकार वे द्रोणके पुत्र पक्षी ज्ञानवान् हुए और अब वे विंध्याचल पर्वत पर रहते हैं। उनके पास जाकर पूछिये ॥१॥ ऋषि मार्कण्डेय के यह वचन सुनकर जैमिनिजी विंध्याचल के शिखर पर गये जहाँ वे धर्मरूप पक्षी रहते थे ॥ २ ॥ उस पर्वत के समीप पहुंचकर उन्होंने पक्षियों की पाठ-ध्वनि सुनी । उसको सुनकर जैमिनि मुनि आश्चर्यान्वित होकर सोचनेलगे ॥३॥ कि ये श्रेष्ठ पक्षी बिना श्वास रोके बड़ी सुष्ठुता और सफ़ाई से तथा दोष रहित पाठ करते हैं ॥४॥ दूसरी योनि को प्राप्त हुए इन मुनि कुमारों को सरस्वती नहीं छोड़ती है यह बड़ा आश्चर्य है ॥५॥ भाई-बन्धु, मित्र और प्रियजन ये सब अपने को छोड़ देते हैं परन्तु सरस्वती नहीं [illegible] है ॥ ६ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए जैमिनि ने पर्वत की गुफा में प्रवेश किया और वहाँ प्रवेशकर कर पक्षियों को एक शिला पर बैठे हुए देखा ॥७॥ उन पक्षियों को दोष रहित उच्चारण से पढ़ते हुए देखकर जैमिनि बड़े प्रसन्न हुए और कुछ चिन्ता युक्त हो उनसे बोले ॥८॥ हे शुभ पक्षियो ! [illegible] कल्याण हो, मुझको व्यास शिष्य जैमिनि समझो मैं आपके दर्शनों की इच्छा से यहाँ आया हूँ ॥ ९। पिता के क्रोधित होने से जो आप लोग [illegible] होकर पक्षि योनि में प्राप्त हुए हैं इसका ख्याल करना चाहिये, कारण दैव की इच्छा थी ऐसा मानना चाहिये ॥ १० ॥ कुल के द्रव्य के नाश होने पर बहुत से सम्भ्रान्त कुल के लोग नीच कुल के लोगों से आश्रय पाते हैं ॥ ११ ॥ तप के क्षीण हो जानेपर जिन मनुष्योंने दान दियाहै वे भीख माँगते हैं, जिन्होंने मारा है वे मारे जाते हैं तथा जि[illegible] दूसरों को गिराया है वे गिराये जाते हैं ॥ १२

तद्दृष्टं सुबहुशो विपरीतं तथा मया ।
ावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत् ॥१३॥
ति सञ्चिन्त्य मनसा न शोकं कर्त्तुमर्हथ ।
ानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥१४॥
तस्ते जैमिनिं सर्व्वे पाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् ।
प्रनामयञ्च पप्रच्छुः प्रणिपत्य महामुनिम् ॥१५॥
प्रथोचुः खगमाः सर्व्वे व्यासशिष्यं तपोनिधिम् ।
सुखोपविष्टं विश्रान्तं पक्षानिलहतक्लमम् ॥१६

पक्षिण ऊचुः

अद्य नः सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।
यत् पश्यामः सुरवन्द्यं तव पादांबुजद्वयम् ॥१७॥
पित्रकोपाग्निरुद्भूतो यो नो देहेषु वर्त्तते ।
सोऽद्य शान्तिं गतो विप्र युष्मद्दर्शनवारिणा॥१८॥
कच्चित् ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु ।
वृक्षेष्वथ लता-गुल्म-त्वक्सार-तृणजातिषु ॥१९॥
अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः ।
भवता सङ्गमो येषां तेषामकुशलं कुतः ॥२०॥
प्रसादञ्च कुरुष्वात्र ब्रूह्यागमनकारणम् ।
देवानामिव संसर्गो भवतोऽभ्युदयो महान् ।
केनास्मद्भाग्यगुरुणा आनीतो दृष्टिगोचरम् ॥२१॥

जैमिनिरुवाच

श्रूयतां द्विजशार्दूलाः कारणं येन कन्दरम् ।
विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम् ।
सन्देहान् भारते शास्त्रे तान् प्रष्टुं गतवानहम्॥२२॥
मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्व्वं भृगुकुलोद्वहम् ।
ामहं पृष्टवान् प्राप्य सन्देहान भारतं प्रति ॥२३॥
ा च पृष्टो मया प्राह सन्ति विंध्ये महाचले ।
ोणपुत्रा महात्मानस्ते वक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम् ॥२४॥
द्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम् ।
च्छृणुध्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥२५॥

पक्षिण ऊचुः

षये सति वक्ष्यामो निर्विशंकाः शृणुष्व तत् ।
र्थं तन्न वदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥२६॥

इस प्रकार मैंने बहुतसी बातें परस्पर विरोधी देखी हैं। भाव में अथवा अभाव में लोग निरन्तर व्याकुल हो रहे हैं ॥२३॥ इस प्रकार मनमें विचार कर आप लोग शोक न करें। ज्ञान का फल ही यह है कि सुख दुःख में समान रहे ॥ १४ ॥ इसके बाद उन सब पक्षियों ने पाद्य, अर्घ्य आदि से जैमिनि की पूजा की और उन महामुनि को प्रणाम कर उनकी कुशल पूछी ॥ १५ ॥ फिर उन सब पक्षियों ने तपस्वी और व्यासजीके शिष्य जैमिनिसे जो कि सुख से बैठ गये थे तथा जिनकी थकान पक्षियों ने अपने पंखों की हवा से दूर करदी थी कहा ॥ १६ ॥

पक्षी लोग बोले—

जो दोनों चरण कमल आपके देवताओं से पूजित हैं उनको आज देखकर हमारा जन्म सफल होगया ॥ १७ ॥ हे विप्र ! पिताजी की क्रोधाग्नि में जलते हुए हम इस योनि में मौजूद हैं। वह अग्नि आज आपके दर्शनरूपी जल से शान्त हुई ॥ १८ ॥ हे भगवन् ! आपके आश्रम में मृग, पक्षी, वृक्ष, लता, पुष्प, त्वक्सार और तृण इनमें कौन सुखी नहीं है अर्थात् सब कुशल हैं ॥ १९ ॥ अथवा हमने आदर पूर्वक ठीक नहीं कहा । जो आपके संग में हैं उनका अमङ्गल कहाँ ? ॥ २० ॥ कृपा कर अपने आगमन का कारण बताइये। आपका संसर्ग ऐसा है जैसे देवताओं का। सम्भव है हमारे भाग्योदय से ही आपका आना हुआ हो ॥ २१ ॥

जैमिनि बोले—

हे श्रेष्ठ पक्षियो ! सुनो, मैं जिस कारण से विन्ध्याचल पर्वत की इस कन्दरा में जहाँ रेवा नदी का जल छिड़का हुआहै आया हूँ। महाभारत में मुझे कई जगह संदेह है उसको पूछने के लिये अर्थात् उसकी निवृत्ति के लिये मैं आया हूँ ॥२२॥ पहिले मैं भृगुकुलोत्पन्न महात्मा मार्कण्डेयजी के पास महाभारत में हुए संदेहों को पूछने के लिये गया ॥ २३ ॥ मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि विन्ध्याचल पर्वत पर द्रोण के महात्मा पुत्र रहते हैं वे विस्तार पूर्वक तुम्हें बतावेंगे ॥ २४ ॥ उन्हीं की प्रेरणा से मैं इस महा पर्वत पर आया हूँ, इसलिये आप विस्तार पूर्वक उन संदेहों को सुनिये और उनकी निवृत्ति कीजिये ॥ २५ ॥

पक्षी बोले—

जो विषयहो उसे निस्संदेह कहिये हम उसको सुनेंगे और जो कुछ हमारी बुद्धि में आवेगा उसे

चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्म्मशास्त्रेषु चैव हि ।
समस्तेषु तथांगेषु यच्चान्यद्वेदसम्मितम् ॥२७॥
एतेषु गोचरोऽस्माकं बुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम ।
प्रतिज्ञान्तु समारोढुं तथापि न हि शक्नुमः ॥२८॥
तस्माद्वदस्व विश्रब्धं सन्दिग्धं यद्धि भारते ।
वक्ष्यामस्तव धर्म्मज्ञ न चेन्मोहो भविष्यति ॥२९॥

जैमिनिरुवाच

सन्दिग्धानीह वस्तूनि भारतं प्रति यानि मे ।
शृणुध्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥३०
कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः ।
वासुदेवोऽखिलाधारः सर्व्वकारणकारणम् ॥३१॥
कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा ।
पञ्चानां महिषी कृष्णा सुमहानत्र संशयः ॥३२॥
भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः ।
तीर्थयात्राप्रसंगेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥३३॥
कथंच द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः ।
पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥३४॥
एतत् सर्व्वं कथ्यतां मे संदिग्धं भारतं प्रति ।
कृतार्थोऽहं सुखं येन गच्छेयं निजमाश्रमम् ॥३५॥

पक्षिण ऊचुः

नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
पुरुषायाप्रमेयाय शाश्वतायाव्ययाय च ॥३६॥
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायागुणाय च ।
वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामृताय च ॥३७॥
यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ।
येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन जगदादिना ॥३८॥
आविर्भाव-तिरोभाव-दृष्टादृष्टविलक्षणम् ।
वदन्ति यत् सृष्टमिदं तथैवान्ते च संहृतम् ॥३९॥
ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ।
ऋक्सामान्युद्गिरन् वक्त्रैः पुनाति जगत्त्रयम् ॥४०॥
प्रणिपत्य तथेशानमेकबाणविनिर्ज्जितैः ।
यस्यासुरगणैर्यज्ञा विलुप्यन्ते न यज्विनाम् ॥४१॥

क्यों न कहेंगे ॥ २६ ॥ चारों वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र तथा अन्य शास्त्र जो वेद से सम्मत हैं ॥ २७ ॥ हे द्विजवर ! वे सब हमारी बुद्धि-गोचर हैं । इससे अतिरिक्त जो ज्ञान है वह भी हम आपको बता सकते हैं ॥ २८ ॥ हे धर्मज्ञ ! जो कुछ महाभारत में आपको संदेह हो हमसे कहिये, वह हम आपको बतावेंगे और आपको संदेहरहित करदेंगे ॥ २९ ॥

जैमिनिजी बोले—

महाभारत शास्त्रमें जो मुझे सन्देहहैं वे सुनिये और उनको सुनकर उनकी व्याख्या कीजिये ॥३०॥ परमेश्वर जो निर्गुण है तथा सर्वाधार और सब कारणों का भी कारण है वह मनुष्यता को प्राप्तहो कर वासुदेव क्यों कहलाया ? ॥३१॥ पांडु के पाँचों पुत्रों की एकही भार्या द्रुपद राजा की पुत्री कृष्णा कैसे हुई इसमें महान् संशय है ॥३२॥ महाबलवान् बलरामजीने ब्रह्म हत्या के पापसे मुक्त होने के लिये तीर्थयात्रा किस तरह की ? ॥३३ ॥ और द्रौपदी के पाँचों पुत्र जो कुमार, महारथी तथा महात्मा थे और जिनके अभिभावक रूप से पाण्डव लोग मौजूद थे, क्योंकर अनाथों की भांति मारे गये ? ॥ महाभारत के प्रति ये सब सन्देह मेरा दूर करिये जिससे मैं कृतार्थ होकर सुख से अपने आश्रम को जाऊँ ॥ ३५ ॥

पक्षी बोले—

सबसे पहिले देवताओं के स्वामी प्रभु विष्णु को जो पुरुष, अप्रमेय शाश्वत और अव्ययहैं हम नमस्कार करते हैं ॥ ३६ ॥ उनके चार स्वरूप हैं, वे त्रिगुण हैं तथा गुणातीत हैं । वे बड़े इष्ट, गरिष्ट, अवर्णनीय तथा अमर हैं ॥ ३७ ॥ उनसे न तो कोई छोटा है और न बड़ा, अर्थात् वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म और बृहदातिबृहत् हैं । उनसे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है और वे जगत के आदि कारण हैं ॥ ३८ ॥ जो जन्म और मरण, दृश्य और अदृश्य से परे हैं और जिनसे सृष्टि का आदि और अन्त है उनको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ फिर समाधिस्थ ब्रह्माजी को नमस्कार करते हैं जिनके मुख से ऋक्, साम, यजुर्वेद तथा अथर्व वेद निकले हैं तथा जो तीनों जगतों को पवित्र करते हैं ॥ ४० ॥ उसी प्रकार शिवजी को जिनके एक बाण से यज्ञ करने वालों के यज्ञों से असुरों के समूह लुप्त हो जाते हैं नमस्कार करके ॥ ४१ ॥ हम अद्भुत कर्म करने वाले

प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याद्भुतकर्म्मणः ।
येन भारतमुद्दिश्य धर्म्माद्याः प्रकटीकृताः ॥४२॥
आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
अयनं तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥४३॥
स देवो भगवान् सर्व्वं व्याप्य नारायणो विभुः ।
चतुर्द्धा संस्थितो ब्रह्मन् सगुणो निर्गुणस्तथा ४४॥
एका मूर्त्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यंति तां बुधाः ।
ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा॥४५॥
दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानाऽसौ निर्म्ममत्वेन दृश्यते ॥४६॥
रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः कल्पनामयाः ।
अस्त्येव सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥४७॥
द्वितीया पृथिवीं मूर्द्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ।
तामसी सा समाख्याता तिर्य्यक्त्वं समुपाश्रिता४८॥
तृतीया कर्म्म कुरुते प्रजापालनतत्परा ।
सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्म्मसंस्थानकारिणी४९॥
चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा ।
रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि ॥५०॥
या तृतीया हरेर्मूर्त्तिः प्रजापालनतत्परा ।
सा तु धर्म्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि ॥५१॥
प्रोद्धूतानसुरान् हन्ति धर्म्मविच्छित्तिकारिणः।
पाति देवान् सतश्चान्यान् धर्मरक्षापरायणान्॥५२॥
यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने ।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ॥५३॥
भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च ।
एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुन्धरा ॥५४॥
कृत्वा नृसिंहरूपञ्च हिरण्यकशिपुर्हतः ।
विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः॥५५॥
वामनादींस्तथैवान्यान् न संख्यातुमिहोत्सहे ।
अवतारांश्च तस्येह माथुरः साम्प्रतं त्वयम् ॥५६॥
इति सा सात्त्विकी मूर्त्तिरवतारान् करोति वै ।
प्रद्युम्नेति च सा ख्याता रक्षाकर्म्मण्यवस्थिता५७॥

व्यास का जिन्हों ने कि महाभारत लिखकर धर्मादिकों को प्रगट किया है सम्पूर्ण मत आपको बतलायेंगे ॥ ४२ ॥ तत्वदर्शी मुनियों ने जल को नारा कहा है और उसमें जिस पुरुष का वास है उसको नारायण कहते हैं ॥ ४३ ॥ वही भगवान् नारायण देव ईश्वर सर्व-व्यापी होकर चार स्वरूप में स्थित है तथा सगुण और निर्गुण है ॥ ४४ ॥ पहिला स्वरूप अनिर्देश्य है जिसको विद्वान् शुक्ल कहते हैं और परम योगी जिसको ज्योतिःस्वरूप कहते हैं ॥ ४५ ॥ गुणी लोग कहते हैं कि वह दूर और पास दोनों है। उसी को वासुदेव कहते हैं और वह ममत्व रहित लोगों को ही दिखाई देता है ॥ ४६ ॥ उस स्वरूप का रूप रङ्ग नहीं है, उस का भाव कल्पनामय है। वह सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित और एक रूप वाला है ॥ ४७ ॥ दूसरा स्वरूप शेषनाग है जो नीचे से अपने शिर पर पृथ्वी को उठाये हुए है। इस स्वरूप को तामसी कहते हैं ॥ ४८ ॥ तीसरा स्वरूप वह है जो कर्म करता है अर्थात् प्रजा पालन में तत्पर है और धर्म का संस्थापन करता है इसको सात्विक स्वरूप कहा है ॥ ४९ ॥ चौथा स्वरूप वह है जो शेषशायी है इसको रजोगुणी कहते हैं ॥ ५० ॥ तीसरा जो स्वरूप प्रजा पालन में तत्पर है वह पृथ्वी पर नियत रूप से धर्म की व्यवस्था करता है ॥ ५१ ॥ (भगवान्) राक्षसों को जो धर्म के नाश करने वाले हैं, मारते हैं और धर्म की रक्षा में परायण देवताओं की रक्षा करते हैं ॥ ५२ ॥ हे जैमिनि! जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तभी भगवान् प्रगट होते हैं ॥ ५३ ॥ प्राचीन काल में वाराह ने अपने एक दाँत से पृथ्वी को जल में से कमल की तरह निकाल कर स्थित किया ॥ ५४ ॥ और नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपुका वध किया और विप्रचित्ति आदि राक्षसों को मारा ॥ ५५ ॥ उन्होंने ही वामनादिक अनेकों असंख्य अवतार धारण किये हैं और उन्होंने ही आज-कल मथुरा में अवतार लिया है ॥ ५६ ॥ यह सात्विकी मूर्ति ही परमेश्वर का अवतार लेती है। दूसरी तामसी मूर्ति शेष अर्थात् प्रद्युम्न का अवतार लेकर रक्षा कर्म में तत्पर रहती है ॥ ५७ ॥ वासुदेव की इच्छा

देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्य्यग्योनौ च संस्थिता ।
गृह्णाति तत्स्वभावंच वासुदेवेच्छया सदा ॥५८॥
इत्येतत् ते समाख्यातं कृतकृत्योऽपि यत्प्रभुः ।
मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुष्वास्योत्तरं पुनः॥५६॥

से देवताओं और मनुष्यों की योनि स्वभावानुसार मिलती है ॥ ५८ ॥ इसलिये परमेश्वर विष्णु मानव अवतार लेते हैं । अब दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनिये ॥ ५९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में चतुर्व्यूह अवतार वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।

पाँचवां अध्याय

पक्षिण ऊचुः
त्वष्टृपुत्रे हते पूर्व्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्य तेजसः ।
ब्रह्महत्याभिभूतस्य परा हानिरजायत ॥ १ ॥
तद्धर्म्मं प्रविवेशाथ शाक्रतेजोऽपचारतः ।
निस्तेजाश्चाभवच्छक्रो धर्म्मे तेजसि निर्गते ॥ २ ॥
ततः पुत्रं हतं श्रुत्वा त्वष्टा क्रुद्धः प्रजापतिः ।
अवलुंच्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
अद्य पश्यन्तु मे वीर्य्यं त्रयो लोकाः सदेवताः।
स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः ॥ ४ ॥
स्वकर्म्माभिरतो येन मत्सुतो विनिपातितः ।
इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षो जटामग्नौ जुहाव ताम् ॥ ५ ॥
ततो वृत्रः समुत्तस्थौ ज्वालामाली महासुरः ।
महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥ ६ ॥
इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्टृतेजोपबृंहितः ।
अहन्यहनि सोऽवर्द्ध दिषुपातं महाबलः ॥ ७ ॥
वधाय चात्मनो दृष्ट्वा वृत्रं शक्रो महासुरम् ।
प्रेषयामास सप्तर्षीन् सन्धिमिच्छन् भयातुरः ॥ ८ ॥
सख्यंचक्रुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयांस्तथा ।
ऋषयः प्रीतमनसः सर्व्वभूतहिते रताः ॥ ९ ॥
समयस्थितिमुल्लङ्घ्य यदा शक्रेण घातितः ।
वृत्रो हत्याभिभूतस्य तदा बलमशीर्य्यत ॥१०॥
तच्छक्रदेहविभ्रष्टं बलं मारुतमाविशत् ।
सर्व्वव्यापिनमव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम् ॥११॥
अहल्यायाञ्च यदा शक्रो गौतमं रूपमास्थितः ।

पक्षी बोले—
प्राचीन काल में इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र को जो तेजस्वी ब्राह्मण था मारा था । इससे उसको ब्रह्महत्या का पातक लगा और इन्द्र की बड़ी हानि हुई ॥ १ ॥ उस पाप के लगने से इन्द्र निस्तेज हो गया और उसका तेज निकल कर धर्म में प्रविष्ट होगया ॥ २ ॥ जब प्रजापति त्वष्टा ने अपने पुत्र का मरण सुना तो क्रुद्ध होकर अपनी एक जटा उखाड़ कर यह वचन बोला ॥ ३ ॥ अब मेरी शक्ति को देवताओं सहित तीनों लोक तथा वह दुर्बुद्धि ब्राह्मणघाती इन्द्र देखे ॥ ४ ॥ इन्द्र ने अपने काम में लगे हुए मेरे पुत्र का वध किया है यह कहकर लाल-लाल नेत्र करके जटा को अग्नि में डाल दिया ॥ ५ ॥ उस समय उस अग्नि से वृत्रासुर नाम वाला राक्षस जो भीमकाय, बड़े-बड़े दांतों वाला तथा काले पहाड़ की सी आभा वाला था निकला ॥ ६ ॥ वह इन्द्र का शत्रु, महाबली, तथा त्वष्टा के तेज से उत्पन्न हुआ राक्षस वृत्रासुर नित्यप्रति बढ़ता था इस तरह कि जिस प्रकार छूटा हुआ तीर ऊँचा जाता है ॥ ७ ॥ इन्द्र ने महाअसुर वृत्रासुर से अपना मरण जानकर, भयान्वित हो, सप्तऋषियों को सन्धि की खबर लेकर वृत्रासुर के पास भेजा ॥ ८ ॥ उन ऋषियों ने जो प्राणि मात्र का हितचिन्तन करते थे, इन्द्र की वृत्रासुर के साथ एक अवधि के लिये मित्रता करादी ॥ ९ ॥ अवधि के बीतने पर शक्र (इन्द्र) ने वृत्र का वध किया । वृत्र की हत्या से इन्द्र का बल क्षीण हो गया ॥ १० ॥ इसके बाद इन्द्र की देहसे बल निकल कर सर्वव्यापी, अव्यक्त तथा बल के देवता पवन में प्रवेश कर गया ॥११॥ जब इन्द्र ने गौतमका रूप धारण कर अहल्या के सतीत्व का नाश किया तब

धर्षयामास देवेन्द्रस्तदा रूपमहीयत ॥१२॥
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यं यदतीव मनोरमम् ।
विहाय दुष्टं देवेन्द्रं नासत्यावगमत् ततः ॥१३॥
धर्म्मेण तेजसा त्यक्तं वलहीनमरूपिणम् ।
ज्ञात्वा सुरेशं दैतेयास्तज्जये चक्रुरुद्यमम् ॥१४॥
राज्ञामुद्रिक्तवीर्य्याणां देवेन्द्रं विजिगीषवः ।
कुलेष्वतिवला दैत्या अजायन्त महामुने ॥१५॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणी भारपीड़िता ।
जगाम मेरुशिखरं सदो यत्र दिवौकसाम् ॥१६॥
तेषां सा कथयामास भूरिभारावपीड़िता ।
दनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः ॥१७॥
एते भवद्भिरसुरा निहताः पृथुलौजसः ।
ते सर्व्वे मानुषे लोके जाता गेहेषु भूभृताम् ॥१८॥
अक्षौहिण्यो हि बहुलास्तद्भारार्त्ता व्रजाम्यधः।
तथा कुरुध्वं त्रिदशा यथा शान्तिर्भवेन्मम ॥१९॥

पक्षिण ऊचुः

तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम् ।
प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च ॥२०॥
यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः ।
कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः ॥२१॥
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत ।
शक्रवीर्य्यार्द्धतश्चैव जज्ञे पार्थो धनञ्जयः ॥२२॥
उत्पन्नौ यमजौ माद्रयां शक्ररूपौ महाद्युती ।
पञ्चधा भगवानित्थमवतीर्णः शतक्रतुः ॥२३॥
तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात्॥२४॥
शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित्।
योगीश्वराः शरीराणि कुर्व्वन्ति बहुलान्यपि ॥२५॥
पञ्चानामेकपत्नीत्वमित्येतत् कथितं तव ।
श्रूयतां वलदेवोऽपि यथा यातः सरस्वतीम् ॥२६॥

उसका रूप भी क्षीण होगया ॥ १२ ॥ और वह मनोरम लावण्य उस दुष्ट इन्द्र के अङ्ग-अङ्ग से निकल कर अश्विनी कुमारों में प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ धर्म, तेज, वल और रूप से इन्द्र को हीन हुआ देखकर दैत्यों ने इन्द्र को जीतने का उद्यम किया ॥ १४ ॥ हे महामुनि जैमिनि ! इन्द्र को जीतने की इच्छासे पृथ्वी पर अनेक वलवान् राजाओं के राज्य-कुलों में राक्षसों ने जन्म लिया ॥ १५ ॥ इन राक्षसों के भार से व्याकुल होकर पृथ्वी जहाँ सुमेरु पर्वत पर देवताओं की सभा थी वहाँ गई ॥ १६ ॥ अत्यन्त भार से पीड़ित होकर उसने देवताओंसे कहा कि दैत्योंके भारसे पीड़ित होकर मैं यहाँ आई हूँ ॥ १७ ॥ आपने जो प्रगाढ़ पराक्रम वाले राक्षसों को मारा है वे सब मनुष्य-लोक में राजाओं के घर में उत्पन्न हुए हैं ॥ १८ ॥ उन्होंने अनेक अक्षौहिणी सेनाओं के भार के मुझको दुःखित किया है और इसी कारण से मैं नीचे की ओर जाती हूँ । हे देवताओ ! ऐसा कीजिये, जिससे मैं शान्ति पा सकूँ ॥ १९ ॥

पक्षी वोले—

इसकारण अपने-अपने तेजका भाग लेकर देवताओं ने पृथ्वी पर प्रजा के उपकार के निमित्त तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार लिया ॥ २० ॥ इन्द्र के शरीर से जो तेज धर्म ने ग्रहण किया उससे कुन्ती द्वारा महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिर उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ इन्द्र से निकल कर जो वल पवन में मिला उससे भीम उत्पन्न हुए। तथा इन्द्र के वीर्य से वर्द्धित पार्थ नाम अर्जुन उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ इन्द्र का जो रूप अश्विनी-कुमारों में मिला था उससे इन्द्र स्वरूप दो पुत्र माद्री के उत्पन्न हुए जिनके नाम नकुल और सहदेव थे। इस प्रकार भगवान इन्द्र स्वयं पाँच स्वरूपों में प्रगट हुए ॥ २३ ॥ और हे जैमिनिजी। अग्नि से उत्पन्न हुई द्रौपदी उन इन्द्र रूपी पाँचों पाण्डवों की पत्नी हुई ॥ २४ ॥ इसलिये वह द्रौपदी एक इन्द्र की ही पत्नी है और किसी की नहीं। योगीश्वर भी अपने योग के वल से अनेक शरीर धारण कर लेते है (जिसमें इन्द्र तो देवता हैं) हे मुनि जैमिनिजी ! पाँचों पाण्डवों की एक ही पत्नीका रहस्य आपसे कहा। अब सुनिये कि किस प्रकार वलदेवजी सरस्वती तीर्थ को गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में इन्द्रविक्रिया नाम पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

पक्षिण ऊचुः

रामः पार्थे परां प्रीतिं ज्ञात्वा कृष्णस्य लाङ्गली।
चिन्तयामास बहुधा किं कृतं सुकृतं भवेत् ॥ १ ॥
कृष्णेन हि विना नाहं यास्ये दुर्य्योधनान्तिकम्।
पाण्डवान् वा समाश्रित्य कथं दुर्य्योधनं नृपम्॥ २ ॥
जामातरं तथा शिष्यं घातयिष्ये नरेश्वरम् ।
तस्मान्न पार्थं यास्यामि नापि दुर्य्योधनं नृपम्॥३ ॥
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना ।
कुरूणां पाण्डवानांच यावदन्ताय कल्पते ॥ ४ ॥
इत्यामन्त्र्य हृषीकेशं पार्थ-दुर्य्योधनावपि ।
जगाम द्वारकां शौरिः स्वसैन्यपरिवारितः ॥ ५ ॥
गत्वा द्वारवतीं रामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ।
स्वगन्तव्येषु तीर्थेषु पपौ पानं हलायुधः ॥ ६ ॥
पीतपानो जगामाथ रैवतोद्यानमृद्धिमत् ।
हस्ते गृहीत्वा समदां रेवतीमप्सरोपमाम् ॥ ७ ॥
स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययौ मत्तः पदा स्खलन्।
ददर्श च वनं वीरो रमणीयमनुत्तमम् ॥ ८ ॥
सर्व्वर्त्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ।
पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्वलमहावनम् ॥ ६॥
स शृण्वन् प्रीतिजननान् बहून् मदकलान् शुभान्।
श्रोत्ररम्यान् सुमधुरान् शब्दान् खगमुखेरितान् १०॥
सर्व्वर्त्तुफलभाराढ्यान् सर्व्वर्त्तुकुसुमोज्ज्वलान्।
अपश्यत् पादपांस्तत्र विहगैरनुनादि तान् ॥११॥
आम्रानाम्रातकान् भव्यान् नारिकेलान् सतिन्दुकान्।
आविल्वकांस्तथा जीरान् दाड़िमान्बीजपूरकान्१२॥
पनसान् लकुचान् मोचान् नीपांश्चातिमनोहरान्।
पारावतांश्च कङ्कोलान् नलिनानम्लवेतसान् ॥१३॥
भल्लातकानामलकांस्तिन्दूकांश्च महाफलान् ।
इंगुदान् करमर्दांश्च हरीतक-विभीतकान् ॥१४॥
एतानन्यांश्च स तरून् ददर्श यदुनन्दनः ।
तथैवाशोक-पुन्नाग-केतकी-वकुलानथ ॥१५॥
चम्पकान् सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान् समालतीन् ।

पक्षी बोले—

बलरामजी श्रीकृष्ण और अर्जुन में परम प्रीति को जानकर यह सोचने लगे कि मुझे कौनसा काम ऐसा करना चाहिये जिससे पुण्य हो ॥ १ ॥ कृष्ण के बिना दुर्योधन की तरफ जाना उचित नहीं। इसी प्रकार राजा दुर्योधन को छोड़कर पाण्डवों की ओर जाना अच्छा नहीं है ॥ २ ॥ एक ओर जामाता है और दूसरी ओर शिष्य और राजा का वध। इसलिये मैं न तो अर्जुन की ओर जाऊँगा और न दुर्योधन की ओर ॥ ३ ॥ इसलिये जब तक कौरवों और पाण्डवों का युद्ध समाप्त हो तब तक तीर्थाटन कर अपनी आत्मा को पवित्र करूँगा ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण, अर्जुन और दुर्योधन से मिलकर अपनी सेना सहित बलदेवजी द्वारकापुरी को गये ॥ ५ ॥ बलदेवजी ने द्वारकापुरी में जिसमें हृष्ट पुष्ट और सुखी मनुष्य रहते हैं जा कर मदिरा पान किया ॥ ६ ॥ मदिरा पान करके वे रैवत वनमें गये और वहाँ जाकर उन्होंने मदोन्मत्त रेवतीको जो अप्सराके तुल्यथी हाथसे पकड़लिया॥ वे वीर बलरामजी स्त्रियों के मध्य में स्थित होकर तथा उन्मत्त हो डिगमिगाते हुए पाँवों से । और उन्होंने रमणीक एवं उत्तम वनको देखा ॥८॥ वह महावन सब ऋतुओं के फल, पुष्प, शाखा, मृग समूह तथा पवित्र कमल और सुन्दर बावलियों से युक्त था ॥ ६ ॥ वहाँ पक्षियों के मुख से उच्चारित मधुर शब्द जो सुन्दर, शुभ, मदोन्मत्त करने वाले और कर्ण-मधुर थे सुने ॥१०॥ (उन्होंने) सब ऋतु के स्वच्छ फूलों और फलों से लदा ... और पशु पक्षियों के शब्द से निनादित वन को देखा ॥ ११ ॥ सुन्दर आम, आमरा, नारियल तिंदु, बेल, अञ्जीर, अनार और नीबू ॥ १२ ॥ कटहल, बड़हल, मोचरस, कदम और ... मनोहर पारावत, कङ्कोल, नलिन और ... ॥ १३ ॥ भल्लातक, तिंदुक और महाफल इंगु... करमर्द, हर्र और बहेड़े ॥१४॥ यदुनन्दन बलदेवजी ने इनको तथा इसी प्रकार अन्य वृक्ष जैसे ... पुन्नाग, केतकी और मौलसिरी को भी देखा ॥१५॥ चम्पा, सप्तपर्ण, कनेर, मालती, पारजात, कोवि...

पारिजातान् कोविदारान् मन्दारान् वदरांस्तथा१६॥
पाटलान् पुष्पितान् रम्यान् देवदारुद्रुमांस्तथा।
शालांस्तालांस्तमालांश्चकिंशुकान्वञ्जुलान्वरान्१७॥
चकोरैः शातपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः।
कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥१८॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः।
श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥१६॥
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥२०॥
कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥२१॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्म्मैर्मद्गुभिरेव च।
एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः२२॥
क्रमेणेत्थं वनं शौरिर्वीक्षमाणो मनोरमम्।
जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥२३॥
स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान्।
कौशिकान् भार्गवांश्चैव भारद्वाजान् सगौतमान्२४॥
विविधेषु च सम्भूतान् वंशेषु द्विजसत्तमान्।
कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान् महत्सु च ॥२५॥
कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च वृषीषु च।
सूतञ्च तेषां मध्यस्थं कथयानं कथाः शुभाः ॥२६॥
पौराणिकीः सुरर्षीणामाद्यानां चारिताश्रयाः।
दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्व्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥२७॥
मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः।
पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् ॥२८॥
ततः क्रोधसमाविष्टो हली सूतं महाबलः।
निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः ॥२६॥
अध्यास्यति पदं ब्राह्मं तस्मिन् सूते निपातिते।
निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वे वनात् कृष्णाजिनांबराः३०
अवधूतं तथात्मानं मन्यमानो हलायुधः।
चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥३१॥
ब्राह्मं स्थानं गतो ह्येष यत् सूतो विनिपातितः।
तथाहीमे द्विजाः सर्व्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः ॥३२॥
शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवासुखावहः।

मंदार और बेर ॥ १६ ॥ पाटल आदि सुन्दर पुष्प तथा देवदारु आदि वृक्ष, शाल, ताल, तमाल, परास व सुन्दर वञ्जुल ॥ १७ ॥ चकोर, शातपत्र, भौंरे, तोते, कोयल, मैंना, हारीत तथा जीवजीवक ॥ १८ ॥ तथा पपीहा और अन्य अनेक प्रकार के पक्षी अपने प्रिय पुत्रों सहित बैठे हुए बड़ी श्रुति मधुर और मीठी वाणी बोल रहे थे ॥ १६ ॥ बड़े स्वच्छ जल वाले मनोहर तालाब थे जिनमें सुन्दर स्वच्छ कुमुदिनी व लाल और नीले कमल खिल रहे थे ॥ २० ॥ जिनमें कल्हार और कमल इत्यादि चारों तरफ खिल रहे थे। तथा कदम्ब, चकवा और बतख ॥ २१ ॥ और कारण्ड, प्लव, हंस, कछुओं मछलियों तथा और भी अनेक जलचरों से तालाब चारों ओर से पूर्ण थे ॥ २२ ॥ बलरामजी क्रम से इस सुन्दर वन को देखते हुए स्त्रियों के साथ एक अत्यन्त उत्तम लतागृह में गये ॥ २३ ॥ उन्होंने वहाँ पर वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत कौशिक, भार्गव, भारद्वाज और गौतम वंशी ब्राह्मणों को देखा ॥ २४ ॥ और भी अनेक वंशीय श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ बैठे हुए कथा सुन रहे थे ॥ २५ ॥ मृगछालाओं, कुशाओं अथवा घास-पात पर बैठे हुए उन ब्राह्मणों के बीच में स्थित सूतजी शुभ कथा सुना रहे थे ॥ २६ ॥ वे कथायें पुराण-संबन्धी तथा प्राचीन देवताओं और ऋषियों के चरित्र सम्बन्धी थीं। वे सब ब्राह्मण मदिरा के नशे में चूर बलरामजी को देख कर ॥ २७ ॥ और यह समझ कर कि यह मतवाले हो रहे हैं, शीघ्र ही उनके स्वागतार्थ उठ बैठे परन्तु सूतजी न उठे॥२८॥ सूत के इस प्रकार अवहेलना करने पर महाबली बलदेवजी ने जिनकी आँखें क्रोध से बिगड़ रहीं थीं सूत को राक्षस की भांति मार डाला ॥ २६ ॥ सूत के मरने को ब्रह्म-हत्या समझ कर वे ऋषि सब अपने-अपने मृगचर्म को लेकर वनको छोड़ कर चले गये ॥ ३० ॥ बलरामजी अपने उन्मादको समझ कर सोचने लगे कि मैंने यह बड़ा पाप किया ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण के स्थान में आकर हमने सूतजी का वध किया। इसी कारण से ये सब मुनि लोग मुझको देखकर अर्थात् मुझसे घृणा करके इस वन को छोड़ कर चले गये हैं ॥ ३२ ॥ मेरे शरीर में से मृतात्मा की सी दुर्गन्धि आती है,

आत्मानञ्चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम्॥३३॥
धिगमर्षं तथा मद्यमतिमानमभीरुताम् ।
यैराविष्टेन सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥३४॥
तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम् ।
स्वकर्म्मख्यापनं कुर्व्वन् प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५॥
अथ येयं समारब्धा तीर्थयात्रा मयाधुना ।
एतामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमां सरस्वतीम् ॥३६॥
अतो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमां सरस्वतीम् ।
ततः परं शृणुध्वेमं पाण्डवेयकथाश्रयम् ॥३७॥

इस कुत्सित ब्रह्महत्या के पापको क्या करूँ?॥ ३३॥ मेरे क्रोध, मदिरा पान, अभिमान और कायरता को धिक्कार है कि जिसके आवेश में मैंने यह महान् पाप किया॥ ३४॥ अब इस पाप के नाश करने को बारह वर्ष तक व्रत तथा उत्तम प्रायश्चित्त करूँगा॥ ३५॥ अब मैं तीर्थ यात्रा करूँगा और पहिले प्रतिलोमा सरस्वती तीर्थ पर जाकर अपनी आत्मा को पवित्र करूँगा॥ ३६॥ अतः बलरामजी प्रतिलोमा अर्थात् सरस्वती तीर्थको गये। अब पांडवों के पुत्रों की कथा को सुनो॥३७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में बलदेव ब्रह्महत्या कथन नाम छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

पक्षिण ऊचुः

हरिश्चन्द्रेति राजर्षिरासीत् त्रेतायुगे पुरा ।
धर्म्मात्मा पृथिवीपालः प्रोल्लसत्कीर्त्तिरुत्तमः ॥ १ ॥
न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् ।
नाधर्म्मरुचयः पौरास्तस्मिन् शासति पार्थिवे ॥ २ ॥
बभूवुर्न तथोन्मत्ता धन-वीर्य्य-तपोमदैः ।
नाजायन्त स्त्रियश्चैव काश्चिदप्राप्तयौवनाः ॥ ३
स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन् मृगम् ।
शुश्राव शब्दमसकृत् त्रायस्वेति च योषिताम् ॥ ४ ॥
स विहाय मृगं राजा मा भैषीरित्यभाषत ।
मयि शासति दुर्म्मेधाः कोऽयमन्यायवृत्तिमान्॥५॥
तत्क्रन्दितानुसारी च सर्व्वारम्भाविघातकृत् ।
एतस्मिन्नन्तरे रौद्रो विघ्नराट् समचिन्तयत् ॥ ६ ॥
विश्वामित्रोऽयमतुलं तप आस्थाय वीर्य्यवान्।
प्रागसिद्धा भवादीनां विद्याः साधयति व्रती ॥ ७ ॥
साध्यमानाः क्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना ।
ता वै भयार्त्ताः क्रन्दन्ति कथं कार्यमिदं मया ॥ ८ ॥
तेजस्वी कौशिकश्रेष्ठो वयमस्य सुदुर्बलाः ।
क्रोशन्त्येतास्तथा भीता दुष्पारं प्रतिभाति मे ॥ ९ ॥

धर्मपक्षी लोग बोले—

पूर्व काल में त्रेता युग में राजर्षि हरिश्चन्द्र राज्य करते थे। वे धर्मात्मा, पृथ्वी पालक, तथा उत्तम कीर्ति वाले थे॥ १॥ उनके शासन में कभी अकाल, रोग और महामारी आदि नहीं हुए। उनकी प्रजा सब धर्मात्मा थी॥ २॥ उनके राज्य में न तो उन्मत्त थे और न किसी को धन, बल और तप का अभिमान था। उनके राज्य में स्त्रियाँ कभी वृद्धा प्रतीत नहीं होतीं थीं॥ ३॥ एक दफा वह राजा मृग का पीछा करता हुआ वनमें निकल गया। वहाँ स्त्रियों के विलाप का शब्द सुना कि "बचाओ, बचाओ"॥४॥ मृग को छोड़ कर राजा ने कहा, "डरो मत, मेरे शासनमें अन्यायमें प्रवृत्त ऐसा दुर्बुद्धि कौन है?"॥ ५॥ उस रोने की आवाज़ का पीछा करता हुआ राजा चला। इसी अवसर पर सब अच्छे काम के आरम्भमें कुठाराघात करने वाला, विघ्नोंका राजा रौद्र यह सोचने लगा॥ ६॥ यह बलवान् व्रती विश्वामित्रजी अतुल तपस्या करके उस विद्या को सिद्ध करना चाहते हैं जो पहिले शंभु आदि से भी न हो सकी॥ ७॥ ये क्षमा और मौन को धारण किये हुए संयम चित्त हो साधन कर रहे हैं। विद्यायें इनके भय से आर्त होकर रोती हैं। अब मुझे क्या करना चाहिये?॥ ८॥ विश्वामित्रजी अति तेजस्वी हैं और हम बड़ी निर्बल हैं, इस तरह डरकर विद्याएँ रोती हैं। मुझे कार्य बड़ा कठिन मालूमहोता है॥९॥

अथवायं नृपः प्राप्तो माभैरिति वदन् मुहुः ।
इममेव प्रविश्याशु साधयिष्ये यथेप्सितम् ॥१०॥
इति संचिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः ।
तेनाविष्टो नृपः कोपादिदं वचनमब्रवीत् ॥११॥
कोऽयं बध्नाति वस्त्रान्ते पावकं पापकृन्नरः ।
बलोष्णतेजसा दीप्ते मयि पत्यावुपस्थिते ॥१२॥
कोऽद्य मत्कार्मुकाक्षेप-विदीपितदिगन्तरैः ।
शरैर्विभिन्नसर्व्वाङ्गो दीर्घनिद्रां प्रवेक्ष्यति ॥१३॥
विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वा तन्नृपतेर्वचः ।
क्रुद्धे चर्षिवरे तस्मिन् नेशुर्विद्याः क्षणेन ताः॥१४॥
स चापि राजा तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं तपोनिधिम् ।
भीतः प्रावेपतात्यर्थं सहसाश्वत्थपर्णवत् ॥१५॥
स दुरात्मन्निति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
ततः स राजा विनयात् प्रणिपत्याभ्यभाषत ॥१६॥
भगवन्नेष धर्म्मो मे नापराधो मम प्रभो ।
न क्रोद्धुमर्हसि मुने निजधर्म्मरतस्य मे ॥१७॥
दातव्यं रक्षितव्यंच धर्म्मज्ञेन महीक्षिता ।
चापश्चोद्यम्य योद्धव्यं धर्म्मशास्त्रानुसारतः ॥१८॥

विश्वामित्र उवाच

दातव्यं कस्य के रक्ष्याः कैर्योद्धव्यञ्च ते नृप ।
क्षिप्रमेतत् समाचक्ष्व यद्यधर्म्मभयं तव ॥१९॥

हरिश्चन्द्र उवाच

दातव्यं विप्रमुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः ।
रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्त्तव्यं परिपन्थिभिः ॥२०॥

विश्वामित्र उवाच

यदि राजा भवान् सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ।
निर्वेष्टुकामो विप्रोऽहं दीयतामिष्टदक्षिणा ॥२१॥

पक्षिण ऊचुः

एतद्राजा वचः श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने प्राह च कौशिकम् ॥२२॥

हरिश्चन्द्र उवाच

उच्यतां भगवन् यत् ते दातव्यमविशङ्कितम् ।

अथवा इस राजा में जो यह कहता हुआ आया है कि 'मत डरो' प्रवेश कर अपने कार्य का इच्छानुसार शीघ्र साधन करूँगा ॥ १० ॥ विघ्नराज रौद्र यह विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र के शरीर में प्रवेश कर गये और राजाभी उनसे प्रभावित होकर क्रोधयुक्त यह वचन बोले ॥ ११ ॥ यह पापी मनुष्य कौन है जो वस्त्र की छोर से अग्नि को मारता है, बलवान् और तेजयुक्त मेरे आने पर भी यह पाप कर्म करता है ॥१२॥ अतः अब मेरे धनुष के निकले हुए बाणों से तेरा शरीर भिन्न भिन्न दिशाओं को प्राप्त हो दीर्घ निद्रा में सो जावेगा ॥१३॥ उस राजा के यह वचन सुनकर विश्वामित्र बड़े क्रोधमें आये और ऋषि के क्रोधित होने पर वे विद्याएँ क्षणभर में उनके शरीर से निकल गईं ॥ १४ ॥ वह राजा हरिश्चन्द्र भी तपस्वी विश्वामित्र को देखकर डरसे सहसा पीपल के पत्ते के समान काँपने लगा॥ १५॥ ऋषि विश्वामित्र ने राजा से कहा, "तू दुरात्मा है खड़ा रह" फिर राजा हरिश्चन्द्र ने अत्यन्त विनय पूर्वक प्रणाम कर उनसे कहा ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! यह मेरा धर्म है, इसमें मेरा अपराध नहीं है । हे मुने ! अपने धर्म में लगे हुए मुझ पर आप क्रोध न करें ॥ १७ ॥ धर्मात्मा राजा का यह धर्म है कि दान दे और रक्षा करे । धर्मशास्त्र के अनुसार धनुषको धारण कर युद्ध करना चाहिये ॥ १८ ॥

विश्वामित्रजी बोले—

हे राजन् ! किसको दान देना चाहिये, किसकी रक्षा करनी चाहिये और किसके साथ युद्ध करना चाहिये ? यदि तुझको अधर्म का डर है तो इसका शीघ्र उत्तर दे ॥१९ ॥

राजा हरिश्चन्द्र बोले—

श्रेष्ठ विप्रों को और भूखों को दान दियाजाता है, डरे हुए लोगों की रक्षा की जाती है, तथा वैरियों के साथ युद्ध किया जाता है ॥२०॥

विश्वामित्रजी बोले—

यदि आप राजा हैं और सम्यक् राज-धर्म का पालन करते हैं तो मैं ब्राह्मण हूँ और इच्छा करताहूँ मुझको अभीष्ट दान दीजिये ॥२१॥

पक्षी बोले—

राजा यह वचन सुनकर मन में बहुत प्रसन्न हुआ और अपना दूसरा जन्म हुआ ऐसा समझ कर विश्वामित्र से बोला ॥ २२ ॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भगवन् ! आपको जो कुछ चाहिये वह

दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥२३॥
हिरण्यं वा सुवर्णं वा पुत्रः पत्नी कलेवरम् ।
प्राणा राज्यं पुरं लक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ॥२४॥

विश्वामित्र उवाच

राजन् प्रतिगृहीतोऽयं यस्ते दत्तः प्रतिग्रहः ।
प्रयच्छ प्रथमं तावद्दक्षिणां राजसूयिकीम् ॥२५॥

राजोवाच

ब्रह्मंस्तामपि दास्यामि दक्षिणां भवतो ह्यहम् ।
व्रियतां द्विजशार्दूल यस्तवेष्टः प्रतिग्रहः ॥२६॥

विश्वामित्र उवाच

ससागरां धरामेतां सभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ।
राज्यंच सकलं वीर रथाश्व-गजसंकुलम् ॥२७॥
कोष्ठागारंच कोषंच यच्चान्यद्विद्यते तव ।
विना भार्य्याञ्च पुत्रंच शरीरंच तवानघ ॥२८॥
धर्म्मंच सर्व्वधर्म्मज्ञ यो यान्तमनुगच्छति ।
बहुना वा किमुक्तेन सर्व्वमेतत् प्रदीयताम् ॥२९॥

पक्षिण ऊचुः

प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः ।
तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥३०॥

विश्वामित्र उवाच

सर्व्वस्वं यदि मे दत्तं राज्यमुर्व्वी बलं धनम् ।
प्रभुत्वं कस्य राजर्षे राज्यस्थे तापसे मयि ॥३१॥

हरिश्चन्द्र उवाच

यस्मिन्नपि मयाकाले ब्रह्मन्दत्ता वसुन्धरा ।
तस्मिन्नपि भवान् स्वामी किमुताद्य महीपतिः ॥३२॥

विश्वामित्र उवाच

यदि राजंस्त्वया दत्ता मम सर्व्वा वसुन्धरा ।
यत्र मे विषये स्वाम्यं तस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ॥३३॥
श्रोणीसूत्रादिसकलं मुक्त्वा भूषणसंग्रहम् ।
तरुवल्कलमाबध्य सह पत्न्या सुतेन च ॥३४॥

पक्षिण ऊचुः

तथेति चोक्त्वा कृत्वा च राजा गन्तुं प्रचक्रमे ।
स्वपत्न्या शैब्यया सार्द्धं बालकेनात्मजेन च ॥३५॥
व्रजतः स ततो रुद्ध्वा पन्थानं प्राह तं नृपम् ।

निःशङ्क होकर कहिये । यदि कोई दुर्लभ वस्तु हो तो उसको भी देने को तैयार हूँ ॥ २३ ॥ सुवर्ण पुत्र, स्त्री, देह, प्राण, राज्य, नगर, लक्ष्मी जिस किसी चीज़ की इच्छा हो ॥ २४ ॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन् ! यह जो आपने दिया सो मैंने लिया परन्तु पहिले राजसूययज्ञकी दक्षिणा मुझे दो ॥२५॥

राजा ने कहा—

हे ब्रह्मन् ! आपको वह दक्षिणा भी दूँगा जो आपने कही है । हे विप्रवर ! अब जो आपको प्रिय हो वह दान मांगिये ॥ २६ ॥

विश्वामित्र बोले—

समुद्र, पृथ्वी, पर्वत, ग्राम और नगर तथा सेना, रथ, अश्व, हाथीसे युक्त सम्पूर्ण राज्य ॥२७॥ और हे निष्पाप ! कोष्ठागार, ख़ज़ाना तथा अपनी स्त्री, पुत्र और अपने शरीर को छोड़कर जो कुछ तुम्हारे पास है वह सब ॥२८॥ अगर तुम धर्मात्मा हो और धर्म को जानते हो तो अधिक कहने से क्या जो कुछ मैंने कहा है वह सब मुझे दो ॥२९॥

पक्षी बोले—

राजा ने अति प्रसन्न चित्त होकर उस ऋषिके यह वचन सुने और हाथ जोड़ कर कहा कि ऐसा ही होगा ॥ ३० ॥

विश्वामित्र बोले—

यदि राज्य, पृथ्वी, सेना, धन आदि सर्वस्व मुझे दे दिया है तो आपका इस पर कोई प्रभुत्व नहींहै और अब आप इस राज्यमें क्यों ठहरतेहो?॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे ब्रह्मन् ! जिस समय से इस पृथ्वी का राज्य आपको दिया उस समय से आपही इसके स्वामी हैं । मैं अब राजा नहीं हूँ ॥३२॥

विश्वामित्र बोले—

यदि सब राज्य मुझे दे दिया तो पृथ्वी पर मेरा स्वामित्व होगया । अतः अब आप यहाँ से निकलिये ॥३३॥ श्रोणी सूत्र, कपड़ा और ज़ेवर सब यहाँ उतार कर वल्कल वस्त्र धारण करके अपनी स्त्री और पुत्र के साथ चले जाइये ॥ ३४ ॥

पक्षी बोले—

विश्वामित्र मुनिका यह कहना भी करके राजा हरिश्चन्द्र अपनी स्त्री शैब्या और पुत्र को साथ लेकर चले ॥ ३५ ॥ जाते हुए राजा की राह रोक कर विश्वामित्र ने राजा से कहा—"राजसूय यज्ञ

ह यास्यसीत्यदत्त्वा मे दक्षिणां राजसूयिकीम्॥३६॥

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् राज्यमेतत् ते दत्तं निहतकण्टकम् ।
अवशिष्टमिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम ॥३७॥

विश्वामित्र उवाच

तथापि खलु दातव्या त्वया मे यज्ञदक्षिणा ।
विशेषतो ब्राह्मणानां हन्त्यदत्तं प्रतिश्रुतम् ॥३८॥
यावत् तोषो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप ।
तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयिकी ॥३९॥
प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यश्चाततायिभिः ।
रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक् प्रतिश्रुतम् ४०॥

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेण ते।
प्रसादं कुरु विप्रर्षे सद्भावमनुचिन्त्य च ॥४१॥

विश्वामित्र उवाच

किम्प्रमाणो मया कालः प्रतीक्ष्यस्ते जनाधिप ।
शीघ्रमाचक्ष्व शापाग्निरन्यथा त्वां प्रधक्ष्यति ॥४२॥

हरिश्चन्द्र उवाच

मासेन तव विप्रर्षे प्रदास्ये दक्षिणाधनम् ।
साम्प्रतं नास्ति मे वित्तमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥४३॥

विश्वामित्र उवाच

गच्छ गच्छ नृपश्रेष्ठ स्वधर्म्ममनुपालय ।
शिवश्च तेऽध्वा भवतु मा सन्तु परिपन्थिनः ॥४४॥

पक्षिण ऊचुः

अनुज्ञातश्च गच्छेति जगाम वसुधाधिपः ।
पद्भ्यामनुचिता गन्तुमन्वगच्छत तं प्रिया ॥४५॥
तं सभार्य्यं नृपश्रेष्ठं निर्यान्तं ससुतं पुरात् ।
दृष्ट्वा प्रचुक्रुशुः पौरा राज्ञश्चैवानुयायिनः ॥४६॥
हा नाथ किं जहास्यस्मान् नित्यार्त्तिपरिपीड़ितान्।
त्वं धर्म्मतत्परो राजन् पौरानुग्रहकृत् तथा ॥४७॥
नयास्मानपि राजर्षे यदि धर्म्ममवेक्षसे ।
मुहूर्त्तं तिष्ठ राजेन्द्र भवतो मुखपङ्कजम् ॥४८

मेरी दक्षिणा दिये बिना कहाँ जाते हो ?" ॥ ३६ ॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भगवन् ! मैंने निष्कंटक राज्य तो आपको दे दिया। अब मेरे पास ये तीन देहही बचे हैं॥३७॥

विश्वामित्र बोले—

तौ भी तुमको मेरी यज्ञ-दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये। विशेष कर ब्राह्मणों को वायदा करके न देने से पुण्य का क्षय होता है॥३८॥ जब तक राजसूय यज्ञ में ब्राह्मणों की संतुष्टि नहीं होती है तब तक राजसूय यज्ञ की दक्षिणा देनी चाहिये ॥ ३९ ॥ प्रथम तो तुमने ही कहा था कि मैं ब्राह्मणों को दान देता हूँ, आततायियों से युद्ध करता हूँ तथा आर्तजनों की रक्षा करता हूँ ॥४०॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भगवन् ! इससमय मेरेपास कुछ नहींहै,कुछ काल बीतने पर दूँगा। हे ब्रह्मर्षि ! मेरा सद्भाव विचार कर मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥४१ ॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन् ! वह अवधि कौनसी है उसे प्रत्यक्ष कर शीघ्र बताओ, अन्यथा मेरी शापाग्नि तुमको भस्म कर देगी ॥ ४२ ॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे ब्रह्मर्षि ! आपकी दक्षिणा एक महीने में दूँगा। इस समय मेरे पास धन नहीं हैं, अब आप मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ४३ ॥

विश्वामित्र बोले

हे नृप श्रेष्ठ ! जाओ, जाओ, अपने धर्म का पालन करो। आपका मार्ग में कल्याण हो तथा आपके अमित्र न हों ॥ ४४ ॥

पक्षी बोले—

इस प्रकार विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राजा हरिश्चन्द्र पैदल रवाना हुए और उनके पीछे-पीछे उनकी रानी जाती थी ॥ ४५ ॥ उस राजा को रानी और पुत्र के साथ नगर से बाहर निकल कर जाते हुए देखकर राजा के अनुयायी और पुरवासी लोग दौड़े ॥ ४६ ॥ और बड़े दुःखित होकर कहने लगे-"हे नाथ ! हम लोगों को आप क्यों छोड़ कर जाते हो ? हे राजन् ! आप बड़े धर्मात्मा हैं तथा पुरवासियों पर सदा अनुग्रह रखते हो" ॥ ४७ ॥ हे राजर्षि ! यदि धर्म का विचार करके आप न ठहरें तो हे राजन् ! एक क्षण तो ठहरिये जिससे हम आपके कमलरूपी मुख का ॥ ४८ ॥ रसास्वादन

पिबामो नेत्रभ्रमरैः कदा द्रक्ष्यामहे पुनः ।
यस्य प्रयातस्य पुरो यान्ति पृष्ठे च पार्थिवाः॥४९॥
तस्यानुयाति भार्य्येयं गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
यस्य भृत्याः प्रयातस्य यान्त्यग्रे कुञ्जरस्थिताः ५०॥
स एष पद्भ्यां राजेन्द्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति ।
हा राजन् सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वचमुन्नसम् ॥५१॥
पथि पांशुपरिक्लिष्टं मुखं कीदृग्भविष्यति ।
तिष्ठ तिष्ठ नृपश्रेष्ठ स्वधर्म्ममनुपालय ॥५२॥
आनृशंस्यं परो धर्म्मः क्षत्रियाणां विशेषतः ।
किं दारैः किं सुतैर्नाथ धनैर्धान्यैरथापि वा ॥५३॥
सर्व्वमेतत् परित्यज्य छायाभूता वयं तव ।
हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन् किं जहासि नः ५४
यत्र त्वं तत्र हि वयं तत् सुखं यत्र वै भवान्।
नगरं तद्भवान् यत्र स स्वर्गो यत्र नो नृपः ॥५५॥
इति पौरवचः श्रुत्वा राजा शोकपरिप्लुतः ।
अतिष्ठत् स तदा मार्गे तेषामेवानुकम्पया ॥५६॥
विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुलीकृतम् ।
रोषामर्षविवृत्ताक्षः समागम्य वचोऽब्रवीत् ॥५७॥
धिक् त्वां दुष्टसमाचारमनृतं जिह्मभाषणम् ।
मम राज्यञ्च दत्त्वा यः पुनः माक्रष्टुमिच्छसि ५८॥
इत्युक्तः परुषं तेन गच्छामीति सवेपथुः ।
ब्रुवन्नेवं ययौ शीघ्रमाकर्षन् दयितां करे ॥५९॥
कर्षतस्तां ततो भार्य्यां सुकुमारीं श्रमातुराम् ।
सहसा दण्डकाष्ठेन ताड़यामास कौशिकः ॥६०॥
तां तथा ताड़ितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
गच्छामीत्याह दुःखार्त्तो नान्यत् किंचिदुदाहरत्६१॥
अथ विश्वे तदा देवाः पंच प्राहुः कृपालवः ।
विश्वामित्रः सुपापोऽयं लोकान् कान् समवाप्स्यति६२
येनायं यज्वनां श्रेष्ठः स्वराज्यादवरोपितः ।
कस्य वा श्रद्धया पूतं सुतं सोमं महाध्वरे ।
पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरःसरम् ६३॥

पक्षिण ऊचुः

इति तेषां वचः श्रुत्वा कौशिकोऽतिरुषान्वितः।

अपने भ्रमर रूपी नेत्रों को करावें। आपको फिर कब देखेंगे ? पहिले जिसके पीछे-पीछे राजा लोग चलते थे ॥ ४९ ॥ अब उनके पीछे बालकको लेकर केवल भार्या ही चल रही है। जिसके आगे पहिले हाथी पर बैठकर सेवकगण चलते थे, वे राजा हरिश्चन्द्र अब पैदल चलते हैं। हा राजन्! आप और आपकी स्त्री और बालक कोमल हैं ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ मार्ग की गर्द जब मुख पर पड़ेगी तब आपकी कैसी दशा होगी ? हे महाराज ! आप यहीं ठहरिये और अपने (राजोचित) धर्म का पालन करिये ॥ ५२ ॥ दया करना परम धर्म है और विशेष कर क्षत्रियों का। हे नाथ! स्त्री, पुत्र, रथ, धन, धान्य से क्या ? ॥५३ ॥ हम इन सबको त्याग कर आपकी छाया के समान आपके साथ रहेंगे। हे नाथ ! हे महाराज ! हे स्वामिन् ! हमको आप क्यों छोड़ते हैं ॥ ५४ ॥ जहाँ आप होंगे वहाँही हम होंगे, हमको सुख वहाँ ही है जहाँ आप हैं। जहाँ आप हैं वहीं नगर और वहीं स्वर्ग है ॥ ५५ ॥ प्रजा जनों का यह वचन सुनकर राजा शोक से पीड़ित हुए तथा उनके ऊपर दया करके मार्ग में उस समय ठहर गये ॥ ५६ ॥ विश्वामित्र भी उनको प्रजाजनों के प्रेम में विह्वल देखकर क्रोध से आँखें बदल कर वहाँ आये और बोले ॥ ५७ ॥ "तुमको धिक्कार है, तुम्हारा विचार दुष्टहै और तुम मिथ्याभाषीहो, तुम मुझको राज्य देकर अब उसे वापिस लेना चाहते हो ॥५८ ॥ विश्वामित्रके रोष भरे वचन कहने पर राजा ने काँपते हुए कहा कि 'जाता हूँ।' और शीघ्र अपनी स्त्री का हाथ खींचकर चलने लगे ॥ ५९ ॥ श्रम से थकित, सुकुमारी, रानी को जिसका हाथ कि राजा ने खींचा था, विश्वामित्रने सहसा काठ के डंडे से मारा ॥ ६० उसको इस प्रकार डंडे से पिटी हुई देखकर हरिश्चन्द्र दुःख से आर्त होते हुए भी कुछ न बोले केवल यही कहा कि 'जाता हूँ' ॥ ६१ ॥ इसके कृपालु पाँचों विश्वदेव राजा हरिश्चन्द्रकी वह देखकर विश्वामित्र के पास आकर बोले-"हे विश्वामित्रजी ! यह पाप है, आप ऐसा क्यों करते हैं ? ॥ ६२ ॥ ये राजा यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ है तथा इसने अपना राज्य आपको दिया है। आपने क्या यज्ञमें श्रद्धा पूर्वक सोमरस नहीं पिया ? हम लोग आनन्द पूर्वक सोमरस पीकर आरहे हैं" ॥ ६३ ॥

पक्षी बोले—

उनके यह वचन सुनकर विश्वामित्र

शशाप तान् मनुष्यत्वं सर्व्वे यूयमवाप्स्यथ ॥६४॥
प्रसादितश्च तैः प्राह पुनरेव महामुनिः ।
मानुषत्वेऽपि भवतां भवित्री नैव सन्ततिः ॥६५॥
न दारसंग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः ।
कामक्रोधविनिर्म्मुक्ता भविष्यथ सुराः पुनः ॥६६॥
ततोऽवतेरुरंशैः स्वैर्देवास्ते कुरुवेश्मनि ।
द्रौपदीगर्भसम्भूताः पंच वै पाण्डुनन्दनाः ॥६७॥
एतस्मात् कारणात् पंच पाण्डवेया महारथाः
न दारसंग्रहं प्राप्ताः शापात् तस्य महामुनेः ॥६८॥
एतत् ते सर्व्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम् ।
प्रश्नं चतुष्टयं गीतं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९॥

क्रोधित हुए और उनको शाप दिया कि तुम सब मनुष्य हो जाओ ॥ ६४ ॥ उनके विनय करने पर प्रसन्न होकर महामुनि विश्वामित्रजी ने कहा कि मनुष्य तो तुम अवश्य होगे परन्तु तुम्हारे सन्तति न होगी ॥६५॥ तुम स्त्री के संसर्ग से बचे रहोगे तथा मत्सरता और काम, क्रोध से मुक्त होते हुए पुनः देवता हो जाओगे ॥ ६६ ॥ वही पांचों विश्वदेव कौरव कुल में द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न पाँचों पाण्डव-पुत्र हुए ॥ ६७ ॥ इसी कारण से वे पाँचों महारथी पाण्डवपुत्र अविवाहित दशा में ही महामुनि विश्वामित्रके शापके कारण देवलोक को प्राप्त हुए॥६८॥ हे जैमिनिजी! इस प्रकार आपसे पाण्डव पुत्रों की कथा कही और आपके चारों प्रश्नों का उत्तर दे दिया, अब और क्या सुनने की इच्छा है? ॥ ६९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में द्रौपदेयोत्पत्ति नाम सातवाँ अध्याय समाप्त

आठवां अध्याय

जैमिनिरुवाच
भवद्भिरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात् ।
महत् कौतूहलं मेऽस्ति हरिश्चन्द्र कथां प्रति ॥ १ ॥
अहो महात्मना तेन प्राप्तं कृच्छ्रमनुत्तमम् ।
कच्चित् सुखमनुप्राप्तं तादृगेव द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥

जैमिनि बोले—
जिस प्रकार मैंने प्रश्न किया था उसी प्रकार क्रम से आपने उत्तर दिया। परन्तु श्रीहरिश्चन्द्र की कथा में मुझे बड़ा कौतूहल हुआ ॥ १ ॥ हा! उन महात्मा ने बड़ा दुःख पाया। हे श्रेष्ठ पक्षियो! उन्होंने फिर कुछ सुख पाया या नहीं ॥ २ ॥

पक्षिण ऊचुः
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा स राजा प्रययौ शनैः।
शैव्ययानुगतो दुःखी भार्य्यया बालपुत्रया ॥ ३ ॥
स गत्वा वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम्।
नैषा मनुष्यभोग्येति शूलपाणेः परिग्रहः ॥ ४ ॥
जगाम पद्भ्यां दुःखार्त्तः सह पत्न्यानुकूलया।
पुरीप्रवेशे ददृशे विश्वामित्रमुपस्थितम् ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् ।
प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् ॥ ६ ॥
इमे प्राणाः सुतश्चायमियं पत्नी मुने मम ।
येन ते कृत्यमस्त्याशु तद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥
यद्वान्यत् कार्य्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥

पक्षी बोले—
हे जैमिनिजी! विश्वामित्र के यह वचन सुन कर वह राजा दुःखी पत्नी शैव्या तथा पुत्र सहित धीरे-धीरे आगे चला ॥ ३ ॥ वह राजा दिव्य काशी पुरी को गया जो कि मनुष्य लोक में न होकर कैलाश परहै ॥४॥ दुःखसे आर्त अपनी अनुकूल स्त्री के साथ पैदल जाकर उसने नगर में प्रवेश कर देखा कि विश्वामित्र भी वहाँ मौजूदहैं ॥५॥ उनको वहाँ मौजूद हुआ देखकर हरिश्चन्द्र विनयपूर्वक हाथ जोड़कर महामुनि विश्वामित्र से बोले ॥ ६॥ ये मेरे प्राण पुत्र और स्त्री हैं। हे मुनि! इनमें से जिसको आप चाहें ले लीजिये ॥ ७ ॥ अथवा हमारे लिये जो कुछ आप आज्ञा करें वह हम करने को तैयार हैं ॥ ८ ॥

विश्वामित्र उवाच
पूर्णः स मासो राजर्षे दीयतां मम दक्षिणा ।

विश्वामित्रजी बोले—
हे राजर्षि! एक महीना व्यतीत होगया, मुझे

राजसूयनिमित्तं हि स्मर्य्यते स्ववचो यदि ॥ ६ ॥

दक्षिणा दीजिये। राजसूय की दक्षिणा के विषय में जो आपने वचन दिया था वह स्मरण है या नहीं ? ॥ ६ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्रह्मन्नद्यैव सम्पूर्णो मासोऽम्लानतपोधन ।

तिष्ठत्येतद्दिनार्द्धं यत् तत् प्रतीक्षस्व मा चिरम्॥१०॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे ब्रह्मन्! अभी सम्पूर्ण मास नहीं व्यतीत हुआ है। हे तपोधन! अभी आधा दिन बाक़ी है, इसलिये प्रतीक्षा कीजिये ॥१०॥

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः ।

शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रदास्यसि ॥११॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन्! ऐसा ही होगा। मैं फिर आऊँगा। अगर आज नहीं दोगे तो तुमको शाप दूँगा ॥११॥

पक्षिण ऊचुः

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाचिन्तयत् तदा।

कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥१२॥

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थः साम्प्रतं मम।

प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे नाहं यायामधः कथम् ॥१३॥

किमु प्राणान् विमुंचामि कां दिशं याम्यकिंचनः ।

यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् ॥१४॥

ब्रह्मस्वहृत् कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ।

अथवा प्रेष्यतां यास्ये वरमेवात्मविक्रयः ॥१५॥

पक्षी बोले -

यह कहकर विश्वामित्र चले गये तथा राजा सोचने लगे। कही हुई दक्षिणा मैं किस तरह से दूँगा ॥१२॥ मेरे मित्र कहाँ हैं? मेरा धन कहाँ है? यदि आज मैंने दक्षिणा न दी तो मुझे रौरव नर्क में जाना पड़ेगा ॥ १३ ॥ क्या मैं अपने प्राणों को त्याग दूँ, अथवा कहीं चला जाऊँ? अगर बिना दक्षिणा दिये मर जाऊँ तो ॥ १४ ॥ ब्राह्मण के स्वत्व को हरण करके पाप वश अधम कीट हो जाऊँगा। अथवा अपने को बेचकर दक्षिणा दे देना उत्तम है ॥१५॥

पक्षिण ऊचुः

राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम् ।

प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा ॥१६॥

त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय ।

श्मशानवद्वर्ज्जनीयो नरः सत्यवहिष्कृतः ॥१७॥

नातः परतरं धर्म्मं वदन्ति पुरुषस्य तु ।

यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम् ॥१८॥

अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।

भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥१६॥

सत्यमत्यन्तमुदितं धर्म्मशास्त्रेषु धीमताम् ।

तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम् ॥२०॥

सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयंच पार्थिवः ।

कृतिर्नाम च्युतः स्वर्गादसत्यवचनात् सकृत् ॥२१॥

राजन् जातमपत्यं मे इत्युक्त्वा प्ररुरोद ह ।

वाष्पाम्बुप्लुतनेत्रान्तामुवाचेदं महीपतिः ॥२२॥

पत्नी बोली—

राजा को व्याकुल, दीन और नीचे मुख किये हुए देखकर रानी ने रोते हुए रुंधे हुए कण्ठ से कहा ॥१६॥ हे महाराज! चिन्ता को छोड़कर ... का पालन करो। सत्यसे वहिष्कृत मनुष्य श्मशान की तरह वर्जनीय है ॥१७॥ अतएव हे पुरुषसिंह! पुरुष को अपने सत्य का पालन करने के समान परम धर्म दूसरा कोई नहीं है ॥१८॥ अग्निहोत्र, स्वाध्याय, तथा दानादिक सम्पूर्ण क्रियायें ... व्यक्ति की निष्फल हो जाती हैं जिसका कि व... मिथ्या होता है ॥ १६ ॥ धर्मशास्त्रों में बुद्धिमानों सत्य को मनुष्य के तारने के लिये अत्यन्त ... वताया है, उसी प्रकार झूँठ को मनुष्य का ... करानेमें अति निकृष्ट वताया है ॥२०॥ सात अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करने पर भी राजा ... वार असत्य भाषण करने से गिर जाता है ॥२१॥ हे राजन्! मेरे सन्तान हो चुकी है, इतना कह... रानी रुदन करने लगी। अपनी आँखों में आँसू भरकर महाराज हरिश्चन्द्र अपनी स्त्रीसे बोले॥२२॥

हरिश्चन्द्र उवाच

विमुंच भद्रे सन्तापमयं तिष्ठति वालकः ।

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भद्रे! इस सन्ताप को छोड़ो, यहाँ ...

उच्यतां वक्तुकामासि यद्वा त्वं गजगामिनि॥२३॥

पत्न्युवाच

राजन् जातमपत्यं मे सतां पुत्रफलाः स्त्रियः।
स मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम्॥२४॥

पक्षिण ऊचुः

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः।
प्रतिलभ्य च संज्ञां स विललापातिदुःखितः॥२५॥
महद्दुःखमिदं भद्रे यत् त्वमेवं ब्रवीषि माम्।
किं तव स्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः॥२६॥
हा हा कथं त्वया शक्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते।
दुर्व्वाच्यमेतद्वचनं कर्तुं शक्नोम्यहं कथम्॥२७॥
इत्युक्त्वा स नरश्रेष्ठो धिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन्।
निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः॥२८॥
शयानं भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रं महीपतिम्।
उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता॥२९॥

पत्न्युवाच

हा महाराज कस्येदमपध्यानमुपस्थितम्।
यत् त्वं निपतितो भूमौ राङ्कवास्तरणोचितः॥३०॥
येन कोट्यग्रगोवित्तं विप्राणामपवर्ज्जितम्।
स एष पृथिवीनाथो भूमौ स्वपिति मे पतिः॥३१॥
हा कष्टं किं तवानेन कृतं देव महीक्षिता।
यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयं नीतः प्रस्वापनीं दशाम्॥३२॥
इत्युक्त्वा सापि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह।
भर्त्तृदुःखमहाभारेणासह्येन निपीड़िता॥३३॥
तौ तथा पतितौ भूमावनाथौ पितरौ शिशुः।
दृष्ट्वात्यन्तं क्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः॥३४॥
तात तात ददस्वान्नमम्बाम्ब भोजनं दद।
क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रं शुष्यते तथा॥३५॥

पक्षिण ऊचुः

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः।
दृष्ट्वा तु तं हरिश्चन्द्रं पतितं भुवि मूर्च्छितम्॥३६॥
स वारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत्।

पुत्र बैठा है। हे गजगामिनि! जो कुछ तुम्हें कहना हो वह कहो॥२३॥

पत्नी बोली—

हे राजन्! मेरे सन्तान हो चुकी, स्त्रियाँ पुत्र फल के लिये ही होती हैं। इसलिये मुझको बेच कर ब्राह्मण को दक्षिणा दे दीजिये॥२४॥

पक्षीगण बोले—

रानी का इस प्रकार वचन सुनकर राजा को मूर्छा आगई। फिर होश में आकर अति दुःखित हो विलाप करने लगे॥२५॥ हे भद्रे! यह बड़े घोर दुःख की बात है कि तुम ऐसा कहती हो। क्या तुम्हारे हँसी से युक्त वार्तालाप को भी मैं अपने पाप के कारण भूल गया?॥२६॥ हे शुभानने! हा! तुम इस प्रकार कैसी कठिन बात कह रही हो? मैं किस प्रकार तुम्हारे इस दुर्वचन का पालन कर सकूँगा?॥२७॥ वे महात्मा राजा यह कहकर अपने को अनेक वार धिक्कारने लगे। तथा मूर्च्छा से अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥२८॥ राजा को भूमि पर गिरा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हो रानी करुणा पूर्वक बोली॥२९॥

रानी बोली—

हे महाराज! किस लिये आप इस प्रकार मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरे हो? यदि आप ही इस तरह करेंगे तो साधारण मनुष्यों की क्या गिनती है?॥३०॥ जो मेरा स्वामी पृथ्वीपति नित्य करोड़ों गाय और धन ब्राह्मणों को देता था वह आज भूमि पर शयन करता है॥३१॥ हा दुर्दैव! राजा ने तेरा क्या बिगाड़ा था जो इन्द्र और उपेन्द्र के तुल्य यह राजा इस कष्ट पूर्ण दशा को प्राप्त हुआ॥३२॥ यह कहकर वह रानी भी स्वामी के दुःख रूपी महा असह्य भार से पीड़ित होकर मूर्च्छित होगई और पृथ्वी पर गिर पड़ी॥ माता और पिता दोनों को अनाथ की तरह भूमि पर पड़े हुए देखकर अत्यन्त भूख से पीड़ित होकर पुत्रने कहा॥३४॥ हे पिताजी! मुझको अन्न दीजिये, हे माता! मुझको खाने के लिये दो, मुझे बड़ी भूख लगी है तथा मेरी जिह्वा का अग्र भाग सूखा जा रहा है॥३५॥

पक्षी बोले—

इसी समय तपस्वी विश्वामित्र भी वहाँ आ पहुँचे और पृथ्वी पर मूच्छित पड़े हुए राजा हरिश्चन्द्र को देखा॥३६॥ वे जल के छींटे डाल कर राजा हरिश्चन्द्र से बोले—कि राजन्! उठो,

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र तां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥३७॥
ऋणं धारयतो दुःखमहन्यहनि वर्द्धते ।
आप्याय्यमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा॥३८॥
अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ।
पुनर्मोहं समापेदे स च क्रोधं ययौ मुनिः ॥३९॥
स समाश्वास्य राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः।
दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धर्म्ममवेक्षसे ॥४०॥
सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ।
सत्यञ्चोक्तं परो धर्म्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ४१॥
अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यंच तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥४२॥
अथवा किं ममैतेन साम्ना प्रोक्तेन कारणम् ।
अनार्य्ये पापसङ्कल्पे क्रूरे चानृतवादिनि ॥४३॥
त्वयि राज्ञि प्रभवति सद्भावः श्रूयतामयम् ।
अद्य मे दक्षिणां राजन् न दास्यति भवान् यदि४४
अस्ताचलं प्रयातेऽर्के शप्स्यामि त्वां ततो ध्रुवम् ।
इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः४५॥
कान्दिग्भूतोऽधमो निःस्वो नृशंसधनिनार्दितः ।
भार्य्यास्य भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥४६॥
मा शापानलनिर्दग्धः पंचत्वमुपयास्यसि ।
स तथा चोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनःपुनः॥४७॥
प्राह भद्रे करोम्येप विक्रयं तव निर्घृणः ।
नृशंसैरपि यत् कर्त्तुं न शक्यं तत् करोम्यहम्४८॥
यदि मे शक्यते वाणी वक्तुमीदृक् सुदुर्व्वचः।
एवमुक्त्वा ततो भार्य्यां गत्वा नगरमातुरः ।
वाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ॥४९॥

राजोवाच

भो भो नागरिकाः सर्व्वे शृणुध्वं वचनं मम ।
किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ५०॥
राक्षसो वातिकठिनस्ततः पापतरोऽपि वा ।
विक्रेतुं दयितां प्राप्तो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम्५१
यदि वः कस्यचित् कार्य्यं दास्या प्राणेष्टया मम ।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत् सन्धारयाम्यहम्॥५२॥

उठो और मेरी दक्षिणा मुझे दो ॥ ३७ ॥ ऋण को क़ायम रखने से दिन-दिन दुःख बढ़ता है, जिस प्रकार वर्फ़ से जल शनैः शनैः ठण्डा होताही जाता है ॥३८॥ होश में आकर राजा विश्वामित्र को देख कर फिर मूर्छित होगया। इससे मुनि विश्वामित्र बहुत क्रोधमें आये ॥३९॥ फिर द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्र राजा को होश में लाकर यह वचन बोले-"यदि तुमको धर्म का विचार है तो मेरी दक्षिणा मुझे दो ॥ ४० ॥ सत्य से सूर्य प्रकाशमान् है, सत्य से ही पृथ्वी ठहरी हुई है, सत्य को ही परम धर्म कहा है और स्वर्ग सत्य में ही स्थित है ॥ ४१ ॥ एक हज़ार अश्वमेध को एक ओर और सत्य को दूसरी ओर तुला पर रखिये, हज़ार अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से सत्य अधिक बैठेगा ॥४२॥ अथवा मुझे यह सब एक दुष्ट, पापी, क्रूर, और झूँठे के सामने क्यों कहना चाहिये ? ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! तुम में सद्भाव मौजूद है इसलिये मेरी सुनो। यदि तुम आज मेरी दक्षिणा न दोगे तो ॥४४॥ सूर्यास्त होने पर तुमको निश्चय ही शाप दूँगा । इतना कहकर वह विप्र विश्वामित्रजी चले गये और राजा भी भय से विह्वल होगये ॥ ४५ ॥ राजा ने कहा कि मेरे समान दुष्ट, अभागा, निर्दयी तथा ऋणग्रस्त कोई नहीं है। फिर रानी ने कहा कि आप मेरे कहने के मुताबिक़ कीजिये ॥ ४६ ॥ शाप की अग्नि में दग्ध होकर मृत्यु को प्राप्त न हो जाओ । इस प्रकार पत्नी के बार बार प्रेरणा करने पर ॥ ४७ ॥ राजा ने कहा-"हे भद्रे ! मैं तुमको वेचनेका घृणित काम करूँगा ! जो काम कि अति निर्दयी लोग भी नहीं करते हैं वह मैं करूँगा !" ॥४८॥ यह कठोर वचन कहने की मेरी वाणी में शक्ति है क्या ? यह कहकर स्त्री के साथ शीघ्र नगर को गये और अश्रुओंके कारण रुंधेहुए कण्ठसे यह वचनबोले ॥

राजा बोले -

हे नागरिको ! आप सब मेरे वचन को सुनो। यह क्या पूछते हो कि मैं कौन हूँ ? मैं एक नृशंस और मनुष्यता से हीन व्यक्ति हूँ ॥ ५० ॥ कठिन राक्षस तथा उससे भी अधिक पापी हूँ जो अपनी स्त्री को वेचने को तैयार हूँ और प्राणों को नहीं त्यागता हूँ॥५१॥ यदि किसी को मेरी प्राण प्रिया को दासी के रूप में लेना हो तो शीघ्रता से बोलो जिससे यह कार्य समाप्तहो ॥ ५२ ॥

पक्षिण ऊचुः

अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम् ।
समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥५३॥
अस्ति मे वित्तमस्तोकं सुकुमारी च मे प्रिया।
गृहकर्म्म न शक्नोति कर्त्तुमस्मात् प्रयच्छ मे ॥५४॥
कर्म्मण्यता-वयो-रूप-शीलानां तव योषितः ।
अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् ॥५५॥
एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ।
व्यदीर्य्यत् मनो दुःखान्न चैनं किंचिदब्रवीत्॥५६॥
ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम् ।
बद्ध्वा केशेष्वथादाय नृपपत्नीमकर्षयत् ॥५७॥
रुरोद रोहिताश्वोऽपि दृष्ट्वा कृष्टांतु मातरम् ।
हस्तेन वस्त्रमाकर्षन् काकपक्षधरः शिशुः ॥५८॥

राजपत्न्युवाच

मुंचार्य्य मुंच तावन्मां यावत्पश्याम्यहं शिशुम्।
दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्यति ॥५९॥
पश्यैहि वत्स मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ।
मां मा स्प्राक्षीं राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाधुना॥६०॥
ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कृष्टान्तु मातरम् ।
समभ्यधावदम्बेति रुदन् सास्राविलेक्षणः ॥६१॥
तमागतं द्विजः क्रोधाद्बालमभ्याहनत् पदा ।
वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैवामुंचत मातरम् ॥६२॥

राजपत्न्युवाच

प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमुंच बालकम् ।
क्रीतापि नाहं भवतो विनैनं कार्य्यसाधिका ॥६३॥
इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादसुमुखो भव ।
मां संयोजय बालेन वत्सेनेव पयस्विनीम् ॥६४॥

ब्राह्मण उवाच

गृह्यतां वित्तमेतत् ते दीयतां बालको मम ।
स्त्रीपुंसोधर्म्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ।
शतं सहस्रं लक्षंच कोटिमूल्यंतथा परैः ॥६५॥

पक्षिण ऊचुः

तस्य तद्वित्तं बद्ध्वोत्तरपटे ततः ।

पक्षी बोले—

इसके बाद एक वृद्ध ब्राह्मण कहीं से आकर राजा से बोला, इस दासीको मुझे दो, मैं ख़रीदार हूँ तथा इसकी क़ीमत दूँगा ॥ ५३ ॥ मेरे पास धन बहुत है और मेरी स्त्री कोमल है और घरका काम नहीं कर सकती है इसलिये मैं इसे माँगताहूँ ॥५४॥ तेरी स्त्री रूप और शील से युक्त है यह सब काम करलेगी। इसलिये इसके अनुकूल क़ीमत लेकर इस स्त्री को मेरे सुपुर्द कर ॥ ५५ ॥ वृद्ध ब्राह्मण के इस प्रकार कहने पर राजा हरिश्चन्द्र का हृदय फट गया और अत्यन्त क्लेशित होने के कारण वह कुछ न बोला ॥ ५६॥ इसपर उस वृद्ध ब्राह्मण ने राजा के वल्कल वस्त्र के छोर से रानी का मूल्य बाँध दिया और रानीके केश पकड़कर खींचताहुआ लेगया॥५७॥ राजा के पुत्र रोहिताश्व ने भी जिसके बाल बड़े शोभायमान थे, माता को इस प्रकार खींचे जाते हुए देखकर अपने हाथसे उसका वस्त्र पकड़लिया॥

रानी बोली—

हे आर्य ! मुझे छोड़ो, मुझे छोड़ो । थोड़ी देर मैं अपने बच्चे को देखलूं। इसकादर्शन फिर दुर्लभ हो जायगा ॥ ५९ ॥ हे वत्स ! मुझको देखो,तुम्हारी माता अब दासी होगई है। हे राजपुत्र ! मुझको छोड़ो, अब मैं तुम्हारे योग्य नहीं रही ॥ ६० ॥ इस तरह कहकर माता के फिर खींचे जाने पर और आगे बढ़ने पर वह बालक उद्विग्न होकर 'मां, मां' इस प्रकार रुदन करता हुआ पीछे भागा ॥ ६१ ॥ यद्यपि उस ख़रीदार ब्राह्मण ने उस आते हुए बच्चे को लात से मारा परन्तु फिर भी उसने 'मां मां' कहते हुए पीछे भागना न छोड़ा ॥६२॥

रानी बोली—

हे महाराज ! मेरे ऊपर कृपा करके इस बालक को और ख़रीद लीजिये । यद्यपि आपने मुझको ख़रीद लिया है परन्तु इस बालक के बिना मैं आप के कार्य को भली प्रकार न कर सकूंगी ॥ ६३ ॥ इस प्रकार मुझ अभागिनी पर दया करके गाय से दूध पीते हुए बछड़े को अलग न कीजिये ॥ ६४ ॥

ब्राह्मण बोला—

वित्त लेकर इस बालक को भी मुझे दीजिये। धर्मशास्त्र के ज्ञाताओं ने कहा है कि पुत्रवती स्त्री को पुत्रसहित लेना चाहिये। सौ,हज़ार,लाख, करोड़ या इससे भी अधिक जो चाहिये सो ले लीजिये ॥

पक्षी बोले—

उसी प्रकार उस बालककी क़ीमत भी राजा के

प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत् ॥६६॥
नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्या-पुत्रौ स पार्थिवः।
विललाप सुदुःखार्त्तो निश्वस्योष्णं पुनः पुनः॥६७॥
यां न वायुर्न चादित्यो नेन्दुर्न च पृथग्जनः।
दृष्टवन्तः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥६८॥
सूर्य्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः।
सम्प्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्म्मतिम्॥६९॥
हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्य्यस्य दुर्नयैः।
दैवाधीनां दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक्॥७०॥

पक्षिण ऊचुः

एवं विलपतो राज्ञः स विप्रोऽन्तरधीयत।
वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥७१॥
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो नृपं वित्तमयाचत।
तस्मै समर्पयामास हरिश्चन्द्रोऽपि तद्धनम् ॥७२॥
तद्वित्तं स्तोकमालोक्य दारविक्रयसम्भवम्।
शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥७३॥
क्षत्रबन्धो ममेमां त्वं सदृशीं यज्ञदक्षिणाम्।
मन्यसे यदि तत् क्षिप्रं पश्य त्वं मे बलं परम् ॥७४॥
तपसोऽत्र सुतप्तस्य ब्राह्मण्यस्यामलस्य च।
मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥७५॥

हरिश्चन्द्र उवाच

अन्यां दास्यामि भगवन् कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्।
साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः॥७६॥

विश्वामित्र उवाच

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप।
एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तर त्वया ॥७७॥

पक्षिण ऊचुः

तमेवमुक्त्वा राजेन्द्र निष्ठुरं निर्घृणं वचः।
तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥७८॥
विश्वामित्रे गते राजा भयशोकाब्धिमध्यगः।
सर्व्वाकारं विनिश्चित्य प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥७९॥
वित्तक्रीतेन यो ह्यर्थी मया प्रेष्येण मानवः।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत् तपति भास्करः॥८०॥

वस्त्रमें बाँधदी और माताके साथ बालकको लेकर चला ॥६६॥ उस राजाने ब्राह्मण को इस प्रकार स्त्री और पुत्रको लेजाते हुए देखा। दुःखसे आर्त होकर वह विलाप करने लगा तथा बार-बार गर्म श्वास लेने लगा ॥६७॥ जिस रानी को पवन, सूर्य, चंद्रमा या किसी भी इतर मनुष्यों ने न देखाथा वह आज दासीपन को प्राप्त हुई ॥६८॥ और सूर्यवंशमें उत्पन्न यह सुकुमार बालक भी बिक गया। मुझ दुर्मति को धिक्कारहै ॥६९॥ हा प्रिये! हा वत्स! मुझजैसे दुष्ट और अन्यायी की ऐसी दुरवस्था में प्राप्त होने पर भी मृत्यु नहीं होती है। मुझे धिक्कारहैं ॥७०॥

पक्षी बोले—

इस प्रकार राजा के विलाप करते-करते वह ब्राह्मण वृक्षों और मकानों भुण्ड में शीघ्र ही छिप गया ॥ ७१ ॥ इतने में ही विश्वामित्र ने वहाँ आकर राजा से दक्षिणा माँगी। हरिश्चन्द्रने भी वह धन विश्वामित्र को दे दिया ॥ ७२ ॥ रानी के बिकने से शोक में डूबे हुए राजा से उस थोड़े धन को देखकर विश्वामित्र ने कुपित होकर कहा॥७३॥ हे राजन्! यदि तू मेरी इतनी ही यज्ञ दक्षिणा समझता है तो मेरे प्रभाव को देख ॥ ७४ ॥ तपसे जो मुझ में उपजता है उसको, मेरे शुद्ध ब्राह्मणत्व को, मेरे शुद्ध और उग्र प्रभाव को तथा मेरे स्वाध्याय को देख ॥ ७५ ॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भगवन्! और भी दूँगा, थोड़ा समय और ठहरिये। पत्नी और पुत्र को बेच चुका, अब मेरे पास कुछ नहीं है ॥७६॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन्! इस समय दिन का चौथा भाग है इसके समाप्त होने के बाद मैं तुम्हारे किसी समय की प्रतीक्षा न करूँगा ॥ ७७ ॥

पक्षी बोले—

राजा हरिश्चन्द्र से इस प्रकार निष्ठुर और निर्दयतापूर्ण वचन कहकर तथा उस धनको लेकर विश्वामित्रजी क्रोधित होकर चले गये ॥ ७८ ॥ विश्वामित्र के जाने पर राजा भय और चिंता के सागर में निमग्न होकर नीचे को मुख करके बैठ गये तथा सब बात भली भांति सोचकर ऊँचे स्वर से बोले ॥ ७९ ॥ यदि किसी धनवान् को आवश्यकताहो तो वह बोले और मुझे आज संध्या से पहिलेही शीघ्रतापूर्वक लेले, मैं बिकने की इच्छा करता हूँ ॥ ८०॥ उसी समय शीघ्रही धर्म चांडाल

अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चण्डालरूपधृक् ।
दुर्गन्धो विकृतो रूक्षः श्मश्रुलो दन्तुरो घृणी ॥८१
कृष्णो लम्बोदरः पिङ्ग-रूक्षाक्षः परुषाक्षरः ।
गृहीतपक्षिपुञ्जश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥८२॥
कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिवदन् मुहुः ।
श्वगणाभिवृतो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः ॥८३॥

का रूप धर कर आये। चाण्डालके प्रत्येक अङ्गसे दुर्गन्ध आरहीथी तथा उस घृणित मनुष्यके बड़े २ दाँत और मूछें थीं ॥ ८१ ॥ काला रङ्ग, लम्बा पेट, पीली और रूखी आंखें, बहुत से पक्षियों को साथ लिये हुए तथा मुण्डों की माला पहिने हुए ॥ ८२ ॥ हाथ में मृत मुण्ड लिये हुए, भयानक शब्द कहता हुआ, बहुत से कुत्तों से घिरा हुआ तथा दूसरे हाथ में लाठी लिये हुए वह आया ॥८३॥

चण्डाल उवाच

अहमर्थी त्वया शीघ्रं कथयस्वात्मवेतनम् ।
स्तोकेन बहुना वापि येन वै लभ्यते भवान् ॥८४॥

चाण्डाल बोला—

मैं तेरा ग्राहकहूँ, अपना मूल्य शीघ्र कहो, थोड़े या अधिक मूल्य जितनेमें भी तुम प्राप्त होसको ॥

पक्षिण ऊचुः

तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सनिष्ठुरम् ।
वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥८५॥

पक्षी लोग बोले—

उसको इस तरह क्रूरदृष्टि, निष्ठुर औरदुःशील देखकर राजा ने कहा कि तू कौन है ? ॥८५॥

चण्डाल उवाच

चण्डालोऽहमिहाख्यातः प्रवीरेति पुरोत्तमे ।
विख्यातो वध्यवधको मृतकम्बलहारकः ॥८६॥

चाण्डाल बोला—

मैं चाण्डाल हूँ और पृथ्वी पर मैं रहता हूँ। मैं वध्य जीव का वध करता हूँ और मुर्दे का कम्बल भी लेता हूँ ॥ ८६ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

नाहं चण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम् ।
वरं शापाग्निना दग्धो न चण्डालवशं गतः ॥८७॥

हरिश्चन्द्र बोले—

मैं चाण्डाल के निन्दनीय दासत्व में जाने की इच्छा नहीं करता हूँ। चाण्डाल के वश में जाने से शाप की अग्नि में दग्ध होना अच्छा है ॥८७॥

पक्षिण ऊचुः

तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः ।
कोपामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥८८॥

पक्षी बोले—

जिस समय राजा हरिश्चन्द्र यह कह रहे थे उसी समय क्रोध और ईर्षा से आँखें बिगाड़े हुए तपस्वी विश्वामित्र वहाँ आकर राजासे यह बोले॥

विश्वामित्र उवाच

चण्डालोऽयमनल्पं ते दातुं वित्तमुपस्थितः ।
कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ॥८९॥

विश्वामित्र बोले—

यह चाण्डाल तुम्हें प्रचुर धन देने के लिये उपस्थित है, इसलिये मुझे बाक़ी यज्ञ-दक्षिणा क्यों नहीं देते हो ? ॥ ८९ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् सूर्य्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ।
कथं चण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामुकः ॥९०॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भगवन् ! हे विश्वामित्रजी ! मैं जानता हूँ कि मैं सूर्यवंशोत्पन्न हूँ। धन की कामना के लिये किस प्रकार चाण्डाल का दास बनूं ? ॥ ९० ॥

विश्वामित्र उवाच

यदि चण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ।
न प्रदास्यसि कालेन शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥९१॥

विश्वामित्र बोले—

यदि तुम चाण्डाल से अपना मूल्य लेकर मुझे न दोगे तो तुमको निस्संदेह इस समय मैं शाप दूँगा ॥ ९१ ॥

पक्षिण ऊचुः

हरिश्चन्द्रस्ततो राजा चिन्तावस्थितजीवितः ।
वदन् पादाद्प्रेजग्राह विह्वलः ॥९२॥

पक्षी बोले—

उससमय राजा हरिश्चन्द्र घोर चिंतामें निमग्न होगये। "कृपा कीजिये" इस प्रकार कहते हुए व्याकुल होकर उसने विश्वामित्र के चरण पकड़लिये

हरिश्चन्द्र उवाच

दासोऽस्म्यार्त्तोऽस्मि भीतोस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः।

कुरु प्रसादं विप्रर्षे कष्टश्चण्डालसङ्करः ॥९३॥

भवेयं वित्तशेषेण सर्व्वकर्म्मकरो वशः।

तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ॥९४॥

विश्वामित्र उवाच।

यदि प्रेष्यो मम भवान् चण्डालाय ततो मया।

दासभावमनुप्राप्तो दत्तो वित्तार्व्वुदेन वै ॥९५॥

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्ते तदा तेन श्वपाको हृष्टमानसः।

विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम्॥९६॥

दण्डप्रहारसम्भ्रान्तमतीव व्याकुलेन्द्रियम्।

इष्टबन्धुवियोगार्त्तमनयन्निजपत्तनम् ॥९७॥

हरिश्चन्द्रस्ततो राजा वसंश्चण्डालपत्तने।

प्रातर्मध्याह्नसमये सायञ्चैतदगायत ॥९८॥

बाला दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः।

मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोचयिष्यति नौ नृपः॥९९॥

उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम्।

न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति पापतरं कृतम् ॥१००॥

राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्य्यातनयविक्रयः।

प्राप्ता चण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा ॥१०१॥

एवं स निवसन् नित्यं सस्मार दयितं सुतम्।

भार्य्याञ्चात्मसमाविष्टां हृतसर्व्वस्व आतुरः॥१०२॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य मृतचेलापहारकः।

हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥१०३॥

चण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचेलापहारिणा।

शवागमनमन्विच्छन्निह तिष्ठ दिवानिशम् ॥१०४॥

इदं राज्ञेऽपि देयञ्च षड्भागन्तु शवं प्रति।

त्रयस्तु मम भागाः स्युर्द्वौ भागौ तव वेतनम् ॥१०५॥

इति प्रतिसमादिष्टो जगाम शवमन्दिरम्।

दिशन्तु दक्षिणां यत्र वाराणस्यां स्थितं तदा ॥१०६॥

श्मशानं घोरसंनादं शिवाशतसमाकुलम्।

हरिश्चन्द्र बोले—

हे ब्रह्मर्षि! मैं दुःखी हूँ, आपका दास हूँ, आपसे डरता हूँ, तथा आपका विशेष रूप से भक्त हूँ। कृपा कीजिये और चाण्डाल के संसर्गरूपी कष्ट से बचाइये ॥९३॥ हे मुनिवर! आपका जो धन मेरी ओर शेष है उसके कारण मैं आपके वश में होकर आपका सब कार्य आपकी आज्ञानुसार दिल लगाकर करूँगा ॥ ९४ ॥

विश्वामित्रजी बोले—

यदि तुम मेरी आज्ञा मानते हो तो मैंने तुमको चाण्डाल को अर्बुद द्रव्य के बदले में दिया ॥९५॥

पक्षी बोले—

विश्वामित्र के ऐसा कहने पर चाण्डाल बहुत प्रसन्न हुआ और उसने विश्वामित्र को वह धन देकर राजा को बाँध लिया ॥ ९६ ॥ चाण्डाल के डण्डे की चोट से गम्भीर, अत्यन्त विह्वल तथा भाई-बन्धुओं के वियोग से दुःखी ऐसे राजा को वह चाण्डाल अपने घर ले गया ॥ ९७ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के गृह में रहने लगे। प्रातः, मध्याह्न तथा संध्या समय राजा इस प्रकार गायन करते थे ॥ ९८ ॥ वह दीन मुख वाली मेरी पत्नी दीन मुख वाले पुत्र को देखकर मुझे स्मरण करती होगी और सोचती होगीकि राजा हमको छुडावेंगे ॥९९॥ जो धन मैंने अपने को बेचकर और अधिक ब्राह्मण को दिया है उसको वह मृगशावकनयनी नहीं जानती है, इसलिये वह मुझे पापी समझ रही होगी ॥१००॥ अहा! यह महान् दुःख है कि राज्य का नाश, मित्रों का त्याग, पत्नी और पुत्र का विक्रय और अन्त में चाण्डालता ॥ १०१ ॥ इसी तरह वह पत्नी और पुत्र का नित्य स्मरण करते रहते थे तथा सर्वस्व हरण हो जाने के कारण क्लेशित थे ॥ १०२ ॥ कुछ काल व्यतीत होने पर मृतक के ऊपर का वस्त्र लाने के लिये चाण्डाल ने राजा को कहा ॥ १०३ ॥ मृतक पर से वस्त्र लेने वाले उस चाण्डाल ने राजा को आदेश किया कि प्रत्येक आते हुए मुर्दे को देखो और श्मशान में रात दिन रहो ॥१०४॥ उसमें से छठा हिस्सा यहाँ के राजा का है, तीन हिस्से मेरे भाग के हैं तथा दो हिस्से तुम्हारे वेतन के हैं ॥१०५॥ इस प्रकार आदेश पाकर राजा काशी की दक्षिण दिशा की ओर जहाँ श्मशान था गये ॥ १०६ ॥ उस श्मशान में शब्द होता था तथा सैकड़ों सियार वहाँ रहते थे,

शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम् ॥१०७॥
पिशाच-भूत-वेताल-डाकिनी-यक्षसङ्कुलम् ।
गृध्रगोमायुसङ्कीर्णं श्ववृन्द परिवारितम् ॥१०८॥
अस्थिसंघातसङ्कीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम् ।
नानामृतसुहृन्नाद-रौद्रकोलाहलायुतम् ॥१०९॥
हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातवत्स प्रियाद्य मे ।
हा पते भगिनि मातर्हा मातुल पितामह ॥११०॥
मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बान्धव ।
इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् ॥१११॥
ज्वलन्मांस-वसा-मेदच्छ्र सच्छ्रसितसंकुलम् ॥११२॥
अर्द्ध दग्धाः शवाः श्यामा विकसद्दन्तपंक्तयः ।
हसन्तीवाग्निमध्यस्थाः कायस्येयं दशा त्विति ११३।

अग्नेश्चटचटाशब्दो वयसामस्थिपंक्तिषु ।
बान्धवाक्रन्दशब्दश्च पुक्कसेषु महर्षजः ॥११४॥
गायतां भूत-वेताल-पिशाचगण-रक्षसाम् ।
श्रूयते सुमहान् घोरः कल्पान्त इव निःस्वनः ॥११५॥
महामहिषकारीष-गोशकृद्राशिसङ्कुलम् ।
तदुत्थभस्मकूटैश्च वृतं सास्थिभिरुन्नतैः ॥११६॥
नानोपहारस्रग्दीप-काकविक्षेपकालिकम् ।
अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नरकायते ॥११७॥
सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतै-
र्निनादितं भीषणरावगह्वरम् ।
भयं भयस्याप्युपसञ्जनैर्भृ शं
श्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥११८॥
स राजा तत्र सम्प्राप्तो दुःखितः शोचनोद्यतः ।
हा भृत्या मन्त्रिणो विप्राः क्व तद्राज्यं विधे गतम् ११९
हा शैव्ये पुत्र हा बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् ।
विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम ॥१२०॥
इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तं पुनः पुनः ।
मलिनो रूक्षसर्वाङ्गः केशवान् गन्धवान् ध्वजी १२१
... कालकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ।

चारों ओर मुर्दे पड़े हुए थे, बहुत दुर्गन्धि आ रही थी तथा बहुत धुआँ उठ रहा था ॥ १०७ ॥ पिशाच भूत, वेताल, डाकिनी, यक्ष, गिद्ध, सियार और कुत्तों से वह जगह व्याप्त थी ॥ १०८ ॥ हड्डियों के ढेरों से तथा दुर्गन्ध से वह स्थान पूर्ण था। अनेकों मुर्दों के बन्धु बान्धवों के करुण-क्रन्दन से वह स्थान भयंकर और कोलाहलयुक्तथा॥१०९॥ हा पुत्र, हा मित्र, हा बन्धु, हा भ्राता, वत्स, मेरीप्रिया हा पति, हा भगिनी, हा माता, हा मातुल, हा पिता आदि ॥ ११० ॥ हा मातामह, हा पितामह, हा पौत्र कहाँ गये ? इस प्रकार चिल्लाने वालों की ध्वनियां वहाँ सदैव सुनाई देती थीं ॥ १११ ॥ माँस और मज्जा के जलने से उत्पन्न हुई छन् छन्की आवाज़ से वह स्थान व्याप्त था ॥११२॥ अधजले मृतदेह श्यामवर्ण होकर तथा दाँतों कीपंक्तियाँ दिखातेहुए अग्नि में पड़े हुए ऐसे मालुम होते थे मानों हँस रहे हैं ॥११३॥ वहाँ पर अग्नि में चट-चट शब्द होता था, कौओं की पंक्तियां हड्डियों पर बैठी हुई थीं, बन्धु-बान्धवों के रुदन का शब्द तथा पुक्कस डोमों की प्रसन्नता का दृश्य दिखाई देताथा ॥ ११४ ॥ और भूत, पिशाच, वेताल और राक्षसों के झुण्डों के गाने बजाने के घोर शब्दसे वह जगह प्रलयकाल के समान भयानक मालूम होती थी ॥ ॥ ११५ ॥ राखों के ढेर स्थानों पर पड़े हुए काले भैंसों के समान मालुम होते थे, उनमें से उड़ी हुई भस्म हड्डियों के ढेरों पर बैठती थी जिससे वे ढेर पर्वताकार मालुम होते थे ॥ ११६ ॥ अनेक प्रकार के खाने की चीज़ों, मालाओं व दीपकों को कौए चीर फाड़ कर उलट-पुलट कर रहे थे तथा बहुत प्रकार के शब्दोंसे स्मशान गर्हित हो रहाथा॥११७॥ अग्नियों से पूर्ण, अशुभ सियारोंके भीषण रोने की आवाज़ से युक्त तथा मनुष्यों के रोने पीटने की आवाज़ों से उस स्थान में भय को भय लगता था ॥ ११८ ॥ वह राजा वहाँ रहकर दुःख और शोक से कहता था—"हा ब्रह्माजी ! मेरे सेवक, मन्त्री, ब्राह्मण लोग तथा राज्य कहाँ गये ?" ॥ ११९ ॥ हा शैव्ये, हा पुत्र ! तुम भी मुझ अभागे को विश्वामित्र के दोष से छोड़ कर कहाँ गये ? ॥ १२० ॥ इस प्रकार चिन्तायुक्त और केशों तथा सब अङ्गों में मलिनता और रूखापन है जिनके ऐसे वह राजा पापी रूप से दुर्गन्धियुक्त उस चाण्डाल की आज्ञा में तत्पर रहते थे ॥ १२१ ॥ लकुटी धारण किये वह कालके समान इधर उधर भागते थे, इस

अस्मिन् शव इदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाप्युत १२२॥
इदं मम इदं राज्ञे मुख्यचण्डालके त्विदम्।
इति धावन् दिशो राजा जीवन् योन्यन्तरं गतः १२३॥
जीर्णकर्पटसुग्रन्थि-कृतकन्थापरिग्रहः।
चिताभस्मरजोलिप्त-मुखवाहूदराङ्घ्रिकः ॥१२४॥
नानामेदो-वसा-मज्ज-लिप्तपाण्यङ्गुलिः श्वसन्।
नानाशवोदनकृता-हारतृप्तिपरायणः ॥१२५॥
तदीयमाल्यसंश्लेप-कृतमस्तकमण्डनः।
न रात्रौ न दिवा शेते हा हेति प्रवदन् मुहुः॥१२६॥
एवं द्वादशमासास्तु नीताः शतसमोऽपमाः।
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठः श्रान्तो बन्धुवियोगवान्॥१२७॥
निद्राभिभूतो रूक्षाङ्गो निश्चेष्टः सुप्त एव च।
तत्रापि शयनीये स दृष्टवानद्भुतं महत् ॥१२८॥
श्मशानाभ्यासयोगेन दैवस्य बलवत्तया।
अन्यदेहेन दत्त्वा तु गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥१२९॥
तदा द्वादश वर्षाणि दुःखदानात्तु निष्कृतिः।
आत्मानं स ददर्शाथ पुक्कसीगर्भसम्भवम् १३०॥
तत्रस्थश्चाप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिदं तदा।
इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्म्मं करोम्यहम् १३१॥
अनन्तरं स जातस्तु तदा पुक्कसबालकः।
श्मशानमृतसंस्कार-करणेषु सदोद्यतः ॥१३२॥
प्राप्ते तु सप्तमे वर्षे श्मशानेऽथ मृतो द्विजः।
आनीतो बन्धुभिर्दृष्टस्तेन तत्राधनो गुणी ॥१३३॥
मूल्यार्थिना तु तेनापि परिभूतास्तु ब्राह्मणाः।
ऊचुस्ते ब्राह्मणास्तत्र विश्वामित्रस्य चेष्टितम् १३४॥
पापिष्ठमशुभं कर्म्म कुरु त्वं पापकारक।
हरिश्चन्द्रः पुरा राजा विश्वामित्रेण पुक्कसः ॥१३५॥
कृतः पुण्यविनाशेन ब्राह्मणस्वापनाशनात्।
यदा न क्षमते तेषां तैः स शप्तो रुषा तदा ॥१३६॥
गच्छ त्वं नरकं घोरमधुनैव नराधम।
इत्युक्तमात्रे वचने स्वप्नस्थः स नृपस्तदा ॥१३७॥

मृतकका यह मूल्य हुआ, इतना मिला इतना और दो आदि ॥१२२॥ इसमें इतना मेरा, इतना राजा का तथा इतना चाण्डाल का, यह सोचते हुए और भागते हुए राजा को ऐसा मालुम होता था मानों जीते जी प्रेत बन गया हूँ ॥ १२३॥ अनेकों थेगरियों से ढक पुराना कपड़ा शिर तथा शरीर में धारण किये हुए थे तथा चिता की भस्म मुख, भुजा और उदर पर लगी हुई थी ॥ १२४ ॥ हाथ पाँव की अंगुलियों में मेद, वसा, मज्जा आदि लिपटी रहती थी और नाना प्रकारके पिंडादिक ही उनके भोजन की सामग्री थी ॥१२५॥ वहाँ की पड़ी गिरी . . . ही अपने मस्तक को सजा लेते थे तथा रात दिन किसी समय भी नींद न आती थी और बार बार 'हा' 'हा' ऐसी श्वास लिया करते थे ॥१२६ ॥ इसी प्रकार बारह महीने सौ वर्ष के बराबर बीते। . . दिन बन्धु बान्धवों के वियोग से दुःखी वह . . राजा थक कर एक स्थान पर बैठ गया ॥ १२७। निश्चेष्ट और रूखे शरीर वाला वह राजा निद्रा . . सताया हुआ सो गया। सोते ही उसने बड़ा अद्भुत स्वप्न देखा ॥ १२८ ॥ मैंने दूसरे देह में . . गुरू की गुरु-दक्षिणा नहीं दी इसी कारण से दैव ने मुझे बल पूर्वक श्मशान वास कराया है ॥ १२९ फिर इसी प्रकार दुःख पूर्वक बारह वर्ष व्यतीत होने पर अपने को डोमिनी के गर्भ से उत्पन्न हु . देखा ॥१३०॥ उस जगह स्थित हुए राजा ने सोचा कि यदि इस गर्भ से निकलूं तो खूब दान धर्म करूँगा ॥१३१॥ इसके बाद स्वप्न में देखा कि वह पैदा होकर डोम का बालक होगया है और श्मशान में मृतक सम्बन्धी काम करता है ॥१३२॥ फिर सातवें वर्ष श्मशान में किसी निर्धन . . . के मृत देह को जो उसके बांधवों द्वारा लाया . था देखा ॥१३३ ॥ उनसे कर माँगने पर वे क्लेश . प्राप्त हुए ब्राह्मण जिनमें एक विश्वामित्र की . आकृति वालासी था बोले ॥१३४॥ हे पापकर्म कर. वाले पापी मनुष्य ! तू इस पापिष्ट, अशुभ कर्म क्यों करता है, विश्वामित्र के शाप से तो . . हरिश्चन्द्र से डोम हुआ ॥ १३५ ॥ ब्राह्मण के . . ही कारण से तेरे पुण्य का नाश होकर तू इ दशा को पहुंचा है ! क्योंकि तू अब भी नहीं मानत है इसलिये तुझे हम भी शाप देते हैं ॥ १३६ ॥ " नराधम ! तू अभी घोर नरक को जा।" इस के कहे जाते ही स्वप्नावस्था में पड़े हुए . . ने उस समय ॥ १३७ ॥ भयानक यमदूतों को ह

अपश्यद्वयमदूतान् वै पाशहस्तान् भयावहान् ।
तैः संगृहीतमात्मानं नीयमानं तदा बलात् ॥१३८॥
पश्यति स्म भृशं खिन्नो हा मातः पितरश्च मे ।
एवंवादी स नरके तैलद्रोण्यां निपातितः ॥१३९॥
क्रकचैः पाट्यमानस्तु क्षुरधाराभिरप्यथः ।
अन्धे तमसि दुःखार्त्तः पूयशोणितभोजनः ॥१४०॥
सप्तवर्षं मृतात्मानं पुक्कसत्वे ददर्श ह ।
दिनं दिनन्तु नरके दह्यते पच्यतेऽन्यतः ॥१४१॥
खिद्यते क्षोभ्यतेऽन्यत्र मार्य्यते पाट्यतेऽन्यतः ।
क्षार्य्यते दीप्यतेऽन्यत्र शीतवाताहतोऽन्यतः॥१४२॥
एकं दिनं वर्षशत-प्रमाणं नरकेऽभवत् ।
तथा वर्षशतं तत्र श्रावितं नरके भटैः ॥१४३॥
ततो निपातितो भूमौ विष्ठाशी श्वा व्यजायत ।
वान्ताशी शीतदग्धश्च मासमात्र मृतोऽपि सः ॥१४४॥
अथापश्यत् खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम् ।
छागं विड़ालं कङ्कञ्च गामविं पक्षिणं कृमिम् ॥१४५॥
मत्स्यं कूर्म्मं वराहञ्च श्वाविधं कुक्कुटं शुकम् ।
शारिकां स्थावरांश्चैव सर्पमन्यांश्च देहिनः ॥१४६॥
दिवसे दिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्तदा ।
अपश्यद्दुःखसन्तप्तो दिनं वर्षशतं तथा ॥१४७॥
एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु ।
अपश्यच्च कदाचित् स राजा तत्स्वकुलोद्भवम् १४८॥
तत्र स्थितस्य तस्यापि राज्यं द्यूतेन हारितम् ।
भार्य्या हृता च पुत्त्रश्च स चैकाकी वनं गतः॥१४९॥
तत्रापश्यत् स सिंहं वै व्यादितास्यं भयावहम् ।
विभक्षयिषुमायातं शरभेण समन्वितम् ॥१५०॥
पुनश्च भक्षितः सोऽपि भार्य्यां शोचितुमुद्यतः ।
हा शैव्ये क्व गतास्यद्य मामिहापास्य दुःखितम्१५१॥
अपश्यत् पुनरेवापि भार्य्यां स्वां सहपुत्रकाम् ।
त्रायस्व त्वं हरिश्चन्द्र किं द्यूतेन तव प्रभो ॥१५२॥
पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तो भार्य्यया शैव्यया सह ।
नापश्यत् पुनरपि धावमानः पुनः पुनः ॥१५३॥
अथापश्यत् पुनरपि स्वर्गस्थः स नराधिपः ।
ह्रियते मुक्तकेशी सा दीना विवसना बलात्॥१५४॥

में पाश लिये हुए, तथा अपने को उनके द्वारा बल पूर्वक बाँधकर लेजाते हुए देखा ॥१३८॥ उन निर्दयी यमदूतों को देखकर डर से 'हा माता' 'हा पिता' चिल्लाता हुआ वह राजा तेल के कुण्ड में डाल दिया गया॥१३९॥ मछलियों से पटा हुआ, तीक्ष्ण धार वाले अस्त्र आदि से युक्त, अन्धकार पूर्ण, उस कुण्ड में वह दुख से पीड़ित हुआ पड़ा है और पीव और रुधिर उसके भोजन हैं ॥१४०॥ सात वर्ष तक वह मृत डोम देह दिन-दिन नरक में जलाया व पचाया जाता था ॥ १४१ ॥ कभी डराया जाता था, कभी छेदा जाता था, कभी मारा और कभी काटा जाता था। कभी जलाया जाता और कभी ठण्डी हवाओं से ठिठुराया जाता था ॥१४२॥ नरक में एक दिन सौ वर्ष के समान हुआ। सौ वर्षतक उस नरक में यमदूतों की यातनायें सहीं ॥ १४३ ॥ फिर भूमि पर गिर कर अपने को विष्ठा खाने वाले शूकर और वान्त आदि खाने वाले कुत्ते की योनि में देखा और एक महीने में फिर मृत्यु हुई ॥ १४४॥ फिर अपने को गधा, हाथी, बन्दर, बकरा, बिडाल कौआ और कीड़ों की योनियों में देखा ॥ १४५ ॥ मछली, कछुआ, शूकर, श्वान, मुर्गा, तोता, मैंना, वृक्षादिक और सर्पों की योनियों में ॥१४६॥ अपने को दिन-दिन प्राणियों की देह में पड़ा हुआ देखा, दुःख के सन्ताप से एक एक दिन वर्ष के समान व्यतीत होता था ॥ १४७ ॥ इस प्रकार दुष्ट योनियों में जन्म लेते लेते सौ वर्ष व्यतीत होते और अपने को फिर सूर्यवंश में उत्पन्न होते देखा ॥१४८॥ वहाँ इस प्रकार स्थित होने के बाद देखा कि जुए में राज्य, स्त्री और पुत्र को हार कर अकेला वन को गया है॥ १४९ ॥ फिर देखा कि एक भयानक सिंह शरभ सहित उसके खाने को आरहा है ॥ १५० ॥ जब वह भार्या के शोक में कह रहा था कि हे शैव्ये! मुझ दुःखी को छोड़ कर आज कहाँ गई? उस समय सिंह ने उसे खा लिया ॥ १५१ ॥ फिर पुत्र सहित अपनी स्त्री को देखा जो कुछ डरीसी यह कह रही थी कि हे नाथ! तुमने जुआ क्यों खेला? ॥ १५२ ॥ आपके स्त्री और पुत्र इधर उधर भागते फिरतेहैं क्या आप इन्हें नहीं देखतेहैं?॥१५३॥ फिर उस राजा ने स्वर्ग से देखा कि कोई व्यक्ति बल पूर्वक उस दीन और वस्त्रविहीना स्त्री को केश पकड़ कर लिये जाता है ॥ १५४ ॥ वह हाय

हाहावाक्यं प्रमुञ्चन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना।
अथापश्यत् पुनस्तत्र धर्म्मराजस्य शासनात्॥१५५॥
आक्रन्दन्त्यन्तरीक्षस्था आगच्छेह नराधिप।
विश्वामित्रेण विज्ञप्तो यमो राजंस्तवार्थतः॥१५६॥
इत्युक्त्वा सर्पपाशैस्तु नीयते बलवद्भिशुः।
श्राद्धदेवेन कथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ॥१५७॥
तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधर्म्मोत्था व्यवर्द्धत।
एताः सर्व्वा दशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः१५८
सर्व्वास्तास्तेन सम्भुक्ता यावद्वर्षाणि द्वादश।
अतीते द्वादशे वर्षे नीयमानो भटैर्बलात्॥१५९॥
यमं सोऽपश्यदाकारादुवाच च नराधिपम्।
विश्वामित्रस्य कोपोऽयं दुर्निवार्य्यो महात्मनः१६०॥
पुत्रस्य ते मृत्युमपि प्रदास्यति स कौशिकः।
गच्छ त्वं मानुषं लोकं दुःखशेषञ्च भुङ्क्ष्व वै।
गतस्य तत्र राजेन्द्र श्रेयस्तव भविष्यति॥१६१॥
व्यतीते द्वादशे वर्षे दुःखस्यान्ते नराधिपः।
अन्तरीक्षाच्च पतितो यमदूतैः प्रणोदितः॥१६२॥
पतितो यमलोकाच्च विबुद्धो भयसम्भ्रमात्।
अहो कष्टमिति ध्यात्वा क्षते क्षारावसेवनम्॥१६३॥
स्वप्ने दुखं महद्दृष्टं यस्यान्तो नोपलभ्यते।
स्वप्ने दृष्टं मया यत्तु किं नु मे द्वादशाः समाः॥१६४॥
गतेत्यपृच्छत् तत्रस्थान् पुक्कसांस्तु स सम्भ्रमात्।
नेत्यचः केचित् तत्रस्था एवमेवापरे ब्रुवन्॥१६५॥
श्रुत्वा दुःखी तदा राजा देवान् शरणमीयिवान्।
स्वस्ति कुर्व्वन्तु मे देवाः शैव्याया बालकस्य च॥
नमो धर्म्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे।
परावराय शुद्धाय पुराणायाव्ययाय च॥१६७॥
नमो वृहस्पते तुभ्यं नमस्ते वासवाय च।
एवमुक्त्वा स राजा तु युक्तः पुक्कसकर्म्मणि॥१६८॥
शवानां मूल्यकरणे पुनर्नष्टस्मृतिर्यथा।
मलिनो जटिलः कृष्णो लकुटी विह्वलो नृपः॥१६९॥
नैव पुत्रो न भार्य्या तु तस्य वै स्मृतिगोचरे।
नष्टोत्साहो राज्यनाशात् श्मशाने निवसंस्तदा१७०॥

हाय करती हुई तथा 'मुझे बचाओ' यह शब्द करती हुई जारही है और फिर देखा कि वहाँ धर्म राज की आज्ञा से॥ १५५॥ अन्तरिक्ष से आवाज़ आई कि हे राजा! इधर आओ, विश्वामित्र कहते हैं कि यमराज तुमको बुलाते हैं॥१५६॥ इस प्रकार कहे जाने पर नागपाश से बाँधकर राजा को बल पूर्वक लेजाया गया। विश्वदेवों ने कहा कि इसकी यह दशा विश्वामित्र के कारण है॥ १५७॥ वहीं पर उनकी दशा विश्वामित्र ने शाप देकर खराब करदी और फिर उसकी वह सब हालत जो गुज़र रही थी स्वप्न में दिखाई दी॥ १५८॥ उसको वे सब भोगते हुए बारह वर्ष व्यतीत हुए तिस पीछे वह फिर यमदूतों द्वारा यमराज के पास ले जाया गया॥ १५९॥ वहाँ उसने यमराजको देखा जिसने कहा 'हे राजन्! महात्मा विश्वामित्र के कोप को कोई निवारण नहीं करसकता"॥१६०॥ वह विश्वामित्र तेरे पुत्र की मृत्यु का भी कारण होगा। अब तू मनुष्यलोक को जा और शेष दुःख को भोग। समय बीतने पर हे राजन्! तेरा कल्याण होगा॥ स्वप्न में इसी तरह बारह वर्ष तक दुःख भोगने के बाद वह राजा यमदूतों द्वारा स्वर्ग से नीचे गिरा दिया गया॥ १६२॥ फिर यमलोक से गिरने के भय से आँखें खुल गईं और होश में आने पर सोचने लगा कि मैंने स्वप्नमें बड़ा कष्ट पाया॥१६३॥ स्वप्न में मैंने जो महान् दुःख देखा उसका अन्त नहीं है। जो कुछ मैंने स्वप्न में देखा है वह मुझे बारह वर्ष पर्यन्त भोगना पड़ेगा॥१६४॥ फिर उसने उस स्थान के डोमों से स्वप्नका सब हाल कहकर पूछा तो उनमें से कुछ ने कहा कि ये सब किसी दूसरे के साथ होगा॥१६५॥ यह सुनकर उस राजा ने दुःखित होकर देवताओं की शरणली और कहा कि देवता लोग मेरी स्त्री शैव्या व बालक कल्याण करें॥ १६६॥ हे महान् धर्म! आपको नमस्कार है और श्रीकृष्णचन्द्र को भी जो परम श्रेष्ठ, शुद्ध, पुराण और अव्यय हैं नमस्कार है॥ हे बृहस्पति! हे इन्द्र! आपको नमस्कार है। कहकर वह राजा डोम-कर्म में संलग्न होग ॥१६८॥ और फिर स्मृति नष्ट होकर मलिन, जटिल कृष्णवर्ण तथा लकुटी हाथ में लिये हुए व्याकुलसा वह राजा मुर्दों पर कर वसूल करता था॥ १६९॥ फिर पुत्र और भार्याको विस्मरण कर और हीनता के कारण राज्यपाट को भी भूलकर वह स्मशान में रहने लगा॥१७०॥ उससमय अपने

अथाजगाम स्वसुतं मृतमादाय लापिनी ।
भार्य्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्ट हि बालकम् ॥१७१॥
हा वत्स हा पुत्र शिशो इत्येवं वदती मुहुः ।
कृशा विवर्णा विमनाः पांशुध्वस्तशिरोरुहा ॥१७२॥
हा राजन्नद्य बालं त्वं पश्य सोमं महीतले ।
रममाणं पुरा दृष्टं दष्टं पुष्टाहिना मृतम् ॥१७३॥
तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः ।
जगाम त्वरितोऽत्रेति भविता मृतकम्बलः ॥१७४॥
स तां रोरुदतीं भार्य्यां नाभ्यजानात्तु पार्थिवः ।
चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम् ॥१७५॥
सापि तं चारुकेशान्तं पुरा दृष्ट्वा जटालकम् ।
नाभ्यजानान्नृपसुता शुष्कवृक्षोपमं नृपम् ॥१७६॥
सोऽपि कृष्णपटे बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम् ।
नरेन्द्रलक्षणोपेतं चिन्तामाप नरेश्वरः ॥१७७॥
अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः ।
जातो नीतः कृतान्तेन कामप्याशां दुरात्मना ॥१७८॥
एवं दृष्ट्वा हि मे बालं मातुरुत्सङ्गशायिनम् ।
स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहिताश्वोऽब्जलोचनः ॥१७९॥
सोऽप्येतामेव मे वत्सो वयोऽवस्थामुपागतः ।
नीतो यदि न घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम् ॥१८०॥

राजपत्न्युवाच

[illegible]ा वत्स कस्य पापस्य अपध्यानादिदं महत् ।
[illegible]ुःखमापतितं घोरं यस्यान्तो नोपलभ्यते ॥१८१॥
[illegible]ा नाथ राजन् भवता मामनाश्वास्य दुःखिताम् ।
[illegible]ापि सन्तिष्ठता स्थाने विश्रब्धं स्थीयते कथम् ॥१८२॥
[illegible]ाज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्य्यातनयविक्रयः ।
[illegible]रिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधे न कृतं त्वया ॥१८३॥
[illegible]ति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः ।
[illegible]त्यभिज्ञाय दयितां पुत्रञ्च निधनं गतम् ॥१८४॥
कष्टं शैव्येयमेषा हि स बालोऽयमितीरयन् ।
[illegible]रोद दुःखसन्तप्तो मूर्च्छामभिजगाम च ॥१८५॥
[illegible]ा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ।
[illegible] निपपातार्त्ता निश्चेष्टा धरणीतले ॥१८६॥

हुए पुत्र को जिसको सर्प ने काटा था लेकर राजा हरिश्चन्द्र की स्त्री दाह दाहकर्म करने को आई ॥ १७१ ॥ वह कृशाङ्गी, विवर्ण, बेचैन और धूलि से धूसरित रानी 'हा वत्स,हा पुत्र, हा शिशु' यह कहती हुई आई ॥ १७२॥ वह कह रही थी, "हे राजन् ! आज पृथ्वी पर पड़े हुए अपने पुत्र को तुम नहीं देखते हो जो दैववश सर्प के काटने से मृत्यु को प्राप्त हुआहै ॥१७३॥ वह राजा उस स्त्री के रुदन के शब्द को सुनकर शीघ्र मृतक का कर व वस्त्र लेने को वहाँ गया ॥ १७४ ॥ उस राजा ने रोती हुई उस अपनी स्त्री को जिसकी शक्ल चिर वियोग और दुःख से बदल गई थी न पहिचाना ॥ १७५ ॥ और वह रानी भी उस राजा को जिसके पहिले केश थे और अब जटायें थीं और जो अब सूखे वृक्ष के समान क्षीण होगया था न पहिचान सकी ॥ १७६ ॥ फिर उस राजा ने सर्प के विषसे पीड़ित काले कपड़े में लिपटे हुए उस बालकको राजोचित लक्षणों से युक्त देखकर सोचना शुरू किया ॥१७७॥ "अहा ! बड़े कष्ट की बात है, यह किस कुल का बालक है जिसको निर्दयी काल ने अपना ग्रास बनाया" ॥ १७८ ॥ यह देखकर सोचने लगा कि मेरा कमलनेत्र रोहिताश्व भी इसी प्रकार माताकी गोद में रहता था और जो इस समय दूसरे का अभ्यागत है ॥ १७९ ॥ फिर सोचा कि मेरे पुत्र की शक्ल और अवस्था भी ऐसी ही है, सम्भव है निर्दयी काल ने मेरे लड़के को ही उठा लिया हो ॥

रानी बोली—

हे पुत्र ! ये महान् मौन किस पाप से धारण कर रहे हो ? हमारे ऊपर तो ऐसा घोर कष्ट आया है कि जिसका अन्त ही नहीं मिलता है ॥ १८१ ॥ हा राजन् ! हा नाथ ! मुझ दुखिया को छोड़ कर किस स्थान में बैठे हो ? मुझको आकर आप आश्वासन क्यों नहीं देते हो ? ॥ १८२॥ हे विधाता राज्य नाश, बन्धु-बान्धवों का वियोग, स्त्री और पुत्र का विक्रय ! राजर्षि हरिश्चन्द्र को किस प्रकार तुमने ऐसा कर दिया ॥ १८३ ॥ उसका यह वचन सुनकर और अपनी स्त्री को पहिचान कर राजा ने समझा कि पुत्र की मृत्यु होगई और उसी जगह गिर पड़ा ॥१८४॥ "हे शैव्ये ! यह महान् दुःख है कि पुत्र भी मर गया ।" यह कहकर रोता हुआ दुःख से संतप्त होकर वह मूर्छित हो गया ॥१८५॥ वह रानी भी उसको पहिचान कर तथा उसकी वह दशा देखकर दुःखसे मूर्च्छित होकरपृथ्वी पर

चेतः सम्प्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम् ।
विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारावपीड़ितौ ॥१८७॥
राजोवाच
हा वत्स सुकुमारं ते स्वक्षिभ्रूनासिकालकम् ।
पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्य्यते ॥१८८॥
तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् ।
उपगुह्य वदिष्ये कं वत्स वत्सेति सौहृदात् ॥१८६॥
कस्य जानुमणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना ।
ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति ॥१६०॥
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनोहृदयनन्दनः ।
मया कुपित्रा हा वत्स विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥१६१॥
हृत्वा राज्यमशेषं मे ससाधनधनं महत् ।
दवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः ॥१६२॥
अहं दैवाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम् ।
निरीक्षन्नपि घोरेण विषेणान्धीकृतोऽधुना ॥१६३॥
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं वाष्पगद्गदः ।
परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह॥१६४॥
राजपत्न्युवाच
अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते ।
विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ॥१६५॥
तथास्य नासिका तुङ्गा अग्रतोऽधोमुखं गता ।
दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्त्तेर्महात्मनः॥१६६॥
श्मशानमागतः कस्मादद्यैप स नरेश्वरः ।
अपहाय पुत्रशोकं साप्रश्यत् पतितं पतिम् ॥१६७॥
प्रकृष्टा विस्मिता दीना भर्त्तृ पुत्राधिपीड़िता ।
वीक्षन्ती सा ततोऽपश्यद्भर्त्तृ दण्डं जुगुप्सितम्॥१६८॥
श्वपाकाह्वमतो मोहं जगामायतलोचना ।
प्राप्य चेतश्च शनकैः सगद्गदमभाषत ॥१६६॥
धिक् त्वां दैवातिकरुणं निर्म्मर्य्यादं जुगुप्सितम् ।
येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥२००॥
राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्य्या-तनयविक्रयम् ।
प्रापयित्वापि नो मुक्तश्चण्डालोऽयं कृतो नृपः २०१॥
हा राजन् जातसन्तापामित्थं मां धरणीतलात् ।

गिर पड़ी ॥ १८६ ॥ होश में आने पर वे राजा रानी संताप और शोक के भार से पीड़ित विलाप करने लगे ॥ १८७ ॥

राजा बोले—

हा वत्स ! तेरे सुकुमार शरीर, नेत्र, भौंह, और केशों को तथा दीन मुख को देखकर मेरी छाती क्यों नहीं फटती ? ॥ १८८ ॥ "तात" "तात" ऐसी मीठी वाणी से बोलता हुआ अब कौन मेरी गोदी में आकर बैठेगा और मैं प्रेम से किसको 'वत्स' 'वत्स' कहकर पुकारूँगा ? ॥ १८६ ॥ अब किसके शरीर की रेणु मेरे वस्त्रों व अङ्गोंको मलिन करेगी ? ॥ १६० ॥ अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग से उत्पन्न तथा मेरे मन और हृदयको आनन्द देनेवाला मुझ दुष्ट पिता द्वारा मेरा पुत्र साधारण वस्तु की तरह बेच दिया गया ॥१६१॥ और अशेष राज्य, साधन, धन हरण करके भी निर्दयी दैव ने मेरे पुत्रको सर्प बनकर काट खाया ॥ १६२ ॥ आज मैं दैवरूपी सर्प से काटे हुए कमलरूपी मुख वाले पुत्र को देख रहा हूँ जो कि विष से कृष्णवर्ण हो रहा है ॥ १६३ ॥ यह कहकर उसने आँखों में आँसू भरकर उस बालक को छाती से लगाया और मूर्छा से अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥ १६४ ॥

रानी बोली—

स्वर से यही मेरे पति मालूम होते हैं, मेरे पति राजा हरिश्चन्द्र जो विद्वानों के मनके चन्द्रमा हैं यही हैं, इसमें संशय नहीं ॥ १६५ ॥ वैसी ही इनकी तोते के समान नाक है और दन्तावली फूल की कली के समान है। मेरे पति प्रसिद्ध और महान् आत्मा वाले हैं ॥ १६६ ॥ वह राजा यहाँ इस समय श्मशान में कैसे आये ? वह पुत्र शोक को भूलकर गिरे हुए उन अपने पति को देखने लगी ॥ १६७ ॥ स्वामी और पुत्र के शोक से पीड़ित भय से युक्त हो उसने अपने पति की भीषण यातना को देखा ॥१६८॥ वह विशाल नेत्र वाली यह सोचकर कि उसके स्वामी डोम-कर्म में रत हैं मूर्छित होगई, फिर धीरे-धीरे होश में आकर गद्गद वाणी से बोली ॥ १६६ ॥ हे दैव ! तेरी इस दया (क्रूरता) को धिक्कार है कि इस देवता तुल्य राजा को तूने अमर्यादित होकर चाण्डालपन को पहुँचा दिया ॥ २०० ॥ राज्य नाश, बन्धु-बान्धवों का विछोह, स्त्री और पुत्र का विक्रय, इन सब बातों के होते हुए इसको न छोड़ा और चाण्डाल बना दिया ॥ हे राजन् ! पृथ्वी पर पड़ी हुई सङ्कट को प्राप्त मुझ

उत्थाप्य नाद्य पर्य्यङ्कमारोहेति किमुच्यते ॥२०२॥
नाद्य पश्यामि ते च्छत्रं भृङ्गारमथवा पुनः।
चामरं व्यजनञ्चापि कोऽयं विधिविपर्य्ययः॥२०३॥
यस्याग्रे व्रजतः पूर्व्वं राजानो भृत्यतां गताः।
स्वोत्तरीयैरकुर्व्वन्त नीरजस्कं महीतलम् ॥२०४॥
सोऽयं कपालसंलग्न-घटीघटनिरन्तरे।
मृतनिर्म्माल्यसूत्रान्तर्गूढ़केशे सुदारुणे ॥२०५॥
वसानिस्यन्दसंशुष्क-महीपुटकमण्डिते।
भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थि-मज्जसङ्घट्टभीषणे ॥२०६॥
गृध्र-गोमायुनादात्त-नष्टक्षुद्रविहङ्गमे।
चिताधूमाततिरुचा नीलीकृतदिगन्तरे ॥२०७॥
कुणपास्वादनमुदा सम्प्रहृष्टनिशाचरे।
चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीड़ितः॥२०८॥
एवमुक्त्वा समाश्लिष्य कण्ठं राज्ञो नृपात्मजा।
कष्टशोकशताधारा विललापार्त्तया गिरा ॥२०९॥

राजपत्न्युवाच

राजन् स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान्।
तत् कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम ॥२१०॥
यद्य तदेवं धर्म्मज्ञ नास्ति धर्म्मे सहायता।
तथैव विप्रदेवादिपूजने पालने भुवः ॥२११॥
नास्ति धर्म्मः कुतः सत्यमार्ज्जवं चानृशंसता।
यत्र त्वं धर्म्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥२१२॥

पक्षिण ऊचुः

इति तस्या वचः श्रुत्वा निश्वस्योष्णं सगद्गदम्।
कथयामास तन्वंग्या तथा प्राप्ता श्वपाकता ॥२१३॥
रुदित्वा सापि सुचिरं निश्वस्योष्णञ्च दुःखिता।
स्वपुत्रमरणं भीरूर्यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥२१४॥
श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले।
मृतस्य पुत्रस्य तदा जिह्वया लिलिहेन्मुखम् ॥२१५॥

राजोवाच

प्रिये न रोचये दीर्घं कालं क्लेशमुपासितुम्।
नात्मायत्तश्च तन्वङ्गि पश्य मे मन्दभाग्यताम् ॥२१६॥

को आप उठाकर पलङ्ग पर क्यों नहीं सुलाते और मुझसे बोलते हैं ?॥२०२॥ ये विधिकी कैसी वामता है कि आज मैं तुम्हारे पास छत्र, चमर, पंखा आदि कुछ भी नहीं देखती हूँ ॥२०३॥ जिसके आगे आगे पहिले राजा लोग सेवकत्व को प्राप्त हो अपने उत्तरीय वस्त्रों से मार्ग की धूलि साफ़ करते थे ॥ २०४ ॥ वह राजा इस घोर स्मशान में जहाँ कपाल, मृतकों के वस्त्र, निर्माल्य सूत्र, केश, आदि हैं ॥ २०५ ॥ और जहाँ रुधिर और वसा से सूखे हुए दौनों, मुर्दों की राख और अधजली हड्डियों और मज्जा के ढेरों से भीषणता छारही है ॥२०६॥ और जो स्थान कि गिद्ध, गोमायु और दुष्ट पक्षियों के भीषण नाद से आर्त होरहाहै और जहाँ चिताओं के धूँए से दिशायें काली होरही हैं ॥ २०७ ॥ जहाँ राक्षस लोग मुर्दों को खाकर उन्मत्त होरहे हैं ऐसे स्मशान में दुःख से पीड़ित यह राजा रहता है ॥ २०८ ॥ यह कहकर रानी राजा के कण्ठ से लिपट गई और आर्त वाणी से शोक समुद्रमें डूबी हुई विलाप करने लगी ॥ २०९ ॥

रानी बोली—

हे राजन्! यह स्वप्न है अथवा तथ्य, आपका क्या मत है ? क्या मुझको मोह होगयाहै ? हे महा बाहु ! मुझसे सब हाल कहिये ॥ २१० ॥ अगर यह ठीक ऐसा ही है तो हे धर्मज्ञ ! धर्म अथवा ब्राह्मण और अग्नि की पूजा व पालन में कुछ तत्व नहीं है ॥२११॥ यदि धर्म ही नहीं है तो सत्य, शील और दया भी कहाँ है जो आप सरीखे धर्मात्मा की जिसने राज्य तक दान कर दिया उनकी ऐसी दशा हैं ॥ २१२ ॥

पक्षी बोले—

इस प्रकार उसके वचन सुनकर गद्गद होकर राजाने गर्म सांस ली और जिस प्रकार चांडालता को प्राप्त किया वह कह सुनाया ॥ २१३ ॥ और अपने पुत्र के मरने से दुःखित रानी ने भी खूब रोते हुए तथा दुःखित होकर गर्म श्वास लेते हुए अपना वृत्तांत सुनाया ॥ २१४॥ राजा उसके वचन सुनकर पृथ्वी पर गिर गया और मरे हुए अपने पुत्र को जीभ से चाटने लगा ॥ २१५ ॥

राजा बोला—

हे प्रिये ! मेरे दुर्भाग्य को देखो मैं दीर्घ कालसे क्लेशों में पड़ा हुआ हूँ । अब ये सब कुछ सहन नहीं होता ॥ २१६ ॥

चण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ।
चण्डालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ॥२१७॥
नरके च पतिष्यामि कीटकः कृमिभोजनः ।
वैतरण्यां महापूय-वसासृक-स्नायुपिच्छिले ॥२१८॥
असिपत्रवने प्राप्य च्छेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ।
तापं प्राप्स्यामि वा प्राप्य महारौरवरौरवौ ॥२१९॥
मग्नस्य दुःखजलधौ पारः प्राणवियोजनम् ।
एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥२२०॥
मम दैवाम्बुवेगेन मग्नः सोऽपि बलीयसा ।
कथं प्राणान् विमुञ्चामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः २२१
अथवा नार्त्तिना क्लिष्टो नरः पापमवेक्षते ।
तिर्य्यक्त्वे नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा २२२॥
वैतरण्यां कुतस्ताद्दृग्याद्दृशं पुत्रविप्लवे ।
सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥२२३॥
निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं कुकृतं मम ।
अनुज्ञाता च गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ॥२२४॥
मम वाक्यञ्च तन्वङ्गि निबोधाहतमानसा ।
यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥२२५॥
परत्र सङ्गमो भूयात् पुत्रेण सह च त्वया ।
इह लोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति ममेङ्गितम् ॥२२६॥
त्वया सह मम श्रेयो गमनं पुत्रमार्गणे ।
यन्मया हसता किञ्चिद्रहस्ये वा शुचिस्मिते ॥२२७॥
अश्लीलमुक्तं तत् सर्व्वं क्षन्तव्यं मम याचतः ।
राजपत्नीति गर्व्वेण नावज्ञेयः स ते द्विजः ॥२२८॥
सर्व्वयत्नेन ते तोष्यः स्वामिदैवतवच्छुभे ॥२२९॥

राजपत्न्युवाच

अहमप्यत्र राजर्षे दीप्यमाने हुताशने ।
दुःखभारासहाद्यैव सह यास्यामि वै त्वया ॥२३०॥
सह स्वर्गञ्च नरकं सहैवायाहि भुङ्क्ष्व हे ।
श्रुत्वा राजा ततोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥२३१॥

यदि चाण्डाल की आज्ञा बिना लिये हुए अग्नि में जलता हूँ तो फिर दूसरे जन्म में भी चाण्डाल की दासता करनी होगी ॥ २१७ ॥ तथा नरक में जाकर कीटों का भोजन करना होगा और वैतरणी नदी में रहकर मांस, मज्जा और रुधिर पान करना होगा ॥ २१८ ॥ तथा असिपत्र नामक वन में जहाँ भीषण छेदन होता है जाना पड़ेगा और रौरव एवं महा रौरव नरकों में पहुँचकर घोर दुःख उठाना पड़ेगा ॥ २१९ ॥ इस दुःख के समुद्र में डूबकर मरने से तो प्राण छोड़ना उत्तम है, ऐसा भी विचार करता हूँ । कारण कि वंश चलाने वाला एक पुत्र था वह भी ॥ २२० ॥ बल पूर्वक दैवरूपी जल के वेग में डूब गया अर्थात् सर्प के काटने से मर गया । अब मैं दुर्म्मति स्वर्ग नरक का विचार करके प्राणोंको क्यों नहीं छोड़ता हूँ ? ॥ २२१ ॥ तथा यह भी विचार करता हूँ कि दुःख से पीड़ित मनुष्य पाप को नहीं देखता है । तिर्यक योनि और असिपत्र वन में भी इतना दुख नहीं है ॥ २२२ ॥ अथवा वैतरणी में भी इतना दुख कहाँ है जितना कि पुत्र के वियोग में है । इसलिये पुत्र के शरीर में अग्नि लगाते समय ॥ २२३ ॥ उस अग्नि में गिरपड़ूंगा । हे सुन्दर शरीर वाली ! मेरी त्रुटियों को क्षमा करना । मेरी तुमको आज्ञा है कि तुम विप्र के घर जाओ ॥ २२४॥ हे कोमलाङ्गी ! मन लगाकर मेरे वचनों को सुनो, यदि तुमने दान हवन किया और गुरु ब्राह्मण को संतुष्ट किया तो ॥२२५॥ परलोक में मेरा, तुम्हारा और पुत्रका सङ्गम हो जावेगा । इस लोक में तो मेरी इच्छा के अनुसार कुछ भी न होगा ॥ २२६ ॥ पुत्र के मार्ग परहीं तुम्हें और मुझे जाना श्रेष्ठ है और हे पवित्र मुख वाली ! यहाँ एकान्तमें जो कुछ मैंने॥२२७॥अनुचित बात तुमसे कही हो वह सब मेरी याचना करने से क्षमा करना, तथा कभी राजपत्नी होने के गर्व में ब्राह्मण की अवज्ञा न करना ॥२२८ ॥ सब प्रकार से अपने स्वामी उस ब्राह्मण को सेवा से सन्तुष्ट करना चाहिये ॥२२९ ॥

रानी बोली—

हे राजर्षि ! मैं भी अग्नि प्रज्वलित होतेही दुख भार को न सह सकने के कारण आपके साथ जलूंगी ॥ २३० ॥ वहाँ पर साथ ही हम लोग स्वर्ग या नरक को भोगेंगे । राजा ने उसके यह वचन सुनकर कहा कि—"हे पतिव्रते ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो" ॥ २३१ ॥

पक्षिण ऊचुः

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् ।
भार्य्यया सहितश्चासौ बद्धाञ्जलिपुटस्तदा ॥२३२॥
चिन्तयन् परमात्मानमीशं नारायणं हरिम् ।
हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम् ॥२३३॥
अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं शुभम् ।
तस्य चिन्तयमानस्य सर्व्वे देवाः सवासवाः ॥२३४॥
धर्म्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ।
आगत्य सर्व्वे प्रोचुस्ते भो भो राजन् शृणु प्रभो २३५॥
तव चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः समागताः ।
अयं पितामहः साक्षाद्धर्म्मश्च भगवान् स्वयम् ॥२३६॥
साध्याश्च विश्वे मरुतो लोकपालाः सवाहनाः ।
नागाः सिद्धाः सगन्धर्व्वा रुद्राश्चैव तथाश्विनौ २३७
एते चान्ये च बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ॥२३८॥

धर्म्मउवाच

मा राजन् साहसं कार्षीर्धर्म्मोऽहं त्वामुपागतः ।
तितिक्षा-दम-सत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः ॥२३९॥

इन्द्र उवाच

हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ।
त्वया सभार्य्यपुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥२४०॥
आरोह त्रिदिवं राजन् भार्य्यापुत्रसमन्वितः ।
सुदुष्प्राप्यं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्म्मभिः ॥२४१॥

पक्षिण ऊचुः

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ।
इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः ॥२४२॥
पुष्पवर्षञ्च सुमहद्देवदुन्दुभिनिस्वनम् ।
ततस्ततो वर्त्तमाने समाजे देवसंकुले ॥२४३॥
समुत्तस्थौ ततः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
सुकुमारतनुः सुस्थः प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥२४४॥
ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं क्षणात् ।
सभार्य्यः स श्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥
सुस्थः सम्पूर्णहृदयो मुदा परमया युतः ।
बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनमभाषत ॥२४६॥
सभार्य्यस्त्वं सपुत्रश्च प्राप्स्यसे सद्गतिं पराम् ।

पक्षी बोले—

फिर राजा ने चिता बनाकर अपने पुत्र को उस पर रक्खा और रानी सहित हाथ जोड़कर ॥२३२॥ जड़ चेतन के हृदय में वासकरने परमात्मा का जो ईश्वर, नारायण, हरि, वासुदेव और देवेश्वर हैं स्मरण किया ॥ २३३ ॥ जन्म मरण से रहित, पीताम्बरधारी, परब्रह्म, परमेश्वर का ध्यान करते हुए इन्द्र सहित सब देवता ॥ २३४ ॥ धर्म को आगे करके जल्दीसे वहाँ आये और सब वहाँ आकर बोले, 'हे राजन् ! तुम निर्दोष हो" ॥२३५ ॥ तुम्हारे ध्यान करने से सब देवता आये हैं । यह साक्षात् ब्रह्मा हैं, तथा स्वयं भगवान् धर्म भी उपस्थित हैं ॥२३६॥ विश्वदेवों सहित साध्य, पवन चारणों सहित लोकपाल, नाग, बृहस्पति सहित सिद्ध नाग, रुद्रगण और अश्विनी कुमार ॥ २३७ ॥ यह तथा अन्य बहुत से और विश्वामित्र भी यहाँ मौजूद हैं ॥ २३८ ॥

धर्मराज बोले—

हे राजन् ! ऐसा साहस मतकरो, मैं धर्म तुम्हारे पास आया हूँ । तुमने मुझे तितिक्षादम आदि गुणों से संतुष्ट किया है ॥ २३९ ॥

इन्द्र बोला—

हे महाभाग हरिश्चन्द्र ! मैं इन्द्र तुम्हारे पास आयाहूँ, तुमने अपने पुत्र और स्त्री सहित सनातन लोकों को जीता है ॥ २४० ॥ हे राजन् ! अब तुम अपनी स्त्री व पुत्र के सहित स्वर्ग को चलो, तुमने अपने शुभ कर्मों से जिसको प्राप्त किया है वह दूसरों को दुर्लभ है ॥२४१ ॥

पक्षी बोले—

फिर इन्द्र ने सुख पूर्वक अमृत जो मृत्यु का नाशक है आकाश से चिता के मध्य में छिड़का ॥२४२ ॥ तब पुष्प वर्षा हुई तथा महान् दुन्दुभी नाद हुआ । उस समय देवताओं के इस समारोह में ॥ २४३ ॥ उस महात्मा राजा का पुत्र स्वस्थ, प्रसन्न चित्त और सुकुमारहोकरजीवित हो उठा ॥ फिर राजा हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र को छाती से लगाया तथा सब लोग सुन्दर वस्त्राभूषण और मालाओंसे शोभाको प्राप्तहुए ॥२४५॥ राजाने सम्पूर्ण स्वस्थता और हृदय में आनन्द प्राप्त किया । उस समय इन्द्र ने उससे कहा ॥ २४६ ॥ हे महाभाग ! तुम अपने शुभ कर्मों के कारण अपने पुत्र और स्त्री

समारोह महाभाग निजानां कर्म्मणां फलैः ॥२४७॥

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन वै ।
अगत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्येऽहं सुरालयम् ॥२४८॥

धर्म्म उवाच

तवैनं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया ।
आत्मा श्वपाकतां नीतो दर्शितं तत्स्वपुक्सं ॥२४९॥

इन्द्र उवाच

प्रार्थ्यते यत् परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि ।
तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥२५०॥

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यश्चैतन्निबोध मे ।
प्रसादसुमुखं यत् त्वां ब्रवीमि प्रश्रयान्वितः ॥२५१॥
मच्छोकमग्नमनसः कोशलानगरे जनाः ।
तिष्ठन्ति तानपोह्याद्य कथं यास्याम्यहं दिवम् ॥२५२॥
ब्रह्महत्या गुरोर्घाती गोवधः स्त्रीवधस्तथा ।
तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ॥२५३॥
भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतः सुखम् ।
नेह नामुत्र पश्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज ॥२५४॥
यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर ।
ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह ॥२५५॥

इन्द्र उवाच

बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै पृथक् ।
कथं सङ्घातभोग्यं त्वं भूयः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥२५६॥

हरिश्चन्द्र उवाच

शक्र भुङ्क्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम् ।
यजते च महायज्ञैः कर्म्म पौर्त्तं करोति च ॥२५७॥
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्व्वमनुष्ठितम् ।
उपकर्तॄन् न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥२५८॥
तस्माद्यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम् ।
दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥२५९॥
बहुकालोपभोग्यं हि फलं यन्मम कर्म्मणः ।
तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ॥२६०॥

सहित स्वर्ग लोक को चलकर सद्गति को प्राप्त होओ ॥ २४७ ॥

हरिश्चन्द्र बोले--

हे देवराज ! स्वामी श्वपच की आज्ञा बिना उसका निरादर करके मैं स्वर्गको न जाऊँगा ॥२४८॥

धर्मराज बोले--

तुमने मेरी माया से इस प्रकार कष्ट पाया है । मैंने ही डोम होकर तुमको चांडाल बनाया था ॥२४९॥

इन्द्र ने कहा—

हे हरिश्चन्द्रजी ! पृथ्वी पर समस्त मनुष्य जिस स्वर्ग के लिये प्रार्थना करतेहैं उस पुण्यश्लोक स्थान को तुम चलो ॥ २५० ॥

हरिश्चन्द्र बोले--

हे देवराज ! आपको नमस्कार है, इस मेरे वचन को आप सुनिये । चूँकि आपकी मेरे ऊपर कृपा है इसलिये विनय पूर्वक कहता हूँ ॥ २५१ ॥ अयोध्या नगर निवासी मेरे विरह की अग्नि में जल रहे हैं, उन लोगों को ऐसी दशा में छोड़कर मैं किस तरह स्वर्ग को जाऊँ ॥ २५२ ॥ जो पाप ब्रह्म हत्या, गुरु हत्या, गौ वध, स्त्री वध, आदिका है वैसा ही पाप भक्त को त्यागने में है ॥२५३॥ सेवा करने वाले भक्तों को और देखे हुए सुख को छोड़ कर अनदेखे सुख की ओर जाना उचित नहीं है इसलिये हे इन्द्र ! आप स्वर्ग को जाइये ॥ २५४ ॥ हे सुरेन्द्र ! यदि वे सब स्वर्ग को साथ २ चलें तो मैं भी जाऊँगा अन्यथा उनके साथ नरक को भी जाने को उद्यत हूँ ॥ २५५ ॥

इन्द्र बोले—

उन लोगोंके बहुत से पाप और पुण्य अलग अलग हैं । तुम उनके साथ भोगों को भोगते हुए किस प्रकार स्वर्ग प्राप्त कर सकोगे ? ॥ २५६ ॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे इन्द्र ! प्रजाओं के द्रव्यसे राज्य भोगा तथा महा यज्ञ आदि सुकर्म किये ॥ २५७ ॥ चूँकि उनके प्रभाव से अर्थात् उनके कारण से यज्ञादिक का अनुष्ठान हुआ अतः वे भी उपकार के भागी हैं, स्वर्ग की इच्छा से उनका साथ न छोड़ूंगा ॥ २५८ ॥ इसलिये हे देवेश ! मेरा जो कुछ अनुष्ठान, दान, यज्ञ, जप का पुण्य है वह सब मेरा प्रजा के साथ है ॥ २५९ ॥ मेरे कर्मों का दण्ड या पुण्य फल जो कुछ भी हो वह आपकी कृपासे प्रजाजनों के साथ ही होना चाहिये ॥ २६० ॥

पक्षिण ऊचुः

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रसन्नचेता धर्म्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ॥२६१॥
विमानकोटिसम्बद्धं स्वर्गलोकान्महीतलम् ।
चकार देव देवेश लोकानुग्रह कारिणा ॥२६२॥
गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्याश्रमैर्युतं ।
हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः २६३॥
आगच्छत जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभं ।
धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वे युष्माभिरेव च ॥२६४॥
विमानकोटिसंबाध मन्तरिक्षं महीतलं ।
कृत्वायोध्याजनं प्राह दिवमारुह्यतामिति ॥२६५॥

पक्षिण ऊचुः

तदिन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीत्या तस्य च भूपतेः ।
आनीय रोहिताश्वञ्च विश्वामित्रो महातपाः२६६॥
अयोध्याख्ये पुरे रम्ये सोऽभ्यसिञ्चन्नृपात्मजम् ।
देवैश्च मुनिभिः सिद्धै रभिषिच्य नराधिपम् ॥२६७
राज्ञा सह तदा सर्व्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः ।
सपुत्रभृत्यदारास्ते दिवमारुरुहुर्जनाः ॥२६८॥
पदे पदे विमानात् ते विमानमगमन् नराः ।
तदा सम्भूतहर्षोऽसौ हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥२६९॥
सम्प्राप्य भूतिमतुलां विमानैः स महीपतिः ।
आसाञ्चक्रे पुराकारे वप्रप्राकारसंवृते ॥२७०॥
ततस्तस्यर्द्धिमालोक्य श्लोकं तत्रोशना जगौ ।
दैत्याचार्य्यो महाभागः सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्२७१॥

शुक्र उवाच

अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत् ।
यदागतो हरिश्चन्द्रः पुरीञ्चेन्द्रत्वमाप्तवान्॥२७२॥

पक्षिण ऊचुः

एतत् ते सर्व्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रविचेष्टितम् ।
यः शृणोति स दुःखार्त्तः स सुखं लभते महत्॥२७३॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं सुखार्थी सुखमाप्नुयात् ।
भार्य्यार्थी प्राप्नुयात् भार्यां-
राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥२७४॥

पक्षी बोले—

"इसी प्रकार होगा" यह कहकर त्रिभुवनपति इन्द्र, धर्म और गाधि पुत्र विश्वामित्र प्रसन्न चित्त हुए ॥ २६१ ॥ देवताओं और उनके अधिपति इन्द्र ने लोकों पर दया करके करोड़ों विमान स्वर्ग से पृथ्वीतल तक जोड़ दिये ॥ २६२ ॥ और नगर में जाकर सब चारों आश्रमों में रहने वाली प्रजा को राजा हरिश्चन्द्र के निकट इकट्ठा करके इन्द्र बोले ॥ २६३ ॥ "हे प्रजाजनो ! जो स्वर्गलोक अत्यन्त ही दुर्लभ है उसको आप सब लोग धर्म के बल से चलिये"॥ २६४॥ करोड़ों विमानों को स्वर्गसे पृथ्वी तक लगा कर अयोध्या निवासियों से स्वर्ग चलने को इन्द्रदेव ने कहा ॥२६५ ॥

पक्षी बोले—

इन्द्र के वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने प्रेम पूर्वक अपने पुत्र रोहिताश्व को बुलाया ॥ २६६ ॥ रम्य अयोध्यापुरी का राज्य देवताओं, ऋषियों और इन्द्र सहित राजा ने अपने प्रिय पुत्र रोहिताश्व को दिया ॥ २६७ ॥ उस समय सब प्रजाजन बहुत प्रसन्न होकर अपने-अपने पुत्र, स्त्री और सेवकों के सहित राजा के साथ स्वर्ग को चले ॥ २६८ ॥ क्षण-क्षण में एक विमान से दूसरे विमान पर प्रजाजन जा रहे थे और उनके साथ प्रसन्न होकर राजा हरिश्चन्द्र भी ॥ २६९ ॥ वह राजा हरिश्चंद्र अतुल विमानोंके साथ स्वर्ग द्वारपर पहुँचे जहाँ पर सब मकान जवाहिरात के बने हुए थे ॥ २७० ॥ उन सब लोगों को स्वर्ग में आया हुआ देखकर दैत्यों के आचार्य, सब शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाले, महाभाग शुक्राचार्य उनके पास स्वर्ग में गये ॥ २७१ ॥

शुक्र बोले—

अहा ! तितिक्षा और दान का महान् फल है जिससे राजा हरिश्चन्द्र नगर सहित स्वर्ग को चले गये ॥ २७२ ॥

पक्षी बोले—

हे जैमिनिजी ! इस प्रकार हमने राजा हरिश्चंद्र की कथा आपसे कही। इसको जो सुनता है वह दुःखी भी महान् सुख को प्राप्त करता है ॥ २७३ ॥ पुत्र की कामना करने वाला पुत्र प्राप्त करता है, सुख की वांछा करने वाला सुख पाता है, स्त्री की इच्छा करने वाला स्त्री और राज्य की इच्छा करने वाला राज्य को पाता है ॥ २७४ ॥ उसकी संग्राम

संग्रामे विजयस्तस्य न च स्यान्नारकी गतिः।
अतः परं कथाशेषः श्रूयतां मुनिसत्तम ॥२७५॥
विपाको राजसूयस्य पृथिवीजयकारकः।
तद्विपाकनिमित्तञ्च युद्धमाड़िवकं महत् ॥२७६॥
विश्वामित्र वशिष्ठाभ्यां शापदोषादभूत्ततः ॥२७७॥

में विजय होती है और उसकी नारकी गति नहीं होती है इसलिये इसमें जो कथा शेष है उसको भी हे जैमिनिजी! सुनो ॥ २७५ ॥ जिस प्रकार राजसूय यज्ञ का फल पृथ्वी पर जय का देने वाला है उसी प्रकार सारस और बगुले की लड़ाई का भी महान् फल है ॥ २७६ ॥ जो विश्वामित्र और वशिष्ठमें शापके दोष से आपस में हुई ॥२७७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में हरिश्चन्द्र उपाख्यान नाम का आठवाँ अध्याय समाप्त।



नवां अध्याय

पक्षिण ऊचुः

राज्यच्युते हरिश्चन्द्र गते च त्रिदशालयम्।
निश्चक्राम महातेजा जलवासात् पुरोहितः ॥ १ ॥
वशिष्ठो द्वादशाब्दान्ते गङ्गापर्य्युषितो मुनिः।
शुश्राव च समस्तन्तु विश्वामित्रविचेष्टितम् ॥ २ ॥
हरिश्चन्द्रस्य नाशञ्च राज्ञश्चोदारकर्म्मणः।
चण्डालसम्प्रयोगञ्च भार्य्या-तनयविक्रयम् ॥ ३ ॥
स श्रुत्वा सुमहाभागः प्रीतिमानवनीपतौ।
चकार कोपं तेजस्वी विश्वामित्रमृषिं प्रति ॥ ४ ॥

पक्षी बोले —

राज्यच्युत होकर राजा हरिश्चन्द्र के स्वर्ग में पहुँचनेपर उनके परम तेजस्वी पुरोहित श्रीवशिष्ठजी जलवास से निकले ॥ १ ॥ मुनि वशिष्ठजी सङ्कल्प के कारण गङ्गाजल में बारह वर्ष रहने के बाद बाहर निकले और उन्होंने विश्वामित्र की सब कार्यवाही सुनी ॥ २ ॥ उदार कर्म हरिश्चन्द्र के राज्य का नाश, उनका चाण्डाल होना तथा उनकी स्त्री और पुत्र का विक्रय आदि बातें सुनीं ॥ ३ ॥ यह सब बातें सुनकर और राजा के प्रेम में विह्वल होकर तेजस्वी वशिष्ठजीने विश्वामित्र के प्रति क्रोध करके कहा ॥ ४ ॥

वशिष्ठ उवाच

मम पुत्रशतं तेन विश्वामित्रेण घातितम्।
तत्रापि नाभवत् क्रोधस्तादृशो यादृशोऽद्यमे ॥ ५ ॥
श्रुत्वा नराधिपमिमं स्वराज्यादवरोपितम्।
महात्मानं महाभागं देवब्राह्मणपूजकम् ॥ ६ ॥
यस्मात् स सत्यवाक् शान्तः शत्रावपि विमत्सरः।
अनागाश्चैव धर्म्मात्मा अप्रमत्तो मदाश्रयः ॥ ७ ॥
सपत्नीभृत्यपुत्रस्तु प्रापितोऽन्त्यां दशां नृपः।
स राज्याच्च्यावितोऽनेन बहुशश्च खिलीकृतः॥ ८ ॥
तस्माद्दुरात्मा ब्रह्मद्विट् प्राज्ञानामवरोपितः।
मच्छापोपहतो मूढः स वकत्वमवाप्स्यति ॥ ९ ॥

वशिष्ठ बोले—

हे विश्वामित्र ! तुमने मेरे सौ पुत्रों का वध किया था उस समय भी मुझे इतना क्रोध न हुआ था जितना आज है ॥ ५ ॥ मैंने सुना कि राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिये अपना राज्य भी छोड़ दिया, ऐसे महात्मा, महाभाग, देव-ब्राह्मण-पूजक ॥ ६ ॥ और सत्यवान्, क्षमा करने वाले, शत्रुओं से भी वैर भाव नहींहै जिनको ऐसे, निष्पाप, धर्मात्मा, निरभिमानी, मेरे भक्त राजा को ॥७ ॥ पत्नी, पुत्र और सेवक सहित इस दशा को पहुँचा दिया तथा उसका राज्य हरण करके बहुत व्याकुल किया ॥ ८ ॥ इसलिये दुरात्मा, ब्रह्मद्वेषी, यज्ञों को नष्ट करने वाला मूढ़ विश्वामित्र मेरे शापसे बगुले के शरीर को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

पक्षिण ऊचुः

श्रुत्वा शापं महातेजा विश्वामित्रोऽपि कौशिकः।
त्वमप्याड़िर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत ॥१०॥

पक्षी बोले—

जब विश्वामित्र ने वशिष्ठजी का शाप सुना तब क्रोध करके वशिष्ठजी से कहा कि मेरे शापसे तुम भी सारस हो जाओ ॥ १० ॥ आपस के शाप

अन्योऽन्यशापात् तौ प्राप्तौ तिर्य्यक्त्वं परमद्युती।
वशिष्ठः स महातेजा विश्वामित्रश्च कौशिकः ॥११॥
अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ महाबलपराक्रमौ ॥१२॥
प्रहरन्तौ भयं तीव्रं प्रजानां चक्रतुस्तदा।
विधूय पक्षाणि वको रक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् ॥१३॥
आड़िं सोऽप्युन्नतग्रीवो वकं पद्भ्यामताड़यत्।
तयोः पक्षानिलापास्ताः प्रपेतुर्गिरयो भुवि ॥१४॥
गिरिप्रपाताभिहता चकम्पे च वसुन्धरा।
क्ष्मा कम्पमाना जलधीनुद्वृत्तावूँश्चकार च ॥१५॥
ननाम चैकपार्श्वेन पातालगमनोन्मुखी।
केचिद्गिरिनिपातेन केचिदम्भोधिवारिणा ॥१६॥
केचिन्महीसञ्चलनात् प्रययुः प्राणिनः क्षयम्।
इति सर्व्वं परित्रस्तं हाहाभूतमचेतनम् ॥१७॥
जगदासीत् सुसम्भ्रान्तं पर्य्यस्तक्षितिमण्डलम्।
हा वत्स हा कान्त शिशो प्रयाह्येषोऽस्मि संस्थितः१८
हा प्रिये कान्त शैलोऽयं पतत्याशु पलायताम्।
इत्याकुलीकृते लोके सन्त्रासविमुखे तदा ॥१९॥
सुरैः परिवृतः सर्व्वैराजगाम पितामहः।
प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ॥२०॥
युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्य व्रजन्तु च।
श्रृण्वन्तावपि तौ वाक्यं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥२१॥
कोपामर्षसमाविष्टौ युयुधाते न तस्थतुः।
ततः पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसंक्षयम् ॥२२॥
तयोश्च हितमन्विच्छन् तिर्य्यग्भावमपानुदत् ॥२३॥
ततस्तौ पूर्व्वदेहस्थौ प्राह देवः प्रजापतिः।
व्युदस्ते तामसे भावे वशिष्ठ-कौशिकर्षभौ ॥२४॥
जहि वत्स वशिष्ठ त्वं त्वञ्च कौशिक सत्तम।
तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् ॥२५॥
राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः।
युवयेर्विग्रहश्चायं पृथिवी क्षयकारकः ॥२६॥
न चापि कौशिकश्रेष्ठस्तस्य राज्ञोऽपराध्यते।
स्वर्गप्राप्तिकरो ब्रह्मन्नुपकारपदे स्थितः ॥२७॥
कर्त्तारौ कामक्रोधवशं गतौ।

से महा तेजस्वी वशिष्ठ तथा कौशिक विश्वामित्र ने पक्षी का स्वरूप धारण किया ॥ ११ ॥ दूसरी योनि में जाने पर भी परम तेजस्वी वे दोनों महावली और पराक्रमी परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १२॥ आपस में एक दूसरे पर प्रहार करते हुए सफेद पंख वाले बगुला ने लाल आँखें करके वार किया ॥ १३ ॥ सारस ने भी लम्बी गर्दन करके बगुले को पैरों से मारा, उनके पंखों की हवा से पहाड़ उड़ कर पृथ्वीपर गिरतेथे ॥१४॥ पहाड़ोंके गिरनेसे भूमि कम्पित होगई। पृथ्वीके कम्पित होने से समुद्र की तरङ्गों में ऊथल-पाथल होगई ॥ १५ ॥ पृथ्वी एक अङ्ग से पाताल जाने को उत्सुक होगई। कुछ लोग पहाड़ों के गिरने से, कुछ समुद्र के जल से ॥ १६ ॥ कुछ लोग भूकम्पसे नाशको प्राप्तहुए। इसी प्रकार सब लोग भयभीत हो पृथ्वीतल पर हाहाकार कर रहे थे ॥ १७ ॥ पृथ्वीमण्डल पर जगत् भरमें मूर्छित से होकर लोग 'हा वत्स, हा कान्त, हा शिशु' आदि कहते थे। कुछ कहते थे कि हम जाते हैं ॥ हा प्रिय, हा कान्त यह पर्वत गिरताहै यह कहकर जल्दीसे भागतेहुए लोग भयसे व्याकुल होकर एक दूसरेसे विमुख होगये॥१९॥उससमय सब देवताओं सहित ब्रह्माजी वहाँ आये और उन विश्वेशजी ने उन दोनों क्रोधित हुए ऋषियों से कहा ॥२०॥ अब आप लोग युद्ध बन्द कीजिये जिससे संसार में सुख शान्ति हो।' अव्यक्त जन्मा, पितामह ब्रह्माजी के वाक्य सुनने पर भी ॥२१॥ क्रोध और ईर्ष्या से वे लोग आँखें बिगाड़ते हुए युद्ध करते ही रहे। फिर पितामह ब्रह्माजी ने लोक का नाश देखकर॥ तथा उन दोनों का हित विचार कर उनके पक्षी-भाव को हरण कर लिया ॥ २३ ॥ फिर प्रजापति ब्रह्माजी ने तामसी भाव को छोड़कर पूर्ववत् रूप पाये हुए उन दोनों वशिष्ठ और विश्वामित्र ऋषियों के प्रति कहा ॥ २४ ॥ हे पुत्र वशिष्ठ व विश्वामित्र! तुमने अपने महत्व को छोड़कर और तामसी भाव का आश्रयलेकर इस प्रकार युद्ध कियाहै ॥२५॥ क्या राजा हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ का यह फल होना चाहिये कि आप लोगों के पारस्परिक युद्ध से पृथ्वी का नाश होजाय ? ॥ २६ ॥ हे वशिष्ठजी ! विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र के साथ कोई अपराध नहीं किया है, वरन् उनका उपकार ही किया है जो उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कराई है ॥ २७ ॥ काम और क्रोध तपमें विघ्न उपस्थित करते हैं, इसलिये

परित्यजत भद्रं वो ब्रह्म हि प्रचुरं बलम् ॥२८॥
एवमुक्तौ ततस्तेन लज्जितौ तावुभावपि।
क्षमयामासतुः प्रीत्या परिष्वज्य परस्परम् ॥२६॥
ततः सुरैर्वन्द्यमानो ब्रह्मा लोकं निजं ययौ।
वशिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कौशिकोऽपि स्वमाश्रमम् ॥
एतदाड़िवकं युद्धं हरिश्चन्द्रकथां तथा।
कथयिष्यन्ति ये मर्त्याः सम्यक् श्रोष्यन्ति चैव ये३१॥
तेषां पापापनोदन्तु श्रुतं ह्येव करिष्यति।
न चैव विघ्नकार्य्याणि भविष्यन्ति कदाचन ॥३२॥

इस अमङ्गलकारी क्रोध को छोड़ो। तपस्या ब्राह्मण का बल है ॥२८॥ ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर वे दोनों बहुत लज्जित हुए और एक दूसरे को क्षमा कर प्रीति पूर्वक मिल गये ॥२६॥ इसके अनन्तर देवताओं से पूजित होकर ब्रह्माजी अपने लोक को गये तथा वशिष्ठ और विश्वामित्रजी भी अपने २ आश्रम को गये ॥३०॥ इस प्रकार सारस और बगुले की लड़ाई तथा हरिश्चन्द्र की कथा को जो कोई कहेंगे अथवा भली प्रकार सुनेंगे ॥३१॥ उनके पापों का नाश होगा तथा इनकी कथा सुन कर जो कोई व्यक्ति कार्य करेगा उसको कोई विघ्न उपस्थित न होंगे ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में आड़ी बक युद्ध नाम नवाँ अध्याय समाप्त।

दसवां अध्याय

जैमिनिरुवाच

संशयं द्विजशार्दूलाः प्रब्रूत मम पृच्छतः।
आविर्भाव-तिरोभावौ भूतानां यत्र संस्थितौ ॥ १ ॥
कथं सञ्जायते जन्तुः कथं वा स विवर्द्धते।
कथं वोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीड़ितः ॥ २ ॥
निष्क्रान्तिमुदरात् प्राप्य कथं वा वृद्धिमृच्छति।
उत्क्रान्तिकाले च कथंचिद्भावेन नियुज्यते ॥ ३ ॥
कृत्स्नो मृतस्तथाश्नाति उभे सुकृत-दुष्कृते।
कथं ते च तथा तस्य फलं सम्पादयन्त्युत ॥ ४ ॥
कथं न जीर्य्यते तत्र पिण्डीकृत इवाशये।
स्त्रीकोष्ठे यत्र जीर्य्यन्ते भुक्तानि सुगुरूण्यपि ॥
भक्ष्याणि यत्र नो जन्तुर्जीर्य्यते कथमल्पकः ॥ ५ ॥
एतन्मे ब्रूत सकलं सन्देहोक्तिविवर्जितम्।
तदेतत् परमं गुह्यं यत्र मुह्यन्ति जन्तवः ॥ ६ ॥

जैमिनिजी बोले—

हे पक्षिराज! जो मुझे संशय है उसको भी मैं पूछता हूँ सो कहिये, इस संसारमें जो जन्म मरणकी स्थितिहै॥१॥सो यह जीव किसप्रकार उत्पन्न होताहै, किस तरह वह बढ़ता है, किस तरह वह उदर में पीड़ा सहता हुआ ठहरता है? ॥२॥ उदर से किस प्रकार बाहर होकर वृद्धि को प्राप्त होता है? पेट से बाहर आने के समय वह किस भाव में स्थित होता है ॥३॥ अपने सुकृत व दुष्कृत का फल किस प्रकार पाता है तथा मरने के बाद वह किस प्रकार भोग करता है? ॥४॥ स्त्रीके गर्भाशय में पिण्डी के समान रहने वाला यह छोटा सा जीव स्त्री के कोष्ठ में क्यों नहीं जल जाता जिसमें अति कठिन वस्तुयें भी पच जाती हैं? ॥५॥ इस लिए मुझको कहकर संदेह रहित कर दीजिये, कारण कि यह विषय गुप्त है और इसकी बाबत लोग भ्रम में हैं ॥६॥

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासु निवेशितः।
दुर्भाव्यः सर्व्वभूतानां भावाभावसमाश्रितः ॥ ७ ॥
तं शृणुष्व महाभाग यथा प्राह पितुः पुरा।
पुत्रः परमधर्म्मात्मा सुमतिर्नाम नामतः ॥ ८ ॥
ब्राह्मणो भार्गवः कश्चित् सुतमाह महामतिः।

पक्षी बोले—

हे जैमिनि ऋषि! आपने इस प्रश्न का अतुल भार हम पर रख दिया है। यह प्रश्न भाव और अभाव के संयुक्त तथा दुर्भाव्य है ॥७॥ हे महाभाग! परम धर्मात्मा सुमति नाम पुत्र ने पूर्वकाल में जो कुछ अपने पिता से कहा था वह सुनो ॥८॥ एक विद्वान् भृगु वंशी ब्राह्मण का जड़रूप एक पुत्र

कृतोपनयनं शान्तं सुमतिं जड़रूपिणम् ॥ ९ ॥
वेदानधीष्व सुमते यथानुक्रमसादितः ।
गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृतभोजनः ॥१०॥
ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् ।
इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथा वनं ततः ॥११॥
वनस्थश्च ततो वत्स परिव्राड्निष्परिग्रहः ।
एवमाप्स्यसि तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ॥१२॥

पक्षिण ऊचुः

इत्येवमुक्तो बहुशो जड़त्वान्नाह किंचन ।
पितापि तं सुबहुशः प्राह प्रीत्या पुनः पुनः ॥१३॥
इति पित्रा सुतस्नेहात् प्रलोभि मधुराक्षरम् ।
स चोद्यमानो बहुशः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥१४॥
तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं यत् त्वयाद्योपदिश्यते ।
तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च १५
जन्मनामयुतं साग्रं मम स्मृतिपथं गतम् ।
निर्वेदाः परितोषाश्च क्षयवृद्ध्युदये रताः ॥१६॥
शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः सङ्गमास्तथा ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा ॥१७॥
अनुभूतानि सौख्यनि दुःखानि च सहस्रशः ।
बान्धवा बहवः प्राप्ताः पितरश्च पृथग्विधाः ॥१८॥
विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोषितम् ।
पीड़ाश्च सुभृशं प्राप्ता रोगाणाञ्च सहस्रशः ॥१९॥
गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा ।
वृद्धतायां तथाप्तानि तानि सर्व्वाणि संस्मरे ॥२०॥
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्राणाञ्चापि योनिषु ।
पुनश्च पशुकीटानां मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥२१॥
तथैव राजभृत्यानां राज्ञाञ्चाहवशालिनाम् ।
समुत्पन्नोऽस्मि गेहेषु तथैव तव वेश्मनि ॥२२॥
भृत्यत्वं दासताञ्चैव गतोऽस्मि बहुशो नृणाम् ।
स्वामित्वमीश्वरत्वंच दरिद्रत्वं तथा गतः ॥२३॥
हतं मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातितं तथा ।
दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥२४॥
मातृ-सुहृद्भ्रातृ-कलत्रादिकृतेन च ।

सुमति नाम वाला था। पिता ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराया ॥ ९ ॥ पिता ने अपने पुत्र से कहा, "हे सुमति! क्रम पूर्वक वेदों को पढ़ो और गुरू की सेवा में रहकर भिक्षा मांगकर भोजन किया करो ॥ १० ॥ इसके बाद ग्रहस्थ धर्म में प्रविष्ट होकर उत्तम यज्ञों को करते हुए पुत्र उत्पन्न करो और फिर उसके बाद वनवास ग्रहण करो ॥ ११ ॥ फिर वाणप्रस्थ में जाकर सन्यास ग्रहण करो। इससे ब्रह्म में पहुंचोगे जहां जाकर शोक रहित होजाओगे ॥ १२ ॥

पक्षी बोले—

इस प्रकार बहुत कुछ समझाये जाने पर भी वह जड़ पुत्र कुछ न बोला। पिता ने भी प्रीति पूर्वक बार बार कहा ॥ १३ ॥ पुत्र-स्नेह से मीठे २ अक्षरों में पिता के बहुत बार कहने पर सुमति हँस कर यह बोला ॥१४॥ हे तात! आपने जो अभी उपदेश किया है इसका मैंने बहुत अभ्यास किया है। इसी प्रकार शिल्प विद्या आदि अन्य शास्त्रों का भी अध्ययन किया है ॥ १५ ॥ मेरे स्मृति पटल पर हज़ारों जन्मों का वृतान्त अङ्कित है। निर्वेद और परितोष आदि ज्ञानभी मुझे प्राप्त हैं ॥१६॥ मुझे अनेकों शत्रु, मित्र और स्त्री आदिकोंकावियोग तथा संयोग प्राप्त हुआ और अनेकों पिता तथा मातायें भी हुईं ॥ १७ ॥ मैंने हज़ारों ही तरह के दुख तथा सुखों का अनुभव किया है। तथा अनेक प्रकार के वन्धु तथा पिता मेरे हुए हैं ॥ १८ ॥ अनेक स्त्रियों के गर्भ में जिनमें विष्ठा और मूत्र भरा है मैं रहा हूँ तथा सहस्त्रों रोग और पीड़ायें मुझको हुईं ॥१९॥ जितने भी दुःख मैंने बाल्य, यौवन और वृद्ध अवस्थाओं में उठाये हैं वे सब मुझे याद हैं ॥२०॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग तथा पक्षियों की अनेक योनियों में मैं उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ तथा राजसेवकों और बलशाली राजाओं के घर में मेरा जन्म हुआ। अन्त में अब मैं आपके घर में जन्मा हूँ ॥ २२ ॥ मैं बहुत से मनुष्यों की दासता में रहा हूँ और इसी प्रकार बहुतों का स्वामी। मैं कभी धनी हुआ और कभी दरिद्री ॥२३॥ कभी मैंने मारा है और कितनी ही बार मैं दूसरों से मारा गया हूँ। कभी मुझे दूसरों ने दान दिया है और कभी मैंने दूसरों को दान दिया है ॥ २४ ॥ पिता, माता, मित्र, भाई, स्त्री से कितनी वार संतुष्ट हुआ हूँ और

तुष्टोऽसकृत् तथा दैन्यमश्रुधौताननो गतः ॥२५॥
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमता तात सङ्कटे।
ज्ञानमेतन्मया प्राप्तं मोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ॥२६॥
विज्ञाते यत्र सर्व्वोऽयमृग्यजुः सामसंज्ञितः।
क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक् प्रतिभाति मे॥२७॥
तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम्।
गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मनः ॥२८॥
षट्प्रकारक्रिया-दुःख-सुख-हर्ष-रसैश्च यत्।
गुणैश्च वर्ज्जितं ब्रह्म तत् प्राप्स्यामि परं पदम्॥२९॥
रस-हर्ष-भयोद्वेग-क्रोधामर्ष-जरातुराम्।
विज्ञातां श्वमृगग्राहि-संघपाशशताकुलाम् ॥३०॥
तस्माद्दयास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसन्ततिम्।
त्रयीधर्म्ममधर्म्माढ्यं किम्पाकफलसन्निभम् ॥३१॥

पक्षिण ऊचुः

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षविस्मयगद्गदम्।
पिता प्राह महाभागः स्वसुतं हृष्टमानसः ॥३२

पितोवाच

किमेतद्वदसे वत्स कुतस्ते ज्ञानसम्भवः।
केन ते जड़ता पूर्व्वमिदानीञ्च प्रबुद्धता ॥३३॥
किन्नु शापविकारोऽयं मुनिदेवकृतस्तव।
यत् ते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥३४॥
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्व्वं परं कौतूहलं हि मे।
सर्व्वं तद्ब्रूहि मे वत्स यथा वृत्तं पुरा तव ॥३५॥

पुत्र उवाच

शृणु तात यथा वृत्तं ममेदं सुख-दुःखदम्।
यश्चाहमासमन्यस्मिन् जन्मन्यस्मत्परन्तु यत् ॥३६॥
अहमासं पुरा विप्रो न्यस्तात्मा परमात्मनि।
आत्मविद्याविचारेषु परां निष्ठामुपागतः ॥३७॥
सततं योगयुक्तस्य सतताभ्याससङ्गमात्।
सत्संयोगात् स्वस्वभावाद्विचारविधिशोधनात्॥३८॥
तस्मिन्नेव परा प्रीतिर्ममासीद्युञ्जतः सदा।
आचार्य्यताञ्च सम्प्राप्तः शिष्यसन्देहहृत्तमः ॥३९॥

कभी-कभी इनके वियोग में रोया हूँ ॥२५॥ हे तात! इस प्रकार इस संसार चक्र में कष्ट पूर्वक भ्रमण करते-करते मुझे यह ज्ञान जो मोक्ष-प्राप्ति का साधन है मिला ॥२६॥ उस ज्ञान के कारण मुझे वह क्रिया कलाप जो ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद में वर्णित है अच्छा नहीं लगता है ॥२७॥ मुझको वेद से क्या प्रयोजन, जबकि मुझे ज्ञान उत्पन्न हो गया है और मैं गुरु के ज्ञान से तृप्त हुआ निरभिलाषी तथा आत्मज्ञानी हूँ ॥२८॥ छः प्रकार की क्रिया दुःख, सुख, हर्ष, रस, गुण इन सब से परे परब्रह्म पद को प्राप्त करूँगा ॥२९॥ रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, आमर्ष और जरा से व्याकुल मनुष्य शत पाश में बंधे हुए श्वान और मृगों के समान हैं ॥३०॥ इसलिये मैं इस प्रकार दुःख उत्पन्न करने वाली सन्तति को पैदा न कर परम पद को जाऊँगा। तीनों वेदों द्वारा कहे हुए धर्मरूपी अधर्म का अवलम्बन करने के बराबर पाप और कौन सा है? ॥३१॥

पक्षी बोले—

उसका वह वचन सुनकर हर्ष और आश्चर्य से गद्गद होकर पिता ने प्रसन्न होकर अपने पुत्र से पूछा ॥३२॥

पिता बोले—

हे वत्स! यह तुम क्या कहते हो, तुमको ज्ञान कैसे हुआ? कहाँ तुम्हारी पुरानी जड़ता और कहाँ यह विकसित ज्ञान? ॥३३॥ क्या किसी मुनि या देवता के शापके कारण ये विकारथा? तुम्हारा छिपा हुआ ज्ञान अब किस प्रकार प्रगट हुआ? ॥ हे वत्स! मैं तुम्हारा पूर्व वृत्तान्त सब सुनना चाहता हूँ। मुझे अत्यन्त कौतूहल है, तुम सब हाल कहो ॥३५॥

पुत्र बोला—

हे तात! सुनिये कि जिस प्रकार मेरा सुख और दुःखपूर्ण वृत्तान्त एक जन्म से दूसरे जन्म पर्यन्त मुझे स्मरण रहा ॥३६॥ मैं प्राचीन काल में परमात्मा में लीन एक ब्राह्मण था जो आत्म-ज्ञान के निरन्तर विचार से परम निष्ठा को प्राप्त हुआ॥३७॥ निरन्तर योगयुक्त तथा योग का अभ्यास करने से सत्सङ्ग में रहने से, अच्छी प्रकृति व विचारविधि शोधन से ॥३८॥ मुझे परब्रह्म में परम प्रीति हुई और मैं उसके साथ संलग्न होगया। इसके बाद मैं आचार्यत्व को प्राप्त कर शिष्यों के सन्देहों की निवृत्ति करने लगा ॥३९॥ फिर कुछ काल व्यतीत

ततः कालेन महता ऐकान्तिकमुपागतः ।
अज्ञानाकृष्टसद्भावो विपन्नश्च प्रमादतः ॥४०॥
उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽभवत् ।
यावदब्दं गतंचैव जन्मनां स्मृतिमागतम् ॥४१॥
पूर्व्वाभ्यासेन तेनैव सोऽहं तात जितेन्द्रियः ।
यतिष्यामि तथा कर्त्तुं न भविष्ये यथा पुनः ॥४२॥
ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्जातिस्मरणं मम ।
न ह्येतत् प्राप्यते तात त्रयीधर्म्माश्रितैर्नरैः ॥४३॥
सोऽहं पूर्व्वाश्रमादेव निष्ठाधर्म्ममुपाश्रितः ।
ऐकान्तित्वमुपागम्य यतिष्याम्यात्मसमीक्षणे ॥४४॥
तद्ब्रूहि त्वं महाभाग यत् ते सांशयिकं हृदि ।
एतावतापि ते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥४५॥

पक्षिण ऊचुः

पिता प्राह ततः पुत्रं श्रद्दधत् तस्य तद्वचः ।
भवता यद्वयं पृष्टाः संसारग्रहणाश्रयम् ॥४६॥

पुत्र उवाच

शृणु तात यथा तत्त्वमनुभूतं मयाऽसकृत् ।
संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥४७॥
सोऽहं वदामि ते सर्व्वं तवैवानुज्ञया पितः ।
उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥४८॥
उष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ।
भिनत्ति मर्म्मस्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः ॥४९॥
उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्द्ध्वं प्रवर्त्तते ।
भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥५०॥
ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा ।
दत्ताः स तस्य आह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥५१॥
अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा ।
सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाप्यन्नेन वै तदा ॥५२॥
येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च ।
आस्तिकः श्रद्दधानश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥५३॥
देवब्राह्मणपूजा यां ये रता नानुसूयवः ।
शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥५४॥
यो न कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्म्ममुत्सृजेत् ।
...ी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥५५॥

होने पर अज्ञानता के कारण मेरा सात्विकी भाव निकल गया और मैं मोह को प्राप्त होकर मृत्यु के वश हुआ ॥४०॥ अनेक जन्मों की बातें मुझे यादहैं, किस-किस जन्म में कितने-कितने वर्ष जीवित रहा यह मुझको स्मरण है ॥ ४१ ॥ हे तात! उसी पूर्व के अभ्यास से मैं जितेन्द्रिय हूँ और इस तरह यत्न करना चाहताहूँ कि जिससे मुझे फिर अज्ञान न हो ॥४२॥ मेरे ज्ञान के दान का फल यही है कि मुझे सब जन्मों का वृत्तान्त स्मरण है । ऐसी स्थिति त्रयी धर्म में आश्रित मनुष्यों को प्राप्त नहीं है ॥ ४३ ॥ मुझे पूर्व के आश्रम के कारण देवनिष्ठा धर्म प्राप्त है और अब मैं एकान्त वास कर अपनी मोक्ष का यत्न करूँगा ॥४४॥ इसलिये हे महाभाग! जो कुछ तुम्हें संशय हो उसे कहो, उसकी निवृत्ति कर मैं आपके ऋण से मुक्त हो जाऊँगा ॥ ४५ ॥

पक्षी बोले—

हे जैमिनिजी! जो प्रश्न आपने हमसे पूछे हैं वही प्रश्न पिताने उस अपने पुत्रसे श्रद्धापूर्वक पूछे॥

पुत्र बोला—

हे पिता! जिस तत्व को मैंने अनुभव किया है उसको सुनिये। यह संसारचक्र बड़ा अजरहै इस में किसी की स्थिति नहीं है अर्थात् इस संसार में सब चक्रवत् घूमते हैं ॥ ४७ ॥ हे पिता आपकी आज्ञा से उस सब वृत्तान्त को उत्पत्ति के समय से मरण पर्यन्त कहूँगा कि जिस प्रकार कोई दूसरा न कह सकेगा ॥ ४८ ॥ शरीर में स्थित ऊष्मा तीव्र वायु से प्रेरित हुई कुपित होकर मर्म स्थानों को काटती है और विना ईंधन के ही अग्नि प्रज्वलित करती है ॥ ४९ ॥ उदान नाम की वायु जो कुछ खाया या पिया जाता है उसे नीचे की ओर ले जाती है ॥ ५० ॥ अन्न और जल जो कि भोजन और पान में दिया जाता है उससे मनुष्य को आह्लाद हो जाता है ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा से पवित्र चित्त होकर अन्न का दान करता है वह मरने पर विना अन्न के भी तृप्ति को प्राप्त होता है॥ जो झूठ नहीं बोलते हैं, जो किसीका अपकार नहीं करते, जो आस्तिक और श्रद्धावान् हैं वे सुखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ५३ ॥ जो लोग ब्राह्मण और देवताओं की पूजा करते हैं, किसी की निन्दा नहीं करते, सात्विक तथा उचित भाषण करने वाले हैं, ऐसे महानुभाव सुख से मृत्यु को प्राप्त करते हैं ॥ जो लोग अपने स्वार्थ के लिये धर्मको नहीं छोड़ते हैं, निष्कपट हैं, उचित कर्म करते हैं और सौम्य हैं

अवारिदायिनो दाहं क्षुधाश्चानन्नदायिनः ।
प्राप्नुवन्ति नराःकाले तस्मिन् मृत्यावुपस्थिते॥५६॥
शीतं जयन्तीन्धनदास्तापं चन्दनदायिनः ।
प्राणघ्नीं वेदनां कष्टां ये चानुद्वेगकारिणः ॥५७॥
मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्भयम् ।
वेदनाभिरुदग्राभिः प्रपीड्यन्तेऽधमा नराः ॥५८॥
कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्ति वै ।
ते मोहमृत्यवः सर्व्वे तथा वेदविनिन्दकाः ॥५९॥
विभीषणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः ।
आगच्छन्ति दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तदा ॥६०॥
प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः ।
क्रन्दत्यविरतं सोऽथ भ्रातृ-मातृ-सुतानथ ॥६१॥
सास्य वागस्फुटा तात एकवर्णा विभाव्यते ।
दृष्टिश्च भ्राम्यते त्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ६२॥
ऊर्द्ध्वश्वासान्वितः सोऽथदृष्टिभङ्गसमन्वितः ।
ततः स वेदनाविष्टस्तच्छरीरं विमुञ्चति ॥६३॥
वाय्वग्रसारी तद्रूपं देहमन्यत् प्रपद्यते ।
तत्कर्म्मजं यातनार्थं न मातृ-पितृसम्भवम् ।
तत्प्रमाणवयोऽवस्था-संस्थानैः प्राग्भवं यथा ॥६४॥
ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः ।
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम् ॥६५॥
कुश-कण्टक-वल्मीक-शंकु-पाषाणकर्कशे ।
तथा प्रदीप्तज्वलने क्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥६६॥
प्रदीप्तादित्यतप्ते च दह्यमाने तदंशुभिः ।
कृष्यते यमदूतैश्चाशिवसन्नादभीषणैः ॥६७॥
विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः ।
प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्म्मा यमक्षयम् ॥६८॥
छत्रोपानत्प्रदातारो ये च वस्त्रप्रदा नराः ।
ते यान्ति मनुजा मार्गं तं सुखेन तथान्नदाः ॥६९॥
एवं क्लेशाननुभवन्नवशः पापपीड़ितः ।
नीयते द्वादशाहेन धर्म्मराजपुरं नरः ॥७०॥

वे सुख पूर्वक मरते हैं ॥ ५५ ॥ जो लोग प्यासे को पानी और भूखे को अन्न देते हैं उनको मृत्यु के बाद अन्न और पानी मिलता है ॥ ५६ ॥ जो लोग जाड़ों में ईंधन देते हैं उनको मरते समय ठण्डनहीं लगती है तथा जो लोग चन्दन देते हैं उनको उस समय गर्मी नहीं लगती है ॥ ५७ ॥ जो मोह और अज्ञान फैलाते हैं वे दुष्ट मनुष्य उग्र वेदनाओं से पीड़ित होते हुए महान् भय को प्राप्त होते हैं॥५८॥ जो झूठी गवाही देता है, झूंठ बोलता है, अनुचित आदेश करता है, तथा वेद की निन्दा करने वाले लोग ये सब मृत्युकाल में मूर्च्छाग्रस्त होते हैं॥५९॥ ऐसे मनुष्यों के लिये यमराज के भयानक, दुर्गन्ध-युक्त, हाथ में मुद्गर लिये हुए तथा दुष्टात्मा दूत आते हैं ॥६०॥ उन दूतों को आते हुए देखकर वह मनुष्य काँपने लगता है तथा भाई, माता, पिता, पुत्र आदि को सम्बोधन कर रोता है ॥ ६१ ॥ उस समय हे तात ! वह मनुष्य विक्षिप्त की तरह अस्त व्यस्त बोलने लगता है, उसकी दृष्टि चक्कर खा जाती है तथा उसका श्वास और मुँह सूख जाता है ॥ ६२ ॥ ऊर्द्ध श्वास लेता हुआ, दृष्टि भंग होकर और वेदना से युक्त वह मनुष्य शरीर त्याग देताहै ॥६३॥ और वायु के साथ उसी हालत में दूसरे शरीर में जो विना मा बाप के उत्पन्न हुआ है ... कर्मजन्य यातना भोगने के लिये है जाता है। ... अवस्था और उम्र उसकी पहिले शरीर में थी उसे इस शरीर में भी मालुम होती है ॥६४॥ ... अनन्तर यमदूत उसे शीघ्र कठिन पाशोंसे बाँ... डण्डे से मारता हुआ दक्षिण दिशा की ओर ... जाता है ॥६५॥ जो मार्ग कुश, काँटा, वल्मीक, पा... पाण आदि से पूर्ण है तथा जिसमें कहीं आ... बरसती है और जो कहीं अग्निखण्डों से उत्क... हो रहा है ॥ ६६ ॥ जिसमें कहीं सूर्य की ... तपन है तथा उसकी किरणों से शरीर जलता ... ऐसे मार्ग से यमदूत मनुष्य को घसीटते हुए ... भयानक दुःसह शब्द कहते हुए ले जाते हैं ॥ ६७ इस प्रकार यमदूतों का घसीटा हुआ तथा ... गीदड़ों का जो मार्ग में पड़ते हैं खाया हुआ, पापी मनुष्य कठिन मार्ग से जाता है ॥ ६८ ॥ परन्तु छत्री, जूता, वस्त्र, अन्न आदिक दान करने वाले मनुष्य सुख पूर्वक उत्तम मार्ग से जाते हैं ॥ ६९ ॥ उसी प्रकार क्लेश पाता हुआ, परवश और पाप दुःखित वह मनुष्य बारहवें दिन यमपुरी को जाया जाता है ॥ ७० ॥

कलेवरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति ।
ताड्यमाने तथैवार्त्तिं छिद्यमाने च दारुणाम् ॥७१॥
क्लिद्यमाने चिरतरं जन्तुर्दुःखमवाप्नुते ।
स्वेन कर्म्मविपाकेण देहान्तरगतोऽपि सन् ॥७२॥
तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह ।
यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ॥७३॥
तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनश्च यत् ।
तेन चाप्याय्यते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स बान्धवाः ॥७४॥
भूमौ स्वपद्भिर्नात्यन्तं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः ।
दानं ददद्भिश्च तथा जन्तुराप्याय्यते मृतः ॥७५॥
नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति ।
उपभुङ्क्ते तथा दत्तं तोयपिण्डादिकं भुवि ॥७६॥
द्वादशाहात् परं घोरमायसं भीषणाकृतिम् ।
याम्यं पश्यत्यथो जन्तुः कृष्यमाणः पुरं ततः ॥७७॥
क्षणमात्रोऽतिरक्ताक्षं भिन्नाञ्जनचयप्रभम् ।
मृत्यु कालान्तकादीनां मध्ये पश्यति वै यमम् ॥७८॥
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रकुटीदारुणाकृतिम् ।
विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतं व्याधिशतैः प्रभुम् ॥७९॥
दण्डासक्तं महाबाहुं पाशहस्तं सुभैरवम् ।
तन्निर्दिष्टां ततो याति गतिं जन्तुः शुभाशुभाम् ॥८०॥
रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृतो नरः ।
तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्य निशामय ॥८१
योजनानां सहस्रे द्वे रौरवौ हि प्रमाणतः ।
जानुमात्रप्रमाणश्च ततः श्वभ्रः सुदुस्तरः ॥८२॥
तत्राङ्गारचयोपेतं कृतञ्च धरणीसमम् ।
जाज्वल्यमानस्तीव्रेण तापिताङ्गारभूमिणा ॥८३॥
तन्मध्ये पापकर्म्माणं विमुञ्चन्ति यमानुगाः ।
स दह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति ॥८४॥
पदे पदे च पादोऽस्य शीर्य्यते जीर्य्यते पुनः ।
अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासंच गच्छति ॥८५॥
एवं सहस्रमुत्तीर्णो योजनानां विमुच्यते ।
ततोऽन्यं पापशुद्ध्यर्थं तादृङ्निरयमृच्छति ॥८६॥

में अत्यन्त दाह होता है तथा पीटे और छेदे जाने के कारण उसका शरीर आर्त हो जाता है ॥ ७१ ॥ अपने कर्म के फल से जीव अनेक दुःख पाता है तथा दूसरी योनि में प्रवेश करता है ॥ ७२ ॥ उस समय उसके जो भाई वन्धु तिलों के साथ जल दान करते हैं और पिंड देते हैं वह उसको प्राप्त होता है ॥७३॥ और भी बान्धव जो तेल लगाते हैं और स्नान कराते हैं और जो खाते हैं वह सब उसको प्राप्त होता है और इससे उसको आनन्द मिलता है ॥ ७४ ॥ भाई वन्धु भूमि पर सोकर जो तकलीफ उठाते हैं तथा दानादिक करते हैं उससे उस मृतक प्राणी को आनन्द मिलता है ॥ ७५ ॥ यमदूत के साथ जाता हुआ वह बारह दिन तक अपने घर को देखता है और उसके निमित्त दिये हुए पिण्ड और जल को भक्षण करता है ॥ ७६ ॥ बारह दिन के बाद वह घोर और भयानक आकृति वाला यमदूत उस नीचे मुख किये हुए प्राणी को यमपुरी को ले जाता है ॥ ७७ ॥ क्षणमात्र में वह यमराज को देखता है जिसकी लाल-लाल आँखें हैं, जिसकी कान्ति काजल के ढेर के समानहै और जो काल, मृत्यु और अन्तक आदिकों के बीच में बैठा हुआ है ॥ ७८ ॥ जिसका मुख दाँतोंके कारण कराल है और जिसकी भोहें भयानक हैं और जो विरूप, भीषण, वक्र तथा अनेक व्याधियों से चारों ओर से घिरा हुआ बैठा है ॥ ७९ ॥ और जिसके हाथ में दण्ड है, जिसकी भुजायें बड़ी बड़ी हैं, जिसके हाथ में पाश है और जो भयानक है ऐसे यमराज के आदेशानुसार वह जीव शुभ और अशुभ गति को प्राप्त होता है ॥ ८० ॥ जो मनुष्य झूँठी गवाही देता है या मिथ्या भाषण करता है उसको रौरव नरक प्राप्त होता है, अब उस रौरव नरक का हाल सुनिये ॥ ८१ ॥ रौरव नरक का विस्तार दो सहस्र योजन है और जाँघ तक उस की ज़मीन गहरी है ॥ ८२ ॥ वह पृथ्वी अङ्गारों से भरी हुई है और तीव्ररूप से तप्तहुई जलती रहती है ॥८३॥ यमदूत लोग पापी को उस रौरव के बीच में डाल देते हैं और वह पापी तीव्र अग्नि से जलता हुआ इधर उधर दौड़ताहै ॥८४॥ पदपद पर उसका पाँव गल गलकर गिरता है तथा दिन रात इसी प्रकार गल गल कर वह फिर ठीक हो जाता है ॥इसीप्रकार सहस्रों योजन वह फिरता रहताहै, इसके बाद यमदूत उसे पाप शुद्धि के निमित्त नरक का भोग कराने के वास्ते ले जाते हैं ॥ ८६ ॥

ततः सर्व्वेषु निस्तीर्णः पापी तिर्य्यक्त्वमश्नुते।
कृमि-कीट-पतङ्गेषु श्वापदे मशकादिषु ॥८७॥
गत्वा गजद्रुमाद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च।
अन्यासु चैव पापासु दुःखदासु च योनिषु ॥८८॥
मनुषं प्राप्य कुब्जो वा कुत्सितो वामनोऽपि वा।
चण्डालपुक्कसाद्यासु नरो योनिषु जायते ॥८९॥
अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः।
ततश्चारोहणीं जातिं शूद्र-वैश्य-नृपादिकाम् ॥९०॥
विप्रदेवेन्द्रतांचापि कदाचिदवरोहणीम्।
एवन्तु पापकर्म्माणो नरकेषु पतन्त्यधः ॥९१॥
यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मे निगदतः शृणु।
ते यमेन विनिर्दिष्टां यान्ति पुण्यां गतिं नराः॥९२॥
प्रगीतगन्धर्व्वगणाः प्रवृत्ताप्सरसांगणाः।
हारनूपुरमाधुर्य्य-शोभितान्युत्तमानि च ॥९३॥
प्रयान्त्याशु विमानानि नानादिव्यस्रगुज्ज्वलाः।
तस्माच्च प्रच्युता राज्ञामन्येषांच महात्मनाम् ॥९४॥
जायन्ते च कुले तत्र सद्वृत्तपरिपालकाः।
भोगान् सम्प्राप्नुवन्त्युग्रांस्ततो यान्त्यूर्द्ध्वमन्यथा॥
अवरोहणींच सम्प्राप्य पूर्व्ववद्यान्ति मानवाः।
एतत् ते सर्व्वमाख्यातं यथा जन्तुर्विपद्यते।
अतः शृणुष्व विप्रर्षे यथा गर्भं प्रपद्यते ॥९६॥

इसके बाद सब नरकों से निकल कर वह पापी पक्षियों, कृमि, कीट, पतङ्ग, कुत्ता और मच्छरों की योनि में जाता है ॥८७॥ और हाथी, वृक्ष, गाय और घोड़े इत्यादि तथा अन्य पापयुक्त दुःखद योनियों में जाता है ॥८८॥ फिर मनुष्य योनि में प्राप्त होकर कुरूप, कुबड़ा, चाण्डाल, डोम आदि गर्हित योनियों में जन्म पाता है ॥ ८९ ॥ पाप का क्षय हो जाने पर तथा पुण्य के उदय होने पर वह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि योनियों में जन्म लेता है ॥ ९० ॥ इसके बाद कभी ब्राह्मण और देवता के घर में जन्म लेता है। यह वृत्तान्त उन पापियों का है जो नरकों में गिरते हैं ॥९१ ॥ जिस प्रकार पुण्य आत्मा लोग यमपुरी को जाकर धर्मराज की आज्ञा से पुण्य गति को प्राप्त होते हैं वह सुनो ॥ ९२ ॥ गन्धर्वों के गायन से युक्त, अप्सराओं के नृत्य से पूर्ण, तथा हार, नूपुर के माधुर्य की शोभा से युक्त ॥९३॥ विमानों पर बैठकर धर्मात्मा लोग दिव्य मालाओं से भूषित होकर स्वर्ग को जाते हैं, फिर वहाँ से पृथ्वी पर आकर राजाओं या अन्य महात्माओं के ॥ ९४ ॥ कुल में उत्पन्न होकर सद्वृत्ति के पालक होते हैं और अच्छे अच्छे भोग भोग कर पुनः स्वर्ग को जाते हैं ॥ ९५ ॥ इस प्रकार वे जीव पृथ्वी पर आते हैं और फिर स्वर्ग को जाते हैं। हे पिता! मैंने वह सब वृत्तान्त आप से कहा कि जिस तरह जीव को सुख और दुःख होता है अब जिस प्रकार जीव गर्भ में प्राप्त होता है वह वृत्तान्त सुनिये ॥ ९६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में पिता-पुत्र सम्वाद (१) नामक दसवां अध्याय समाप्त।



ग्यारहवां अध्याय

पुत्र उवाच

निषेकं मानवं स्त्रीणां वीजं प्राप्तं रजस्यथ।
विमुक्तमात्रो नरकात् स्वर्गाद्वापि प्रपद्यते ॥ १ ॥
तेनाभिभूतं तत् स्थैर्य्यं याति वीजद्वयं पितः।
कललत्वं बुद्बुदत्वं ततः पेशित्वमेव च ॥ २ ॥
पेश्यां यथाणुवीजं स्यादङ्कुरस्तद्वदुच्यते।
अङ्गानांच तथोत्पत्तिः पंचानामनुभागशः ॥ ३ ॥

पुत्र (सुमति) ने कहा—

जिस समय पुरुष का वीर्य स्त्री के रज से मिलता है उसी समय स्वर्ग अथवा नरक से वह जीव आकर उसमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ हे पिता! वह रज और वीर्य इकट्ठा होकर स्थिर होता है और फिर उबल कर बुलबुले के सदृश होकर पिंड बन जाता है ॥ २ ॥ जिस तरह खेत में अंकुर उत्पन्न होता है उसी तरह वीर्य के पिंड से अंकुर निकलता है और उस पिंडमें से पाँच भाग होकर पाँच अङ्ग उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥ फिर उपा

उपाङ्गान्यङ्गुली-नेत्र-नासास्य-श्रवणानि च ।
प्ररोहं यान्ति चाङ्गेभ्यस्तद्वत् तेभ्यो नखादिकम् ॥४॥
त्वचि रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् ।
समं समृद्धिमायाति तेनैवोद्भवकोषकम् ॥ ५ ॥
नारिकेलफलं यद्वत् सकोषं वृद्धिमृच्छति ।
तद्वत् प्रयात्यसौ वृद्धिं सकोषोऽधोमुखः स्थितः॥ ६ ॥
तले तु जानु-पार्श्वाभ्यां करौ न्यस्य स वर्द्धते ।
अंगुष्ठौ चोपरि न्यस्तौ जान्वोरग्रे तथांगुली ॥ ७ ॥
जानुपृष्ठे तथा नेत्रे जानुमध्ये च नासिका ।
स्फिचौ पार्ष्णिद्वयस्थे च बाहुजङ्घे बहिःस्थिते॥ ८ ॥
एवं वृद्धिं क्रमाद्याति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः ।
अन्यसत्त्वोदरे जन्तोर्यथा रूपं तथा स्थितिः ॥ ९ ॥
काठिन्यमग्निना याति भुक्तपीतेन जीवति ।
पुण्यापुण्याश्रयमयी स्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ॥१०॥
नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यां तस्य निबध्यते ।
स्त्रीणां तथान्त्रशुषिरे सा निबद्धोपजायते ॥११॥
क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे यथा ।
तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै ॥१२
स्मृतीस्तस्य प्रयान्त्यस्यबह्वयः संसारभूमयः ।
ततो निर्व्वेदमायाति पीड्यमान इतस्ततः ॥१३
पुनर्नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात् ।
तथा तथा यतिष्यामि गर्भं नाप्स्याम्यहं यथा ॥१४॥
इति चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै ।
यानि पूर्व्वानुभूतानि दैवभूतानि यानि वै ॥१५॥
ततः कालक्रमाज्जन्तुः परिवर्त्तत्यधोमुखः ।
नवमे दशमे वापि मासि सञ्जायते यतः ॥१६॥
निष्क्राम्यमाणो वातेन प्राजापत्येन पीड्यते ।
निष्क्राम्यते च विलपन् हृदि दुःखनिपीडितः ॥१७॥
निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते ।
प्राप्नोति चेतनांचासौ वायुस्पर्शसमन्वितः ॥१८॥
ततस्तं वैष्णवी माया समास्कन्दति मोहिनी ।

अंगुली, नेत्र, नासिका, कान और नख आदि उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ इसके बाद त्वचा और उसमें रोम आदि उत्पन्न होते हैं और फिर शिर के बाल होते हैं। फिर जिस प्रकार जीव बढ़ता है उसी प्रकार स्त्री का उदर भी बढ़ता है ॥ ५ ॥ नारियल के फल के समान वह जीव स्त्री के उदर में नीचे मुख किये हुए वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ उस की दोनों जंघायें पार्श्वों के साथ रहती हैं और दोनों हाथ जाँघ और पार्श्व के बीच में रहकर बढ़ते हैं। अंगूठा ऊपर की ओर रहता है और अंगुलियाँ जँघाओं से आगेकी ओर निकली रहती हैं ॥ ७ ॥ उसी प्रकार जानु की पीठ पर उसकी आँखें रहती हैं और जाँघों के मध्य में उसकी नासिका होती है, दोनों भुजायें पार्श्वों से सटी रहती हैं ॥ ८ ॥ स्त्री के गर्भ में स्थित जीव इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है । और भी जन्तु जिस रूप के होते हैं उसी प्रकार उनकी स्थिति होती है ॥ ९ ॥ कठिन अग्नि के साथ रहता हुआ जो स्त्री खाती या पीती है वही वह जीव खाता और पीता है। उदर में भी उसको शुभाशुभ कर्म का फल भोगना पड़ता है ॥ १० ॥ और आप्यायनी नाम की नाड़ी से जो स्त्री के अन्दर है उस जीव की तोंदी बंधी रहती है ॥ ११ ॥ जिस तरह खाया और पिया हुआ अन्न पानादि स्त्री के पेटमें घूमता है उसी प्रकार जीव भी घूमता रहता है और स्त्री के खाद्य से ही उसकी भी वृद्धि होती है ॥ १२ ॥ गर्भ में इधर उधर घूमते रहने से उसको पिछले जन्मों की सब दुनियाँ और भूमियों का स्मरण रहता है ॥ १३ ॥ इस गर्भ से मुक्त होते ही फिर ऐसा कोई कार्य नहीं करूँगा और वही यत्न करूँगा जिससे इस गर्भ में पुनः न आना पड़े ॥ यह चिन्ता करता हुआ और सैकड़ों जन्मों का स्मरण कर जो कुछ दैवगति अथवा कर्म फल से हुआ उसका उसको ज्ञान होजाता है ॥ १५ ॥ फिर काल के क्रम से वह नीचे मुख किया हुआ जीव नवमें या दसवें महीने को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ उसके निकलने की इच्छा होने पर प्राजापत्य की प्रेरणा से वायु उसको निकालती है और वह निकल कर पीड़ित हुआ विलाप करता है ॥ १७ ॥ उदर से निकलते ही वह असह्य मूर्च्छा को प्राप्त हो जाता है परन्तु फिर वायु के स्पर्श से उसी समय उसको चेत भी होजाताहै ॥१८॥ तब वैष्णवी माया जो मोहिनीहै उसको आच्छादित कर देतीहै

तया विमोहितात्मासौ ज्ञानभ्रंशमवाप्नुते ॥१९॥
भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते।
ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि ॥२०॥
पुनश्च मरणं तद्वज्जन्म चाप्नोति मानवः।
ततः संसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यते घटियन्त्रवत् ॥२१॥
कदाचित् स्वर्गमाप्नोति कदाचिन्निरयं नरः।
नरकंचैव स्वर्गंच कदाचिच्च मृतोऽश्नुते ॥२२॥
कदाचिदत्रैव पुनर्जातः स्वं कर्म्म सोऽश्नुते।
कदाचिद्भुक्तकर्म्मा च मृतः स्वल्पेन गच्छति ॥२३॥
कदाचिदल्पैश्च ततो जायतेऽत्र शुभाशुभैः।
स्वर्लोके नरके चैव भुक्तप्रायो द्विजोत्तम ॥२४॥
नरकेषु महद्दुःखमेतद्यत् स्वर्गवासिनः।
दृश्यन्ते तात मोदन्ते पात्यमानाश्च नारकाः ॥२५॥
स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः।
प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन्मनसि वर्त्तते ॥२६॥
नारकांश्चैव सम्प्रेक्ष्य महद्दुःखमवाप्यते।
एतां गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः ॥२७॥
गर्भवासे महद्दुःखं जायमानस्य योनितः।
जातस्य बालभावे च वृद्धत्वे दुःखमेव च ॥२८॥
कामेर्ष्या-क्रोधसम्बन्धं यौवने चातिदुःसहम्।
दुःखप्राया वृद्धता च मरणे दुःखमुत्तमम् ॥२९॥
कृष्यमाणस्य याम्यैश्च नरकेषु च पात्यतः।
पुनश्च गर्भो जन्माथ मरणं नरकस्तथा ॥३०॥
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् जन्तवो घटियन्त्रवत्।
भ्राम्यन्ते प्राकृतैर्बन्धैर्बद्ध्वा बध्यन्ति चासकृत् ॥३१॥
नास्ति तात सुखं किञ्चिदत्र दुःखशताकुले।
तस्मान्मोक्षाय यतता कथं सेव्या मया त्रयी ॥३२॥

और उससे विमोहित हो जाने से उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥ ज्ञान भ्रष्ट हो जाने पर जीव बालभाव को प्राप्त होता है और फिर कुमार अवस्था, यौवन और वृद्धता को ॥ २० ॥ वह मरता है और फिर जन्म पाता है। इसी प्रकार संसार चक्र में मनुष्य रहटा के समान ऊपर नीचे घूमता रहता है ॥ २१ ॥ कभी वह स्वर्ग में और कभी नरक में जाता है। और कभी नरक में तथा कभी स्वर्ग में जीता और मरता है ॥ २२ ॥ कभी इस पृथ्वी पर शरीर त्याग कर अपने कर्मानुसार दूसरे जन्म में जाता है और कभी अपने कर्म का भोग करके थोड़े ही काल में मृत्यु पाता है ॥ २३ ॥ हे पिताजी ! कभी शुभ और कभी अशुभ कर्म करने से प्रारब्ध वश जीव जीता और मरता है और कर्मों का फल भोगता हुआ कभी स्वर्ग और कभी नरक को जाता है ॥ २४ ॥ हे पिता ! नरकके महान् दुःखों को देखकर स्वर्गवासी प्रसन्न होते और नारकी दुःखित होते हैं ॥ २५ ॥ जो लोग स्वर्ग में जाते हैं उनको भी अतुल दुःख इस चिन्तामें होता है कि कहीं हम भी इस अग्नि में न गिरें ॥ २६ ॥ नारकी लोगों को देखकर महान् दुःख को प्राप्त होते हैं और दिन रात यही सोचते हैं कि कहीं हमारी भी यह गति न हो जाय ॥ २७ ॥ उस जीव को गर्भ में अथवा गर्भ से निकल कर, बाल्यावस्था अथवा बुढ़ापे में सर्वथा दुःख ही दुःख है ॥ २८ ॥ काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि से यौवन में भी अति दुःख है। बुढ़ापे में भी प्रायः दुःख ही दुःख है, इससे मरण का दुःख उत्तम है ॥ २९ ॥ फिर यमदूतों द्वारा घसीटे जाकर नरकों में गिरते हैं, फिर गर्भ में जन्म लेकर मरते हैं और नरक में जाते हैं ॥ ३० ॥ इसी भांति इस संसार-जाल में घटीयन्त्र की तरह जीव प्रकृति के बन्धनों से बँधा हुआ घूमता फिरता है ॥ ३१ ॥ हे पिताजी ! यहाँ पर सुख किंचित्मात्र भी नहीं है, और सैकड़ों दुःख लगे रहते हैं। इसलिये मोक्ष के लिये यत्न करने वाला मैं त्रयी धर्म का पालन क्या करूँ ? ॥ ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में पिता-पुत्र सम्वाद (२) नामका ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

—:o:—

बारहवां अध्याय

पितोवाच

साधु वत्स त्वयाख्यातं संसारगहनं परम् ।
ज्ञानप्रदानसम्भूतं समाश्रित्य महाफलम् ॥ १ ॥
तत्र ते नरकाः सर्व्वे यथा वै रौरवस्तथा ।
वर्णितास्तान् समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ २ ॥

पुत्र उवाच

रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमं नरको मया ।
महारौरवसंज्ञन्तु शृणुष्व नरकं पितः ॥ ३ ॥
योजनानां सहस्राणि सप्त पंच समन्ततः ।
तत्र ताम्रमयी भूमिरधस्तस्य हुताशनः ॥ ४ ॥
तत्तापतप्ता सर्व्वाशा प्रोद्यदिन्दुसमप्रभा ।
विभात्यतिमहारौद्रा दर्शनस्पर्शनादिषु ॥ ५ ॥
तस्यां बद्धः कराभ्याञ्च पद्भ्याञ्चैव यमानुगैः ।
मुच्यते पापकृन्मध्ये लुठमानः स गच्छति ॥ ६ ॥
काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा ।
भक्ष्यमाणस्तथा गृध्रैर्द्रुतं मार्गे विकृष्यते ॥ ७ ॥
दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्तातेति चाकुलः ।
वदत्यसकृदुद्विग्नो न शान्तिमधिगच्छति ॥ ८ ॥
एवं तस्मान्नरैर्मोक्षो ह्यतिक्रान्तैरवाप्यते ।
वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतं दुष्टबुद्धिभिः ॥ ९ ॥
तथान्यस्तु तमो नाम सोऽतिशीतः स्वभावतः ।
महारौरववद्दीर्घस्तथा स तमसा वृतः ॥१०॥
शीतार्त्तास्तत्र धावन्तो नरास्तमसि दारुणे ।
परस्परं समासाद्य परिरभ्याश्रयन्ति च ॥११॥
दन्तास्तेषाञ्च भज्यन्ते शीतार्त्तिपरिकम्पिताः ।
क्षुत्तृष्णाप्रबलास्तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥१२॥
हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्त्यस्थीनि दारुणः ।
मज्जासृग्गलितं तस्मादश्नुवन्ति क्षुधान्विताः ॥१३॥
लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे ।
एवं तत्रापि सुमहान् क्लेशस्तमसि मानवैः ॥१४॥
ब्राह्मणश्रेष्ठ यावद्दुष्कृतसंक्षयः ।

पिता बोले—

हे साधु पुत्र ! तुमने ज्ञान-प्रदानरूपी महाफल देकर इस गहन वन रूपी संसार का वर्णन किया ॥ १ ॥ हे महामते ! जिस तरह रौरव है उसी तरह अनेक नरक हैं । जिस तरह तुमने रौरव का वर्णन किया उसी तरह विस्तार पूर्वक सब नरकों का वृत्तान्त वर्णन करो ॥ २ ॥

पुत्र बोला—

प्रथम नरक रौरव है जिसका हाल मैंने तुमसे वर्णन किया । हे पिता ! अब महा रौरव नरक का वर्णन सुनिये ॥ ३ ॥ वह चारों तरफ़ से बारह हज़ार योजन है, उसकी भूमि तांबे की है और उसके नीचे अग्नि है ॥ ४ ॥ उसके ताप से सब दिशायें तप्त हैं और उदयकालके चन्द्रमाके समान जिसकी ज्योति है । वह दर्शन और स्पर्शादि के लिये महा भयानक है ॥ ५ ॥ उसी नरक के बीच में यमदूत हाथ और पाँव बाँधकर पापियों को डाल देते हैं और वह पापी उसमें गिरकर लोटताहैं ॥६॥ और कौए, बगुले, हुडार, उल्लू, बिच्छू, मच्छर, गिद्ध आदि उसको मार्ग में खींच-खींच कर खाते हैं ॥ ७ ॥ वह पापी पीड़ित होकर फिर बाप, मा, भाई, तात आदि को पुकारताहै और उद्विग्न होता हुआ कहीं शान्ति नहीं पाता है ॥८॥ सहस्रों वर्षों तक दुष्ट-बुद्धि लोग पाप करने के कारण कष्ट भोग कर उससे मुक्त होते हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकार तम नाम का दूसरा नरक है जो महा रौरव नरक से से भी अधिक दीर्घ है, स्वाभाविकतया जहाँ बहुत सर्दी पड़ती है और जो सदैव अन्धकार से आवृत रहता है ॥ १० ॥ शीत से व्याकुल वहाँ लोग अति दारुण अन्धकार में भागते हैं और एक दूसरे से लिपट कर आश्रय की तलाश में भ्रमण करते हैं ॥ शीत से आर्त होकर काँपते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं, भूख और प्यास से व्याकुल होकर अनेक उपद्रवों से युक्त होते हैं ॥ १२ ॥ हवाओं से उड़ २ कर हिमखण्ड उनकी हड्डियों को तोड़ते हैं और भूख से पीड़ित होकर वे अपने शरीर से गिरे हुए मांस और खून को खाते हैं ॥१३॥ परस्पर समागम में पापी लोग एक दूसरे का शरीर चाटते हैं, इस प्रकार उस महान् अन्धकार में पापी लोग महान् कष्ट पाते हैं ॥१४॥ हे पिता ! जबतक जीवके दुष्कृत का क्षय नहीं होता तबतक वह नरकमें रहता है ।

निकृन्तन इति ख्यातस्ततोऽन्यो नरकोत्तमः ॥१५॥
तस्मिन् कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यविरतं पितः।
तेष्वारोप्य निकृत्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः ॥१६॥
यमानुगांगुलिस्थेन आपादतलमस्तकम्।
न चैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम ॥१७॥
छिन्नानि तेषां शतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्ति च।
एवं वर्षसहस्राणि छिद्यन्ते पापकर्म्मिणः ॥१८॥
तावद्यावदशेषं वै तत्पापं हि क्षयं गतम्।
अप्रतिष्ठञ्च नरकं शृणुष्व गदतो मम ॥१९॥
यत्रस्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते।
तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणि चान्यतः ॥२०॥
दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्म्मकृतां नृणाम्।
चक्रेष्वारोपिताः केचिद्भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः ॥२१॥
यावद्वर्षसहस्राणि न तेषां स्थितिरन्तरा।
घटीयन्त्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी ॥२२॥
भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तः पुनः पुनः।
अस्त्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैः नेत्रैरश्रुविलम्बिभिः ॥२३॥
दुःखानि ते प्राप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः।
असिपत्रवनं नाम नरकं शृणु चापरम् ॥२४॥
योजनानां सहस्रं यो ज्वलदग्न्यास्तृतावनिः।
तप्ताः सूर्य्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीव सुदारुणाः ॥२५॥
प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः।
तन्मध्ये च वनं रम्यं स्निग्धपत्रं विभाव्यते ॥२६॥
पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम।
श्वानश्च तत्र सबलाः स्वनन्त्ययुतशोभिताः ॥२७॥
महावक्त्रा महादंष्ट्रा व्याघ्रा इव भयानकाः।
ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः ॥२८॥
प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तीव्रतृट्परिपीड़िताः।
हा मातर्हा तात इति क्रन्दन्तोऽतीव दुःखिताः ॥२९॥
दह्यमानाङ्घ्रियुगला धरणीस्थेन वह्निना।
तेषां गतानां तत्रासिपत्रपाती समीरणः ॥३०॥
प्रवाति तेन पात्यन्ते तेषां खड्गान्यथोपरि।
ततः पतन्ति ते भूमौ ज्वलत्पावकसञ्चये ॥३१॥

इसके अतिरिक्त निकृन्तन नाम का दूसरा नरक है ॥ १५ ॥ हे पिता ! वह कुम्हार के चाक की तरह अविरल रूप से भ्रमता है और वहाँ पापियों को काल सूत्रसे काटा जाता है ॥ १६ ॥ हे द्विजसत्तम ! यमदूत लोग कालसूत्र अंगुली में लपेट कर उससे पापियों को पाँव से मस्तक तक काट डालते हैं, लेकिन फिर भी उन पापियों की मृत्यु नहीं है ॥ १७ ॥ उनके शरीरों के सैकड़ों खण्ड हो जाते हैं और वे खण्ड पुनः मिलकर एक हो जाते हैं, इस प्रकार वे पापी हज़ारों वर्ष तक छेदे जाते हैं ॥ जब तक उनके पाप क्षय होकर निःशेष नहीं होजाते तब तक उनको उस नरकमें रहना पड़ता है। अब मैं अप्रतिष्ठ नाम नरक का हाल कहता हूँ, उसको सुनिये ॥ १९ ॥ उसमें रहकर नारकी लोग दुःख का अनुभव करते हैं। उसी में चक्र और दूसरे घटीयन्त्र स्थित हैं ॥ २० ॥ पापी लोग दुः पाने के हेतु चक्र पर बैठा कर घुमाये जाते हैं॥२१॥ जब तक हज़ार वर्ष पूरे नहीं होते तब तक उनकी वही स्थिति रहती है। घटीयन्त्र से भी जिस जल का कलश बाँधा जाता है वे बाँधे जाते हैं ॥ २२ ॥ उन मनुष्योंके घूमते-घूमते रुधिर लगता है, अस्त्रों से उनका मुख चौड़ाया जाता है और नेत्रों से उनके आँसू निकला करते हैं ॥ २३ ॥ उन जीवों द्वारा जो असह्य दुःख हैं वे भोगे जाते हैं। अब असिपत्र वन नामक अन्य नरक का वृ० सुनिये ॥ २४ ॥ सहस्र योजन जिसका विस्तार है, और जिसकी पृथ्वी अग्नि से प्रज्वलितहै और प्रचण्ड सूर्य की किरणों से दारुण है ॥२५॥ ... लोग सदा ऐसे नरक में गिराये जाते हैं और उसके मध्य में जो वन है उसमें पत्ते तलवार की तेज़ हैं ॥ २६ ॥ हे द्विजसत्तम ! वहाँ तलवारों पत्ते और फल हैं और वहाँ बड़े-बड़े बलवान् कुत्ते झुण्ड के झुण्ड, भूंकते रहते हैं ॥ २७ ॥ जो बड़े ... वाले हैं और जिनके बड़े दाँत हैं और जो व्याघ्रों समान भयानक हैं। उस वनकी छाया को ... शीत चढ़ आता है ॥ २८ ॥ प्राणी वहाँ प्यास से दुःखित होकर 'हा माता ! हा पिता !' आदि कहकर विलाप करते हुए अति दुःखी होते हैं ॥ २९ ॥ अग्नि से भूमि के जलती रहने के कारण वहाँ पैर जलते हैं। तथा पत्तों के हिलने से तलवारों की तरह चोट लगती है ॥ ३० ॥ पत्तों का ऊपर से गिरना तलवारों की तरह होताहै, ... वे पृथ्वी पर अग्नि के ढेर की तरह गिरते हैं ॥ ३१ ॥

लेलिह्यमाने चान्यत्र व्याप्ताशेषमहीतले ।
सारमेयास्ततः शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः ॥३२॥
तेषामङ्गानि रुदतामनेकान्यतिभीषणाः ।
असिपत्रवनं तात मयैतत् कीर्त्तितं तव ॥३३॥
अतः परं भीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे ।
समन्ततस्तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमावृताः ॥३४॥
ज्वलदग्निचयोद्वृत्ततैलायश्चूर्णपूरिताः ।
तेषु दुष्कृतकर्म्माणो याम्यैः ह्यधोमुखाः ॥३५॥
क्वाथ्यन्ते विस्फुटाद्गात्र-गलन्मज्जजलाविलाः ।
स्फुरत्कपालनेत्रास्थि-च्छिद्यमाना विभीषणैः ॥३६॥
गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः ।
पुनःसिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रजन्ति च ॥३७॥
द्रवीभूतैः शिरोगात्र-स्नायु-मांस-त्वगस्थिभिः ।
ततो याम्यैर्नरैराशु दर्व्या घट्टनघट्टिताः ॥३८॥
कृतावर्त्ते महातैले मथ्यन्ते पापकर्म्मिणः ।
एष ते विस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भो मया पितः ॥३९॥

जीवोंकी जिह्वा बाहर निकल आने के कारण वे पृथ्वी को चाटते से मालुम होते हैं, कुत्ते शीघ्र ही उनके शरीर से लिपट जाते हैं ॥ ३२ ॥ उनके अङ्गों की यह दशा होने के कारण वे रोते हैं । हे तात ! असिपत्र वन का हाल मैंने तुमसे वयान किया ॥ ३३ ॥ अव उससे भी परम भीषण तप्तकुंभ नामक नरक का हाल सुनिये । तप्तकुम्भ के चारों ओर अग्नि की ज्वालायें हैं ॥ ३४ ॥ वह जलती हुई अग्नि, गर्म तेल और वालू से पूर्ण है । उसमें नीचे मुख किये हुए पापकर्म्मी मनुष्यों को यमदूत फेंक देते हैं ॥ ३५ ॥ वहाँ उनके शरीर के अङ्गों का क्वाथ वन जाता है और शरीर गत मज्जा और जल जलता है । उनके कपाल, नेत्र और अस्थियों को वड़े-वड़े भयानक ॥ ३६ ॥ गिद्ध उपाड़कर छोड़ देते हैं फिर उनको उसी दशा में करके यमदूत लोग उन्हें खौलते तेल में डाल देते हैं ॥ ३७ ॥ इस से उनका शिर, गात्र, स्नायु, मांस, त्वचा और अस्थियाँ द्रवीभूत हो जाती हैं । फिर यमदूत लोग हाथ में श्रुवा लेकर उनको उलट-पलट करते हैं ॥ इसी प्रकार खौलते हुए तेल के तप्तकुम्भ में पापियों को मथते हैं । हे पिता ! यह मैंने आपसे तप्तकुम्भ नामक नरक का वर्णन विस्तार पूर्वक कहा ॥ ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें पिता-पुत्र संवादके अंतर रौरवादिनरकाख्यान नाम वारहवाँ अध्याय समाप्त

तेरहवां अध्याय

पुत्र उवाच

अहं वैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तु सप्तमे ।
समतीते गवां रोधं निपाते कृतवान् पुरा ॥ १ ॥
विपाकात् कर्म्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम् ।
सम्प्राप्तोऽग्निशिखाघोरमयोमुखखगाकुलम् ॥ २ ॥
यन्त्रपीड़नगात्रासृक्-प्रवाहोद्भूतकर्दमम् ।
विशस्यमानदुष्कर्म्मि-तन्निपातरवाकुलम् ॥ ३ ॥
पात्यमानस्य मे तत्र साग्रं वर्षशतं गतम् ।
महातापार्त्तितप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्य च ॥ ४ ॥
तत्राह्लादकरः सद्यः पवनः सुखशीतलः ।
करम्भ-वालुकाकुम्भ-मध्यस्थो मे समागतः ॥ ५ ॥
तत्सम्पर्कादशेषाणां नाभवद्यातना नृणाम् ।

पुत्र (सुमति) ने कहा—

इससे सातवें जन्म में मैं वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ था । पानी पीने को जाती हुई गाय को मैंने रोका था ॥ १ ॥ उस पाप कर्म के फलस्वरूप दारुण नरक में मुझे जाना पड़ा जहाँकि अग्निकी शिखायें तथा घोर लोहे के मुख वाले पक्षी भरे हुए थे ॥२॥ जिसमें यन्त्रों की पीड़ा के कारण पापियों के शरीर से रुधिर वहकर अद्भुत कीचड़ की तरह हो रहा था और उनके विलाप करने की ध्वनि हो रही थी ॥ ३ ॥ वहाँ पर गिरकर मुझे सौ वर्ष कठिन ताप से तप्त होते हुए तथा प्यास की दाह सहते हुए व्यतीत होगये ॥ ४ ॥ इसके वाद में ठण्डी वालू के कुम्भ में डाला गया, वहाँ पर आनन्द और सुख देने वाली शीतल पवन चल रही थी ॥ ५ ॥ उसके स्पर्श से नारकी लोगों को यातना नहीं होती थी । जिस प्रकार स्वर्गवासियों को स्वर्गमें निवृत्ति होती

मम चापि यथा स्वर्गे स्वर्गिणां निर्वृतिः परा॥ ६ ॥
किमेतदिति चाह्लाद-विस्तारस्तिमितेक्षणैः।
दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोऽशनिप्रभः।
पुरतो दर्शयन् मार्गमित एहीतिवागथ ॥ ८ ॥
पुरुषः स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसंकुलम्।
नरकं प्राह तं याम्यं किङ्करं कृपयान्वितः ॥ ९ ॥

पुरुष उवाच

भो याम्य पुरुषाचक्ष्व किं मया दुष्कृतं कृतम्।
येनेदं यातनाभीमं प्राप्तोऽस्मि नरकं परम् ॥१०॥
विपश्चिदिति विख्यातो जनकानामहं कुले।
जातो विदेहविषये सम्यङ्मनुजपालकः ॥११॥
यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्म्मतः पालिता मही।
नोत्सृष्टश्चैव संग्रामो नातिथिर्विमुखो गतः ॥१२॥
पितृ-देवर्षि-भृत्याश्च न चापचरिता मया।
कृता स्पृहा च न मया परस्त्रीविभवादिषु ॥१३॥
पर्व्वकालेषु पितरस्तिथिकालेषु देवताः।
पुरुषं स्वयमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥१४॥
यतस्ते विमुखा यान्ति निश्वस्य गृहमेधिनः।
तस्मादिष्टश्च पूर्त्तश्च धर्मौ द्वावपि नश्यतः ॥१५॥
पितृनिश्वासविध्वस्तं सप्तजन्मार्ज्जितं शुभम्।
त्रिजन्मप्रभवं दैवो निश्वासो हन्त्यसंशयम् ॥१६॥
तस्माद्दैवे च पित्र्ये च नित्यमेव हितोऽभवम्।
सोऽहं कथमिमं प्राप्तो नरकं भृशदारुणम् ॥१७॥

है उसी प्रकार मुझे भी वहाँ आनन्द प्राप्त हुआ॥ मुझको विस्मय हुआ कि मुझे इस प्रकार आह्लाद किस तरह हुआ। इतने में वहाँ पर आते हुए एक नर-रत्न को मैंने देखा॥ ७ ॥ उसके आगे एक यम-दूत हाथ में घोर दण्ड लिये हुए और वज्र की सी कान्ति वाला यह कहता हुआ जारहा था ,कि मार्ग यह है इधर आइये ॥ ८ ॥ उस समय वह पुरुष नरकवासियों को सैकड़ों यातनाओं से व्याप्त देख कर और दया से युक्त होकर उस यमदूत से यह बोला ॥ ९ ॥

पुरुष बोला—

हे यमदूत! मुझसे कौनसा पाप हुआ है जिस से इस यातना-गर्हित दारुण नरकको मैं प्राप्त हुआ हूँ॥ १० ॥ मैं राजा जनक के कुल में विपश्चिति नाम प्रख्यात था, मैं सदैव सेवकोंका पालन करता था॥ ११ ॥ मैंने बहुतसे यज्ञ किये और धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन किया। मैंने कभी संग्राम में पीठ नहीं दिखलाई और न कभी किसी अतिथि को विमुख किया॥ १२ ॥ पितृ, देव, ऋषि और सेवकों आदि का मैंने कभी अपकार नहीं किया और मैंने कभी परस्त्री अथवा दूसरे के धन की इच्छा नहीं की॥ १३ ॥ पर्वकाल में पितर और तिथिकाल में देवता मनुष्य के पास इस तरह आते हैं जिस तरह गाय अपने बछड़े को दूध पिलाने के लिये आती है॥ १४ ॥ जिन गृहस्थियों के घर से यह विमुख होकर लौट आते हैं उन मनुष्यों का किया हुआ सम्पूर्ण यज्ञ और धर्म नाशको प्राप्त होताहै॥ पितरों के निराश होने से सात जन्म का इकट्ठा किया हुआ शुभकर्म नष्ट होजाता है और देवता के नैराश्य से निस्सन्देह मनुष्य का तीन जन्म का वैभव नष्ट हो जाता है॥ १६॥ इसलिये मैं देवताओं और पितरों की सदैव पूजा किया करता था, फिर भी मुझे यह दारुण नरक किसप्रकार मिला?॥१७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में वैश्यराज-यमपुरुष संवाद नाम तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

चौदहवाँ अध्याय

पुत्र उवाच

इति पृष्टस्तदा ते भृण्वतां नो महात्मना।
उवाच पुरुषो याम्यो घोरोऽपि प्रसृतं वचः ॥ १ ॥

यमकिङ्कर उवाच

महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः।

पुत्र बोला—

राजा विपश्चिति के पूछने पर यमदूत ने जो यद्यपि भयानक था मधुर वाणी से कहा ॥ १ ॥

यमदूत बोला—

हे महाराज! जो कुछ आपने कहा उसमें

किन्तु स्वल्पं कृतं पापं भवता स्मारयमि तत् ॥ २ ॥
वैदर्भी तव या पत्नी पीवरी नाम नामतः ।
ऋतुमत्या ऋतुर्वन्ध्यस्त्वया तस्याः कृतः पुरा ॥३॥
सुशोभनायां कैकेय्यामासक्तेन ततो भवान् ।
ऋतुव्यतिक्रमात् प्राप्तो नरकं घोरमीदृशम् ॥ ४ ॥
होमकाले यथा वह्निराज्यपातमवेक्षते ।
ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद्वीजपातमवेक्षते ॥ ५ ॥
यस्तमुल्लङ्घ्य धर्म्मात्मा कामेष्वासक्तिमान् भवेत् ।
स तु पित्र्याहरणात् पापमवाप्य नरकं पतेत् ॥ ६ ॥
एतावदेव ते पापं नान्यत् किञ्चन विद्यते ।
तदेहि गच्छ पुण्यानामुपभोगाय पार्थिव ॥ ७ ॥

राजोवाच

यास्यामि देवानुचर यत्र त्वं मां नयिष्यसि ।
किंचित् पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥
वज्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः ।
पुनः पुनश्च नेत्राणि तद्वदेषां भवन्ति हि ॥ ९ ॥
किं कर्म्म कृतवन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम् ।
हरन्त्येषां तथा जिह्वां जायमानां पुनर्नवाम् ॥१०॥
करपत्रेण पाट्यन्ते कस्मादेतेऽतिदुःखिताः ।
करम्भवालुकास्वेते पच्यन्ते तैलगोचराः ॥११॥
अयोमुखैः खगैश्चैते कृष्यन्ते किंविधा वद ।
विश्लिष्टदेहवन्धार्त्ति-महारावविराविणः ॥१२॥
अयश्चञ्चनिपातेन सर्व्वाङ्गक्षतदुःखिताः ।
किमेतेऽनिष्टकर्त्तारस्तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः ॥१३॥
एताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्म्मिणाम् ।
येन कर्म्मविपाकेण तन्ममाशेषतो वद ॥ १४ ॥

यमकिङ्कर उवाच

यन्मां पृच्छसि भूपाल पापकर्म्मफलोदयम् ।
तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण यथातथम् ॥१५॥

संशय नहीं। परन्तु थोड़े किये आपके पाप का स्मरण दिलाता हूँ ॥ २ ॥ पूर्वकाल में आपकी स्त्री पीवरी नामक जो विदर्भराजाकी पुत्री थी ऋतुमती हुई और आपने ऋतुधर्म होने के बाद उसे प्रसङ्ग से वंचित रक्खा ॥ ३ ॥ तथा दूसरी स्त्री से जो केकयराजकी पुत्रीथी और जिसका नाम सुशोभना था आपने कामासक्त होकर भोग किया । पहिली स्त्री की ऋतुमती होने का आपने तिरस्कार किया इसलिये आपको यह घोर नरक प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ जिस प्रकार होमकाल में अग्नि आहुति की इच्छा रखती है उसी प्रकार रजस्वला होने पर स्त्रियों की योनि के देवता प्रजापति ऋतुकाल में वीर्य्य-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं ॥ ५ ॥ इसलिये ऋतुमती स्त्री को छोड़कर जो धर्मात्मा लोग काममें आसक्त होकर अन्य स्त्री से भोग करते हैं वे पितर-ऋण रूपी पाप से नरक में गिरते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! यही तुम्हारा पाप है और कुछ बात नहीं है । अब आप अपने पुण्यों का फल भोगने के लिये स्वर्ग को चलो ॥ ७ ॥

राजा बोला—

हे देवदूत ! जहाँ तुम मुझे ले चलोगे वहाँ ही मैं जाऊँगा। लेकिन जो बात मैं पूछूं उसका तुम यथावत् उत्तर देने को समर्थ हो ॥८॥ ये कौए जो वज्रतुण्ड से खींचकर इन मनुष्यों की आँखों को खाते हैं और फिर उन लोगों के नेत्र पुनः वैसे ही हो जाते हैं ॥ ९ ॥ इन लोगों ने ऐसा कौनसा कर्म किया है कि जिससे कौए इनकी जीभ को खींच रहे हैं, यह मुझसे कहिये ॥ १० ॥ किस लिये ये अति दुःखित होकर करपत्र की मार से पीड़ित किये जाते हैं और ये गर्म बालु और खौलते हुए तेल में क्यों पकाये जाते हैं ? ॥ ११ ॥ और कहिये किस प्रकार इन मुख नीचे किये हुओं को उनके शरीर सहित खींच-खींचकर पक्षी लोग खा रहे हैं और वे भीषण नाद कर रहे हैं ॥ १२ ॥ इन लोगों ने कौन-सा अनिष्ट किया है जो पक्षियों की चोंचों से इनका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो रहा है और दिन-रात जिनके शरीर से रुधिर बहता है ॥ १३ ॥ पापकर्मियों की ये तथा अन्य यातनायें दिखलाई देती हैं। इनका जिस कर्म का यह फल है उसको मुझसे पूर्णतया कहो ॥१४॥

यमदूत बोला—

हे राजन् ! यदि आप मुझसे पापकर्म के फलोदय को पूछते हैं तो मैं उसको संक्षेप में वर्णन

पुण्यापुण्ये हि पुरुषः पर्य्यायेण समश्नुते।
भुञ्जतश्च क्षयं याति पापं पुण्यमथापि वा ॥१६॥
न तु भोगादृते पुण्यं किंचिद्वा कर्म्म मानवम्।
पापकं वा पुनात्याशु क्षयो भोगात् प्रजायते ॥१७॥
परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे।
दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद्भयम् ॥१८॥
मृतेभ्यः प्रमृता यान्ति दरिद्राः पापकर्म्मिणः।
गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवः कर्म्मबन्धनात् ॥१६॥
उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात् स्वर्गं सुखात् सुखम्।
श्रद्दधानाश्च शान्ताश्च धनदाः शुभकारिणः ॥२०॥
व्यालकुञ्जरदुर्गाणि सर्प चौरभयाणि तु।
हताः पापेन गच्छन्ति पापिनः किमतः परम् ॥२१॥
सुगन्धिमाल्य-सहस्र-साधुयानासनाशनाः।
स्तूयमानाः सदा यान्ति पुण्यैः पुण्याटवीष्वपि॥२२॥
अनेकशतसाहस्र-जन्मसंचयसञ्चितम्।
पुण्यापुण्यं नृणां तद्वत् सुखदुःखांकुरोद्भवम् ॥२३॥
यथा वीजं हि भूपाल पयांसि समवेक्षते।
पुण्यापुण्ये तथा कालदेशान्यकर्म्मकारकम् ॥२४॥
स्वल्पं पापं कृतं पुंसा देशकालोपपादितम्।
पादन्यासकृतं दुःखं कण्टकोत्थं प्रयच्छति ॥२५॥
तत् प्रभूततरं स्थलं शूलकीलकसम्भवम्।
दुःखं यच्छति तद्वच्च शिरोरोगादि दुःसहम्। २६
अपथ्याशनशीतोष्ण-श्रमतापादिकारकम्।
तथान्योऽन्यमपेक्षन्ते पापानि फलसङ्गमे ॥२७॥
एवं महान्ति पापानि दीर्घरोगादिविक्रियाम्।
तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्त्ति-बन्धनादिफलाय वै ॥२८॥
स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं हेलया सम्प्रयच्छति।
स्पर्शं वाप्यथवा शब्दं रसं रूपमथापि वा ॥२६॥
चिराद्गुरुतरं तद्वन्महान्तमपि कालजम्।
एवञ्च सुखदुःखानि पुण्यापुण्योद्भवानि वै ॥३०॥
भुञ्जानोऽनेकसंसार-सम्भवानीह तिष्ठति।
जाति देशावरुद्धानि ज्ञानाज्ञानफलानि च ॥३१॥
तिष्ठन्ति तत्र युक्तानि लिङ्गमात्रेण चात्मनि।
वपुषा मनसा वाचा न कदाचित् क्वचिन्नरः ॥३२॥

करूँगा ॥ १५ ॥ मनुष्यों को पुण्य और पाप पर्याय से भोगने पड़ते हैं। भोगने से ही पाप और पुण्य क्षय को प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ कोई भी मानव-कर्म पाप हो या पुण्य भोग से ही क्षय को प्राप्त होते हैं अर्थात् भोगने से ही कटते हैं ॥ १७ ॥ पाप और पुण्य भोग से ही छूटते हैं ऐसा समझो जिस प्रकार दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष, क्लेश से क्लेश और भय से भय ॥१८॥ दरिद्री व पापी आदमी मरनेपर भी मरता है और पाप-कर्म बन्धन से जीव नाना प्रकार की गतियों को प्राप्त होतेहैं ॥१६॥ और पुण्य आत्मा लोग जो श्रद्धावान्, शान्त और धनदाता हैं उत्सव से उत्सव, स्वर्ग से स्वर्ग, और सुख से सुख को प्राप्त करते हैं ॥२०॥ पापी लोग हाथी, व्याल, दुर्ग, सर्प और चोर के भय से हत होकर फिर पाप ही में प्रवृत्त होते हैं ॥२१॥ पुण्यात्मा लोग सब लोगों से वन्दित होकर सुगन्धि, माला, अच्छे २ वस्त्र, भोजन और पान से युक्त पुण्यमार्ग में विचरते हैं ॥२२॥ और अनेक शत जन्मोंका सञ्चित पुण्य और पाप मनुष्यों को क्रमशः सुख और दुख का कारण होता है ॥ २३ ॥ हे राजन्! जिस प्रकार वीज जल की इच्छा रखता है उसी प्रकार पुण्य और पाप काल, देश, कर्म और कर्ता की इच्छा रखता है ॥ २४ ॥ कभी-कभी थोड़ा पाप करनेसे भी मनुष्य देश, काल के अनुसार अधिक कष्ट पाता है जिस प्रकार मार्ग में रक्खे हुए काँटे से कंटकजन्य दुःख होता है ॥२५॥ मार्ग में काँटा रखने वाले को शूल और कील का दुःख होता है और उसको सदैव दुःसह शिर रोग रहता है ॥२६॥ जो अपथ्य शीत, उष्ण, श्रम आदि पीड़ा पहुँचाता है उसको भी अपने पाप का फल मिलता है ॥२७ ॥ इस तरह के महान् पाप दीर्घ रोगों और विकारों को उत्पन्न करते हैं, इसी से शस्त्र, अस्त्र, अग्नि, बन्धन आदि के कष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ इसी प्रकार थोड़ा सा पुण्य भी शुभ कारक होता है, जैसे यदि खेल में भी कोई गन्ध, स्पर्श, शब्द, रस अथवा रूप देता है ॥ २६ ॥ तो वह बहुत दिन तक अत्यन्त सुख पाता है, इसी प्रकार पुण्य से सुख और पाप से दुख उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥ अनेक जन्मों में उत्पन्न पाप या पुण्य का फल जो ज्ञान अथवा अज्ञान से उत्पन्न होता है ॥३१॥ वह आत्मा के साथ रहता है मनुष्य के शरीर से, मन से, वचन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं ॥ ३२ ॥ किये हुए पाप या पुण्य के

अकुर्व्वन् पापकं कर्म्म पुण्यं वाप्यवतिष्ठते।
यद्यत् प्राप्नोति पुरुषो दुःखं सुखमथापि वा ॥३३॥
प्रभूतमथवा स्वल्पं विक्रियाकारि चेतसः।
तावता तस्य पुण्यं वा पापं वाप्यथ चेतरत् ॥३४॥
उपभोगात् क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम्।
एवमेते महापापं यातनाभिरहर्निशम् ॥३५॥
क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तर्विवर्त्तिनः।
तथैव राजन् पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैः सह ॥३६॥
गन्धर्व्वसिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुञ्जते।
देवत्वे मानुषत्वे च तिर्य्यक्त्वे च शुभाशुभम् ॥३७॥
पुण्यपापोद्भवं भुङ्क्ते सुखदुःखोपलक्षणम्।
यत् त्वं पृच्छसि मां राजन् यातनाः पापकर्म्मिणाम्।
केन केनेति पापेन तत् ते वक्ष्याम्यशेषतः ॥३८॥
दुष्टेन चक्षुषा दृष्टाः परदारा नराधमैः।
मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यञ्च सस्पृहैः ॥३९॥
वज्रतुण्डाः खगास्तेषां हरन्त्येते विलोचने।
पुनः पुनश्च सम्भूतिरक्ष्णोरेषां भवत्यथ ॥४०॥
यावतोऽक्षिनिमेषांस्तु पापमेभिर्नृभिः कृतम्।
तावद्वर्षसहस्राणि नेत्रार्त्तिं प्राप्नुवन्त्युत ॥४१॥
असच्छास्त्रोपदेशास्तु यैर्दत्ता यैश्च मन्त्रिताः।
सम्यग्दृष्टेर्विनाशाय रिपूणामपि मानवैः ॥४२॥
यः शास्त्रमन्यथा प्रोक्तं यैरसद्वागुदाहृता।
वेददेवद्विजातीनां गुरोर्निन्दा च यैः कृता ॥४३॥
हरन्ति तेषां जिह्वाश्च जायमानाः पुनः पुनः।
तावतो वत्सरानेते वज्रतुण्डाः सदारुणाः ॥४४॥
मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च।
याज्योपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणः ॥४५॥
भार्य्यापत्योश्च ये केचिद्भेदं चक्रुर्नराधमाः।
त इमे पश्य पाट्यन्ते करपत्रेण पार्थिव ॥४६॥
परोपतापका ये च ये चाह्लादनिषेधकाः।
तालवृन्तानिलस्थान-चन्दनोशीरहारिणः ॥४७॥
प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानाञ्च येऽधमाः।
करम्भवालुकासंस्थास्त इमे पापभागिनः ॥४८॥
भुङ्क्ते श्राद्धन्तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमन्त्रितः।

कर्म से मनुष्य क्रमशः दुःख और सुख पाताहै॥३३॥ चित्त को विकृत करने वाला और सुख तथा दुख को देने वाला यही पुण्य और पाप है ॥३४॥ जिस प्रकार भोजन की वस्तु खाने से घटती है उसी प्रकार महापाप नित्य-प्रति यातनायें भोगने से घटते हैं ॥३५॥ जिस प्रकार पापी लोग इस घोर नरक में दुःख भोग रहे हैं उसी प्रकार हे राजन्! पुण्यात्मा लोग स्वर्ग में देवताओं के साथ ॥ ३६ ॥ और गन्धर्व, सिद्ध, अप्सराओं के साथ गीत आदि सुखोंको भोगकर पुण्योंका फल भोगते हैं तथा इसके बाद वे देव, मनुष्य और पक्षियों की योनि में जाते हैं ॥ ३७॥ हे राजन्! मैंने आपसे पुण्य और पापों की उत्पत्ति और सुख तथा दुःख के भोग का वर्णन किया। तथा आपने जो पापियों की यातनाओं के विषय में पूछा कि किस पाप से कौन यातना मिलती है वह भी निःशेष बताताहूँ॥ जो नराधम दूसरे की स्त्री को कुदृष्टि से देखते हैं और बेईमानी से दूसरे का धन हरण करने की इच्छा करते हैं ॥३९॥ उन लोगों की आँखों को वज्र के समान कड़ी चोंचवाले पक्षी निकाल लेतेहैं और वे फिर वैसी ही हो जाती हैं ॥ ४० ॥ मनुष्य लोग जितने पल आँखों से पाप करते हैं उतनेही सहस्र वर्ष उनको उपरोक्त नेत्र दुःख रहता है ॥४१ ॥ जो लोग असत्य शास्त्र का उपदेश चाहे वैरियों को नाश करने के लिये ही क्यों न देते हैं और असत् मन्त्र देते हैं ॥ ४२ ॥ जो लोग शास्त्र का उल्टा अर्थ बतलाते हैं, तथा झूंठ बोलते हैं और वेद, देवता, द्विजातियों या गुरु की निन्दा करते हैं ॥ ४३ ॥ उन की जीभ को बार-बार वज्र की सी चोंच वाले भयानक पक्षी निकाल लेते हैं ॥४४॥ जो लोग मित्रों में, पिता पुत्र में, स्वजनों में, यज्ञकर्ता व उपाध्याय में, माता और पुत्र में तथा सहचारियों में ॥ ४५ ॥ और स्त्री पुरुष में भेद कराते हैं वे हे राजन्! उधर देखिये कर-पत्र से मारे जारहे हैं ॥ ४६ ॥ जो लोग दूसरे को क्रोधित करते हैं, प्रसन्नता का निषेध करते हैं, ताड़ के पंखे, चन्दन और खसकी चोरी करते हैं ॥ ४७ ॥ तथा जो साधु महात्माओं को सन्ताप देते हैं वे पापी इस गर्म बालु में पड़े हुए हैं ॥ ४८ ॥ जो लोग किसी के यहाँ दूसरे निमन्त्रित मनुष्य की जगह श्राद्ध अथवा किसी देव

दैवे वाप्यथवा पित्र्ये स द्विधा कृष्यते खगैः ॥४९॥
मर्म्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति।
तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ॥५०॥
यः करोति च पैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः।
पाट्यते हि द्विधा जिह्वा तस्येत्थं निशितैः क्षुरैः ॥५१॥
माता-पित्रोर्गुरूणाञ्च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः।
त इमे पूयविण्मूत्र-गर्त्ते मज्जन्त्यधोमुखाः ॥५२॥
देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च।
अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति तद्वत् पित्रग्निपक्षिषु ॥५३॥
दुष्टास्ते पूयनिर्य्यास-भुजः सूचीमुखास्तु ते।
जायन्ते गिरिवर्ष्माणः पश्यैते यादृशा नराः ॥५४॥
एकपंक्त्या तु ये विप्रमथवेतरवर्णजम्।
विषमं भोजयन्तीह विड्भुजस्त इमे यथा ॥५५॥
एकसार्थमयातं ये निःस्वमर्थार्थिनं नरम्।
अपास्य स्वान्नमश्नन्ति त इमे श्लेष्मभोजिनः ॥५६॥
गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर।
तेषामेतेऽग्निकुम्भेषु लेलिह्यन्त्याहिताः कराः ॥५७॥
सूर्य्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः।
तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तो वह्निः समेध्यते ॥५८॥
गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठभ्राता पिता स्वसा।
यामयो गुरवो वृद्धा यैः स्पृष्टास्तु पदा नृभिः ॥५९॥
बद्धाङ्घ्रयस्ते निगडैर्लौहैरग्निप्रतापितैः।
अङ्गारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः ॥६०॥
पायसं कृशरं छागो देवान्नानि च यानि वै।
भुक्तानि यैरसंस्कृत्य तेषां नेत्राणि पापिनाम् ॥६१॥
निपातितानां भूपृष्ठे उद्वृत्ताक्षि निरीक्षताम्।
सन्दंशैः पश्य कृष्यन्ते नरैर्याम्यैर्मुखात् ततः ॥६२॥
गुरु-देव-द्विजातीनां वेदानाञ्च नराधमैः।
निन्दा निशामिता यैश्च पापानामभिनन्दताम् ॥६३॥
तेषामयोमयान् कीलानग्निवर्षान् पुनः पुनः।
कर्णेषु प्रेरयन्त्येते याम्या विलपतामपि ॥६४॥
यैः प्रपा-देवविप्रौको-देवालय-सभाः शुभाः।
भुङ्क्त्वा विध्वंसमानीताः क्रोधलोभानुवर्त्तिभिः ॥६५॥
तेषामेतैः शितैः शस्त्रैर्मुहुर्विलपतां त्वचः।

कार्य इत्यादि में भोजन करतेहैं, उनको पक्षी टुकड़े टुकड़े कर रहे हैं ॥ ४९ ॥ जो लोग असत् बात कह कर साधु लोगों के मर्मस्थान को आघात पहुँचाते हैं उनके वक्षस्थल पर चढ़कर पक्षी उनका मांस खा रहे हैं जिससे उनको घोर कष्ट होरहा है ॥५०॥ जो दुर्बुद्धि लोग झूंठी चुगली करते हैं उनकी जीभ तेज़ छुरियों से काटी जाती है ॥ ५१ ॥ जो लोग उद्धत होकर माता, पिता और गुरुकी अवज्ञाकरते हैं वे नीचे मुख किये हुए मल, मूत्र और पीव के गर्त में पड़े हुए हैं ॥ ५२ ॥ जो लोग देवता, अतिथि, अभ्यागत और उसी प्रकार पितर, अग्नि और पक्षियों को भूखा रखकर स्वयं खालेते हैं ॥५३॥ उन दुष्ट लोगों को देखिये, उनका शरीर पहाड़सा और मुख सुई सा है जिससे वे पीव भक्षण करते हैं ॥ और जो लोग ब्राह्मण तथा इतरवर्ण वाले को एक पंक्तिमें विषम रूपसे भोजन करातेहैं वे मल भोजन कर रहेहैं ॥५५॥ एक साथ यात्रा करते हुए को अथवा किसी असमर्थ को छोड़कर जो भोजन करते हैं वे ही लोग खखार और थूक का भोजन करते हैं ॥ हे राजन्! गो, ब्राह्मण और अग्नि को जो लोग झूंठे हाथ से छूते हैं उनके हाथ अग्नि-कुम्भों में जल रहे हैं ॥ ५७ ॥ जो लोग झूंठे मुंह से सूर्य, चन्द्रमा व तारागणों को देखते हैं उन्हीं लोगों की आँखों में यमदूत अग्नि झोंकते हैं ॥५८॥ जो लोग गाय, अग्नि, माता, ब्राह्मण, बड़े भाई, पिता, बहिन गुरु अथवा वृद्धजनों को पाँवसे स्पर्श करते हैं॥५९॥ उन लोगों के अङ्ग अग्निसे तप्त हुई लोहेकी ज़ञ्जीरों में बंधे हुए हैं, वे लोग अङ्गारों के ढेर के मध्य में बैठे हुए हैं तथा उनकी जाँघें जल रही हैं ॥ ६० ॥ जिन लोगों ने दूध, खिचड़ी, छाग व देवान्न को विना संस्कार किये ही खाया है उन पापियों की आँखें ॥६१॥ उनको पृथ्वीपर गिरा-गिरा कर दक्षिण दिशा में काट कर यमदूतों द्वारा उनके मस्तकों से निकाली जाती हैं ॥६२ ॥ गुरु, देवता, द्विजातियों की जो नराधम निन्दा सुनते हैं तथा उस निन्दा का जो पापी अभिनन्दन करते हैं ॥ ६३ ॥ उनलोगों के कान में अग्नि से तपाई हुई लोहे की कील को यमदूत लोग घुमाते हैं जिससे वे पापी विलाप करते हैं ॥ ६४ ॥ जो लोग क्रोध और लोभके वशीभूत होकर देव, ब्राह्मणों के स्थान व सत्सभाओं में उपद्रव करते हैं ॥६५ ॥ उन लोगोंके शरीरों से यमदूत भालों और अस्त्रों द्वारा चमड़ेको अलग करते

पृथक् कुर्व्वन्ति वै याम्याः शरीरादतिदारुणाः ॥६६॥
गोब्राह्मणार्कमार्गांस्तु येऽवमेहन्ति मानवाः।
तेषामेतानि कृष्यन्ते गुदेनान्त्राणि वायसैः ॥६७॥
दत्त्वा कन्यां यत्र कस्मै द्वितीयाय प्रयच्छति।
स त्वेवं नैकधा च्छिन्नः क्षारनद्यां प्रवाह्यते ॥६८॥
स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः।
पुत्र-भृत्य-कलत्रादि-बन्धुवर्गमकिञ्चनम् ॥६९॥
दुर्भिक्षे सम्भ्रमे वापि सोऽप्येवं यमकिङ्करैः।
उत्कृत्य दत्तानि मुखे स्वमांसान्यश्नुते क्षुधा ॥७०॥
शरणागतान् यस्त्यजति लोभाद्वृत्त्युपजीविनः।
सोऽप्येवं यन्त्रपीड़ाभिः पीड्यते यमकिङ्करैः ॥७१॥
सुकृतं ये प्रयच्छन्ति यावज्जन्म कृतं नराः।
ते पिष्यन्ते शिलापेषैर्यथैते पापकर्म्मिणः ॥७२॥
न्यासापहारिणो बद्धाः सर्व्वगात्रेषु बन्धनैः।
कृमि वृश्चिक-काकोलैर्भुज्यन्तेऽहर्निशं नराः ॥७३॥
क्षुत्क्षामास्त्रुटपतज्जिह्वा-तालवो वेदनातुराः।
दिवामैथुनिनः पापाः परदारभुजश्च ये ॥७४॥
तथैव कण्टकैर्दीर्घैरायसैः पश्य शाल्मलिम्।
आरोपिता विभिन्नाङ्गाः प्रभूतासृक्स्रवाविलाः॥७५
मूषायामपि पश्यैतान् नाश्यमानान् यमानुगैः।
पुरुषैः पुरुषव्याघ्र परदारावमर्षिणः ॥७६॥
उपाध्यायमधः कृत्वा स्तब्धो योऽध्ययनं नरः।
गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम्॥७७॥
बिभ्रत् क्लेशमवाप्नोति जनमार्गेऽतिपीड़ितः।
क्षुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीड़ाव्यथितमस्तकः ॥७८॥
मूत्र-श्लेष्म-पुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि।
त इमे श्लेष्मविण्मूत्र-दुर्गन्धं नरकं गताः ॥७९॥
परस्परञ्च मांसानि भक्षयन्ति क्षुधान्विताः।
भुक्तं नातिथ्यविधिना पूर्व्वमेभिः परस्परम् ॥८०॥
अपविद्धास्तु यैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः।
त इमे शैलश्रृङ्गाग्रात् पात्यन्तेऽधः पुनः पुनः॥८१॥
पुनर्भूपतयो जीर्णा यावज्जीवन्ति ये नराः।
इमे कृमित्वमापन्ना भक्ष्यन्तेऽत्र पिपीलिकैः ॥८२॥

हैं जिससे वे घोर विलाप करते हैं ॥ ६६॥ जो लोग गो, ब्राह्मण के मार्ग में अथवा सूर्य की ओर मुंह करके मलमूत्र त्याग करते हैं उन लोगों की आंतों को कौए गुदा मार्ग से खींचते हैं ॥६७॥ जो मनुष्य एक को कन्या देकर उसे फिर दूसरे के साथ विवाहित करताहै उसके अनेक टुकड़े करके क्षार नदी में बहा दिये जाते हैं ॥ ६८ ॥ अपने पोषण के लिये जो व्यक्ति पुत्र,सेवक, स्त्री, तथा बन्धुवर्ग को त्याग देता है ॥ ६९ ॥ अथवा दुर्भिक्ष के डरसे ऐसा करता है उसके मुख में यमदूत लोग उसीका मांस काट कर डालते हैं और उसकी क्षुधा शांति करते हैं ॥ ७० ॥ जो व्यक्ति लोभसे शरणागतहुए भिक्षुकों को त्याग देता है वह भी यमदूतों द्वारा इसी प्रकार की यन्त्रणाओं से पीड़ित किया जाता है ॥ जो मनुष्य अपने जन्म का संचित सुकृत बेच देते हैं उनको उसी प्रकार पत्थर में पीसा जाताहै जिस प्रकार ये पापी पीसे जारहे हैं ॥ ७२ ॥ जो किसी के सङ्कल्प के बाधक होते हैं उनके सम्पूर्ण अङ्ग बाँधे जाते हैं और वे मनुष्य कीड़ों, बिच्छू, कौओं और उल्लुओं द्वारा दिन रात खाये जाते हैं ॥७३॥ दिनमें मैथुन करने वाले तथा परस्त्री गमन करने वाले पापी भूख प्यास से जीभ बाहर निकाले तालु की वेदना से व्याकुल हो रहे हैं ॥७४॥ सेमलके वृक्षके जिसमें लोहे के बड़े-बड़े काँटे लगे हैं उनके शरीर के अङ्ग सटकर भिन्न भिन्न होजातेहैं जिससे रुधिर बहता है ॥७५ ॥ हे पुरुषसिंह ! देखिये, किस तरह पराई स्त्री चुराने वाले यमदूतों द्वारा नाश को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ७६ ॥ उपाध्याय को नीचे बिठाकर जो मनुष्य ऊपर बैठकर अध्ययन करताहै उसके शिरपर शिला रक्खी हुई है ॥७७॥ वह यमके मार्गमें पीड़ित होकर घूमता हुआ क्लेशको पाकर क्षुधा और शिर पर शिला के भारसे पीड़ित हो रहा है ॥ ७८ ॥ जो लोग जल में मूत्र, खखार या विष्ठा त्याग करते हैं वे ही यहाँ मूत्र, श्लेष्म और विष्ठा के दुर्गन्धित नरक में पड़े हुए हैं ॥ ७९ ॥ जिन लोगों ने पिछले जन्म में विधि पूर्वक अतिथियों को भोजन नहीं कराया है ये वे ही हैं जो परस्पर एक दूसरे का मांस भक्षण कररहे हैं ॥८०॥ जो लोग वेदकी विधि के प्रतिकूल अग्नि में आहुति देते हैं वे यहाँ बार २ पहाड़ की चोटी से नीचे गिराये जाते हैं ॥ ८१ ॥ फिर हे राजन् ! वे मनुष्य जब तक जीर्ण होकर यहाँ जीवित रहतेहैं तबतक कृमि होकर मक्खियों को खाते हैं ॥ ८२ ॥ जो लोग पतितका दिया हुआ

पतितप्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात् ।
पाषाणमध्यकीटत्वं नरः सततमश्नुते ॥८३॥
पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्राणामतिथेस्तथा ।
एको मिष्टान्नभुग्भुङ्क्ते ज्वलदङ्गारसञ्चयम् ॥८४॥
वृकैर्भयङ्करैः पृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते ।
पृष्ठमांसं नृपैतेन यतो लोकस्य भक्षितम् ॥८५॥
अन्धोऽथ बधिरो मूको भ्राम्यतेऽयं क्षुधातुरः ।
अकृतज्ञोऽधमः पुंसामुपकारेषु वर्त्तताम् ॥८६॥
अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारी सुदुर्म्मतिः ।
तप्तकुम्भे निपतति ततो यास्यति पेषणम् ॥८७॥
करम्भवालुकां तस्मात् ततो यन्त्रावपीडनम् ।
असिपत्रवनं तस्मात् करपत्रेण पाटनम् ॥८८॥
कालसूत्रे तथा च्छेदमनेकाश्चैव यातनाः ।
प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्न वेद्मि कथमेष्यति ॥८९॥
श्राद्धसङ्गतिनो विप्राः समुत्पत्य परस्परम् ।
दुष्टा हि निःसृतं फेनं सर्व्वाङ्गेभ्यः पिबन्ति वै ॥९०॥
सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापी गुरुतल्पगः ।
अधश्चोर्द्ध्वञ्च दीप्ताग्नौ दह्यमानाः समन्ततः ॥९१॥
तिष्ठन्त्यब्दसहस्राणि सुबहूनि ततः पुनः ।
जायन्ते मानवाः कुष्ठ-क्षयरोगादिचिह्निताः ॥९२॥
मृताः पुनश्च नरकं पुनर्जाताश्च तादृशम् ।
व्याधिमृच्छन्ति कल्पान्तपरिमाणं नराधिप ॥९३॥
गोघ्नो न्यूनतरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि ।
तथोपपातकानाञ्च सर्व्वेषामिति निश्चयः ॥९४॥
नरकभ्च्युता यानि यैर्यैर्विहितपातकैः ।
प्रयान्ति योनिजातानि तन्मे निगदतः शृणु ॥९५॥

दान लेते हैं तथा नित्य उसको सेवते हैं वे पत्थर के अन्दर कीड़ा बनकर रहते हैं ॥ ८३ ॥ जो लोग सेवक वर्ग, मित्र और अतिथियों को देखते हुए उनके सामने अकेले ही मिठाई खाते हैं वे यहाँ जलते हुए अङ्गारों को भक्षण करते हैं ॥८४॥ जिन लोगों ने पूर्व जन्म में मांस खाया है यहां उनकी पीठ का मांस भयङ्कर भेड़िये नित्य खारहे हैं ॥८५॥ जो कृतघ्न लोग उपकारी लोगों के प्रति अकृतज्ञ हुए हैं वे यहाँ अन्धे, बहिरे और गूंगे होकर भूख से व्याकुल इधर उधर घूम रहे हैं ॥ ८६ ॥ यह गुंनमेटा, मित्रों का बुरा करने वाला, दुर्बुद्धि तप्त-कुम्भ में डाला जाता है ॥ ८७ ॥ इसके बाद तप्त वालू में, फिर यन्त्रों में पेरा जाता है । तथा इसके अनन्तर असिपत्र वन की पीड़ा प्राप्त करता हुआ करपत्र द्वारा पीटा जाता है ॥ ८८ ॥ कालसूत्र से भी नारकी काटे जाते हैं । इसके बाद यह कौनसे कष्ट पावेंगे यह मैं भी नहीं जानता हूँ ॥ ८९ ॥ जो ब्राह्मण श्राद्ध की जीविका पर ही निर्भर रहते हैं तथा श्राद्धजीवी विप्रों के साथ ही रहते हैं उनके अङ्गों में दुष्ट सर्पों का विष डाला जाता है ॥ ९० ॥ जो सोना चुराता है, ब्राह्मण को मारता है, शराब पीता है, अथवा गुरू की स्त्री से गमन करता है इस प्रकार के सब लोग ऊपर नीचे, चारों ओर जलती हुई आग में झोंके जाते हैं ॥ ९१ ॥ ये लोग एक हज़ार वर्ष तक नरक में रह कर फिर मानव शरीर में आते हैं और कुष्ठ, क्षय आदि रोगों से पीड़ित होते हैं ॥ ९२ ॥ हे राजन् ! मर कर यह पुनः नरक में जाते हैं और फिर उत्पन्न होकर वैसे ही हो जाते हैं । इस प्रकार ये एक कल्पान्त तक घोर कष्ट में पड़े रहेंगे ॥ ९३ ॥ गौ को मारने वाले तथा अनेकों अन्य पापी भी सब निश्चय ही नरक को जाते हैं ॥ ९४ ॥ फिर नरक से च्युत होने के बाद जिस-जिस योनि में पापी लोग अपने पाप कर्म के अनुसार जाते हैं उसका वर्णन करता हूँ, आप सुनिये ॥ ९५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में पिता-पुत्र सम्वाद के अन्तर्गत यमकिंकर संवाद नाम चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

पंद्रहवां अध्याय

यमकिङ्कर उवाच

पतितात् प्रतिगृह्यार्थं खरयोनिं व्रजेद्द्विजः ।
नरकात् प्रतिमुक्तस्तु कृमिः पतितयाजकः ॥ १ ॥
उपाध्यायव्यलीकन्तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः ।
तज्जायां मनसा वाञ्छन् तद्द्रव्यञ्चाप्यसंशयम् ॥२॥
गर्द्दभो जायते जन्तुः पित्रोश्चाप्यवमानकः ।
मातापितरावाक्रुश्य शारिका सम्प्रजायते ॥ ३ ॥
भ्रातुष्पत्न्यवमन्ता च कपोतत्वं प्रपद्यते ।
तामेव पीड़यित्वा तु कच्छपत्वं प्रपद्यते ॥ ४ ॥
भर्तृ पिण्डमुपाश्नन् यस्तादिष्टं न निषेवते ।
सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ॥ ५ ॥
न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः ।
असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ॥ ६ ॥
विश्वासहन्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ।
धान्यंयवांस्तिलान्माषानकुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ७॥
कलायान् कलमान् मुद्गान् गोधूमानतसीस्तथा ।
शस्यान्यानि वा हृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतनः ॥ ८ ॥
सञ्जायते महावक्त्रो मूषिको बभ्रुसन्निभः ।
परदाराभिमर्षात्तु वृको घोरोऽभिजायते ॥ ९ ॥
श्वा शृगालो बको गृध्रो व्याड़ः कङ्कस्तथा क्रमात् ।
भ्रातृभार्य्यांश्च दुर्बुद्धिर्यो धर्षयति पापकृत् ।
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः॥१०॥
सखिभार्य्यां गुरोर्भार्य्यां राजभार्य्यांश्च पापकृत् ।
प्रधर्षयित्वा कामात्मा शूकरो जायते नरः ॥११॥
यज्ञ-दान-विवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत् कृमिः ।
पुनर्दाता च कन्यायाः कृमिरेवोपजायते ॥१२॥
देवता-पितृ-विप्राणामदत्त्वा योऽन्नमश्नुते ।
प्रमुक्तो नरकात् सोऽति वायसः सम्प्रजायते ॥१३॥
ज्येष्ठं पितृसमं वापि भ्रातरं योऽवमन्यते ।
नरकात् सोऽपि विभ्रष्टः क्रौञ्चयोनौ प्रजायते॥१४॥
शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ।

यमदूत बोला—

जो विप्र पतित से दान लेता है वह गदहे की योनि में जाता है तथा पातकी का यज्ञ करानेवाला नरक से छुटने के बाद कीड़े का जन्म लेता है ॥१॥ जो ब्राह्मण उपाध्याय का निरादर करता है वह कुत्ता बनता है तथा जो कोई मनसे अथवा वाणी से उसकी स्त्री और धन की आकांक्षा करता है ॥ और पिता का अपमान करता है वह गदहे का जन्म पाता है तथा जो मनुष्य माता पिता को दुःख देता है वह मैंना का जन्म धारण करता हैं ॥ ३ ॥ जो कोई भाई की स्त्री का अपमान करता है वह कबूतर होता है और जो उसी को पीड़ा पहुँचाता है वह कच्छप होता है ॥ ४ ॥ जो स्त्री अज्ञान से अपने पति को दुःख देती है और उसको अपना इष्ट नहीं मानती वह मृत्यु पाकर वानर होजाती है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य सङ्कल्प करने में बाधक होता है वह नरक भोगने के बाद कीड़ा बनता है तथा जो निन्दक होता है वह नरक में रहने के बाद राक्षस की योनि में जाता है ॥ ६ ॥ विश्वासघाती मनुष्य मछली की योनि में जाताहै और जो मनुष्य धान्य, जौ, तिल, उर्द, कुर्थी, सरसों, चना ॥ ७ ॥ और कला, कलाविन्द, मूँग, गेहूँ, अलसी अथवा अन्य अन्नों को अज्ञानयुक्त होकर चुराता है ॥ ८ ॥ वह नेवले का सा और चूहे के शरीरके समान होजाता है। तथा जो परस्त्री गमन करता है वह भयानक भेड़िया होता है ॥ ९ ॥ तथा इसके बाद कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध और कौए की योनि में क्रम से जाता है। जो मूर्ख पापी अपने भाई की स्त्री से मैथुन करता है वह नरक भोगने के बाद कोयल बनता है ॥ १० ॥ जो पापी अपने मित्र, गुरु अथवा राजा की स्त्री से भोग करता है वह कामयुक्त पापी सूअर की योनि में जाता है ॥ ११ ॥ यज्ञ, दान विवाह आदि में विघ्न डालने वाला कीड़ा होजाता है तथा कन्या का दुबारा दान करने वालाभी कीट होता है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य देवता, पितरों और ब्राह्मणों को दिये बिना स्वयं अन्न खाताहै वह नरक भोगने के बाद कौआ बनता है ॥ १३ ॥ जो कोई बड़े भाई का जो पिता के समान है अनादर करता है वह नरक से भ्रष्ट होनेके बाद क्रौंच पक्षी बनता है ॥१४॥ जो शूद्र ब्राह्मणी से मैथुन करता है वह कृमि योनि में जाता है। तथा उससे सन्तति पैदा

तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तः कीटको भवेत् ॥१५॥
शूकरः कृमिको मद्गुश्चण्डालश्च प्रजायते।
अकृतज्ञोऽधमः पुंसां विमुक्तो नरकान्नरः ॥१६॥
कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा।
मत्स्यस्तु वायसः कूर्म्मः पुक्कसो जायते ततः॥१७॥
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः सञ्जायते खरः।
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च वालहन्ता च जायते ॥१८॥
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः।
तत्राप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य शृणुष्व तत् ॥१९॥
हृत्वान्नन्तु स मार्ज्जारो जायते नरकाच्च्युतः।
तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नं हृत्वा तु मूषिकः ॥२०॥
घृतं हृत्वा च नकुलः काको मद्गुरजामिषम्।
मत्स्यमांसापहृत् काकः श्येनो मार्गामिषापहृत्॥२१॥
वीचीकाकस्त्वपहृते लवणे दधनि क्रिमिः।
चोरयित्वा पयश्चापि बलाका सम्प्रजायते ॥२२॥
यस्तु चोरयते तैलं तैलपायी स जायते।
मधु हृत्वा नरो दंशः पूपं हृत्वा पिपीलिकः ॥२३॥
चोरयित्वा तु निष्पावान् जायते गृहगोलकः।
आसवं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुयात् ॥२४
अयो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते।
हृते कांस्ये च हारीतः कपोतो रूप्यभाजने ॥२५॥
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते।
पत्रोर्णं चोरयित्वा तु क्रकरत्वञ्च गच्छति ॥२६॥
कोपकारश्च कौषेये हृते वस्त्रेऽभिजायते।
दुकूले शार्ङ्गिके पापो हृते चैवांशुके शुकः ॥२७॥
तथैवाजाविकं हृत्वा वस्त्रं क्षौमंच जायते।
कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वाल्क हर्त्ता वकस्तथा॥२८॥
मयूरो वर्णकान् हृत्वा शाकपत्रंच जायते।
जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रापहृन्नरः ॥२९॥
छुच्छुन्दरिः शुभान् गन्धान् वासो हृत्वा शशो भवेत्।
षण्ढः फलापहरणात् काष्ठस्य घुणकीटकः ॥३०॥
पुष्पापहृद्दरिद्रश्च पङ्गुर्यानापहृन्नरः।

करने पर तो काठ के अन्दर का कीड़ा होता है॥ और फिर सूअर, मल का कीड़ा और च... योनि में जाता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ ... है नरक भोगने के बाद॥ १६॥ वह गुनमेंटा, क... पतङ्ग, विच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और ... बनता है॥ १७॥ शस्त्रविहीन पुरुष को मनुष्य गदहे की योनि में जाता है तथा स्त्री और बालक का वध करने वाला कृमि होता है ॥ १८ भोजन को चुराने वाला मक्खी बनता है। इसके अतिरिक्त भोजन चुरानेवाले की गति ... ॥१९॥ अन्न का चुराने वाला नरक भोगने के ब... बिल्ली की योनि में जाता है तथा तिल और मिला हुआ अन्न चुराने वाला चूहा होता है ॥२० घी को चुराने वाला नेवला तथा बकरे का चुराने वाला कौआ बनता है। मछली का चुराने वाला कौआ तथा मांस को मार्गमें ही ... कर लेनेवाला बाज़ पक्षी होता है ॥२१॥ दही नमक चुराने वाले क्रमशः कीड़ों और विच्छुओं योनि में जाते हैं और दूध को चुराने वाले बनते हैं॥ २२॥ जो पुरुष तेल चुराता है वह त... होता है। मधु के चुराने वाला मनुष्य मक्खी पुए को चुराने वाला पिपीलिका की योनि में ... है ॥२३॥ भुने हुए अन्न को चुराने वाला गोलक घरमें जन्म लेताहै तथा यज्ञान्नका चोर तीतर है ॥२४॥ जो पापी लोहा चुराताहै वह कौआ ह... है, कांसे का चोर हरेल पक्षी बनता है और ... के वर्तन चुराने वाला कबूतर की योनि में जाता है सोने के बर्तन को चुराकर मनुष्य कृमि योनि ... जाता है तथा पत्र वस्त्र का हरण करने वाला कर करा का शरीर धारण करता है ॥२६॥ कौषेय का चोर जुलाहा होता है तथा रेशमी वस्त्र वाला जहाँ वृक्ष न हों ऐसे बन में तोते का धारण करता है॥ २७॥ इसी प्रकार बकरी भेड़ के रोम का वस्त्र चुराने वाला बालवर के जन्म लेता है, तथा कपास, रुई आदि के व... हरण करनेवाला क्रौंच और वल्कल वस्त्रको ... वाला बगुला होता है ॥२८॥ मोर पंख चुराने व... शाकपत्र होता है और लाल वस्त्र का ... चकवा चकई का शरीर पाता है॥ २९॥ शुभ गन्ध से वासा हुआ कपड़ा चुराने वाला छछूंदर औ... खरगोश होता है तथा शफ़तालू का फल ... वाला काठ का कीड़ा और घुन होता है ॥३०॥ ... चुराने वाला दरिद्री और वाहन चुराने वाला

शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः ॥३१॥
भूहर्त्ता नरकान् गत्वा रौरवादीन् सुदारुणान् ।
तृण-गुल्म-लता-वल्लि-त्वक्सारतरुतां क्रमात् ।
प्राप्य क्षीणाल्पपापस्तु नरो भवति वै ततः ॥३२॥
कृमिः कीटः पतङ्गोऽथ पक्षी तोयचरो मृगः ।
गोत्वं प्राप्य च चण्डाल-पुक्कसादि जुगुप्सितम् ॥३३॥
पंगवन्धो बधिरः कुष्ठी यक्ष्मणा च प्रपीड़ितः ।
मुखरोगाक्षिरोगैश्च गुदरोगैश्च बाध्यते ॥३४॥
अपस्मारी च भवति शूद्रत्वंच स गच्छति ॥३५॥
एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णापहारिणाम् ।
विद्यापहारिणश्चोग्रा निष्क्रयभ्रंशिनो गुरोः ॥३६॥
जायामन्यस्य पुरुषः पारक्यां प्रतिपादयन् ।
प्राप्नोति षण्ढतां मूढो यातनाभ्यः परिच्युतः ॥३७॥
यः करोति नरो होममसमिद्धे विभावसौ ।
सोऽजीर्णव्याधिदुःखार्त्तो मन्दाग्निः संप्रजायते ॥३८॥
कृतघ्नत्वं परमर्म्माविघट्टनम् ।
नैष्ठुर्य्यं निर्घृणत्वञ्च परदारोपसेवनम् ॥३९॥
परस्वहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सना ।
निकृत्या वंचनं नृणां कार्पण्यंच नृणां वधः ॥४०॥
यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च सन्तता ।
उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥४१॥
दया भूतेषु संवादः परलोकप्रतिक्रिया ।
सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥४२॥
गुरु-देवर्षि-सिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः ।
सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुध्येत पण्डितः ॥४३॥
अन्यानि चैव सद्धर्म्म-क्रियाभूतानि यानि च ।
स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम् ॥४४॥
एतदुद्देशतो राजन् भवतः कथितं मया ।
स्वकर्म्मफलभोक्तॄणां पुण्यानां पापिनां तथा ॥४५॥
तदेहान्यत्र गच्छामो दृष्टं सर्व्वं त्वयाधुना ।

होता है। शाक चुराने वाले को हारील पक्षी और जल चुराने वाले को पपीहा की योनि मिलती है॥ ज़मीन का हरण करनेवाला रौरवादि दारुण नरकों में जाकर तृण, गुल्म, लता, वल्लि, त्वक्सार आदि वृक्ष-शरीरों में क्रम से जाता है तथा इसके बाद अङ्ग भङ्ग या छोटे शरीर वाला होकर वह मनुष्य योनि में आ ा है ॥ ३२ ॥ कृमि, कीट, पतङ्ग तथा इसके बाद पक्षी, जलचर, मृग गाय की योनि में पहुंचकर फिर चाण्डाल और डोम आदिकी निंदित योनियों में पहुँचता है ॥ ३३ ॥ वह लूला, अन्धा, बहिरा, कुष्ठी और क्षय रोग से पीड़ित होता है। तथा मुंह, आँख और गुदा आदि के रोगों से दुखी रहता है ॥३४॥ तथा वह शूद्र होकर धातुक्षय के रोग से पीड़ित रहता है ॥ ३५ ॥ गाय और सुवर्ण चुराने वालों की दशा का क्रम भी इसी प्रकार है। विद्या के हरण करने वाले तथा अहङ्कार वश गुरु का अपमान करने वाले ॥ ३६ ॥ तथा जो पुरुष अपनी स्त्री की तरह परकीया को रखता है वह नरक में यातनाओं को सहकर षण्ढता को प्राप्त होता है ॥३७॥ जो मनुष्य अग्नि में बिना समिधा के हवन करता है वह अजीर्ण की व्याधि से दुःखी रहता है तथा उसको मन्दाग्नि होजाती है ॥ ३८ ॥ दूसरे की निन्दा, गुनभेदापन, दूसरेके छिद्रान्वेषण करना, निष्ठुरता, निर्दयता, दूसरे की स्त्रीका सेवन ॥३९॥ दूसरे का स्वत्व हरण, अशुद्धता, देवताओं की निन्दा, कीर्ति शून्यता, मनुष्यों को ठगना, तथा मनुष्य-घात ॥४०॥ तथा जो निषिद्ध कार्य हैं उनमें संलग्न रहनाः इन लक्षणों से युक्त जो मनुष्य हैं उनको नरक से आया हुआ समझना चाहिये ॥४१॥ जो सब जीवों पर दया और परलोक के लिये सत्क्रिया करते हैं, जीवों के हित के निमित्त सत्य कहने वाले हैं और वेद का प्रमाण दिखाने वाले हैं ॥४२॥ जो गुरु,देवता, ऋषियों और सिद्धोंका पूजन करते हैं तथा साधुओं की सङ्गति करते हैं और जो अच्छे कर्मों का अभ्यास, और बुद्धजनों से मैत्री करने वाले हैं तथा पण्डित हैं ॥ ४३ ॥ अथवा अन्य सत्य-धर्म की क्रियाओं में तत्पर हैं, ऐसे लक्षणों से युक्त पुण्यात्मा लोगों को स्वर्गच्युत समझना चाहिये ॥४४॥ हे राजन्! मैंने आपको अपने कर्म का फल भोगनेवाले पापियों और पुण्य-वानों का वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ४५ ॥ आपने वह सब यहाँ पर चरितार्थ होते देखा, अब आइये

त्वया दृष्टो हि नरकस्तदेह्यन्यत्र गम्यताम् ॥४६॥

पुत्र उवाच

ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गन्तुमुद्यतः।
ततश्च सर्वैरुत्क्रुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः ॥४७॥
प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम्।
त्वदङ्गसङ्गी पवनो मनो ह्लादयते हि नः ॥४८॥
परितापश्च गात्रेभ्यः पीड़ाबाधाश्च कृत्स्नशः।
अपहन्ति नरव्याघ्र दयां कुरु महीपते ॥४९॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यपुरुषं नृपः।
पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ॥५०॥
किं मया कर्म्म तत् पुण्यं मर्त्यलोके महत् कृतम्।
आह्लाददायिनी वृष्टिर्येनेयं तदुदीरय ॥५१॥

यमपुरुष उवाच

पितृदेवातिथिप्रैष्य-शिष्टेनान्नेन ते तनुः।
पुष्टिमभ्यागता यस्मात् तद्गतंच मनो यतः ॥५२॥
ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः।
पापकर्म्मकृतो राजन् यातना न प्रबाधते ॥५३॥
अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टा विधिवद्यतः।
ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः ॥५४॥
पीड़न-च्छेद-दाहादि-महादुःखस्य हेतवः।
मृदुत्वमागता राजन् तेजसापहतास्तव ॥५५॥

राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत् सुखं प्राप्यते नरैः।
यदार्त्तजन्तुनिर्व्वाण-दनोत्थमिति मे मतिः ॥५६॥
यदि मत्सन्निधावेतान् यातना न प्रबाधते।
ततो भद्रमुखात्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ॥५७॥

यमपुरुष उवाच

एहि राजन् प्रगच्छामो निजपुण्यसमर्ज्जितान्।
भुङ्क्ष्व भोगानपास्येह यातनाः पापकर्म्मणाम् ॥५८॥

राजोवाच

तस्मान्न तावद्यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः।
मत्सन्निधानात् सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ॥५९॥

अन्यत्र चलें। आपने नरक देख लिया, अब दूसरी जगह चलिये ॥४६॥

पुत्र (सुमति) ने कहा—

हे पिता! जब राजा विपश्चित्ति यमदूत को आगे करके चले तब नरक की घोर यातनाओं में पड़े हुए लोगों ने उनसे कहा ॥ ४७ ॥ हे राजन्! कृपा कर एक घड़ी और ठहरिये। आपके शरीरसे लगकर पवन जो हमारे पास आती है उससे हम को आह्लाद होता है ॥ ४८ ॥ हमारे अङ्गों को जो ताप, पीड़ा और बाधा होती है उसको यह हवा समूल नष्ट करती है। अतः हे नर व्याघ्र! हम पर कृपा कीजिये ॥ ४९ ॥ राजा ने उन नारकियोंका यह वचन सुनकर उस यमदूत से पूछा कि मेरे ठहरने से इन लोगों को प्रसन्नता क्यों होती है ॥ ५० ॥ मैंने कौनसा ऐसा महान् पुण्य कर्म किया है कि जिससे इन लोगों को इस प्रकार आनन्द-वर्षा हो रही है, मुझसे तुम कहो ॥ ५१ ॥

यमपुरुष बोला—

हे राजन्! तुमने पितरों, देवताओं, अतिथियों और अभ्यागतों को पहिले भोजन कराकर अव-शिष्ट अन्न से अपने शरीर को पाला है तथा इसी प्रकार आपका चित्त अभ्यागत की सेवा में संलग्न रहा है ॥५२॥ इसी से आपके शरीर के संसर्ग से वायु सुखदायिनी होगई है और इन पापियों को इस समय कोई यातना नहीं मालुम होरही है॥५३॥ आपने जो अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ विधिवत् किये हैं इसलिये आपके दर्शन से यमदूतों के यन्त्र शास्त्र, अग्नि और कौए ॥५४॥ जो पीड़ा और छेदन आदि महान् दुःखों के हेतु हैं, हे राजन्! वे आपके तेज से हत होकर कोमलताको प्राप्त होरहे हैं॥५५॥

राजा बोला—

मेरे मत से स्वर्ग अथवा ब्रह्मलोक में वह सुख नहीं है जो दुःखित जीवों की रक्षा करने में है॥ यदि इनके समीप मेरे रहनेसे इनको यातनायें नहीं सताती हैं तो मैं यहाँ ही अचल होकर इनके कल्याण के लिये स्थिर रहूँगा ॥ ५७ ॥

यमदूत बोला—

हे राजन्! अपने संचित किये हुए पुण्यों का फल भोगने के लिये चलिये और इन पापियों को यातनायें भोगने दीजिये ॥५८॥

राजा बोला—

हे यमदूत! जब तक ये लोग दुःखी रहेंगे तब तक मैं नहीं जाऊँगा। मेरे सान्निध्य से इन नार-

धिक् तस्य जीवनं पुंसः शरणार्थिनमातुरम् ।
यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥६०॥
यज्ञ-दान-तपांसीह परत्र च न भूतये ।
भवन्ति तस्य यस्यार्त्त-परित्राणे न मानसम् ॥६१॥
नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु ।
वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः ॥६२॥
एतेषां सन्निकर्षात् तु यद्यग्निपरितापजम् ।
तथोग्रगन्धजं वापि दुःखं नरकसम्भवम् ॥६३॥
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छापदं महत् ।
एतेषां त्राणदानन्तु मन्ये स्वर्गसुखात् परम् ॥६४॥
प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।
किन्नु प्राप्तं मया न स्यात् तस्मात् त्वं व्रज माचिरम् ६५

यमपुरुष उवाच

एष धर्म्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ ।
अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात् पार्थिव गम्यताम् ॥६६॥

धर्म्म उवाच

नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वया सम्यगुपासितः ।
विमानमेतदारुह्य मा विलम्बस्व गम्यताम् ॥६७॥

राजोवाच

नरके मानवा धर्म्म पीड्यन्तेऽत्र सहस्रशः ।
त्राहीति चार्त्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥६८॥

इन्द्र उवाच

कर्म्मणा नरकप्राप्तिरेतेषां पापकर्मिणाम् ।
स्वर्गस्त्वयापि गन्तव्यो नृप पुण्येन कर्म्मणा ॥६९॥

राजोवाच

यदि जानासि धर्म्म त्वं त्वं वा शक्र शचीपते ।
मम यावत् प्रमाणन्तु शुभं तद्वक्तुमर्हथः ॥७०॥

धर्म्मउवाच

अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवि तारकाः ।
यथा वा वर्षतो धारा गङ्गायां सिकता यथा ॥७१॥
असंख्येया महाराज यथा बिन्द्वादयो ह्यपाम् ।
तथा तवापि पुण्यस्य संख्या नैवोपपद्यते ॥७२॥

कियों को सुख मिलताहै॥५९॥ उस मनुष्यके जीवन को धिक्कार है जो शरणार्थी आर्त मनुष्य की रक्षा नहीं करता है। निश्चय ही शरणागत वैरी की भी रक्षा करनी उचित है ॥ ६० ॥ इस लोक में अथवा परलोक में यज्ञ, दान, तप आदि का इतना पुण्य नहीं होता जितना कि आर्त मनुष्य के परित्राण में होता है ॥ ६१ ॥ जिस मनुष्य का हृदय बालक, दुःखीजनों तथा वृद्धों के प्रति कठोर है उसको मैं मनुष्य नहीं मानता, वह तो वस्तुतः राक्षसहै॥६२॥ इन लोगों के पास रहने से जो अग्निजन्य सन्ताप है वह तथा नरक की दुर्गन्धि और अन्य नारकीय दुःख ॥६३॥ क्षुधा, प्यास आदि दुःख जो मूर्छा को देने वाले हैं इन दुखों से इन लोगों की रक्षा करने को मैं स्वर्गीय सुख से अधिक समझता हूँ ॥ ६४ ॥ मेरे द्वारा जो ये दुःखी लोग सुख पाते हैं तो मैंने क्या सुख नहीं पाया? अतः मैं यहीं रहूँगा तुम शीघ्र जाओ ॥ ६५ ॥

यमपुरुष बोला—

आपको लेने के लिये धर्म और इन्द्र आरहे हैं हे राजन्! आपका कर्तव्य यहाँ से चलने का है, अतः आप अब चलें ॥ ६६ ॥

धर्मराज बोले—

तुमने मेरी अच्छी प्रकार उपासना की है अतः मैं तुमको स्वर्ग में ले जाऊँगा। इस विमानपर चढ़ कर आप शीघ्र स्वर्ग को चलिये ॥ ६७ ॥

राजा बोला—

हे धर्मराज! नरक में पीड़ित हुए हज़ारों लोग दुखित होकर मुझ से "त्राहि, त्राहि" कहते हैं, अतः मैं न जाऊँगा ॥ ६८ ॥

इन्द्र बोले—

इन पापियों को इनके कर्मों के कारण नरक की की प्राप्ति हुईहै। हे राजन्! आपको पुण्योंका फल पानेके लिये स्वर्ग को जाना चाहिये ॥ ६९ ॥

राजा बोला—

हे धर्मराज! यदि आप अथवा शचीके स्वामी इन्द्र मेरे पुण्योंके प्रमाणको जानते हों तो कहिये ॥

धर्म बोला—

जिस प्रकार समुद्र के जल कण, आकाश में तारागण, बरसती हुई धारायें, गङ्गाजीकी बालू ॥७१॥ तथा हे महाराज! जिस प्रकार जल के बिन्दु असंख्य होते हैं, उसी प्रकार से तुम्हारे पुण्यों की संख्या असंख्य है ॥ ७२ ॥

अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्व्वतः।
तदेव शतसाहस्र संख्यामुपगतं तव ॥७३॥
तद्गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ तद्भोक्तुममरालयम्।
एतेऽपि पापं नरके क्षपयन्तु स्वकर्म्मजम् ॥७४॥

राजोवाच

कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः।
यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते ॥७५॥
तस्माद्यत् सुकृतं किंचिन्ममास्ति त्रिदशाधिप।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां मताः॥७६॥

इन्द्र उवाच

एवमूर्द्ध्वतरं स्थानं त्वयावाप्तं महीपते।
एतांश्च नरकात् पश्य विमुक्तान् पापकारिणः ॥७७॥

पुत्र उवाच

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः।
विमानञ्चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥७८॥
अहञ्चान्ये च ये तत्र यातनाभ्यः परिच्युताः।
स्वकर्म्मफलनिर्द्दिष्टं ततो जात्यन्तरं गताः ॥७९॥
एवमेते समाख्याता नरका द्विजसत्तम।
येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ॥८०॥
तत् तत् सर्व्वं समाख्यातं यथा दृष्टं मया पुरा।
पुरानुभवजं ज्ञानमवाप्यावितथं तव।
अतः परं महाभाग किमन्यत् कथयामि ते ॥८१

इन नारकियों पर कृपा करने से तुम्हारे एकसौ हज़ार पुण्य क्षय होगये ॥ ७३ ॥ इस कारण हे राजन्! आप स्वर्ग का उपभोग करने को चलो। और इन पापियों को अपने कर्मका फल भोगनेदो॥

राजा बोला—

यदि मेरे द्वारा इनको सुख न होगा तो मनुष्य क्यों मुझ से लाभकी इच्छा करेंगे? ॥ ७५ ॥ हे देवराज! इसलिये मेरा जो कुछ भी पुण्य हो उससे ये यातना पाते हुए पापी मुक्त हो जाँय ॥ ७६ ॥

इन्द्र बोले—

हे राजन्! इससे भी उत्कृष्ट स्थान तुमको मिला और देखो, ये पापीभी नरकसे मुक्त होगये ॥

पुत्र बोला—

इसके बाद उसके ऊपर पुष्पवर्षा होने लगी और विमान में बैठाकर स्वयं विष्णुभगवान् राजा विपश्चिति को स्वर्ग में लेगये ॥ ७८ ॥ मैं और दूसरे यातना पानेवाले नारकियों ने वहाँ से मुक्त होकर अपने-अपने कर्मानुसार जन्मान्तर में प्रवेश किया ॥ ७९ ॥ इस प्रकार मैंने नरकोंका वर्णनकिया तथा ये भी बताया कि किस-किस पाप से जीव कौन-कौनसी योनि में जाता है ॥ ८० ॥ जो कुछ मैंने पहिले देखा था वह सब बतादिया, पूर्वानुभव-जन्य ज्ञान जो कुछ था आपसे कहा। अब हे महाभाग! आपसे और क्या कहूँ? ॥८१॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में पिता-पुत्र सम्वाद के अन्तर्गत वैश्यराज का स्वर्गगमन नामका पन्द्रहवाँ अ० स०

सोलहवां अध्याय

पितोवाच

कथितं मे त्वया वत्स संसारस्य व्यवस्थितम्।
स्वरूपमतिहेयस्य घटीयन्त्रवदव्ययम् ॥ १ ॥
तदेवमेतदखिलं मयावगतमीदृशम्।
किं मया वद कर्त्तव्यमेवमस्मिन् व्यवस्थिते ॥ २ ॥

पुत्र उवाच

यदि मद्वचनं तात श्रद्धधास्यविशङ्कितः।
तत् परित्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थपरो भव ॥ ३ ॥
तमनुष्ठाय विधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम्।

पिता बोले—

हे वत्स! तुमने मुझसे संसारकी व्यवस्थाकही तथा इसका अति घृणित घटीयन्त्र का सा स्वरूप भी बताया ॥ १ ॥ वह सब मैंने खूब समझ लियाहै इस दशामें मुझे क्या कर्तव्य है सो कहो ॥ २ ॥

पुत्र बोला—

हे तात! यदि आपको मेरे वचन में श्रद्धा है तो गृहस्थधर्म को छोड़कर वाणप्रस्थ में प्रवेश कीजिये ॥ ३ ॥ और उसका विधिवत् अनुष्ठान कीजिये और अग्नि का संयम छोड़कर अपने में ही

ात्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ ४ ॥
ःकान्तराशी वश्यात्मा भव भिक्षुरतन्द्रितः ।
ात्र योगपरो भूत्वा वाह्यस्पर्शविवर्जितः ॥ ५ ॥
ातः प्राप्स्यसि तं योगं दुःखसंयोगभेषजम् ।
ुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसङ्गिनम् ।
ात्संयोगान्न ते योगो भूयो भूतैर्भविष्यति ॥ ६ ॥

पितोवाच

ात्स योगं ममाचक्ष्व मुक्तिहेतुमतः परम् ।
ोन भूतैः पुनर्भूतो नेदृग्दुःखमवाप्नुयाम् ॥ ७ ॥
यत्रासक्तिपरस्यात्मा मम संसारवन्धनैः ।
नैति योगमयोगोऽपि तं योगमधुना वद ॥ ८ ॥
संसारादित्यतापार्त्ति-विप्लुष्यद्देहमानसम् ।
ब्रह्मज्ञानाम्बुशीतेन सिंच मां वाक्यवारिणा ॥ ६ ॥
अविद्याकृष्णसर्पेण दष्टं तद्विषपीड़ितम् ।
स्ववाक्यामृतपानेन मां जीवय पुनर्मृतम् ॥१०॥
पुत्र-दार-गृह-क्षेत्र-ममत्वनिगड़ार्दितम् ।
मां मोचयेष्टसद्भाव-विज्ञानोद्घाटनैस्त्वरन् ॥११॥

पुत्र उवाच

शृणु तात यथा योगो दत्तात्रेयेण धीमता ।
अलर्काय पुरा प्रोक्तः सम्यक् पृष्टेन विस्तरात् ॥१२॥

पितोवाच

दत्तात्रेयः सुतः कस्य कथं वा योगमुक्तवान् ।
कश्चालर्को महाभागो यो योगं परिपृष्टवान् ॥१३॥

पुत्र उवाच

कौशिको ब्राह्मणः कश्चित् प्रतिष्ठानेऽभवत् पुरे ।
सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोऽभवत् १४॥
तं तथा व्याधितं भार्य्या पतिं देवमिवार्च्चयत् ।
पादाभ्यङ्गाङ्गसंवाह-स्नानाच्छादनभोजनैः ॥१५॥
श्लेष्म-मूत्र-पुरीषासृक्-प्रवाहक्षालनेन च ।
रहश्चैवोपचारेण प्रियसम्भाषणेन च ॥१६॥
स तया पूज्यमानोऽपि सदातीव विनीतया ।
अतीवतीव्रकोपत्वान्निभर्त्सयति निष्ठुरः ॥१७॥

आत्मा का ध्यान कीजिये तथा निर्द्वन्द्व रहकर एकान्त वास कीजिये ॥ ४॥ एकान्त वास करते हुए अपनी आत्मा को वश में कीजिये और जितेन्द्रिय होकर भिक्षुक वनिये। तथा वाह्य संसर्ग से अलग रहकर योगी हो जाइये ॥ ५ ॥ इसके वाद आपको आवागमन की औषधि स्वरूप योगकी प्राप्ति होगी वह योग मुक्ति का हेतु, अनुपम, अवर्णनीय तथा असङ्ग है तथा जिसके प्रतापसे फिर संसारमें आने का संयोग नहीं होता है ॥ ६ ॥

पिता वोले—

हे वत्स! मुक्ति के हेतु स्वरूप योग का मुझसे वर्णन कीजिये जिससे मुझे फिर इस दुःख का अनुभव न हो ॥७॥ जिसकी शक्ति से मैं सांसारिक वन्धनों में न फँसूं और मेरी आत्मा आसक्ति से परे हो जाय ॥ ८ ॥ संसाररूपी सूर्य से मेरा मन और शरीर तप्त हो रहा है, ब्रह्मज्ञान युक्त शीतल जल रूपी अपने वचनों से इसको शीतल करो॥ ९॥ अविद्यारूपी काले सांप ने मुझे डसा है और उस के विष से मैं पीड़ित हूँ, मुझ मरे हुए को अपने वचनरूपी अमृत से पुनः जीवित करो ॥ १० ॥ पुत्र, स्त्री, घर, खेत की ममता रूपी ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ हूँ तुम सद्भावयुक्त विज्ञान उत्पन्न कर मुझको छुड़ाओ ॥ ११ ॥

पुत्र वोला—

हे पिता! जो लोग प्राचीन काल में अलर्क के पूछने पर वुद्धिशाली दत्तात्रेयजी ने सम्यक् प्रकार से विस्तार पूर्वक वर्णन किया है वह सुनिये ॥१२॥

पिता वोले—

दत्तात्रेय किसके पुत्र थे, उन्होंने कौनसा योग वर्णन किया और महाभाग अलर्क जिन्होंने योग पूछा वे कौन थे? ॥ १३ ॥

पुत्र वोला—

प्राचीन काल में कोई कौशिक नाम ब्राह्मण था जो पूर्व जन्म में किये पापोंके कारण कोढ़ी होगया ॥१४॥ उसकी स्त्री उस रोगी पति को ही देवताके समान पूजती थी और उसके चरण धोकर स्नान कराती, वस्त्रपहिनाती और भोजन कराती थी॥१५॥ वह स्त्री अपने पति की खखार, मूत्र, विष्ठा और रुधिर धोकर साफ़ करती तथा उसका उपचार करती हुई मीठी वाणी से संभाषण करती थी॥१६॥ वह निष्ठुर उस विनय-शीला से अति नम्रतापूर्वक पूजित होकर भी अत्यन्त क्रोध से उसको भला वुरा कहता रहता था ॥ १७ ॥ इसपर भी उसकी

तथापि प्रणता भार्य्या तममन्यत दैवतम् ।
तं तथाप्यतिबीभत्सं सर्व्वश्रेष्ठममन्यत ॥१८॥
अचंक्रमणशीलोऽपि स कदाचिद्द्विजोत्तमः ।
प्राह भार्य्यां नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम्॥१६॥
या सा वेश्या मया दृष्टा राजमार्गे गृहोपिता।
तां मां प्रापय धर्म्मज्ञे सैव मे हृदि वर्त्तते ॥२०॥
दृष्टा सूर्य्योदये बाला रात्रिश्चेयमुपागता ।
दर्शनानन्तरं सा मे हृदयान्नापसर्पति ॥२१॥
यदि सा चारुसर्व्वाङ्गी पीनश्रोणिपयोधरा ।
नोपगूहति तन्वङ्गी तन्मां द्रक्ष्यसि वै मृतम् ॥२२॥
वामः कामो मनुष्याणां बहुभिः प्रार्थ्यते च सा ।
ममाशक्तिश्च गमने संकुलं प्रतिभाति मे ॥२३॥
तत् तदा वचनं श्रुत्वा भर्त्तुः कामातुरस्य सा ।
तत्पत्नी सत्कुलोत्पन्ना महाभागा पतिव्रता ॥२४॥
गाढं परिकरं बद्ध्वा शुल्कमादाय चाधिकम् ।
स्कन्धे भर्त्तारमादाय जगाम मृदुगामिनी ॥२५॥
निशि मेघावृते व्योम्नि चलद्विद्युत्प्रदर्शिते ।
राजमार्गे प्रियं भर्त्तुश्चिकीर्षन्ती द्विजाङ्गना ॥२६॥
पथि शूले तथा प्रोतमचौरं चौरशङ्कया ।
माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ स द्विजः ॥२७॥
पत्नीस्कन्धे समारूढश्चालयामास कौशिकः ।
पादावमर्षणात् क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह ॥२८॥
येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितः पदा ।
दशां कष्टामनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः ॥२६॥
सूर्य्योदयेऽवशः प्राणैर्विमोक्ष्यति न संशयः ।
भास्करालोकनादेव स विनाशमवाप्स्यति ॥३०॥
तस्य भार्य्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम् ।
प्रोवाच व्यथिता सूर्य्यो नैवोदयमुपैष्यति ॥३१॥
ततः सूर्योदयाभावादभवत् सन्तता निशा ।
बहून्यहःप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः ॥३२॥
निःस्वाध्यायवषट्कार-स्वधास्वाहाविवर्ज्जितम् ।
कथं नु खल्विदं सर्व्वं न गच्छेत् संक्षयं जगत् ॥३३॥
अहोरात्रव्यवस्थाया विना मासर्त्तुसंक्षयः ।
तत्संक्षयात्र त्वयने ज्ञायेते दक्षिणोत्तरे ॥३४॥

स्त्री उसको देवता के समान समझती और उस अति बीभत्स को ही सर्वश्रेष्ठ मानती ॥१८॥ मरण शील होने पर भी वह ब्राह्मण एक बार अपनी स्त्री से बोला कि मुझे उसके घर पहुंचादो ॥१६॥ जिस वेश्या को आज मैंने राजा के दरबार में जाते हुए देखा है, हे धर्म को जानने वाली ! उस वेश्या के पास मुझे पहुँचा दे, वह मेरे हृदयमें बस गई है ॥ उस स्त्री को मैंने प्रातःकाल देखा था और अब रात्रि होगई है। उसको देखे इतनी देर होने परभी वह मेरे हृदय से नहीं निकलती है ॥२१॥ यदि वह सर्वाङ्ग सुन्दरी, जिसकी सुन्दर जाँघें तथा कड़े स्तन हैं, मुझे न मिलेगी तो मेरी मृत्यु हो जावेगी ॥२२॥ कामदेव का मार्ग मनुष्योंके लिये बड़ा कठिन है। उस मनुष्य ने स्त्री से बहुत प्रार्थना की और कहा कि मुझ में चलने की शक्ति नहीं है इससे मैं व्याकुल हूँ ॥ २३ ॥ कामातुर अपने स्वामी के वचन सुनकर उस भाग्यवती, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने वाली, पतिव्रता स्त्री ने ॥२४॥ अपनी कमर कसकर कन्धे पर कपड़ा रक्खा और उसपर अपने स्वामी को विठाकर वह धीरे-धीरे चलने लगी ॥ २५ ॥ अंधेरी रात्रि थी, आकाश में विजली चमक रही थी, और ब्राह्मणी राज्यमार्ग से अपने प्रिय स्वामी को लिये जारही थी ॥२६॥ रास्ते में एक शूली थी जिसपर चोरी की आशङ्का में माण्डव्य मुनि को चढ़ा दिया गया था और जहाँ कि वे मुनि अपने दुःख से आर्त हो रहे थे। वह ब्राह्मण ॥ २७ ॥ कौशिक अपनी स्त्री के कन्धे पर चढ़ा हुआ चला जाता था कि उसके पाँव लगने से माण्डव्य मुनि क्रोधित हो ये बोले ॥ २८ ॥ जिसने अपने पाँव से इस शूली को हिला कर मुझे दुःखित कर इस दशा में पहुँचाया है वह पापी नराधम ॥२६॥ सूर्योदय होने पर अवश्य प्राण त्यागेगा, इसमें संशय नहीं। वह सूर्य को देखते ही नष्ट हो जायगा ॥३०॥ उसकी स्त्री ने उस अति कठिन शाप को सुनकर दुःख से कहा कि सूर्य उदय को प्राप्त न हो ॥३१॥ इसके बाद सूर्य के न निकलनेके कारण चारों ओर बहुत दिन तक रात्रि ही रही इससे देवतागण भयभीत हुए ॥ ३२ ॥ स्वाध्याय, षट्कर्म, स्वधा, स्वाहा आदि सब छूट गये। तथा यह सोचनेलगे कि ये जगत् इस तरह से कैसे चलेगा ॥३३॥ यदि दिन, रात्रि की व्यवस्था न रहेगी तो मास ऋतु किस प्रकार होंगे और बिना इस के उत्तरायण और दक्षिणायण का ज्ञान किस प्रकार से

विना चायनविज्ञानात् कालः संवत्सरः कुतः ।
संवत्सरं विना नान्यत् कालज्ञानं प्रवर्त्तते ॥३५॥
पतिव्रताया वचसा नोद्गच्छति दिवाकरः ।
सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकाः क्रियाः॥३६॥
नाग्नेर्विहरणञ्चैव क्रत्वभावश्च लक्ष्यते ।
नवाप्यायनमस्माकं विना होमेन जायते ॥३७॥
वयमाप्यायिता मर्त्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ।
वृष्ट्या तानुगृह्णीमो मर्त्त्यान् शस्यादिसिद्धये ॥३८॥
निष्पादितास्वोषधीषु मर्त्त्या यज्ञैर्यजन्ति नः ।
तेषां वयं प्रयच्छामः कामान् यज्ञादिपूजिताः ॥३९॥
अधो हि वर्षाम वयं मर्त्त्याश्चोर्द्ध्वप्रवर्षिणः ।
तोयवर्षेण हि वयं हविर्वर्षेण मानवाः ॥४०॥
ये नास्माकं प्रयच्छन्ति नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ।
क्रतुभागं दुरात्मानः स्वयमश्नन्ति लोलुपाः ॥४१॥
विनाशाय वयं तेषां तोयसूर्य्याग्निमारुतान् ।
क्षितिञ्च सन्दूषयामः पापानामपकारिणाम् ॥४२॥
दुष्टतोयादिभोगेन तेषां दुष्कृतकर्म्मिणाम् ।
उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते मरणाय सुदारुणाः ॥४३॥
ये त्वस्मान् प्रीणयित्वा तु भुञ्जते शेषमात्मना ।
तेषां पुण्यान् वयं लोकान् विदधाम महात्मनाम् ॥४४॥
तन्नास्ति सर्व्वमेवैतद्विनैषां व्युष्टिसंस्थितिम् ।
कथं नु दिनसर्गः स्यादन्योऽन्यमवदन् सुराः ॥४५॥
तेषामेव समेतानां यज्ञव्युच्छित्तिशङ्किनाम् ।
देवानां वचनं श्रुत्वा प्राह देवः प्रजापतिः ॥४६॥
तेजः परं तेजसैव तपसा च तपस्तया ।
प्रशाम्यतेऽमरास्तस्माच्छृणुध्वं वचनं मम ॥४७॥
पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ।
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्त्यानां भवतां तथा ॥४८॥
तस्मात् पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ।
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया ॥४९॥

पुत्र उवाच

तैः सा प्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं व्रियतामिति ।
अयाचन्त दिनं देवा भवत्विति यथा पुरा ॥५०॥

होगा? ॥३४॥ अयनके विना जाने वर्ष और संवत्सर किस प्रकार मालूम होगा और सम्वत्सर के विना काल-ज्ञान किस तरह प्रचलित होगा ॥३५॥ यदि पतिव्रता के वचन से सूर्य नहीं निकलेगा तो सूर्योदयके विना स्नान, दान आदिक क्रियायें किस प्रकार होंगी? ॥३६॥ विना अग्नि के यज्ञ का अभाव दिखाई देता है तथा विना यज्ञ, होमादि के हम लोगों की तृप्ति किस प्रकार होगी? ॥ ३७ ॥ हम लोग यथोचित यज्ञ भाग मनुष्यों से पाकर वृष्टि करते हैं जिससे कि मनुष्यों के लिये अन्न आदि उत्पन्न होता है ॥३८॥ यज्ञ करने वाले मनुष्यों के लिये औषधियां उत्पन्न होती हैं। हम भी यज्ञादि से पूजित होकर मनुष्योंकी मनोकामना पूर्ण करते हैं ॥३९॥ हम नीचे की ओर बरसाते हैं और मनुष्य ऊपर की ओर। हम जल की वर्षा करते हैं और मनुष्य हविष्यान्न की ॥ ४० ॥ जो दुष्टात्मा नित्य-नैमित्तिक क्रिया करके हमको यज्ञ-भाग नहीं देते हैं और वे लोभी स्वयं ही उसको खा लेते हैं, उन ॥४१॥ पापियों को हम संसार में सूर्य, अग्नि, वायु आदि के द्वारा नाश कर देते हैं ॥४२॥ कुत्सित जल आदि के पीने से उन पापियों की दशा संसार में मृत्यु से भी अधिक दारुण हो जाती है ॥४३॥ जो लोग हमको प्रसन्न करके फिर शेष अन्न को स्वयं खाते हैं उन महात्मा पुण्यवानों को हम उत्कृष्ट लोक देते हैं ॥४४॥ यदि सूर्योदय न हुआ तो यह सब कुछ न होगा, स्वर्ग में स्थिति और दिन की सत्क्रियायें किस प्रकार होंगी? ये आपस में देवता लोग कह रहे थे ॥ ४५ ॥ यज्ञादि के विषय में शङ्कित उन देवताओं की बातें सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी बोले ॥४६॥ तेज से परे तेज है तथा तपस्या से परे तपस्या है इसलिये आप लोग धैर्य रक्खें और जो मैं कहता हूँ वह सुनें ॥ ४७ ॥ पतिव्रताके तेजसे सूर्योदय नहीं होताहै और सूर्यके न निकलने से हमारी और मानवों की हानि है ॥४८॥ इसलिये अत्रि मुनि की पतिव्रतास्त्री अनुसूया जो तपस्विनी हैं उनके पास जाकर सूर्योदय होने की अभिलाषा करो और उनको प्रसन्न करो ॥ ४९॥

पुत्र (सुमति) ने कहा—

तब देवताओं ने जाकर अनुसूया को प्रसन्न किया। अनुसूया ने कहा कि आपकी क्या इच्छा है सो कहिये। देवताओं ने याचना की कि पहिले की तरह दिन निकलना चाहिये ॥ ५० ॥

अनसूयोवाच

पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथन्त्विति ।
सम्मान्य तस्मात् तां साध्वीमहःस्रक्ष्याम्यहंसुराः ५१॥
यथा पुनरहोरात्र-संस्थानमुपजायते ।
यथा च तस्याः स्वपतिर्न साध्वया नाशमेष्यति ५२॥

पुत्र उवाच

एवमुक्त्वा सुरांस्तस्या गत्वा सा मन्दिरं शुभा ।
उवाच कुशलं पृष्टा धर्म्मं भर्त्तुस्तथात्मनः । ५३॥

अनुसूयोवाच

कच्चिन्नन्दसि कल्याणि स्वभर्त्तुमुखदर्शनात् ।
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसेऽभ्यधिकं पतिम् ॥५४
भर्त्तृशुश्रूषणादेव मया प्राप्तं महत् फलम् ।
सर्व्वकामफलावाप्त्या प्रत्यूहाः परिवर्त्तिताः ॥५५॥
पञ्चर्णानि मनुष्येण साध्वि देयानि सर्व्वदा ।
तथात्मवर्णधर्म्मेण कर्त्तव्यो धनसंचयः ॥५६
प्राप्तश्चार्थस्ततः पात्रे विनियोज्यो विधानतः ।
सत्यार्ज्जव-तपो-दानैर्दयायुक्तो भवेत् सदा ॥५७॥
क्रियाश्च शास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेषविवर्ज्जिताः ।
कर्त्तव्या अन्वहं श्रद्धा-पुरस्कारेण शक्तितः । ५८॥
स्वजातिविहितानेव लोकानाप्नोति मानवः ।
क्लेशेन महता साध्वि प्राजापत्यादिकान् क्रमात्॥५९॥
स्त्रियस्त्वेवं समस्तस्य नरैर्दुःखार्ज्जितस्य वै ।
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यः पतिशुश्रूषयैव हि ॥६०॥
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम् ।
भर्त्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि ॥६१॥
तस्मात् साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणं प्रति ।
त्वया मतिः सदा कार्य्या यतो भर्त्ता परा गतिः ॥६२॥
यद्देवेभ्यो यच्च पित्रागतेभ्यः
कुर्य्याद्भर्त्ताभ्यर्च्चनं सत्क्रियातः ।
तस्याप्यर्द्धं केवलानन्यचित्ता
नारी भुङ्क्ते भर्त्तृ शुश्रूषयैव ॥६३॥

पुत्र उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्य तथादरात् ।
प्रत्युवाचात्रिपत्नीं तामनुसूयामिदं वचः ॥६४॥

अनुसूया बोली—

हे देवताओ ! पतिव्रता का माहात्म्य किसी प्रकार मिथ्या नहीं हो सकता, इसलिये उस सती को सम्मानित करके उससे क्षमा-दान कराऊँगी॥ जिससे पुनः दिन और रात्रि पूर्ववत् हो और उस साध्वीका पति भी नाश को न प्राप्त हो ॥५२॥

सुमति बोला—

उनके यह कहने पर देवता लोग अनुसूया को साथ लेकर उसके स्थान पर गये और उससे उस की तथा स्वामी की कुशल पूछी ॥ ५३ ॥

अनुसूया बोली—

हे कल्याणी ! तुम अपने स्वामी के मुख का दर्शन करके आनन्द करती हो तथा अन्य सब देवताओं से पति को अधिक मानती हो ॥ ५४ ॥ मैंने भी स्वामी की सेवा से महान् सुख प्राप्त किया है, मेरी सब कामनायें सिद्ध हुईं और कभी दुःख नहीं हुआ ॥ ५५ ॥ हे सती ! मनुष्यको सदैव पाँच ऋण देने के लिये तत्पर रहना चाहिये । इसलिये अपने वर्ण के अनुसार धर्म रूपी धन का सञ्चय करना चाहिये ॥५६॥ धन प्राप्त करके विधि विधान सहित सत्पात्र को दान करना चाहिये और सदैव सत्य, विनय,तप, दान और दया युक्त रहनाचाहिये ॥ ५७ ॥ सब क्रियायें राग और द्वेष से रहित हो कर शास्त्र की विधि के अनुसार करनी चाहियें, तथा श्रद्धा और पुरस्कार सहित शक्तिपूर्वक सब की सेवा करनी चाहिये ॥ ५८ ॥ हे साध्वी ! अत्यंत क्लेश से लोग स्वजाति कर्म और प्राजापत्यादि व्रत करते हुए लोकों को प्राप्त करते हैं ॥ ५९ ॥ मनुष्यों द्वारा बड़े दुःख से संचित किये हुए उस समस्त पुण्य में स्त्रियां पति की सेवा करनेके कारण आधा भाग पाती हैं ॥६०॥ स्त्रियोंके लिये पृथक् यज्ञ, ज्ञान श्राद्ध और उपवास कुछ भी नहीं है ! वे तो पति सेवा करती हुई निष्ठ लोकों को जाती हैं ॥ ६१ ॥ इसलिये हे सौभाग्यवती साध्वी ! पति की सदा अपनी बुद्धि रक्खो, क्योंकि स्त्रीके लिये ही परम गति है ॥ ६२ ॥ जो कुछ देवताओं और अतिथियों की सेवा करके पति पुण्य है उसका आधा स्त्री केवल पतिका अनन्य चेतन और सेवा करने से पाती है ॥६३॥

पुरुष बोला—

उसका यह वचन सुनकर और आदर सहित पूजा करके वह पतिव्रता ब्राह्मणी अत्रि-ऋषि की स्त्री अनुसुया के प्रति यह वचन बोली ॥ ६४ ॥

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि देवैश्चाप्यवलोकिता ।
यन्मे प्रकृतिकल्याणि श्रद्धां वर्द्धयसे पुनः ॥६५
जानाम्येतन्न नारीणां काचित् पतिसमा गतिः ।
तत्प्रीतिश्चोपकाराय इह लोके परत्र च ॥६६॥
पतिप्रसादादिह च प्रेत्य चैव यशस्विनि ।
नारी सुखमवाप्नोति नार्य्या भर्त्ता हि देवता ॥६७॥
सा त्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्तया मम मन्दिरम् ।
आर्य्याया यन्मया कार्य्यं तथार्य्येणाऽपि वा शुभे॥६८

कल्याणि ! मैं धन्य हूँ जो आपसे अनुगृहीत की गई तथा मैंने देवताओं का दर्शन पाया । इससे मेरी श्रद्धा में वृद्धि हुई है ॥६५॥ मैं जानती हूँ कि इस लोक और परलोक में स्त्रियों की गति पति में प्रेम और उसकी सेवा ही है ॥६६॥ हे यशस्विनी ! पति की कृपा से ही और उसको देवता समझने से ही स्त्री इस लोक और परलोक में सुख पाती है ॥ ६७ ॥ हे सौभाग्यवती ! जिस कारण तुम मेरे स्थान पर आई हो सो कहो । हे आर्ये ! जो कुछ मुझे कर्तव्य है वह तुम मुझसे कहो ॥६८॥

अनुसूयोवाच

एते देवाः सहेन्द्रेण मामुपागम्य दुःखिताः ।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्म्म-दिननक्तं निरूपणाः ॥६९॥
याचन्तेऽहनिशासंस्थां यथावदविखण्डिताम् ।
अहं तदर्थमायाता शृणु चैतद्वचो मम ॥७०॥
दिनाभावात् समस्तानामभावो यागकर्म्मणाम् ।
तदभावात् सुराः पुष्टिं नोपयान्ति तपस्विनि ॥७१॥
अह्नश्चैव समुच्छेदादुच्छेदः सर्व्वकर्म्मणाम् ।
तदुच्छेदादनावृष्टया जगदुच्छेदमेष्यति ॥७२॥
तत् त्वमिच्छसि चेदेतत् जगदुद्धर्त्तुमापदः ।
प्रसीद साध्वि लोकानां पूर्व्ववद्वर्त्ततां रविः ॥७३॥

अनुसूया बोली—

इन्द्र के सहित ये देवतागण अति दुखित होकर मेरे पास आये और कहने लगे कि तुम्हारे वचन के कारण ही सूर्योदय नहीं होता है कि जिससे आन्हिक सब कर्म नष्ट हो रहे हैं ॥ ६९ ॥ ये देवता लोग इस बात की याचना करते हैं कि दिन और रात्रि क्रम पूर्वक होते रहें और मैं भी यही अभिलाषा लेकर आई हूँ । मेरे इस वचन को सुनिये ॥७०॥ दिन न निकलने से समस्त यज्ञ-कर्मों का अभाव है जिस अभाव के कारण कि देवताओं की पुष्टि नहीं होती है ॥७१॥ दिन के नाश होने से सब शुभ कर्मों का नाश होगया है । शुभ कर्मों के नष्ट होने से अनावृष्टि होगई है जिससे कि संसार नाश की ओर उन्मुख है ॥ ७२ ॥ हे साध्वी ! इस जगत् का आपत्ति से उद्धार कर इसकी रक्षा करो, आपके प्रसन्न होनेसे सूर्य पूर्ववत् उदय होंगे ॥७३॥

ब्राह्मण्युवाच

माण्डव्येन महाभागे शप्तो भर्त्ता ममेश्वरः ।
सूर्योदये विनाशं त्वं प्राप्स्यसीत्यतिमन्युना ॥७४॥

ब्राह्मणी बोली—

हे सौभाग्यवती ! माण्डव्य ऋषि ने मेरे पतिदेव को शाप दिया है कि सूर्योदय होते ही तू नाश को प्राप्त होगा ॥७४ ॥

अनुसूयोवाच

यदि वा रोचते भद्रे ततस्त्वद्वचनादहम् ।
करोमि पूर्व्ववद्देहं भर्त्तारञ्च नवं तव ॥७५॥
मया हि सर्व्वथा स्त्रीणां माहात्म्यं वरवर्णिनि ।
पतिव्रतानामाराध्यमिति सम्मानयामि ते ॥७६॥

अनुसूया बोली—

हे भद्रे ! यदि तुम्हारी ऐसी ही अभिलाषा है तो तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हारे स्वामी की पूर्ववत् देह कर दूँगी ॥७५॥ हे सुन्दर वर्णवाली ! मैं सर्वथा स्त्रियों के माहात्म्य को जानती हूँ । मैं तुमको पतिव्रताओं द्वारा आराधित होने योग्य मानती हूँ॥७६॥

पुत्र उवाच

तथेत्युक्ते तया सूर्य्यमाजुहाव तपस्विनी ।
अनुसूयार्घ्यमुद्यम्य दशरात्रे तदा निशि ॥७७॥
ततो विवस्वान् भगवान् फुल्लपद्मारुणाकृतिः ।
[illegible] ॥७८॥

सुमति बोला—

अनुसूयाके इस प्रकार कहनेपर उस तपस्विनी ने हवन करके अर्घ्य देकर सूर्य को प्रणाम किया जब तक दस रात्रि के बराबर समय व्यतीत हो चुका था ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर लाल कमल के समान कान्ति वाले सूर्य भगवान् शैलराज उदयाचल पर रविमण्डल से प्रगट हुए ॥ ७८ ॥

समनन्तरमेवास्या भर्त्ता प्राणैर्व्ययुज्यत ।
पपात च महीपृष्टे पतन्तं जगृहे च सा ॥७९॥

अनुसूयोवाच

न विषादस्त्वया भद्रे कर्त्तव्यः पश्य मे बलम् ।
पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किं चिरेण ते ॥८०॥
यथा भर्त्तृ समं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् ।
रूपतः शीलतो बुद्ध्या वाङ्माधुर्य्यादिभूषणैः॥८१॥
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ।
प्राप्नोतु जीवितं भार्य्यासहायः शरदां शतम् ॥८२॥
यथा भर्त्तृ समं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् ।
तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ॥८३॥
कर्म्मणा मनसा वाचा भर्त्तुराराधनं प्रति ।
यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवतां द्विजः ॥८४॥

पुत्र उवाच

ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ।
स्वभाभिर्भासयन् वेश्म वृन्दारक इवाजरः ॥८५॥
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यादिनिस्वनः ।
लेभिरे च मुदं देवा अनुसूयामथाब्रुवन् ॥८६॥

देवा ऊचुः

वरं वृणीष्व कल्याणि देवकार्य्यं महत् कृतम् ।
त्वया यस्मात् ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि ॥८७॥

अनुसूयोवाच

यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः ।
वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता ॥८८॥
तद्यान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
योगञ्च प्राप्नुयां भर्त्तु-सहिता क्लेशमुक्तये ॥८९॥
एवमस्त्विति तां देवा ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः ।
प्रोक्त्वा जग्मुर्यथान्यायमनुमान्य तपस्विनीम्॥९०॥

सूर्य के प्रगट होते ही उस ब्राह्मण का पति प्राण-रहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उस गिरते हुए को स्त्री ने गोदमें उठा लिया ॥ ७९ ॥

अनसूया बोली—

हे भद्रे ! तुम शोक न करो और मेरे उस बलको देखो जो मैंने चिरकाल तक पति की सेवा और तपस्या करके प्राप्त किया है ॥ ८० ॥ जो मैंने रूप, शील, बुद्धि अथवा अङ्ग माधुर्य आदि भूषणों से कभी किसी दूसरे पुरुष को पति रूप से न देखा हो तो ॥८१॥ उस सत्य से यह विप्र व्याधि-रहित होकर जीवित होजावे और युवा होकर सैकड़ों वर्ष तक अपनी स्त्री की सहायता करे ॥८२॥ यदि मैं अपने पति के समान किसी अन्य देवता को न मानती होऊँ तो उस सत्य से यह ब्राह्मण पुनर्जीवित होकर आरोग्यता को प्राप्त हो ॥ ८३ ॥ यदि मेरा उद्यम नित्य मनसा, वाचा, कर्मणा पति के आराधनके निमित्तहै तो यह ब्राह्मण जीवित होजाय।

सुमति बोला—

अनुसूया के इस प्रकार कहने पर वह ब्राह्मण व्याधिमुक्त होकर जीवित होगया और युवा होकर अपनी आभा से घर को प्रकाशित करने लगा तथा देवता की भाँति अजर होगया ॥ ८५ ॥ इसके बाद देवता लोग पुष्पःवृष्टि करके वाद्य आदि का शब्द करने लगे और प्रसन्न हो अनुसूयासे कहने लगे ॥

देवता बोले—

हे कल्याणि ! चूँकि तुमने देवताओं का महान् कार्य कियाहै इसलिये देवता तुम्हें वर देना चाहते हैं। हे तपस्विनि ! अपनी इच्छानुसार वर माँगो॥

अनुसूया बोली—

यदि पितामह और देवतालोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहतेहैं अथवा मुझे वरके योग्य समझते हैं तो ॥ ८८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्र कहलायें और मैं अपने पति के सहित योग को प्राप्त हो क्लेश से मुक्त हो जाऊँ ॥ ८९ ॥ अनुसूया के यह वचन सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिक देवता लोग "एवमस्तु" कहकर और न्याय पूर्वक उस तपस्विनी का सन्मान कर के अपने-अपने स्थानों को चले ॥९०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें पिता-पुत्र संवादके अंतर पतिव्रता वर-प्राप्ति नाम सोलहवाँ अध्याय समाप्त

सत्रहवाँ अध्याय

पुत्र उवाच

ततः काले वहुतिथे द्वितीयो ब्रह्मणः सुतः ।
स्वभार्य्यां भगवानत्रिरनुसूयामपश्यत ॥ १ ॥
ऋतुस्नातां सुचार्व्वङ्गीं लोभनीयोत्तमाकृतिम् ।
सकामो मनसा भेजे स मुनिस्तामनिन्दिताम् ॥ २ ॥
तस्याभिध्यायतस्तान्तु विकारो योऽन्वजायत ।
तमेवोवाह पवनस्तिरश्चोर्द्ध्वञ्च वेगवान् ॥ ३ ॥
ब्रह्मरूपञ्च शुक्राभं पतमानं समन्ततः ।
सोमरूपं रजोपेतं दिशस्तं जगृहुर्दश ॥ ४ ॥
स सोमो मानसो जज्ञे तस्यामत्रेः प्रजापतेः ।
पुत्रः समस्तसत्त्वानामायुराधार एव च ॥ ५ ॥
तुष्टेन विष्णुना जज्ञे दत्तात्रेयो महात्मना ।
स्वशरीरात् समुत्पाद्य सत्त्वोद्रिक्तो द्विजोत्तमः ॥ ६ ॥
दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनुसूयास्तन पपौ ।
विष्णुरेवावतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत् ॥ ७ ॥
सप्ताहात् प्रच्युतो मातुरुदरात् कुपितो यतः ।
हैहयेन्द्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वात्रौ कुपितः सद्यो दग्धुकामः स हैहयम् ।
गर्भवासमहायास-दुःखामर्षसमन्वितः ॥ ९ ॥
दुर्व्वासास्तमसोद्रिक्तो रुद्रांशः समजायत ।
इति पुत्रत्रयं तस्यां जज्ञे ब्रह्मेशवैष्णवम् ॥१०॥
सोमो ब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयो व्यजायत ।
दुर्व्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम् ॥११॥
सोमः स्वरश्मिभिः शीतैर्वीरुधौषधिमानवान् ।
आप्याययन् सदा स्वर्गे वर्त्तते स प्रजापतिः ॥१२॥
दत्तात्रेयः प्रजां पाति दुष्टदैत्यनिवर्हणात् ।
शिष्टानुग्रहकृच्चेति ज्ञेयश्चांशः स वैष्णवः ॥१३॥
निर्द्दहत्यवमन्तारं दुर्व्वासा भगवानजः ।
रौद्रं समाश्रित्य वपुर्दृङ्मनोवाग्भिरुद्धतः १४॥
सोमत्वं भगवानत्रिः पुनश्चक्रे प्रजापतिः ।

पुत्र (सुमति) ने कहा—

बहुत समय व्यतीत होने पर भगवान् अत्रि ने अपनी स्त्री अनुसूया को देखा ॥१॥ सुन्दर आकृति वाली, सर्वाङ्ग सुन्दरी ऋतुमती होकर स्नान किये हुए उस अनिन्दित स्त्री को देखकर अत्रि मुनि सकाम होगये ॥ २ ॥ अनुसूया को देखकर मुनि को इतना अधिक काम-विकार उत्पन्न हुआ कि वे बड़े वेग से ऊद्धर्ध्व श्वास लेनेलगे ॥३॥ उस समय रजोगुणयुक्त जो ब्रह्माजी हैं उनके शरीर की शुक्ल आभा चारों ओर फैल कर चन्द्रमा रूप से दशों दिशाओं को प्रकाशित करने लगी ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी का वह तेज अत्रि मुनि का मानस पुत्र सोम कहलाया जो सब जीवोंका आधार तथा आयुर्वल है॥ सतोगुण से युक्त विष्णु भगवान् भी सन्तुष्ट होकर दत्तात्रेय रूप से अत्रि मुनि के शरीर से उत्पन्न हुए ॥६॥ दत्तात्रेय के विषय में यह प्रसिद्ध है कि विष्णु भगवान् ही ने दत्तात्रेय का अवतार लेकर अनसूया का स्तन पिया और अत्रि ऋषिके द्वितीय पुत्र कहलाये ॥७॥ क्रुद्ध होकर जो दुर्वासाजी सातवें दिन ही अपनी माता के उदर से निकल आये थे उसका कारण यह था कि हैहयराज कार्तवीर्य ने अनुसूयाको बहुत भय दिखायाथा और इस उद्धत अपराध को ॥ ८ ॥ देखकर अत्रिजी क्रुद्ध हुए और शीघ्रही हैहयराज का वध करनेके लिये गर्भावस्था के दुःख में भी दुःख प्राप्त कर क्रोध से युक्त ॥ ९ ॥ महादेवजी के अंशरूप, तमोगुण से संयुक्त दुर्वासा ऋषि उत्पन्न हुए। इस प्रकार अनुसूया के ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी पुत्र रूप से उत्पन्न हुए ॥ १०॥ देवताओं के वरदान के कारण ब्रह्माजी चन्द्रमा विष्णु दत्तात्रेय और शङ्करजी दुर्वासा रूप से हुए॥ चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से आकाशमें स्थित होकर भी सदैव औषधियों और मनुष्योंका पालन करते हैं, अतः वे ब्रह्माका अंशहैं ॥१२॥ दत्तात्रेयजी दुष्टों और दैत्यों का नाश करने तथा सज्जनों पर दया, कृपा करने के कारण विष्णु के अंश हैं ॥ १३॥ और भगवान् अजन्मा दुर्वासा ऋषि जो शरीर, नेत्र, मन, वचन आदि में बड़े उद्धत हैं और जो अभिमानियों का नाश करने वाले हैं उनको रुद्रका अंश समझना चाहिये ॥ १४ ॥ फिर चन्द्रमा को सोमत्व प्रदान कर अत्रि भगवान् ने उसको प्रजा-

दत्तात्रेयोऽपि विषयान् योगस्थो बुभुजे हरिः॥१५॥
दुर्व्वासाः पितरं हित्वा मातरञ्चोत्तमं व्रतम्।
उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिबभ्राम मेदिनीम् ॥१६॥
मुनिपुत्रैस्ततो योगी दत्तात्रेयोऽप्यसङ्गिताम्।
अभीप्स्यमानः सरसि निममज्ज चिरं प्रभुः ॥१७॥
तथापि तं महात्मानमतीव प्रियदर्शनम्।
तत्यजुर्न कुमारास्ते सरसस्तीरमाश्रिताः ॥१८॥
दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदा ते न त्यजन्ति तम्।
तत्प्रीत्या सरसस्तीरं सर्व्वे मुनिकुमारकाः ॥१९॥
ततो दिव्याम्बरधरां चारुपीननितम्बिनीम्।
नारीमादाय कल्याणीमुत्ततार जलान्मुनिः ॥२०॥
स्त्रीसन्निकर्षाद्व्यग्रेते परित्यक्ष्यन्ति मामिति।
मुनिपुत्रास्ततोऽसङ्गी स्थास्यामीति विचिन्तयन् २१॥
तथापि तं मुनिसुता न त्यजन्ति यदा मुनिम्।
ततः सह तया नार्य्या मद्यपानमथापिवत् ॥२२॥
सुरापानरतं तेन सभार्य्यं तत्यजुस्ततः।
गीतवाद्यादिवनिता-भोगसंसर्गदूषितम्।
मन्यमाना महात्मानं पीतासव-सविक्रियम् ॥२३॥
नावाप दोषं योगीशो वारुणीं स पिबन्नपि।
अन्त्यावसायिवेश्मान्तर्मातरिश्वा वसन्निव ॥२४॥
सुरां पिबन् सपत्नीकस्तपस्तेपे सयोगवित्।
योगीश्वरश्चिन्त्यमानो योगिभिर्मुक्तिकाङ्क्षिभिः२५॥

पति किया और दत्तात्रेय विषयों से युक्त योग में स्थित हुए ॥ १५ ॥ दुर्वासाने माता, पिता का त्याग करके उत्तम सन्यास व्रत को ग्रहण किया और उन्मत्तों की तरह पृथ्वी पर भ्रमण करनेलगे ॥१६॥ एक दिन योगी दत्तात्रेयजी मुनि कुमारों का साथ छोड़ने के लिये एक तालाब पर उनके साथ स्नान करने के लिये गये और उसमें बहुत काल तक छिप गये ॥ १७ ॥ परन्तु मुनि कुमार भी उनका अत्यन्त प्रिय दर्शन पाने के लिये तालाबके किनारे पर खड़े ही रहे॥१८॥ सौ दिव्य वर्षों के पूर्ण होने पर भी उन्होंने उनको न छोड़ा और प्रीति पूर्वक सब मुनि कुमार तालाब के किनारे पर ठहर गये ॥ फिर एक दिन दिव्य वस्त्र पहिने और जिसकी जाँघें और स्तन सुन्दर थे ऐसी स्त्री को लिये हुए दत्तात्रेयजी जल से निकले ॥२०॥ उन्होंने सोचा कि मेरे पास स्त्री को देखकर ये मुनि कुमार मुझको छोड़ जाँयगे और फिर मैं यहाँ अकेला रहूँगा॥२१॥ फिर भी मुनि कुमारों ने ऋषि दत्तात्रेय का सङ्ग न छोड़ा। इसपर उन्होंने वहाँ उस स्त्री के साथ मद्यपान करना आरम्भ कर दिया ॥२२॥ जब दत्तात्रेयजी उस स्त्री के साथ मद्यपान कर गीतवाद्य आदि में रत हुए तो भोग संसर्ग से दूषित होने के कारण तथा आसव आदि पीने से विकारयुक्त होने के कारण मुनिकुमार उनको छोड़ गये ॥ २३ ॥ योगीश होने के कारण वारुणी पीतेहुए भी वे दोष को प्राप्त न हुए जिस प्रकार कि सूर्यकी किरणें शुद्ध और अशुद्ध दोनों स्थानों पर व्याप्त होती हुई भी दोष को प्राप्त नहीं होती हैं ॥ २४ ॥ दत्तात्रेयजी मदिरा पीते हुए भी स्त्री सहित तपस्या करनेलगे। योगीश्वर लोग मुक्ति की आकांक्षा करते हुए ईश्वरानन्द में निमग्न रहते हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में पिता-पुत्र सम्वादान्तर्गत दत्तात्रेयोत्पत्ति नाम सत्रहवां अध्याय समाप्त।

अठारहवां अध्याय

पुत्र उवाच

कस्यचित्त्वथ कालस्य कृतवीर्य्यात्मजोऽर्ज्जुनः।
कृतवीर्य्ये दिवं याते मन्त्रिभिः सपुरोहितैः ॥ १ ॥
पौरैश्चात्माभिषेकार्थं समाहूतोऽब्रवीदिदम्।
नाहं राज्यं करिष्यामि मन्त्रिणो नरकोत्तरम्।
यदर्थं गृह्यते शुल्कं तदनिष्पादयन् वृथा ॥ २ ॥

सुमति बोला—

कुछ समय बीतने पर राजा कृतवीर्य के स्वर्ग लोक पहुँचने पर उसके पुत्र अर्जुन ने मन्त्रियों, पुरोहितों ॥ १ ॥ और नगरनिवासियों से जो कि उसके राज्याभिषेक के लिये एकत्रित हुए थे, कहा कि मैं ऐसे राज्य को जिसका परिणाम नरक है, न करूँगा, जिसमें कर वसूल किया जाता है और

पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिग्जनः ।
दत्त्वार्यरक्षिभिर्मार्गे रक्षितो याति दस्युतः ॥ ३ ॥
गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागञ्च कृषीवलाः ।
दत्त्वान्यद्भूभुजे दद्युर्यदि भागं ततोऽधिकम् ॥ ४ ॥
पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः ।
इष्टापूर्त्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरधर्म्मिणः ॥ ५ ॥
यद्यन्यैः पाल्यते लोकस्तद्वृत्त्यन्तरसंश्रितः ।
गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरको ध्रुवम् ॥ ६ ॥
निरूपितमिदं राज्ञः पूर्व्वं रक्षणवेतनम् ।
अरक्षंश्चौरतश्चौर्य्यं तदेनो नृपतेर्भवेत् ॥ ७ ॥
तस्माद्यदि तपस्तप्त्वा प्राप्स्ये योगित्वमीप्सितम् ।
भुवः पालनसामर्थ्य-युक्त एको महीपतिः ॥ ८ ॥
पृथिव्यां शस्त्रभृच्छ्रीमान्यस्त्वहमेवर्द्धिसंयुतः ।
ततो भविष्ये नात्मानं करिष्ये पापभागिनम् ॥ ९ ॥

सुमतिरुवाच

तस्य तन्निश्चयं ज्ञात्वा मन्त्रिमध्यस्थितोऽब्रवीत् ।
गर्गो नाम महाबुद्धिर्मुनिश्रेष्ठो वयोऽतिगः ॥ १० ॥
यद्येवं कर्तुकामस्त्वं राज्यं सम्यक् प्रशासितुम् ।
ततः शृणुष्व मे वाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज ॥ ११ ॥
दत्तात्रेयं महाभागं सह्यद्रोण्यां कृताश्रयम् ।
तमाराधय भूपाल पाति यो भुवनत्रयम् ॥ १२ ॥
योगयुक्तं महाभागं सर्व्वत्र समदर्शिनम् ।
विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं महीतले ॥ १३ ॥
यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान् पदमात्मनः ।
हतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जघान च दितेः सुतान् ॥ १४ ॥

अर्ज्जुन उवाच

कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान् ।
कथञ्चापहृतं दैत्यैरिन्द्रत्वं प्राप वासवः ॥ १५ ॥

गर्ग उवाच

देवानां दानवानाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
दैत्यानामीश्वरो जम्भो देवानाञ्च शचीपतिः ॥ १६ ॥
युध्यमानानां दिव्यः संवत्सरो गतः ।

वचन निष्फल होता है ॥ २ ॥ वैश्य लोग अपनी आय का बारहवाँ हिस्सा राजा को देते हैं जिससे कि राजा उनकी चोरादिक से तथा मार्गादि में रक्षा करता है ॥ ३ ॥ और गोप भी घी, मठा तथा खेती आदि का छठा हिस्सा राजा को देते हैं और बाकी स्वयं खा लेते हैं ॥ ४ ॥ वह राजा वणिकों से व्यापार पर कर वसूल करता है और चोरों को दण्ड देकर उनसे धन ग्रहण करता है ॥ ५ ॥ एक के धन से दूसरे का पालन करता है इसको वृत्त्यन्तरवृत्ति कहते हैं और बलि का छठा भाग ग्रहण कर यदि प्रजा की रक्षा न की तो वह निश्चय ही नरकगामी होता है ॥ ६ ॥ प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है, यदि चोरों की चोरी आदि से प्रजा की रक्षा न हुई तो दोष राजा को होता है ॥ ७ ॥ इसलिये मैं तपस्या करके अभिलषित योगीपन को प्राप्त करूँगा जिससे मुझको पृथ्वी पालन की एक चक्रवर्ती राजा के समान सामर्थ्य प्राप्त हो ॥ ८ ॥ यदि मैं श्रीसम्पन्न प्रबल शस्त्रों से युक्त पृथ्वी का एकमात्र राजा रहूँ तो राज्य करूँगा अन्यथा मैं पाप का भागी नहीं बनूंगा ॥ ९ ॥

सुमति ने कहा—

उसके इस निश्चय को जान कर मन्त्रियों के बीच में बैठे हुए महा बुद्धिमान्, मुनिश्रेष्ठ वयोवृद्ध गर्ग ऋषि बोले ॥ १० ॥ हे राजन् ! यदि आपको भली प्रकार ही राज्य-शासन करने की इच्छा है तो मेरे वचन को सुनकर तदनुसार कार्य करो ॥ ११ ॥ महाभाग दत्तात्रेयजी एक डोंगी बनाकर निवास करते हैं। हे राजन् ! तुम उनकी जो तीनों लोकों का पालन करते हैं जाकर आराधना करो ॥ १२ ॥ वे दत्तात्रेयजी योगयुक्त, महाभाग, सब जगह स्थित और समदर्शी हैं । वे जगत्कर्ता विष्णु के अंश हैं ॥ १३ ॥ कि जिनकी आराधना करके इन्द्र ने अपना पद प्राप्त किया और दिति के पुत्र दैत्यों को जो दुरात्मा थे संहारा ॥ १४ ॥

अर्जुन बोला—

किस प्रकार प्रतापवान् दत्तात्रेयजी की देवताओं ने आराधना की और किस प्रकार इन्द्र ने दैत्यों को मारकर इन्द्रत्व प्राप्त किया ॥ १५ ॥

गर्ग बोले—

देवताओं और दैत्योंका बड़ा भीषण युद्ध हुआ था जिसमें दैत्यों के नायक जम्भ तथा देवताओं के सेनापति इन्द्र थे ॥ १६ ॥ उनके परस्पर युद्ध को पूरा एक दिव्य वर्ष व्यतीत होगया और उस युद्ध

ततो देवाः पराभूता दैत्या विजयिनोऽभवन ॥१७॥
विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥१८॥
बृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः ।
अमन्त्रयन्त सहिता वालिखिल्यैस्तथर्षिभिः ॥१९॥

बृहस्पतिरुवाच

दत्तात्रेयं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् ।
विकृताचरणं भक्त्या सन्तोषयितुमर्हथ ॥२०॥
स वो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम् ।
ततो हनिष्यथ सुरा सहिता दैत्यदानवान् ॥२१॥

गर्ग उवाच

इत्युक्तास्ते तदा जग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमं सुराः ।
ददृशुश्च महात्मानं तं ते लक्ष्म्या समन्वितम् ॥२२॥
उद्गीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम् ।
ते तस्य गत्वा प्रणतिमवदन् साध्यसाधनम् ॥२३॥
चक्रुः स्तवञ्चोपजह्रु र्भक्ष्यभोज्यस्रगादिकम् ।
तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति यान्तं यान्ति दिवौकसः ।
आराधयामासुरधःस्थितास्तिष्ठन्तमासने ॥२४॥
स प्राह प्रणतान् देवान् दत्तात्रेयः किमिष्यते ।
मत्तो भवद्भिर्येनेयं शुश्रूषा क्रियते मम ॥२५॥

देवा ऊचुः

दानवैर्मुनिशार्दूल जम्भाद्यै र्भूर्भुवादिकम् ।
हृतं त्रैलोक्यमाक्रम्य क्रतुभागाश्च कृत्स्नशः ॥२६॥
तद्वधे कुरु बुद्धिं त्वं परित्राणाय नोऽनघ ।
त्वत्प्रसादादभीप्स्यामः पुनः प्राप्तं त्रिपिष्टपम् ॥२७॥

दत्तात्रेय उवाच

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेन्द्रियः ।
कथमिच्छथ मत्तोऽपि देवाः शत्रुपराभवम् ॥२८॥

देवा ऊचुः

अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते ।
विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥२९॥

में देवताओं का पराजय और दैत्यों की विजय हुई विप्रचित्ति आदि प्रमुख देवगण दैत्योंसे पराजित होकर पलायन कर गये और विजय के विषय में निरुत्साहित होगये ॥ १८ ॥ और वे बृहस्पतिजी के पास जहाँ वालखिल्यादि तथा अन्य ऋषि बैठे हुए थे, दैत्यों की सेना के नाश की अभिलाषा से पहुँचे ॥ १९ ॥

बृहस्पतिजी बोले—

महात्मा अत्रि के पुत्र तपोधन दत्तात्रेयजी का आचरण यद्यपि कुत्सित मालुम होता है, परन्तु उनको तुम सन्तुष्ट करने के योग्य हो ॥ २० ॥ वह दैत्योंके विनाशके लिये वरदानदेंगे उसी से देवता लोग दैत्यों और दानवों का वध करेंगे ॥ २१ ॥

गर्ग बोले—

उनसे यह कहे जाने पर वे देवगण दत्तात्रेयके आश्रमपर गये और वहाँ उन महात्माको लक्ष्मीजी के साथ वर्तमान देखा ॥ २२ ॥ वे मुनि मद्यपान में लीन हो रहे थे और गन्धर्वगण वहाँ गान कर रहे थे। देवताओं ने वहाँ जाकर अपने प्रयोजन को साधने के लिये प्रणाम किया ॥२३॥ और बहुत प्रकार से स्तुतिकी तथा भक्ष्य, भोज्य, माला आदि भेंट कीं। देवता लोग उनके जाने के साथ चलते थे और उनके बैठते ही बैठ जाते थे। देवताओं ने उनके आसन के नीचे बैठकर आराधना की ॥२४॥ दत्तात्रेयजी ने प्रणाम करते हुए देवताओं से कहा, "आप लोगों ने जो मुझ उन्मत्त की इतनी सेवाकी है सो मुझसे क्या चाहते हो?" ॥ २५ ॥

देवता बोले—

हे मुनिशार्दूल! जम्भ और भूर्भुवादिक राक्षसों ने तीनों लोकों पर आक्रमण करके हमारा सम्पूर्ण यज्ञ भाग हरण कर लिया है ॥ २६ ॥ हे निष्पाप! आप हमारी रक्षा के निमित्त उसको वध करने का उपाय कीजिये, जिससे कि हम आपकी दयासे पुनः अपना भाग प्राप्त करें ॥ २७ ॥

दत्तात्रेय बोले—

मैं सुरापान में रत तथा झूंठा खाने वाला हूँ तथा मैं जितेन्द्रिय भी नहीं हूँ। हे देवताओ! मुझ उन्मत्त से किस प्रकार शत्रु के विनाश की इच्छा रखते हो? ॥२८॥

देवता बोले—

हे जगत् के स्वामी! आप निष्पाप तथा निर्लेप हैं, विद्या और ज्ञान के प्रवेश से आपका अन्तःकरण शुद्ध है ॥ २९ ॥

दत्तात्रेय उवाच

सत्यमेतत् सुरा विद्या ममास्ति समदर्शिनः ।
अस्यास्तु योषितः सङ्गादहमुच्छिष्टतां गतः ॥२०॥
स्त्रीसम्भोगोहि दोषाय सातत्येनोपसेवितः ।
एवमुक्तास्ततो देवाः पुनर्वचनमब्रुवन् ॥२१॥

देवा ऊचुः

अनघेयं द्विजश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यते ।
यथांशुमाला सूर्य्यस्य द्विज-चाण्डालसङ्गिनी ॥२२॥

गर्ग उवाच

एवमुक्तस्ततो देवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् ।
प्रहस्य त्रिदशान् सर्व्वान् यद्य तद्भवतां मतम् ॥२३॥
तदाहूयासुरान् सर्व्वान् युद्धाय सुरसत्तमाः ।
इहानयत मद्दृष्टिगोचरं मा विलम्बत ॥२४॥
मद्दृष्टिपातहुतभुक्-प्रक्षीणबलतेजसः ।
येन नाशमशेषास्ते प्रयान्ति मम दर्शनात् ॥२५॥

गर्ग उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवैर्दैत्या महाबलाः ।
आहवाय समाहूता जग्मुर्देवगणान् रुषा ॥२६॥
ते हन्यमाना दैतेयैर्देवा शीघ्रं भयातुराः ।
दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समेताः शरणार्थिनः ॥२७॥
तमेव विविशुर्दैत्याः कालयन्तो दिवौकसः ।
ददृशुश्च महात्मानं दत्तात्रेयं महाबलम् ॥२८॥
वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतां शुभाम् ।
भार्य्यांश्चास्य सुचार्व्वङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ॥२९॥
नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् ।
वदन्तीं मधुरां भाषां सर्व्वैर्योषिद्गुणैर्युताम् ॥४०॥
ते तां दृष्ट्वागतो दैत्याः साभिलाषा मनोभवम् ।
न शेकुरुद्धतं धैर्य्यान्मनसा वोढुमातुराः ॥४१॥
त्यक्त्वा देवान् स्त्रियं तान्तु हर्त्तुकामा हतौजसः ।
तेन पापेन मुह्यन्तः संसक्तास्ते ततोऽब्रुवन् ॥४२॥
स्त्रीरत्नमेतत् त्रैलोक्ये सारं नो यदि वै भवेद् ।
कृतकृत्यास्ततः सर्व्वे इति नो भावितं मनः ॥४३॥
तस्मात् सर्व्वे समुत्क्षिप्य शिविकायां सुराङ्गनाः ।
आरोप्य स्वमधिष्ठानं नयाम इति निश्चिताः ॥४४॥

दत्तात्रेय बोले—

हे देवताओ ! यह सत्य है कि मेरे पास समदर्शी विद्या है, परन्तु इस स्त्री के सङ्ग से मैं उच्छिष्टता को प्राप्त हूँ ॥२०॥ स्त्री सम्भोग दोष से मैं सेवा किये जाने के योग्य नहीं हूँ। यह वचन सुनकर फिर देवताओं ने ये शब्द कहे ॥२१॥

देवता बोले—

हे विप्रवर ! ये जगत की माता निर्दोष हैं जिस प्रकार कि सूर्य की किरणें ब्राह्मण और चाण्डाल पर एक साथ पड़ती हैं ॥ २२ ॥

गर्ग बोले—

इस प्रकार कहे जाने पर दत्तात्रेयजी हँसकर देवताओं से बोले कि हे देवताओ ! यदि आप लोगों का यही मत है तो ॥२३॥ हे श्रेष्ठ देवताओ ! सब असुरों को युद्ध के लिये यहाँ बुला लाओ और उनको शीघ्र मेरे दृष्टिगोचर कराओ ॥ २४ ॥ मेरे दृष्टिपात से उन राक्षसों का बल और तेज क्षीण हो जावेगा और मुझे देखने से वे नाश को प्राप्त होंगे ॥ २५ ॥

गर्ग बोले—

दत्तात्रेय के यह वचन सुनकर देवताओं ने महाबली दैत्योंको क्रोध करके युद्धके लिये बुलाया ॥ २६ ॥ दैत्यों द्वारा मारे गये देवता शीघ्र भय से कातर होकर दत्तात्रेय के आश्रम में शरणार्थी होकर आये ॥ २७ ॥ जब दैत्य और देवता लोग दत्तात्रेय के निकट पहुँचे तो राक्षसों ने महाबली महात्मा दत्तात्रेय को देखा ॥ २८ ॥ उनके बाँईओर बैठी हुई जगत का कल्याण करने वाली, शुभा उनकी स्त्री को जो चन्द्रमा के समान मुख वाली और सर्वाङ्ग सुन्दरी थी देखा ॥ ३९॥ उनकी आँखें नीले कमल के समान और उनकी जाँघें और स्तन पुष्ट थे वे मीठी वाणी बोलतीं और स्त्रियोचित सब गुणों से युक्त थीं ॥४०॥ दैत्य लोग उस स्त्री को देखकर कामयुक्त होगये और उसको प्राप्त करने की आतुरता में धैर्य को खोने लगे ॥ ४१ ॥ देवताओं को छोड़कर वे तेजहीन होकर उस स्त्री को हरण करने की इच्छा करनेलगे और उस पाप से गिरकर आपस में बोले ॥४२॥ तीनों लोकों में यह स्त्री रत्न सार रूप है, यदि यह हमारी हो जायगी तो हम कृतार्थ होजावेंगे। यही हमारे मन की भावना है ॥ ४३ ॥ इसलिये हम सब इस स्त्री को पालकी पर बैठाकर अपने स्थान को ले चलें। इस प्रकार राक्षसों ने निश्चय किया ॥४४॥

गर्ग उवाच

सानुरागास्ततस्ते तु प्रोक्ताश्चेत्थं परस्परम् ।
तस्यतां योषितां साध्वीं समुत्क्षिप्य स्मरार्दिताः॥४५॥
शिविकायां समारोप्य सहिता दैत्यदानवाः ।
शिरःसु शिविकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखं ययुः॥४६॥
दत्तात्रेयस्ततो देवान् विहस्येदमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्या वर्द्धथ दैत्यानामेषा लक्ष्मीः शिरोगता ।
सप्त स्थानान्यतिक्रान्ता नवमन्यमुपैष्यति ॥४७॥

देवा ऊचुः

कथयस्व जगन्नाथ केषु स्थानेष्ववस्थिता ।
पुरुषस्य फलं किं वा प्रयच्छत्यथ नश्यति ॥४८॥

दत्तात्रेय उवाच

नृणां पदे स्थिता लक्ष्मीर्निलयं सम्प्रयच्छति ।
सक्थ्नोश्च संस्थिता वस्त्रं तथा नानाविधं वसु॥४९॥
कलत्रञ्च गुह्यसंस्था क्रोड़स्थापत्यदायिनी ।
मनोरथान् पूरयति पुरुषाणां हृदि स्थिता॥५०॥
लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठा कण्ठस्था कण्ठभूषणम् ।
अभीष्टबन्धुदारैश्च तथाश्लेषं प्रवासिभिः ॥५१॥
मृष्टान्नवाक्यलावण्यमाज्ञामवितथां तथा ।
मुखसंस्था कवित्वञ्च यच्छत्युदधिसम्भवा ॥५२॥
शिरोगता सन्त्यजति ततोऽन्यं याति चाश्रयम् ।
सेयं शिरोगता चैतान् परित्यक्ष्यति साम्प्रतम् ॥५३॥
प्रगृह्यास्त्राणि वध्यन्तां तस्मादेते सुरारयः ।
न भेतव्यं भृशञ्चैते मया निस्तेजसः कृताः ।
परदारावमर्षाच्च दग्धपुण्या हतौजसः ॥५४॥

गर्ग उवाच

ततस्ते विविधैरस्त्रैर्वध्यमानाः सुरारयः ।
मूर्द्धिन लक्ष्म्या समाक्रान्ता विनेशुरिति नः श्रुतम् ५५
लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दत्तात्रेयं महामुनिम् ।
स्तूयमाना सुरैः सर्व्वैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ॥५६॥

गर्ग बोले—

आपस में इस तरह एक दूसरेसे कहकर दैत्य उस साध्वी स्त्रीको कामदेवके वशीभूत हो लेआये ॥४५॥ और उसको पालकी में बैठाकर सब दैत्य व दानव उस पालकीको शिरपर रखकर अपने स्थान की ओर चले ॥४६॥ फिर दत्तात्रेय ने हँसकर देवताओं से कहा,'यह कल्याणकारीहै कि लक्ष्मी दैत्यों के शिर पर गई। ये सात स्थान तक ठीक रहतीहै और नवें स्थान पर दूसरे को प्राप्त होती है" ॥४७॥

देवता बोले—

हे जगत के स्वामी ! ये तो कहिये कि किन २ स्थानों पर लक्ष्मी पुरुषोंको क्या-क्या फल अच्छा या बुरा देती है ? ॥ ४८ ॥

दत्तात्रेय बोले—

जब लक्ष्मी मनुष्य के पाँवपर रहती है तो उस मनुष्य के घर धन आता है और जब कमर पर स्थित रहती है तो नाना प्रकार के वस्त्र और आभूषण मिलते हैं ॥ ४९ ॥ जब गुह्य स्थानों में रहती है तो स्त्री प्राप्ति होतीहै और गोदमें हो तो संतान प्राप्त होती है। मनुष्यों के हृदयों में स्थित होकर ये उनके मनोरथों को पूर्ण करती है ॥ ५० ॥ यदि लक्ष्मी धनवानों के कण्ठ में श्रेष्ठ कण्ठ का भूषण होजावे तो भाई, बन्धु, स्त्री तथा पुरवासियों से भी मिलाप कराती है ॥५१॥ जब ये मुख पर स्थित होती है तो सुन्दर वाक्य, लावण्य, कवित्व आदि प्रदान करती है ॥५२॥ और जब ये शिरपर जातीहैं तो ये उसको छोड़कर दूसरे का आश्रय लेती हैं। चूँकि ये राक्षसों के शिर पर गई हैं इसलिये इनको अभी छोड़ देगी ॥५३॥ इसलिये तुम अपने अस्त्रों को धारण करो और इन राक्षसों को मारो। मेरी दृष्टिपात से ये लोग निस्तेज होगये हैं और परस्त्री हरण के दोष से इनके पुण्य दग्ध और ये पराक्रम हीन होगये हैं ॥५४॥

गर्ग बोले—

तब विविध प्रकार के अस्त्रों से देवताओं ने दैत्यों का वध किया और लक्ष्मी भी उन लोगों के शिर से अलग होकर अन्तर्ध्यान होगई ॥ ५५ ॥ फिर लक्ष्मीजी प्रकट होकर महामुनि दत्तात्रेयजी के पास आगईं जिनकी कि दैत्यों के नाश होने के कारण प्रसन्न चित्त से देवता लोग स्तुति कर रहे थे ॥ ५६ ॥ तब सब देवता लोग विज्ञान्

प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं मनीषिणम् ।
नाकपृष्ठमनुप्राप्ता यथापूर्वं गतज्वराः ॥५७॥
तथा त्वमपि राजेन्द्र यदीच्छसि यथेप्सितम् ।
प्राप्तुमैश्वर्य्यमतुलं तूर्णमाराधयस्व तम् ॥५८॥

दत्तात्रेय को प्रणाम करके स्वर्ग को गये और पूर्ववत् भय रहित होकर रहने लगे ॥ ५७ ॥ इस लिये हे राजन्! यदि तुम भी अतुल ऐश्वर्य को प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हो तो मुनि दत्तात्रेय की सेवा करो॥५८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में गर्ग वाक्य नाम अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

उन्नीसवाँ अध्याय

पुत्र उवाच

स्वृषेर्वचनं श्रुत्वा कार्त्तवीर्य्यो नरेश्वरः ।
दत्तात्रेयाश्रमं गत्वा तं भक्त्या समपूजयत् ॥ १ ॥
पादसंवाहनाद्येन मध्वाद्याहरणेन च ।
स्रक्चन्दनादिगन्धाम्बु-फलाद्यानयनेन च ॥ २ ॥
तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च ।
परितुष्टो मुनिर्भूपं तमुवाच तथैव सः ॥ ३ ॥
यथैवोक्ताः पुरा देवा मद्यभोगादिकुत्सनम् ।
स्त्री चेयं मम पार्श्वस्थेत्येतद्भोगाच्च कुत्सितम् ॥ ४ ॥
सदैवाहं न मामेवमुपरोद्धुं त्वमर्हसि ।
अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः ॥ ५ ॥

जड़ उवाच

तेनैवमुक्तो मुनिना स्मृत्वा गर्गवचश्च तत् ।
प्रत्युवाच प्रणम्यैनं कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनस्तदा ॥ ६ ॥

अर्ज्जुन उवाच

किं मां मोहयसे देव स्वां मायां समुपाश्रितः ।
अनघस्त्वं तथैवेयं देवी सर्व्वभवारणिः ॥ ७ ॥
इत्युक्तः प्रीतिमान् देवस्ततस्तं प्रत्युवाच ह ।
कार्त्तवीर्य्यं महाभागं वशीकृतमहीतलम् ॥ ८ ॥
वरं वृणीष्व गुह्यं मे यत् त्वया समुदीरितम् ।
तेन तुष्टिः परा जाता त्वय्यद्य मम पार्थिव ॥ ६ ॥
ये च मां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः ।
मांसमद्योपहारैश्च मिष्टान्नैश्चाज्यसंयुतैः ॥१०॥
...समेतं गीतैश्च ब्राह्मणानां तथार्चनैः ।

सुमति बोले—

गर्गजी के यह वचन सुनकर राजा कार्तवीर्य अर्जुन भगवान् दत्तात्रेय के आश्रम को गये और वहाँ जाकर उनकी भक्ति पूर्वक पूजा की ॥१॥ मार्ग की थकान इत्यादि को चरणसम्वाहन इत्यादि करके हरण करने लगे और उनके लिये माला, चन्दन, जल, फल आदि लाने लगे ॥ २ ॥ तथा अन्न आदि साधनों से सत्कार कर उनका झूंठा प्रसाद खाने लगे। इससे सन्तुष्ट होकर मुनि ने उस राजा से कहा ॥३॥ फिर जिस प्रकार प्राचीन काल में उन्होंने देवताओं से कहा था कि मैं मद्यपान आदि से कुत्सित हूँ, उसी प्रकार कहा कि ये स्त्री जो मेरे पास है इसके भोग से मैं कुत्सित हो रहा हूँ ॥४॥ मैं सदा इसी भोग में रहता हूँ इसलिये तुम मेरी सेवा करने के योग्य नहीं हो, मैं तुम्हारा उपकार करने में असमर्थ हूँ, तुम शक्ति-सम्पन्न की आराधना करो ॥ ५ ॥

सुमति बोले—

कार्तवीर्य अर्जुन ने गर्ग ऋषि के वचनों का स्मरण करके दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया और यह वचन बोले ॥ ६ ॥

अर्जुन बोले—

हे देव! आप मुझ आये हुए को अपनी माया से क्यों मोहित करते हैं? आप तथा ये सर्वजगत् को उत्पन्न करने वाली देवी निष्पाप हैं ॥७॥ अर्जुन के ऐसा कहने पर दत्तात्रेय प्रसन्न होकर उससे बोले—"हे महाभाग कार्तवीर्य! तुमने मुझको पृथ्वी तल पर वशीभूत कर लिया है" ॥ ८ ॥ हे राजन्! चूंकि तुमने मेरे गुप्त तत्व का वर्णन कर दिया इस लिये मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ, तुम वर मांगो ॥ ६ ॥ जो मनुष्य मुझको सुगन्धित मालाओं से पूजकर मुझको मांस, मद्य, मिष्टान्न आदि उपहारों को देते हैं ॥ १० ॥ और लक्ष्मी सहित ब्राह्मणों को पूजकर

वाद्यैर्मनोरमैर्वीणा-वेणु-शंखादिभिस्तथा ॥११॥
तेषामहं परां तुष्टिं पुत्रदारधनादिकम्।
प्रदास्याम्यवघातञ्च हनिष्याम्यवमन्यताम् ॥१२॥
स त्वं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम्।
प्रसादसुमुखस्तेऽहं गुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ॥१३॥

कार्त्तवीर्य्य उवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं तत् प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम्।
यया प्रजाः पालयेऽहं न चाधर्म्ममवाप्नुयाम् ॥१४॥
परानुसरणे ज्ञानमप्रतिद्वन्द्वतां रणे।
सहस्रमाप्तुमिच्छामि बाहूनां लघुतागुणम् ॥१५॥
असङ्गा गतयः सन्तु शैलाकाशाम्बु-भूमिषु।
पातालेषु च सर्व्वेषु वधश्चाप्यधिकान्नरात् ॥१६॥
तथोन्मार्गप्रवृत्तस्य चास्तु सन्मार्गदेशकः।
सन्तु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तदाने तथाक्षये ॥१७॥
अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे ममानुस्मरणेन च।
त्वयि भक्तिर्ममैवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी ॥१८

दत्तात्रेय उवाच

यत्र ते कीर्त्तिताः सर्व्वे तान् वरान् समवाप्स्यसि।
मत्प्रसादाच्च भविता चक्रवर्त्ती त्वमीश्वरः ॥१९॥

जड़ उवाच

प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयाय सोऽर्ज्जुनः।
आनाय्य प्रकृतीः सम्यगभिषेकमगृह्णत ॥२०॥
आगताश्चापि गन्धर्व्वास्तथा चाप्सरसां वराः।
ऋषयोऽथ वशिष्ठाद्या मेर्व्वाद्याः पर्व्वतास्तथा ॥२१॥
गङ्गाद्याश्च तथा नद्यः समुद्रा जलसंवृताः।
प्लक्षाद्याश्च तथा वृक्षा देवा वै वासवादयः ॥२२॥
वासुकिप्रमुखा नागा अभिषेकार्थमागताः।
तार्क्ष्याद्याः पक्षिणश्चैव पौरजानपदास्तथा ॥२३॥
सम्भाराः सम्भृताः सर्व्वे दत्तात्रेयप्रसादतः।
अथ सज्जलग्ना लग्नाः देवैर्ब्रह्मादिभिः सह ॥२४
नारायणेनाभिषिक्तो दत्तात्रेयस्वरूपिणा।
समुद्रैश्च नदीभिश्च ऋषिभिः सोऽभिषेचितः।
अधर्म्मस्य विनाशार्थं धर्म्मसंरक्षणाय च ॥२५॥
आघोषयामास तदा स्थितो राज्ये स हैहयः।
दत्तात्रेयात् परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ॥२६॥

जो मनोरम वीणा, वेणु, शंख, वाद्य, गीत आदि से मेरा सत्कार करते हैं ॥ ११ ॥ उनको मैं पुत्र, स्त्री, धन आदि से परम संतोष प्रदान करता हूँ और उनके वैरियों का नाश करता हूँ ॥ १२ ॥ क्योंकि तुमने मेरे गुह्य तत्व का प्रकीर्तन किया है इसलिये मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारे मन में हो वह वर अपने कल्याण के निमित्त माँगो ॥ १३ ॥

कार्तवीर्य बोले

हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझ को वह ऋद्धि प्रदान कीजिये जिससे मैं प्रजा का पालन करूँ और अधर्म में प्राप्त न होऊँ ॥ १४ ॥ दूसरोंकी रक्षा करनेमें तथा समरमें मेरी समानता कोई न कर सके। मेरी बलवती एकसहस्र भुजायें हों ॥१५॥ यदि मैं अकेला पर्वत, आकाश, समुद्र, भूमि, पाताल आदि कहीं भी चला जाऊँ तो वहाँ किसी भी शत्रु से कम न होऊँ ॥ १६ ॥ कुमार्ग पर चलने वालों का मैं उत्तम पथ-प्रदर्शक होऊँ और मुझमें अतिथियों को पालन करने तथा दान देने की क्षमता हो ॥ १७ ॥ मेरे राष्ट्र में कभी धन का नाश न हो और आप में मेरी शुद्ध भक्ति हो ॥१८॥

दत्तात्रेयजी बोले—

जो कुछ तुमने वरदान माँगे हैं वे तुमको सब प्राप्त होंगे, मेरी कृपासे तुम चक्रवर्ती राजा होगे ॥

सुमति बोले—

वह राजा अर्जुन उस समय दत्तात्रेय को प्रणाम कर अपने घर आये और वहाँ आकर साधारण स्वभावसे राज्याभिषेक ग्रहण करलिया ॥२०॥ उस समय पर गन्धर्व तथा अप्सरायें, वशिष्ठ आदिक ऋषि तथा मेरु आदिक पर्वत ॥२१ ॥ गङ्गा आदिक नदियाँ, जलपूर्ण सागर, प्लक्ष आदि वृक्ष, तथा वसु आदि देवता लोग ॥ २२ ॥ तथा वासुकि प्रमुख नाग, तार्क्ष्य आदि पक्षीगण और नगरनिवासी लोग अर्जुन के अभिषेकार्थ आये ॥ २३ ॥ दत्तात्रेयजी की कृपा से सब का यथोचित सत्कार हुआ और शुभ लग्न में देव ब्राह्मणों के साथ ॥२४॥ दत्तात्रेय स्वरूप श्रीनारायण ने समुद्रों, नदियों और ऋषियों की सहायता से अर्जुन का अभिषेक किया जो कि अधर्म का विनाश और धर्म की स्थापना करने के हेतु था ॥ २५ ॥ तब हैहयराज अर्जुन ने अपने राज्य में स्थित हो यह घोषणा की कि हमने श्री दत्तात्रेय की कृपा से अतुल ऋद्धि तथा बल प्राप्त किया है ॥२६ ॥ आज से पीछे मेरे

अद्यप्रभृति यः शस्त्रं मामृते न्यो ग्रहीष्यति।
हन्तव्यः स मया दस्युः परहिंसारतोऽपि वा ॥२७॥
इत्याज्ञप्ते न तद्राष्ट्रे कश्चिदायुधधृङ्नरः।
तमृते पुरुषव्याघ्र बभूवोरु-पराक्रमम् ॥२८॥
स एव ग्रामपालोऽभूत् पशुपालः स एव च।
क्षेत्रपालः स एवासीद्द्विजातीनाञ्च रक्षिता ॥२९॥
तपस्विनां पालयिता सार्थपालस्तु सोऽभवत्।
दस्यु-व्यालाग्नि-शस्त्रादि-भयेष्वब्धौ निमज्जताम् ॥३०
अन्यासु चैव मग्नानामापत्सु परवीरहा।
स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् ॥३१॥
अनष्टद्रव्यता चासीत् तस्मिन् शासति पार्थिवे।
तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥३२॥
तेनैव च तपस्तप्तं संग्रामेष्वभिचेष्टितम्।
तस्यर्द्धिमतिमानञ्च दृष्ट्वा प्राहाङ्गिरा मुनिः ॥३३॥
न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चातिचेष्टितैः ॥३४॥
दत्तात्रेयाद्दिने यस्मिन् स प्रापर्द्धिं नरेश्वरः।
तस्मिंस्तस्मिन् दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत्३५॥
तत्रैव च प्रजाः सर्व्वास्तस्मिन्नहनि भूपतेः।
तस्यर्द्धिं परमां दृष्ट्वा यागं चक्रुः समाधिना ॥३६॥
इत्येतत् तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः।
विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः ॥३७॥
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्विनः।
अनन्तस्याप्रमेयस्य शंख-चक्र-गदाभृतः ॥३८॥
एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः।
स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत् ॥३९॥
सदैव वैष्णवानाञ्च भक्त्याहं सुलभोऽस्मि भोः।
इत्येवं यस्य वै वाचस्तं कथं नाश्रयेज्जनः ॥४०॥
अधर्म्मस्य विनाशाय धर्म्माचारार्थमेव च।
अनादिनिधनो देवः करोति स्थिति-पालनम् ॥४१॥
तथैव जन्म चाख्यातमलर्कं कथयामि ते।
तथा च योगः कथितो दत्तात्रेयेण तस्य वै।
पितृभक्तस्य राजर्षेरलर्कस्य महात्मनः ॥४२॥

अतिरिक्त जो कोई शस्त्र ग्रहण करेगा वह चोर, और जो कोई किसीकी हिंसा करेगा वह मेरे द्वारा बधको प्राप्तहोगा ॥२७॥ इस आदेशके होने पर उस के राज्यमें किसी मनुष्यने शस्त्र धारण न किया और समस्त पृथ्वी में कार्तवीर्यार्जुन ही पराक्रमशील पुरुषसिंह हुए ॥२८॥ वह ही ग्राम, पशु, खेत और द्विजातियोंके रक्षकहुए ॥२९॥ उन्होंने तपस्वियों तथा प्रजाके धनके रक्षक होकर चोर, सर्प, अग्नि, शस्त्र आदि के भयसे सबको मुक्त करदिया ॥ ३०॥ जो लोग आपत्तिमें पड़ते उनकी याद करते ही उनका उद्धार करदिया करते थे ॥३१॥ उस राजा के राज्य में दरिद्रता नहीं थी। उसने बहुत से यज्ञों के समाप्त होने पर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दिलवाई ॥३२॥ उसने तपस्यायें कीं और युद्धोंमें करतब दिखलाये उस बुद्धिमान् की समृद्धि देखकर अङ्गिरा ऋषि ने कहा ॥३३॥ कोई राजा लोग कार्तवीर्य की गति को नहीं पहुँचेंगे कि जिनके समान यज्ञ, दान, तप, में कोई नहींहै ॥३४॥ जिस तिथिको उस राजाने दत्तात्रेयजी से समृद्धि पाई थी उस तिथि को वह सदा दत्तात्रेयजी का यज्ञ किया करता था ॥ ३५ ॥ उसी दिन अपने राजाकी समृद्धि देखकर सब प्रजा जन भी यज्ञ आदि करते थे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार महात्मा दत्तात्रेय का जोकि धीमान् स्वयं विष्णु, चराचर के गुरु और अनन्त हैं, माहात्म्य है ॥ ३७ ॥ वे शार्ङ्गपाणि, अनन्त, अप्रमेय तथा शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं तथा उनका आविर्भाव इस प्रकार पुराणों से होता है ॥ ३८ ॥ इस परम स्वरूप का जो मनुष्य ध्यान करता है वह सुखी होकर शीघ्र ही संसार से पार होजाता है ॥३९॥ जिन्होंने स्वयं ऐसा कहा है कि मैं वैष्णवों को भक्ति द्वारा अति सुलभहूँ तो फिर लोग क्यों न उनका आश्रय लें ॥४०॥ वे अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना करनेवाले हैं तथा सृष्टि की स्थिति, पालन और संहार करते हैं और अनादि हैं ॥४१॥ इसी प्रकार पितृभक्त, राजर्षि, महात्मा अलर्क के जन्मकी कथा कहता हूँ कि जिनसे दत्तात्रेय ने योग का वर्णन किया है ॥ ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में दत्तात्रेयीय प्रकरण नाम उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।

बीसवां अध्याय

जड़ उवाच

प्राग्बभूव महावीर्य्यः शत्रुजिन्नाम पार्थिवः।
तुतोष यस्य यज्ञेषु सोमावाप्त्या पुरन्दरः॥ १॥
तस्यात्मजो महावीर्य्यो बभूवारिविदारणः।
बुद्धि-विक्रम-लावण्यैर्गुरुशक्राश्विभिः समः॥ २॥
स समानवयो-बुद्धि-सत्त्व-विक्रम-चेष्टितैः।
नृपपुत्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृतः॥ ३॥
कदाचिच्छास्त्रसम्भार-विवेककृतनिश्चयः।
कदाचित् काव्यसंलाप-गीत-नाटकसम्भवैः॥ ४॥
तथैवाक्षविनोदैश्च शस्त्रास्त्रविनयेषु च।
योग्यानियुद्धनागाश्व-स्यन्दनाभ्यासतत्परः॥ ५॥
रेमे नरेन्द्रपुत्रोऽसौ नरेन्द्रतनयैः सह।
यथैव हि दिवा तद्वद्रात्रावपि मुदा युतः॥ ६॥
तेषान्तु क्रीड़तां तत्र द्विज-भूप-विशां सुताः।
समानवयसः प्रीत्या रन्तुमायान्त्यनेकशः॥ ७॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य नागलोकान्महीतलम्।
कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु॥ ८॥
ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौ तरुणौ प्रियदर्शनौ।
तौ तैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजन्मभिः॥ ९॥
विनोदैर्विविधैस्तत्र तस्थतुः प्रीतिसंयुतौ।
सर्व्वे च ते नृपसुतास्ते च ब्रह्मविशां सुताः॥१०॥
नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंवाहनादिकम्।
वस्त्रगन्धानुसंयुक्तां चक्रुर्भोगभुजिक्रियाम्॥११॥
अहन्यहन्यनुप्राप्ते तौ च नागकुमारकौ।
आजग्मतुर्मुदा युक्तौ प्रीत्या सूनोर्महीपतेः॥१२॥
स च ताभ्यां नृपसुतः परं निर्वाणमाप्तवान्।
विनोदैर्विविधैर्हास्य-संलापादिभिरेव च॥१३॥
विना ताभ्यां न बुभुजे न सस्नौ न पपौ मधु।
न रराम न जग्राह शास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये॥१४॥
रसातले च तौ रात्रिं विना तेन महात्मना।
निश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने॥१५॥

सुमति (जड़-पुत्र) बोले—

हे पिता! प्राचीन काल में एक महा बलवान् राजा शत्रुजित् नाम का था कि जिसके यज्ञों में स्वयं इन्द्र ने सोमरस पान किया था॥ १॥ उसका पुत्र बड़ा बलवान और शत्रुओं का मर्दन करने वाला था। बुद्धि, विक्रम और सौन्दर्य में वह क्रमशः बृहस्पति, इन्द्र और अश्विनी कुमार के समान था॥ २॥ वह राजपुत्र नित्य ही समान अवस्था, बुद्धि और विक्रम वाले राजकुमारों से घिरा रहता था॥३॥ वे लोग कभी शास्त्र के विचार में, कभी काव्य चर्चा में, कभी गाने-बजाने और खेल तमाशे में समय व्यतीत करते थे॥ ४॥ तथा वे लोग कभी चौपड़, कभी हथियारों की मश्क, कभी हाथियों की लड़ाई तथा कभी रथों के अभ्यास में तत्पर रहा करते थे॥ ५॥ वह राजकुमार राजाओं के लड़कों के साथ जिस प्रकार दिन में उसीप्रकार रात्रि में आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करता था॥ ६॥ उन क्रीड़ा करने वालों में वहाँ और भी ब्राह्मणों, राजाओं और वैश्यों के समान-अवस्था वाले लड़के प्रीतिपूर्वक आते थे॥ ७॥ कुछ समय व्यतीत होने पर पाताल लोक से अश्वतर नामक नाग के दो पुत्र नागकुमार पृथ्वी तल पर आये॥८॥ वे दोनों ब्राह्मण के से रूप वाले, तरुण और देखने में सुन्दर नागकुमार राजकुमारों तथा अन्य द्विजातियों के पुत्रों के साथ सम्मिलित होगये॥ ९॥ वहाँ पर इस प्रकार सब राजकुमार तथा उनके साथी ब्राह्मणों और वैश्यों आदि के पुत्र प्रीति पूर्वक नाना प्रकार के विनोदों में रत रहते थे॥ १०॥ वे दोनों नागकुमार भी स्नान, वाहन, वस्त्र, सुगन्ध तथा भोजन आदि एक साथ उनके सहित किया करतेथे॥११॥ दिनप्रति दिन वे नागकुमार प्रीतिपूर्वक आनन्द से उस राजकुमार के पास आते थे॥ १२॥ विनोद, हास्य और विविध वार्तालाप होते होते एक दिन राजकुमार का उन नागपुत्रों से वियोग होगया॥१३॥ परन्तु उसने उन दोनों के बिना न खाया, न पिया और न स्नान किया। तथा न घूमे और न अपनी उन्नति के निमित्त शास्त्रों की चर्चा ही की॥१४॥ पाताल में भी वे दोनों नागपुत्र उसके बिना दिन रात ठण्डी श्वास लिया करते थे॥ १५॥

अथ कालेन महता पिता पुत्रावपृच्छत ।
मर्त्यलोके परा प्रीतिर्भवतोः केन पुत्रकौ ॥१६॥
दृष्टौ न चापि पाताले बहूनि दिवसानि मे ।
दिवा रजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनौ ॥१७॥

कुछ समय व्यतीत होने पर पिता ने अपने दोनों पुत्रों से पूछा, "हे पुत्रो ! तुम्हारी मर्त्यलोक में ऐसी प्रीति किस प्रकार हुई ॥ १६ ॥ मैं पाताल में बहुत दिन से देखता हूँ कि तुम लोग दिन रात मर्त्य लोक का ही ख्याल रखते हो" ॥१७॥

जड़ उवाच

इति पित्रा स्वयं पृष्टौ प्रणिपत्य कृताञ्जली ।
प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेः सुतौ ॥१८॥

सुमति बोले—

इस प्रकार पिता के पूछने पर वे दोनों महाभाग नागराज से इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

पुत्रावूचतुः

पुत्रः शत्रुजितस्तात नाम्ना ख्यात ऋतध्वजः ।
रूपवानार्ज्जवोपेतः शूरो मानी प्रियंवदः ॥१६॥
अनापृष्टकथो वाग्मी विद्वान् मैत्रो गुणाकरः ।
मान्यमानयिता धीमान् ह्रीमान् विनयभूषणः॥२०॥
तस्योपचारसम्प्रीति-सम्भोगापहृतं मनः ।
नागलोके भुवो लोके न रतिं विन्दते पितः ॥२१॥
तद्वियोगेन नस्तात निशा पातालशीतला ।
परितापाय तत्सङ्गादाह्लादाय रविर्दिवा ॥२२॥

पुत्र बोला—

हे पिताजी ! शत्रुजित नाम के राजा का पुत्र ऋतध्वज रूपवान्, गुणवान् वीर, प्रतिष्ठायुक्त तथा मधुरभाषी है ॥ १६ ॥ वह विना पूछी बात का बताने वाला, विद्वान्, मित्रतायुक्त, गुणवान्, अहङ्कार रहित, दूसरों का मान करने वाला, विद्यावान्, लज्जावान व विनय भूषण है ॥ २० ॥ उसके व्यवहार, प्रेम और उसके साथ विहार करने से हमारा मन उसमें अटक रहा है तथा हे पिता ! हम लोगों को विना उसके नागलोक और भूलोक अच्छा नहीं लगता है ॥ २१ ॥ हे तात ! उसके विना हमको पाताल शीतल नहीं लगता और उसके सङ्ग में हमको इतनी प्रसन्नता होती है जितनी दिन को सूर्य से ॥ २२ ॥

पितोवाच

पुत्रः पुण्यवतो धन्यः स यस्यैवं भवद्विधैः ।
परोक्षस्यापि गुणिभिः क्रियते गुणकीर्त्तनम् ॥२३॥
सन्ति शास्त्रविदोऽशीलाः सन्ति मूर्खाः सुशीलिनः ।
शास्त्रशीलसमं मन्ये पुत्रौ धन्यतरन्तु तम् ॥२४॥
यस्य मित्रगुणान् मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम् ।
कथयन्ति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता ॥२५॥
तस्योपकारिणः कच्चिद्भवद्भ्यामभिवाञ्छितम् ।
किञ्चिन्निष्पादितं वत्सौ परितोषाय चेतसः ॥२६॥
स धन्यो जीवितं तस्य तस्य जन्म सुजन्मनः ।
यस्यार्थिनो न विमुखा मित्रार्थो न च दुर्व्वलः २७॥
मद्गृहे यत् सुवर्णादि रत्नं वाहनमासनम् ।
यच्चान्यत् प्रीतये तस्य तद्देयमविशङ्कया ॥२८॥
धिक् तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामुपकारिणाम् ।
प्रतिरूपमकुर्व्वन् यो जीवामीत्यवगच्छति ॥२६॥
उपकारं सुहृद्वर्गे योऽपकारञ्च शत्रुषु ।

पिता बोले—

वह राजपुत्र धन्य है कि जिसका गुण कीर्तन आप लोग परोक्ष में भी कर रहे हैं ॥२३॥ हे पुत्रो ! जो शास्त्र को जानकर निःशील हो उससे सुशील मूर्ख अच्छा है, क्योंकि शास्त्र और शीलको मैं समान मानता हूँ ॥२४॥ वही पिता पुत्रवान् है कि जिसका पुत्र अपने मित्र के गुणों और पराक्रम की यथार्थ प्रशंसा करता है ॥ २५ ॥ यदि उसके उपकार करने की तुम्हारी इच्छा है तो वह कार्य करो जिससे तुम्हारे और उसके मन को संतोष हो ॥२६॥ उसी का जीवन धन्य है और उसी का जीवन सुफल है जिसके यहाँ याचक विमुख नहीं जाते और जो मित्र के लिए दुर्वल न हो ॥२७॥ इसलिये हे पुत्रो ! मेरे घर में जो कुछ सुवर्ण, रत्न, वाहन, आसन आदि अथवा और भी जो कुछ है वह तुम निःशङ्क होकर प्रीति पूर्वक उसे दो ॥ २८ ॥ उसके जीवन को धिक्कार है जो अपने मित्र के उपकारी को दान देने में बाधा उपस्थित करता है ॥ २६ ॥ जो लोग मित्रों का उपकार करते हैं तथा शत्रुओं का भी अपकार न कर उपकार करते हैं वे बादलों की

नृमेघो वर्षति प्राज्ञस्तस्येच्छन्ति सदोन्नतिम् ॥३०॥

पुत्रावूचतुः

किं तस्य कृतकृत्यस्य कर्त्तुं शक्येत केनचित्।
यस्य सर्व्वार्थिनो गेहे सर्व्वकामैः सदार्च्चिताः॥३१॥
यानि रत्नानि तद्गेहे पाताले तानि नः कुतः।
वाहनासनयानानि भूषणान्यम्बराणि च ॥३२॥
विज्ञानं तत्र यच्चास्ति तदन्यत्र न विद्यते।
प्राज्ञानामप्यसौ तात सर्व्वसन्देहहृत्तमः ॥३३॥
एकं तस्यास्ति कर्त्तव्यमसाध्यं तच्च नो मतम्।
हिरण्यगर्भ-गोविन्द-शर्व्वादीनीश्वरादृते ॥३४॥

पितोवाच

तथापि श्रोतुमिच्छामि तस्य यत् कार्य्यमुत्तमम्।
असाध्यमथवा साध्यं किं वासाध्यं विपश्चिताम् ॥३५॥
देवत्वममरेशत्वं तत्पूज्यत्वञ्च मानवाः।
प्रयान्ति वाञ्छितं वान्यद्दृढं ये व्यवसायिनः ॥३६॥
नाविज्ञातं न चागम्यं नाप्राप्यं दिवि चेह वा।
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ॥३७॥
योजनानां सहस्राणि व्रजन् याति पिपीलिकः।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पादमेकं न गच्छति ॥३८॥
अयुक्तानां मनुष्याणां गम्यागम्यं न विद्यते।
भूतलं क च ध्रौवं स्थानं यत् प्राप्तवान् ध्रुवः।
उत्तानपादनृपतेः पुत्रः सन् भूमिगोचरः ॥३९॥
तत् कथ्यतां महाभाग कार्य्यवान् येन पुत्रकौ।
स भूपालसुतः साधुर्येनानृण्यं भवेत वाम् ॥४०॥

पुत्रावूचतुः

तेनाख्यातमिदं तात पूर्व्ववृत्तं महात्मना।
कौमारके यथा तस्य वृत्तं सद्वृत्तशालिनः ॥४१॥
तन्तु शत्रुजितं तात पूर्व्वं कश्चिद्द्विजोत्तमः।
गालवोऽभ्यागमद्धीमान् गृहीत्वा तुरगोत्तमम्॥४२॥
प्रत्युवाच च राजानं समुपेत्याश्रमं मम।
कोऽपि दैत्याधमो राजन् विध्वंसयति पापकृत् ॥४३॥
तत्तद्रूपं समास्थाय सिंहेभ-वनचारिणाम्।
अन्येषाञ्चाल्पकायानामहर्निशमकारणात् ॥४४॥
समाधिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च।

तरह हैं जो हर जगह बरसते हैं तथा वे सदा उन्नतिशील होते हैं ॥ ३० ॥

पुत्र बोले—

हे पिता! उन कृतार्थों का कोई क्या उपकार कर सकता है कि जिनके घर सम्पूर्ण अर्थी लोग सदैव सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ जो रत्न, वाहन, आसन, यान, भूषण वस्त्र उनके घर हैं, वे पाताल में कहीं नहीं हैं ॥ ३२ ॥ और विज्ञान जो उनके यहाँ है वह कहीं दूसरी जगह नहीं है। हे पिता! वे तो पण्डितों के संदेहों को भी दूर करते हैं ॥३३॥ एक कर्तव्य उनके प्रति अवश्य है परन्तु वह असाध्य है ऐसा हमारा मतहै। भगवान् गोविन्दकी कृपाके बिना वह पूरा होना कठिन है ॥

पिता बोले—

तो भी मैं उस उत्तम कार्यके सुनने की इच्छा करता हूँ। चाहे वह साध्य हो, या असाध्य हो अथवा कष्ट-साध्य हो ॥३५॥ जो लोग दृढ़-कर्म होते हैं वे मनवांछित फल पाकर देवत्व और इन्द्रत्व को प्राप्त होकर पूजित होते हैं ॥ ३६ ॥ उद्यमी और जितेन्द्रिय लोगों को उद्योग के आगे स्वर्ग और पाताल कुछ भी नहीं है ॥ ३७ ॥ जाती हुई चींटी भी सहस्रों योजन जा सकती है और न जाते हुए गरुड़जी एक पग भी नहीं चल सकते॥ अयुक्त मनुष्यों के लिये गम्य अगम्य कुछ नहीं है, कहाँ पृथ्वी और कहाँ वैकुण्ठ, जिसे उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव ने पाया है ॥ ३९ ॥ इसलिये हे पुत्रो! बताओ वह कार्य कौनसा है जिससे वह राजकुमार तुम्हारा ऋणी होजाय ॥४०॥

पुत्र बोले—

हे तात! उस महात्मा सद्वृत्तशाली राजकुमार की कुमारावस्था का एक वृत्तांत सुनिये॥ हे तात! उस शत्रुजित राजा के पास कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण जिनका नाम गालव था, एक उत्तम घोड़ा लिये हुए आये ॥ ४२॥ और उन्होंने राजा से कहा, "हे राजन्! मेरे आश्रम पर एक अधम पापी दैत्य आकर उपाधि करता है ॥४३॥ वह सिंह, हाथी तथा अन्य छोटे पशु व जङ्गली जानवरों का रूप धारण कर दिन रात अकारण ही ॥ ४४ ॥ समाधिस्थ, ध्यानयुक्त अथवा मौनव्रती लोगों के कार्य

तथा करोति विघ्नानि यथा चलित मे मनः ॥४५॥
दग्धुं कोपाग्निना सद्यः समर्थस्त्वं वयं न तु ।
दुःखार्ज्जितस्य तपसो व्ययमिच्छामि पार्थिव ॥४६॥
एकदा तु मया राजन्नतिनिर्व्विण्णचेतसा ।
तत्क्लेशितेन निश्वासो निरीक्ष्यासुरमुज्झितः॥४७॥
ततोऽम्बरतलात् सद्यः पतितोऽयं तुरङ्गमः ।
वाक् चाशरीरिणी प्राह नरनाथ शृणुष्व ताम् ॥४८॥
अश्रान्तः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः ।
समर्थः क्रान्तुमर्केण तवायं प्रतिपादितः ॥४९॥
पातालाम्बरतोयेषु न चास्य विहता गतिः ।
समस्तदिक्षु व्रजतो न भङ्गः पर्व्वतेष्वपि ॥५०॥
यतो भूवलयं सर्व्वमश्रान्तोऽयं चरिष्यति ।
अतः कुवलयो नाम्ना ख्यातिं लोके प्रयास्यति॥५१॥
क्लिश्यत्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः ।
तमप्येनं समारुह्य द्विजश्रेष्ठ हनिष्यति ॥५२॥
शत्रुजिन्नाम भूपालस्तस्य पुत्र ऋतध्वजः ।
प्राप्यैतदश्वरत्नञ्च ख्यातिमेतेन यास्यति ॥५३॥
सोऽहं त्वां समनुप्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम् ।
तं निवारय भूपाल भागभाङ्नृपतिर्यतः ॥५४॥
तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप निवेदितम् ।
पुत्रमाज्ञापय तथा यथा धर्म्मो न लुप्यते ॥५५॥
स तस्य वचनाद्राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम् ।
तमश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमङ्गलम् ॥५६॥
अप्रेषयत धर्म्मात्मा गालवेन समं तदा ।
स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः ॥५७॥

में विघ्न डालता है जिससे मेरे मनको दुःख होता है ॥४५॥ यद्यपि मैं शीघ्र ही अपनी क्रोधाग्निसे उस को भस्म कर सकता हूँ तथापि हे राजन् ! मुझे दुःख से अर्जित किये हुए तप को क्षीण करने की इच्छा नहीं है ॥४६॥ हे राजन् ! एक बार मैं अति खिन्न चित्त होकर बैठा हुआ यह देखता था कि वह राक्षस किधर से आता है और क्या करता है ॥४७॥ उस समय आकाश से यह अश्व उतरा और आकाश-वाणी भी हुई जिसे हे राजन् ! आप सुनिये ॥४८॥ यह उत्तम घोड़ा विना परिश्रमके ही समस्त पृथ्वी की परिक्रमा करने को समर्थ है और इसे तुमको सूर्य ने प्रदान किया है ॥ ४९॥ इसकी गति पाताल, आकाश जल आदि में भी नहीं रुकती है और यह सब दिशाओं में जाता हुआ पहाड़ों पर भी नहीं रुकता है ॥ ५० ॥ क्योंकि यह समस्त भूमण्डल पर अविश्रान्त होकर भ्रमण करेगा इस कारण यह कुवलयाश्व के नाम से जगत् में विख्यात होगा ॥ हे विप्रवर ! जो नीच दैत्य तुमको दिन रात क्लेशित करता है उसको इस घोड़े पर बैठकर वह मारेगा जो ॥५२॥ राजा शत्रुजित का पुत्र ऋतध्वज है, वह इस अश्वरत्नको प्राप्त कर ख्याति पावेगा ॥ इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ । हे राजन् ! तुम प्रतापवान् हो, तप में विघ्न के कारण का तुम निवारण करो ॥ ५४ ॥ इसलिये इस अश्वरत्न को मैं तुम्हें देता हूँ । अपने पुत्र को आज्ञा दो जिससे धर्म की रक्षा हो" ॥५५॥ राजा ने उसके यह वचन सुनकर मङ्गल मुहूर्त में ऋतध्वज को अश्व पर सवार कराया ॥५६ ॥ और उसको धर्मात्मा गालव के साथ भेज दिया । वह मुनि भी उसको लेकर अपने आश्रम को आये ॥ ५७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में कुवलयाश्व नामका बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

—:o:—

इक्कीसवां अध्याय

पितोवाच

गालवेन समं गत्वा नृपपुत्रेण तेन यत् ।
कृतं तत् कथ्यतां पुत्रौ विचित्रा युवयोः कथा॥ १ ॥

पुत्रावूचतुः

स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन् भूपालनन्दनः ।
शमनं चकार ब्रह्मवादिनाम् ॥ २ ॥

अश्वतर नागराज बोले—

हे पुत्रो ! गालवके साथ जाकर राजकुमार ने जो विचित्र कार्य किये उनको आप कहिये ॥ १ ॥

पुत्र बोले—

वह राजकुमार गालव ऋषिके रमणीक आश्रम में ठहर गया और वहाँ उसने ब्रह्मर्षियों के सब विघ्नों को शान्त किया ॥२ ॥

वीरं कुवलयाश्वं तं वसन्तं गालवाश्रमे ।
मदावलेपोपहतो नाजानाद्दानवाधमः ॥ ३ ॥
ततस्तं गालवं विप्रं सन्ध्योपासनतत्परम् ।
शौकरं रूपमास्थाय प्रधर्षयितुमागतम् ॥ ४ ॥
मुनिशिष्यैरथोत्क्रुष्टे शीघ्रमारुह्य तं हयम् ।
अन्वधावद्वराहं तं नृपपुत्रः शरासनी ॥ ५ ॥
आजघान च बाणेन चन्द्रार्द्धाकारवर्चसा ।
आकृष्य बलवच्चापं चारुचित्रोपशोभितम् ॥ ६ ॥
नाराचाभिहतः शीघ्रमात्मत्राणपरो मृगः ।
गिरिपादपसम्बाधां सोऽन्वक्रामन्महाटवीम् ॥ ७ ॥
तमन्वधावद्वेगेन तुरगोऽसौ मनोजवः ।
चोदितो राजपुत्रेण पितुरादेशकारिणा ॥ ८ ॥
अतिक्रम्याथ वेगेन योजनानि सहस्रशः ।
धरण्यां विवृते गर्त्ते निपपात लघुक्रमः ॥ ९ ॥
तस्यानन्तरमेवाशु सोऽप्यश्वी नृपतेः सुतः ।
निपपात महागर्त्ते तिमिरौघसमावृते ॥१०॥
ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन् राजसूनुना ।
प्रकाशश्च स पातालमपश्यत् तत् नापि तम् ॥११॥
ततोऽपश्यत् स सौवर्ण-प्रासादशतसंकुलम् ।
पुरन्दरपुरप्रख्यं पुरं प्राकारशोभितम् ॥१२॥
तत् प्रविश्य स नापश्यत् तत्र कञ्चिन्नरं पुरे ।
भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योषित् त्वरान्विता ॥१३॥
सा पृष्टा तेन तन्वङ्गी प्रस्थिता केन कस्य वा ।
नोवाच किञ्चित् प्रासादमारुरोह च भाविनी ॥१४॥
सोऽप्यश्वमेकतो बद्ध्वा तामेवानुससार वै ।
विस्मयोत्फुल्लनयनो निःशङ्को नृपतेः सुतः ॥१५॥
ततोऽपश्यत् सुविस्तीर्णे पर्यङ्के सर्वकाञ्चने ।
निषण्णां कन्यकामेकां कामयुक्तां रतीमिव ॥१६॥
विस्पष्टेन्दुमुखीं सुभ्रूं पीनश्रोणिपयोधराम् ।
बिम्बाधरौष्ठीं तन्वङ्गीं नीलोत्पलविलोचनाम् ॥१७॥
रक्ततुङ्गनखीं श्यामां मृद्वीं ताम्रकराङ्घ्रिकाम् ।
करभोरूं सुदशनां नीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥१८॥
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमनङ्गाङ्गलतामिव ।
सोऽमन्यत् पार्थिवसुतस्तां रसातलदेवताम् ॥१९॥

उस नीच दैत्य ने अपने मद के नशे में यह न जाना कि राजकुमार कुवलयाश्व गालव ऋषि के आश्रम में रहता है ॥ ३ ॥ इसके बाद वह राक्षस शूकर का रूप धारण कर सन्ध्योपासन में रत गालव ऋषि को दुःख देने को आ पहुँचा॥ ४॥ मुनि-शिष्यों के बताने पर वह राजकुमार शीघ्रही घोड़े पर चढ़कर धनुष बाण लेकर उस शूकर की तरफ़ दौड़े ॥ ५ ॥ और अर्द्ध चन्द्रमा के आकारका जो तीक्ष्ण बाण था वह सुन्दर धनुष पर चढ़ाकर उस शूकर के मारा ॥ ६ ॥ वह शूकर बाण से छिदा हुआ अपनी प्राण रक्षाके निमित्त गिरि और वृक्षों से युक्त महावन की ओर भागा ॥ ७ ॥ वह राजपुत्र भी पिता के आदेशानुसार उस घोड़े पर जो मनके समान वेग वाला था, उस शूकर के पीछे शीघ्रता से भागा ॥ ८ ॥ वह शूकर वेग से भागकर सहस्र योजन गहरे एक गर्त में पृथ्वी के अन्दर घुसगया ॥ ९॥ उसी समय वह अश्वारोही राजकुमार भी अन्धकार से युक्त उस गर्त में उसके पीछे गया ॥ राजकुमार ने पाताल में पहुँचकर प्रकाश तो देखा परन्तु उस शूकर रूपी शिकार को न देखा ॥ ११ ॥ उन्होंने वहाँ सुवर्णका एक सुन्दर महल जो इन्द्रपुरी के सदृश था देखा ॥१२॥ वहाँ पहुँचकर उस नगरमें उन्होंने किसी मनुष्य को नहीं देखा वरन् घूमती हुई एक स्त्री पर उनकी दृष्टि पड़ी॥१३॥ जब उस स्त्री से उसने पूछा कि तू कौनहै,कहाँ से आईहै? तोउसने कुछ जवाब नहीं दिया वरन् महल के ऊपर वह सुन्दरी चढ़गई ॥१४॥ वह राजकुमार भी घोड़े को एक तरफ़ बाँधकर आश्चर्य से चकित हो निःशङ्क उसके पीछे हो लिया ॥१५॥ वहाँ उसने सोने के एक विशाल पलङ्ग पर बैठी हुई रती के समान कामयुक्त एक कन्या को देखा ॥ १६ ॥ वह च[illegible] के समान मुख वाली, सुन्दर भौंहों से युक्त [illegible] उत्तम स्तन वाली थी। उसके होठ लाल, शरीर सुन्दर और आँखें नील कमल के समान थीं ॥१७॥ उस स्त्रीके नख और अंगुलियाँ लाल कमलके समान, तथा हाथ ताम्रवर्ण और रङ्ग गोरा था । उसकी हाथी की सी जाँघें, सुन्दर दन्तपंक्ति तथा काले बालों की सुन्दर चोटी थी ॥ १८ ॥ उस सर्वाङ्ग सुन्दरी को कंदर्पलता की तरह देखकर उस राज, कुमार ने उसको रसातल की देवी समझा ॥ १९ ।

सा च दृष्ट्वैव तं बाला नीलकुञ्चितमूर्द्धजम्।
पीनोरुस्कन्धबाहुं तमनंगमदनं शुभा ॥२०॥
उत्तस्थौ च महाभागा चित्तक्षोभमवाप्य सा।
लज्जाविस्मयदैन्यानां सद्यस्तन्वी वशं गता ॥२१॥
कोऽयं देवो नु यक्षो वा गन्धर्व्वो वोरगोऽपि वा।
विद्याधरो वा सम्प्राप्तः कृतपुण्यरतिर्नरः ॥२२॥
एवं विचिन्त्य बहुधा निश्वस्य च महीतले।
उपविश्य ततो भेजे सा मूर्च्छां मदिरेक्षणा ॥२३
सोऽपि कामशराघातमवाप्य नृपतेः सुतः।
तां समाश्वासयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ॥२४॥
सा च स्त्री या तदा दृष्टा पूर्व्वं तेन महात्मना।
तालवृन्तमुपादाय पर्य्यवीजयदाकुला ॥२५॥
समाश्वास्य तदा पृष्टा तेन सम्मोहकारणम्।
किंचिल्लज्जान्विता बाला सर्व्वं सख्यै न्यवेदयत् २६॥
सा चास्मै कथयामास नृपपुत्राय विस्तरात्।
मोहस्य कारणं सर्व्वं तद्दर्शनसमुद्भवम्।
यथा तया समाख्यातं तद्वृत्तान्तञ्च भाविनी॥२७॥

स्त्र्युवाच

विश्वावसुरिति ख्यातो दिवि गन्धर्व्वराट् प्रभो।
तस्येयमात्मजा सुभ्रूर्नाम्ना ख्याता मदालसा ॥२८॥
वज्रकेतोः सुतश्चोग्रो दानवोऽरिविदारणः।
पातालकेतुर्विख्यातः पातालान्तरसंश्रयः ॥२९॥
तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम्।
अपहृत्य मया हीना बाला नीता दुरात्मना ॥३०॥
आगामिन्यां त्रयोदश्यामुद्वक्ष्यति किलासुरः।
न तु नार्हति चार्व्वङ्गीं शूद्रो वेदश्रुतीमिव ॥३१॥
अतीते च दिने बालामात्मव्यापादनोद्यताम्।
सुरभिः प्राह नायं त्वां प्राप्स्यते दानवाधमः ॥३२॥
मर्त्यलोकमनुप्राप्तं य एनं छेत्स्यते शरैः।
स ते भर्त्ता महाभागे अचिरेण भविष्यति ॥३३॥
अहंचास्याःसखी नाम्ना कुण्डलेति मनस्विनी।
सुता विन्ध्यवतः पत्नी वीरपुष्करमालिनः ॥३४॥
हते भर्त्तरि शुम्भेन तीर्थात् तीर्थमनुव्रता।
दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता ॥३५॥

वह बाला भी उस राजकुमार के घूंघर वाले बाल, सुन्दर जाँघें, कन्धे, बाहु और कामदेव के समान रूप को देखकर ॥२०॥ पलङ्ग से उठी और चित्त में क्षोभ को प्राप्त कर लज्जा, विस्मय आदि से शिर नीचा कर उसके वशीभूत होगई ॥ २१ ॥ ये देवता, यक्ष, गन्धर्व, नाग, विद्याधर अथवा कोई पुण्यवान् मनुष्यहै जो यहाँ आयाहै,ऐसा वह विचारने लगी ॥२२॥ ऐसा बहुत सोच विचार करके श्वास लेकर वह पृथ्वीतलपर बैठकर मूर्छित होगई ॥२३॥ वह राजकुमार भी कामबाण से पीड़ित होकर और उसको आश्वासन देकर कहने लगा कि मत डरो ॥२४॥ वह उस स्त्री को मूर्च्छित देखकर पंखे से उसकी हवा करने लगा ॥ २५ ॥ बहुत तरह से आश्वासन देकर राजकुमार ने उससे मूर्च्छा का कारण पूछा परन्तु उस स्त्री की लज्जा न गई परन्तु अपनी सखीको उसने सब हाल बतादिया॥२६॥ फिर सखीने राजकुमार को विस्तार पूर्वक उस मूर्च्छाका कारण बताया जो कि उसके दर्शनसे हुई थी ॥२७॥

सखी बोली—

स्वर्ग में विश्वावसु नामक गन्धर्वोंका राजा था जिसकी कि यह मदालसा नाम की पुत्री है ॥२८॥ शत्रुओं के नाश करने वाले दानव वज्रके उग्र पुत्र का नाम पातालकेतु है जो कि सदैव पाताल के अन्दर रहता है ॥२९॥ वह पातालकेतु उद्यान में से अपनी माया द्वारा अंधेरा करके इस बाला को ले आया है ॥३०॥ उस असुर ने त्रयोदशी को इससे विवाह करना निश्चय किया है, यह सर्वाङ्गसुन्दरी उस राक्षसके इस प्रकार योग्य नहीं है जिस तरह शूद्र को वेद और श्रुति ॥३१॥ कुछ दिन व्यतीत होने पर यह कन्या आत्मघात करने को तैयार हुई परन्तु सुरभि ने कहा कि ये नीच राक्षस तुझको नहीं पावेगा ॥३२ ॥ इसको मर्त्यलोकमें कोई व्यक्ति बाणों से बेधित करेगा और वही शीघ्र हे महाभागे ! तेरा स्वामी होगा ॥३३॥ मैं इसकी सखी हूँ और कुण्डल मेरा नाम है। मैं विंध्य की बेटी और वीर पुष्करमाली की वधू हूँ ॥ ३४ ॥ अपने स्वामी के शुम्भ द्वारा मारे जाने पर मैं परलोक बनाने के लिये तीर्थों में भ्रमण करती हूँ ॥३५॥ दुष्ट पाताल-

पातालकेतुर्दुष्टात्मा वाराहं वपुरास्थितः ।
केनापि विद्धो बाणेन मुनीनां त्राणकारणात् ॥३६॥
तंचाहं तत्त्वतोऽन्विष्य त्वरिता समुपागता ।
सत्यमेव स केनापि ताड़ितो दानवाधमः ॥३७॥
इयंच मूर्च्छामगमत् कारण यत् शृणुष्व तत् ।
त्वयि प्रीतिमती बाला दर्शनादेव मानद ॥३८॥
देवपुत्रोपमे चारु-वाक्यादिगुणशालिनि ।
भार्य्या चान्यस्य विहिता येन विद्धः स दानवः॥३९॥
एतस्मात् कारणान्मोहं महान्तमियमागता ।
यावज्जीवंच तन्वङ्गी दुःखमेवोपभोक्ष्यते ॥४०॥
त्वय्यस्या हृदयं रागि भर्त्ता चान्यो भविष्यति।
यावज्जीवमतो दुःखं सुरभ्या नान्यथा वचः । ४१॥
अहं त्वस्याःप्रभो प्रीत्या दुःखितात्र समागता।
यतो विशेषो नैवास्ति स्वसखी-निजदेहयोः ॥४२॥
यद्येषाभिमतं वीरं पतिमाप्नोति शोभना ।
ततस्तपस्त्वहं कुर्य्यां निर्व्यलीकेन चेतसा ॥४३॥
त्वन्तु को वा किमर्थं वा सम्प्राप्तोऽत्र महामते।
देवो दैत्यो नु गन्धर्व्वः पन्नगः किन्नरोऽपि वा ॥४४॥
न ह्यत्र मानुषगतिर्न चेदृङ्मानुषं वपुः ।
तत्त्वमाख्याहि कथितं यथैवावितथं मया ॥४५॥

कुवलयाश्व उवाच

यन्मां पृच्छसि धर्म्मज्ञे कस्त्वं किं वा समागतः।
तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे कथयाम्यादितस्तव ॥४६॥
राज्ञः शत्रुजितः पुत्रः पित्राः सम्प्रेपितः शुभे ।
मुनिरक्षणमुद्दिश्य गालवाश्रममागतः ॥४७॥
कुर्व्वतो मम रक्षाञ्च मुनीनां धर्म्मचारिणाम्।
विघ्नार्थमागतः कोऽपि शौकरं रूपमास्थितः ॥४८॥
मया स विद्धो बाणेन चन्द्रार्द्धाकारवर्चसा ।
अपक्रान्तोऽतिवेगेन तमस्मचनुगतो हयी ॥४९॥
पपात सहसा गर्त्ते स क्रोड़ोऽश्वश्च मामकः ।
सोऽहमश्वं समारूढस्तमस्येकः परिभ्रमन् ॥५०॥
प्रकाशमासादितवान् दृष्टा च भवती मया ।
पृष्टया च न मे किंचिद्भवत्या दत्तमुत्तरम् ॥५१॥

केतु को जिसने शूकर का रूप धारण किया था, किसी ने मनुष्यों की रक्षा करते हुए बाण से बेधा है ॥३६॥ वह यहाँ अभी आया था और यह सत्य है कि किसी ने उसे बाण से छेदा है ॥३७॥ इसको जो मूर्च्छा हुई उसका कारण सुनो। तुम्हारे दर्शन मात्र से ही इस कन्या को प्रीति उत्पन्न हो गई है॥ आप देव पुत्र के समान सुन्दर वाणी आदि गुणों से युक्त हैं और यह पत्नी किसी उस अन्य पुरुष की होगी जिसने कि राक्षसको छेदा है॥३९॥ इस कारण से इसको यह महान् दुःख हुआहै और जब तक यह जीवित रहेगी तब तक इस दुःख से पीड़ित रहेगी ॥ ४० ॥ तुम्हारे प्रति इसके हृदय में प्रेम है और इसका पति दूसरा होगा, जबतक यह जीवित रहेगी तब तक यह दुःख रहेगा, कारण सुरभि का यह वचन अन्यथा नहीं हो सकता॥४१॥ हे प्रभो ! मैं इसकी प्रीति में दुःखित हुई यहाँ पर पड़ी हूँ ।अपनी और इसकी देहमें कोई अन्तर नहीं समझती हूँ ॥ ४२ ॥ जब इस सुन्दरी को यथेष्ट वर मिल जाय तब मैं निश्चिन्त मन से तप करूँ ॥ हे महामते ! आप कौन हैं, और किस लिये यहाँ आये हैं ? आप देव, दैत्य, गन्धर्व, नाग, किन्नर आदि में से कौन हैं ? ॥ ४४ ॥ यहाँ पर मनुष्य की गति नहीं है और न आपकी मनुष्यों की सी देह ही है। जिस तरह मैंने सच-सच हाल कहा है उसी तरह आप भी कहिये ॥ ४५ ॥

कुवलयाश्व बोले –

हे धर्मज्ञे ! शुद्ध मति वाली ! यदि तुम मुझसे पूछती हो कि मैं कौन हूँ और यहाँ क्यों आया हूँ तो सुनो, मैं आदि से ही कहता हूँ ॥४६॥ मैं राजा शत्रुजित का पुत्र हूँ और पिता का भेजा हुआ, मुनियोंकी रक्षा करताहुआ गालव ऋषिके आश्रम से आया हूँ ॥ ४७ ॥ धर्मप्राण मुनियों की रक्षा करते हुए मुझे शूकर रूप से कोई व्यक्ति विघ्न करने के लिये उपस्थित होता हुआ मिला ॥ ४८ ॥ मैंने अर्द्ध-चन्द्राकार बाण से उसको छेदित किया और वह शीघ्रता से भागा और मैं उसके पीछे घोड़े पर चढ़कर दौड़ा ॥ ४९॥ वह सहसा एक कुण्ड में गिरा और मैं भी घोड़े पर चढ़ा हुआ उसके पीछे-पीछे उसी गर्तमें गिर पड़ा और अंधेरे में घूमने लगा ॥ ५० ॥ थोड़ी देर बाद जब प्रकाश मिला तो मैंने तुमको देखा और तुमसे प्रश्न किया परन्तु आपने कुछ उत्तर न दिया ॥५१॥ फिर

त्वाञ्चैवानुप्रविष्टोऽहमिमं प्रासादमुत्तमम् ।
इत्येतत् कथितं सत्यं न देवो हं न दानवः ॥५२॥
न पन्नगो न गन्धर्व्वः किन्नरो वा शुचिस्मिते ।
समस्ताः पूज्यपक्षा वै देवाद्या मम कुण्डले ।
मनुष्योऽस्मि विशङ्का ते न कर्त्तव्यात्र कर्हिचित् ॥५३॥

पुत्रावूचतुः

ततः प्रहृष्टा सा कन्या सखीवदनमुत्तमम् ।
लज्जाजडं वीक्षमाणा किंचिन्नोवाच भाविनी ॥५४॥
सा सखी पुनरप्येनां प्रहृष्टा प्रत्युवाच ह ।
यथावत् कथितं तेन सुरभ्या वचनानुगे ॥५५॥

कुण्डलोवाच

वीर सत्यमसन्दिग्धं भवताभिहितं वचः ।
नान्यत्र हृदयन्त्वस्या दृष्ट्वा स्थैर्य्यं प्रयास्यति ॥५६॥
चन्द्रमेवाधिका कान्तिः समुपैति रविं प्रभा ।
भूतिर्धन्य धृतिर्धीरं क्षान्तिरभ्येति चोत्तमम् ॥५७॥
त्वयैव विद्धोऽसन्दिग्धं स पापो दानवाधमः ।
सुरभिः सा गवां माता कथं मिथ्या वदिष्यति ॥५८॥
तद्धन्येयं स भाग्या च त्वत्सम्वन्धं समेत्य वै ।
कुरुष्व वीर यत् कार्य्यं विधिनैव समाहितम् ॥५९॥

पुत्रावूचतुः

परवानहमित्याह राजपुत्रः स तां पितः ।
तामुद्वहे कथं बालां तन्नियोगादृते त्विमाम् ॥६०॥
मा मा वदेदृक् सेत्याह देवकन्येयमुद्वह ।
तथेत्युक्तेन तेनैव सङ्गम्योद्वाहिकं तदा ॥६१॥
सा च तं चिन्तयामास तुम्बुरुं तत्कुलेगुरुम् ।
स चापि तत्क्षणात् प्राप्तः प्रगृहीतसमित्कुशः ॥६२॥
मदालसायाः सम्प्रीत्या कुण्डलागौरवेण च ।
प्रज्वाल्य पावकं हुत्वा मन्त्रिवित् कृतमङ्गलाम् ॥६३॥
वैवाहिकविधिं कन्यां प्रतिपाद्य यथागतम् ।
जगाम तपसे धीमान् स्वमाश्रमपदं तदा ॥६४॥
सा चाह तां सखीं बालां कृतार्थास्मि वरानने ।
संयुक्तामममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिनीम् ॥६५॥
तपस्तप्स्येऽहमतुलं निर्व्यलीकेन चेतसा ।
[illegible] च भवित्री नेदृशी यथा ॥६६॥

तुम्हारे पीछे पीछे मैं इस उत्तम भवन में आयाहूँ । जो कुछ सत्य था वह मैंने कह दिया । न मैं देव हूँ और न दानव ॥५२॥ हे प्रसन्न मुख वाली ! मैं न, नाग हूँ, न गन्धर्व और न किन्नर हूँ । हे कुण्डले ! समस्त देवों को पूजने वाला मैं मनुष्य हूं, इसमें तुमको कोई संदेह नहीं करना चाहिये ॥ ५३ ॥

पुत्र बोले—

वह कन्या राजकुमार का यह वचन सुनकर प्रसन्न हुई और अपनी सखीका सुन्दर मुख देखने लगी परन्तु लज्जावश कुछ न बोली ॥ ५४ ॥ वह सखी फिर प्रसन्न होकर उससे सुरभि के कथनानुसार कहने लगी ॥ ५५ ॥

कुण्डला बोली—

हे वीर ! आपका कहा हुआ वचन निस्संदेह सत्य है । इसका हृदय अब किसी अन्य पुरुष को देखकर स्थिरता को प्राप्त न होगा ॥ ५६ ॥ इसकी कान्ति चन्द्रमा से अधिक और सूर्य के समान है और इसका ऐश्वर्य धन्य है । इसके धैर्य और शान्ति उत्तम हैं ॥५७॥ वह पापी नीच दैत्य तुम्हारे द्वारा ही निश्चय छेदित किया गया है । वह गायों की माता सुरभि किस प्रकार मिथ्या कहेगी ॥५८॥ आपके सम्वन्ध से यह भाग्य-शालिनी धन्य है । हे वीर ! अब वह कार्य करो जिससे विधिवत् विवाह हो जावे ॥ ५९ ॥

पुत्र बोले—

हे पिता ! राजकुमार ने कहा कि मैं भी यही चाहता हूँ कि किस प्रकार विवाहहो ? नियोग द्वारा अथवा अन्य प्रकार से ? ॥६०॥ नहीं, ऐसा न कहो इस देवकन्या का विवाह विधि पूर्वक करो, ऐसा कुण्डला ने कहा ॥६१॥ उसने तुम्बुरु नामक उसके गुरु को स्मरण किया जो कि समिधा और कुश लिये हुए एक क्षण में ही आकर उपस्थित होगया मदालसा की प्रीति से और कुण्डला के गौरव से उसने अग्नि प्रज्वलित कर और मन्त्रों से हवन कर मङ्गल कार्य किया ॥ ६३ ॥ उसने वेद की विधि के अनुसार कन्या का विवाह कर दिया और फिर तप करनेके लिये अपने आश्रमको चला गया ॥६४॥ वह सखी मदालसा से बोली, "हे सुन्दर मुख वाली ! तुम रूपवती का इनसे संवन्ध हुआ देख कर अब मैं कृतार्थ हुई" ॥६५॥ अब मैं निर्विघ्न मन से अतुल तपस्या करूँगी और तीर्थस्थानों के जल से अपने पापों को धो डालूंगी ॥ ६६ ॥ और चलने

तश्चाह राजपुत्रं सा प्रश्रयावनता तदा।
गन्तुकामा निजसखी-स्नेहविक्लवभाषिणी ॥६७॥

फुण्डलोवाच

पुंभिरप्यमितप्रज्ञ नोपदेशो भवद्विधे।
दातव्यः किमुत स्त्रीभिरतो नोपदिशामि ते ॥६८॥
किन्त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा।
त्वया विश्रम्भिता चास्मि स्मारयाम्यरिसूदन ॥६९॥
भर्त्तव्या रक्षितव्या च भार्य्या हि पतिना सदा।
धर्म्मार्थकामसंसिद्धयै भार्य्या भर्तृसहायिनी ॥७०॥
यदा भार्य्या च भर्त्ता च परस्परवशानुगौ।
तदा धर्म्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गतम् ॥७१॥
कथं भार्य्यामृते धर्म्ममर्थं वा पुरुषः प्रभो।
प्राप्नोति काममथवा तस्यां त्रितयमाहितम् ॥७२॥
तथैव भर्त्तारमृते भार्य्या धर्म्मादिसाधने।
न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यं समुपाश्रितः ॥७३॥
देवता-पितृ-भृत्यानामतिथीनाञ्च पूजनम्।
न पुंभिः शक्यते कर्त्तुमृते भार्य्यां नृपात्मज ॥७४॥
प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम्।
क्षयमेति विना भार्य्यां कुभार्य्यासंश्रयेऽपि वा ॥७५॥
कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते।
दम्पत्योः सहधर्म्मेण त्रयीधर्म्ममवाप्नुयात् ॥७६॥
पितृन् पुत्रैस्तथैवान्न-साधनैरतिथीन् नरः।
पूजाभिरमरांस्तद्वत् साध्वीं भार्य्यां नरोऽवति ॥७७॥
स्त्रियाश्चापि विना भर्त्त्रा धर्म्मकामार्थसन्ततिः।
नैव तस्मात् त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यमधिगच्छति ॥७८॥
एतन्मयोक्तं युवयोर्गच्छामि च यथेप्सितम्।
वर्द्ध त्वमनया सार्द्धं धन-पुत्र-सुखायुषा ॥७९॥

पुत्रावूचतुः

इत्युक्त्वा सा परिष्वज्य स्वसखीं तं नमस्य च।
जगाम दिव्यया गत्या यथाभिप्रेतमात्मनः ॥८०॥
सोऽपि शत्रुजितः पुत्रस्तामारोप्य तुरङ्गमम्।

की इच्छा से तथा मदालसा के स्नेह में विह्वल होकर राजकुमारके प्रति विनयपूर्वक कहने लगी॥

फुण्डला बोली—

आप पुरुषों में ज्ञानवान् हैं, आपको कोई उपदेश नहीं दे सकता। मैं तो स्त्री हूँ, फिर किस प्रकार आपको उपदेश दे सकती हूँ ॥ ६८ ॥ किन्तु हे शत्रुओं के नाश करने वाले! इस सुन्दर कन्या के स्नेह से मेरा हृदय लिप्त हो रहा है, इसलिये आपको कहकर स्मरण कराती हूँ ॥ ६९ ॥ पति को चाहिये कि सदा स्त्री का भरण-पोषण और रक्षा करे। धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि में स्त्री पति की सहायक होती है ॥ ७० ॥ जब स्त्री और पुरुष एक दूसरे के वशीभूत होते हैं तो धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को प्राप्त करते हैं ॥ ७१ ॥ हे प्रभो! भार्या को छोड़कर पुरुष किसी प्रकार धर्म, अर्थ अथवा काम की सिद्धि नहीं कर सकता, कारण-ये तीनों स्त्री और पुरुष के सहयोग से होते हैं ॥७२॥ इसी प्रकार भार्या भी पति के विना धर्मार्थ साधन में असमर्थ है, कारण-धर्म, अर्थ और काम दाम्पत्य जीवन में ही सध सकते हैं ॥ ७३॥ हे राजकुमार! देवता, पितर, भृत्यवर्ग तथा अतिथियों का सत्कार पुरुष स्त्री के विना नहीं करसकता है ॥७४॥ यदि मनुष्य धनोपार्जन कर घर में ले भी आवे तो विना स्त्री के वह क्षय को प्राप्त होताहै, इसी प्रकार यदि स्त्री दुष्टा हो तो भी धन नाश को प्राप्त होता है ॥७५॥ यदि उनकी इच्छा न भी हो तो दाम्पत्य धर्म का अवलम्बन करने से धर्म आदिक तीनों पदार्थ प्रत्यक्ष प्राप्त हुए दिखाई देते हैं ॥७६॥ जिस प्रकार पुत्रों से पिता, अन्न से अतिथि लोग और पूजा से देवता प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार साध्वी स्त्री से पुरुष प्रसन्न होता है ॥ ७७॥ स्त्रियां भी पति के विना धर्म, अर्थ, काम और सन्तान को प्राप्त नहीं कर सकतीं, ये सुख दाम्पत्य जीवन में ही प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥ ये बातें मैंने आप दोनोंके लिये कही हैं, अब मैं अपनी इच्छा से जाती हूँ। तुम इसके साथ धनवान्, पुत्रवान होकर सुखी रहो॥

पुत्र बोले—

इतना कहकर वह कुण्डला अपनी सखी से आलिङ्गन करके तथा राजकुमार को नमस्कार करके दिव्य गति से अपनी इच्छानुसार चली गई ॥ ८० ॥ वह राजा शत्रुजित का पुत्र भी मदालसा को अश्व पर चढ़ाकर पाताल से जाने की इच्छा

निगन्तुकामः पातालाद्विज्ञातो दनुसम्भवैः ॥८१॥
ततस्तैः सहसोत्कुष्टं ह्रियते ह्रियतेऽति वै ।
कन्यारत्नं यदानीतं दिवः पातालकेतुना ॥८२॥
ततः परिघ-निस्त्रिंश-गदा-शूल-शरायुधम् ।
दानवानां बलं प्राप्तं सह पातालकेतुना ॥८३॥
तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन्तस्ते तदा दानवोत्तमाः ।
शरवर्षैस्तथा शूलैर्ववर्षुर्नृपनन्दनम् ॥८४॥
स च शत्रुजितः पुत्रस्तदस्त्राण्यतिवीर्य्यवान् ।
चिच्छेद शरजालेन प्रहसन्निव लीलया ॥८५॥
क्षणेन पातालतलमसिशक्त्यृष्टिशायकैः ।
छिन्नैः सञ्छन्नमभवदृतध्वजशरोत्करैः ॥८६॥
ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादाय चिक्षेप प्रति दानवान् ।
तेन ते दानवाः सर्व्वे सह पातालकेतुना ॥८७॥
ज्वालामालातितीव्रेण स्फुटदस्थिचयाः कृताः ।
निर्दग्धाः कापिलं तेजः समासाद्य व सागराः ॥८८॥
ततः स राजपुत्रोऽश्वी निहत्यासुरसत्तमान् ।
स्त्रीरत्नेन समं तेन समागच्छत् पितुः पुरम् ॥८९॥
प्रणिपत्य च तत् सर्व्वं स तु पित्रे न्यवेदयत् ।
पातालगमनञ्चैव कुण्डलायाश्च दर्शनम् ॥९०॥
तद्वन्मदालसाप्राप्तिं दानवैश्चापि सङ्गरम् ।
वधञ्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनं तथा ॥९१॥
इति श्रुत्वा पिता तस्य चरितं चारुचेतसः ।
प्रीतिमानभवच्चेदं परिष्वज्याह चात्मजम् ॥९२॥
सत्पात्रेण त्वया पुत्र तारितोऽहं महात्मना ।
भयेभ्यो मुनयस्त्राता येन सद्धर्म्मचारिणः ॥९३॥
सत्पूर्व्वैः ख्यातमानीतं मया विस्तारितं पुनः ।
पराक्रमवता वीर त्वया तद्बहुलीकृतम् ॥९४॥
यदुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्य्यमथापि वा ।
तन्न हापयते यस्तु स नरो मध्यमः स्मृतः ॥९५॥
तद्वीर्य्यादधिकं यस्तु पुनरन्यत् स्वशक्तितः ।
निष्पादयति तं प्राज्ञाः प्रवदन्ति नरोत्तमम् ॥९६॥
यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्य्ययशांसि वै ।
न्यूनतां नयति प्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥९७॥
तन्मया ब्राह्मणत्राणं कृतमासीद्यथा त्वया ।

करने लगा और इस बातको दानवोंने जानलिया ॥ फिर उन लोगों ने सहसा कोलाहल मचाया कि यह उस कन्यारत्न को जिसको पातालकेतु स्वर्ग से लाया था लिये जाता है ॥ ८२ ॥ फिर परिघ, खड्ग, गदा, शूल, वाण और आयुधों को लेकर दानवों की एक फ़ौज पातालकेतुके साथ आई॥८३॥ वे प्रवल दैत्य "ठहर, ठहर" ऐसा कहने लगे और उन्होंने राजकुमार पर वाणों और शूलों की वर्षा की ॥ ८४ ॥ फिर वलवान् शत्रुजित के पुत्र ने वाणों के उस जाल को कौतूहल मात्र से हँसते हुए काट दिया ॥ ८५ ॥ और क्षण भर में पाताल लोक तलवारों, शक्तियों, यष्टियों और तीरों से छिन्न होकर ऋतध्वज के वाणों से आच्छादित हो गया ॥८६॥ फिर उस राजकुमार ने दानवों में अग्नि वाण को छोड़ा जिससे वे सब दैत्य पातालकेतु के साथ ॥८७॥ तीव्र ज्वाला से हड्डियों के सहित दग्ध होगये और कुछ उस अग्नि के डर से समुद्रों में घुस गये ॥ ८८ ॥ फिर वह घोड़े पर सवार राजकुमार सब राक्षसोंको मारकर उस स्त्रीरत्न सहित अपने पिता के नगर में आया ॥ ८९ ॥ वहाँ उसने पिता को प्रणाम कर सब वृत्तान्त पाताल में जाने और कुण्डला आदि को देखने का उनको सुना दिया ॥९०॥ तथा मदालसा की प्राप्ति, दानवों के साथ युद्ध, उनका अस्त्र द्वारा वध तथा पुनः वापिस आना आदि सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ९१ ॥ पिता ने भी उसके इस तेजस्वी चरित्र को सुनकर प्रसन्न हो पुत्र को छाती से लगाया ॥ ९२ ॥ तुझ सुपात्र और महान् आत्मा वाले पुत्रसे मैं तर गया तुमने सद्धर्म में प्रवृत्त, भय से डरे हुए मुनियों की रक्षा की है ॥९३॥ जो ख्याति मेरे पूर्वजों ने प्राप्त की उसको मैंने वढ़ाया। परन्तु हे वीर ! तुमने उसको भी अपने पराक्रम से अधिक कर दिया है ॥ ९४ ॥ जिस व्यक्ति ने अपने पिता के संचित किये हुए धन, वल तथा यश को उसी प्रकार रक्खा वह मनुष्य मध्यम कहलाता है ॥ ९५ ॥ उसके यश को जिसने अपनी शक्तिसे वढ़ाया उसको विद्वान् लोग नरोत्तम कहते हैं ॥ ९६ ॥ जो पुत्र अपने पिता के अर्जित धन, वल और यश को कम करता है उस को ज्ञानी लोग अधम कहते हैं ॥ ९७ ॥ जिस तरह मैंने ब्राह्मणों की रक्षा की उसी तरह तुमने भी की,

पातालगमनं यच्च यच्चासुरविनाशनम्।
एतदप्यधिकं वत्स तेन त्वं पुरुषोत्तमः॥६८॥
तद्धन्योऽस्यथ बाल त्वमहमेव गुणाधिकम्।
त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाध्यः पुण्यवतामपि॥६६॥
न स पुत्रकृतां प्रीतिं मन्ये प्राप्नोति मानवः।
पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः॥१००॥
धिग्जन्म तस्य यः पित्रा लोके विज्ञायते नरः।
यः पुत्रात् ख्यातिमभ्येति तस्य जन्म सुजन्मनः १०१
आत्मना ज्ञायते धन्यो मध्यः पितृपितामहैः।
मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिमेति नराधमः॥१०२॥
तत् पुत्र धनवीर्य्यैस्त्वं विवर्द्धस्व सुखेन च।
गन्धर्व्वतनया चेयं मा त्वया वै वियुज्यताम्॥१०३॥
इति पित्रा बहुविधं प्रियमुक्तः पुनः पुनः।
परिष्वज्य स्वमावासं सभार्य्यः स विसर्ज्जितः १०४॥
स तया भार्य्यया सार्द्धं रेमे तत्र पितुः पुरे।
अन्येषु च तथोद्यान-वन-पर्व्वतसानुषु॥१०५॥
श्वश्रू-श्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा।
प्रातः प्रातस्ततस्तेन सह रेमे सुमध्यमा। १०६॥

परन्तु पाताल में जाकर असुरों का नाश करना तुमने अधिक किया, इसलिये हे वत्स! तुम श्रेष्ठ पुरुष हो॥ ६८॥ इसलिये हे पुत्र! तुम धन्य हो, तुम्हारे इस गुण से मेरे यश की वृद्धि हुई, और तुम्हारे जैसे पुत्र को पाकर मैं श्लाघ्य तथा पुण्य-शील होगया॥ ६६॥ वह मनुष्य पुत्र के होने ही से प्रसन्नता को नहीं पा सकता कि जिसके बुद्धि ज्ञान और विक्रम को पुत्र ने न बढ़ाया हो॥१००॥ उसके जन्म को धिक्कार है कि जिसने पिता की ख्याति को न बढ़ाया। जो पिता अपने पुत्र से ख्याति को प्राप्त करता है उसका जन्म सफल है॥ जो मनुष्य अपने किये हुए कर्मों से ख्याति को प्राप्त करता है वह श्रेष्ठ है, मध्यम वह है जो पिता और दादा की नेकनामी से प्रसिद्ध है तथा निकृष्ट वह है जो नाना मामा की कृति के कारण ख्याति पाता है॥ १०२॥ इसलिये हे पुत्र! धन और बल को बढ़ाता हुआ तू सुख से रह और इस गन्धर्व पुत्री से तेरा कभी वियोग न हो॥ १०३॥ इस प्रकार पिता ने पुनः पुनः मधुर वाणी से पुत्र का सत्कार किया और उसको आलिङ्गन कर भार्या सहित अपने रहने के स्थान में भेज दिया॥१०४॥ फिर वह अपनी स्त्री के साथ अपने पिता के नगर में रमण करता रहा तथा अनेक बाग, वन और पहाड़ों पर भी विहार करता रहा॥ १०५॥ और वह सुन्दरी मदालसा भी सास श्वसुर को नित्य प्रातःकाल प्रणाम करके अपने पति के साथ इधर उधर विचरती रही॥ १०६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें कुवलयाश्व से मदालसा परिणयन नाम इक्कीसवाँ अ० समाप्त।

बाईसवां अध्याय

पुत्रावूचतुः

ततः काले बहुतिथे गते राजा पुनः सुतम्।
प्राह गच्छाशु विप्राणां त्राणाय चर मेदिनीम्॥ १॥
अश्वमेनं समारुह्य प्रातः प्रातर्दिने दिने।
अबाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैव हि॥ २॥
दुर्वृत्ताः सन्ति शतशो दानवाः पापयोनयः।
तेभ्यो न स्याद्यथा बाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु॥३॥
स यथोक्तस्ततः पित्रा तथा चक्रे नृपात्मजः।

नागपुत्र बोले—

बहुत काल व्यतीत होने पर राजा ने फिर अपने पुत्र से कहा कि शीघ्र जाकर ब्राह्मणों की रक्षा के निमित्त पृथ्वी पर भ्रमण करो॥ १॥ नित्य प्रति इस घोड़े पर बैठकर ब्राह्मणों को तलाश कर के देखो कि उनको कोई बाधा तो नहीं है॥ २॥ पापयोनि सैकड़ों दैत्य हैं उनसे मुनियों को कोई बाधा न हो ऐसा उपाय करो॥३॥ उस राजकुमार ने वैसा ही किया जैसा कि उसके पिता ने आदेश

परिक्रम्य महीं सर्व्वां ववन्दे चरणौ पितुः ॥ ४ ॥
अहन्यहन्यनुप्राप्ते पूर्व्वाह्णे नृपनन्दनः ।
ततश्च शेषं दिवसं तया रेमे सुमध्यमा ॥ ५ ॥
एकदा तु चरन् सोऽथ ददर्श यमुनातटे ।
पातालकेतोरनुजं तालकेतुं कृताश्रमम् ॥ ६ ॥
मायावी दानवः सोऽथ मुनिरूपं समास्थितः ।
स प्राह राजपुत्रं तं पूर्व्ववैरमनुस्मरन् ॥ ७ ॥
राजपुत्र ब्रवीमि त्वां तत् कुरुष्व यदीच्छसि ।
न च ते प्रार्थनाभङ्गः कार्य्यः सत्यप्रतिश्रव ॥८॥
यक्ष्ये यज्ञेन धर्म्माय कर्त्तव्याश्च तथेष्टयः ।
चितयस्तत्र कर्त्तव्या नास्ति मे दक्षिणा यतः ॥९॥
अतः प्रयच्छ मे वीर हिरण्यार्थं स्वभूषणम् ।
यदेतत् कण्ठलग्नं ते रक्ष चेमं ममाश्रमम् ॥१०॥
यावदन्तर्ज्जले देवं वरुणं यादसां पतिम् ।
वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैः प्रजानां पुष्टिहेतुकैः ॥११॥
अभिष्टय त्वरायुक्तः समभ्येमीति वादिनम् ।
तं प्रणम्य ततः प्रादात् स तस्मै कण्ठभूषणम् ॥१२॥
प्राह चैनं भवान् यातु निर्व्यलीकेन चेतसा ।
स्थास्यामि तावदत्रैव तवाश्रमसमीपतः ॥१३॥
तवादेशान्महाभाग यावदागमनं तव ।
न तेऽत्र कश्चिदाबाधां करिष्यति मयि स्थिते ।
विश्रब्धश्चात्वरन् ब्रह्मन् कुरुष्व त्वं मनोगतम् ॥१४॥

पुत्रावूचतुः

एवमुक्तस्ततस्तेन स ममज्ज नदीजले ।
ररक्ष सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम् ॥१५॥
गत्वा जलाशयात् तस्मात् तालकेतुश्च तत्परम् ।
मदालसायाः प्रत्यक्षमन्येषाञ्चैतदुक्तवान् ॥१६॥

तालकेतुरुवाच

वीरः कुवलयाश्वोऽसौ ममाश्रमसमीपतः ।
केनापि दुष्टदैत्येन कुर्व्वन् रक्षां तपस्विनाम् ॥१७॥
युध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन् ब्रह्मद्विषो युधि ।
माया माश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि ॥१८॥
म्रियमाणेन तेनेदं दत्तं मे कण्ठभूषणम् ।
[illegible] स वने शूद्रतापसैः ॥१९॥

किया था। वह सब पृथ्वी की परिक्रमा करके पिता के चरणों में नमस्कार करताथा ॥ ४ ॥ नित्य प्रति वह राजकुमार पूर्वाह्न में भ्रमण करता तथा शेष दिन मदालसा के साथ व्यतीत करता था ॥ एक वार उसने घूमते हुए यमुना तट पर पातालकेतु के भाई तालकेतु को देखा जिसने कि वहाँ पर आश्रम बना लिया था ॥ ६ ॥ वह मायावी दानव मुनि का रूप धारण किये हुए था। अपने पुराने वैर को स्मरण करके वह राजकुमार से बोला ॥ ७ ॥ हे राजकुमार ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो जो मैं कहता हूँ वह करो ! मैं सत्य कहता हूँ तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ न जायेगी ॥ ८ ॥ धर्म की सिद्धि के लिये जो यज्ञ होता है उसको मैं करना चाहता हूँ परन्तु उसकी दक्षिणा मेरे पास नहीं है ॥ ९ ॥ हे वीर ! इसलिये दक्षिणा के निमित्त अपने गले का आभूषण मुझको दो और मेरे आश्रम की रक्षा करो ॥ १० ॥ जब कि मैं जल के अन्दर जलों के स्वामी वरुण देवता को वैदिक वारुण मन्त्रों से प्रजा के हितार्थ ॥११॥ शीघ्रता से पूजूँ। इस प्रकार मुनि रूपी राक्षस के कहने पर राजकुमार ने अपने कण्ठ का आभूषण उसको देकर प्रणामकिया ॥१२॥ और बोला कि आप निर्विघ्न चित्त से जाइये, जब तक मैं यहाँ ही आपके आश्रम के समीप ठहरूँगा ॥ १३ ॥ हे महाभाग ! आपकी आज्ञानुसार मेरे यहाँ ठहरने से आपके लौटने तक कोई बाधा न होगी। हे ब्रह्मन् ! इस बात पर विश्वास करके जो आपके मन में है वह शीघ्र कीजिये ॥ १४ ॥

पुत्र बोले—

उसके ऐसा कहने पर वह मुनि नदी के जल में घुस गया और वह राजकुमार उस मायायुक्त आश्रम की रक्षा करने लगा ॥१५॥ फिर वह तालकेतु जल से निकल कर मदालसा व अन्य घर के लोगों के पास पहुँचकर इस प्रकार कहने लगा ॥

तालकेतु बोला—

मेरे आश्रम के पास तपस्वियों की रक्षा करते हुए वीर कुवलयाश्व का किसी दुष्ट दैत्य से ॥१७॥ यथाशक्ति घोर युद्ध हुआ परन्तु उस मायावी राक्षस ने पाप से एक शूल राजकुमार की छाती में मारा ॥ १८ ॥ मरते समय उस राजकुमार ने अपने कण्ठ का यह आभूषण मुझे दिया तथा शूद्रों और तपस्वियों से उस बन में उसने अग्नि-संस्कार

कृतार्त्तह पाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः ।
नीतः सोऽश्वश्च तेनैव दानवेन दुरात्मना ॥२०॥
एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा ।
यदत्रानन्तरं कृत्यं क्रियतां तदकालिकम् ॥२१॥
हृदयाश्वासनञ्चैतद्गृह्यतां कण्ठभूषणम् ।
नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम् ॥२२॥

पुत्रावूचतुः

इत्युक्त्वोत्सृज्य तद्भूमौ स जगाम यथागतम् ।
निपपात जनः सोऽथ शोकार्त्तो मूर्च्छयातुरः ॥२३॥
तत्क्षणात् चेतनां प्राप्य सर्व्वास्ता नृपयोषितः ।
राजपत्न्याश्च राजा स विलेपुरतिदुःखिताः ॥२४॥
मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम् ।
तत्याजाशु प्रियान् प्राणान् श्रुत्वा च निहतं पतिम् २५
ततस्तथा महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत् ।
यथैव तस्य नृपतेः स्वगेहे समवर्त्तत ॥२६॥
राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्त्रा मदालसाम् ।
प्रत्युवाच जनं सर्व्वं विमृष्य सुस्थमानसः ॥२७॥
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ।
सर्व्वेषामेव संचिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम् ॥२८॥
किं नु शोचामि तनयं किं नु शोचाम्यहं स्नुषाम् ।
विमृष्य कृतकृत्यत्वान्मन्येऽशोच्यावुभावपि ॥२९॥
मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ।
प्राप्तो मे यः सुतो मृत्युं कथं शोच्यः स धीमताम् ३०।
अवश्यं याति यद्देहं तद्द्विजानां कृते यदि ।
मम पुत्रेण सन्त्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् ॥३१॥
इयञ्च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तर्य्येवमनुव्रता ।
कथं नु शोच्या नारीणां भर्त्तुरन्यन्न दैवतम् ॥३२॥
अस्माकं बान्धवानाञ्च तथान्येषां दयावताम् ।
शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्त्रा वियोगिनी ॥३३॥
या तु भर्त्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भाविनी ।
भर्त्तारमनुयातेयं न शोच्यातो विपश्चिताम् ॥३४॥
ताः शोच्या या वियोगिन्यो न शोच्या या मृताः सह।

पाया ॥१९॥ उसने बड़े दुःख से तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से यह बातें कहीं तथा मुझसे भी कहा कि उस घोड़े को भी वही दैत्य ले गया ॥२०॥ यह सब जघन्य कृत्य मुझ निर्दयी ने अपनी आँखों से देखा है। अब उसके बाद की जो क्रिया है वह आप कीजिये ॥ २१ ॥ अब हृदय में धैर्य धारण कीजिये तथा इस कण्ठहार को लीजिये। हम तपस्वियों का सुवर्ण से कोई काम नहीं है ॥ २२ ॥

नाग-पुत्र बोले—

यह कहकर और उस आभूषण को पृथ्वी पर रखकर वह चला गया और जो लोग वहाँ बैठे हुए थे वह शोक से आर्त हो मूर्छित होकर गिर पड़े ॥२३॥ फिर क्षण में ही होश में आकर सब रनिवास की स्त्रियाँ, राजपत्नी और राजा दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥ २४ ॥ मदालसा ने भी उस गले के आभूषण को देखकर और अपने पति के मरण को सुनकर तत्काल अपने प्राणों को छोड़ दिया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर नगर-निवासियों के घर में भी महान् रुदन हुआ और जिस प्रकार राजा के महलमें शोक था उसी प्रकार सर्वत्र शोक छा गया ॥ २६ ॥ पति-वियोग में मदालसा का मरण देखकर स्वस्थ मन होकर राजा प्रजाजनों से बोले ॥ २७ ॥ आप लोग न रोवें, मैं देखता हूँ कि मेरा, आपका तथा इसी प्रकार संसार के सब सम्बन्ध अनिश्चित और निःसार हैं ॥२८॥ मैं किस का शोक करूँ, पुत्र का अथवा पुत्र-बधू का ? मैं तो दोनों को अशोचनीय समझकर अपने को कृतार्थ मानता हूँ ॥ २९॥ मेरी सेवा करते हुए और मेरी आज्ञा से ब्राह्मणों की रक्षा में तत्पर होकर मेरे पुत्र ने मृत्यु पाई, इसलिये क्या वह शोक करने योग्य है ? जो देह कि निश्चय नाशवान् है वह यदि ब्राह्मणों के निमित्त मेरे पुत्रने छोड़ी तो निश्चय ही कल्याणकारी हुआ ॥ ३१ ॥ और यह उत्तम कुल में उत्पन्न, स्वामी में रत, जो पति को ही अनन्य देवता समझती थी ऐसी ... क्या सोच करने योग्य है ? ॥३२॥ यह यदि ... से वियोगिनी होकर जीवित रहती तो हम से, बान्धवों से, तथा अन्य दयालुओं से शोचनीय ... जाती ॥३३॥ इस भाविनी का बुद्धिमानों को शोक न करना चाहिये क्योंकि यह पति का मरण सुन कर उसी क्षण अपने स्वामी के पीछे चली गई ॥ — स्त्री का शोक करना चाहिये जो वियोगिनी होगई हो। इसके विपरीत जो पतिके साथही मृत्युको

भर्त्तुर्व्वियोगस्त्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ॥३५॥
दातारं सर्व्वसौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः ।
लोकयोः का हि भर्त्तारं नारी मन्येत मानुषम्॥३६॥
नासौ शोच्यो न चैवेयं नाहं तज्जननी न च ।
त्यजता ब्राह्मणार्थाय प्राणान् सर्व्वे स्मतारिताः३७॥
विप्राणां मम धर्म्मस्य गतः स हि महामतिः ।
आनृण्यमर्द्धभुक्तस्य त्यागाद्देहस्य मे सुतः ॥३८॥
मातुः सतीत्वं मद्वंश वैमल्यं शौर्य्यमात्मनः ।
संग्रामे सन्त्यजन् प्राणान् नात्यजद्द्विजरक्षणे॥३९॥

पुत्रावूचतुः

ततः कुवलयाश्वस्य माता भर्त्तुरनन्तरम् ।
श्रुत्वा पुत्रवधं तादृक् प्राह दृष्ट्वा तु तं पतिम् ॥४०॥

मातोवाच

न मे मात्रा न मे स्वस्रा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी ।
श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया ॥४१॥
शोचतां बान्धवानां ये निश्वसन्तोऽतिदुःखिताः ।
म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथाप्रजा ४२॥
संग्रामे युध्यमाना येऽभीता गोद्विजरक्षणे ।
क्षुण्णा शस्त्रैर्विपद्यन्ते त एव भुवि मानवाः ॥४३॥
अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषाञ्च पराङ्मुखम् ।
यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः ॥४४॥
गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा ।
यदारिविजयी वा स्यात् संग्रामे वा हतः सुतः ॥४५॥

पुत्रावूचतुः

ततः स राजा संस्कारं पुत्रपत्नीमलम्भयत् ।
निर्गम्य च वहिः स्नातो ददौ पुत्राय चोदकम्॥४६॥
तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात् ।
राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयान्मधुरं वचः ॥४७॥
गच्छ भूपालपुत्र त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया ।
कार्य्यं चिराभिलषितं त्वय्यत्राविचले स्थिते ॥४८॥

होगई हो उसका सोच नहीं करना चाहिये। इस को धन्य है, कारण इसने पतिके वियोग का अनुभव ही नहीं किया ॥ ३५ ॥ स्वामी इस लोक तथा परलोक में सब सुख का देने वाला है । वह स्त्री क्या जो पति को साधारण मनुष्य समझे ॥ ३६ ॥ अपने पुत्र का मुझको तथा उसकी माता को शोक नहीं करना चाहिये। इसने तो ब्राह्मणों की रक्षा में प्राण त्याग कर हम सबको तार दिया है ॥ ३७ ॥ उस महामति मेरे पुत्र ने मेरे धर्म तथा ब्राह्मणों की रक्षा के निमित्त उस देह को त्यागा है जिसे कि काल हर समय आधा मुख में रखता है ॥ ३८ ॥ मेरे वंश में माता का सतीत्व भी निर्मल है कि जिसके शूरवीर पुत्र ने संग्राम में प्राणों को छोड़ दिया परन्तु ब्राह्मणोंकी रक्षा करना न छोड़ा ॥३९॥

नागपुत्र बोले—

फिर पति के बाद कुवलयाश्व की माता पुत्र का मरण सुनकर अपने पति की ओर देख कर बोली ॥ ४० ॥

माता बोली—

हे राजन्! न तो मेरी माता और न मेरी सास ही ने इतना यश पाया जितना कि मैंने मुनियों की रक्षा करते हुए अपने पुत्र के मरण को सुनकर पाया ॥ ४१ ॥ शोक तो उन पुत्रों के लिये करना चाहिये जो रोग से दुखित होकर मरते हैं, ऐसे पुत्रों की माता का सन्तान उत्पन्न करना वृथा ही है ॥४२॥ संग्राम में युद्ध करता हुआ जो निडर हो कर गो ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त तीक्ष्ण शस्त्र से बध को प्राप्तहो वह मनुष्य ॥४३॥ और जो ज़रूरत वाले अपने मित्रों तथा वैरियों को भी विमुख न करे, ऐसे वीर पुत्र से पिता पुत्रवान् तथा माता पुत्रवती होती है ॥ ४४ ॥ प्रसव में जो स्त्रियाँ पीड़ा उठाती हैं वह तब ही सफल होती हैं जबकि युद्ध में उनके पुत्र शत्रु को जीतें अथवा रणस्थल में ही मृत्यु को प्राप्त हों ॥ ४५ ॥

नागपुत्र बोले—

फिर राजा शत्रुजितने अपनी पुत्रबधू मदालसा का मृत-संस्कार किया तथा नगर से बाहर जाकर स्नान करके अपने पुत्र को तिलाञ्जलि दी ॥ ४६ ॥ तालकेतु ने भी उसी यमुना जल से निकल कर राजकुमार से विनय पूर्वक मीठी वाणी से कहा ॥ ॥ ४७ ॥ हे राजकुमार ! तुम जाओ, तुमसे मैं कृतकृत्य हुआ, और तुम्हारे यहाँ अचल होकर रहने से मेरी पुरानी मनोवांछा पूर्ण हुई ॥ ४८ ॥

वारुणं यज्ञकार्य्यञ्च जलेशस्य महात्मनः।
मन्मायासाधितं सर्व्वं यन्ममासीदभीप्सितम् ॥४६॥
प्रणिपत्य स तं प्रायाद्राजपुत्त्रः पुरं पितुः।
समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलविक्रमम् ॥५०॥

महात्मा वरुण का वारुण-यज्ञ जिसको कि करने की मेरी अभिलाषा थी, तुम्हारी कृपा से वह मैंने पूर्ण किया ॥ ४६ ॥ वह राजकुमार उसको प्रणाम करके तथा अपने घोड़े पर चढ़कर जो कि वेग में गरुड़ और वायु के समान था अपने पिताके नगर की ओर चला ॥ ५० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसा-वियोग नाम बाईसवां अध्याय समाप्त।

तेईसवां अध्याय

पुत्रावूचतुः
स राजपुत्त्रः सम्प्राप्य वेगादात्मपुरं ततः।
पित्रोविवन्दिषुः पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ॥ १ ॥
ददर्श जनमुद्विग्नमप्रहृष्टमुखं पुरः।
पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनं ततः ॥ २ ॥
अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्या दिष्ट्येतिवादिनम्।
परिष्वजन्तमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥ ३ ॥
चिरं जीवोरुकल्याण हतास्ते परिपन्थिनः।
पित्रोः प्रह्लादय मनस्तथास्माकमकण्टकम् ॥ ४ ॥
इत्येवंवादिभिः पौरैः पुरः पृष्ठे च संवृतः।
तत्क्षणप्रभवानन्दः प्रविवेश पितुर्गृहम् ॥ ५ ॥
पिता च तं परिष्वज्य माता चान्ये च बान्धवाः।
चिरं जीवेति कल्याणीददुस्तस्मै तदाशिषः ॥ ६ ॥
प्रणिपत्य ततः सोऽथ किमेतदिति विस्मितः।
पप्रच्छ पितरं तात सोऽस्मै सम्यक् तदुक्तवान् ॥ ७ ॥
स भार्य्यां तां मृतां श्रुत्वा हृदयेष्टां मदालसाम्।
पितरौ च पुरो दृष्ट्वा लज्जाशोकाब्धिमध्यगः ॥ ८ ॥
चिन्तयामास सा बाला मां श्रुत्वा निधनं गतम्।
तत्याज जीवितं साध्वी धिङ्मां निष्ठुरमानसम् ॥ ६ ॥
नृशंसोऽहमनार्य्योऽहं विना तां मृगलोचनाम्।
मत्कृते निधनं प्राप्तां यज्जीवाम्यतिनिर्घृणः ॥१०॥
पुनः स चिन्तयामास परिसंस्तभ्य मानसम्।

नागपुत्र बोले—
वह राजकुमार पिता को प्रणाम करने के लिये तथा मदालसा को देखने की इच्छा से शीघ्र ही अपने नगर में आया ॥१॥ उसने देखा कि नगर के निवासी उद्विग्न हो रहे हैं तथा उनके मुख पर विषाद के चिह्न हैं। परन्तु राजकुमार को देखकर वे प्रसन्न-मुख होगये ॥ २ ॥ लोग एक दूसरे से आँखों में बातें कर रहे थे और "कल्याण हो" "कल्याण हो" ऐसा कह रहे थे। वे एक दूसरे से मिलकर कौतूहलवश हो रहे थे ॥३॥ वे राजकुमार से कहते थे कि तुम चिरञ्जीव रहो तथा तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे शत्रुओं का नाश हो। पिता को प्रसन्न करके हमको निष्कण्टक कीजिये ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहते हुए नगर निवासी उनको आगे, पीछे तथा चारों ओर से घेरे हुए थे और वह सब को तत्क्षण आनन्दित करता हुआ पिता के घर को गया ॥ ५ ॥ उसको पिता, माता तथा अन्य बांधवों ने छाती से लगाया और चिरंजीव रहो, तुम्हारा कल्याण हो इस प्रकार कहकर आशीर्वाद दिया ॥ ६ ॥ इसके बाद वह प्रणाम करके पिता से पूछने लगा कि यह उदासी क्यों छाई हुई है ? पिता ने उसको भली भांति सब बात बतलाई ॥ ७ ॥ वह अपनी प्राणेश्वरी पत्नी मदालसा का मरण सुनकर तथा माता पिता और नगरवासियों को देखकर लज्जा और शोक के सागर में डूब गया ॥ ८ ॥ वह सोचने लगा कि उस साध्वी स्त्री ने मेरी मृत्यु के विषय में सुनकर अपने जीवन को त्याग दिया, मुझ निष्ठुर-हृदयको धिक्कार है ॥६॥ मैं क्रूर हूँ, कठोर हूँ और उस मृगनयनीके बिना जिसने मेरे लिये अपने प्राणोंको त्यागदिया मेरा जीवित रहना अति निर्घृण है॥१०॥ वह सोचता हुआ कभी अपने मनको धैर्य देता

मोहोद्गमपास्याशु निश्वस्योच्छ्वस्य चातुरः॥११॥
मृतेति सा तन्निमित्तं त्यजामि यदि जीवितम्।
किं मयोपकृतं तस्याः श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम्॥१२॥
यदि रोदिमि वा दीनो हा प्रियेति वदन् मुहुः।
तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयं हि पुरुषाः किल ॥१३॥
अथ शोकजड़ो दीनो स्रजा हीनो मलान्वितः।
विपक्षस्य भविष्यामि ततः परिभवास्पदम् ॥१४॥
मयारिशातनं कार्य्यं राज्ञः शुश्रूषणं पितुः।
जीवितं तस्य चायत्तं सन्त्याज्यं तत् कथं मया॥१५॥
किन्त्वत्र मन्ये कर्त्तव्यस्त्यागो भोगस्य योषितः।
स चापि नोपकाराय तन्वङ्ग्याः किन्तु सर्व्वथा॥१६॥
मया नृशंस्यं कर्त्तव्यं नोपकार्य्यपकारि च।
या मदर्थेऽत्यजत् प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदं मम ॥१७॥

पुत्रावूचतुः

इति कृत्वा मतिं सोऽथ निष्पाद्योदकदानिकम्।
क्रियाश्चानन्तरं कृत्वा प्रत्युवाच ऋतध्वजः ॥१८॥

ऋतध्वज उवाच

यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद्भार्य्या मदालसा।
अस्मिन् जन्मनि नान्या मे भवित्री सहचारिणी॥१९॥
तामृते मृगशावाक्षीं गन्धर्व्वतनयामहम्।
न भोक्ष्ये योषितं काञ्चिदिति सत्यं मयोदितम्॥२०॥
सद्धर्म्मचारिणीं पत्नीं तां मुक्त्वा गजगामिनीम्।
काञ्चिन्नाङ्गीकरिष्यामीत्येतत् सत्यं मयोदितम्॥२१॥

पुत्रावूचतुः

परित्यज्य च स्त्रीभोगान् तात सर्व्वांस्तया विना।
क्रीड़न्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसम्पदा ॥२२॥
एतत् तस्य परं कार्य्यं तात तत् तेन शक्यते।
कर्त्तुमत्यर्थदुष्प्राप्यमीश्वरैः किमुतेतरैः ॥२३॥

जड़ उवाच

इति वाक्यं तयोः श्रुत्वा विमर्षमगमत् पिता।
विमृश्य चाह तौ पुत्रौ नागराट् प्रहसन्निव ॥२४॥

और कभी मोहवश होकर आतुरता से लम्बी २ श्वास लेता ॥ ११ ॥ वह मेरे लिये मर गई यदि मैं भी अपने प्राणों का त्याग करता हूँ तो इससे उसका कुछ उपकार न होगा और इससे स्त्रियों में कुछ प्रशंसा भी न होगी ॥ १२ ॥ यदि दीन होकर "हा प्रिये, हा प्रिये" कह कर रोता हूँ तो इसमें मेरी प्रशंसा नहीं है कारण—हम पुरुष हैं ॥ १३ ॥ यदि दुःख से मैं जड़ अथवा दीन हो जाऊँ और श्रीहीन होकर मलिन हो जाऊँ तो शत्रुपक्ष द्वारा दबाया जाऊँगा ॥ १४ ॥ शत्रुओं का नाश तथा राजा जो पिता हैं उनकी सेवा मुझको करना चाहिये। इसलिये उनके जीते जी उनको छोड़कर कैसे जाऊँ ?॥१५॥ किन्तु अन्य स्त्रियों से भोग के त्याग को मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ, यद्यपि उस सुन्दरी का मैं इससे कोई उपकार नहीं कर रहा हूँ ॥ १६ ॥ मैं बड़ा क्रूर हूँ, उपकारी न होकर मैं अपकारी हूँ। जिसने मेरे लिये प्राणों को छोड़ दिया उसके लिये ये मेरे प्राण भी तुच्छ हैं ॥ १७ ॥

नागपुत्र बोले—

यह मत स्थिर करके उसने मदालसा को तिलांजलि दी और इसके अनन्तर क्रिया-कर्म कर के ऋतध्वज ने कहा ॥१८॥

ऋतध्वज बोले—

यदि इस जन्म में सुन्दरी मदालसा मेरी स्त्री न रही तो अब कोई दूसरी स्त्री मैं ग्रहण न करूँगा ॥१९॥ मैं यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि उस मृगनयनी, गन्धर्व-कन्या मदालसा के मरने के बाद मैं अब किसी दूसरी स्त्री से भोग न करूँगा ॥ २० ॥ सहधर्मिणी, गजगामिनी उस पत्नी को छोड़कर अब मैं किसी स्त्री को अङ्गीकार न करूँगा, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥२१ ॥

नागपुत्र बोले—

मदालसा के न रहने पर उस शीलसम्पन्न राजकुमार ने स्त्री-भोग तथा समान अवस्था वालों के साथ खेल कूद आदि सब छोड़ दिया ॥ २२ ॥ हे पिता! उसके इस गुरुतर कार्य को कौन करने को समर्थ है। इस दुष्प्राप्य कार्य को ईश्वर के अतिरिक्त कौन कर सकता है ? ॥ २३ ॥

सुमति बोले—

उन पुत्रों से इस बात को सुनकर नागराज उनके पिता को इससे क्रोध हुआ और उन्होंने मुस्कराते हुए अपने लड़कों से कहा ॥२४॥

नागराडश्वतर उवाच

यद्यशक्यमिति ज्ञात्वा न करिष्यन्ति मानवाः।
कर्म्मण्युद्यमसुद्योगहान्या हानिस्ततः परम् ॥२५
आरभेत नरः कर्म्म स्वपौरुषमहापयन्।
निष्पत्तिः कर्म्मणो दैवे पौरुषे च व्यवस्थिता ॥२६॥
तस्मादहं तथा यत्नं करिष्ये पुत्रकाविताः।
तपश्चर्य्यां समास्थाय यथैतत् साध्यते चिरात् ॥२७॥

जड़ उवाच

एवमुक्त्वा स नागेन्द्रः प्लक्षावतरणं गिरेः।
तीर्थं हिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥२८॥
तुष्टाव गीर्भिश्च ततस्तत्र देवीं सरस्वतीम्।
तन्मना नियताहारो भूत्वा त्रिसवनाप्लुतः ॥२९

अश्वतर उवाच

जगद्धात्रीमहं देवीमारिराधयिषुः शुभाम्।
स्तोष्ये प्रणम्य शिरसा ब्रह्मयोनिं सरस्वतीम्॥३०॥
सदसद्देवि यत् किञ्चिन्मोक्षवच्चार्थवत् पदम्।
तत् सर्व्वं त्वय्यसंयोगं योगवद्देवि संस्थितम् ॥३१
त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं देवि संस्थितं परमाणुवत् ॥३२॥
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वञ्चैतत् क्षरात्मकम्।
दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः ३३
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः।
ओंकाराक्षरसंस्थानं यत्तु देवि स्थिरास्थिरम् ॥३४॥
तत्र मात्रात्रयं सर्व्वमस्ति यद्देवि नास्ति च।
त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ॥३५॥
त्रीणि ज्योतींषि वर्णाश्च त्रयो धर्म्मागमस्तथा।
त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो वेदास्तथाश्रमाः ॥३६॥
त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः।
एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ॥३७॥
विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः।
सोमसंस्था हविःसंस्थाः पाकसंस्थाश्च सप्त याः॥३८॥
तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः।
अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्द्धमात्रान्वितं परम् ॥३९॥

नागराज अश्वतर बोले—

यदि लोग यह मानकर कि यह काम करने में हम असमर्थ हैं कार्य ही न करें तो उनके कर्म का उद्योग दिन पर दिन कम होगा ॥ २५ ॥ इसलिये मनुष्य अपने पौरुष के अनुसार कर्म करे क्योंकि पौरुष से ही कर्म की निष्पत्ति व्यवस्थित की गई है ॥२६॥ हे पुत्रो ! इसलिये मैं तप में स्थित होकर ऐसा यत्न करूंगा कि जिससे ये कार्य शीघ्र ही सिद्ध हो जाय ॥ २७ ॥

जड़ (सुमति) ने कहा—

नागराज अश्वतर यह कहने के बाद प्लक्ष पर्वत से उतर कर हिमालय पर्वत के तीर्थ पर जा कठिन तपस्या करने लगे ॥ २८ ॥ और स्तुति, प्रार्थना आदि से वहाँ देवी सरस्वती को संतुष्ट किया और अपना मन उनके चरणों में लगाकर नियमित आहार करना आरम्भ किया ॥२९॥

अश्वतर नागराज बोले—

मैं जगत की माता शुभ देवी की आराधना करता हूँ और ब्रह्मयोनि सरस्वती को शिर से प्रणाम कर उनकी स्तुति करता हूँ ॥३०॥ हे देवि ! सत्, असत्, मोक्ष, अर्थ संयोग और योग जो कुछ है वह सब आपसे ही स्थित है ॥ ३१ ॥ हे देवि ! आप परम अक्षर हैं जिसमें सर्व सृष्टिमात्र स्थित है और हे देवि ! उस परम अक्षर में संसार परमाणुवत् स्थित है ॥३२॥ और अक्षर ब्रह्म और क्षर विश्व में आप उसी प्रकार स्थित हैं जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि और पृथ्वी में रेणु ॥३३॥ तथा इसी तरह आपमें ब्रह्म और सम्पूर्ण जगत् भी स्थित है। आप में ही ओंकार भी स्थित है तथा आपही चल और अचल हैं ॥३४॥ हे देवि ! तीन मात्रायें आपमें ही हैं। तथा तीन लोक, तीन वेद, तीन विद्या और तीन अग्नि ॥ ३५ ॥ तीन ज्योतिष, तीन वर्ण, धर्मशास्त्र, तीन गुण, तीन शब्द, वेद तथा आश्रम ॥३६॥ तीन काल तथा अवस्थायें, पितर तथा दिन रात्रि और तीन मातायें। हे देवि सरस्वती ! आप का ही रूप हैं ॥ ३७॥ विभिन्न दर्शियों के लिये आप आद्य, ब्रह्म और सनातन हैं। चन्द्रमा, हविष्य और पाक आदि जो सात उच्चारण ॥ ३८ ॥ ब्रह्मवादियों द्वारा किये जाते हैं वह सब आप ही हैं। आपका स्थान अनिश्चित है तथा आप अर्द्धमात्रा से युक्त तथा उससे परे हैं ॥३९॥ आप विकाररहित

अविकार्य्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम् ।
तवैतत् परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम् ।
न चास्येन च तज्जिह्वा-ताम्रोष्ठादिभिरुच्यते ॥४०॥
इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्राकौं ज्योतिरेव च ।
विश्वासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् ॥४१॥
सांख्यवेदान्तवादोक्तं वहुशाखास्थिरीकृतम् ।
अनादिमध्यनिधनं सदसन्न सदेव यत् ॥४२॥
एकन्त्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाश्रितम् ।
अनाख्यं षड्गुणाख्यञ्च वर्गाख्यं त्रिगुणाश्रयम् ४३
नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभविकं परम् ।
सुखासुखं महासौख्य-रूपं त्वयि विभाव्यते ।४४॥
एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलंच यत् ।
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥४५॥
येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
ये वा स्थूला ये च सूक्ष्मातिसूक्ष्माः ।
ये वा भूमौ येऽन्तरीक्षेऽन्यतो वा
तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धिः ॥४६॥
यच्चामूर्त्तं यच्च मूर्त्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकंच किंचित् ।
यद्दिव्यस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा
त्वत्सम्बन्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ॥४७॥
एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती ।
प्रत्युवाच महात्मानं नागमश्वतरं ततः ॥४८॥

सरस्वत्युवाच

वरं ते कम्वलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप ।
तदुच्यतां प्रदास्यामि यत् ते मनसि वर्त्तते ॥४६॥

अश्वतर उवाच

सहायं देहि देवि त्वं पूर्व्वं कम्वलमेव मे ।
समस्तस्वरसम्वन्धमुभयोः सम्प्रयच्छ च ॥५०॥

सरस्वत्युवाच

सप्त स्वरा ग्रामरागाः सप्त पन्नगसत्तम ।
गीतकानि च सप्तैव तावतीश्चापि मूर्च्छनाः ॥५१॥
तालाश्चैकोनपंचाशत् तथा ग्रामत्रयंच यत् ।

अक्षय, दिव्य और परिणाम रहित हैं । अतः मैं आपके इस परम रूप का वर्णन नहीं कर सकता, अगर मेरी जिह्वा व होठ तांबेके हों तो भी मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ ॥४०॥ इन्द्र, वसु, ब्रह्मा, चंद्रमा, सूर्य, ज्योति भी आपके ही रूप हैं । समस्त विश्व का स्थान आप में है, आप विश्वरूप, विश्वेश तथा परमेश्वर हैं ॥४१॥ सांख्य, वेदांत और वेदों की शाखाओं ने यह स्थिर किया है । आप आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं और जिस प्रकार आप सत् से रहित हैं उसी प्रकार असत् से भी ॥ आप एक तथा अनेक हैं और एक नहीं भी हैं, संसार का भेद आप में आश्रित है । आप अवर्ण-नीय हैं तथा षट्गुण, चारों वर्ग और त्रिगुण से युक्त हैं ॥ ४३ ॥ आप नाना शक्ति से संपन्न तथा एक शक्ति वैभव-ा क हैं । सुख, दुःख और महा-सुख आदि का रूप आपमें ही स्थित है ॥ ४४ ॥ हे देवि ! संपूर्ण सृष्टि आप ही में व्याप्त है तथा आप अद्वैत हैं और द्वैत की व्यवस्था भी आप में ही है ॥ ४५ ॥ जो अर्थ, नित्य, अनित्य, स्थूल, सूक्ष्म अति सूक्ष्म आदि हैं या जो कुछ पृथ्वी में अथवा आकाश में है उसकी उत्पत्ति आप ही से है ॥४६॥ जो कुछ मूर्त्त, अमूर्त्त, समस्त अथवा सब प्राणियों में एक और अनेक है और जो आकाश, पाताल, और पृथ्वी आदि है अथवा स्वर और व्यंजन इस सवका आपसे संवन्ध है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार स्तुति किये जाने पर विष्णु की जिह्वा देवी सरस्वती महात्मा नागराज अश्वतर से बोलीं ॥४८॥

सरस्वती बोली—

हे कम्वलके भ्राता नागराज ! तुम्हाराकल्याण हो । जो कुछ तुम्हारी अभिलाषा है वह माँगो, मैं तुमको वर दूँगी ॥४६॥

अश्वतर बोले—

हे देवि ! जिस प्रकार तुमने पहिले कम्बल को सहायता दी थी उसीप्रकार मेरी भी सहायता करो मुझको सम्पूर्ण स्वर और सम्वन्धों का ज्ञान प्रदान करो ॥ ५० ॥

सरस्वती बोली—

हे नागराज ! सातों स्वर, सातों ग्राम, राग, सातों गीत और सातों मूर्च्छना ॥ ५१ ॥ उनंचास ताल, तीन ग्राम, जैसे कि कम्बल को प्राप्त हैं वैसे

एतत् सर्व्वं भवान् गाता कम्बलश्च तथानघ ॥५२॥
ज्ञास्यसे मत्प्रसादेन भुजगेन्द्रापरं तथा।
चतुर्व्विधं पदं तालं त्रिप्रकारं लयत्रयम् ॥५३॥
यतित्रयं तथा तोद्यं मया दत्तं चतुर्व्विधम्।
एतद्भवान् मत्प्रसादात् पन्नगेन्द्रापरंच यत् ॥५४॥
अस्यान्तर्गतमायत्तं स्वरव्यञ्जनसम्मितम्।
तदशेषं मया दत्तं भवतः कम्बलस्य च ॥५५॥
तथा नान्यस्य भूर्लोके पाताले चापि पन्नग।
प्रणेतारौ भवन्तौ च सर्व्वस्यास्य भविष्यतः।
पाताले देवलोके च भूर्लोके चैव पन्नगौ ॥५६॥

जड़ उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सर्व्वजिह्वा सरस्वती।
जगामादर्शनं सद्यो नागस्य कमलेक्षणा ॥५७॥
तयोश्च तद्यथावृत्तं भ्रात्रोः सर्व्वमजायत।
विज्ञानमुभयोरग्र्यं पदतालस्वरादिकम् ॥५८॥
ततः कैलासशैलेन्द्र-शिखरस्थितमीश्वरम्।
गीतकैः सप्तभिर्नागौ तन्त्रीलयसमन्वितौ ॥५९॥
आरिराधयिषू देवमनङ्गाङ्गहरं हरम्।
प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहतवाकलौ।
प्रातर्निशायां मध्याह्ने सन्ध्ययोश्चापि तत्परौ ॥६०॥
तयोः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः।
तुतोष गीतकैस्तौ च प्राहेशो गृह्यतां वरः ॥६१॥
ततः प्रणम्याश्वतरः कम्बलेन समं तदा।
व्यज्ञापयन्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् ॥६२॥
यदि नौ भगवान् प्रीतो देवदेवस्त्रिलोचनः।
ततो यथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छ नौ ॥६३॥
मृता कुवलयाश्वस्य पत्नी देव मदालसा।
तेनैव वयसा सद्यो दुहितृत्वं प्रयातु मे ॥६४॥
जातिस्मरा यथा पूर्व्वं तद्वत्कान्तिसमन्विता।
योगिनी योगमाता च मद्गेहे जायतां भव ॥६५॥

महादेव उवाच

यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ सर्व्वमेतद्भविष्यति।
मत्प्रसादादसन्दिग्धं शृणु चेदं भुजङ्गम ॥६६॥
श्राद्धे तु समनुप्राप्ते मध्यमं पिण्डमात्मना।

ही तुमको होंगे ॥ ५२ ॥ हे नागराज ! मेरे प्रसादसे तुमको चारों पद, तीनों ताल तथा तीनों लयों का भी ज्ञान प्राप्त होगा ॥५३॥ हे नागराज ! तीनों यति और चारों तोद्यक भी मैंने तुमको दिये, तथा मेरे प्रसाद से और भी ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर जो स्वर और व्यंजन का विस्तार है तथा जिसको मैंने तुम्हारे भाई कम्बल को दिया है वह तुम्हें प्राप्त होगा ॥ ५५ ॥ तथा इस गान-विद्या में जिस प्रकार तुम दोनों भाई श्रेष्ठ होगे उसप्रकार भूलोक, पाताल, स्वर्ग तथा नागलोक में कोई दूसरा न होगा ॥ ५६ ॥

सुमति (जड़-पुत्र) बोले—

यह कहकर वह सर्वजिह्वा सरस्वती शीघ्र ही कमल-नयन नागराज में प्रवेश करगई ॥ ५७ ॥ वे दोनों भाईभी पद, ताल और स्वर आदिके विज्ञान में सर्वश्रेष्ठ हुए ॥५८॥ फिर कैलाश पर्वत पर स्थित महादेवजी की सातों गीतों के साथ जो तन्त्री और लय से युक्त थे, दोनों नागों ने ॥ ५९ ॥ कामनाशी हर की आराधना की और प्रातःकाल, दुपहर और सन्ध्या के समय तत्पर रहकर परम यत्न से दोनों ने शिव को पूजा ॥६०॥ उन दोनों के बहुत काल तक स्तुति करने पर महादेवजी उनके गीत-वाद्य से सन्तुष्ट होकर बोले कि मुझसे वर ग्रहण करो ॥६१॥ तब नागराज अश्वतर और कम्बल ने नीलकण्ठ, उमापति महादेवजी को प्रणामकर कहा ॥ ६२ ॥ हे देवदेव ! हे त्रिलोचन ! यदि आप हम दोनों पर प्रसन्न हैं तो जो हमारी इच्छा है हमको वर दीजिये ॥ ६३ ॥ हे देव ! कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा की मृत्यु हो चुकी है, उसी अवस्था वाली शीघ्र मेरे एक पुत्री हो ॥ ६४ ॥ वह सुन्दरी योगिनी अथवा योगमाता जो कुछ भी थी, उसी कान्ति और रूप में मेरे घर में प्रगट होवें ॥६५॥

महादेव बोले—

हे नागराज ! जो कुछ तुमने कहा वह मेरे प्रसाद से निश्चयही होगा तथा हे सर्पराज ! सुनो ॥ ६६ ॥ हे नागराज ! श्राद्ध के दिन मध्यम पिंड को

भक्षयेथाः फणिश्रेष्ठ शुचिः प्रयतमानसः ॥६७॥
भक्षिते तु ततस्तस्मिन् भवतो मध्यमात् फणात्।
समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथा मृता ॥६८॥
कामञ्चेममभिध्याय कुरु त्वं पितृतर्पणम्।
तत्क्षणादेव सा सुभ्रूः श्वसतो मध्यमात् फणात्।
समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथा मृता ॥६९॥
एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्रणिपत्य महेश्वरम्।
रसातलं पुनः प्राप्तौ परितोषसमन्वितौ ॥७०॥
तथा च कृतवान् श्राद्धं स नागः कम्बलानुजः।
पिण्डश्च मध्यमं तद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ॥७१॥
तञ्चापि ध्यायतः कामं ततः सा तनुमध्यमा।
जज्ञे निश्वसतः सद्यस्तद्रूपा मध्यमात् फणात्॥७२॥
न चापि कथयामास कस्यचित् स भुजङ्गमः।
अन्तर्गृहे तां सुदतीं स्त्रीभिर्गुप्तामधारयत् ॥७३॥
तौ चानुदिनमागम्य पुत्रौ नागपतेः सुखम्।
ऋतध्वजेन सहितौ चिक्रीड़ातेऽमराविव ॥७४॥
एकदा तु सुतौ प्राह नागराजो मुदान्वितः।
यन्मया पूर्व्वमुक्तन्तु क्रियते किं न तत् तथा ॥७५॥
स राजपुत्रो युवयोरुपकारी ममान्तिकम्।
कस्मान्नानीयते वत्सावुपकाराय मानदः ॥७६॥
एवमुक्तौ ततस्तेन पित्रा स्नेहवता तु तौ।
गत्वा तस्य पुरं सख्यू रेमाते तेन धीमता ॥७७॥
ततः कुवलयाश्वं तौ कृत्वा किञ्चित् कथान्तरम्।
अब्रूतां प्रणयोपेतं स्वगेहगमनं प्रति ॥७८॥
तावाह नृपपुत्त्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम्।
धन-वाहन-वस्त्रादि यन्मदीयं तदेव वाम् ॥७९॥
यत्तु वां वाञ्छितं दातुं धनं रत्नमथापि वा।
तद्दीयतां द्विजसुतौ यदि वां प्रणयो मयि ॥८०॥
एतावताहं दैवेन वञ्चितोऽस्मि दुरात्मना।
यद्भवद्भ्यां ममत्वं नो मदीये क्रियते गृहे ॥८१॥
यदि वां मत्प्रियं कार्य्यमनुग्राह्योऽस्मि वां यदि।
तद्धने मम गेहे च ममत्वमनुकल्प्यताम् ॥८२
युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वकम्।
एतत् सत्यं विजानीतं युवां प्राणा बहिश्चराः ॥८३॥

शुद्ध और पवित्र मन से भक्षण कर लेना ॥ ६७ ॥ उसको खाते ही तुम्हारे मध्यम फण से उसी रूप की स्त्री उत्पन्न होगी जिस रूप की कि मदालसा थी ॥ ६८ ॥ इस अभिलाषा को ध्यान में रखकर तुम पिता का तर्पण करो तो उसी क्षण तुम्हारे मध्यम फण से श्वास लेते ही वह सुन्दरी जिस रूप में मृत मदालसा थी उत्पन्न होगी ॥ ६९ ॥ यह सुनकर वे दोनों महादेवजीको प्रणाम करके संतुष्ट हो रसातल को चले गये ॥७०॥ तथा उन कम्बल के छोटे भाई नागराज अश्वतर ने श्राद्ध किया और मध्यम पिण्डको उसी प्रकार भक्षण करलिया जिस प्रकार शिवजी ने कहा था ॥ ७१ ॥ तथा उस का ध्यान किया, फिर वह मदालसा के समान सुन्दरी शीघ्र ही उनके मध्यम फण से श्वास लेते ही प्रगट होगई ॥७२॥ उन नागराज ने किसी से इस बात को न कहा और उस सुन्दरीको गुप्त रूप से अन्तःपुर में रक्खा ॥७३॥ वे दोनों नागपुत्र नित्य प्रति वहाँ जाकर ऋतध्वज के साथ देवताओं की तरह क्रीड़ा करते थे ॥७४॥ एक दिन उन नागराज ने प्रसन्न होकर अपने पुत्रों से कहा कि जो कुछ मैंने तुमसे करने को कहा था वह तुमने अब तक क्यों न किया ॥ ७५॥ हे पुत्रो ! अपने उपकारी उस राजकुमार को मेरे पास क्यों नहीं लाये, ऐसे मान देने वाले का उपकार करना चाहिये ॥७६ ॥ पिताके स्नेह पूर्वक ऐसा कहने पर वे दोनों अपने मित्र के नगर को गये और उसके साथ खेल कूद करने लगे ॥ ७७ ॥ फिर उन्होंने कुछ कथान्तर करके कुवलयाश्व से प्रेम पूर्वक अपने घर चलने को कहा ॥७८ ॥ इसपर उस राजकुमार ने उन दोनोंसे कहा कि यह घर भी निश्चय ही आपका है तथा धन, वाहन, वस्त्र आदि जो कुछ मेरे हैं वे आपके ही हैं ॥७९॥ हे नागपुत्रो ! जो कुछ आप धन, रत्न आदि देना चाहें वह यदि आप मुझसे प्रेम करते हैं तो दीजिये ॥८०॥ मुझ दुरात्मा को दैव ने इतना वञ्चित रक्खा कि आपकी मेरे घर पर ममता न हुई ॥८१॥ यदि आप ऐसा कार्य करके जो मुझको प्रिय हो मुझे अनुग्रहीत करना चाहते हैं तो मेरे घर और धन को अपना समझिये ॥८२ ॥ आपका घर मेरा है और मेरा आपकाहै। हे नागपुत्रो ! यह सत्य जानिये कि आप मेरे प्राण हैं ॥ ८३ ॥ हे नाग-

पुनर्नैवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विजसत्तमौ।
मत्प्रसादपरौ प्रीत्या शाधितौ हृदयेन मे ॥८४॥
ततः स्नेहार्द्रवदनौ तावुभौ नागनन्दनौ।
ऊचतुर्नृपतेः पुत्त्रं किंचित्प्रणयकोपितौ ॥८५॥
ऋतध्वज न सन्देहो यथैवाह भवानिदम्।
तथैव चास्मन्मनसि नात्र चिन्त्यमतोऽन्यथा ॥८६॥
किन्त्वावयोः स्वयं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना।
द्रष्टुं कुवलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः ८७॥
ततः कुवलयाश्वोऽसौ समुत्थाय वरासनात्।
यथाह तातेति वदन् प्रणाममकरोद्भुवि ॥८८॥

कुवलयाश्व उवाच

धन्योऽहमतिपुण्योऽहं कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यत् तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रवणं मनः ॥८९॥
तदुत्तिष्ठत गच्छामस्तामाज्ञां क्षणमप्यहम्।
नातिक्रान्तुमिहेच्छामि पद्भ्यां तस्य शपाम्यहम् ॥९०॥

जड़ उवाच

एवमुक्त्वा ययौ सोऽथ सह ताभ्यां नृपात्मजः।
प्राप्तश्च गोमतीं पुण्यां निर्गम्य नगराद्बहिः ॥९१॥
तन्मध्येन ययुस्ते च नागेन्द्रनृपनन्दनाः।
मेने च राजपुत्त्रोऽसौ पारे तस्यास्तयोर्गृहम् ॥९२॥
ततश्चाकृष्य पातालं ताभ्यां नीतो नृपात्मजः।
पाताले ददृशे चोभौ स पन्नगकुमारकौ।
फणामणिकृतोद्द्योतौ व्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ॥९३॥
विलोक्य तौ सुरूपाङ्गौ विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
विहस्य चाब्रवीत् प्रेम्णा साधु भो द्विजसत्तमौ ॥९४॥
कथयामासतुस्तौ च पितरं पन्नगेश्वरम्।
शान्तमश्वतरं नाम माननीयं दिवौकसाम् ॥९५॥
रमणीयं ततोऽपश्यत् पातालं स नृपात्मजः।
कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् ॥९६॥
तथैव नागकन्याभिः क्रीडन्तीभिरितस्ततः।
चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिर्गगनं यथा ॥९७॥
गीतशब्दैस्तथान्यत्र वीणा-वेणुस्वनानुगैः।
मृदङ्ग-पणवातोद्यैर्हारिवेश्मशताकुलम् ॥९८॥
वीक्षमाणः स पातालं ययौ शत्रुजितः सुतः।

पुत्रो! अब फिर ऐसी भेद की बात न कहिये। मेरा तुमसे अत्यन्त प्रेम है और तुम मेरे हृदय में रहते हो ॥ ८४ ॥ यह सुनकर वे नागपुत्र स्नेह से पुलकित हो गये और राजकुमार से कुछ प्रेमपूर्ण रोष से बोले ॥८५॥ हे ऋतध्वज! जो कुछ आपने कहा है इसमें सन्देह नहीं है। यहीबात हमारे मन में है तथा और कुछ चिन्ता भी नहीं है ॥ ८६ ॥ किन्तु हमारे महात्मा पिता ने स्वयं बार-बार कहा है कि मैं कुवलयाश्व को देखना चाहता हूं ॥ ८७ ॥ इसपर कुवलयाश्व सिंहासनसे उठा और यह कह कर कि पिताजी ने मुझे याद कियाहै, उसने पृथ्वी पर झुक कर प्रणाम किया ॥८८॥

कुवलयाश्व बोले—

मैं धन्य हूँ तथा मेरे समान दूसरा पुण्यवान् कौन है जो कि तात ने मुझे देखने की इच्छा की है ॥८९॥ इसलिये उठिये, मैं आपके साथ पैदल ही चलूंगा। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन क्षण भर भी नहीं करना चाहता ॥ ९० ॥

जड़ (सुमति) बोले—

यह कहकर वह राकुमार उनके साथ चला और पहिले ही नगर के बाहर पुण्यवती गोमती नदी पर पहुँचा ॥ ९१ ॥ वे नागपुत्र राजकुमार को अपने घर ले जाने के लिये गोमती के पार गये ॥९२॥ उस राजकुमार को वे दोनों पाताल में ले गये और पाताल में उस राजकुमार ने दोनों नागपुत्रों को देखा कि उनके फण में मणि का प्रकाश हो रहा है और उनमें सर्पों के से लक्षण व्यक्त हो रहे हैं ॥९३॥ उन सुन्दर स्वरूप वालों को देखकर राजकुमार के नेत्र विस्मय से विकसित होगये और वह प्रेमसे हँसकर बोले कि नागपुत्रो! खूब हुआ ॥ ९४ ॥ उन दोनों नागपुत्रों ने नागराज अश्वतर अपने पिता से जो शान्त और देवताओं से भी मान्य थे कह दिया ॥ ९५ ॥ तब राजकुमार ने पाताल को कुमार, तरुण और वृद्ध सर्पों से सुशोभित देखा ॥ ९६ ॥ उसी प्रकार इधर-उधर क्रीड़ा करती हुई नाग-कन्याओं को भी देखा। उन के सुन्दर कुण्डल और हार इस तरह शोभित हो रहे थे जिस प्रकार आकाशमें तारागण ॥९७॥ कहीं गीत, कहीं वीणा, वेणु आदि के शब्द से युक्त, त... मृदङ्ग, पणव आदि वाद्यों की ध्वनि से ... प्रत्येक घर ॥ ९८ ॥ वह शत्रुजित का पुत्र ...

ह ताभ्यामभीष्टाभ्यां पन्नगाभ्यामरिन्दमः ॥९९॥
तः प्रविश्य ते सर्व्वे नागराजनिवेशनम् ।
दृशुस्ते महात्मानमुरगाधिपतिं स्थितम् ॥१००॥
व्यमाल्याम्बरधरं मणिकुण्डलभूषणम् ।
वच्छमुक्ताफललता-हारिहारोपशोभितम् ॥१०१॥
यूरिणं महाभागमासने सर्व्वकाञ्चने ।
णिविद्रुमवैदूर्य्य-जालान्तरितरूपके ॥१०२॥
ताभ्यां दर्शितस्तस्य तातोऽस्माकमसाविति ।
रः कुवलयाश्वोऽयं पित्रे चासौ निवेदितः॥१०३॥
तो ननाम चरणौ नागेन्द्रस्य ऋतध्वजः ।
मुत्थाप्य बलाद्गाढं नागेन्द्रः परिषस्वजे ॥१०४॥
र्द्धिन चैनमुपाघ्राय चिरं जीवेत्युवाच सः ।
नहतामित्रवर्गश्च पित्रोः शुश्रूषणं कुरु ॥१०५॥
त्स धन्यस्य कथ्यन्ते परोक्षस्यापि ते गुणाः ।
वतो मम पुत्राभ्यामसामान्या निवेदिताः॥१०६॥
वमेवानेन वर्द्धेथा मनोवाक्कायचेष्टितैः ।
ीवितं गुणिनः श्लाघ्यं जीवन्नेव मृतोऽगुणः॥१०७॥
ुणवान् निर्वृतिं पित्रोः शत्रूणां हृदयज्वरम् ।
रोत्यात्महितं कुर्व्वन् विश्वासञ्च महाजने॥१०८॥
वताः पितरो विप्रा मित्रार्थिविकलादयः ।
न्यवाश्च तथेच्छन्ति जीवितं गुणिनश्चिरम्॥१०९॥
रिवादनिवृत्तानां दुर्गतेषु दयावताम् ।
ुणिनां सफलं जन्म संश्रितानां विपद्गतैः ॥११०॥

जड़ उवाच

वमुक्त्वा स तं वीरं पुत्त्रावदिदमयाब्रवीत् ।
जां कुवलयाश्वस्य कर्त्तुकामो भुजङ्गमः ॥१११॥
नानादिकक्रमं कृत्वा सर्व्वमेव यथाक्रमम् ।
धुपानादिसम्भोगमाहारञ्च यथेप्सितम् ॥११२॥
ः कुवलयाश्वेन हृदयोत्सवभूतया ।
थया स्वल्पकं कालं स्थास्यामो हृष्टचेतसः॥११३॥
ुमेने च तन्मौनी वचः शत्रुजितः सुतः ।

पाताल में देखता हुआ अपने मित्र नागपुत्रों के साथ चला जाता था ॥ ९९ ॥ फिर उन सबने नागराज के महल में प्रवेश किया और वहाँ महात्मा नागेन्द्र अश्वतर को बैठा हुआ देखा ॥ १०० ॥ वे नागराज दिव्य मालायें, वस्त्र, मणि, कुण्डल आदि पहने हुए थे, और उनके हार इस तरह शोभित हो रहे थे जैसे लता वाले वृक्ष में मुक्ताफल ॥१०१॥ वे नागराज सोने के मयूरासन पर बैठे हुए थे,उस सिंहासन में मणि, मूँगे और वैदूर्यों का जाल पुरा हुआ था ॥ १०२ ॥ दोनों नागपुत्रों ने राजकुमार से कहा कि हमारे पिता यही हैं तथा अपने पिता से निवेदन किया कि यही वीर कुवलयाश्व है ॥ १०३ ॥ फिर ऋतध्वज ने नागराज के चरणों में प्रणाम किया और नागराज ने उसे उठाकर उसका गाढ़ आलिङ्गन लिया ॥ १०४ ॥ नागराज ने उसके मस्तक को सूंघकर आशीर्वाद दिया कि चिरञ्जीव रहो तथा तुम अपने शत्रुओं को मारकर पिता की सेवा करो ॥ १०५ ॥ हे वत्स ! तुमको धन्य है, तुम्हारे असाधारण गुणों को तुम्हारे पीछे मेरे लड़कों ने मुझे बताया है ॥ १०६ ॥ तुम्हारी मन वचन, शरीर और उद्यम से वृद्धि हो, क्योंकि गुणियों का जीवन ही प्रशंसनीय है और गुणहीनों का जीवन मृत के समान है ॥ १०७ ॥ गुणवान् पुत्र माता पिता को निश्चिन्त कर देता है तथा शत्रुओं के हृदय में ज्वर के समान है. वह अपनी भलाई करता हुआ वृद्धजनों में विश्वास उत्पन्न करता है ॥ १०८ ॥ देव, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत और दुःखी आदि तथा भाई, बन्धु उस गुणी का चिरकाल तक जीवन चाहते हैं ॥ १०९ ॥ और जिनका अपवाद नहीं है तथा जो दुःखितों पर दया करते हैं, ऐसे गुणियों का विपत्ति में पड़े लोगों की सहायता करने के कारण जन्म सफल है ॥ ११० ॥

जड़ (सुमति) बोले—

वह नागराज उस वीर कुवलयाश्व से यह कहकर अपने पुत्रों से बोले कि कुवलयाश्व की पूजा करो ॥ १११ ॥ क्रम से स्नानादि करके सब लोग मधुपान आदि भोगयुक्त भोजन करो ॥ ११२॥ फिर प्रसन्न चित्त होकर कुवलयाश्व की प्रसन्नता के लिये कुछ काल बैठकर बातचीत करेंगे ॥११३॥ शत्रुजित के पुत्र ऋतध्वज ने भी जिस प्रकार

तथा चकार नृपतिः पन्नगानामुदारधीः ॥११४॥
समेत्य तैरात्मज-भूपनन्दनै-
र्महोरगाणामधिपः स सत्यवाक् ।
मुदान्वितोऽन्नानि मधूनि चात्मवान्
यथोपयोगं बुभुजे स भोगभुक् ॥११५॥

नागराज ने कहा मान लिया ॥ ११४ ॥ फिर सत्यवादी नागराज ने अपने पुत्रों व राजकुमार के साथ प्रसन्नचित्त होकर अन्नों और मधुओं का इच्छानुसार भोजन किया ॥११५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसोपाख्यान नाम तेईसवाँ अध्याय समाप्त।

चौबीसवाँ अध्याय

जड़ उवाच

कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम् ।
उपासाञ्चक्रिरे पुत्रौ भूपालतनयस्तथा ॥ १ ॥
कथाभिरनुरूपाभिः स महात्मा भुजङ्गमः ।
प्रीतिं सञ्जनयामास पुत्रसख्युरुवाच च ॥ २ ॥
[भ]व भद्र सुखं ब्रूहि गेहमभ्यागतस्य यत् ।
[क]र्त्तव्यमुत्सृजाशङ्कां पितरीव सुतो मयि ॥ ३ ॥
[र]जतं वा सुवर्णं वा वस्त्रं वाहनमासनम् ।
[य]द्वाभिमतमत्यर्थं दुर्लभं तद्वृणुष्व माम् ॥ ४ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

जब राजकुमार, नागराज और उनके दोनों पुत्र भोजन कर चुके तो नागपुत्र और राजकुमार नागराज की सेवा करने लगे ॥ १ ॥ महात्मा नागराज ने राजकुमार के स्वरूप के अनुसार कथायें कहकर प्रीति उत्पन्न की और अपने पुत्रों के मित्र राजकुमार से कहा ॥ २ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, यह तुम्हारा घर है तुम हमारे अतिथि हो । जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो निःशङ्क होकर कहो, मैं अवश्य एक पुत्र के पिता की भांति करूँगा ॥ ३ ॥ चाँदी, सोना, वस्त्र, वाहन, आसन अथवा जो कोई दुर्लभ वस्तु तुम्हें इच्छित हो वह मुझसे माँगो ॥ ४ ॥

कुवलयाश्व उवाच

तव प्रसादाद्भगवन् सुवर्णादि गृहे मम ।
पितुरस्ति ममाद्यापि न किंचित् कार्य्यमीदृशम् ॥५॥
ताते वर्षसहस्राणि शासतीमां वसुन्धराम् ।
[त]थैव त्वयि पातालं न मे याच्ञोन्मुखं मनः ॥ ६ ॥
[ते] स्वर्ग्याश्च सुपुण्याश्च येषां पितरि जीवति ।
[तृ]णकोटिसमं वित्तं तारुण्याद्वित्तकोटिषु ॥ ७ ॥
[मि]त्राणि तुल्यशिष्टानि तद्वद्देहमनामयम् ।
[ज]निता ध्रियते वित्तं यौवनं किन्नु नास्ति मे ॥ ८ ॥
असत्यर्थे नृणां याच्ञाप्रवणं जायते मनः ।
सत्यशेषे कथं याच्ञां मम जिह्वा करिष्यति ॥ ९ ॥
यैर्न चिन्त्यं धनं किञ्चिन्मम गेहेऽस्ति नास्ति वा ।
पितृबाहुतरुच्छायां संश्रिताः सुखिनो हि ते ॥१०॥
ये तु बाल्यात् प्रभृत्येव विना पित्रा कुटुम्बिनः ।

कुवलयाश्व बोले—

हे भगवन् ! आपकी कृपा से सोना इत्यादि मेरे घर पर भी मौजूद है । मेरे पिता मौजूद हैं । ऐसा कोई कार्य मुझे आपसे नहीं है ॥ ५ ॥ मेरे पिता एक हज़ार वर्ष से इस पृथ्वी का राज्य करते हैं और इसी प्रकार आप पाताल में । इस कारण मेरे मन में कोई अभिलाषा नहीं है ॥ ६ ॥ जिनके पिता जीवित हैं वे बड़े पुण्यवान् हैं, करोड़ों तरह के धन युवावस्था रूपी धनके आगे तृणवत् हैं॥७॥ मेरे मित्र भी शिष्ट हैं तथा मेरा देह भी आरोग्य है, क्या मैं अपनी युवावस्था के बल से धन प्राप्त नहीं कर सकता हूँ ॥ ८ ॥ धन के न होने पर भी लोग भिक्षा माँगने का मन नहीं रखते हैं फिर मैं अशेष धन होने पर किस तरह याचना करूँ ॥ ९ ॥ जो मनुष्य ये बात न विचार कर कि उनके घरमें धन है या नहीं अपने पिता की भुजा की छाया में रहते हैं वे ही सुखी हैं ॥ १० ॥ जो लोग बाल्यावस्था से ही पितृहीन हो जाते हैं उनको इस सुख का आ-

ते सुखास्वादविभ्रंसान्मन्ये धात्रैव वञ्चिताः ॥११॥
तद्वयं त्वत्प्रसादेन धनरत्नादिसंचयान् ।
पितृमुक्तान् प्रयच्छामः कामतो नित्यमर्थिनाम् १२
तत् सर्व्वमिह सम्प्राप्तं यदङ्घ्रियुगलं तव ।
मच्चूडामणिना स्पृष्टं यच्चाङ्गस्पर्शमाप्तवान् ॥१३
जड़ उवाच
इत्येवं प्रसृतं वाक्यमुक्तः पन्नगसत्तमः ।
प्राह राजसुतं प्रीत्या पुत्रयोरुपकारिणम् ॥१४
नाग उवाच
यदि रत्नसुवर्णादि मत्तोऽवाप्तुं न ते मनः ।
यदन्यन्मनसः प्रीत्यै तद्ब्रूहि त्वं ददाम्यहम् ॥१५॥
कुवलयाश्व उवाच
भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्रार्थितस्य गृहे मम ।
सर्व्वमस्ति विशेषेण सम्प्राप्तं तव दर्शनात् ॥१६॥
कृतकृत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितञ्च मे ।
यदङ्गसंश्लेषमितस्तव देवस्य मानुषः ॥१७॥
ममोत्तमाङ्गे त्वत्पादरजसा यदिहास्पदम् ।
कृतं तेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेश्वर ॥१८॥
यदि त्ववश्यं दातव्यो वरो मम यथेप्सितः।
तत्पुण्यकर्म्मसंस्कारो हृदयान्मा व्यपैतु मे ॥१९॥
सुवर्णमणिरत्नादि वाहनं गृहमासनम् ।
स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यानुलेपनम् ॥२०॥
एते च विविधाः कामा गीतवाद्यादिकं च यत् ।
सर्व्वमेतन्मम मतं फलं पुण्यतरोस्ततः ॥२१॥
तस्मान्नरेण तन्मूलसेके यत्नः कृतात्मना ।
कर्त्तव्यः पुण्यसक्तानां न किंचिद्भुवि दुर्लभम्॥२२
अश्वतर उवाच
एवं भविष्यति प्राज्ञ तव धर्म्माश्रिता मतिः ।
सत्यञ्चैतत् फलं सर्व्वं धर्म्मस्योक्तं यथा त्वया॥२३
तथाप्यवश्यं मद्गेहमागतेन त्वयाधुना ।
ग्राह्यं यन्मानुषे लोके दुष्प्राप्तं भवतो मतम् ॥२४॥
जड़ उवाच
तस्यतद्वचनं श्रुत्वा स तदा नृपनन्दनः ।
चक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयोः ॥२५॥

स्वादन नहीं होता है, और उनको मैं अभागा समझता हूँ ॥११॥ हम लोग आपकी कृपा से अपने पिता के सञ्चित धन, रत्न, मोती आदिकों में से नित्य जरूरतमन्द याचकों को देते हैं ॥ १२॥ मेरे मुकुट की मणि के आपके चरणों से लगने से तथा मेरे अङ्ग में आपकी चरणधूलि के स्पर्श होने से मुझे सब कुछ प्राप्त होगया ॥१३॥

जड़ (सुमति) बोले—

यह मधुर वार्ता सुनकर नागराज अपने पुत्रोंके उपकारी राजकुमारसे प्रेम पूर्वक बोले ॥१४॥

नागराज बोले—

अगर तुम्हारा मन मुझसे रत्न सुवर्ण आदि माँगने का नहीं है तो जो कुछ अन्य वस्तु की इच्छा हो वह मुझसे कहो मैं वही दूँगा ॥ १५ ॥

कुवलयाश्व बोले—

हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरे घर पर सब कुछ है तथा आपके दर्शन से और विशेष रूप से सब कुछ मिल गया ॥ १६ ॥ मैं कृतकृत्य हूँ, और मेरा जीवन सफल है क्योंकि मैंने मनुष्य होकर आप जैसे देवता का संसर्ग प्राप्त किया ॥ १७ ॥ हे नागराज ! मेरे अङ्ग में जो आपके चरणों की धूलि लगी उससे मुझे क्या प्राप्त नहीं हुआ ॥१८॥ यदि आप मेरी इच्छा के अनुकूल वर देना ही चाहते हैं तो मेरे हृदय से पुण्य संस्कार कभी नष्ट न हो ॥ सुवर्ण, मणि, रत्न, वाहन, गृह, आसन, स्त्रियाँ, अन्न, पान, पुत्र तथा सुन्दर मालायें और चन्दन ॥ २० ॥ इन सबको तथा विविध प्रकार के गीत-वाद्यादि को मैं पुण्यरूपी वृक्ष के फल समझता हूँ ॥ २१ ॥ इसलिये मनुष्य को चाहिये कि पुण्यरूपी वृक्ष को सावधानी से रक्खे । पुण्यवानों के लिये संसार में कोई कार्य दुर्लभ नहीं है ॥ २२ ॥

नागराज अश्वतर बोले—

हे प्राज्ञ ! यही होगा, तुम्हारी बुद्धि धर्म में आश्रित होगी। यह भी सत्य है कि जो कुछ तुमने कहा है वह धर्म का फल है ॥२३॥ फिर भी चूंकि तुम मेरे घर पर आये हो इसलिये जो कुछ तुम्हें मनुष्यलोक में दुष्प्राप्य हो वह मुझसे माँगो ॥२४॥

जड़ (सुमति) बोले—

उसके इन वचनों को सुनकर वह राजकुमार नागपुत्रों के मुख की ओर देखने लगा ॥ २५ ॥

ततस्तौ प्रणिपत्योभौ राजपुत्त्रस्य यन्मतम् ।
तत् पितुः सकलं वीरौ कथयामासतुः स्फुटम् ॥२६॥

पुत्रावूचतुः

ततोऽस्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं विनिपातितम् ।
अत्यजद्दयितान् प्राणान् विप्रलब्धा दुरात्मना ॥२७॥
केनापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना ।
गन्धर्व्वराजस्य सुता नाम्ना ख्याता मदालसा २८॥
कृतज्ञोऽयं ततस्तात प्रतिज्ञां कृतवानिमाम् ।
नान्या भार्य्या भवित्रीति वर्ज्जयित्वा मदालसाम् २९
द्रष्टुं तां चारुसर्व्वाङ्गीमयं वीर ऋतध्वजः ।
तात वाञ्छति यद्येतत् क्रियते तत् कृतं भवेत् ॥३०॥

अश्वतर उवाच

भूतैर्वियोगिनो योगस्तादृशैरेव तादृशः ।
कथमेतद्विना स्वप्नं मायां वा शम्बरोदिताम् ॥३१॥

जड़ उवाच

प्रणिपत्य भुजंगेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः ।
प्रत्युवाच महात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः ॥३२॥
मायामयीमप्यधुना मम तात मदालसाम् ।
यदि दर्शय ते मन्ये परं कृतमनुग्रहम् ॥३३॥

अश्वतर उवाच

तस्मात् पश्येह वत्स त्वं मायाञ्चेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अनुग्राह्यो भवान् गेहं बालोऽप्यभ्यागतो गुरुः॥३४॥

जड़ उवाच

आनयामास नागेन्द्रो गृहगुप्तां मदालसाम् ।
तेषां सम्मोहनार्थाय जजल्प च ततः स्फुटम् ॥३५॥
दर्शयामास च तदा राजपुत्राय तां शुभाम् ।
सेयं न वेति ते भार्य्या राजपुत्र मदालसा ॥३६॥
स दृष्ट्वा तां तदा तन्वीं तत्क्षणाद्विगतत्रपः ।
प्रियेति तामभिमुखं ययौ वाचमुदीरयन् ।
निवारयामास च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन् ॥३७॥

अश्वतर उवाच

मायेयं पुत्र मा स्प्राक्षीः प्रागेव कथितं तव ।
अन्तर्द्धानमुपैत्याशु माया संस्पर्शनादिभिः ॥३८॥
ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्च्छापरिप्लुतः ।

फिर उन दोनों नागपुत्रों ने प्रणाम करके जो कुछ राजकुमार के मन में था वह सब स्पष्टतया पिता के सन्मुख निवेदन कर दिया ॥२६॥

नागपुत्र बोले—

इसकी प्रिय पत्नी ने किसी दुष्टात्मा दानव के विश्वास दिलाने पर कि राजकुमार की मृत्यु होगई है अपने प्रिय प्राणों को त्याग दिया ॥ २७ ॥ किसी दुर्बुद्धि दानव ने जो वैर रखता था ऐसा किया, तथा इसकी पत्नी गन्धर्वकन्या मदालसा थी ॥२८॥ मदालसा के प्रति कृतज्ञ होकर इस राजकुमार ने प्रतिज्ञा की कि मदालसा को छोड़कर दूसरी स्त्री ग्रहण न करूँगा ॥२९॥ हे तात ! यह वीर ऋतध्वज उस सुन्दरी को देखना चाहता है, अतः ऐसा उपाय कीजिये जिससे यह कार्य सिद्ध हो ॥ ३० ॥

अश्वतर नागराज बोले—

वैसे ही वियोगियों को मिला देना कठिन है। यह स्वप्न अथवा राक्षसी माया के बिना किस प्रकार सम्भव है ?॥ ३१ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

शत्रुजित के पुत्र ऋतध्वज ने महात्मा नागराज को प्रणाम कर प्रेम और लज्जा से युक्त हो कहा ॥३२॥ हे तात ! यदि आप मायामयी मदालसा का भी दर्शन करादें तो मेरे ऊपर आपका बड़ा बड़ा अनुग्रह होगा ॥ ३३ ॥

नागराज अश्वतर बोले—

हे वत्स ! अगर तुम माया को ही देखना चाहते हो तो ऐसा ही करूँगा, क्योंकि अभ्यागत बालक को गुरु ही मानना चाहिये ॥ ३४ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

फिर नागराज घर में छिपी हुई मदालसा को ले आये और राजकुमार को मोह में डालने के लिये कह दिया कि यह मायामयी है ॥ ३५ ॥ और उस शुभे को राजपुत्र को दिखला दिया और पूछा कि हे राजकुमार ! यह तुम्हारी स्त्री मदालसा है या नहीं ॥ ३६ ॥ उस सुन्दरी को देखते ही वह राजकुमार लज्जा छोड़कर "प्रिये, प्रिये" यह कहते हुए उसकी ओर चले। इसपर अश्वतर नागराज ने उनको शीघ्रता पूर्वक रोका ॥ ३७ ॥

नागराज अश्वतर बोले—

हे पुत्र ! मैंने पहिले ही तुमसे कह दिया था कि यह मायामयी है इसे न छुओ । यह स्पर्श करते ही अन्तर्ध्यान हो जावेगी ॥३८॥ इसपर वह राजकुमार 'हा प्रिये' ऐसा कहकर क्षितहो पृथ्वीम्

हा प्रियेति वदन् सोऽथ चिन्तयामास भाविनीम् ॥३९॥
अहो स्नेहोऽस्य नृपतेर्मय्योदर्य्यचलं मनः।
येनायं पातनोऽरीणां विना शस्त्रेण पातितः ॥४०॥
मायेति दर्शिता तेन मिथ्या मायेति यत् स्फुटम्।
वाय्वम्बुतेजसां भूमेराकाशस्य च चेष्टया ॥४१॥

जड़ उवाच

ततः कुवलयाश्वं तं समाश्वास्य भुजङ्गमः।
कथयामास तत् सर्व्वं मृतसञ्जीवनादिकम् ॥४२॥
ततः प्रहृष्टः प्रतिलभ्य कान्तां
प्रणम्य नागं निजगाम सोऽथ।
सुशोभमानः स्वपुरं तमश्व-
मारुह्य सञ्चिन्तितमभ्युपेतम् ॥४३॥

पर गिर पड़ा और वह सुन्दरी भी सोचने लगी ॥ अहा! इन राजकुमार का स्नेह मेरे ऊपर अचल है। जिन्होंने अनेकों शत्रुओं को गिराया है वे आज विना शस्त्र के लगे ही गिर पड़े ॥४०॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश से उत्पन्न हुई मुझको इन्होंने माया की मदालसा समझ लिया है ॥४१॥

जड़ (सुमति) बोले—

इसके अनन्तर नागराज ने कुवलयाश्वको धैर्य देकर मदालसा के सञ्जीवनादि की पूरी कथा कह सुनाई ॥४२॥ फिर राजकुमार अपनी स्त्री को प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए। वे नागराज को प्रणाम कर अपने घोड़े पर चढ़कर मदालसा के साथ अपने शोभायमान नगर को चले ॥४३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसा-प्राप्ति नाम चौबीसवां अध्याय समाप्त।



पचीसवां अध्याय

जड़ उवाच

आगम्य स्वपुरं सोऽथ पित्रोः सर्व्वमशेषतः।
कथयामास तन्वङ्गी यथा प्राप्ता पुनर्मृता ॥ १ ॥
ननाम सा च चरणौ श्वश्रू-श्वशुरयोः शुभा।
स्वजनञ्च यथापूर्व्वं वन्दनाश्लेषणादिभिः ॥ २ ॥
पूजयामास तन्वङ्गी यथान्यायं यथावयः।
ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ॥ ३ ॥
ऋतध्वजश्च सुचिरं तया रेमे सुमध्यया।
निर्झरेषु च शैलानां निम्नगापुलिनेषु च।
काननेषु च रम्येषु तथैवोपवनेषु च ॥ ४ ॥
पुण्यक्षयं वाञ्छमाना सापि कामोपभोगतः।
सह तेनातिकान्तेन रेमे रम्यासु भूमिषु ॥ ५ ॥
ततः कालेन महता शत्रुजित् स नराधिपः।
सम्यक् प्रशास्य वसुधां कालधर्म्ममुपेयिवान् ॥ ६ ॥
ततः पौरा महात्मानं पुत्रं तस्य ऋतध्वजम्।
अभ्यषिञ्चन्त राजानमुदाराचारचेष्टितम् ॥ ७ ॥
सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
मदालसायाः सञ्जज्ञे पुत्रः प्रथमजस्ततः ॥ ८ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

उस राजकुमार ने अपने नगर में आकर अपने माता पिता से जिस प्रकार मृत मदालसा को पुनः प्राप्त किया सब वृत्तान्त पूर्णतया कह सुनाया ॥१॥ उस कल्याणी ने अपने सास श्वसुर के चरणों में शिर नवाया तथा अपने स्वजनों को भी छोटे बड़े के अनुसार आलिङ्गन अथवा प्रणाम किया ॥ २ ॥ उस सुन्दरी ने न्याय तथा अवस्था के अनुसार सबका आदर किया तथा उस समय उस नगर में बड़ा महोत्सव हुआ ॥ ३ ॥ ऋतध्वज ने भी उस सुन्दरी के साथ बहुत काल तक झरनों, पहाड़ों, नदियों, वनों तथा उपवनों में विहार किया ॥ ४ ॥ मदालसा भी कामोपभोग के लिये अच्छे अच्छे स्थानों में जाने की इच्छा रखती और राजकुमार भी उसके साथ रमणीक स्थानोंमें रमण करते ॥५॥ फिर बहुत काल व्यतीत होने पर राजा शत्रुजित वसुधा का सम्यक् शासन करके देवलोक को गये ॥६॥ तब प्रजा ने उसके पुत्र महात्मा ऋतध्वज का जो उदार और सुन्दर आचरण वाला था, राज्याभिषेक किया ॥७॥ उसने भी प्रजा का पुत्रके समान पालन किया तथा मदालसाने प्रथम पुत्रको उत्पन्न

तस्य चक्रे पिता नाम विक्रान्त इति धीमतः ।
तुतुपुस्तेन वै भृत्या जहास च मदालसा ॥ ६ ॥
सा वै मदालसा पुत्रं बालमुत्तानशायिनम् ।
उल्लापनच्छलेनाह रुदमानमविस्वरम् ॥१०॥

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव । पञ्चात्मकं देहमिदं तवैतन्नैवास्य त्वं रोदिपि कस्य हेतोः ॥११॥

न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्मा शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम् । विकल्पयमाना विविधा गुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ॥१२॥

भूतानि भूतैः परिदुर्व्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः । अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः ॥१३॥

त्वं कञ्चुके शीर्य्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिंश्च देहे मूढ़तां मा व्रजेथाः । शुभाशुभैः कर्म्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्तेऽपि नद्धः ॥१४॥

तातेति किंचित् तनयेति किंचिदम्बेति किंचिद्दयितेति किंचित् । ममेति किंचिन्न ममेति किंचित् त्वं भूतसङ्घं बहु मानयेथाः ॥१५॥

दुःखानि दुःखोपशमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढ़चेताः । तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानात्यविद्वान् सुविमूढ़चेताः ॥१६॥

हासोऽस्थिसन्दर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलं तर्ज्जनमङ्गनायाः । कुचादि पीनं पिशितं घनं तत् स्थानं रतेः किं नरकं न योषित् ॥१७॥

यानं क्षितौ यानगतश्च देहं देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः । ममत्वबुद्धिर्न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं वत मूढ़तैषा ॥१८॥

किया ॥८॥ उसका नाम धीमान् ऋतध्वजने विक्रांत रक्खा जिससे सबलोग सन्तुष्ट हुए, परन्तु मदालसा ने इसका उपहास किया ॥९॥ मदालसा बालक से जो उसकी गोद में पड़ा रो रहा था बहलाने के बहाने कहने लगी ॥ १० ॥ हे तात ! तू शुद्ध है, तेरा कोई नाम नहीं है । चूँकि तूने पञ्चात्मक देह धारण किया है इसलिये तेरा नाम कल्पित किया गया है, तू किसलिये रोता है ॥ ११ ॥ अथवा यों कहना चाहिये कि तुम रोते भी नहीं हो, यह रोने का शब्द स्वयं ही उत्पन्न होता है । सम्पूर्ण इन्द्रियों के जो गुण अवगुण हैं वे भी तुम्हारे सङ्कल्प से ही हैं ॥१२॥ मनुष्यों का शरीर अन्न जल आदि खाने पीने से बढ़ता और ऐसा न करने से घटता है । परन्तु इनसे न तो तुम्हारी वृद्धि है और न हानि ॥ १३ ॥ इस रचे हुए अपने शरीर में मूढ़ता मत करो, यह देह शुभाशुभ कर्मों का फल है तथा मदादि मूढ़ताओं से बँधा हुआ है ॥ १४ ॥ यह तात है, यह पुत्र है, यह माता है, यह स्त्री है, यह मेरा है और यह मेरा नहीं है इस भूतसंघ को भी तुम बहुत मानते हो ॥१५॥ मूर्ख लोग दुःखों को और दुःखों का नाश करने वाले भोगों को सुख जानते हैं । वास्तव में उसी एक वस्तु को अज्ञानी लोग दुःख और सुख कह देते हैं ॥१६॥ स्त्रियों की हँसी में जो दांत दिखाई देते हैं वे नरक की हड्डियां हैं और उनकी दोनों आँखें ऐसी हैं मानो मूढ़ जनों को निषेध करती हैं और उनके स्तन जो हैं वे नरकके मांस हैं । इस प्रकार स्त्रियों के रति का स्थान क्या नरक नहीं है ? ॥ १७ ॥ वाहन पृथ्वी पर है और वाहन शरीर में है । इस देह में भी दूसरा पुरुष सन्निविष्ट है परन्तु जैसी अपने शरीर में ममता है वैसी दूसरे में नहीं है और यही मूर्खता है ॥१८॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में मदालसोपाख्यान नामका पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।

छब्बीसवां अध्याय

जड़ उवाच

वर्द्धमानं सुतं सा तु राजपत्नी दिने दिने ।
तमुल्लापादिना बोधमनयन्निर्म्ममात्मकम् ॥ १ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

जैसे-२ वह बालक बढ़ता गया मदालसा उसको बहलानेके बहाने निर्ममात्मक उपदेश करती थी ॥१॥

यथायथं वलं लेभे यथा लेभे मतिं पितुः ।
तथा तथात्मबोधंच सोऽवाप मातृभाषितैः ॥ २ ॥
इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभृति बोधितः ।
चकार न मतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्यं प्रति निर्म्ममः॥ ३ ॥
द्वितीयोऽस्याः सुतो जज्ञे तस्य नामाकरोत् पिता ।
सुवाहुरयमित्युक्ते सा जहास मदालसा ॥ ४ ॥
तमप्येवं यथापूर्व्वं वालमुल्लापवादिनी ।
प्राह बाल्यात् स च माप तथा बोधं महामतिः ॥ ५ ॥
तृतीयं तनयं जातं स राजा शत्रुमर्द्दनम् ।
यदाह तेन सा सुभ्रूर्जहासातिचिरं पुनः ॥ ६ ॥
तथैव सोऽपि तन्वङ्ग्या वालत्वादवबोधितः ।
क्रियाश्चकार निष्कामो न किंचिदुपकारकम् ॥ ७ ॥
चतुर्थस्य सुतस्याथ चिकीर्षुर्नाम भूमिपः ।
ददर्श तां शुभाचारामीसद्धासां मदालसाम् ।
तामाह राजा हसतीं किञ्चित् कौतूहलान्वितः॥ ८ ॥

राजोवाच

क्रियमाणे सकृन्नाम्नि कथ्यतां हास्यकारणम् ।
विक्रान्तश्च सुवाहुश्च तथान्यः शत्रुमर्द्दनः ॥ ९ ॥
शोभनानीति नामानि मया मन्ये कृतानि वै ।
योग्यानि क्षत्रवन्धूनां शौर्य्यायोपयुतानि च ॥१०॥
असन्त्येतानि चेद्भद्रे यदि ते मनसि स्थितम् ।
तदस्य क्रियतां नाम चतुर्थस्य सुतस्य मे ॥११॥

मदालसोवाच

मयाज्ञा भवतः कार्य्या महाराज यथात्थ माम् ।
तथा नाम करिष्यामि चतुर्थस्य सुतस्य ते ॥१२॥
अलर्क इति धर्म्मज्ञः ख्यातिं लोके मयास्यति ।
कनीयानेष ते पुत्रो मतिमांश्च भविष्यति ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा नाम पुत्रस्य कृतं मात्रा महीपतिः ।
अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥१४॥

राजोवाच

भवत्या यदिदं नाम मत्पुत्रस्य कृतं शुभे ।
किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्य मदालसे ॥१५॥

मदालसोवाच

कल्पनेयं महाराज कृता सा व्यवहारिकी ।

ज्यों-ज्यों उसने वल प्राप्त किया पिता ने उसको व्यावहारिक ज्ञान दिया परन्तु उसने माताकी बातों से आत्मबोध को प्राप्त किया ॥ २ ॥ इस प्रकार वह पुत्र जन्म से ही मातासे ज्ञान प्राप्त कर गृहस्थाश्रम से विमुख होकर विरक्त होगया ॥३॥ फिर मदालसा का दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम पिता ने सुवाहु रक्खा इसपर भी वह हँसी ॥ ४ ॥ उसको भी वह पहिले की तरह वहलानेके वहानेसे उपदेश करती जिससे वह भी वाल्यावस्था से ही ज्ञान प्राप्त करता हुआ ज्ञानवान् हो निर्मम होगया ॥ ५ ॥ जब मदालसा के तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ तब राजा ने उसका नाम शत्रुमर्दन रक्खा उस समय भी उस सुन्दरी को हँसी आगई ॥ ६ ॥ उसको भी सुन्दरी मदालसा ने वाल्यावस्था से बोध कराया जिससे वहभी निष्काम होकर विरक्त होगया और किसी उपकार का न रहा ॥ ७ ॥ जब चौथे पुत्र का नाम राजा रखना ही चाहता था तो उसने शुभाचरण वाली मदालसा को कुछ मुस्कराते हुए देखा इसपर राजा ने कुतूहलयुक्त होकर मुस्कराती हुई उस स्त्री से कहा ॥ ८ ॥

राजा बोला—

इन नामों के रक्खे जाने में तुम अपनी हँसी का कारण वताओ । विक्रान्त, सुवाहु और शत्रुमर्दन ॥९॥ ये मैंने सुन्दरनाम शूरवीरों और क्षत्रियों के योग्य समझकर रक्खे ॥ १० ॥ हे भद्रे ! यदि ये नाम तुम्हारे मनके अनुसार नहीं हैं तो इस चौथे लड़के का नाम तुम्हीं रक्खो ॥११॥

मदालसा बोली—

हे महाराज ! आपकी आज्ञा का मैं अवश्य ही पालन करूँगी और आपके इस चौथे पुत्र का नाम मैं ही रक्खूंगी ॥१२॥ आपके इस छोटे पुत्रका नाम मैंने अलर्क रक्खा । ये धर्मात्मा सम्पूर्ण लोक में विख्यात होगा और वड़ा विद्वान् होगा ॥ १३ ॥ माता के रक्खे हुए 'अलर्क' इस असम्बद्ध नामको सुनकर राजा कुछ हँसकर वोले ॥ १४ ॥

राजा वोले—

हे शुभे मदालसे ! मेरे पुत्र का तुमने यह क्या असम्भवसा नाम रक्खा इसका क्या अर्थहै? ॥१५॥

मदालसा वोली—

हे महाराज ! इस प्रकार नाम की कल्पना कर

त्वत्कृतानां तथा नाम्नां शृणु भूप निरर्थताम् ॥१६॥
वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञा व्यापिनं पुरुषं यतः।
क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टा देशाद्देशान्तरन्तु या ॥१७॥
सर्व्वगो न प्रयातीति व्यापी देहेश्वरो यतः।
ततो विक्रान्तसंज्ञेयं मता मम निरर्थका ॥१८॥
सुबाहुरिति या संज्ञा कृतान्यस्य सुतस्य ते।
निरर्था साप्यमूर्त्तत्वात् पुरुषस्य महीपते ॥१९॥
पुत्रस्य यत् कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्द्दनः।
मन्ये तदप्यसम्बद्धं शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥२०॥
एक एव शरीरेषु सर्व्वेषु पुरुषो यदा।
तदास्य राजन् कः शत्रुः को वा मित्रमिहेष्यते ॥२१॥
भूतैर्भूतानि मृद्यन्ते अमूर्त्तो मृद्यते कथम्।
क्रोधादीनां पृथग्भावात् कल्पनेयं निरर्थका ॥२२॥
यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते।
नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतो मतम् ॥२३॥

जड़ उवाच

एवमुक्तस्तया साधु महिष्या स महीपतिः।
तथेत्याह महाबुद्धिर्दयितां तथ्यवादिनीम् ॥२४॥
तञ्चापि सा सुतं सुभ्रूर्यथा पूर्व्वसुतांस्तथा।
प्रोवाच बोधजननं तामुवाच स पार्थिवः ॥२५॥

राजोवाच

करोषि किमिदं मूढे ममाभावाय सन्ततेः।
दुष्टावबोधदानेन यथापूर्व्वं सुतेषु मे ॥२६॥
यदि ते मत्प्रियं कार्य्यं यदि ग्राह्यं वचो मम।
तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्तेः सन्नियोजय ॥२७॥
कर्म्ममार्गः समुच्छेदं नैवं देवि गमिष्यति।
पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैवं साध्वि भविष्यति ॥२८॥
पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्य्यक्त्वमागताः।
तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गे च संस्थिताः ॥२९॥
सपुण्यानसपुण्यांश्च क्षुत्क्षामान् तृट्परिप्लुतान्।
पिण्डोदकप्रदानेन नरः कर्म्मण्यवस्थितः।
सदाप्याययते सुभ्रु तद्वद्देवातिथीनपि ॥३०॥
देवैर्मनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः।
वयोभिः कृमिकीटैश्च नर एवोपजीव्यते ॥३१॥

लेना एक व्यवहार की सी बात है। हे राजन्! आप अपने रक्खे हुए नामों की निरर्थकता को भी सुनिये ॥ १६ ॥ विद्वान् लोग पुरुषको व्यापी कहते हैं, क्रांति उस वस्तु को कहते हैं जो देश-देशान्तर में गति रखती है ॥१७॥ देहका ईश्वर पुरुष व्यापक होने के कारण कहीं नहीं जाता, अतः मेरे मत से विक्रान्त नाम बिल्कुल निरर्थक है ॥१८॥ हे राजन्! जो तुमने 'सुबाहु' दूसरे पुत्र का नाम रक्खा वह भी निरर्थक है, कारण-पुरुष तो मूर्तिमान् नहीं है॥ और तीसरे पुत्र का नाम जो आपने 'शत्रुमर्दन' रक्खा वह भी निरर्थकहै, इसका भी कारण सुनिये ॥ २० ॥ हे राजन्! जब एक ही पुरुष सब शरीरों में विद्यमान है तो इस संसार में उसका कौन शत्रु और कौन मित्र है? ॥ २१ ॥ शरीरों से शरीरों का नाश होता है, जिसका शरीर ही नहीं है उसका किस प्रकार नाश होगा? वह पुरुष क्रोध आदि से भी पृथक है, इसलिये यह कल्पना ही निरर्थक है॥ यदि इसपर भी आपके रक्खे हुए नाम सार्थक और व्यावहारिक हैं तो फिर अलर्क नाम में ही कौनसी निरर्थकता है ॥ २३ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

वह राजा मदालसाकी यह बात सुनकर कहने लगा, "हे प्रिये! जो कुछ तुमने कहा वह सचहै॥२४॥ फिर मदालसा उस पुत्र को भी पहिले पुत्रों की तरह आत्मज्ञान देने लगी, इस पर राजा ऋतध्वज ने उससे कहा ॥ २५ ॥

राजा बोले—

हे मूर्खे! यह क्या करतीहै? अब आगे संतति का अभाव है और तू इस पुत्र को भी पहिले पुत्रों की तरह वैराग्य सिखलाती है ॥ २६ ॥ यदि तू मेरे कहने को मानकर वह कार्य करना चाहती है जो मुझको प्रिय है तो इसको प्रवृति मार्गमें लगा॥२७॥ हे देवि! कर्म-मार्ग का नाश करने से पितरों की पिंड दानादि से निवृत्ति नहीं होगी ॥ २८ ॥ जो पितर देवलोक में स्थित हैं तथा जो तिर्य्यक योनि में प्राप्त होगये हैं अथवा जो मनुष्य योनि या भूतों में स्थित हैं ॥ २९॥ तथा जो पितर पुण्य, पाप, भूख अथवा प्यास से युक्त हैं उनको मनुष्य पिंड और जल से तृप्त करते हैं तथा हे प्रिये! इसी प्रकार देवता और अतिथियों को भी ॥ ३० ॥ तथा देव, मनुष्य, पितर, प्रेत, भूत, गुह्यक, कृमि, कीट आदि मनुष्यों को आशीर्वाद देते हैं जिससे मनुष्यों का जीवन बढ़ता है ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरी! इसलिये इस

तस्मात् तन्वङ्गि पुत्रं मे यत् कार्य्यं क्षत्रयोनिभिः।
ऐहिकामुष्मिकफलं तत् सम्यक् प्रतिपादय ॥३२॥
तेनैवमुक्ता सा भर्त्रा वरनारी मदालसा।
अलर्कं नाम तनयमुवाचोल्लापवादिनी ॥३३॥
पुत्र वर्द्धस्व मद्भर्त्तुर्मनो नन्दय कर्म्मभिः।
मित्राणामुपकाराय दुर्हृदां नाशनाय च ॥३४॥
धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयितासि पुत्र। तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो धर्म्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ॥३५॥
धरामरान् पर्व्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः। हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मनः परस्त्रीषु निवर्त्तयेथाः ॥३६॥
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमर्थैर्द्विजान् प्रीणय संश्रितांश्च। स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासि वीर ॥३७॥
बालो मनो नन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः। स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वत्स वनेचराणाम् ॥३८॥
राज्यं कुर्व्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः। दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः ॥३९॥

पुत्र को क्षत्रियोचित कर्म बताओ जिससे इस लोक और परलोक का फल प्राप्त हो ॥३२॥ अपने स्वामी से इस प्रकार कहे जाने पर सुन्दरी मदालसा उस अलर्क नाम अपने पुत्र से कहनेलगी ॥३३॥ हे पुत्र ! चिरंजीव रहो, मित्रों का उपकार और शत्रुओं का नाश आदि कर्मों से मेरे स्वामीके हृदय को आनन्द पहुँचाओ ॥३४॥ हे पुत्र ! तू धन्य है, तू शत्रुरहित होकर पृथ्वी का पालन कर। उसके पालन से तू सुखोपभोग कर तथा धर्म से अमरत्व प्राप्त कर ॥ ३५ ॥ पर्वों पर ब्राह्मणों को तृप्त करो, भाई, बन्धुओं की इच्छा पूर्ण करो, सदैव दूसरों का हित-चिन्तन करो और परस्त्रियों में कभी मन न लगाओ ॥ ३६ ॥ तथा अनेक यज्ञों से देवताओं को, धन से ब्राह्मणों को, स्त्रियों को काम से तथा शत्रुओं को युद्ध से प्रसन्न रखो ॥ ३७॥ बाल्यावस्था में भाई बन्धुओं को प्रसन्न रखो। कुमारावस्था में आज्ञाकारिता से गुरु को, युवावस्था में अच्छे कुल की स्त्रियों को और वृद्धावस्था में वनवासियों को सुख पहुँचाओ ॥३८॥ हे तात ! तुम राज्य करते हुए मित्रों को प्रसन्न करना, साधुओं की रक्षा करते हुए यज्ञ करना, दुष्टों और शत्रुओं का नाश करके अश्वमेध यज्ञ करना तथा गो ब्राह्मण के लिये मृत्यु से भी भय न करना ॥३९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें पुत्रानुशासन (१) नाम छब्बीसवाँ अ० समाप्त।

सत्ताईसवां अध्याय

जड़ उवाच

एवमुल्लाप्यमानस्तु स तु मात्रा दिने दिने।
ववृधे वयसा बालो बुद्ध्या चालर्कसंज्ञितः ॥ १ ॥
स कौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्ततः।
कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याह मातरम् ॥ २ ॥

अलर्क उवाच

मया यदत्र कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै।
सुखाय वद तत् सर्व्वं प्रश्रयावनतस्य मे ॥ ३ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

इस प्रकार माता नित्य-प्रति उस बालक को बहलाती और शिक्षा देती। वह अलर्क नाम वाला बालक बाल्यावस्था से बड़ा होना शुरू हुआ ॥ १ ॥ ऋतध्वज के उस पुत्र ने जब कुमारावस्था प्राप्त की तब उसका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और वह अपनी माता को प्रणाम कर बोला ॥ २ ॥

अलर्क बोला—

मुझे जो कुछ इस संसार में अथवा परलोकमें सुख के हेतु कर्तव्य है उस सबको मुझसे कहो ॥

मदालसोवाच

वत्स राज्येऽभिषिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः ।
कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्म्मस्य महीभृता ॥ ४ ॥
व्यसनानि परित्यज्य सप्त मूलहराणि वै ।
आत्मा रिपुभ्यः संरक्ष्यो बहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ॥ ५ ॥
अष्टधा नाशमाप्नोति सुचक्रात् स्यन्दनाद्यथा ।
तथा राजाप्यसन्दिग्धं बहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ॥ ६ ॥
दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानरिदोषतः ।
चरैश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः ॥ ७ ॥
विश्वासो न तु कर्त्तव्यो राज्ञा मित्राप्तबन्धुषु ।
कार्य्ययोगादमित्रेऽपि विश्वसीत नराधिपः ॥ ८ ॥
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यगुणिनात्मना ।
भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्त्तिनः ॥ ९ ॥
प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता ।
जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः ॥१०॥
यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते ।
सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते ॥ ११ ॥
तस्मात् कामादयः पूर्व्वं जेयाः पुत्र महीभुजा ।
तज्जये हि जयोऽवश्यं राजा नश्यति तैर्जितः ॥ १२ ॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मानस्तथैव च ।
हर्षश्च शत्रवो ह्येते विनाशाय महीभृताम् ॥ १३ ॥
कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम् ।
निवर्त्तयेत् तथा क्रोधादनुह्लादं हतात्मजम् ॥ १४ ॥
हतमैलं तथा लोभान्मदाद्वेणं द्विजैर्हतम् ।
मानादनायुषापुत्रं बलिं हर्षात् पुरञ्जयम् ॥ १५ ॥
१६ एभिर्जितैर्जितं सर्व्वं मरुत्तेन महात्मना ।
स्मृत्वा विवर्ज्जयेदेतान् दोषान् स्वीयान् महीपतिः ॥
काक-कोकिल-भृङ्गाणां मृग-व्याल-शिखण्डिनाम् ।
हंस-कुक्कुट-लोहानां शिक्षेत चरितं नृपः ॥ १७ ॥
कीटकस्य क्रियां कुर्य्याद्विपक्षे मनुजेश्वरः ।
चेष्टां पिपीलिकानाञ्च काले भूपः प्रदर्शयेत् ॥ १८ ॥
ज्ञेयाग्निविस्फुलिङ्गानां बीजचेष्टा च शाल्मलेः ।

मदालसा बोली—

हे वत्स ! राज्याभिषेक होनेपर राजाका कर्तव्य है कि धर्मपूर्वक निर्विरोध प्रजाका पालन करे ॥४॥ सात धातुओं के मूल को हरण करनेवाले व्यसनों को छोड़कर अपने आपको शत्रुओं से बचाना चाहिये तथा मन्त्रियों के सहयोग से कार्य करना चाहिये ॥ ५ ॥ जिस प्रकार सुन्दर पहिये का रथ उत्तम होता है उसी प्रकार मन्त्रियों की सलाह से राजा भी निस्सन्देह सुरक्षित रहता है ॥६॥ मंत्रियों में दुष्ट और सज्जनों की पहिचान रखनी चाहिये, तथा शत्रुओं के मित्रों की भी यत्नपूर्वक निगाह रखनी चाहिये ॥ ७ ॥ राजा को चाहिये कि अपने मित्रों, भाई-बन्धुओं में भी विश्वास न करे और यदि मौका हो तो शत्रुका भी विश्वास करले ॥८॥ राजाको चाहिये कि छः गुणोंके अनुसार रहे तथा स्थान और हानि, लाभ का ज्ञान रक्खे और कभी काम के वशीभूत न हो ॥ ९ ॥ राजा पहिले अपने आप को, फिर मन्त्रियों को, फिर सेवकों को तथा उसके बाद प्रजा को वशमें करे और फिर शत्रुओं से विरोध करे ॥१०॥ जो रणको न जीतकर बैरियों को जीतने की इच्छा करता है वह व्यक्ति, जिसने अपने आपको नहीं जीता है तथा जो मन्त्रियों से जीता हुआ है वह शत्रुओं द्वारा वध को प्राप्त होगा ॥११॥ हे पुत्र ! इसलिये राजाको चाहिये कि पहिले कामादिक को जीते उनको जीतने से निश्चय जय प्राप्त होगी और उनको न जीतने से नाश को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मद, मान तथा हर्ष ये सब राजाओं का नाश करनेके लिये शत्रुवत् हैं ॥ १३॥ यह स्मरण करके कि काम से राजा पांडु का पतन हुआ और क्रोध से अनुह्लाद का पुत्र मारा गया काम और क्रोध को छोड़देना चाहिये ॥ १४ ॥ लोभ से राजा पुरूरवा मरा, मद के कारण राजा वेणु ब्राह्मणों से शापित होकर मरा । मान से अनायुष का पुत्र बलि और हर्ष से पुरञ्जय मारे गये ॥१५॥ इन सबको जीतकर महात्मा मरुत ने सब पर विजय प्राप्त की । यह सब सोचकर राजा को चाहिये कि अपनेको इन सब दोषोंसे बचावे ॥ और राजा को चाहिये कि काक, कोकिल, भौंरा, हिरन, सर्प, मोर, हंस, कुक्कुट और लोह आदि के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करे ॥ १७ ॥ राजा विपक्षियों से कीट की तरह काम निकाले तथा राजा को चाहिये कि अपनी चेष्टा चींटी की तरह रक्खे ॥१८॥ अग्नि के कण और शाल्मलि वृक्ष के बीज की

चन्द्रसूर्य्यस्वरूपेण नीत्यर्थें पृथिवीक्षिता ॥१९॥
वन्यकीपद्मशरभ-शूलिकागुर्व्विणीस्तनात् ।
प्रज्ञा नृपेण चादेया तथा गोपालयोषितः ॥२०॥
शक्रार्क-यम-सोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः ।
रूपाणि पञ्च कुर्वीत महीपालनकर्म्मणि ॥२१॥
यथेन्द्रश्चतुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम् ।
आप्याययेत् तथा लोकं परिहारैर्महीपतिः ॥२२॥
मासानष्टौ यथा सूर्य्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिकं नृपः ॥२३॥
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्तकाले नियच्छति ।
तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत् ॥२४॥
पूर्णेन्दुमालोक्य यथा प्रीतिमान् जायते नरः ।
एवं यत्र प्रजाः सर्व्वा निर्वृतास्तच्छशिव्रतम् ॥२५॥
मारुतः सर्व्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा ।
एवं नृपश्चरेच्चारैः पौरामात्यादिबन्धुषु ॥२६॥
न लोभाद्वा न कामाद्वा नार्थाद्वा यस्य मानसम् ।
यथान्यैः कृष्यते वत्स स राजा स्वर्गमृच्छति ॥२७॥
उत्पथग्राहिणो मूढ़ान् स्वधर्म्माचलतो नरान् ।
यः करोति निजे धर्म्मे स राजा स्वर्गमृच्छति ॥२८॥
वर्णधर्म्मा न सीदन्ति यस्य राज्ये तथाश्रमाः ।
वत्स तस्य सुखं प्रेत्य परत्रेह च शाश्वतम् ॥२९॥
एतद्राज्ञः परं कृत्यं तथैतत् सिद्धिकारकम् ।
स्वधर्म्मस्थापनं नृणां चाल्यते यत् कुबुद्धिभिः॥३०॥
पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः ।
सम्यक् पालयिता भागं धर्म्मस्याप्नोति यत्नतः॥३१॥
एवं यो वर्त्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे ।
स सुखी विहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम् ३२॥

तरह अपनी चेष्टा रक्खे और नीति के लिये चन्द्र-सूर्य की तरह पृथ्वी पर देखता रहे ॥१९॥ वन्धकी स्त्री, कमल, पतङ्ग, शूलिका, गुर्व्विणी, तथा इसी प्रकार ग्वाले की स्त्री के स्तनों से राजा को बुद्धि ग्रहण करनी चाहिये ॥ २० ॥ इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्रमा और वायु इन पाँच रूपों को राजा प्रजा-पालन के समय धारण करे ॥२१॥ जिस प्रकार इन्द्र चार महीने जल वरसा कर पृथ्वी का पालन करते हैं उसी तरह राजा को चाहिये कि प्रजा को अन्न वस्त्र से तृप्त करे ॥ २२ ॥ जिस प्रकार सूर्य आठ महीने अपनी किरणों से जल का शोषण करता है उसी प्रकार राजा सूक्ष्म उपायों से प्रजा से कर वसूल करे ॥ २३ ॥ जिस प्रकार समय आने पर यमराज अच्छे बुरे को देखते हैं उसी प्रकार राजा को चाहिये कि सज्जन के प्रति प्रिय और दुष्ट के प्रति अप्रिय हो ॥ २४ ॥ जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा को देखकर मनुष्य प्रसन्न होतेहैं उसी प्रकार राजा को चन्द्रमा के समान वही कार्य करना उचित है जिससे प्रजा को सुख हो ॥ २५ ॥ जिस तरह वायु सब प्राणियों में गुप्त रूप से वहती है उसी तरह राजाको चाहिये कि गुप्तचरों द्वारा नगरनिवासियों तथा भाई बन्धुओं की खबर रक्खे ॥२६ ॥ जिसका मन लोभ, काम, और अर्थ से नहीं ले जाया जाता है वह राजा जिस प्रकार एक अन्धा बच्चे द्वारा ले जाया जाता है, स्वर्ग को चला जाता है ॥ २७ ॥ जो मूढ़ मनुष्य अपने धर्म को छोड़ कर कुमार्ग पर चलते हैं उनको जो राजा अपने धर्म में लगाता है वह भी स्वर्ग को जाता है ॥ २८ ॥ हे वत्स ! जिस के राज्य में वर्णाश्रम धर्म का ह्रास नहीं होता है वह इस संसार व परलोक में सुख पाता है ॥२९ ॥ राजा का कर्तव्य वही है जिससे धर्म की सिद्धि हो । जो दुर्वुद्धियों द्वारा किया गया हो उसको निवारण करके अपने धर्म को स्थापन करे ॥ ३० ॥ प्रजा का पालन करने से ही राजा कृतकृत्य होता है। प्रजा के भली प्रकार पालन से जो पुण्य होता है उसका भाग राजा को प्राप्त होता है ॥३१॥ इस प्रकार चारों वर्णों की रक्षा करता हुआ राजा इस लोक व इन्द्रलोक में सुख पूर्वक विहार करता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में पुत्रानुशासन (२) नाम सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।

अट्ठाईसवां अध्याय

जड़ उवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलर्को मातरं पुनः ।
पप्रच्छ वर्णधर्म्मांश्च धर्म्मा ये चाश्रमेषु च ॥ १ ॥

अलर्क उवाच

कथितोऽयं महाभागे राज्यतन्त्राश्रितस्त्वया ।
धर्म्मं तमहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् ॥ २ ॥

मदालसोवाच

दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्य त्रिधा मतः ।
नान्यश्चतुर्थो धर्म्मोऽस्ति धर्म्मस्तस्यापदं विना ॥३॥
याजनाध्यापने शुद्धे तथा पूतप्रतिग्रहः ।
एषा सम्यक् समाख्याता त्रिविधा चास्य जीविका॥४
दानमध्ययनं यज्ञः क्षत्रियस्याप्ययं त्रिधा ।
धर्म्मः प्रोक्तः क्षिते रक्षा शस्त्राजीवश्च जीविका॥ ५ ॥
दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः ।
वाणिज्यं पाशुपाल्यञ्च कृषिश्चैवास्य जीविका ६ ॥
दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मया ।
व्याख्यातः शूद्रधर्म्मोऽपि जीविका कारुकर्म्म च॥७॥
तद्वद्द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रय-विक्रयौ ।
वर्णधर्म्मास्त्विमे प्रोक्ताः श्रूयन्तां चाश्रमाश्रयाः॥८॥
स्ववर्णधर्म्मात् संसिद्धिं नरः प्राप्नोति न च्युतः ।
प्रयाति नरकं प्रेत्य प्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥ ६ ॥
यावत्तु नोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः ।
कामचेष्टोक्तिभक्ष्यश्च तावद्भवति पुत्रक ॥१०॥
कृतोपनयनः सम्यग्ब्रह्मचारी गुरोर्गृहे ।
वसेत् तत्र च धर्म्मोऽस्य कथ्यते तं निबोध मे॥११॥
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा ।
गुरोर्निवेद्य तच्चान्नमनुज्ञातेन सर्व्वदा ॥१२॥
गुरोः कर्म्मणि सोद्योगः सम्यक् प्रीत्युपपादनम् ।
तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः ॥१३॥
एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातोऽथ वन्दित्वा दक्षिणां गुरवे ततः ॥१४॥
गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गृहस्थाश्रममावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रमं वापि चतुर्थश्चेच्छयात्मनः ॥१५॥

जड़ बोला—

वह अलर्क माता के उस कथन को सुनकर फिर वर्णधर्म और आश्रम धर्मों को माता से पूछने लगा ॥ १ ॥

अलर्क बोला—

हे महाभागे ! राज्यतन्त्र सम्बन्धी धर्म आपने कहा, अब मैं वर्णाश्रम धर्मको सुनना चाहता हूँ ॥

मदालसा बोली—

दान, अध्ययन और यज्ञ ब्राह्मण के यह तीन ही धर्म हैं चौथा नहीं। आपत्ति के विना यह धर्म है ॥३॥ शुद्ध यज्ञ कराना, पढ़ाना और पवित्र दान लेना यह तीन प्रकार की जीविका ब्राह्मण की बतलाई जाती है ॥ ४ ॥ दान देना, पढ़ना और यज्ञ करना क्षत्रिय का भी यह तीन प्रकार का धर्म कहा है। पृथ्वी की रक्षा और शस्त्र से जीवन-निर्वाह यह उसकी जीविका है ॥ ५ ॥ दान, अध्ययन और यज्ञ वैश्य का भी यह तीन प्रकार का धर्म है तथा वाणिज्य, पशुपालन और कृषि उसकी जीविका है ॥६॥ दान, यज्ञ एवं द्विजातियों की शुश्रूषा ये शूद्रों का तीन प्रकार का धर्म है और शिल्प कर्म, द्विजों की सेवा और पोषण, खरीदना और बेचना यह शूद्र की आजीविका है। ये वर्णधर्म मैंने कहे, अब आश्रम-धर्मों को सुनो ॥ ७-८ ॥ मनुष्य अपने वर्णधर्म से भ्रष्ट न होकर ही सिद्धि प्राप्त करता है, निषिद्ध आचरण करने से मरने पर नरक में जाता है ॥ ६ ॥ हे पुत्र ! जब तक द्विजातियों का उपनयन न हो तब तक वह इच्छानुसार चेष्टा, भाषण और भक्षण कर सकते हैं ॥१०॥ परन्तु उपनयन के बाद अच्छी तरह ब्रह्मचारी रहकर गुरु के घर में रहना चाहिये वहाँ पर जो उसका धर्म है वह मैं कहती हूँ, सुनो ॥११॥ स्वाध्याय, अग्निहवन, स्नान, भिक्षा के लिये भ्रमण एवं भिक्षा में प्राप्त हुए अन्न को गुरु के लिये निवेदन कर उनकी आज्ञा से काम में लाना ॥ १२ ॥ गुरु के कार्यमें संलग्न रहना, उनको प्रसन्न करना तथा उनके बुलाने पर एकाग्र चित्त होकर तत्परता से पढ़ना ॥ १३ ॥ एक दो अथवा सम्पूर्ण वेदों को गुरुमुख से पाकर उनकी आज्ञा से उनको प्रणाम कर गुरु को दक्षिणा देकर ॥ १४ ॥ गृहस्थ होने का अभिलाषी गृहस्थाश्रम में जावे अथवा अपनी इच्छानुसार चतुर्थ वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट हो ॥ १५ ॥ अथवा वहीं गुरु के घर पर

तत्रैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात् ।
गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतं विना ॥१६॥
शुश्रूषुर्निरभिमानो ब्रह्मचर्य्याश्रमं वसेत् ।
उपावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ॥१७॥
ततोऽसमानर्षिकुलां तुल्यां भार्य्यामरोगिणीम् ।
उद्वहेन्न्यायतोऽव्यङ्गां गृहस्थाश्रमकारणात् ॥१८॥
स्वकर्म्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथींस्तथा ।
सम्यक् सम्प्रीणयन् भक्त्या पोषयेच्चाश्रितांस्तथा १९
भृत्यात्मजान् जामयोऽथ दीनान्धपतितानपि ।
यथाशक्त्यान्नदानेन वयांसि पशवस्तथा ॥२०॥
एष धर्म्मो गृहस्थस्य ऋतावभिगमस्तथा ।
पंचयज्ञविधानन्तु यथाशक्त्या न हापयेत् ॥२१॥
पितृ-देवातिथि-ज्ञाति-भुक्तशेषं स्वयं नरः ।
भुञ्जीत च समं भृत्यैर्यथाविभवमादृतः ॥२२॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थस्याश्रमो मया ।
वानप्रस्थस्य धर्म्मं ते कथयाम्यवधार्य्यताम् ॥२३
अपत्यसन्ततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात् ॥२४॥
तत्रारण्योपभोगश्च तपोभिश्चानुकर्षणम् ।
भूमौ शय्या ब्रह्मचर्य्यं पितृदेवातिथिक्रिया ॥२५॥
होमस्त्रिषवणस्नानं जटावल्कलधारणम् ।
योगाभ्यासः सदा चैव वन्यस्नेहनिषेवणम् ॥२६॥
इत्येष पापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः ।
वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तु चरमोऽपरः ॥२७॥
चतुर्थस्य स्वरूपन्तु श्रूयतामाश्रमस्य मे ।
यः स्वधर्म्मोऽस्य धर्म्मज्ञैः प्रोक्तस्तात महात्मभिः२८
सर्व्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्य्यमकोपिता ।
यतेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन् वसतिश्चिरम् ॥२९
अनारम्भस्तथाहारो भैक्ष्यान्नेनैककालिना ।
आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावलोकनम्॥३०
चतुर्थे त्वाश्रमे धर्म्मो मयायं ते निवेदितः ।
सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणाञ्च मे शृणु ॥३१॥
सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा ।
आनृशंस्यमकार्पण्यं सन्तोषश्चाष्टमो गुणः ॥३२॥

निवास करे, गुरु के न रहने पर उनके पुत्रमें और पुत्र के भी न होने पर उनके शिष्य में निरभिमान होकर भक्ति और सेवा करता हुआ ब्रह्मचर्याश्रम में रहे। इसके अनन्तर अध्ययन समाप्त कर वहाँ से गृहस्थाश्रम की इच्छा से ॥ १६-१७ ॥ भिन्न-गोत्र में पैदा हुई, रोग रहित, स्त्रियोचित चिह्नों से अपने सदृश स्त्री को गृहस्थाश्रम के लिये ब्याहे॥ अपने कार्य से धन कमाकर पितर, देवता और अतिथियों को भक्तिपूर्वक प्रसन्न करता हुआ आश्रितों का पोषण करे ॥१९॥ शक्ति के अनुसार अन्न दान के द्वारा नौकरों को पुत्र, जाति बान्धव, दीन, अन्ध, पतितों एवं पक्षियोंका पोषण करे ॥२०॥ यह और ऋतुकाल में स्त्री प्रसङ्ग करना गृहस्थका धर्म है, उसे चाहिये कि यथा सम्भव पञ्चयज्ञों को न छोड़े ॥२१॥ अपने वैभव के अनुसार पुरुष स्वयं पितर, देवता, अतिथि और जाति बान्धवों के भोजन से अवशिष्ट अन्न को आनन्दित होकर अपने सेवकों के साथ भोजन करे ॥ २२ ॥ गृहस्थ आश्रम का यह धर्म मैंने संक्षेपसे कहा, अब वानप्रस्थ के धर्म को कहती हूँ, सुनो ॥ २३ ॥ बुद्धिमान् पुरुष अपनी सन्तान एवं देह की वृद्धता को देख कर अपनी शुद्धि के लिये वानप्रस्थ आश्रम में जावे ॥२४॥ वहाँ वन की सामग्रियों का उपभोग तथा तपस्या के द्वारा अपना शोषण, पृथ्वी में शयन, ब्रह्मचर्य और पितर, देवता और अतिथियों की क्रियायें ॥२५॥ होम, तीनों बार स्नान, जटा और वल्कल धारण,योगाभ्यास एवं सदा जङ्गली जीवों से स्नेह ॥ २६ ॥ यह सब पाप की शुद्धि के लिये अपना उपकार करने वाला वानप्रस्थ आश्रम है, अतएव भिक्षुक के लिये यह अन्तिम है ॥ २७ ॥ चतुर्थ आश्रम का स्वरूप मुझसे सुनो, जैसा कि इसका स्वरूप धर्मात्मा महात्माओं ने बतलाया है॥ समस्त विषयों का परित्याग, ब्रह्मचर्य, क्रोध का अभाव, जितेन्द्रियता, एक स्थान पर बहुत दिन तक न रहना ॥ २९ ॥ भिक्षा में मिले हुए अन्न से एक बार भोजन करना, भोजनको सिद्ध न करना, आत्मज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा, आत्मा का अवलोकन ॥ ३० ॥ चौथे आश्रम में यह धर्म है जो कि मैंने तुमसे कहा, अब अन्य वर्ण और आश्रमों के सामान्य धर्मों को मुझसे सुनो ॥ ३१ ॥ सत्य, पवित्रता, अहिंसा, डाह न करना, शान्ति,अक्रूरता, कृपणता का अभाव, आठवां सन्तोष है ॥३२॥

एते संक्षेपतः प्रोक्ता धर्म्मा वर्णाश्रमेषु ते ।
एतेषु च स्वधर्म्मेषु स्वेषु तिष्ठेत् समन्ततः ॥३३॥
यश्चोल्लङ्घ्य स्वकं धर्म्मं स्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ।
नरोऽन्यथा प्रवर्त्तेत स दण्ड्यो भूभृतो भवेत् ॥३४॥
ये च स्वधर्म्मसन्त्यागात् पापं कुर्व्वन्ति मानवाः ।
उपेक्षतस्तान् नृपतेरिष्टापूर्त्तं प्रणश्यति ॥३५॥
तस्माद्राज्ञा प्रयत्नेन सर्व्वे वर्णाः स्वधर्म्मतः ।
प्रवर्त्तन्तोऽन्यथा दण्ड्याः स्थाप्याश्चैव स्वकर्म्मसु ३६

ये संक्षेप से वर्ण और आश्रमों के धर्म तुमसे कहे इन अपने-अपने धर्मों में सब लोग रहते हैं ॥ ३३ ॥ जो पुरुष अपने वर्ण और आश्रम के धर्म को छोड़ अन्यथा आचरण करे उसे राजाद्वारा दण्ड मिलना चाहिये ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अपने धर्मको त्यागकर पाप किया करते हैं उनकी उपेक्षा करने वाले राजा के समस्त यज्ञ और पुण्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ इसलिये राजा को प्रयत्न पूर्वक अपने-अपने धर्म से अन्यथा आचरण करने वाले सारे वर्णों को दण्ड देना चाहिये और उन्हें अपने-अपने कर्मों में लगाना चाहिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में पिता-पुत्र संवादके पुत्रानुशासनमें मदालसा वाक्य नाम २८वाँ अ० समाप्त ।



उनतीसवाँ अध्याय

अलर्क उवाच

यत् कार्य्यं पुरुषाणाञ्च गार्हस्थ्यमनुवर्त्तताम् ।
बन्धश्च स्यादकरणे क्रियया यस्य चोच्छ्रितिः ॥१॥
उपकाराय यन्नृणां यच्च वर्ज्यं गृहे सता ।
यथा च क्रियते तन्मे यथावत् पृच्छतो वद ॥ २ ॥

मदालसोवाच

वत्स गार्हस्थ्यमादाय नरः सर्व्वमिदं जगत् ।
पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ॥३॥
पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा ।
कृमि-कीट-पतङ्गाश्च वयांसि पशवोऽसुराः ॥ ४ ॥
गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति च ।
मुखञ्चास्य निरीक्षन्ते अपि नो दास्यतीति वै ॥ ५ ॥
सर्व्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी ।
यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥ ६ ॥
ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामवक्त्रशिरोधरा ।
इष्टापूर्त्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा ॥ ७ ॥
शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ।
आजीव्यमाना जगतां साक्षया नोपचीयते ॥ ८ ॥
स्वाहाकारस्वधाकारौ वषट्कारश्च पुत्रक ।
हन्तकारस्तथा चान्यस्तस्यास्तनचतुष्टयम् ॥ ९ ॥
स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्च स्वधामयम् ।

अलर्क बोले—

गृहस्थ धर्म के पालन करने वाले लोगों का जो कार्य है और जिसके न करनेसे बन्धन और करने से उन्नति होती है ॥ १ ॥ घरमें रहने वाले मनुष्यों को जो छोड़ने योग्य वस्तु हैं उसे मनुष्यों को उपकार के लिये पूछनेवाले मुझसे यथावत् कहिये जिससे कि उसी प्रकार किया जाय ॥२॥

मदालसा बोली—

हे वत्स ! गृहस्थ बनकर मनुष्य सम्पूर्ण जगत् का पोषण करता है, इसलिये वह अभिलषित लोकों को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ पितृेश्वर, मुनि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, पशु, और असुर लोग ॥ ४ ॥ ये सब जीव गृहस्थ से ही जीवित रहते हैं तथा तृप्ति को प्राप्त होते हैं, ये सब गृहस्थ के मुख की ओर ताकते हैं कि वह हमें कब देगा ॥ ५ ॥ हे वत्स ! तीनों वेदों के अनुसार गृहस्थ सबका आधारभूत और कामधेनु के समान है जिसपर कि सम्पूर्ण संसार प्रतिष्ठित है तथा जो विश्व का कारण है ॥ ६॥ इस गृहस्थरूपी कामधेनु की पीठ ऋग्वेद है तथा इसी प्रकार मध्य शरीर यजुर्वेद, मुख सामवेद, शिर पृथ्वी, यज्ञ सींग और साधुसूक्त रोम हैं ॥७॥ शान्ति इसकी गोबर और पुष्टि इसका मूत्र है तथा वर्ण इसका चरण है, यह अक्षय और जगत को जीवित करने वाली है ॥ ८॥ हे अलर्क ! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार तथा हन्तकार इस गाय के चार स्तन हैं ॥ ९ ॥ स्वाहाकार स्तन को देवता, स्वधाकार को पितर तथा

मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः ॥१०॥
हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् ।
एवमाप्याययत्येषा वत्स धेनुस्त्रयीमयी ॥११॥
तेषामुच्छेदकर्त्ता च यो नरोऽत्यन्तपापकृत् ।
स तमस्यन्धतामिस्रे तामिस्रे च निमज्जति ॥१२॥
यश्चेमां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ।
पाययत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते ॥१३॥
तस्मात् पुत्र मनुष्येण देवर्षि-पितृ-मानवाः ।
भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा ॥१४॥
तस्मात् स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षिपितृतर्पणम् ।
प्रजापतेस्तथैवाद्भिः काले कुर्य्यात् समाहितः ॥१५॥
सुमनोगन्धधूपैश्च देवानभ्यर्च्च्य मानवाः ।
ततोऽग्नेस्तर्पणं कुर्य्याद्देयाश्च बलयस्तथा ॥१६॥
ब्रह्मणे गृहमध्ये तु विश्वेदेवेभ्य एव च ।
धन्वन्तरिं समुद्दिश्य प्रागुदीच्यां बलिं क्षिपेत् ॥१७॥
प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय बलिमाहरेत् ।
प्रतीच्यां वरुणायाथ सोमायोत्तरतो बलिम् ॥१८॥
दद्याद्धात्रे विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य तु ।
अर्य्यम्णेऽथ बहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्च समन्ततः ॥१९॥
नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ।
पितृणां निर्व्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखस्थितः ॥२०॥
गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ।
ततस्तोयमुपादाय तेष्वेवाचमनाय वै ॥२१॥
स्थानेषु निक्षिपेत् प्राज्ञस्तास्ता उद्दिश्य देवताः ।
एवं गृहबलिं कृत्वा गृहे गृहपतिः शुचिः ॥२२॥
आप्यायनाय भूतानां कुर्य्यादुत्सर्गमादरात् ।
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥२३॥
वैश्वदेवं हि नामैतत् सायं प्रातरुदाहृतम् ।
आचम्य च ततः कुर्य्यात् प्राज्ञो द्वारावलोकनम् ॥२४॥
मुहूर्त्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्योऽप्यतिथिर्भवेत् ।
अतिथिं तत्र सम्प्राप्तमन्नाद्येनोदकेन च ॥२५॥
सम्पूजयेद्यथाशक्ति गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।
न मित्रमतिथिं कुर्य्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥२६॥
अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम् ।

वषट्कार को मुनि लोग पीते हैं । देवता, भूत और सुरों से दूसरे लोग ॥ १० ॥ जो मनुष्य आदि हैं वे हन्तकार को पीते हैं । हे पुत्र ! इस प्रकार से तीनों वेद स्वरूपी धेनु सब को तृप्त करतीहै ॥११॥ जो मनुष्य ऐसी कामधेनु की उपेक्षा करता है वह पापी अन्धकार पूर्ण नरकों में गिरता है ॥ १२॥ देवताओं से पूजित इस गाय को जो मनुष्य पालता है वह उचित काल में स्वर्ग को जाता है ॥ इसलिये हे पुत्र ! मनुष्य को चाहिये कि वह प्रति दिन अपने शरीर की भांति देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और भूतों का पोषण करे ॥ १४ ॥ अतएव स्नान कर पवित्र होकर सावधानी से समय पर जल से देवता, ऋषि, पितर और प्रजापति का तर्पण करे ॥ १५ ॥ मनुष्य पुष्प, गन्ध और धूप से देवताओं को पूजकर अग्नि में होम करे और बलि-दान देवे ॥ १६ ॥ घर के बीच में ब्रह्मा के लिये और विश्वेदेवों को बलि देवे तथा पूर्वोत्तर दिशा में धन्वंतरि के उद्देश्य से बलि देवे ॥ १७ ॥ पूर्व दिशा में इन्द्र के लिये, दक्षिण में यमराज के लिये बलि देवे । पश्चिममें वरुण को और उत्तरमें सोम को बलि देवे ॥१८ ॥ घर के दरवाज़े पर धाताऔर विधाता को बलिदान देवे तथा अर्य्यमा को घर के बाहर चारों ओर बलिदान देना चाहिये ॥१९॥ राक्षस और भूतों को आकाश में बलि देवे तथा गृहस्थी तत्पर और सावधान चित्त होकर दक्षिण की ओर मुख करके पितरों को बलि देवे । इसके अनन्तर जल लेकर उन-उन देवताओं का उद्देश्य करके आचमन के लिये पूर्वोक्त स्थानोंमें जल छोड़े इस प्रकार गृहपति पवित्र होकर घर में गृह बलि करे ॥ २०, २१, २२ ॥ फिर भूतों की तृप्ति के लिये सम्मानपूर्वक उत्सर्ग करे तथा कुत्तों, श्वपचों और पक्षियों के लिये पृथ्वी में बलि दे ॥ २३ ॥ इसको वैश्वदेव कर्म कहते हैं यह सन्ध्या और प्रातःकाल के समय किया जाता है । विद्वान् को चाहिये कि इसके बाद आचमन करके द्वार की ओर देखे॥२४॥ मुहूर्त के आठवें भाग में भोजनकरे और उस समय यदि कोई अतिथि आजाय तो उसको भी अन्न और जल दान करे ॥ २५ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार गन्ध, पुष्पादि से उसकी पूजा करे तथा यदि अतिथि अपने ग्राम का रहने वाला या मित्र न भी हो तो भी उसका सत्कार करना चाहिये ॥ २६ ॥ उस समय उपस्थित होने वाला, जिसका नाम

बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम् ।
ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं स पूज्यः शक्तितो बुधैः ॥२७
न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायञ्चापि पण्डितः ।
शोभनाशोभनाकारं त्वं मन्येत प्रजापतिम् ॥२८॥
अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते ।
तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥२६॥
तस्मै अदत्त्वा यो भुङ्क्ते स्वयं किल्विषभुङ्नरः ।
स पापं केवलं भुङ्क्ते पुरीषञ्चान्यजन्मनि ॥३०॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते ।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥३१॥
अप्यंम्बुशाकदानेन यद्वाप्यश्नाति स स्वयम् ।
पूजयेत् तु नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात् ॥३२॥
कुर्य्याच्चाहरहः श्राद्धमन्नाद्यं नोदकेन च ।
पितृनुद्दिश्य विप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा ॥३३॥
अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्य ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
भिक्षाञ्च याचतां दद्यात् परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ३४॥
ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ।
अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः ॥३५॥
भोजनं हन्तकारं वा अग्रं भिक्षामथापि वा ।
अदत्त्वा तु न भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः ॥३६॥
पूजयित्वातिथीनिष्टान् ज्ञातीन् बन्धूंस्तथार्थिनः ।
विकलान् बालवृद्धांश्च भोजयेच्चातुरांस्तथा ॥३७॥
वाञ्छते क्षुत्परीतात्मा यच्चान्योऽन्नमकिञ्चनः ।
कुटुम्बिना भोजनीयः समर्थो विभवे सति ॥३८॥
श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
सीदता यत् कृतं तेन तत् पापं स समश्नुते ॥३६॥
सायञ्चैव विधिः कार्य्यः सूर्य्योढं तत्र चातिथिम् ।
पूजयेत यथाशक्ति शयनासन-भोजनैः ॥४०॥
एवमुद्वहतस्तात गार्हस्थ्यं भारमाहितम् ।
बन्धु विधाता देवाश्च पितरश्च महर्षयः ॥४१॥
श्रेयोऽभिवर्षिणः सर्व्वे तथैवातिथिबान्धवाः ।
पशुपक्षिगणास्तृप्ता ये चान्ये सूक्ष्मकीटकाः ॥४२॥
गाथाश्चात्र महाभाग स्वयमत्रिरगायत ।

कुल इत्यादि ज्ञात न हो ऐसा भूखा, थका हुआ, भिक्षा माँगता हुआ, निर्धन इस प्रकार के ब्राह्मण को अतिथि कहा है वह बुद्धिमानों से शक्ति के अनुसार पूज्य है ॥ २७ ॥ पण्डित को चाहिये कि अतिथि से गोत्र, चरण और स्वाध्याय को भी न पूछे और वह सुन्दर हो या कुरूप उसको ब्रह्माजी के समान समझे ॥ २८ ॥ जिसकी स्थिति नित्य न हो उसको अतिथि कहते हैं, उसके तृप्त होने से गृहस्थी ऋण से मुक्त हो जाता है ॥ २६ ॥ उसको भोजन न कराकर जो मनुष्य स्वयं भोजन करलेता है वह पापी है और वह अगले जन्म में विष्ठा खाता है ॥३०॥ जिसके घर से अतिथि निराश हो कर लौटता है वह अपना पाप उस गृहस्थ को दे कर उसका पुण्य ले जाता है ॥ ३१॥ इसलिये जल शाक आदि जो कुछ स्वयं खाय उसी से मनुष्यको चाहिये कि अपनी शक्ति के अनुसार अतिथि की पूजा करे ॥ ३२ ॥ और श्राद्ध के दिन पितरों का उद्देश्य करके अन्न और जल दानकरे और ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥३३ ॥ जो कुछ अन्न बचे उसे ब्राह्मण को देदे तथा परिव्राजक या ब्रह्मचारी जो भिक्षा माँगता हुआ आवे उसको दे ॥ ३४ ॥ एक ग्रास को भिक्षा और चार ग्रास को अग्र कहते हैं तथा चार अग्र को श्रेष्ठ ब्राह्मण हन्तकार कहते हैं ॥ ३५ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार हन्तकार, अग्र अथवा भिक्षा प्रमाण अतिथि को भोजन दिये विना स्वयं न खावे ॥ ३६ ॥ अतिथियों, प्रियजनों, सजातियों, बन्धुओं तथा याचकों को सम्मानित करके व्याकुलों, बालकों, वृद्धों और आतुरों को भोजन करावे ॥ ३७ ॥ तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार भूखे, प्यासे, निर्धन और कुटुम्बियों को भोजन करावे ॥ ३८॥ जो सजातीय अपने धनवान् जाति वाले के पास आकर भी कष्ट पाता है तो फि जिस पाप को वह दुःखी पुरुष करता है वह पाप धनवान् को लग जाता है ॥३६॥ सायंकाल की जो विधि हो उसको करना चाहिये, तथा उस समय जो अतिथि आवे उसको सूर्यवत् समझे और उस के सोने, बैठने और भोजनों का यथाशक्ति प्रबन्ध करे ॥४०॥ हे अलर्क ! यह भार गृहस्थों के ऊपर रक्खा गया है । जो इसको धारण करते हैं उनसे ब्रह्माजी, देवता, पितृगण, महर्षि॥४१॥ तथा अतिथि भाई, बन्धु, पशु, पक्षी और कीट सब प्रसन्न हो हैं तथा उनके कल्याण की कामना करते हैं ॥ ४२ हे महाभागी पुत्र ! यहाँ अत्रि मुनि ने ऐसा

ताः शृणुष्व महाभाग गृहस्थाश्रमसंस्थिताः ॥४३॥
देवान् पितॄंश्चातिथींश्च तद्वत् सम्पूज्य बान्धवान्।
ज्ञातींस्तथा गुरूंश्चैव गृहस्थो विभवे सति ॥४४॥
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि।
वैश्वदेवं हि नामैतत् कुर्य्यात् सायं तथा दिने ॥४५॥
मांसमन्नं तथा शाकं गृहे यच्चोपसाधितम्।
न च तत् स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्न निर्व्वपेत् ॥४६॥

गृहस्थियों के लिये एक गाथा कही है उसको तुम सुनो ॥ ४३ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थी देवताओं, पितरों और उसी प्रकार बान्धवों, सजातियों तथा गुरु की पूजा करके ॥ ४४ ॥ कुत्तों, डोम और पक्षियों आदि को भोजन करावे, इसी को वैश्वदेवकर्म कहते हैं इसको दिनमें तथा सायंकाल के समय करना चाहिये ॥ ४५ ॥ मांस, अन्न, शाक या अन्य जो कुछ वस्तु घर पर हो उसको उपरोक्त लोगोंको अर्पित किये विना स्वयं न खावे॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसोपदेश नाम २९वाँ अध्याय समाप्त।

तीसवाँ अध्याय

मदालसोवाच

नित्यं नैमित्तिकञ्चैव नित्यनैमित्तिकं तथा।
गृहस्थस्य त्रिधा कर्म्म तन्निशामय पुत्रक ॥ १ ॥
पञ्चयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत् कथितं तव।
नैमित्तिकं तथैवान्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम् ॥ २ ॥
नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्व्वश्राद्धादि पण्डितैः।
तत्र नैमित्तिकं वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयं तव ॥ ३ ॥
पुत्रजन्मनि यत् कार्य्यं जातकर्मसमं नरैः।
विवाहादौ च कर्त्तव्यं सर्व्वं सम्यक् क्रमोदितम् ॥ ४ ॥
पितरश्चात्र सम्पूज्याः ख्याता नान्दीमुखास्तु ये।
पिण्डांश्च दधिसंमिश्रान् दद्याद्यवसमन्वितान् ॥५॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः।
ैश्वदेवविहीनं तत् केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ ६ ॥
ुग्माश्चात्र द्विजाः कार्य्यास्ते च पूज्याःप्रदक्षिणम्।
ृतन्नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्द्ध्वदेहिकम् ॥ ७ ॥
ृताहनि च कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत्।
ेवहीनं तथा कार्य्यं तथैवैकपवित्रकम् ॥ ८ ॥
ावाहनं न कर्त्तव्यमग्नौकरणवर्ज्जितम्।
ातस्य पिण्डमेकंच दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥ ९ ॥
तिलोदकंचापसव्यं तन्नामस्मरणान्वितम्।
अक्षय्यममुकस्येति स्थाने विप्रविसर्ज्जने ॥१०॥

मदालसा बोली—

हे पुत्र! गृहस्थ के त्रिविधात्मक कर्म अर्थात् (१) नित्य (२) नैमित्तिक (३) नित्य नैमित्तिक को सुनो ॥ १ ॥ पञ्चयज्ञ के आश्रित जो कर्म हैं उन को नित्य कहते हैं और पुत्र-जन्म आदिके उपलक्ष में हुए उत्सवों को नैमित्तिक कहते हैं ॥ २॥ पंडित लोग पर्व और श्राद्ध आदि को नित्यनैमित्तिक कहतेहैं अब अभ्युदय आदिक श्राद्ध जो नैमित्तिक हैं उनको कहती हूँ सुनो ॥३ ॥ मनुष्यों को चाहिये कि पुत्र के जन्म होने पर जातिकर्म के अनुसार कार्य करें और क्रम से विवाह आदि भी करें ॥४॥ यहाँ पर पितरों को भी पूजना चाहिये जिनको नान्दी मुख कहते हैं और उनको दधि और यव मिले हुए पिण्ड देने चाहिये ॥ ५ ॥ यजमान को चाहिये कि वह उत्तर अथवा पूर्व मुख होकर बैठे, कुछ मनुष्य उस समय वैश्वदेव कर्म नहीं करना चाहते हैं ॥ ६ ॥ वहाँ पर दो ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा कर उनको पूजे। इसको नैमित्तिक व अन्य और्द्ध्वदैहिक कहते हैं ॥ ७ ॥ जिस दिन जिसकी मृत्यु हो उस दिन उसका एकोद्दिष्ट श्राद्ध होना चाहिये। वहाँ पर किसी देवता का पूजन न होना चाहिये तथा एक पवित्री रखना चाहिये ॥ ८ ॥ और उसमें अग्निकरण तथा आवाहन भी न करना चाहिये और जूंठन के पास प्रेत को एक पिण्ड देना चाहिये ॥ ९ ॥ फिर तिलोदक लेकर यज्ञोपवीत को दाहिनी बगल से बाँई बगल में करके मृतक के नाम का स्मरण करे और कहे कि यह अमुक को प्राप्त हो, इस प्रकार कर्म करने पर ब्राह्मण की आवश्यकता नहीं ॥ १० ॥ श्राद्ध करने

अभिरम्यतामिति ब्रूयाद्ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्महे ।
प्रतिमासं भवेदेतत् कार्य्यमासंवत्सरं नरैः ॥११॥
अथ संवत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियते नरैः ।
सपिण्डीकरणं कार्य्यं तस्यापि विधिरुच्यते ॥१२॥
तत्रापि दैवरहित मेकार्द्धैकपवित्रकम् ।
नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्ज्जितम् ।
अपसव्यञ्च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् ॥१३॥
विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ।
तं कथ्यमानमेकाग्रो वदन्त्या मे निशामय ॥१४॥
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् ।
कुर्य्यात् पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक ॥१५॥
पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यञ्चैव प्रसेचयेत् ।
ये समाना इति जपन् पूर्व्ववच्छेषमाचरेत् ॥१६॥
स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् ।
सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥१७॥
प्रतिसंवत्सरं कार्य्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः ।
मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् ॥१८॥
पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदकाः ।
मातुः सपिण्डा ये च स्युर्ये च मातुः सहोदकाः॥१९॥
कुर्य्युरेनं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतासुतः ।
कुर्य्युर्मातामहायैवं पुत्रिकातनयास्तथा ॥२०॥
द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामह-पितामहान् ।
पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि ॥२१॥
सर्व्वाभावे स्त्रियः कुर्य्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम् ।
तदभावे च नृपतिः कारयेत स्वकुटुम्बिना ॥२२॥
तज्जातीयैर्नरैः सम्यग्दाहाद्याः सकलाः क्रियाः ।
सर्व्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः ॥२३॥
एतास्ते कथिता वत्स नित्यनैमित्तिकास्तथा ।
क्रियां श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकीं शृणु॥२४॥
दर्शस्तत्र निमित्तं वै कालश्चन्द्रक्षयात्मकः ।
नित्यतां नियतः कालस्तस्याः संसूचयत्यथ ॥२५॥

वाले यजमान को ब्राह्मण के विसर्जन के समय 'अभिरम्यताम्' ऐसा कहना चाहिये और ब्राह्मण उसका उत्तर दे 'अभिरताः स्महे'। मनुष्योंको इस भांति प्रति मास एक वर्षतक करना चाहिये ॥११॥ फिर एक वर्ष के बाद सपिंडीकरण करे उसकी विधि इस तरह कही है ॥१२॥ वहाँ पर एक अर्घ्य दे और एक पवित्री रक्खे तथा वहाँपर अग्निकरण अथवा देवताओं का आवाहन न करे । वहाँ भी अपसव्य रहना चाहिये तथा अयुज ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ १३ ॥ वहाँ पर प्रति मास अधिक क्रिया करता जाय। उस क्रिया को मैं अब कहती हूँ तुम एकाग्र चित्त होकर सुनो ॥ १४ ॥ तिल, गन्ध और जलसे युक्त चार पात्र वहाँ रक्खे हे पुत्र! उनमें तीन पात्र पितर के लिये और एक पात्र प्रेत के लिये रक्खे ॥१५॥ तीनों पात्रों के बीच में प्रेत पात्र को रक्खे और उसको जलसे अर्घ्य दे और 'ये समाना' इत्यादि मन्त्रों को जपता हुआ पूर्ववत् शेषों में भी करे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार स्त्रियों की भी एकोद्दिष्ट करनी चाहिये। यदि पुत्र न हो तो स्त्री का सपिंडीकरण नहीं होता ॥ १७ ॥ स्त्रियों का एकोद्दिष्ट श्राद्ध प्रति वर्ष करना चाहिये। जिस तिथि को उसकी मृत्यु हो उसकी क्रिया ऊपर कहे अनुसार होनी चाहिये ॥ १८॥ पुत्र के अभाव में सपिंड को और उसके भी अभाव में सहोदक को क्रिया करनी चाहिये अथवा उसकी माताका सपिंड उसका सहोदक करे ॥१९॥ जिसके पुत्र न हो उस की बेटी का बेटा इस विधि के अनुसार कार्य करे और मातमह की क्रिया उसकी पुत्री करे अथवा उसका पुत्र ॥ २० ॥ द्व्यामुष्यायण नामक जो नाना या बाबा हैं उनको न्यायपूर्वक नैमित्तिक श्राद्धों से से पूजे ॥२१॥ जिसके कोई न हो उसकी क्रिया उस की स्त्री करे परन्तु उसमें वेदमंत्र न पढ़े और यदि स्त्री भी न हो तो उसकी क्रिया राजा उसके कुटुम्बियों द्वारा करादे ॥ २२॥ अथवा उसके सजातीय मनुष्यों से दाह आदि सब क्रियायें करादे क्योंकि राजा सब वर्णों के मनुष्यों का बन्धु होता है ॥२३॥ मदालसा बोली—"हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुमको नित्य-नैमित्तिक क्रियायें बतलाईं। अब और श्राद्ध की नित्य-नैमित्तिक क्रियायें सुनो ॥२४॥ दर्श अर्थात् अमावस निमित्त है और चन्द्रग्रहण कालको नित्य कहतेहैं उस कालकीहुई क्रियायें नित्य कहलाती हैं॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अलर्कानुशासन में नैमित्तिकादि श्राद्धकल्प नाम ३०वाँ अ० समाप्त ।

इकत्तीसवाँ अध्याय

मदालसोवाच

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः।
स तु लेपभुजो याति प्रलुप्तः पितृपिण्डतः ॥ १ ॥
तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्रलेपभुजान्नभुक्।
सोऽपि सम्बन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते ॥ २ ॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ॥ ३ ॥
लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात्।
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः ॥ ४ ॥
इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुषः।
यजमानात् प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ॥ ५ ॥
ततोऽन्ये पूर्व्वजाः सर्व्वे ये चान्ये नरकौकसः।
ये च तिर्य्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ६ ॥
तान् सर्व्वान् यजमानो वै श्राद्धं कुर्व्वन् यथाविधि।
समाप्याययते वत्स येन येन शृणुष्व तत् ॥ ७ ॥
अन्नप्रकिरणं यत् तु मनुष्यैः क्रियते भुवि।
तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥ ८ ॥
यदम्बु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक।
तेन ते तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥ ९ ॥
यास्तु गात्राम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले।
ताभिरप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥१०॥
उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चान्नकणिका भुवि।
ताभिराप्यायनं प्राप्ता ये तिर्य्यक्त्वं कुले गताः ॥११॥
ये वा दग्धाः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः।
विपन्नास्तेऽन्नविकिर-सम्मार्ज्जनजलाशिनः ॥१२॥
भुक्त्वा चाचामतां यच्च जलं यच्चाङ्घ्रिप्रसेचने।
ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै ॥१३॥
एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम्।
कश्चिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा ॥१४॥
तेनान्ये तत्कुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गताः।
प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक् श्राद्धक्रियावताम् ॥१५॥
अन्यायोपार्ज्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः।
तेन चाण्डाल-पुक्कसाद्यासु योनिषु ॥१६॥

मदालसा बोली—

सपिण्डीकरण के बाद पिता के प्रपितामह लेपभुज के भागी हैं क्योंकि उनको पितृपिण्ड नहीं दिया जाता ॥ १ ॥ उनसे भी चौथे जो वृद्ध प्रपितामह हैं वे सम्बन्धहीन होनेके कारण भुजान्न लेप के भोजन करने वाले हैं ॥२॥ पिण्ड सम्बन्धी तीन पुरुष पिता, पितामह और प्रपितामह ही हैं ॥ फिर पितामह के जो पितामह हैं उनमें तीन तक लेप सम्बन्धी हैं और सातवाँ यजमान भी लेप सम्बन्धी है ॥ ४ ॥ इनको ऋषि लोग सातों पौरुष सम्बन्ध कहते हैं और यजमान से ऊपर जितने हैं वे अनुलेप के अधिकारी हैं ॥५॥ अनुलेप के भागी पूर्वजों से ऊपर जितने भी पूर्वज नरक में प्राप्त हैं अथवा तिर्य्यकयोनि या भूत योनि में स्थित हैं ॥६॥ हे पुत्र ! उन सबको यजमान श्राद्ध करता हुआ जिस प्रकार तृप्त करता है वह सुनो ॥ ७ ॥ श्राद्धके समय मनुष्य जो अन्न छिटकाते हैं उससे वे पितर तृप्त होते हैं जो पिशाच योनि में हैं ॥८॥ हे पुत्र ! स्नान करते समय यजमान के वस्त्र से जो जल पृथ्वी पर पड़ता है उससे उन पितरों की तृप्ति होती है जो वृक्षत्व को प्राप्त होते हैं ॥९॥ यजमान के शरीर से जो जल-कण भूमि पर गिरते हैं उनसे वे पितर तृप्त होते हैं जो देवयोनिमें स्थित हैं॥१०॥ पिण्डको उठाने में जो अन्न उससे गिरताहै उससे वे पितर तृप्त होते हैं जो तिर्य्यक् योनिमें हैं ॥११॥ मार्जन करने से जो अन्न और जल गिरता है उस से वे मृत बालक तृप्त होते हैं जिनका संस्कार नहीं हुआ था परन्तु जो क्रियायोग्य थे ॥१२॥ और श्राद्ध में ब्राह्मण लोग जो भोजन करके हाथ पाँव धोते हैं उस पृथ्वी पर गिरे हुए जलसे अन्य पितर तृप्त होते हैं ॥१३॥ इस प्रकार यजमान या ब्राह्मण द्वारा छोड़ी गई जूंठन तथा उनके द्वारा छिटकाया हुआ अन्न और जल शुद्ध है ॥ १४ ॥ हे वत्स ! श्राद्ध करने वाले के पितर जहाँ जिस योनि में हों तृप्त रहते हैं ॥ १५ ॥ अन्याय से संचित धन से जो मनुष्य श्राद्ध करते हैं उससे वे पितर तृप्त होते हैं जो चाण्डाल और डोम योनि में हैं ॥१६॥

एवमाप्यायनं वत्स बहूनामिह बान्धवैः।
श्राद्धं कुर्व्वद्भिरम्बु विन्दुक्षेपेण जायते ॥१७॥
तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि।
कुर्व्वीत कुर्व्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति ॥१८॥
तस्य कालानहं वक्ष्ये नित्यनैमित्तिकात्मकान्।
विधिना येन च नरैः क्रियते तन्निबोध मे ॥१९॥
कार्य्यं श्राद्धममावास्यां मासि मास्युडुपक्षये।
तथाष्टकास्वप्यवश्यमिच्छाकालं निबोध मे ॥२०॥
विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्य्येन्दुग्रहणेऽयने।
विषुवे रविसंक्रान्तौ व्यतिपाते च पुत्रक ॥२१॥
श्राद्धार्हद्रव्यसम्प्राप्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने।
जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्व्वीत चेच्छया ॥२२॥
विशिष्टः श्रोत्रियो योगी वेदविज्ज्येष्ठसामगः।
त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥२३॥
दौहित्र ऋत्विग्जामातृ-स्वस्रीयाः श्वशुरस्तथा।
पञ्चाग्निकर्म्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोऽथ मातुलः ॥२४॥
मातापितृपरश्चैव शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः।
एते द्विजोत्तमाः श्राद्धे समस्ताः केतनक्षमाः॥२५॥
अवकीर्णी तथा रोगी न्यूनश्चाङ्गैस्तथाधिकः।
पौनर्भवस्तथा काणः कुण्डो गोलोऽथ पुत्रक ॥२६॥
मित्रध्रुक् कुनखी क्लीवः श्यावदन्तो निराकृतिः।
अभिशस्तस्तु तातेन पिशुनः सोमविक्रयी ॥२७॥
कन्यादूषयिता वैद्यो गुरुपित्रोस्तथोज्झकः।
भृतकाध्यापकोऽमित्रः परपूर्व्वापतिस्तथा ॥२८॥
वेदोज्झोऽथाग्निसन्त्यागी वृषलीपतिदूषितः।
तथान्ये च विकर्म्मस्था वर्ज्याः पित्र्येषु वै द्विजाः २९
निमन्त्रयेत पूर्व्वेद्युः पूर्व्वोक्तान् द्विजसत्तमान्।
दैवे नियोगे पित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत् ॥३०॥
तैश्च संयतिभिर्भाव्यं यश्च श्राद्धं करिष्यति।
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति।
पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन् रेतसि शेरते ॥३१॥
गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुंक्ते यश्च गच्छति।

हे पुत्र! इस प्रकार श्राद्ध में अन्न और जल छिड़काने से भी बहुत से बन्धुओं की तृप्ति होती है॥ १७ ॥ जो मनुष्य भक्ति से शाक मात्र से विधि पूर्वक श्राद्ध करता है उसके कुल में किसी को दुःख नहींहोता ॥१८॥ अब मैं नित्य और नैमित्तिक रूप काल में जो श्राद्ध मनुष्यों से किये जाने चाहिये उनका बोध तुमको कराती हूँ ॥ १९ ॥ जो श्राद्ध अमावस्या, चन्द्रग्रहण, पितर पक्ष के आठवें दिन अथवा चाहें जब इच्छानुसार किये जाँय उनको कहती हूँ ॥२०॥ हे पुत्र! उत्तम ब्राह्मण के आने के समय, सूर्य और चन्द्रग्रहण में, अयन में, मेष और तुला की रवि संक्रान्ति में तथा व्यतीपात योग में भी श्राद्ध करना चाहिये ॥ २१ ॥ जहाँ श्राद्ध योग्य द्रव्य मिले वहाँ, तथा दुष्ट स्वप्न दीखने पर, जन्म नक्षत्र आने पर तथा ग्रहादिकों की पीड़ा उपस्थित होने पर श्राद्ध करना चाहिये ॥ २२ ॥ उत्तम पण्डित, योगी, वेदज्ञ, अपने से ज्येष्ठ, साम गान करने वाले, यजुर्वेद जानने वाले, ऋग्वेद के जानने वाले, त्रिवेदी, तथा षडङ्ग के जानने वाले ॥२३॥ धेवता, पुरोहित, जमाई, बहिन, श्वसुर, पंचाग्नि कर्म में निष्ठ, तपोनिष्ठ मामा ॥ २४ ॥ जो माता पिता का भक्त हो वह, शिष्य, सम्बन्धी, भाई बन्धु ये सब श्राद्ध में रहने योग्य उत्तम ब्राह्मण हैं ॥ २५ ॥ हे पुत्र! प्रायश्चित करने वाला, रोगी, अङ्गहीन, अधिकाङ्ग, पुनर्भव, काना, कुण्ड, गोलक ॥ २६ ॥ मित्रद्रोही, बड़े छोटे नख वाला, नपुंसक, कृष्णदन्त, कुरूप, मर्यादाहीन, माता,पिता से त्यागा हुआ, चुगलखोर, शराव बेचने वाला॥२७॥ जो कन्या में दोष लगाता है वह वैद्य जिसने गुरु और पिता को त्याग दिया हो वह, दासों का अध्यापक, शत्रुता रखने वाला, पर-पूर्वा स्त्री का पति ॥२८॥ जो वेद को न माने वह, अग्नि त्यागी, वृषलीपति और कुकर्मी ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्धों में निमंत्रित करना वर्जित है ॥ २९ ॥ पहिले कहे हुए उत्तम ब्राह्मणों को एक दिन पहिले निमन्त्रण देकर बुलाना चाहिये देव कर्म हो अथवा पितृ कर्म दोनों में ही ॥३०॥ जो श्राद्ध करता है उसको चाहिये कि उन ब्राह्मणों को दक्षिणा दे। श्राद्ध करके और भोजन करके जो मनुष्य उस दिन मैथुन करता है उसके पितरों को उन स्त्री पुरुष के रजवीर्य में एक महीने तक सोना पड़ता है॥३१॥ जो श्राद्ध के दिन स्त्री से संसर्ग करता है, दुबारा भोजन करता है अथवा आता जाता है उसके पितर को एक

रेतोमूत्रकृताहारास्तन्मासं पितरस्तयोः ॥३२॥
तस्मात्तु प्रथमं कार्य्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ।
अप्राप्तौ तद्दिने चापि वर्ज्या योषित्प्रसङ्गिनः ॥३३॥
भिक्षार्थमागतान् वापि काले संयमिनो यतीन् ।
भोजयेत् प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः ॥३४॥
यथैव शुक्लपक्षाद्वै पितॄणामसितः प्रियः ।
तथापराह्णः पूर्व्वाह्णात् पितॄणामतिरिच्यते ॥३५॥
सम्पूज्य स्वागतेनैतानभ्युपेतान् गृहे द्विजान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥३६॥
पितॄणामयुजः कुर्य्याद्युग्मान् दैवे द्विजोत्तमान् ।
एकैकं वा पितॄणाञ्च देवानाञ्च स्वशक्तितः ॥३७॥
तथा मातामहानाञ्च तुल्यं वा वैश्वदेविकम् ।
पृथक् तयोस्तथा चान्ये केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥३८॥
प्राङ्मुखान् दैवसङ्कल्पान् पैत्र्यन् कुर्य्यादुदङ्मुखान् ।
तथैव मातामहानां विधिरुक्तो मनीषिभिः ॥३९॥
विष्ठरार्थे कुशान् दत्त्वा पूज्य चार्घ्यादिना बुधः ।
पवित्रकादि वै दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ॥४०॥
कुर्य्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मन्त्रतो द्विजः ।
यवाम्भोभिस्तथा चार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदेविकम् ॥४१॥
गन्धमाल्याम्बुधूपंच दत्त्वा सम्यक् सदीपकम् ।
अपसव्यं पितॄणाञ्च सर्व्वमेवोपकल्पयेत् ॥४२॥
दर्भांश्च द्विगुणान् दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ।
मन्त्रपूर्व्वं पितॄणाञ्च कुर्य्यादावाहनं बुधः ॥४३॥
अपसव्यं तथा चार्घ्यं यवार्थंच तथा तिलैः ।
निष्पादयेन्महाभाग पितॄणां प्रीणने रतः ॥४४॥
अग्नौ कार्य्यमनुज्ञातः कुरुष्वेति ततो द्विजैः ।
जुहुयाद्व्यञ्जनंक्षारवर्ज्यमन्नं यथाविधि ॥४५॥
अग्नये कव्यवाहाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः ।
सोमाय वै पितृमते स्वाहेत्यन्या तथा भवेत् ॥४६॥
यमाय प्रेतपतये स्वाहेति त्रितयाहुतिः ।
हुतावशिष्टं दद्याच्च भाजनेषु द्विजन्मनाम् ॥४७॥
भाजनालम्बनं कृत्वा दद्याच्चान्नं यथाविधि ।
यथासुखं जुषध्वं भो इति वाच्यमनिष्ठुरम् ॥४८॥
भुञ्जीरंश्च ततस्तेऽपि तच्चित्ता मौनिनः सुखम् ॥४९॥

मास तक रेत और मूत्र आदि खाना पीना पड़ता है ॥ ३२ ॥ इसलिये विद्वान् को चाहिये कि पहिले ब्राह्मण को निमन्त्रणदे और उसदिन योग्य ब्राह्मण न मिलने पर स्त्रीगामी ब्राह्मण को न बुलावे ॥३३॥ वरन् भिक्षा के लिये आये हुए यती अथवा संयमी को प्रणाम करके प्रसन्न मन से भोजन करावे॥३४॥ जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की अपेक्षा कृष्णपक्ष पितरों को अधिक प्रिय है उसी तरह पूर्वाह्न से अपराह्न भी उनको अधिक प्रिय है ॥ ३५ ॥ तो जो ब्राह्मण घर पर आगये हों उनकी स्वागत पूजा आदि करके उनके हाथ धुलावे तथा उनको आसन पर बिठावे ॥ ३६ ॥ श्राद्ध में ब्राह्मणों को विषम और देवकार्य में सम भोजन कराना चाहिये । पितृकार्य में एक से तीन ब्राह्मण तक और देवकार्य में अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराने चाहिये ॥ ३७ ॥ इसी तरह नाना, मामाओं के लिये वैश्वदेव कर्म हैं परन्तु कुछ पुरुषों का मत है कि पितरों और नाना और मामाओं के वैश्वदेवीय कर्म पृथक् २ हैं ॥३८॥ देवताओं के लिये सङ्कल्प पूर्व मुख और पितरों के लिये उत्तर मुख होकर करना चाहिये, इसी तरह विद्वानों ने नाना मामाओं के लिये विधि कही है ॥ बुद्धिमान् को चाहिये कि उनको आसन के लिये कुशा दे और अर्घ्य देकर पूजन करे तथा पवित्रा आदि देकर उनसे आज्ञा ले ॥४०॥ ब्राह्मण मन्त्रों से देवताओं का आवाहन करे तथा यव और जल से अर्घ्य देकर विश्वदेव को दे ॥ ४१ ॥ फिर गन्ध, माला, जल, धूप, दीप स्वयं अपसव्य होकर सब पितरों को प्रदान करे ॥ ४२ ॥ फिर द्विगुण कुश विश्वदेव को देकर और उनसे आज्ञा लेकर मन्त्रों द्वारा पितरों का आवाहन करे ॥४३॥ हे महाभाग ! फिर अपसव्य होकर यव अथवा तिलों का अर्घ्य पितरों को प्रसन्न करने के लिये दे ॥ ४४ ॥ फिर ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर अग्निकार्य करे और व्यञ्जन नमक को छोड़ केवल अन्न लेकर विधि पूर्वक ॥४५॥ अग्नि में 'कव्यवाहाय स्वाहा' यह कह कर प्रथम आहुति दे और 'सोमाय वै पितृमते स्वाहा' ऐसा कहकर दूसरी आहुति दे ॥ ४६ ॥ 'यमाय प्रेतपतये स्वाहा' यह कह तीसरी आहुति दे और आहुति देकर जो अन्न शेष रहजाय उसको ब्राह्मण के पात्र में डाल दे ॥ ४७ ॥ तथा उस पात्रमें और भी अन्न विधिपूर्वक दे और ब्राह्मणों से प्रीति सहित कहे कि आप सुख से भोजन कीजिये ॥४८॥ उस समय ब्राह्मणों को मौन पूर्वक सुख से भोजन

यद्यदिष्टतमं तेषां तत् तदन्नमसत्वरम् ।
अक्रुध्यंश्च नरो दद्यात् सम्भवेन प्रलोभयन् ॥५०॥
रक्षोघ्नांश्च जपेन्मन्त्रांस्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ।
सिद्धार्थकैश्च रक्षार्थं श्राद्धं हि प्रचुरच्छलम् ॥५१॥
पृष्टैस्तृप्तैश्च तृप्ताः स्थ तृप्ताः स्म इतिवादिभिः ।
अनुज्ञातो नरस्त्वन्नं प्रकिरेद्भुवि सर्व्वतः ॥५२॥
तद्वदाचमनार्थाय दद्यादापः सकृत् सकृत् ।
अनुज्ञांच ततः प्राप्य यतवाक्कायमानसः ॥५३॥
सतिलेन ततोऽन्नेन पिण्डान् सव्येन पुत्रक ।
पितॄनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥५४॥
पितृतीर्थेन तोयंच दद्यात् तेभ्यः समाहितः ।
पितॄनुद्दिश्य यद्भक्त्या यजमानो नृपात्मज ॥५५॥
तद्वन्मातामहानांच दत्त्वा पिण्डान् यथाविधि ।
गन्धमाल्यादिसंयुक्तं दद्यादाचमनं ततः ॥५६॥
दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या सुस्वधास्त्विति तान्वदेत्
तैश्च तुष्टैस्तथेत्युक्त्वा वाचयेद्वैश्वदेविकान् ॥५७॥
प्रीयन्तामिति भद्रं वो विश्वेदेवा इतीरयेत् ।
तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तदाशिषः ॥५८॥
विसर्ज्जयेत् प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः ।
आद्वारमनुगच्छेच्चागच्छेच्चानुप्रमोदितः ॥५९॥
ततो नित्यक्रियां कुर्य्याद्भोजयेच्च तथातिथीन् ।
नित्यक्रियां पितॄणांच केचिदिच्छन्ति सत्तमाः॥६०॥
न पितॄणां तथैवान्ये शेषं पूर्व्ववदाचरेत् ।
पृथक्पाकेन नेत्यन्ये केचित् पूर्व्वंच पूर्व्ववत् ॥६१॥
ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥६२॥
एवं कुर्व्वीत धर्म्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः ।
यथा वा द्विजमुख्यानां परितोषोऽभिजायते ॥६३॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतपस्तिलाः ।
वर्ज्ज्यानि चाहुर्विप्रेन्द्र कोपोऽध्वगमनं त्वरा ॥६४॥
राजतंच तथा पात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रक ।
रजतस्य तथा कार्य्यं दर्शनं दानमेव वा ॥६५॥
राजते हि स्वधा दुग्धा पितृभिः श्रूयते मही ।
तस्मात् पितॄणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्द्धनम् ॥६६॥

करना चाहिये ॥४९॥ जो २ अन्न उनको प्रिय हों वे ही उनको दे और प्रलोभन दे देकर उनको भोजन करावे ॥ ५० ॥ सिद्धि और रक्षा के लिये रक्षोघ्न मन्त्र जपकर तिलों को पृथ्वी पर विखेर दे इस श्राद्धको अच्छल कहते हैं ॥ ५१ ॥ फिर ब्राह्मणों से पूछे कि आप तृप्तहुए या नहीं और उनके कहने पर कि हम तृप्त होगये उनकी आज्ञा लेकर अन्न को पृथ्वी पर चारों ओर छिड़क दें ॥ ५२ ॥ फिर उन ब्राह्मणों के हाथ धोने के लिये जल दे और उनसे आज्ञा लेकर मन, वचन और शरीर से ॥ ५३ ॥ हे पुत्र ! तिलके साथ अन्न का पिंड उच्छिष्ट कुशा के समीप पितरों के लिये रखदे ॥ ५४ ॥ हे राजपुत्र ! यजमान भक्तिपूर्वक पितरों के लिये तर्जनी अंगुली और अंगूठे के वीच में होकर जलदान करे ॥५५॥ इसी तरह नाना मामाओं को विधिपूर्वक पिंड दान करे तथा गन्ध, माला आदि से युक्त आचमन प्रदान करे ॥५६॥ शक्तिपूर्वक दक्षिणा देकर उनसे 'स्वधा' इस प्रकार कहे और उनके संतुष्ट होने पर उनसे वैश्वदेविक मन्त्र पढ़वावे ॥ ५७ ॥ 'विश्वेदेवा भद्रं वः प्रीयन्ताम्' इस प्रकार उन ब्राह्मणोंके कहने पर यजमान उनसे आशीर्वाद की प्रार्थनाकरे ॥५८॥ फिर 'प्रियाणि' ऐसा कह तथा भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन ब्राह्मणोंको विसर्जन करे और द्वार तक उनको पहुँचाकर उनसे आज्ञा ले वापिस आवे॥५९॥ इसके वाद नित्य-क्रिया करे तथा अतिथियों को भोजन करावे। उत्तम मनुष्य पितरों की शान्ति के लिये नित्य क्रियायें करने की इच्छा रखते हैं ॥६०॥ उस समय पितृकार्य न करे शेष आचरण पूर्ववत् करे। कुछ लोगों का मत है कि अतिथियों के लिये पृथक् पाक होना चाहिये और कुछ कहते हैं कि वही ॥ ६१ ॥ फिर यजमान उस अन्न को सेवकों आदि के साथ भोजन करे ॥६२॥ धर्मात्मा पुरुषको पितरों के लिये इस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये इससे श्रेष्ठ ब्राह्मणों की तृप्ति होती है ॥ ६३ ॥ श्राद्ध में तीन वस्तु वड़ी पवित्र हैं धेवता, तिल और कुतप मुहूर्त। तथा क्रोध, मार्ग चलना और जल्दी ये तीन वातें वर्जितहैं ॥६४॥ हे पुत्र! श्राद्धोंमें चाँदी का पात्र प्रशस्त होताहै इसलिये चाँदी के पात्रका दान करना चाहिये अथवा उसे दर्शन के लिये ही ही रखदेना चाहिये ॥ ६५॥ ऐसा सुना जाता है कि पितरों ने 'स्वधा' कहकर पृथ्वीको दुहाहै इसलिये पितरोंको चाँदी प्रीति वढ़ाने वाली और अभीष्ट है ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अलर्कानुशासन में पार्वण श्राद्ध कल्प नाम ३१वाँ अध्याय समाप्त ।

बत्तीसवां अध्याय

मदालसोवाच

अतः परं शृणुष्वेमं पुत्र भक्त्या यदाहृतम् ।
पितॄणां प्रीतये यद्वा वर्ज्यं वाऽप्रीतिकारकम्॥ १ ॥
मासं पितॄणां तृप्तिश्च हविष्यान्नेन जायते ।
मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः ॥ २ ॥
त्रीन् मासान् हारिणं मांसं विज्ञेयं पितृतृप्तये ।
चतुर्म्मासांस्तु पुष्णाति शशस्य पिशितं पितॄन्॥ ३ ॥
शाकुनं पंच वै मासान् षण्मासान् शूकरामिषम् ।
छागलं सप्त वै मासानैणेयञ्चाष्टमासिकीम् ॥ ४ ॥
करोति तृप्तिं नव वै रुरोर्मांसं न संशयः ।
गवयस्यामिषं तृप्तिं करोति दशमासिकीम् ॥ ५ ॥
तथैकादशमासांस्तु उरभ्रं पितृतृप्तिदम् ।
संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव वा ॥ ६ ॥
वाध्रीणसामिषं लौहं कालशाकं तथा मधु ।
दौहित्रामिषमन्यच्च यच्चान्यत् स्वकुलोद्भवैः॥ ७ ॥
अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा ।
पितॄणां नात्र सन्देहो गयाश्राद्धञ्च पुत्रक ॥ ८ ॥
श्यामाक-राजश्यामाकौ तद्वच्चैव प्रसातिकाः ।
नीवाराः पौष्कलाश्चैव धान्यानां पितृतृप्तये ॥ ९ ॥
यव-व्रीहि-सगोधूम-तिला मुद्गाः ससर्षपाः ।
प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चातिशोभनाः ॥१०॥
वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथाणवः ।
विप्रूषिका मसूराश्च श्राद्धकर्म्मणि गर्हिताः ॥११॥
लशुनं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् ।
करम्भं यानि चान्यानि हीनानि रसवर्णतः ॥१२॥
गान्धारिकामलावूनि लवणान्यूषराणि च ।
आरक्ता ये च निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ॥१३॥
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ।
यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदुपार्ज्जितम् ॥१४॥
अन्याय-कन्याशुल्कोत्थं द्रव्यञ्चात्र विगर्हितम् ।
दुर्गन्धि फेनिलञ्चाम्बु तथैवाल्पसरोदकम् ॥१५॥
न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् ।

मदालसा बोली—

हे पुत्र ! अब पितरों के लिये आनन्ददायक अथवा उनके लिये वर्जित जो विषय है उसको मैं कहती हूं सुनो ॥१॥ हविष्यान्न को देने से पितर लोग एक महीने तक तृप्त रहते हैं तथा मछली का मांस देने से दो महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ २ ॥ पितरों की तीन महीने की तृप्ति के लिये हिरन का मांस बतलाया गया है तथा खरगोश का मांस उनको चार महीने तक तृप्त रखता है ॥३ ॥ पक्षियों के मांस से पांच महीने तक और सूअर के मांस से छः महीने तक तथा बकरेके मांससे सात महीने तक और बारहसिंगे के माँस से आठ महीने तक पितृ लोग तृप्त रहते हैं ॥ ४ ॥ चित्राङ्ग हिरन का मांस नौ महीने तक और गवय हिरन का मांस दस महीने तक पितरों को तृप्त करता है इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥ उरभ्र पशु के मांस से ग्यारह महीने तक और गऊ के दूध अथवा खीर से एक वर्ष तक पितृ लोग तृप्त रहते हैं ॥६॥ वाध्रीण और लोह पक्षी का मांस, कालशाक, मधु तथा धेवते और अन्य कुटुम्बियों द्वारा लाया हुआ मांस पितरों को तृप्तदायक है ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! गौरी पुत्र तथा गया का श्राद्ध पितरों को बड़ा आनन्द देने वाला है इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ धान्यों में श्यामाक, राजश्यामाक, प्रसातिका, नीवार और पौष्कल पितरों की तृप्ति के लिये हैं ॥९॥ जौ, गेहूँ, तिल, मूँग, सरसों, गूलर, बेर और निष्पाव यह सब उत्तम हैं ॥१०॥ श्राद्धोंमें मक्का, राजमाष, उड़द विप्रूषि और मसूर ये वर्जित हैं ॥ ११ ॥ लहसन, प्याज़, मूली, करम्भ और अन्य कुत्सित रसादिक ॥१२॥ तथा गान्धारिका, अलाबू, लवण, ऊसरपृथ्वी, रङ्गीन कपड़े और प्रत्यक्ष लवण ॥ १३ ॥ ये सब तथा जो वाणी में अच्छा न लगता हो वह श्राद्धमें वर्जित हैं, इसी प्रकार जो वस्तु पतित से मँगाई गई हो अथवा पतित द्वारा उपार्जित धन ये श्राद्ध में निषिद्ध हैं ॥ १४ ॥ अन्याय से संचित अथवा कन्या बेचकर प्राप्त किया हुआ धन श्राद्ध में वर्जित है। दुर्गंधित, फेनयुक्त अथवा जिस जगह थोड़ा जल हो उस जगह से प्राप्त किये हुए जलको श्राद्ध में प्रयोग न करे ॥१५॥ जिस स्थान पर गौ तृप्ति न पासके उस स्थान का जल, रात्रि का जल तथा जिस जलाशय का यत्न न हुआ हो उसका जल,

यच्च सर्व्वजनोत्सृष्टं यच्चाभोज्यं निपानजम्॥१६॥
तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्म्मणि।
मार्गमाविकमौष्ट्रञ्च सर्व्वमैकशफंच यत् ॥१७॥
माहिषं चामरंचैव धेन्वा गोश्चाप्यनिर्दशम्।
पित्रार्थं मे मयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम्।
वर्ज्जनीयं सदा सद्भिस्तत् पयः श्राद्धकर्म्मणि॥१८॥
वर्ज्ज्या जन्तुमती रूक्षा क्षितिः प्लुष्टा तथाग्निना।
अनिष्टदुष्टशब्दोग्र-दुर्गन्धा चात्र कर्म्मणि ॥१९॥
कुलापमानकाः श्राद्धे व्याधमौष्टिकलङ्कका:।
नग्नाः पातकिनश्चैव हन्युर्दृष्ट्या पितृक्रियाम् ॥२०॥
अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटो ग्रामशूकरः।
श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि यातुधानाश्च दर्शनात्॥२१॥
तस्मात् सुसंवृतो दद्यात् तिलैश्चावकिरन् महीम्।
एवं रक्षा भवेच्छ्राद्धे कृता तातोभयोरपि ॥२२॥
शावसूतकसंस्पृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च।
पतितैर्मलिनैश्चैव न पुष्णाति पितामहान् ॥२३॥
वर्ज्जनीयं तथा श्राद्धे तथोदक्याश्च दर्शनम्।
मुण्डशौण्डसमाभ्यासो यजमानेन चादरात् ॥२४॥
केशकीटावपन्नंच तथा श्वभिरवेक्षितम्।
पूति पर्य्युषितंचैव वार्त्ताक्यभिषवांस्तथा।
वर्ज्जनीयानि वै श्राद्धे यच्च वस्त्रानिलाहतम् ॥२५॥
श्रद्धया परया दत्तं पितृणां नामगोत्रतः।
यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ॥२६॥
तस्माच्छ्राद्धवता पात्रे यच्छस्तं पितृकर्म्मणि।
यथावच्चैव दातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छता ॥२७॥
योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता।
योगाधारा हि पितरस्तस्मात् तान् पूजयेत् सदा ॥२८॥
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी त्वग्राशनो यदि।
यजमानंच भोक्तॄंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् ॥२९॥
पितृगाथास्तथैवात्र गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः।
या गीताः पितृभिः पूर्व्वमैलस्यासीन्महीपतेः ॥३०॥
कदा नः सन्ततावग्र्यः कस्यचिद्भविता सुतः।
यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डं प्रदास्यति ॥३१॥
गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं महाहविः।

अभोज्य और अपेय जल ॥१६॥ पितरों के कार्य में ये सब जल वर्जित हैं। मृगी, बकरी, ऊँटनी तथा जिस पशु का खुर चिरा न हो जैसे घोड़ी ॥ १७॥ भैंस, चमरी, तुरन्तकी ब्याहीहुई गाय और पितरों के लिये माँग कर लाया हुआ दूध, ये सब दूध श्राद्ध कर्म में प्रयोग न करने चाहिये ॥ १८॥ जानवरों से पूर्ण, रूखी और अग्नि से जली हुई पृथ्वी पर श्राद्ध न करना चाहिये। अनिष्ट वस्तु, दुष्ट शब्द और दुर्गन्ध जहाँ हो तथा ॥ १९॥ कुल का अपमान करने वाले और कुल-घाती, नंगे और पापी मनुष्यों के रहने से श्राद्ध-कर्म नष्ट हो जाताहै ॥ २०॥ नपुंसक, स्त्री, लूला-लङ्गड़ा, मुर्गा और ग्राम सूअर तथा कुत्ते और राक्षस ये सब दर्शन मात्रसे श्राद्धों को नष्ट कर देते हैं ॥ २१॥ इसलिये श्राद्धस्थान पर चारों तरफ तिल छिटका देने चाहिये हे तात! इस प्रकार दोनों पक्षों में श्राद्ध करने से रक्षा होती है ॥२२॥ जो सूतक में हो अथवा चिरकाल से रोगी हो, पतित हो अथवा मलिन हो और पिता, बाबा आदि का पालन न करता हो॥ ये सब और रजस्वला स्त्रीका दर्शन श्राद्धमें निषिद्ध है तथा सन्यासी और दासी आदि का आनाजाना भी श्राद्ध में वर्जनीय है ॥ २४॥ वह वस्तु जिसमें बाल अथवा कीड़ा पड़ गया हो, जिस पर कुत्ते की दृष्टि पड़ गई हो, बासी, दुर्गन्धयुक्त, बेगुन, शराब तथा वह वस्तु जो कपड़े की हवा से सुखाई गई हो श्राद्ध में निषिद्ध है ॥ २५॥ परम श्रद्धा पूर्वक पितरों का नाम और गोत्र उच्चारण कर पिण्डदान करे। उस आहार को उस समय वे लेतेहैं ॥ २६। इसलिये पितरों की तृप्तिकी कामना करके श्राद्ध कर्म में जो वस्तु प्रशस्त हो वह श्रद्धापूर्वक सत् पात्र को देनी चाहिये ॥२७॥ विपश्चित योगी लोगों को सदैव श्राद्ध में भोजन कराना चाहिये। पितृगण योगाधार होते हैं इसलिये वे सदैव पूजनीयहैं ॥ २८॥ एक हज़ार ब्राह्मणों से एक योगी श्रेष्ठ है जो यजमान को और भोजन करनेवालों को नौका के समान संसार-सागर से तार देता है ॥ २९ प्राचीन काल में राजा ऐल के पितरों ने जो गीत गाये थे उसी पितृगाथा का ब्रह्मवादियों ने गान किया है ॥ ३०॥ हमारी सन्तति में कब और कौन ऐसा पुत्र होगा जो पृथ्वी पर योगी को भोजन कराकर पिण्डदान करेगा ॥ ३१॥ गयाजी में पि दान करने से, खड्ग के मास से, महाहवि (खीर

कालशाकं तिलाढ्यं वा कृसरं मासतृप्तये ॥३२
वैश्वदेवंच सौम्यंच खड्गमांसं परं हविः।
विषाणवर्ज्जंयखड्गाप्त्या आसूर्य्यंचाश्नुवामहे ३३॥
दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि।
मधुसर्पिःसमायुक्तं पायसं दक्षिणायणे ॥३४॥
तस्मात् सम्पूजयेद्भक्त्या स्वपितॄन् पुत्र मानवः।
कामानभीप्सन् सकलान् पापाच्चात्मविमोचनम् ३५॥
वसून् रुद्रांस्तथादित्यान् नक्षत्रग्रहतारकाः।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥३६॥
आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥३७॥
एतत् ते पुत्र कथितं श्राद्धकर्म्म यथोदितम्।
काम्यानां श्रूयतां वत्स श्राद्धानां तिथिकीर्त्तनम् ३८॥

से, कालशाक, तिल और खिचड़ी से एक महीने तक हम पितर लोग तृप्त होते हैं॥ ३२॥ विश्वदेव-कर्म हमको प्रिय है तथा उत्तम वस्तु, खड्गमांस, हविष्यान्न, बिना सींग वाले पशु का मांस और जिस वस्तु पर सूर्य का प्रकाश न पड़ा हो ऐसी वस्तुयें हम खाते हैं॥ ३३॥ त्रयोदशी और मघा नक्षत्र में विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये तथा शहद और घी मिली खीर पितरों को उस समय देनी चाहिये जब सूर्य दक्षिणायण हों ॥३४॥ हे पुत्र! इसलिये मनुष्य को चाहिये कि अपने पितरों को भक्तिपूर्वक पूजे क्योंकि ऐसा करने से सब मनोकामना पूर्ण होती हैं तथा पापों का नाश होता है ॥ ३५॥ श्राद्ध से तृप्त होकर पितृ लोग मनुष्यों पर वसुओं, रुद्रों, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, तारागणों आदि को प्रसन्न कराते हैं ॥३६॥ श्राद्ध से तृप्त होकर पितृगण आयु, बुद्धि, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और अनेकों सुख तथा राज्य दिलाते हैं ॥ ३७॥ हे पुत्र! यह तुमसे श्राद्धकर्म कहा। हे वत्स! अब काम्य श्राद्ध का तिथि-कीर्तन सुनो ॥३८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें श्राद्धकल्प नाम ३२वाँ अ० समाप्त।

तेतीसवां अध्याय

मदालसोवाच
[प्र]तिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा।
[व]रार्थिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥ १॥
[श्रि]यं प्राप्नोति पंचम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः।
[ग]णाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां वृद्धिमुत्तमाम् ॥ २॥
[स्त्रि]यो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम्।
[वे]दांस्तथाप्नुयात् सर्व्वानेकादश्यां क्रियापरः ॥ ३॥
[द्वा]दश्यां जयलाभंच प्राप्नोति पितृपूजकः।
[प्र]जां मेधां पशुं वृद्धिं स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥ ४॥
[दी]र्घमायुरथैश्वर्य्यं कुर्व्वाणस्तु त्रयोदशीम्।
[अ]वाप्नोति न सन्देहः श्राद्धं श्रद्धापरो नरः ॥ ५॥
[यथा] सम्भावितान्नेन श्राद्धसम्पत्समन्वितः।

मदालसा बोली—
प्रतिपदा को श्राद्ध करने से धन और द्वितीया को श्राद्ध करने से द्विपद की प्राप्ति होती है, तृतीया मनोभिलाषा को पूर्ण करने वाली और चौथ शत्रुओं का नाश करने वाली है॥ १॥ पञ्चमी को श्राद्ध करने से मनुष्य लक्ष्मी को पाता है तथा षष्ठी को करने से पूज्य होता है। सप्तमी में करने से गणाधिपत्य और अष्टमी को करने से उत्तम वृद्धि को प्राप्त करता है॥ २॥ नवमी को श्राद्ध करने से स्त्री को तथा दशमी को करने से मनोकामना की पूर्णता को पाता है, एकादशी को श्राद्ध करने से समस्त वेदोंका ज्ञान प्राप्त करता है॥ ३॥ द्वादशी के दिन पितरों का पूजने वाला विजयी होता है तथा प्रजा, बुद्धि, पशु, वृद्धि, स्वतन्त्रता और उत्तम पुष्टिको पाताहै ॥४॥ त्रयोदशीको श्राद्ध करने वाला श्रद्धावान् मनुष्य दीर्घ आयु तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करता है इसमें संदेह नहीं॥ ५॥ जो शक्ति से सम्भव होसके उसी अन्न से श्राद्ध करना चाहिये, जिसके पितर युवावस्था में अथवा शस्त्र के लगने

शुवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥ ६ ॥
तेन कार्य्यं चतुर्दश्यां तेषां प्रीतिमभीप्सता ।
श्राद्धं कुर्व्वन्नमावस्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥ ७ ॥
सर्व्वान् कामानवाप्नोति स्वर्गञ्चानन्तमश्नुते ।
कृत्तिकासु पितॄनर्च्य स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥ ८ ॥
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये चौजस्वितां लभेत् ।
शौर्य्यमार्द्रासु चाप्नोति क्षेत्रादि च पुनर्व्वसौ ॥ ६ ॥
पुष्टिं पुष्ये सदाभ्यर्च्य अश्लेषासु वरान् सुतान् ।
मघासु स्वजनश्रैष्ठ्यं सौभाग्यं फल्गुनीषु च ॥१०॥
प्रदानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु च ।
प्रयाति श्रेष्ठतां सत्यं हस्ते श्राद्धप्रदो नरः ॥११॥
रूपयुक्तश्च चित्रासु तथापत्यान्यवाप्नुयात् ।
वाणिज्यलाभदा स्वातिर्विशाखा पुत्रकामदा ॥१२॥
कुर्व्वन्तश्चानुराधासु लभन्ते चक्रवर्त्तिताम् ।
आधिपत्यंच ज्येष्ठासु मूले चारोग्यमुत्तमम् ॥१३॥
आषाढ़ासु यशःप्राप्तिरुत्तरासु विशोकता ।
श्रवणे च शुभान् लोकान् धनिष्ठासु धनं महत्॥१४॥
वेदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धिन्तु वारुणे ।
अजाविकं प्रौष्ठपदे विन्देद्गावांस्तथोत्तरे ॥१५॥
रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान् ।
श्राद्धं कुर्व्वंस्तथाप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम् ।
तस्मात् काम्यानि कुर्व्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित्॥१६॥

से मरगये हों उसको ॥ ६ ॥ उनकी तृप्ति के लिये चतुर्दशी के दिन श्राद्ध करना चाहिये, जो मनुष्य पवित्र होकर यत्न से अमावस को श्राद्ध करता है ॥७॥ वह मनुष्य सब कामनाओं को तथा उत्तम स्वर्ग को प्राप्त करता है और मनुष्य कृत्तिका नक्षत्र में भी पितरों को पूजकर स्वर्ग को जाता है ॥ ८ ॥ सन्तान की कामना करनेवाले को रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये । मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्धकरने वाला ओजस्विता, आर्द्रा में करनेवाला वीरता और पुनर्वसु नक्षत्रमें करनेवाला खेत आदि प्राप्त करता है ॥९॥ पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करने से पुष्टि, श्लेषा में उत्तम पुत्र, मघा में श्रेष्ठ स्वजन और फाल्गुनी में सौभाग्य मिलता है ॥१०॥ उत्तरा फाल्गुनीमें श्राद्ध-प्रद मनुष्य दानशील और पुत्रवान् होता है तथा हस्तनक्षत्रमें सत्य और श्रेष्ठताको प्राप्त करता है॥ चित्रामें श्राद्ध करने से पुरुष रूपवान् होता है तथा सन्तान प्राप्त करता है, स्वाति में व्यापार में लाभ तथा विशाखा में पुत्रलाभ होता है ॥१२॥ अनुराधा में श्राद्ध करने से चक्रवर्ती राजा होता है । ज्येष्ठा में आधिपत्य और मूल में आरोग्य मिलताहै ॥१३॥ पूर्वाषाढ़ में यशप्राप्ति, उत्तराषाढ़ में शोकहीनता, श्रावण में सुन्दर लोक और धनिष्ठामें श्राद्ध करने से धन और महत्व मिलता है ॥ १४ ॥ अभिजित मुहूर्त्त में श्राद्ध करनेसे मनुष्य वेदोंका ज्ञाता होता है तथा शतभिष में करने से वैद्य । पूर्वाभाद्र में श्राद्ध करनेसे भेड़ बकरीरूपी धन तथा उत्तराभाद्र में मनुष्य गौ धन प्राप्त करता है ॥१५॥ रेवती नक्षत्र में श्राद्ध करने से सोना, चाँदी, अश्विनी में करने से घोड़े और भरणी में करने से उत्तम आयु मिलती है इसलिये तत्त्वके जानने वाले लोग इन्हीं नक्षत्रों और मुहूर्त्तों में श्राद्ध करते हैं ॥१६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में काम्यश्राद्ध फल कथन नाम का ३३वाँ अध्याय समाप्त ।



चौंतीसवां अध्याय

मदालसोवाच

एवं पुत्र गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा ।
सम्पूज्या हव्य-कव्याभ्यामन्नेनातिथि-बान्धवाः॥१॥
भूतानि भृत्याः सकलाः पशु-पक्षि-पिपीलिकाः ।
भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये वसता गृहे ॥ २ ॥

मदालसा बोली—

हे पुत्र ! गृहस्थी को चाहिये कि देवताओं को हव्य से, पितरों को कव्य से और अतिथि बान्धव आदिरूप मनुष्योंको अन्नसे पूजे ॥ १ ॥ भूत, प्रेत, सेवकगण, पशु, पक्षी, चींटी, भिखारी,याचक तथा और जो घर पर रहते हों ॥ २ ॥ उनको सदाचारी

सदाचारवता तात साधुना गृहमेधिना।
पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः॥३॥

अलर्क उवाच

कथितं मे त्वया मातर्नित्यं नैमित्तिकं च यत्।
नित्यनैमित्तिकं चैव त्रिविधं कर्म्म पौरुषम्॥४॥
सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामि कुलनन्दिनि।
यत् कुर्व्वन् सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः॥५॥

मदालसोवाच

गृहस्थेन सदा कार्य्यमाचारपरिपालनम्।
न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र वा॥६॥
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्त्तते॥७॥
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।
कार्य्यो यत्नः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम्॥८॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा तथैव परिपालय॥९॥
त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्त्तव्यो गृहमेधिना।
तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च॥१०॥
पादेनार्थस्य पारत्र्यं कुर्य्यात् सञ्चयमात्मवान्।
अर्द्धेन चात्मभरणं नित्यनैमित्तिकान्वितम्॥११॥
पादश्चात्मार्थमायस्य मूलभूतं विवर्द्धयेत्।
एवमाचरतः पुत्र अर्थः साफल्यमर्हति॥१२॥
तद्वत् पापनिषेधार्थं धर्म्मः कार्य्यो विपश्चिता।
परत्रार्थं तथैवान्यः कामोऽत्रैव फलप्रदः॥१३॥
प्रत्यवायभयात् काम्यस्तथान्यश्चाविरोधवान्।
द्विधा कामोऽपि गदितस्त्रिवर्गस्याविरोधतः॥१४॥
परस्परानुबन्धांश्च सर्व्वानेतान् विचिन्तयेत्।
विपरीतानुबन्धांश्च धर्म्मादींस्तान् शृणुष्व मे॥१५॥
धर्म्मो धर्म्मानुबन्धार्थो धर्म्मो नात्मार्थबाधकः।
उभाभ्याञ्च द्विधा कामस्तेन तौ च द्विधा पुनः॥१६॥
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चापि चिन्तयेत्।
कार्य्यक्लेशांस्तु तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।
समुत्थाय तथाचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः॥१७॥

साधु गृहस्थी अन्न से पूजे। नित्यनैमित्तिकी क्रियाओं का उल्लंघन करके जो भोजन करता है वह पापी है॥३॥

अलर्क बोला—

हे माता! तुमने मुझसे नित्य, नैमित्तिक तथा नित्य नैमित्तिक त्रिविधात्मक कर्म कहा॥४॥ हे कुलनन्दिनि! मैं अब आपसे सदाचार को सुनना चाहता हूँ जिसके करने से मनुष्य परलोकमें तथा यहाँ सुख पाता है॥५॥

मदालसा बोली—

गृहस्थी को सदैव आचार का पालन करना चाहिये, आचार-विहीन को यहाँ अथवा परलोक में सुख नहीं है॥६॥ जो सदाचार का उल्लंघन करता है उसको यज्ञ, दान और तप आदि करने का कुछ फल नहीं मिलता है॥७॥ इस संसार में दुराचारी पुरुष अधिक आयु नहीं पाताहै, इसलिये यत्न से सदाचारी रहे। सदाचार कुलक्षण का अन्त कर देता है॥८॥ हे पुत्र! उस सदाचार का रूप मैं तुमको बतलाती हूँ। तुम उसको एकाग्र चित्त से सुनकर उसी तरह पालन करो॥९॥ गृहस्थी मनुष्यको त्रिवर्गका साधन यत्नसे करना चाहिये क्योंकि उसके सिद्ध होने से गृहस्थी की इस लोक तथा परलोक में सिद्धि होती है॥१०॥ अपने धन के चतुर्थ भाग का सञ्चय परलोक के लिये करे तथ आधे से अपना भरण पोषण और नित्यनैमित्तिक क्रियायें करे॥११॥ और एक भाग को अपने लिये रखकर उसे बढ़ावे। हे पुत्र! इस प्रकार से प्रयोग किया हुआ धन सफल होता है॥ इसलिये पाप की निवृत्ति के लिये स्वर्ग की इच्छा से ज्ञानी लोगों को धर्म करना चाहिये तथा इसी प्रकार काम को वश में करके इसी संसार में फल प्राप्त करना चाहिये॥१३॥ कुछ कार्य भय के कारण और कुछ कार्य विरोध दूर करने के लिये होते हैं, यह दोनों कार्य त्रिवर्ग से सम्बन्धित हैं॥१४॥ इन सबको परस्पर अनुबन्ध और विपरीत अनुबन्ध समझना चाहिये। अब इन धर्मादिकों को सुनो॥१५॥ धर्म से धर्मानुबन्ध होताहै और धर्म आत्मार्थ में बाधक नहीं है। इन दोनों करके काम दो प्रकार है तथा काम से धर्म भी दो तरह का है॥१६॥ ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे तथा कार्य में जो कठिनाइयाँ हों उनका वेदतत्त्व से विवेचनकरे। फिर उठकर तथा आचमन करके पूर्व दिशा में पवित्र होकर बैठे॥१७॥

पूर्व्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥१८॥
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यंच वर्ज्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवाञ्च पुत्रक ॥१९॥
सायं प्रातस्तथा होमं कुर्व्वीत नियतात्मवान् ।
नोदयास्तमने विम्बमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२०॥
केशप्रसाधनादर्श-दर्शनं दन्तधावनम् ।
पूर्व्वाह्न एव कार्य्याणि देवतानाञ्च तर्पणम् ॥२१॥
ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणाञ्चैव वर्त्मनि ।
विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे ॥२२॥
नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत् ।
उदक्या दर्शनं स्पर्शो वर्ज्ज्यं सम्भाषणं तथा ॥२३॥
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्र-केश-भस्म-कपालिकाः ॥२४॥
तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ।
नाधितिष्ठेत् तथा प्राज्ञः पथि चैवं तथा भुवि ॥२५॥
पितृ-देव-मनुष्याणां भूतानाञ्च तथार्च्चनम् ।
कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि स्वाचान्तो वाग्यतःशुचिः ।
भुञ्जीतान्नञ्च तच्चित्तो ह्यन्तर्ज्जानुः सदा नरः ॥२७॥
उपघाताद्दते दोषं नान्यस्योदीरयेद् बुधः ।
प्रत्यक्षलवणं वर्ज्ज्यमन्नमत्युष्णमेव च ॥२८॥
न गच्छन्न च तिष्ठन् वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान् ।
कुर्व्वीत नैव चाचामन् यत् किंचिदपि भक्षयेत् ॥२९॥
उच्छिष्टो नालपेत् किंचित् स्वाध्यायंच विवर्ज्जयेत् ।
गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्द्धानंच न स्पृशेत् ॥३०॥
न च पश्येद्रविं नेन्दुं न नक्षत्राणि कामतः ।
भिन्नासनं तथा शय्यां भाजनंच विवर्ज्जयेत् ॥३१॥
गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ।
अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्व्वकम् ।
तथानुगमनं कुर्य्यात् प्रतिकूलं न सञ्जपेत् ॥३२॥
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्य्याद्देवतार्च्चनम् ।
न वाहयेद्द्विजान् नाग्नौ मेहं कुर्व्वीत बुद्धिमान् ॥३३॥
स्नायीत न नरो नग्नो न शयीत कदाचन ।

तारे दीखते प्रातः सन्ध्या और सायंकालकी सन्ध्या पश्चिम में सूर्य देखते न्यायपूर्वक करे तथा बिना किसी आपत्ति के इनको न छोड़े ॥१८॥ हे पुत्र ! मिथ्या प्रलाप, झूंठा वचन, कुशास्त्र का पठन-पाठन झूंठा वाद-विवाद और दुष्टोंकी सेवा ये सब वर्जित हैं ॥१९॥ नियतात्मा होकर प्रातः तथा सायंकाल में हवन करे तथा सूर्य के उदय और अस्त होने के समय सूर्य के प्रतिविम्ब को न देखे ॥ २० ॥ बाल काढ़ना, दर्पण देखना, दांत साफ़ करना और देवताओं को तर्पण ये कार्य पूर्वाह्न में करने चाहिये ॥ गाँव, वास स्थान, खेतों, रास्तों और गोशाला में विष्ठा और मूत्र त्यागने न वैठे ॥ २२ ॥ नङ्गी परस्त्री को न देखे, अपने विष्ठा और मूत्रको न देखे, तथा रजस्वला स्त्री का दर्शन, स्पर्श और उससे वार्तालाप वर्जित हैं ॥ २३ ॥ जल में मूत्र, विष्ठा और मैथुन न करे और जहाँ केश, भस्म और हड्डियां हों वहाँ भी मूत्र और विष्ठा करने के लिये न वैठे ॥२४॥ भूसा, अङ्गारा, हड्डी, सूखे हुए पत्ते, रस्सी और कपड़ा इन सबको बुद्धिमान् मनुष्य रास्ते या पृथ्वी परसे न उठावे ॥२५॥ पितृ, देवता, मनुष्य और जीवों की पूजा करके फिर गृहस्थी को स्वयं भोजन करना चाहिये ॥२६॥ पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख होकर पवित्र चित्त से एकाग्र होकर अपने दोनों हाथ जंघाओं के अन्दर रखकर मनुष्य को सदैव भोजन करना चाहिये ॥ २७ ॥ विना उपघात किये बुद्धिमान् किसी दूसरे का दोष वर्णन न करे तथा प्रत्यक्ष लवण और बहुत गर्म अन्न वर्जित है ॥ २८ ॥ चलते हुए और बैठते हुए मूत्र और विष्ठा का त्याग न करे और यदि आचमन करना हो तो कुछ न खाय ॥ २९ ॥ झूंठे मुंह होकर बातचीत न करे तथा झूंठे मुख से स्वाध्याय करना और गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने शिर को छूना वर्जित है ॥३०॥ झूंठे मुख से सूर्य, चन्द्रमा और तारागणों का देखना तथा टूटरे आसन और शय्यापर जाना आदि सब निषिद्ध हैं ॥ ३१ ॥ गुरू का स्वागत आदि करके उनको आसन दे तथा प्रणाम करके उनसे अनुकूल वार्तालाप करे, तथा गुरू का अनुगमन करे और उनके प्रतिकूल न चले ॥३२॥ एक वस्त्र ही धारण किये हुए भोजन और देवताओं का पूजन न करे, ब्राह्मणोंको बोझ से न लादे तथा अग्नि में मल-सूत्र का त्याग न करे ॥३३॥ मनुष्य को नङ्गा होकर नहाना और सोना नहीं चाहिये। तथा

न पाणिभ्यामुभाभ्यांचकण्डूयेत शिरस्तथा ॥३४॥
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्य्यं निष्कारणं नरैः।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किंचिदपि स्पृशेत्॥३५॥
अनध्यायेषु सर्व्वेषु स्वाध्यायंच विवर्ज्जयेत्।
ब्राह्मणानिल-गो-सूर्य्यान् न मेहेत कदाचन ॥३६॥
उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः।
आबाधासु यथाकामं कुर्य्यान्मूत्र-पुरीषयोः ॥३७॥
दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात् क्रुद्धंचैनं प्रसादयेत्।
परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्व्वताम् ॥३८॥
पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य च।
विद्याधिकस्य गुर्व्विण्या भारार्त्तस्य यवीयसः॥३९॥
मूकान्धबधिराणांच मत्तस्योन्मत्तकस्य च।
पुंश्चल्याः कृतवैरस्य बालस्य पतितस्य च ॥४०॥
देवालयं चैत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम्।
विद्याधिकं गुरुं देवं बुधः कुर्य्यात् प्रदक्षिणम् ॥४१॥
उपानद्वस्त्रमाल्यादि धृतमन्यैन धारयेत्।
उपवीतमलङ्कारं करकंचैव वर्ज्जयेत् ॥४२॥
चतुर्द्दश्यां तथाष्टम्यां पंचदश्यांच पर्व्वसु।
तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्ज्जयेत्॥४३॥
न क्षिप्तपादजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन।
न चापि विक्षिपेत् पादौ पादं पादेन नाक्रमेत्॥४४॥
मर्म्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यंच विवर्ज्जयेत्।
दम्भाभिमानतीक्ष्णानि न कुर्व्वीत विचक्षणः॥४५॥
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान् मायिनस्तथा।
न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च नोपहासैर्विदूषयेत् ॥४६॥
परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं पुत्र-शिष्ययोः।
तद्वन्नोपविशेत् प्राज्ञः पादेनाक्रम्य चासनम् ॥४७॥
संयावं कृसरं मांसं नात्मार्थमुपसाधयेत्।
सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम्॥४८॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि वाग्यतो दन्तधावनम्।
कुर्व्वीत सततं वत्स वर्ज्जयेद्वर्ज्ज्यवीरुधः ॥४९
नोदक्शिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्शिरा नरः।

दोनों हाथों से शिर को न खुजलाना चाहिये॥३४॥ विना कारण शिर से बार-बार स्नान न करना चाहिये और शिर से स्नान करके तेल किसी अङ्ग में न लगावे ॥ ३५ ॥ सब अनध्याय के अवसरों में स्वाध्याय वर्जित है। ब्राह्मण,अग्नि,गौ, सूर्यकी ओर मुंह करके विष्ठा और मूत्र न करे॥३६॥ दिनमें उत्तर मुख और रात्रि में दक्षिण मुख होकर मल-मूत्र का त्याग करे तथा इसमें बाधा हो तो इच्छानुसार करे ॥ ३७ ॥ गुरू के दोष को न कहे और यदि वे क्रुद्ध होगये हों तो उनको प्रसन्न करे। तथा दूसरों से की हुई भी गुरू की निन्दा को न सुने ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणों को, राजा को तथा दुःख से आतुरों को, और अपने से अधिक विद्वान् को, गर्भवती स्त्री को, बोझ से लदे हुए को तथा अपने से श्रेष्ठ को मार्ग छोड़ दे ॥३९॥ मूक, अन्धे, बहिरे, मतवाले और विक्षिप्ततथा पुंश्चली स्त्री, वैरी, बालक और पतित के लिये भी रास्ता छोड़ देना चाहिये ॥४०॥ बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि देवालय, देववृक्ष, गाय, अपने से अधिक विद्या वाले, गुरु और देवता की परिक्रमाकरे ॥४१॥ जो जूता, वस्त्र, माला आदि दूसरे का पहिना हुआ हो उसको धारण न करे इसी प्रकार जनेऊ, गहने और करवा भी दूसरे के वर्जित हैं ॥ ४२ ॥ चौदस, अष्टमी और अमावस तथा अन्य पर्वों पर अङ्गों में तेल लगाना और स्त्री के साथ मैथुन करना वर्जित है ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य कभी बैठकर पाँव और जाँघ न हिलावें तथा दोनों पाँवों को न हिलावें और पाँव को पाँव पर न रक्खे ॥ ४४ ॥ मर्मस्थान में आघात करना, वृथा शाप देना और चुगली करना, यह वर्जित हैं। दम्भ, अभिमान तथा कठोरता कभी बुद्धिमान् को करना उचित नहीं ॥ ४५ ॥ मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मायावी, तथा न्यूनाङ्ग और अधिकाङ्ग इनको देखकर हंसना नहीं चाहिये तथा इनका दोष भी नहीं बताना चाहिये ॥ ४६ ॥ अपने पुत्र और शिष्य की शिक्षा के लिये दूसरे को दण्ड नहीं देना चाहिये तथा पाँव से आसन को घसीट कर न बैठना चाहिये ॥ ४७ ॥ खीर, खिचड़ी और मांस अपने लिये ही न बनावे। सायंकाल और प्रातःकाल पहिले अतिथि का सत्कार कर फिर स्वयं भोजन करे ॥ ४८ ॥ पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख होकर दाँतनकरे। तथा हे वत्स! जिस वृक्ष की दाँतन का निषेध है उस वृक्ष की दाँतन न करे ॥ ४९ ॥ उत्तर और पश्चिम दिशा में शिर

शिरस्यगस्त्यमास्थाय शयीताथ पुरन्दरम् ॥५०॥
न तु गन्धवतीष्वप्सु स्नायीत न तथा निशि।
उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम् ॥५१॥
अपमृज्यान्न चास्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः।
न चापि धूनयेत् केशान् वाससी न च धूनयेत् ॥५२॥
नानुलेपनमादद्यादस्नातः कर्हिचिद्बुधः।
न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा ॥५३॥
न च कुर्य्याद्विपर्य्यासं वाससोर्नापि भूषणे।
वर्ज्जयेच्च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतंच यत् ॥५४॥
केशकीटावपन्नंच क्षुण्णं श्वभिरवेक्षितम्।
अवलीढावपन्नञ्च सारोद्धरणदूषितम् ॥५५॥
पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्ज्य मांसंच पुत्रक।
न भक्षयीत सततं प्रत्यक्षलवणानि च ॥५६॥
वर्ज्ज्यं चिरोषितं पुत्र भक्तं पर्य्युषितंच यत्।
पिष्टशाकेक्षुपयसां विकारान् नृपनन्दन ॥५७॥
तथा मांसविकारांश्च ते च वर्ज्ज्याश्चिरोषिताः।
उदयास्तमने भानोः शयनंच विवर्ज्जयेत् ॥५८॥
नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः।
न चैव शयने नोर्व्व्यामुपविष्टो न शब्दवत् ॥५९॥
न चैकवस्त्रो न वदन् प्रेक्षतामप्रदाय च।
भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायं प्रातर्यथाविधि ॥६०॥
परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता।
इष्टापूर्त्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम् ॥६१॥
न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्षणम् ॥६२॥
देवार्च्चनाग्निकार्य्याणि तथा गुर्व्वभिवादनम्।
कुर्व्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् ॥६३॥
अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात्।
आचामेत् पुत्र पुण्याभिःप्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥६४॥
अन्तर्ज्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात्।
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्ज्जयेत् पंच वै मृदः ॥६५॥
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहितः।
अन्तर्ज्जानुस्तथाचामेत् त्रिश्चतुर्वा पिबेदपः ॥६६॥
परिमृज्य द्विरास्यान्तं खानि मूर्द्धानमेव च।

करके न सोवे। सोते समय शिर दक्षिण या पूर्व दिशा में होना चाहिये ॥ ५० ॥ दुर्गन्धित जल में तथा रात्रि में स्नान न करना चाहिये परन्तु किसी के मरनेपर और चन्द्रग्रहणमें रात्रि में स्नान करना चाहिये ॥५१॥ उपरोक्त दशामें स्नान करने पर शरीर को पोंछना नहीं चाहिये। विना स्नान किये बालों और वस्त्रों को न धोना चाहिये ॥५२॥ विना स्नान किये बुद्धिमान् मनुष्य चन्दन न लगावे। लाल और रङ्गबिरङ्गा कपड़ा न पहिने ॥ ५३ ॥ कोई आभूषण वस्त्र के ऊपर न पहिने तथा फटा पुराना और मलीन वस्त्र पहिनना वर्जित है ॥ ५४ ॥ जिस वस्तु में बाल व कीड़े पड़ गये हों, कुत्ते की दृष्टि पड़ गई हो, अथवा झूंठी वस्तु या जिसका अर्क अनुचित तरीक़े से निकाला गया हो उन चीज़ों का सेवन न करे ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! पीठ का माँस, वृथा मांस तथा वर्जित मांस और प्रत्यक्ष नौंन न खाय ॥ ५६ ॥ हे पुत्र ! बासी और बहुत देर तक राँधा हुआ भात न खाय। हे राजकुमार ! पिष्ट, शाक, ऊख का बासी रस सेवन न करे ॥५७॥ बहुत देर का खींचा हुआ मांस का रस वर्जितहै। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय न सोवे ॥ ५८ ॥ विना स्नान किये हुए, अन्यमनस्क बैठे हुए, सोते हुए, विना आसन पृथ्वी पर बैठे हुए और बोलते हुए भोजन न करे ॥ ५९ ॥ एक वस्त्र पहिने तथा कोई देखता हो तो उसको बिना दिये भोजन न करे। प्रातःकाल और सायंकाल की विधिपूर्वक सन्ध्या करके और स्नान करके भोजन करे ॥ ६० ॥ ज्ञानी मनुष्य को चाहिये कि दूसरेकी स्त्री के साथ मैथुन न करे। परस्त्री गमन से पुण्य और आयु का क्षय होता है ॥ ६१ ॥ संसार में पुरुष के लिये परस्त्री गमन के समान आयु क्षीण करने वाला दूसरा कार्य नहीं है ॥ ६२॥ देवपूजन, हवन तथा गुरु का अभिवादन भली भांति आचमन करके करे तथा इसी प्रकार भोजन करे ॥ ६३ ॥ फेन और दुर्गन्धि रहित जल को आदर पूर्वक लेकर उत्तर अथवा पूर्व पुण्य दिशा में मुख करके आचमन करे ॥६४॥ जल के भीतर की मिट्टी, दीमक की लगी मिट्टी तथा मूसे के बिल की मिट्टी और जो मिट्टी किसी ने हाथ धोकर छोड़ दी हो ये पाँच प्रकारकी मिट्टी वर्जित है ॥ ६५ ॥ हाथ और पाँव धोकर स्वस्थ चित्त हो जानु के भीतर हाथ रखकर आचमनकरे अर्थात् तीन या चार बेर थोड़ा पानी पिये ॥ ६६ ॥ दो वार मुंह धोकर शिर पर पानी छिड़के और

सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्व्वीत वै शुचिः ॥६७॥
देवतानामृषीणाञ्च पितृणाञ्चैव यत्नतः ।
समाहितमना भूत्वा कुर्व्वीत सततं नरः ॥६८॥
क्षुत्वा निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचमेद्बुधः ।
क्षुतेऽवलिढे वान्ते च तथा निष्ठीवनादिषु ॥६९॥
कुर्य्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ।
कुर्व्वीतालम्बनञ्चापि दक्षिणश्रवणस्य वै ॥७०॥
यथाविभवतो ह्येतत् पूर्व्वाभावे ततः परम् ।
अविद्यमाने पूर्व्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥७१॥
न कुर्य्याद्दन्तसंघर्षं नात्मनो देहताड़नम् ।
स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्ज्जयेत् ॥७२॥
सन्ध्यायां मैथुनञ्चापि तथा पन्थानमेव च ॥७३॥
पूर्व्वाह्णे तात देवानां मनुष्याणाञ्च मध्यमे ।
भक्त्या तथापराह्णे च कुर्व्वीत पितृपूजनम् ॥७४॥
शिरःस्नातश्च कुर्व्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि श्मश्रुकर्म्म च कारयेत् ॥७५॥
व्यङ्गिनीं वर्ज्जयेत् कन्यां कुलजामपि रोगिणीम् ।
विकृतां पिङ्गलाञ्चैव वाचाटां सर्व्वदूषिताम् ॥७६॥
अव्यङ्गीं सौम्यनासाञ्च सर्व्वलक्षणलक्षिताम् ।
तादृशीमुद्वहेत् कन्यां श्रेयःकामो नरः सदा ॥७७॥
उद्वहेत् पितृमात्रोश्च सप्तमीं पंचमीं तथा ।
रक्षेद्दारान् त्यजेदीर्ष्यां दिवा च स्वप्नमैथुने ॥७८॥
परोपतापकं कर्म्म जन्तुपीड़ाञ्च वर्ज्जयेत् ।
उदक्या सर्व्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम् ॥७९॥
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पंचमीमपि वर्ज्जयेत् ।
ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्र्यां श्रेष्ठा युग्मासु पुत्रक ॥८०॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेत सदा नरः ।
विधर्म्मिणोऽह्नि पूर्व्वाख्ये सन्ध्याकाले च पण्डकाः ॥८१॥
क्षुरकर्म्मणि वान्ते च स्त्रीसम्भोगे च पुत्रक ।

पवित्र होकर भली भांति आचमन कर जल से क्रियायें करे ॥६७॥ यत्नपूर्वक स्वस्थ चित्त होकर देवताओं, ऋषियों और पितरोंकी निरन्तर क्रियायें करे ॥६८॥ बुद्धिमान् मनुष्य छींक कर अथवा थूक कर कपड़े बदले और आचमन करे । खाँसने, जानवर के चाट लेने और वमन करने में ॥ ६९ ॥ गौ को स्पर्श करे और सूर्य का दर्शन करके आचमन करे तथा अपना दाहिना कान छूले ॥ ७० ॥ अपने वैभव के अनुसार ये सब करे। पहिले कार्य के अभाव में दूसरा कार्य करे और यदि पहिली कही हुई स्थिति न हो तो बाद में कही दूसरी स्थिति के अनुसार करे ॥ ७१ ॥ दाँतों को न कटकटाये तथा अपने शरीरपर ताड़न न करे। संध्या समय सोना, अध्ययन करना, तथा भोजन करना वर्जित है ॥७२॥ सन्ध्या समय मैथुन और मार्ग चलने का भी निषेध है ॥ ७३ ॥ हे तात ! पूर्वाह्न में देवताओं का तथा अपराह्न में भक्ति पूर्वक पितरों का पूजन करे ॥ ७४ ॥ देवताओं और पितरों का पूजन शिर से स्नान करके करे और पूर्व मुख या उत्तर मुख होकर क्षौरकर्म करावे ॥७५॥ जो कन्या कुलीन हो परन्तु रोगिणी, व्यङ्ग वचन बोलनेवाली विकृत, कर्कशा, अथवा सबसे दूषित हो तो ऐसी कन्या को ग्रहण न करे ॥७६॥ व्यङ्ग वचन न बोलने वाली, सुन्दर नासिका वाली, सब सुन्दर लक्षणों से युक्त ऐसी कन्या से मनुष्य अपने कल्याण के लिये विवाह करे ॥ ७७ ॥ पिता से सातवें और माता के पाँचवे सम्बन्ध में विवाह करे । ईर्ष्या छोड़कर स्त्री की रक्षा करे तथा दिन में शयन और मैथुन न करे ॥७८॥ दूसरों को क्लेश पहुँचाने वाला कार्य न करे तथा पशुओं को पीड़ा न पहुँचावे। रजस्वला स्त्री चार रात्रि तक सब वर्णों में वर्जित है ॥७९॥ स्त्री जन्म न पावे इस विचार से रजस्वला से पाँचवें दिन भी मैथुन न करे। हे पुत्र ! छठी रात्रि को स्त्री गमन करना चाहिये ॥ ८० ॥ युग्म रात्रि में स्त्री गमन करने से पुत्र और अयुग्म में कन्या उत्पन्न होती है । इसलिये पुत्र की इच्छा रखने वाला मनुष्य युग्म रात्रि में मैथुन करे । इस से पहिले यानी पाँच रात्रियों में मैथुन करने से विधर्मी और सन्ध्या-समय स्त्रीगमन करने से पीलिया रोग से ग्रसित पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ८१ ॥ हे पुत्र ! हजामत बनवाकर, वमन करके तथा स्त्री सम्भोग करने के उपरान्त बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वस्त्रों सहित स्नान करे और इसी तरह

स्नायीत चेलवान् प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च ॥८२॥
देव-वेद-द्विजातीनां साधुसत्यमहात्मनाम् ।
गुरोः पतिव्रतानाञ्च तथा यज्वतपस्विनाम् ॥८३॥
परिवादं न कुर्व्वीत परिहासंच पुत्रक ।
कुर्व्वतामविनीतानां न श्रोतव्यं कथंचन ॥८४॥
नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापकृष्टस्य चारुहेत् ।
न चामङ्गल्यवेशः स्यान्न चामङ्गल्यवाग्भवेत् ॥८५॥
धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः ।
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः ॥८६॥
गच्छेन्मैत्रीं न चाशीलैर्न च चौर्य्यादिदूषितैः ।
न चातिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः ॥८७॥
न बन्धकीभिर्न न्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ।
सार्द्धं न बलिभिः कुर्य्यान्न च न्यूनैर्न निन्दितैः ॥८८॥
न सर्व्वशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ॥८९॥
कुर्व्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः ।
प्राज्ञैरपिशुनैः शक्तैः कर्म्मण्युद्यमभागिभिः ॥९०॥
वेदविद्याव्रतस्नातैः सहासीत सदा बुधः ।
सुहृद्दीक्षित-भूपाल-स्नातक-श्वशुरैः सह ॥९१॥
ऋत्विगादीन् षड़र्घार्हानर्च्चयेच्च गृहागतान् ।
यथा विभवतः पुत्र द्विजान् संवत्सरोषितान् ॥९२॥
अर्च्चयेन्मधुपर्केण यथाकालमतन्द्रितः ।
तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ।
न च तान् विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ॥९३॥
सम्यग्गृहार्च्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ।
सम्पूजयेत् ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ॥९४॥
प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात् प्रजानां पतये ततः ।
तृतीयाञ्चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथापराम् ॥९५॥
ततोऽनुमतये दत्त्वा दद्याद्गृहबलिं ततः ।
पूर्व्वाख्यातं मया यत् ते नित्यकर्म्मक्रियाविधौ ॥९६॥
वैश्वदेवं ततः कुर्य्याद्बलयस्तत्र मे शृणु ।
यथास्थानविभागन्तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् ॥९७॥
पर्ज्जन्यापोधरित्रीणां दद्याच्च मानके त्रयम् ।
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ॥९८॥
ब्रह्मणे चान्तरीक्षाय सूर्य्याय च यथाक्रमम् ।

अशुद्ध भूमि में जाने पर भी स्नान करे ॥८२॥ देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यवादी, महात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञ-कर्ता, तपस्वी ॥ ८३ ॥ हे पुत्र ! इनकी निन्दा तथा उपहास न करे। तथा कभी इनकी निन्दा करने वालों की न सुने ॥ ८४ ॥ अपने से श्रेष्ठ तथा अपने से नीच की शय्या पर न चढ़े। अपना अमङ्गल वेष न करे तथा अमङ्गल वचन न बोले ॥ सफेद वस्त्र पहिने तथा श्वेत माला से अपने को विभूषित करे और उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, दुर्विनीत, पण्डित ॥८६॥ और दुःशील, चोर, फ़िज़ूलख़र्च, लोभी और वैरियों से मित्रता न करे ॥ ८७ ॥ बन्धकी स्त्री और उसके पति से तथा अपने से अधिक बलवान् और कमज़ोर से तथा निंदित पुरुषों से भी मित्रता न करे ॥ ८८ ॥ और सबसे डरने वाले कायर लोगों से भी मित्रता नहीं करनी चाहिये ॥ ८९ ॥ साधुओं, सदाचार से रहने वालों, विद्वानों, शुभ वचन बोलने वालों, सामर्थ्यवानों और कर्मवीर उद्योगी लोगों से मित्रता करनी चाहिये ॥ ९० ॥ मित्र, दीक्षा प्राप्त मनुष्य, राजा, स्नातक, श्वसुर, ऋत्विक् इन छःहों में किसी के घर आने पर उनका अर्घ्य सहित पूजन करे ॥ ९१ ॥ हे पुत्र ! वर्ष दिन के व्रती ब्राह्मणों का मधुपर्क आदि से पूजन अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिये ॥९२॥ अपने कल्याण की कामना करने वाले मनुष्य को चाहिये कि उनके शासन में रहे तथा उनसे विवाद करके उनका शाप न ले ॥ ९३॥ अपने घर में यथास्थान देवार्चन करे तथा फिर अग्नि का पूजन कर उसमें आहुति दे ॥ ९४ ॥ पहिले आहुति ब्राह्मण को दे, फिर प्रजापति को, तीसरी गुह्यक को तथा फिर कश्यप को आहुति दे ॥ ९५ ॥ फिर पाँचवीं आहुति अनुमति को देकर गृह में बलि प्रदान करे और फिर जो नित्यकर्म क्रियाएँ मैंने पहिले कही हैं उनको विधिपूर्वक करे ॥९६॥ इसके बाद वैश्वदेवकर्म करे और फिर जिस प्रकार यथा स्थान देवताओंका विभाग करके बलि देना चाहिये वह सुनो ॥९७॥ बादल, पृथ्वी और वायु इन तीनों को मण्डप में स्थित कर पूजन करे और पूर्व दिशा के क्रम से प्रत्येक दिशा में बलि देवे ॥ ९८ ॥ तथ यथाक्रम ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य, विश्वदेवों और

वैश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च ॥९९॥
उषसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः ।
स्वधानम इतीत्युक्त्वा पितृभ्यश्चापि दक्षिणे ॥१००॥
कृत्वापसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्तेति भाजनात् ।
अन्नावशेषमिच्छन् वै तोयं दद्याद्यथाविधि ॥१०१॥
ततोऽन्नाग्रं समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पनम् ।
यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥१०२॥
कुर्य्यात् कर्म्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि ।
देवादीनां तथा कुर्य्याद्ब्राह्म्येणाचमनक्रियाम् १०३
अंगुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य तु ।
एतद्ब्राह्म्यमिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै ॥१०४॥
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पैत्र्यं तीर्थमुदाहृतम् ।
पितृणां तेन तोयादि दद्यान्नान्दीमुखादृते ॥१०५॥
अंगुल्यग्रे तथा दैवं तेन देवक्रियाविधिः ।
तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तेन प्रजापतेः ॥१०६॥
एवमेभिः सदा तीर्थैर्देवानां पितृभिः सह ।
सदा कार्य्याणि कुर्व्वीत नान्यतीर्थेन कर्हिचित् १०७॥
ब्राह्म्येणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्र्येण सर्व्वदा ।
देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्यं निजेन च ॥१०८॥
नान्दीमुखानां कुर्व्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् ।
प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित् प्रजापतेः ॥१०९॥
युगपज्जलमग्निंच बिभृयान्न विचक्षणः ।
गुरुदेवान् प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ॥११०॥
नाचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत् ॥१११॥
शौचकालेषु सर्व्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ।
न विलम्बेत शौचार्थं न मुखेनानलं धमेत् ॥११२॥
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥११३॥
जितामित्रो नृपो यत्र बलवान् धर्म्मतत्परः ।
तत्र नित्यं वसेत् प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम् ॥११४॥
यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र शस्यवती मही ।
पौराः सुसंयता यत्र सततं न्यायवर्त्तिनः ।
यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ॥११५॥
यस्मिन् कृषीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिभोगिनः ।

विश्वभूतों को बलि प्रदान करे ॥ ९९ ॥ उषस् और भूतपति को उत्तर दिशा में और स्वधानमः यह कहकर पितरोंको दक्षिण दिशामें बलि देवे ॥१००॥ अपसव्य होकर वर्तन में से बचे हुए अन्न को निकाल कर 'यक्ष्मैतत्ते' यह कहकर वायुकोण में रक्खे और विधिपूर्वक जलदान करे ॥१०१॥ इसके अनन्तर आगे रक्खे हुए अन्न को हन्तकार कहकर विधि और न्याय के अनुसार ब्राह्मण को देदे ॥ ब्राह्मणों और देवताओं की जिस-जिस कर्म और तीर्थ से पूजा की जाती है उसी से उनको अर्घ्य आदि देना चाहिये ॥ १०३ ॥ अँगूठे के उत्तर की रेखा जो ब्रह्मतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है और जो दाहिने हाथ की है उसी से आचमन करना चाहिये ॥ १०४ ॥ तर्जनी अंगुली और अंगूठे के बीच का स्थान पितृतीर्थ कहलाता है उसी से नान्दी मुख पितरों को छोड़कर अन्य पितरों को जल देना चाहिये ॥ १०५ ॥ अँगुलियों के आगे का भाग देव-तीर्थ कहलाता है उसी से देवक्रिया करनी चाहिये कनिष्ठिका अँगुली की जड़ प्राजापत्य तीर्थ है जिस से प्राजापत्य कर्म करना चाहिये ॥ १०६ ॥ इनही तीर्थों से देवताओं और पितरों की क्रियायें की जानी चाहिये। भिन्न तीर्थों से अन्य क्रियायें न करनी चाहियें ॥१०७॥ ब्रह्मतीर्थ से आचमन, पितृ तीर्थ से पितृकर्म, देवतीर्थ और प्रजापति तीर्थ से क्रमशः देवकर्म और प्राजापत्यकर्म करने चाहिये ॥ बुद्धिमान् मनुष्य नान्दीमुख पितरों की क्रिया और प्राजापत्य क्रिया प्राजापत्य तीर्थ से करे ॥ १०९ ॥ चतुर लोग एक साथ अग्नि और जल न ले चलें तथा गुरु और देवताओं की ओर पाँव न पसारें ॥ दूध देती हुई गाय को न रोके और अञ्जलि से जल न पीवें ॥१११॥ सब शौचकालों में चाहे वे बड़े हों अथवा छोटे, शौच में विलम्ब न करे तथा मुख से आँच को न फूंके ॥ ११२ ॥ हे पुत्र ! जहाँ यह चार न रहते हों वहाँ न रहे (१) ऋणदाता (२) वैद्य (३) पण्डित और (४) जल वाली नदी ॥ जहाँ पर बलवान् और धर्ममें तत्पर राजा हो वहाँ पर बुद्धिमान् सदैव रहे क्योंकि दुष्ट राजाके राज्य में सुख कहाँ ॥ ११४॥ जहाँ राजा धर्मात्मा हो और पृथ्वी उपजाऊ हो, जहाँ नागरिक संयमयुक्त तथा न्यायवर्ती हों और जहाँ लोगों में ईर्ष्या न हो वहाँ रहना सुखदायक है ॥ ११५ ॥ जहाँ खेत बहुत हों तथा भोगने वाले कम हों, जहाँ बहुत प्रकार की

यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत् तत्र विचक्षणः ॥११६॥
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रैतत् त्रितयं सदा ।
जिगीषुः पूर्व्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ॥११७॥
वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डितः ।
इत्येतत् कथितं पुत्र मया ते हितकाम्यया ॥११८॥

औषधियाँ हों चतुर मनुष्य वहाँ रहे ॥ ११६ ॥ हे पुत्र ! जहां यह तीन रहते हों वहाँ न रहे (१) अपनी जीत की इच्छा रखने वाले (२) जिनसे पहिले शत्रुता रही हो (३) तथा जहाँ मनुष्य नित्य उत्सवयुक्त हों ॥ ११७ ॥ पण्डित लोग वहाँ ही रहें जहाँ पर रहने वाले सुशील हों । हे पुत्र ! यह सब मैंने तुम्हारे हित की इच्छा से कहा है ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अलर्कानुशासन में सदाचार नाम ३४वाँ अ० समाप्त ।

पैंतीसवां अध्याय

मदालसोवाच

अतः परं शृणुष्व त्वं वर्ज्ज्यावर्ज्ज्यप्रतिक्रियाम् ।
भोज्यमन्नं पर्य्युषितं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम् ॥ १ ॥
अस्नेहाश्चापि गोधूम-यव-गोरसविक्रियाः ।
शशकः कच्छपो गोधा श्वावित् खड्गोऽथ पुत्रक ॥२॥
भक्ष्या ह्येते तथा वर्ज्ज्यौ ग्रामशूकर-कुक्कुटौ ।
पितृदेवादिशेषश्च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया ।
प्रोक्षितंचौषधार्थञ्च खादन् मांसं न दुष्यति ॥ ३ ॥
शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम् ।
शाकमूलफलानाञ्च तथा विदलचर्म्मणाम् ॥ ४ ॥
मणि-वज्र-प्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च ।
गात्राणाञ्च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते ॥ ५ ॥
यथायसानां तोयेन ग्रावृणः सङ्घर्षणेन च ।
सस्नेहानाञ्च भाण्डानां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥६॥
शूर्पधान्याजिनानांच मुपलोलखलस्य च ।
संहतानांच वस्त्राणां प्रोक्षणात् संचयस्य च ॥ ७ ॥
वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते ।
तृणकाष्ठौषधीनांच प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ८ ॥
आविकानां समस्तानां केशानांचापि मेध्यता ।
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ॥ ९ ॥
साम्बुना तात भवति उपघातवतां सदा ।
तथा कार्पासिकानाञ्च विशुद्धिजलभस्मना ॥१०॥
दारु-दन्तास्थि-शृङ्गाणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।
पुनःपाकेन भाण्डानां पार्थिवानांच मेध्यता ॥११॥

मदालसा बोली—

हे अलर्क ! अब तुम यह सुनो कि कौनसी वस्तु ग्रहण करने योग्य तथा कौनसी वस्तु वर्जित है । घी से पकी हुई सामग्री चाहे वह देरकी तयार की हुई ही क्यों न हो खानी चाहिये ॥१॥ गेहूँ और जौ के सामान घी में न सिक कर दूध में तैयार किये गये हों तो भी खाने योग्य हैं । हे पुत्र ! खरगोश, कछुआ, गोह, साही और गैंडा ॥ २ ॥ इनको खाना चहिये । सूअर और मुर्गा पितर और देवताओं को अर्पित किया हुआ, तथा श्राद्धमें ब्राह्मण के निमित्त का पदार्थ नहीं खाना चाहिये मन्त्रित और औषधिरूप मांस खाने में दोष नहीं है ॥ ३ ॥ शंख, पाषाण, सोना, चाँदी, रस्सी, कपड़ा, शाक, कन्दमूलफल तथा बिना पत्ते और छालकी वस्तुयें ॥४॥ मणि, वज्र, प्रवाल,मुक्ता तथा मनुष्योंके शरीर जल से शुद्ध होते हैं ॥ ५ ॥ लोहे के हथियारों की शुद्धता जल से तथा शान पर घिसने से होती है । घी और तेल से सने हुए बर्तनों की शुद्धि गर्म जल से होती है ॥ ६ ॥ यव, धान्य, अजिन वस्त्र, मूसल और ओखली तथा वस्त्र यह सब धोने से शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण वल्कल वस्त्र जल के छींटे देने से शुद्ध हो जाते हैं । तथा तृण काठ और औषधियाँ भी जल से शुद्ध होती हैं ॥ ८ ॥ समस्त भेड़ों का ऊन स्वयं शुद्ध है । तिलका तेल लगाकर स्नान करने से भी शुद्धता होती है ॥९॥ चोट लगे मनुष्यों की शुद्धि जल से तथा सूती कपड़ों की शुद्धि क्षार लगाकर जल से होती है ॥१०॥ लकड़ी दाँत, अस्थि और सींग अपने स्थान से हटते ही शुद्ध होजाते हैं और मिट्टी के बर्तनों की शुद्धि दुबारा पकाने से हो जाती है ॥११॥ भिक्षा में प्राप्त

शुचिर्भैक्ष्यं कारुहस्तः पण्यं योषिन्मुखं तथा।
रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गादिनाहृतम् ॥१२॥
वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु।
अतिप्रभूतं वालंच वृद्धातुरविचेष्टितम् ॥१३॥
कर्म्मान्ताङ्गारशालाश्च स्तनन्धयसुताः स्त्रियः।
सुचिन्यश्च तथैवापः स्रवन्त्योऽगन्धवुद्बुदाः ॥१४॥
भूमिर्विशुध्यते कालाद्दाह-मार्ज्जन-गोक्रमैः।
लेपादुल्लेखनात् सेकाद्वेश्म संमार्ज्जनार्चनात् ॥१५॥
केशकीटावपन्ने च गोघ्राते मक्षिकान्विते।
मृदम्बुभस्मना तात प्रोक्षितव्यं विशुद्धये ॥१६॥
औदुम्बराणामम्लेन क्षारेण त्रपु-सीसयोः।
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च१७
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च।
अन्येषांचैव तद्द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः ॥१८॥
शुचि गोतृप्तिकृत् तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्।
तथा मांसंच चण्डाल-क्रव्यादादिनिपातितम् ॥१९॥
रथ्यागतंच चेलादि तात वाताच्छुचि स्मृतम् ॥२०॥
रजोऽग्निरश्वो गौश्छाया रश्मयः पवनो मही।
विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः ॥२१॥
अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोवत्सस्य चाननम्।
मातुः प्रस्रवणे मेध्यं शकुनिः फलपातने ॥२२॥
आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च।
सोमसूर्य्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत् ॥२३॥
रथ्यावसर्पण-स्नान-क्षुत्पान-म्लानकर्म्मसु।
आचामेच्च यथान्यायं वासो विपरिधाय च ॥२४॥
स्पृष्टानामप्यसंसर्गैर्विरथ्याकर्दमाम्भसाम्।
पक्वेष्टरचितानांच मेध्यता वायुसङ्गमात् ॥२५॥

वस्तु, कारीगर का हाथ, बाज़ार की चीज़ और स्त्रियों का मुख सदैव शुद्ध है। तथा गली से लाई हुई चीज, वह चीज़ जो ज्ञात न हो तथा दासों द्वारा लाई हुई वस्तु ॥ १२ ॥ अच्छे नाम वाली, बहुत दिन की पुरानी, अन्य वस्तुओं के साथ लाई हुई और छोटी वस्तु, अत्यन्त प्रबल मनुष्य, बालक वृद्ध और दुखित मनुष्य द्वारा किये हुए काम॥१३॥ घर, धर्मशाला तथा स्तन पीने वाला बालक और पिलाने वाली स्त्री, बहता हुआ सुगन्धित और फेन रहित जल यह सब शुद्ध हैं ॥ १४ ॥ पृथ्वीकी शुद्धि अग्नि से, बुहारी देने से, गोबर लीपने से, गोड़ने से अथवा छिड़काव करने से होती है और घर बुहार कर देवता के पूजन करने से शुद्ध होता है॥ जिस वस्तु में बाल अथवा कीड़े पड़गये हों, किसी अन्य पशु ने सूंघ लिया हो अथवा जिसमें मक्खी गिरगई हो उसको मिट्टी, जल या राख से साफ़ करना चाहिये ॥ १६॥ तांबा खटाई से, शीसा राख से स्वच्छ होता है। कांसा जल और राखके मलने से शुद्ध होता है और बहने वाला पदार्थ बहा देने से शुद्ध होता है १७ ॥ अपवित्र वस्तु को मिट्टी से या उसकी दुर्गन्ध दूर करके शुद्ध करे, अन्य प्रकार की वस्तुओं को भी उसी प्रकार के द्रव्यों से तथा उनकी दुर्गन्ध दूर करके शुद्धकरे ॥ १८ ॥ जो जल प्राकृतिक रूप से पृथ्वी पर स्थितहै और एक गाय को तृप्त करनेके लिये पर्याप्त है वह पवित्र है इसी प्रकार चाण्डाल और व्याघ्रादि द्वारा मारे गये पशुओं का मांस भी पवित्र है ॥१९॥ हे तात ! गली में पड़ा हुआ वस्त्र भी वायु के लगने से शुद्ध हो जाता है ॥२०॥ धूलि, अग्नि, घोड़ा, गाय, छाया, सूर्य की किरणें, पवन, पृथ्वी, ब्राह्मणका वीर्य और मक्खी आदि यह अस्पृश्य वस्तु के संसर्ग होने पर भी दोष रहित हैं ॥२१॥ बकरी और घोड़े का मुख शुद्ध है गाय के बछड़े का नहीं। जब तक बछड़ा दूध पीता है वह भी शुद्ध है। पक्षी द्वारा गिराया हुआ फल भी शुद्धहै ॥२२॥ आसन, शय्या वाहन, नाव और रास्ते के तृण तथा बाजार की वस्तुयें चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से तथा पवन से शुद्ध होजाती हैं ॥ २३ ॥ गली में चलने फिरने पर, स्नान के समय, भूख प्यासकी निवृत्ति करने के समय तथा वीर्यपात के समय कपड़ेबदल कर विधिपूर्वक आचमन करे ॥ २४ ॥ गली अथवा कीचड़, पानी के संसर्ग से स्पर्श हुई वस्तुभी वायु के संसर्ग मात्र से पवित्र हो जाती है ॥२५॥

प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य सन्त्यजेत् ।
शेषस्य प्रोक्षणं कुर्य्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा॥ २६॥
उपवासंस्त्रिरात्रन्तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत् ।
अज्ञाते ज्ञानपूर्व्वन्तु तद्दोषोपशमेन तु ॥२७॥
उदक्या-श्व-शृगालादीन सूतिकान्त्यावसायिनः ।
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥२८॥
नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नातः शुध्यति मानवः ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा॥२६॥
न लङ्घयेत् तथैवासृक्ष्ठीवनोद्वर्त्तनानि च ।
नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन ॥३०॥
न चालपेज्जनद्विष्टां वीरहीनां तथा स्त्रियम् ।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्र-पादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः ॥३१॥
पंच पिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात परवारिणि।
स्नायीत देवखातेषु गङ्गा-ह्रद-सरित्सु च ॥३२॥
देवता-पितृ-सच्छास्त्र-यज्ञ-मन्त्रादिनिन्दकैः ।
कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुध्येतार्कावलोकनात् ॥३३॥
अवलोक्य तथोदक्यासन्त्यजं पतितं शवम् ।
विधर्म्मि-सूतिका-षण्ड-विवस्त्रान्त्यावसायिनः॥३४॥
सूतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये ।
एतदेव हि कर्त्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ॥३५॥
अभोज्यं सूतिका-षण्ड-मार्ज्जाराखु-श्व-कुक्कुटान्।
पतितापविद्धचण्डाल-मृतहारांश्च धर्म्मवित् ॥३६॥
संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्या-ग्रामशूकरौ ।
तद्वच्च सूतिकाशौच-दूषितान् पुरुषानपि ॥३७॥
यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्म्मणः ।
यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्विषी स नराधमः॥३८॥
नित्यस्य कर्म्मणो हानिं न कुर्व्वीत कदाचन।
तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु ॥३६॥
दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद् नहोमादिविर्ज्जितः ।
क्षत्रियो द्वादशाहंच वैश्यो मासार्द्धमेव च ॥४०॥
शूद्रस्तु मासमासीत निजकर्म्मविवर्ज्जितः ।
ततः परं निजं कर्म्म कुर्य्युः सर्व्वे यथोदितम् ॥४१॥

अपने हाथसे तैयार की हुई भोजनकी सामग्रीमें से अग्रभाग निकालकर शेषको अभिमंत्रित करे फिर जलको मृत्तिकासे स्पर्शकर आचमन करे ॥ २६॥ अनजानमें अथवा जानकारी में यदि दूपित अन्न खाले तो उसके दोपकी शांतिके लिये तीन रात्रि तक उपवास करे ॥२७॥ रजस्वलास्त्री, कुत्ता, गीदड़ जापेवाली स्त्री, चांडाल आदि तथा मुर्दे को लेजाने वाले इन सबसे छू जाने पर स्नान करे ॥ २८ ॥ मृत की हड्डी छूकर पुरुप तेल लगाकर स्नान करने से शुद्ध होताहै और यदि तेल न लगावे तो आचमन करे अथवा गायको स्पर्शकर सूर्य का दर्शन करे ॥ और रुधिर, थूक, खखार, वमन आदिको लाँघकर न चले तथा बुद्धिमान् मनुष्य कभी कुसमय वाग बगीचे में न ठहरे ॥ ३० ॥ मनुष्य को निंदित कर्म वाली विधवा स्त्री से वार्तालाप न करनी चाहिये। झूंठन, विष्ठा, मूत्र और पाँवों की धोवन को घरसे बाहर फेंके ॥ ३१ ॥ पाँच पिंडों को दिये विना देव-खात, गङ्गा तथा अन्य पुण्यवती नदियों में स्नान न करे ॥ ३२ ॥ देवता, पितृ, सत्शास्त्र तथा यज्ञों और मन्त्र आदिकों के निन्दकों को स्पर्श करके अथवा उनसे वातचीत करने पर अपने को सूर्य का दर्शन करके शुद्ध करे ॥ ३३ ॥ रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, पापी, मृतक, विधर्मी, जापेवाली स्त्री, नपुंसक, वस्त्रहीन तथा चाण्डाल आदिको देखकर ॥३४॥ तथा प्रसूती स्त्री की सहचरी स्त्री और पर-स्त्री में रत पुरुप को देखकर भी इसी प्रकार चतुर मनुष्य आत्म शुद्धि करे ॥ ३५ ॥ अभोज्य, प्रसूती स्त्री, नपुंसक, विल्ली, चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पापी, कोढ़ी, चाण्डाल और मुर्दा उठाने वाले से यदि धर्मात्मा पुरुप ॥ ३६ ॥ छू जाय तो स्नान करने से शुद्ध होता है इसी प्रकार रजस्वला स्त्री, सूअर या प्रसूती के स्पर्श-दोप से शौच करना चाहिये॥३७॥ जो ब्राह्मण को सताता है उसके घर में दिन पर दिन हानि होती है, वह नराधम पापी है ॥३८॥ कभी नित्यकर्म न छोड़े, उसका केवल मौत या जन्म के समय निषेध हैं ॥ ३६ ॥ मृत्यु अथवा जन्म से ब्राह्मण को दश दिन, क्षत्रिय को बारह दिन और वैश्य को पन्द्रह दिन तक सूतक मानना चाहिये ॥ ४० ॥ और शूद्र को एक महीने तक अपना कर्म न करके सूतक मानना चाहिये। इसके अनन्तर सबको यथोचित रूप से जो जिस का कर्म है करना चाहिये ॥ ४१ ॥ मृतक-दाह करने

प्रेताय सलिलं देयं बहिर्दग्ध्वा तु गोत्रिकैः ।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा ॥४२॥
भस्मास्थिचयनं कार्य्यं चतुर्थे गोत्रिकैर्दिने ।
ऊर्द्ध्वं संचयनात् तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ॥४३॥
सोदकैस्तु क्रियाः सर्व्वा कार्य्याः संचयनात् परम् ।
स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ॥४४॥
अन्वेकमृक्षमाशस्त्र-तोयोद्बन्धन-वह्निषु ।
विषप्रपातादिमृते प्रायो नाशकयोरपि ॥४५॥
बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते ।
सद्यःशौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम् ॥४६॥
सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन् मृतो यदि ।
पूर्व्वाशौचसमाख्यातैः कार्य्यास्तत्र दिनैः क्रियाः ४७
एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके ।
सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत् सोदकेषु च ॥४८॥
जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचेलन्तु विधीयते ॥४९॥
तत्रापि यदि चान्यस्मिन् जाते जायते चापरः ।
तत्रापि शुद्धिरुद्दिष्टा पूर्व्वजन्मवतो दिनैः ॥५०॥
दशद्वादशमासार्द्ध-माससंख्यैर्दिनैर्गतैः ।
स्वाः स्वाः कर्म्मक्रियाः कुर्य्युः सर्व्वे वर्णा यथाविधि॥
प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं ततः परम् ।
दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः॥५२॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥५३॥
पूर्णैस्तु दिवसैः स्पृष्ट्वा सलिलं वाहनायुधम् ।
प्रतोददण्डौ च तथा सम्यग्वर्णाः कृतक्रिया ॥५४॥
स्ववर्णधर्म्मनिर्दिष्टमुपादानं तथा क्रियाः ।
कुर्य्युः समस्ताः शुचिनः परत्रेह च भूतिदाः ॥५५॥
अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ।
धर्म्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यंचापि यत्नतः ॥५६॥
यच्चापि कुर्व्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पुत्रक ।

पर सगोत्रों को चाहिये कि प्रेत को पहिले, चौथे, सातवें और नौवें दिन पानी दें ॥ ४२ ॥ सगोत्रों को चौथे दिन भस्म और अस्थियों का सञ्चय करना चाहिये, इस सञ्चयके बाद उनके अङ्ग स्पर्श का विधान कहा है ॥४३॥ अस्थि सञ्चयके बाद समानोदक भी सब क्रियायें करे और सपिंड स्पर्शमात्र करें तथा जिस दिन मृत्यु हुई हो उस दिन समानोदक और सपिंड दोनों क्रियायें करें ॥ ४४ ॥ आत्मघाती, शस्त्र से मारा हुआ, जलमें डूबा हुआ, अग्नि से जलकर विषपान करके अथवा ऊंचे से गिरकर मरा हुआ ॥ ४५ ॥ और बालक, परदेशी, परिव्राजक इनके मरने पर सद्यः अर्थात् फ़ौरन शौच मानना चाहिये तथा कुछ लोगों का मत है कि यह शौच तीन दिनका होना चाहिये ॥४६॥ एक सपिंडके मरने पर सपिंडों में से दूसरा और मर जाय तो उन्हीं दिनों में पहिले और पिछले की शौच क्रिया साथ २ करदे ॥ ४७ ॥ जिस प्रकार सपिण्डों में सपिण्डों की क्रियायें हैं उसी प्रकार समानोदकों की भी है। इसी तरह जन्म का सूतक भी माना गया है ॥४८॥ पुत्रके उत्पन्न होने पर पिता वस्त्रों सहित स्नान करे ॥४९॥ यहाँभी यदि एक का जन्म होनेपर उसी कुल में दूसरे का जन्म होजावे तो दोनोंकी शुद्धि साथ-२ होगी ॥ ५० ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का क्रमशः दस, बारह, पन्द्रह दिन और एक महीनेका सूतक माना गया है वे और सब वर्णों के लोग विधि पूर्वक अपने-अपने वर्ण के अनुसार क्रियायें सम्पन्न करें ॥ ५१ ॥ इसके बाद प्रेत का उद्देश्य करके एकोद्दिष्ट करे तथा ब्राह्मणों और पण्डितों को दान दे ॥ ५२ ॥ अक्षय पुण्य की इच्छा से जो कुछभी अच्छी वस्तु संसार में है अथवा घर में जो कुछ प्रिय है वह गुणवान् को दे ॥ ५३ ॥ क्रिया के दिन पूरे होने पर जल, सवारी और शस्त्र को स्पर्श करे। जिस किसी को दण्ड दे उसे न्याय पूर्वक दण्ड दे तथा अपने वर्ण के अनुसार भली भांति क्रियायें करे ॥ ५४ ॥ अपने वर्ण के धर्मानुसार क्रियायें करे क्योंकि ये समस्त पवित्र क्रियायें इस लोक और परलोक में सिद्धि की देने वाली हैं ॥५५॥ नित्य त्रिवेद अर्थात् ऋक्, साम और यजुर्वेद पढ़े और ज्ञानियों की संगति करे। धर्म से धनोपार्जन कर यत्नपूर्वक यज्ञ करे ॥ ५६॥ हे पुत्र ! वह कर्म करे जिससे अपनी निन्दा

तत् कर्त्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने ॥५७॥
एवमाचरतो वत्स पुरुषस्य गृहे सतः।
धर्म्मार्थ-कामसम्प्राप्तया परत्रेह च शोभनम् ॥५८॥

न हो। जो कर्म बड़े लोगों ने किये हैं उन्हीं को निस्सन्देह होकर करो ॥ ५७ ॥ हे वत्स! इस प्रकार आचरण करने से गृहस्थी पुरुष को इस लोक और परलोक में धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अलर्कानुशासन में वर्ज्यावर्ज्य कथन नाम ३५वाँ अध्याय समाप्त।

छत्तीसवां अध्याय

जड़ उवाच

स एवमनुशिष्टः सन् मात्रा सम्प्राप्य यौवनम्।
ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ॥ १ ॥
पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः।
पितुश्च सर्व्वकालेषु चकाराज्ञानुपालनम् ॥ २ ॥
ततः कालेन महता सम्प्राप्य चरमं वयः।
चक्रेऽभिषेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः ॥ ३ ॥
भार्य्यया सह धर्म्मात्मा यियासुस्तपसे वनम्।
अवतीर्णो महारक्षो महाभागो महीपतिः ॥ ४ ॥
मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः।
कामोपभोगसंसर्ग-प्रहानाय सुतस्य वै ॥ ५ ॥

जड़ (सुमति) ने कहा—

अलर्क ने इस प्रकार अपनी माता से उपदेश ग्रहण किये तथा युवावस्था आने पर ऋतध्वज के पुत्र अलर्क ने अपना विवाह किया ॥ १ ॥ उसने पुत्र भी उत्पन्न किये तथा उसने बहुत से यज्ञ किये और सदा अपने पिता राजा ऋतध्वज की आज्ञा का पालन किया ॥ २ ॥ फिर राजा ऋतध्वज ने बहुत काल के बाद वृद्धावस्था को प्राप्त कर अपने पुत्र को राज्य सौंप दिया ॥ ३ ॥ स्वयं उस भाग्यवान् राजा ने अपनी स्त्री के साथ तप करने के लिये वन को जाने की इच्छा की ॥४॥ उस समय मदालसा अपने पुत्र से काम और भोग के संसर्ग को छोड़ने के लिये उपदेश करने लगी ॥

मदालसोवाच

यदा दुःखमसह्यं ते प्रियबन्धुवियोगजम्।
शत्रुबाधोद्भवं वापि वित्तनाशात्मसम्भवम् ॥ ६ ॥
भवेत् तत् कुर्व्वतो राज्यं गृहधर्म्मावलम्बिनः।
दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही ॥ ७ ॥
तदास्मात् पुत्र निष्कृष्य मद्दत्ताङ्गुलीयकात्।
वाच्यं ते शासनं पट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥ ८ ॥

मदालसा बोली—

हे पुत्र! जब तुमको प्रिय भाई बन्धु के वियोग से, शत्रु बाधा से अथवा धन के नाश से असह्य दुःख हो ॥६॥ और तुम राज्य करते हुए तथा गृहस्थ धर्म का अवलम्बन करते हुए ममता से दुःखपूर्ण हो जाओ ॥७॥ तब हे पुत्र! मेरी दी हुई इस अंगूठी में से पट्ट को निकाल कर सूक्ष्म अक्षरों में लिखे हुए इस शासन को तुम पढ़ना ॥ ८ ॥

जड़ उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै सौवर्णं साङ्गुलीयकम्।
आशिषश्चापि या योग्याः पुरुषस्य गृहे सतः ॥ ९ ॥
ततः कुवलयाश्वोऽसौ सा च देवी मदालसा।
पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतः ॥१०॥

जड़ (सुमति) बोले—

यह कहकर उसको वह सोने की अंगूठी देदी और गृहस्थके योग्य उसको आशीर्वाद दिया ॥९॥ इसके अनन्तर कुवलयाश्व और देवी मदालसा पुत्र को राज्य देकर तप करने के लिये वन को चले गये ॥ १० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें मदालसोपाख्यान नाम ३६वाँ अ० समाप्त।



सैंतीसवां अध्याय

जड़ उवाच

सोऽप्यलर्को यथान्यायं पुत्रवन्मुदिताः प्रजाः।
पालयामास धर्म्मात्मा स्वे स्वे कर्म्मण्यवस्थिताः १॥
दुष्टेषु दण्डं शिष्टेषु सम्यक् च परिपालनम्।
कुर्व्वन् परां मुदं लेभे इयाज च महामखैः॥ २॥
अजायन्त सुताश्चास्य महाबलपराक्रमाः।
धर्म्मात्मानो महात्मानो विमार्गपरिपन्थिनः॥ ३॥
चकार सोऽर्थं धर्म्मेण धर्म्ममर्थेन चात्मवान्।
तयोश्चैवाविरोधेन बुभुजे विषयानपि॥ ४॥
एवं बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतो महीम्।
धर्म्मार्थ-कामसक्तस्य जग्मुरेकमहर्यथा॥ ५॥
वैराग्यं नास्य सञ्जज्ञे भुञ्जतो विषयान् प्रियान्।
न चाप्यलमभूत् तस्य धर्म्मार्थोपार्ज्जनं प्रति॥ ६॥
तं तथा भोगसंसर्ग-प्रमत्तमजितेन्द्रियम्।
सुबाहुर्नाम शुश्राव भ्राता तस्य वनेचरः॥ ७॥
तं बुबोधयिषुः सोऽथ चिरं ध्यात्वा महीपतिः।
तद्वैरिसंश्रयं तस्य श्रेयोऽमन्यत भूपतेः॥ ८॥
ततः स काशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम्।
स्वराज्यं प्राप्तमागच्छद्बहुशः शरणं कृती॥ ९॥
सोऽपि चक्रे बलोद्योगमलर्कं प्रति पार्थिवः।
दूतश्च प्रेषयामास राज्यमस्मै प्रदीयताम्॥१०॥
सोऽपि नेच्छत् तदा दातुमाज्ञापूर्व्वं स्वधर्म्मवित्।
प्रत्युवाच च तं दूतमलर्कः काशिभूभृतः॥११॥
मामेवाभ्येत्य हार्द्देन याचतां राज्यमग्रजः।
नाक्रान्त्या सम्प्रदास्यामि भयेनाल्पामपि क्षितिम्१२
सुबाहुरपि नो याञ्चां चकार मतिमांस्तदा।
न धर्म्मः क्षत्रियस्येति याञ्चा वीर्य्यधनो हि सः१३
ततः समस्तसैन्येन काशीशः परिवारितः।
आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्य महीपतेः॥१४॥
अनन्तरैश्च संश्लेपमभ्येत्य तदनन्तरम्।
तेषामन्यतमैर्भृत्यैः समाक्रम्यानयद्वशम्॥१५
अपीडयच्च सामन्तांस्तस्य राष्ट्रोपरोधनैः।
तथा दुर्गानुपालांश्च चक्रे चाटविकान् वशे॥१६॥

जड़ (सुमति) बोले—

वह महात्मा अलर्क न्यायपूर्वक प्रजा को पुत्रवत् पालन करता था तथा सब प्रजा अपने-२ कर्म में स्थित होकर प्रसन्न थी॥ १॥ वह दुष्टों को दंड देता तथा सज्जनों का भली प्रकार पालन करता हुआ परम आनन्द को प्राप्त करता था तथा बड़े २ यज्ञ किया करताथा॥२॥ उसके महाबली,पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा तथा कुमार्गियों को दंड देनेवाले पुत्र हुए॥ ३॥ अलर्क ने धर्म से धन प्राप्त किया तथा धन से धर्म किया। वे धन और धर्म से निर्विरोध सांसारिक विषयों का सुख भोगने लगे॥ इसी तरह धर्म, अर्थ और काम में आसक्त हो पृथ्वी को पालते हुए उन्हें बहुत वर्ष एक दिन के समान व्यतीत होगये॥ ५॥ उनको सांसारिक सुख भोगते-भोगते वैराग्य न हुआ तथा धर्म और धन से भी तृप्ति न हुई॥ ६॥ उसके भाई सुबाहु ने जो वनवासी थे सुना कि अलर्क सांसारिक भोगों में प्रमत्त और अजितेन्द्रिय हो रहा है॥७॥ अलर्क को किस तरह ज्ञान उत्पन्न हो यह सुबाहु ने बहुत काल तक सोचा और निश्चित किया कि यदि कोई वैरी इनसे अटके तो इनको ज्ञान हो॥८॥ तब वह अपने को राज्य-प्राप्तिकी इच्छा से काशीनरेश के पास जो बहुतों को शरण दिया करते थे तथा जिनके पास बहुतसी धन सेना और सवारियां भी थीं, गये॥ ९॥ उस राजा ने अलर्क के विरुद्ध एक सेना तैयार करके एक दूत को अलर्क के पास भेज कर कहलवाया कि यह राज्य सुबाहुको देदो॥१०॥ धर्मात्मा अलर्क ने आज्ञा पूर्वक माँगने पर राज्य देने की इच्छा न की और काशिराज के उस दूत से बोले॥ ११॥ यदि मेरा भाई मुझसे आकर राज्य माँगे तो उचितहै। किसी के भय से दबकर मैं थोड़ीसी पृथ्वी भी न दूँगा॥१२॥ बुद्धिमान्सुबाहु ने भी याचना करना उचित न समझा, कारण—क्षत्रिय को जिसका कि धन बल है याचना करना धर्मसङ्गत नहीं॥१३॥ तब समस्त सेना को लेकर काशिराज महाराज अलर्क के राज्य को घेरने के लिये चले॥ १४॥ इसके अनन्तर दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ और काशिराज ने मन्त्री सेवक आदिकों को अपने वश में करलिया॥ १५॥ राजा अलर्क के सामन्तों को पीड़ित किया तथा उनके राज्य, धन, दुर्गपाल और महलों के रक्षकों को

काँश्चिचोपप्रदानेन काँश्चिद्भेदेन पार्थिवान्।
साम्नैवान्यान् वशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन्१७॥
ततः सोऽल्पबलो राजा परचक्रावपीड़ितः।
कोषक्षयमवापोच्चैः पुरञ्चारुध्यतारिणा ॥१८॥
इत्थं सम्पीड्यमानस्तु क्षीणकोषो दिने दिने।
विषादमागात् परमं व्याकुलत्वंच चेतसः ॥१९॥
आर्त्तिं स परमां प्राप्य तत् सस्मारांगुरीयकम्।
यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मदालसा ॥२०॥
ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
निष्कृष्य शासनं तस्माद्ददृशे प्रस्फुटाक्षरम् ॥२१॥
तत्रैव लिखितं मात्रा वाचयामास पार्थिवः।
प्रकाशपुलकाङ्गोऽसौ प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥२२॥
सङ्गः सर्व्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्युक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम् ॥२३॥
कामः सर्व्वात्मना हेयो ह्यातुञ्चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत् कार्य्यं सैव तस्यापि भेषजम् ॥२४
वाचयित्वा तु बहुशो नृणां श्रेयः कथन्त्विति।
मुमुक्षयेति निश्चित्य सा च तत्सङ्गतो यतः ॥२५॥
ततः स साधुसम्पर्कं चिन्तयन् पृथिवीपतिः।
दत्तात्रेयं महाभागमगच्छत् परमार्त्तिमान् ॥२६॥
तं समेत्य महात्मानमकल्मषमसङ्गिनम्।
प्रणिपत्याभिसम्पूज्य यथान्यायमभाषत ॥२७॥
ब्रह्मन् कुरु प्रसादं मे शरणं शरणार्थिनाम्।
दुःखापहारं कुरु मे दुःखार्त्तस्यातिकामिनः ॥२८॥

दत्तात्रेय उवाच

दुःखापहारमद्यैव करोमि तव पार्थिव।
सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखं तत् पृथिवीपते ॥२९॥

जड़ उवाच

इत्युक्तश्चिन्तयामास स राजा तेन धीमता।
त्रिविधस्यापि दुःखस्य स्थानमात्मानमेव च ॥३०॥
स विमृष्य चिरं राजा पुनः पुनरुदारधीः।
आत्मानमात्मना धीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥३१॥
नाहमुर्व्वी न सलिलं न ज्योतिरनिलो न च।
नाकाशं किन्तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते ॥३२॥

अपने वश में कर लिया ॥ १६ ॥ जो राजा लोग अलर्क के सहायक थे उनमें से कुछ को धन से, कुछ को भेद नीतिसे काशिराज ने मिलाकर अपने वशमें कर लिया ॥ १७ ॥ राजा अलर्क की छोटी सेना काशिराज की सेना से पीड़ित हुई और उस का खज़ाना खाली होगया और नगर वैरी के क़ब्ज़े में चला गया ॥१८॥ इस प्रकार पीड़ित किये जाने और कोष के धीरे-धीरे क्षीण होने से राजा अलर्क का चित्त बहुत व्याकुल हुआ ॥ १९ ॥ और उस परम दुःख को पाते हुए उन्हें उस अँगूठी की याद आई जो उनकी माता मदालसा ने उन्हें दी थी ॥२०॥ फिर स्नान करके और पवित्र होकर उस अँगूठी से उस पट्ट को निकलवा कर साफ साफ अक्षरों में ब्राह्मणों से पढ़वाया ॥ २१ ॥ फिर उन राजा ने उसमें लिखे हुए को पढ़ा और वह बहुत प्रसन्न होकर पुलकित होगये ॥ २२ ॥ संसार में सबसे सङ्ग छोड़ देना चाहिये और यदि छोड़ने को समर्थ न हो तो सज्जनों की सङ्गति करना चाहिये कारण साधुओं की सङ्गति ही औषधि है ॥२३॥ काम को सर्वथा त्याग देना चाहिये और यदि उसको न त्याग सके तो मुक्तिका यत्न करना चाहिये क्योंकि मुक्ति ही काम की औषधि है॥२४॥ उसको वँचवा कर तथा अपना कल्याण सोचकर अलर्कने मुक्तिकी इच्छाकी और उसका निश्चय करके सत्सङ्गका विचार किया ॥२५॥ इसके अनन्तर वह राजा अलर्क साधु-सत्सङ्गकी इच्छा करते हुए महर्षि दत्तात्रेय के पास गये ॥ २६ ॥ उन निष्पाप असङ्ग महात्मा दत्तात्रेय के पास पहुँचकर और उनको प्रणाम करके वे न्यायपूर्वक बोले ॥२७॥ हे भगवन्! मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मैं शरणार्थी हूँ । मैं अति कामी और दुःखी हूँ, मेरा दुःख हरण कीजिये॥२८॥

दत्तात्रेय बोले—

हे राजन्! मैं तुम्हारा दुःख दूर करने का यत्न करूँगा। सच बताओ तुमको यह दुःख कैसे हुआ॥

जड़ बोला—

दत्तात्रेयजी के इस प्रकार पूछने पर उस राजा ने तीनों प्रकार के दुःख के स्थान आत्मा में सोचा ॥३०॥ बहुत देरतक वह उदारचित्त बेर-२ सोचता रहा और अपनी आत्मा का विचार कर हँसकर यह वचन बोला ॥ ३१ ॥ मैं पृथ्वी, जल, ज्योति, वायु, आकाश कुछ भी नहीं हूँ परन्तु शरीर को ही सुख की इच्छा रहती है ॥ ३२ ॥ इस पंचतत्त्व के

न्यूनातिरिक्ततां याति पंचकेऽस्मिन् सुखासुखम्।
यदि स्यान्मम किं न स्यादन्यस्थेऽपि हितं मयि३३॥
नित्यमभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यान्नतोन्नते।
तथा च समतात्यक्तो विशेषेणोपलभ्यते ॥३४॥
तन्मात्रावस्थिते सूक्ष्मे तृतीयांशे च पश्यतः।
तथैव भूतसद्भावं शारीरं किं सुखासुखम् ॥३५॥
मनस्यवस्थितं दुःखं सुखं वा मानसंच यत्।
यतस्ततो न मे दुःखं सुखं वा न ह्यहं मनः ॥३६॥
नाहङ्कारो न च मनो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः।
अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत् कथम् ॥३७॥

नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक् शरीरान्मनसस्तथाहम्। तत् सन्तु चेतस्यथवापि देहे सुखानि दुःखानि च किं ममात्र ॥३८॥

राज्यस्य वाञ्छां कुरुतेऽग्रजोऽस्य देहस्य चेत् पंचमयः स राशिः। गुणप्रवृत्त्या मम किं नु तत्र तत्स्थः स चाहंच शरीरतोऽन्यः ॥३९॥

न यस्य हस्तादिकमप्यशेषं मांसं न चास्थीनि शिराविभागः। कस्तस्य नागाश्वरथादिकोषैः स्वल्पोऽपि सम्बन्ध इहास्ति पुंसः ॥४०॥

तस्मान्न मेऽरिन च मेऽस्ति दुःखं न मे सुखं नापि पुरं न कोषः। न चाश्व-नागादि बलं न तस्य नान्यस्य वा कस्यचिद्वा ममास्ति ॥४१॥

यथा घटी-कुम्भ कमण्डलुस्थमाकाशमेकं बहुधा हि दृष्टम्। तथा सुबाहुः स च काशिपोऽहं मन्ये च देहेषु शरीरभेदैः ॥४२॥

शरीर को सुख दुःख, न्यूनता और वृद्धि होती है। यदि सुख दुःख मुझे हों तो मैं जो दूसरे में भी मौजूद हूँ उसे क्यों नहीं होता? ॥ ३३ ॥ जीव तो नित्य और निर्विकार है और वह उन्नति या अवनति में अधिक न्यून नहीं होता। इसलिये ममता छोड़ने से विशेष लाभ होता है ॥ ३४ ॥ तन्मात्रा के बीच में जो आत्मा सूक्ष्म रूप से स्थित है उस जीव का जिसको ज्ञान है उसको शरीरके दुःख या सुख से क्या ?॥ ३५॥ दुःख और सुख की स्थिति मन में है इसलिये दुःख सुख मनोगत है। चूंकि मैं मन नहीं हूँ इसलिये मुझको दुःख सुख नहीं है ॥ ३६॥ न मैं अहङ्कार हूँ, न मन और न बुद्धि हूँ, मेरे अंतःकरण में जो दुःख है वह दूसरे को है मुझको वह किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ३७ ॥ न मैं शरीर हूँ और न मन, मैं शरीर और मन से अलग हूँ। इसलिये सुख या दुःख मन में हो अथवा शरीर में, मुझे इससे क्या ? ॥३८॥ जिस राज्यकी अभिलाषा मेरे भाई सुबाहु को है वह शरीर का है और शरीर पञ्चतत्त्वमय है। शरीरके गुणोंमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि शरीर में स्थित होकर भी उससे अलग हूं ॥३९॥ जिस शरीर के हाथ मांस, अस्थि, शिर आदि ही अपने नहीं हैं तो उसके हाथी, घोड़े, रथ खज़ाने आदि से क्या ? इस संसार में मनुष्य का सम्बन्ध क्षणिक है ॥४०॥ इसलिये न तो कोई मेरा शत्रु है और न मुझको दुःख व सुख है और नगर कोष, अश्व, हाथी, सेना आदि न मेरी हैं, न उसकी और न किसी और की है ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार आकाश घटी, घड़े और कमण्डलमें एक ही तत्व है, परन्तु स्थानभेद के कारण अलग-अलग दिखाई पड़ता है उसी प्रकार सुबाहु, काशिराज और मैं एक ही हूँ, केवल शरीरों की भिन्नता का ही भेद है ॥ ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में पिता-पुत्र संवादमें आत्म-विवेक नाम ३७वाँ अ० समाप्त।

अड़तीसवाँ अध्याय

जड़ उवाच

दत्तात्रेयं ततो विप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः।
प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतो वचः ॥ १ ॥
सम्यक् प्रपश्यतो ब्रह्मन् मम दुःखं न किञ्चन।
असम्यग्दर्शिनो मग्नाः सर्व्वदैवासुखार्णवे ॥ २ ॥

जड़ (सुमति) बोले—
उस राजाने ब्राह्मण दत्तात्रेय को प्रणाम किया तथा दीनतापूर्वक उन महात्मा से कहा ॥ १ ॥ हे भगवन्! मुझे भली प्रकार आत्मा का ज्ञान है इसलिये मुझे कुछ दुःख नहीं है, जो लोग आत्मा को भली प्रकार नहीं जानते हैं वे सदैव दुःख के सागर में डूबे रहते हैं ॥ २ ॥ मनुष्यों को

यस्मिन् यस्मिन् समासक्ता बुद्धिः पुंसः प्रजायते ।
ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ॥ ३ ॥
मार्ज्जारभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे ।
न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके ॥ ४ ॥
सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतेः परः ।
यो भूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ॥ ५ ॥

दत्तात्रेय उवाच

एवमेतन्नरव्याघ्र यथैतद्व्याहृतं त्वया ।
ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतेः ॥ ६ ॥
मत्प्रश्नादेव ते ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् ।
ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्तः शाल्मलितूलवत् ॥ ७ ॥
अहमित्यंकुरोत्पन्नो ममेतिस्कन्धवान् महान् ।
गृहक्षेत्रोच्चशाखश्च पुत्रदारादिपल्लवः ॥ ८ ॥
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्द्धितः ।
पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफलः ॥ ९ ॥
तत्र मुक्तिपथव्यापी मूढसम्पर्कसेचनः ।
विधित्साभृङ्गमालाढ्यो ह्यज्ञानमहातरुः ॥१०॥
संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः ।
भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः ॥११॥
यैस्तु सत्सङ्गपाषाण-शितेन ममतातरुः ।
छिन्नो विद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना ॥१२॥
प्राप्य ब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम् ।
प्राप्नुवन्ति परां प्राज्ञा निर्वृतिं वृत्तिवर्जिताः ॥१३॥
भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन् न चाप्यहम् ।
न तन्मात्रं मया वाच्यं नैवान्तःकरणात्मकौ ॥१४॥
कं वा पश्यामि राजेन्द्र प्रधानमयमावयोः ।
यतः परो हि क्षेत्रज्ञः सङ्घातो हि गुणात्मकः ॥१५॥
मशकोडुम्बरेषीका-मुञ्जमत्स्याम्भसां यथा ।
एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप ॥१६॥

मन जिस-जिस वस्तु में आसक्ति रखता है उसी-उसी वस्तु से उसको दुःख आते हैं ॥ ३ ॥ यदि पालतू मुर्गे को बिल्ली खा जाय तो इतना दुःख होता है जितना कि मूसे आदि के खाने से नहीं होता है ॥ ४ ॥ चूंकि मैं प्रकृति से परे हूं इसलिये मुझको दुःख है न सुख । जो इस भूत के साथ ममता रखता है वही सुखी और दुःखी है ॥ ५ ॥ ।

दत्तात्रेय बोले—

हे पुरुषसिंह ! यह सब इसी तरह है जिस तरह कि तुमने कहा है । यह मेरा है यही दुःख का मूल है तथा जब ममता नहीं रहती तब निवृत्ति हो जाती है ॥६॥ मेरे प्रश्न करने से ही तुमको यह उत्तम ज्ञान उत्पन्न हुआहै जिससे ममत्व का प्रभाव इस प्रकार दूर होगया है जैसे सेमर की रुई हवा से उड़ जाती है ॥७॥ 'अहं' अर्थात् मैं इसका अंकुर है और 'मेरा' इसका बड़ा स्कन्द है, घर और खेत इसकी ऊपर की शाखायें हैं तथा स्त्री पुत्रादि इसके पत्ते हैं ॥ ८ ॥ धन-धान्य इसके बड़े-बड़े पत्ते हैं जो चिरकाल से बढ़े हुए हैं । पुण्य और पाप इसके पुष्प और सुख दुःख इसके फल हैं ॥९ ॥ मुक्तिमार्ग को रोकने वाले मूर्खों के सम्पर्करूपी जलसे इसका सिंचन होता है और भौंरों का जो झुण्ड इसपर है वह विधि है ऐसा यह अज्ञानरूपी महावृक्ष है॥१०॥ संसाररूपी मार्ग में थक कर जो लोग इस वृक्षकी छाया का आश्रय लेतेहैं वे भ्रमपूर्ण ज्ञान और सुख दुःख के आधीन हो जाते हैं, उनको मोक्ष कहां ? ॥११॥ जो मनुष्य सत्सङ्गरूपी पत्थर पर तेज़ करके विद्यारूपी कुठार से इस ममतारूपी वृक्ष को काट डालते हैं, वे ही उस मार्ग पर जाते हैं जो मोक्षका है ॥१२॥ वे ज्ञानी लोग कांटे और धूलि से रहित शीतल ब्रह्म-ज्ञान रूपी वनमें पहुँचकर परमनिर्वृत्ति को प्राप्त होते हैं और प्रवृत्ति अर्थात् आवागमन से रहित हो जाते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! भूतेन्द्रियों सहित जो यह स्थूल शरीर है वह न मैं हूँ और न तुम । शरीर के भीतर आत्मा साक्षीरूप है ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र ! हम अपने में और तुम में किसको प्रधान समझें जब कि क्षेत्रज्ञ पुरुष सबसे परे है, इसलिये यह सब गुणात्मक है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार भुनगा गूलर में, सिरकी मूँगी में और मछली जल में रहते हुए एक हैं परन्तु यथार्थ में अलग-अलग हैं, इसी प्रकार शरीर और आत्मा एक में स्थित होते हुए भी अलग-अलग हैं ॥ १६ ॥

अलर्क उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन समाविर्भूतमुत्तमम् ।
ज्ञानं प्रधानचिच्छक्ति-विवेककरमीदृशम् ।१७॥
किन्त्वत्र विषयाक्रान्ते स्थैर्य्यवत्त्वं न चेतसि ।
न चापि वेद्मि मुच्येयं कथं प्रकृतिबन्धनात् ॥१८॥
कथं न भूयां भूयश्च कथं निर्गुणतामियाम् ।
कथंच ब्रह्मणैकत्वं व्रजेयं शाश्वतेन वै ॥१९॥
तन्मे योगं तथा ब्रह्मन् प्रणतायाभियाचते ।
सम्यग्ब्रूहि महाप्राज्ञ सत्सङ्गो ह्युपकृन्नृणाम् ॥२०॥

अलर्क बोले—

हे भगवन्! आपकी कृपा से मुझे चैतन शक्ति युक्त उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ किन्तु मेरा मन विषयों में आसक्त है और स्थिर नहीं है, इसलिये इस प्रकृति रूपी मायाके बन्धनसे किस प्रकार मुक्त होऊँगा यह जानना चाहता हूँ ॥ १८ ॥ किस तरह मैं आवागमन से रहित होकर निर्गुणता को प्राप्त होऊंगा और किस प्रकार मैं शाश्वत ब्रह्ममें लीन होऊंगा? ॥ १९ ॥ हे भगवन्! इसलिये मैं नम्रता पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि योग मुझे भली प्रकार समझाइये क्योंकि बुद्धिमानों का सत्सङ्ग मनुष्यों का उपकार करने वाला है ॥ २०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में पिता-पुत्र संवादमें प्रश्न नाम का ३८वाँ अध्याय समाप्त।



उनतालीसवां अध्याय

दत्तात्रेय उवाच

ज्ञानपूर्व्वो वियोगो योऽज्ञानेन सह योगिनः ।
सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥
मुक्तिर्योगात् तथा योगः सम्यग्ज्ञानान्महीपते ।
ज्ञानं दुःखोद्भवं दुखं ममत्वासक्तचेतसाम् ॥ २ ॥
तस्मात् सङ्गं प्रयत्नेन मुमुक्षुः सन्त्यजेन्नरः ।
सङ्गाभावे ममेत्यस्याः ख्यातेर्हानिः प्रजायते ॥ ३ ॥
निर्म्ममत्वं सुखायैव वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
ज्ञानादेव च वैराग्यं ज्ञानं वैराग्यपूर्व्वकम् ॥ ४ ॥
तद्गृहं यत्र वसतिस्तद्भोज्यं येन जीवति ।
यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥ ५ ॥
उपभोगेन पुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव ।
कर्त्तव्यानांच नित्यानामकामकरणात् तथा ॥ ६ ॥
असंचयादपूर्व्वस्य क्षयात् पूर्व्वार्ज्जितस्य च ।
कर्म्मणो बन्धमाप्नोति शारीरं न पुनः पुनः ॥ ७ ॥
एतत् ते कथितं राजन् योगं चेमं निबोध मे ।
यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ॥८॥
...त्मन जेयो योगिनां स हि दुर्ज्जयः ।

दत्तात्रेय बोले—

अज्ञानी की सङ्गति को ज्ञान पूर्वक छोड़ देना ही मुक्ति है और प्रकृति के गुणों से अलग रहने को ब्रह्म से एकता कहते हैं ॥ १ ॥ मुक्ति योग से होती है तथा हे राजन्! उत्तम ज्ञानसे योग होता है। दुःख से ज्ञान उत्पन्न होता है और ममत्व में आसक्ति से दुःख उत्पन्न होता है ॥ २ ॥ इसलिये मोक्ष की इच्छा करने वाला यत्न से संसार का साथ छोड़ दे क्योंकि सङ्ग के अभाव में ही ममत्व का नाश होता है ॥३॥ ममत्व न रहने से सुख होता है तथा वैराग्य से ममत्व का दोष मालुम होताहै। ज्ञान से वैराग्य और ज्ञान पूर्व जन्म के वैराग्य से है ॥ ४ ॥ घर वह है जिसमें मनुष्य रहता है और भोजन वह है जिससे जीवन स्थिर रहे। जिससे मुक्ति होजाय वही ज्ञान है तथा जिससे यह बात न हो वह अज्ञान है ॥ ५ ॥ हे राजन्! पुण्य और पाप उपभोग करने से क्षय को प्राप्त होते हैं परन्तु अकाम रहकर नित्य कर्तव्य करने से दोनों स्वयं ही क्षय को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ इस जन्म में पाप और पुण्य के संचित न होने से और पूर्व जन्म के पापों और पुण्यों का क्षय होजाने से कर्म के बंधन में पड़कर शरीरको बारबार जन्म नहीं लेना पड़ता है ॥ ७॥ हे राजन्! तुमसे यह तो कहा, अब तुम योग सुनो जिसको पाकर योगीलोग ब्रह्म में एकता को प्राप्त करते हैं ॥ ८॥ योगियों को पहिले आत्मा को आत्म द्वारा जीतना चाहिये क्योंकि वह दुर्जय

कुर्व्वीत तज्जये यत्नं तस्योपायं शृणुष्व मे ॥ ६ ॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् १०
यथा पर्व्वतधातूनां दोषा दह्यन्ति धाम्यताम् ।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥ ११ ॥
प्रथमं साधनं कुर्य्यात् प्राणायामस्य योगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः ॥ १२ ॥
लघुमध्योत्तरीयाख्यः प्राणायामस्त्रियोदितः ।
तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि तदलर्क शृणुष्व मे ॥ १३ ॥
लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः ।
त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः परिकीर्त्तितः ॥ १४ ॥
निमेषोन्मेषणे मात्रा-कालो लघ्वक्षरस्तथा ।
प्राणायामस्य सङ्ख्यार्थं स्मृतो द्वादशमात्रिकः॥ १५ ॥
प्रथमेन जयेत् स्वेदं मध्यमेन च वेपथुम् ।
विषादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् ॥ १६ ॥
मृदुत्वं सेव्यमानास्तु सिंह-शार्दूल-कुञ्जराः ।
यथा यान्ति तथा प्राणो वश्यो भवति योगिनः॥ १७ ॥
वश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः ।
तथैव योगी स्वच्छन्दः प्राणं नयति साधितम् ॥ १८ ॥
यथा हि साधितः सिंहो मृगान् हन्ति न मानवान् ।
तद्वन्निषिद्धपवनः किल्विषं न नृणां तनुम् ।
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत्॥ १६ ॥
श्रूयतां मुक्तिफलदं तस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥ २० ॥
ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित् प्रसादश्च महीपते ।
स्वरूपं शृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ॥ २१ ॥
कर्म्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसंक्षयः ।
चेतसोऽपकषायत्वं यत्र सा ध्वस्तिरुच्यते ॥ २२ ॥
ऐहिकामुष्मिकान् कामान् लोभमोहात्मकान् स्वयम्
निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः सा सार्व्वकालिकी॥ २३
अतीतानागतानर्थान् विप्रकृष्टतिरोहितान् ।
विजानातीन्दु-सूर्य्यर्क्ष-ग्रहाणां ज्ञानसम्पदा ॥ २४ ॥
तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति सम्पदम् ।
तदा संविदिति ख्याता प्राणायामस्य संस्थितिः २५ ॥
यान्ति प्रसादं येनास्य मनः पंच च वायवः ।

है इसलिये उसको जीतने का यत्न करना चाहिये, उसके उपाय को सुनो ॥९॥ प्राणायाम से दोषोंको, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषय को और ध्यानसे गुणोंको दग्ध करे ॥१०॥ जिस तरह पर्वतों की धातुओं का दोष अग्नि में जल जाता है उसी प्रकार इन्द्रियजन्य दोष प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं ॥१०॥ योग के ज्ञाता को पहिले प्राणायाम का साधन करना चाहिये। प्राण और अपान वायु के रोकने को प्राणायाम कहते हैं ॥११॥ प्राणायाम (१) लघु (२) मध्यम और (३) उत्तरीय तीन प्रकार की होती है। हे अलर्क! अब उसके प्रमाण को कहता हूँ, सुनो ॥१३॥ लघु बारह मात्रा का होता है उससे दुगना मध्यम और तिगुना उत्तम कहलाता है ॥१४॥ लघु अक्षर का उच्चारण पलक को उठाने और गिराने के काल में ही हो जाता है, उसको प्राणायाम की संख्या के लिये द्वादशमात्रिक कहा है ॥ १५ ॥ पहिले प्राणायाम से स्वेद को, मध्यम से कम्पन को तथा तृतीय से शोक को क्रमशः जीते ॥ जिस प्रकार सिंह, व्याघ्र और हाथी मनुष्यके वश में हो जाते हैं उसी प्रकार प्राण योगियों के वश में हो जाते हैं ॥१७॥ जिस प्रकार महावत मस्त हाथी को अपने वश में करता है उसी प्रकार योगी स्वच्छन्द होकर साधना से प्राणों को वश में करता है ॥१८॥ जिस तरह सिखाया हुआ सिंह मृगोंको ही मारता है मनुष्योंको नहीं उसी तरह प्राणायाम पापों को काटती है मनुष्यों के शरीरको नहीं ॥१६॥ इसलिये योगियों को प्राणायाम में सदैव संलग्न रहना चाहिये। उसकी मुक्ति देनेवाली चार अवस्थाओं को सुनिये ॥२०॥ हे राजन्! (१) ध्वस्ति (२) प्राप्ति (३) संवित् (४) प्रसाद, इन चार अवस्थाओं के स्वरूप को क्रम से कहता हूँ, सुनो ॥ अच्छे या बुरे कर्मों के फल से चित्त के हटाने को 'ध्वस्ति' कहते हैं ॥२२॥ इस लोक और परलोक के लोभका तथा मोह पैदा करनेवाले काम का निरोध करने वाले योगियों की 'प्राप्ति' अवस्था होती है ॥ ज्ञान द्वारा अतीत और अनागत अर्थों को क्रमशः उत्तम और अनुचित समझे और चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहों का ॥ २४ ॥ प्रभाव समान समझे और जब योगी इस समान भाव को प्राप्त होता है तब प्राणायाम की संस्थित अर्थात् संवित् अवस्था होती है ॥२५॥ जिस प्राणायामसे मन, पाँचों वायु, इन्द्रियां, इन्द्रियों के अर्थ यह सब प्रसन्न रहें उस

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥२६॥
शृणुध्व च महीपाल प्राणायामस्य लक्षणम् ।
युञ्जतश्च सदा योगं यादृग्विहितमासनम् ॥२७॥
पद्ममर्द्धासनञ्चापि तथा स्वस्तिकमासनम् ।
अस्थाय योगं युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि ॥२८॥
समः समासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ।
संवृतास्यस्तथैवोरू सम्यग्विष्टभ्य चाग्रतः ॥२९॥
पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन् प्रयतः स्थितः ।
किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥३०॥
सम्पश्यन् नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।
रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा ॥३१॥
सञ्छाद्य निर्म्मले तत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन् मन एव च ॥३२॥
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् सर्व्वाङ्गाणीव कच्छपः ३३
सदात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
स वाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकण्ठनाभितः ॥३४॥
पूरयित्वा बुधो देहं प्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
प्राणायामा दश द्वौ च धारणा साभिधीयते ॥३५॥
द्वे धारणे स्मृते योगे योगिभिस्तत्त्वदृष्टिभिः ।
तथा वै योगयुक्तस्य योगिनो नियतात्मनः ॥३६॥
सर्व्वे दोषाः प्रणश्यन्ति स्वस्थश्चैवोपजायते ।
वीक्षते च परं ब्रह्म प्राकृतांश्च गुणान् पृथक् ॥३७॥
व्योमादिपरमाणूंश्च तथात्मानमकल्मषम् ।
इत्थं योगी यताहारः प्राणायामपरायणः ॥३८॥
जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथा गृहम् ।
दोषान् व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ताभूरनिर्जिता ३९॥
विवर्द्धयति नारोहेत् तस्माद्भूमिमनिर्ज्जिताम् ।
प्राणानामुपसंरोधात् प्राणायाम इति स्मृतः ॥४०॥
धारणेत्युच्यते चेयं धार्य्यते यन्मनो यया ।
शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानि यदक्षाणि यतात्मभिः ।
प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततः स्मृतः ॥४१॥
उपायश्चात्र कथितो योगिभिः परमर्षिभिः ।
येन व्याध्यादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः ४२
यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ।

को 'प्रसाद' अवस्था कहते हैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! अब योगियों की प्राणायामके लक्षण तथा आसनों को सुनिये ॥ २७॥ योग करने वाला पद्मासन तथा स्वस्तिक आसन करके प्रणव को हृदय में रखकर बैठे ॥२८॥ और सम रूप से आसन मारकर बैठे और चरणों को समेट ले तथा जांघों को आगे से खींच ले ॥ २९ ॥ ऐसा यत्न करके स्थित हो कि घुटनों से लिंग और अण्डकोश का स्पर्श न हो तथा थोड़ा शिर को झुकावे और दाँतों से दाँतों को न लगने दे ॥ ३०॥ अपनी नाक के आगेके भाग को देखता हुआ दिशाओंको न देखे और रजोगुण से तमोगुण को और सतोगुण से रजोगुण को ॥ आच्छादित करके योग करने वाला योगी निर्मल तत्व में स्थित होवे तथा इन्द्रियोंके अर्थ से इंद्रियों को और प्राण आदि मन को ॥३२॥ रोक कर अपने वश में करले। जिस प्रकार कछुआ अपनी इच्छा से अपने सब अङ्गों को समेट लेताहै ॥३३॥ सदैव अपनी आत्मा में प्रेम रखकर अपनी आत्मा में ही आत्माको देखे तथा भीतर और बाहर पवित्र रक्खे और कण्ठ से नाभि तक ॥ ३४ ॥ शरीर को पूरण कर बुद्धिमान् मनुष्य प्राणायाम करे, यह बारह प्राणायाम हैं इसी को धारणा भी कहते हैं ॥ तत्त्वदर्शी योगी लोग योग में दो धारणा कहते हैं तथा इसी प्रकार योग में संलग्न नियतात्मा योगी लोग भी कहते हैं ॥ ३६ ॥ उनके सब दोष नष्ट हो जाते हैं और वे स्वस्थ होकर परब्रह्म को देखते हैं तथा प्राकृत गुणों को अलग-अलग जानते हैं ॥३७॥ आहार को जीतने वाले तथा प्राणायाम परायण योगी जिस प्रकार आकाश के परमाणुओंको देखते हैं उसी प्रकार निर्मल आत्मा को देखते हैं ॥३८॥ जिस प्रकार मनुष्य घर को साफ करके उसमें रहतेहैं उसी प्रकार योगी भूमिको पवित्रकर उसपर बैठे। विना स्वच्छ की हुई भूमि दोष, व्याधि और मोह को ॥ ३९ ॥ बढ़ाती है, इसलिये विना शुद्ध की हुई भूमि पर योगी न बैठे। प्राणों के निरोध को प्राणायाम कहते हैं ॥ ४० ॥ चूंकि इससे मनको धारण किया जाताहै इसलिये यह धारणा कहाती है। जो इन्द्रियां शब्दादि विषयों में प्रवृत्तहैं उनको योगी लोग योग से उन विषयों से खींच लेते हैं इसलिये इसको प्रत्याहार भी कहा है ॥४१॥ परम ऋषियों और योगियोंने इसका उपाय कहाहै जिस से योगियों को व्याधि आदिक दोष नहीं होते हैं॥ जिस तरह जल पीने वाले नल आदि यन्त्रोंसे जल

आपिवेयुस्तथा वायुं पिबेद्योगी जितश्रमः ॥४३॥
प्राङ्नाभ्यां हृदये चात्र तृतीये च तथोरसि ।
कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्र-भ्रूमध्य-मूर्द्धसु ॥४४॥
किंच तस्मात् परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ।
दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम्॥४५॥
नाध्मातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः।
युञ्जीत योगं राजेन्द्र योगी सिद्ध्यर्थमादृतः ॥४६॥
नातिशीते न चोष्णे वै न द्वन्द्वे नानिलात्मके ।
कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः ॥४७॥
सशब्दाग्निजलाभ्यासे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।
शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने ससरीसृपे ॥४८॥
सभये कूपतीरे वा चैत्यवल्मीकसञ्चये ।
देशेष्वेतेषु तत्त्वज्ञो योगाभ्यासं विवर्ज्जयेत् ॥४९॥
सत्त्वस्यानुपपत्तौ च देशकालं विवर्ज्जयेत् ।
नासतो दर्शनं योगे तस्मात् तत् परिवर्ज्जयेत् ॥५०॥
देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै ।
विघ्नाय तस्य वै दोषा जायन्ते तान्निबोध मे ॥५१॥
बाधिर्य्यं जड़ता लोपः स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ।
ज्वरश्च जायते सद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः ॥५२॥
प्रमादाद्योगिनो दोषा यद्य ते स्युश्चिकित्सितम् ।
तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोध मे ॥५३॥
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ।
वात-गुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ते तथोदरे ॥५४॥
यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थिं प्रतिक्षिपेत् ।
तद्वत् कल्पे महाशैलं स्थिरं मनसि धारयेत् ॥५५॥
विघाते वचसो वाचं बाधिर्य्ये श्रवणेन्द्रियम् ।
यथैवाम्रफलं ध्यायेत् तृष्णार्त्तो रसनेन्द्रिये ॥५६॥
यस्मिन् यस्मिन् रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ।
धारयेद्धारणामुष्णे शीतां शीते च दाहिनीम् ॥५७॥
कीलं शिरसि संस्थाप्य काष्ठं काष्ठेन ताड़येत् ।

को खींचकर धीरे-धीरे पीते हैं उसी प्रकार यो॰ को श्रम जीतकर धीरे-धीरे वायु चढ़ानी चाहिये। पहिले दोनों नेत्रों में, फिर नाभि में, फिर हृदय तथा फिर क्रमशः कण्ठ, मुख, नासिका के तथा दोनों भौहों के बीच में ॥ ४४ ॥ तथा इसके ऊपर जो धारणा है वह उत्कृष्ट है, इन स्थानों में दशों धारणाओं को प्राप्त कर योगी ब्रह्मके सामने होजाता है ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! योग की सिद्धि के लिये योग करते हुए योगी लोग न बहुत बोलें, न क्षुधा रक्खें, न थकें तथा न व्याकुल चित्त हों॥४६॥ ध्यान में तत्पर होकर योगी को अति शीतल, अत्यन्त गर्म, जनाकुल तथा वायुपूर्ण अवसरों पर योग न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ कोलाहलपूर्ण स्थान के तथा अग्नि और जल के समीप, पुराने मकान में चौराहे पर, जहाँ सूखे पत्तों का ढेर हो वहाँ, नदी में, स्मशान में तथा जहाँ सर्प रहते हों वहाँ ॥४८ ॥ भयपूर्ण स्थानमें, कुएके पास तथा दीमक के बनाये हुए टीले पर, इन सब स्थानों में तत्त्व का जानने वाला योगाभ्यास न करे ॥४९॥ जहाँ पर सात्विकी वस्तुयें न मिलें उस देशकाल को छोड़ दे। असत् दर्शन योग में निषिद्ध हैं इसलिये जहाँ ऐसा होता हो उस स्थान को छोड़ दे ॥ ५० ॥ इन स्थानों का विचार न करके मूढ़तावश जो मनुष्य योग करता है उसके लिये विघ्नों से पैदा हुए दोषों को मुझसे सुनो ॥ ५१ ॥ बहिरापन, जड़ता, स्मृति का नाश, गूंगापन, अंधापन और ज्वर ऐसे रोग उस अज्ञानी योगी को शीघ्र ही हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ प्रमाद से योगीको जो रोग होजाते हैं उसकी भी चिकित्साहै योगियों का जो कर्तव्य उन दोषों के नाश करनेका है उसको सुनो ॥ ५३ ॥ भात और गर्म यवागू (खिचड़ी) खाकर प्राणों की रक्षा करनी चाहिये, वात और गुल्म की शान्ति के लिये तथा उदावर्त और उदर रोग के लिये ॥ ५४ ॥ यवागू का सेवन करे, यवागू पवन और वायुग्रन्थि रोगों को भी दूर करता है, इसी प्रकार कल्प नाम महा पर्वत का भी स्थिर चित्त से ध्यान करे ॥ ५५ ॥ गूंगा होने पर सरस्वती और बहिरा होनेपर श्रवणेन्द्रियका ध्यान करे और अगर प्यास से पड़ित हो तो जीभ पर आम्रफल का ध्यान करे ॥ ५६ ॥ शरीर में जो-जो रोग हो उसकी उपकारी धारणा का ध्यानकरे जैसे उष्णता में शीतलता और शीतलतासे पीड़ित होने पर उष्णता की धारणा करे ॥५७॥ शिर पर काठकी कील रखकर काठ से उसकी ताड़ना करे, ऐसा

लुप्तस्मृतेः स्मृतिः सद्यो योगिनस्तेन जायते ॥५८॥
द्यावापृथिव्यौ वाय्वग्नी व्यापिनावपि धारयेत् ।
अमानुषात् सत्त्वजाद्वा बाधास्त्वेताश्चिकित्सिताः॥५९॥
अमानुषं सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद्यदि ।
वाय्वग्निधारणेनैनं देहसंस्थं विनिर्दहेत् ॥६०॥
एवं सर्व्वात्मना रक्षा कार्य्या योगविदा नृप ।
धर्म्मार्थ-काम-मोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥६१॥
प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनो विस्मयात् तथा ।
विज्ञानं विलयं याति तस्माद्गोप्याः प्रवृत्तयः ॥६२॥
आलोल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च
योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥६३॥
अनुरागी जनो याति परोक्षे गुणकीर्त्तनम् ।
न विभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥६४॥
शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न विद्यते ।
न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरुपस्थिता ॥६५॥

करने से योगी की खोई हुई स्मृति शीघ्र वापिस आ जाती है ॥५८॥ आकाश, पृथ्वी, वायु, अग्नि को सर्वव्यापी होने के कारण धारणकरे, ये अमानुषीय बाधाओं की चिकित्सायें हैं ॥ ५९ ॥ यदि योगी के भीतर अमानुषीय सत्व का प्रवेश होजाय तो उस को देह में स्थित वायु और अग्नि की धारणा से भस्म करे ॥ ६० ॥ हे राजन् ! योग के ज्ञाताको इस प्रकार अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन शरीर ही से है ॥ ६१ ॥ प्रवृत्ति के लक्षणों को प्रकट करने से तथा विस्मय से योगी का ज्ञान लुप्त होता है इस लिये प्रवृत्तियों को गुप्त रखना चाहिये ॥ ६२ ॥ कम चलना फिरना, आरोग्यता, दया रखना, शुभ गंध लेना, थोड़ा मूत्र और विष्ठाकरना, कान्ति, प्रसन्नता, स्वर की सौम्यता, ये योग में प्रवृत्ति के प्रथम चिह्न हैं ॥६३॥ जिसमें लोगों का अनुराग हो जाय, जिस का पीठ पीछे गुणगान हो तथा जिससे लोग भय न मानें इन उत्तम लक्षणों से युक्त मनुष्य को सिद्ध जानना चाहिये ॥ ६४ ॥ जो अत्यन्त शीत और उष्णता से बाधित न हो तथा जिसे किसी का डर न हो उसको सिद्धि प्राप्त होचुकी है ऐसा समझना चाहिये ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में जड़ोपाख्यान में योगाध्याय नाम ३९वाँ अ० समाप्त ।



चालीसवां अध्याय

दत्तात्रेय उवाच

उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते दृष्टे ह्यात्मनि योगिनः ।
ये तांस्ते संप्रवक्ष्यामि समासेन निबोध मे ॥ १ ॥
काम्याः क्रियास्तथा कामान् मानुषानभिवाञ्छति ।
स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम् ॥ २ ॥
देवत्वममरेशत्वं रसायनचयः क्रियाः ।
मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनं तथा ।
श्राद्धानां सर्व्वदानानां फलानि नियमांस्तथा ॥ ३ ॥
तथोपवासात् पूर्त्ताच्च देवताभ्यर्च्चनादपि ।
तेभ्यस्तेभ्यश्च कर्म्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति ॥ ४ ॥
चित्तमित्थं वर्त्तमानं यत्नाद्योगी निवर्त्तयेत् ।
ब्रह्मसङ्गि मनः कुर्वन्नुपसर्गात् प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

दत्तात्रेय बोले—

आत्मा के जानने पर भी योगी को जो उपसर्ग आते हैं उनको मुझसे पृथक् २ सुनो ॥ १ ॥ योगी अच्छी-अच्छी मानवी क्रियाओं की अभिलाषा करता है । स्त्री, दान का फल, विद्या, माया, चाँदी, सोना, धन, स्वर्ग की इच्छा ॥ २ ॥ देवत्व, अमरत्व, रसायन क्रिया, वायु में उड़ना, यज्ञ, जल और अग्नि में प्रवेश करना, श्राद्ध और सब प्रकार के दानों के फल तथा नियम ॥ ३ ॥ तथा उपवास यज्ञ और देवताओं के पूजन से जो फल होते हैं उनकी इच्छा करता है ॥४॥ इस तरह चित्त में उपस्थित होने वाली अभिलाषाओंको योगी यत्न पूर्वकरोके, ब्रह्म में मन को संलग्न करने से उपसर्गों से योगी लोग बच जाते हैं ॥५॥ इन उपसर्गों को जीतने पर

उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ।
योगिनः सम्प्रवर्त्तन्ते सात्त्व-राजस-तामसाः ॥ ६ ॥
प्रातिभः श्रावणो दैवो भ्रमावर्त्तौ तथापरौ ।
पञ्चैते योगिनां योग-विघ्नाय कटुकोदयाः ॥ ७ ॥
वेदार्थाः काव्यशास्त्रार्था विद्याशिल्पान्यशेषतः ।
प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभः स तु योगिनः ॥ ८ ॥
शब्दार्थानखिलान् वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत् ।
योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोऽभिधीयते ॥ ९ ॥
समन्ताद्वीक्षते चाष्टौ स यदा देवतोपमः ।
उपसर्गं तमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः ॥१०॥
भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनो दोषेण योगिनः ।
समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रमः स परिकीर्त्तितः ॥११॥
आवर्त्त इव तोयस्य ज्ञानावर्त्तो यदाकुलः ।
नाशयेच्चित्तमावर्त्त उपसर्गः स उच्यते ॥१२॥
एतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः ।
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्तन्ते पुनः पुनः ॥१३॥
प्रावृत्य कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम् ।
चिन्तयेत् परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रवणं मनः ॥१४॥
योगयुक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
सूक्ष्मास्तु धारणाः सप्त भूराद्या मूर्द्धि धारयेत् ॥१५॥
धरित्रीं धारयेद्योगी तत् सौख्यं प्रतिपद्यते ।
आत्मानं मन्यते चोर्व्वीं तद्गन्धञ्च जहाति सः ॥१६॥
तथैवाप्सु रसं सूक्ष्मं तद्वद्रूपंच तेजसि ।
स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणाम् ॥१७
व्योम्नः सूक्ष्मां प्रवृत्तिञ्च शब्दं तद्वज्जहाति सः १८
मनसा सर्व्वभूतानां मनस्याविशते यदा ।
मानसीं धारणां बिभ्रन्मनः सूक्ष्मंच जायते ॥१९॥
तद्वद्बुद्धिमशेषाणां सत्त्वानामेत्य योगवित् ।
परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥२०॥
परित्यजति सूक्ष्माणि सप्तत्वेतानि योगवित् ।
सम्यग्विज्ञाय योऽलर्क तस्यावृत्तिर्न विद्यते ॥२१॥
एतासां धारणानान्तु सप्तानां सौक्ष्म्यमात्मवान् ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा ततः सिद्धिं त्यक्त्वा त्यक्त्वा परां व्रजेत् २२
यस्मिन् यस्मिंश्च कुरुते भूते रागं महीपते ।

योगियों को दूसरे उपसर्ग आते हैं जो सत्व, रज और तामस से उत्पन्न होतेहैं ॥६॥ प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त ये पाँच उपसर्ग योगियों के योग में कटु विघ्न डालने वाले हैं ॥७॥ वेद, काव्य और शास्त्रों का अर्थ तथा अन्य विद्याओं और शिल्पकला का ज्ञान यदि योगी को हो तो 'प्रातिभ' उपसर्ग हुआ जानना चाहिये ॥ ८ ॥ जो सब शब्दों के अर्थों को जाने और हज़ारों योजनों से तत्व को सुने तो 'श्रावण' उपसर्ग समझना चाहिये ॥ ९ ॥ जब देवताओं की तरह आठों दिशाओं में देखने लगे तो इस उपसर्गको विद्वान् 'दैव' कहते हैं॥१०॥ यदि योगी का मन दोष से निराश्रय हो भ्रमण करनेलगे और सब आचार भ्रष्ट होजाँय तो 'भ्रम' उपसर्ग कहलाता है ॥११॥ जल के भँवर की तरह यदि ज्ञान आवृत होकर चित्त व्याकुल होने लगे तो आवर्त उपसर्ग हुआ,जानो । यह योगीके चित्त को भ्रष्ट करता है ॥१२॥ इन घोर उपसर्गों से योग भ्रष्ट होकर योगी बार-बार देवयोनियों में घूमता रहता है ॥१३॥ इसलिये योगी को चाहिये कि ज्ञान द्वारा ब्रह्म में चित्त लगाकर परब्रह्म का चिन्तनकरे ॥१४॥ योगी सदा योगयुक्त, अल्पभोजी और जितेन्द्रिय रहे तथा पृथ्वी आदि सातों सूक्ष्म धारणाओं को शिर पर धारण करे ॥ १५ ॥ पहिले धरती को योगी धारण करे और उसका सुख प्राप्त करे। आत्मा को पृथ्वी समझे और उसके बन्धन को छोड़ दे ॥ १६॥ इसी तरह जल में जो सूक्ष्म रस है और तेज में जो सूक्ष्म रूपहै तथा वायु में जो सूक्ष्म स्पर्श और सूक्ष्म धारणा है ॥ १७॥ और आकाशमें जो सूक्ष्म प्रवृत्ति है तथा शब्द को भी इस प्रकार जानकर छोड़ दे ॥ १८ ॥ जब योगी सब प्राणियोंके मन में अपने मन को प्रवेश करते हैं तो मानसी धारणा को धारण करने से उनका मन भी सूक्ष्म हो जाता है ॥१९॥ इस प्रकार अनेक प्राणियों की बुद्धि को प्राप्त कर योगका ज्ञाता उत्तम सूक्ष्म बुद्धि को पाकर स्थूल बुद्धि को छोड़ देता है ॥ २० ॥ हे अलर्क ! इन सातों सूक्ष्मोंको अच्छी तरह जानकर जो योगी इनको छोड़ देते हैं उनकी आवृत्ति नहीं होती ॥ २१ ॥ इन धारणाओं को सातों सूक्ष्म जान कर जो योगी इनको छोड़ देते हैं वे परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२२॥ हे राजन् ! जिन-२ प्राणियों में योगी अनुराग करता है तो उन्हीं २ योनियों में

तस्मिंस्तस्मिन् समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति२३
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् ।
परित्यजति यो देही स परं प्राप्नुयात् पदम् ॥२४॥
एतान्येव तु सन्धाय सप्त सूक्ष्माणि पार्थिव ।
भूतादीनां विरागोऽत्र सद्भावज्ञस्य मुक्तये ॥२५॥
गन्धादिषु समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति ।
पुनरावर्त्तते भूप स ब्रह्मापरमानुषम् ॥२६॥
सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति ।
तस्मिंस्तस्मिँल्लयं सूक्ष्मे भूते याति नरेश्वर ॥२७॥
तेवानामसुराणां वा गन्धर्व्वोरग-रक्षसाम् ।
देहेषु लयमायाति सङ्गं नाप्नोति च क्वचित् ॥२८॥
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यंच तथेशित्वं वशित्वञ्च तथापरम् ॥२९॥
यत्र कामावसायित्वं गुणानेतांस्तथैश्वरान् ।
प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परं निर्व्वाणसूचकान् ॥३०॥
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽणीयान् शीघ्रत्वं लघिमा गुणः ।
महिमाऽशेषपूज्यत्वात् प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत्॥३१॥
प्राकाम्यस्य व्यापित्वादीशित्वञ्चेश्वरो यतः ।
वशित्वाद्वशिमा नाम योगिनः सप्तमो गुणः ।३२॥
यत्रेच्छास्थानमप्युक्तं यत्र कामावशायिता ।
ऐश्वर्य्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥३३॥
मुक्तिसंसूचकं भूप परं निर्व्वाणमात्मनः ।
ततो न जायते नैव वर्द्धते न विनश्यति ॥३४॥
नापि क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति ।
छेदं क्लेदं तथा दाहं शोषं भूरादितो न च ॥३५॥
भूतवर्गादवाप्नोति शब्दाद्यैः ह्रियते न च ।
न चास्य सन्ति शब्दाद्यास्तद्भोक्ता तैर्न युज्यते॥३६॥
यथाहि कनकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना ।
दग्धदोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं व्रजेन्नृप ॥३७॥
न विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निना यतिः ।
निर्दग्धदोषस्तेनैक्यं प्रयाति ब्रह्मणा सह ॥३८॥
यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तः समानत्वमनुव्रजेत् ।
तदाख्यस्तन्मयो भूतो न गृह्येत विशेषतः ॥३९॥
१९ ब्रह्मणा तद्वत् प्राप्यैक्यं दग्धकिल्विषः ।

आसक्ति के कारण नाश को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ इसलिये सूक्ष्मों को आपस में अलग २ जानकर जो योगी छोड़ देता है वह परम पद को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ हे राजन्! इन सातों सूक्ष्मों को जानकर ही प्राणियों को विराग होता है और उस सद्भाव के ज्ञाता को ही मुक्ति होती है ॥ २५ ॥ हे राजन्! जो योगी गन्ध, आसक्ति आदि में लिप्त होता है वह नष्ट होजाताहै और वार-वार मनुष्य के शरीर में जन्म लेता है ॥२६॥ हे राजन्! इन सातों धारणाओं को जीतकर योगी जिस सूक्ष्म प्राणीमें प्रवेश करना चाहता है उसी में लय हो जाता है ॥ २७ ॥ देवता, असुर, गन्धर्व और नाग इत्यादि के शरीरों में योगी लय हो जाता है परन्तु कभी उनके सङ्ग में लीन नहीं होता ॥२८॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ॥ २९ ॥ तथा ऐश्वर्य इन गुणरूप आठों सिद्धियों को प्राप्त कर जो कामना वश इनके वशीभूत नहीं होता वह परम निर्वाण पद प्राप्त करता है ॥३०॥ सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होना अणिमा कहलाती है, शीघ्रत्व लघिमाका गुण है। सबसे पूजित होने को महिमा और जिसे पा कर कुछ पाना शेष न रहे उसे प्राप्ति कहते हैं॥३१॥ सर्वव्यापी होने को प्राकाम्य और ईश्वरवत् होने को ईशित्व कहते हैं और सबको वश में करने को वशिमा कहते हैं जो योगियों का सातवाँ गुण है॥ जहाँ इच्छा का स्थान और कामावशायिता भी है उसको ऐश्वर्य कहते हैं, ये आठ सिद्धियां योगियों की हैं ॥३३॥ हे राजन्! परम निर्वाणपद मुक्ति का सूचक है,वहाँ न जन्म लेते हैं, न बढ़ते हैं और न मरते हैं ॥३४॥ न क्षय होते हैं और न अन्त होता है, तथा न काटे से कटते हैं, न दाह को प्राप्त होते हैं और न सूखते हैं और न पञ्चतत्वादि में प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥ प्राणियों से शोकको प्राप्त नहीं होते और शब्दों से चलित नहीं होते और उनके कोई शब्द आदि नहीं है। यद्यपि वे शब्दों के भोक्ता हैं तो भी उनमें लिप्त नहीं हैं ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार आभूषणादि द्रव्य अग्नि में प्रज्वलित होकर सुवर्ण ही रहता है और उसका दोष जल जाता है ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार योगी योगाग्नि में जलकर दोष रहित होजाते हैं और अपने सदृश ब्रह्म में लीन होजाते हैं ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार अग्नि में फेंकी हुई अग्नि उसी प्रकार की हो जाती है उसी तरह योगी ब्रह्म में मिलकर एकता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! इसी प्रकार योगी अपने पापों को दग्धकर

योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते ॥४०॥ परब्रह्म में मिलकर कभी अलग नहीं होते ॥ ४० ॥
यथा जलं जलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति । जिस प्रकार जल जल में मिलकर एक हो जाता है
तथात्मा साम्यमभ्येति योगिनः परमात्मनि ॥४१॥ उसी प्रकार योगियों की आत्मा परमात्मा में मिल कर एक हो जाती है ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में योगसिद्धि नाम ४०वां अध्याय समाप्त ।

इकतालीसवाँ अध्याय

अलर्क उवाच

भगवन् योगिनश्चर्य्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन् यथा योगी न सीदति ॥ १ ॥

दत्तात्रेय उवाच

मानापमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौ नृणाम् ।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥ २ ॥
मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते ।
अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषम् ॥ ३ ॥
चक्षुःपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतश्च चिन्तयेत् ॥ ४ ॥
आतिथ्य-श्राद्ध-यज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च ।
महाजनश्च सिद्धयर्थं न गच्छेद्योगवित् क्वचित् ॥५॥
व्यस्ते विधूमे व्यङ्गारे सर्व्वस्मिन् भुक्तवर्ज्जने ।
अटेत योगविद्भैक्ष्यं न तु त्रिष्वेव नित्यशः ॥ ६ ॥
यथैवमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च ।
तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां वत्स न दूषयन् ॥ ७ ॥
भैक्ष्यं चरेद्गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च ।
श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥ ८ ॥
अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यतिः ।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥ ९ ॥
अत ऊर्द्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च ।
भैक्ष्यचर्य्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरिष्यते ॥१०॥
भैक्ष्यं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव वा ।
फलं मूलं प्रियंगुं वा कण-पिण्याक-शक्तवः ॥११॥
इत्येते च शुभाहारा योगिनः सिद्धिकारकाः ।
तत् प्रयुञ्ज्यान्मनिर्भक्त्या परमेण समाधिना ॥१२॥

अलर्क बोले—

हे भगवन् ! मैं तत्त्वपूर्वक योगियों की चर्या सुनना चाहता हूँ जो कि वह ब्रह्म-मार्ग में प्रवृत्त हुआ योग क्लेश को प्राप्त नहीं होता है ॥१॥

दत्तात्रेय बोले—

मान और अपमान मनुष्यों को क्रमशः प्रीति और उद्वेग उत्पन्न करते हैं, इनका विपरीत अर्थ समझने वाले योगियों को सिद्धि प्राप्त होती है ॥२॥ मान और अपमान क्रमशः अमृत और विष हैं, योगी को चाहिये कि अपमानको अमृत और मान को विषम विष समझे ॥ ३ ॥ नेत्र से देखकर पाँव रक्खे, वस्त्र से छान कर जल पिये, सत्यतापूर्वक वचन बोले और बुद्धिपूर्वक चिन्तवन करे ॥ ४ ॥ आतिथ्य समय, श्राद्ध, यज्ञ, देवयात्रा और उत्सव के समय योग का जानने वाला कभी अर्थ-सिद्धि के लिये न जावे ॥ ५ ॥ क्लेश के समय, जिस समय रसोई न हो रही हो अथवा जब सब लोग भोजन कर चुके हों इन समयों में योगी भिक्षा न मांगे ॥ जिससे कोई उसका अपमान न कर सके । योगी को उत्तम लोगों के बताये हुए मार्गमें दोष न लगा कर उसपर चलना चाहिये ॥ ७ ॥ जो सद्गृहस्थ श्रेष्ठ हों उनसे भिक्षा मांगे क्योंकि इसी को पहिली वृत्ति बतलाया है ॥ ८ ॥ अतः योगी को उन्हीं गृहस्थों में जाना चाहिये जो धनी, श्रद्धावान, पवित्र, पण्डित और महात्मा हों ॥ ९॥ इनके अतिरिक्त जो गृहस्थी दुष्ट और पतित न हों उनके पास भी योगी जा सकता है परन्तु हीन वर्णों से भिक्षा मांगना नीच वृत्ति है ॥ १० ॥ यवागू, तक्र, दूध, यावक, फल मूल बेर और सत्तू ॥ ११ ॥ ये ही आहार योगियों को शुभ और सिद्धिदायक हैं, इसलिये एकाग्र चित्त होकर भक्ति पूर्वक यही भोजन करे ॥ १२ ॥ निःशब्द होकर पहिला ग्रास

अपः पूर्व सकृत् प्राश्य तूष्णीं भूत्वा समाहितः।
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ॥१३॥
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा।
उदानाय चतुर्थी स्याद्व्यानायेति च पञ्चमी ॥१४॥
प्राणायामैः पृथक् कृत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः।
अपः पुनः सकृत् प्राश्यं आचम्य हृदयं स्पृशेत्॥१५॥
अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्च त्यागोऽलोभस्तथैव च।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमाणि व ॥१६॥
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्।
नित्यस्वाध्याय इत्येते नियमाः पंच कीर्त्तिताः॥१७॥
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत् कार्य्यसाधकम्।
ज्ञानानां बहुता येयं योगविघ्नकरा हि सा ॥१८॥
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्।
अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥१९॥
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विधाय बुद्धया द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत्॥२०॥
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च।
नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ॥२१॥
वाग्दण्डः कर्म्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः॥२२॥
सर्व्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम्।
गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः ॥२३॥
विशुद्धबुद्धिः समलोष्ट्रकाञ्चनः समस्तभूतेषु च तत्समाहितः। स्थानं परं शाश्वतमव्ययंच परं हि मत्वा न पुनः प्रजायते ॥२४॥
वेदाः श्रेष्ठाः सर्व्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात्। ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥२५॥
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः। समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ॥२६॥

हाथ में लेकर 'प्राणायनमः' यह कहकर उसको भोजन कर ले, इसको प्रथम आहुति कहते हैं॥१३॥ 'अपानाय स्वाहा' यह कहकर दूसरा 'समानाय स्वाहा' कहकर तीसरा 'उदानाय स्वाहा' कहकर चौथा और 'व्यानाय स्वाहा' कहकर पाँचवाँ ग्रास खाना चाहिये, इनको क्रमशः दूसरी तीसरी चौथी और पाँचवीं आहुति कहतेहैं॥१४॥ इसी तरह अलग अलग प्राणायाम करके सब अन्न को खाले और फिर हाथ धोकर जल पीवे और हृदय को स्पर्श करे॥१५॥ चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ तथा अहिंसा, ये भिक्षुकों के पाँच परम व्रत हैं॥ क्रोध न होना, गुरु की सेवा, पवित्रता, थोड़ा भोजन और नित्य स्वाध्याय, यही पाँच उनके नियम हैं॥ १७॥ जो ज्ञान सारभूत हो और कार्य का साधक हो उसकी उपासना करनी चाहिये क्योंकि ज्ञान का बाहुल्य योग में विघ्न करने वाला होता है॥१८॥ जो योगी तृष्णासे पूर्णहो यह जानने योग्य है, यह जानने योग्य है इसमें फँसा रहे वह सहस्र कल्प में भी ज्ञेय को नहीं जान सकता है॥ योगी को चाहिये कि सङ्ग को छोड़कर, क्रोध को जीत कर, थोड़ा आहार करता हुआ, जितेन्द्रिय हो और शरीर के सब द्वारों का बुद्धि से विधान कर मन को ध्यान में लगावे॥ २०॥ योगी को चाहिए कि सदा एकान्त में, अवकाश स्थान में, गुफाओं में और वनों में अच्छी तरह ध्यान करे॥ वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड ये तीनों दण्ड जिस योगी के नियत हैं वही महायती त्रिदण्डी है॥ २२॥ हे राजन्! सत्, असत् तथा गुण और अगुणयुक्त इस संसार को जो योगी अपनी आत्मा में ही निहित जानता है उसको कौन प्रिय और कौन अप्रिय है?॥ २३॥ विशुद्ध बुद्धि होकर लोहे और सोनेको जो एकसा समझे और सब प्राणियों को एक समान जाने, ऐसा योगी परम शाश्वत स्थान को जाकर फिर जन्म नहीं लेता है॥२४॥ वेद सब से श्रेष्ठ हैं, वेदों से यज्ञक्रियायें श्रेष्ठ हैं, यज्ञसे जप और जप से ज्ञान श्रेष्ठ है तथा ज्ञान से सङ्ग और राग से वर्जित ध्यान उत्तम है जिसके करने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है॥२५॥ समबुद्धि, परब्रह्म में संलग्न, प्रमाद से रहित, पवित्र, एकान्त, प्रेमी, जितेन्द्रिय होकर जो योगका अभ्यास करता है वह महात्मा अपने योग के कारण मुक्ति को प्राप्त करता है॥ २६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में योगिचर्य्या नाम ४१वाँ अध्याय समाप्त।

बयालीसवाँ अध्याय

दत्तात्रेय उवाच

एवं यो वर्त्तते योगी सम्यग्योगव्यवस्थितः।
न स व्यावर्त्तितुं शक्यो जन्मान्तरशतैरपि ॥ १ ॥
दृष्ट्वा च परमात्मानं प्रत्यक्षं विश्वरूपिणम्।
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ॥ २ ॥
तत्प्राप्तये महत् पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत्।
तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम् ॥ ३ ॥
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्।
एता एव त्रयो मात्राः सात्त्व-राजस-तामसाः ॥ ४ ॥
निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्द्धमात्रोर्द्ध्वसंस्थिता।
गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया।
पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्द्धिन लक्ष्यते ॥ ५ ॥
यथा प्रयुक्त ओङ्कारः प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि।
तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरो भवेत् ॥ ६ ॥
प्राणो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम्।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ॥ ७ ॥
ओमित्येतत् त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः।
विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च ॥ ८ ॥
मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः।
तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः।
सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते ॥ १० ॥
व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाऽव्यक्तसंज्ञिता।
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम् ॥ ११ ॥
अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः।
ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत् ॥ १२ ॥
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता।
तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा न गोचरा ॥ १३ ॥
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्।
यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः ॥ १४ ॥
संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः।
प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि ॥ १५ ॥

दत्तात्रेय बोले—

जो योगी इस प्रकार योग में स्थित रहकर वर्तन करता है वह संसार के आवागमन से छूट जाता है ॥ १ ॥ विश्वरूप, विश्वपाद, विश्वेश, विश्वभावन परमात्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप जानकर उसकी प्राप्ति के लिये अति पवित्र होकर एकाक्षर 'ओम्' का जप करे तथा उसी का अध्ययन करे और उसी के स्वरूप को सुने ॥ ३ ॥ 'ओ३म्' के अकार, उकार और मकार तीन अक्षर हैं तथा ये तीनों मात्रायें सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणयुक्त हैं॥ इसके ऊपर जो आधी मात्रा है वह निर्गुण है और योगियों को गम्य है। वह गान्धार स्वरके आश्रित होने के कारण गान्धारी कहलाती है, और शिरपर चींटी की गतिकी भांति उसका प्रयोग ऊपर होता है ॥ ५ ॥ जिस तरह ओंकार शब्द के उच्चारण में वह आधी मात्रा शिर पर जाती है, उसी प्रकार ओंकारमय योगी में त्वक्षर हो जाते हैं ॥ ६ ॥ प्राण रूपी धनुष पर आत्मारूपी बाण को चढ़ाकर ब्रह्म रूपी लक्ष्य को वेधे और जिस प्रकार बाण वेध्य में लीन हो जाता है उसी प्रकार आत्मा को ब्रह्म में तन्मय करदे ॥७॥ जो ओंकार है वही तीनों वेद, तीनों लोक और तीनों अग्नियां हैं। तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ऋक्, साम और यजुः भी वही है ॥ ८ ॥ ओंकार आधी मात्रा सहित चार मात्रा का भी कहलाता है, इससे युक्त योगी उसीमें लीन हो जाता है ॥९॥ इसमें अकार भूलोक और उकार भुवर्लोक है तथा व्यंजन सहित मकार स्वर्लोक कहलाता है ॥ १० ॥ पहिली मात्रा को व्यक्त और दूसरी को अव्यक्त कहते हैं तथा तीसरी मात्रा चैतन्यशक्ति और चौथी परम पद है ॥ ११ ॥ इसी क्रम से इन सबको योग की भूमि जाननी चाहिये, ओंकार के उच्चारण से समस्त सत् और असत् का बोध हो जाता है ॥ १२ ॥ पहिली मात्रा ह्रस्व और दूसरी दीर्घ है, तीसरी मात्रा प्लुत है और चौथी मात्रा वर्णन करने योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ ये ही अक्षररूप ओंकार परब्रह्म है इसको जो मनुष्य जान लेताहै या जो इसका भली भांति ध्यान करता है ॥१४॥ वह संसारचक्र को छोड़कर तीनों बंधनों से मुक्त हो जाता है और परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाता है ॥ १५ ॥ कर्म बन्धन को अक्षीण और

अक्षीणकर्म्मबन्धश्च ज्ञात्वा मृत्युमरिष्टतः।
उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति ॥१६॥
तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः।
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति ॥१७॥

अरिष्ट से अपनी मृत्यु जानकर मृत्यु के समय जो योग का स्मरण करते हैं वे दूसरे जन्ममें भी योगी ही होते हैं ॥१६॥ इसलिये चाहे योगी सिद्ध हो अथवा न हो उसे अरिष्टों को अवश्य जानना चाहिये जिससे मृत्युके समय उसे कष्ट न हो॥१७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में योगधर्ममें ओंकार स्वरूप कथन नाम का ४२वाँ अध्याय समाप्त।



तेतालीसवां अध्याय

दत्तात्रेय उवाच

अरिष्टानि महाराज शृणु वक्ष्यामि तानि ते।
येषामालोकान्मृत्युं निजं जानाति योगवित् ॥ १ ॥
देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम्।
यो न पश्येन्न जीवेत् स नरः संवत्सरात् परम् ॥ २ ॥
अरश्मि विम्बं सूर्य्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम्।
दृष्ट्वैकादशमासात् तु नरो नोर्द्ध्वन्तु जीवति॥ ३ ॥
वान्ते मूत्रपूरीषे च यः स्वर्णं रजतं तथा।
प्रत्यक्षं कुरुते स्वप्ने जीवेत् स दशमासिकम् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा प्रेत-पिशाचादीन् गन्धर्व्वनगराणि च।
सुवर्णवर्णान् वृक्षांश्च नव मासान् स जीवति ॥ ५ ॥
स्थूलः कृशः कृशः स्थूलो योऽकस्मादेव जायते।
प्रकृतेश्च निवर्त्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ ६ ॥
खण्डं यस्य पदं पार्ष्ण्यां पादस्याग्रे च या भवेत्।
पांशुकर्दमयोर्मध्ये सप्त मासान् स जीवति ॥ ७ ॥
गृध्रः कपोतः काकोलो वायसो वापि मूर्द्धनि।
क्रव्यादो वा खगो नीलः षण्मासायुःप्रदर्शकः॥ ८ ॥
हन्यते काकपङ्क्तीभिः पांशुवर्षेण वा नरः।
स्वां छायामन्यथा दृष्ट्वा चतुःपञ्च स जीवति ॥ ९ ॥
अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम्।
रात्राविन्द्रधनुश्चापि जीवितं द्वित्रिमासिकम् ॥१०॥
घृते तैले तथादर्शे तोये वा नात्मनस्तनुम्।
यः पश्येदशिरस्कां वा मासादूर्ध्वं न जीवति॥११॥
यस्य वस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपि वा।

दत्तात्रेय बोले—

हे राजन्! अब मैं उन अरिष्टों को कहता हूँ जिनको कि देखकर योगी अपनी मृत्यु जान लेता है ॥ १ ॥ देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र और अरुन्धती ये तीन तारे और चन्द्रमा की छाया जो मनुष्य नहीं देख सकता है वह एक वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है ॥२॥ जो मनुष्य प्रातःकाल के सूर्यकी लाली और अग्नि की उष्णता को न मालूम करे वह ग्यारह महीने से उपरान्त जीवित नहीं रह सकता ॥ ३ ॥ जो मनुष्य स्वप्नावस्था में वमन, मूत्र और विष्ठा में सौना चाँदी देखे वह दस महीनेतक जीवित रहता है ॥ ४ ॥ जो मनुष्य स्वप्न में प्रेत, पिशाच आदिक और गन्धर्वों के नगर तथा सौने के पेड़ आदि देखे वह नौ महीने तक जीता है ॥५॥ जो अकस्मात् स्थूल से कृश अथवा कृश से स्थूल हो जावे और उसकी प्रकृति विगड़ जावे तो उस की आयु आठ महीने की ही समझनी चाहिये ॥६॥ जिस मनुष्य के पाँव की एड़ी या तलुए का चिह्न धूलि में अङ्कित न हो वह पुरुष सात महीने से अधिक जीवित नहीं रह सकता ॥७॥ गिद्ध, कबूतर, कौआ, उल्लू, बाज़ अथवा काली चिड़िया इनमें से किसी का शिर पर बैठना छः महीने की अवस्था बतलाता है ॥८॥ जिस मनुष्य को कौओं की पंक्ति मारजाय अथवा जिसके ऊपर धूलिकी वर्षा अनायास होजाय अथवा जो अपनी ही छाया न देख सके ऐसा मनुष्य केवल चार या पाँच महीने तक और जीता है ॥ ९ ॥ जो विना मेघ के दक्षिण-दिशा में बिजली चमकती हुई देखे अथवा रात्रि में इन्द्रधनुष देखे वह दो या तीन महीने तक जीताहै ॥१०॥ जो मनुष्य घी, तेल अथवा जल में अपना शरीर विना शिर के देखे वह एक महीने बाद मर जाता है ॥ ११ ॥ हे राजन्! जिस योगी के शरीर में मृत देह की सी दुर्गन्ध आतीहो उसका जीवन

तस्यार्द्धमासिकं ज्ञेयं योगिनो नृप जीवितम् ॥१२॥
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते ।
पिवतश्च जलं शोषो दशाहं सोऽपि जीवति ॥१३॥
सम्भिन्नो मारुतो यस्य मर्म्मस्थानानि कृन्तति ।
हृष्यते नाम्बुसंस्पर्शात् तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥१४॥
ऋक्ष-वानरयानस्थो गायन् यो दक्षिणां दिशम् ।
स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्युः कालमृच्छति ॥१५॥
रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती हसती च यम् ।
दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥१६॥
नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसमानं महाबलम् ।
एकं संवीक्ष्य वल्गन्तं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥१७॥
आमस्तकतलाद्यस्तु निमग्नं पङ्कसागरे ।
स्वप्ने पश्यत्यथात्मानं स सद्यो म्रियते नरः ॥१८॥
केशाङ्गारांस्तथा भस्म भुजङ्गान् निर्ज्जलां नदीम् ।
दृष्ट्वा स्वप्ने दशाहात् तु मृत्युरेकादशे दिने ॥१९॥
करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताड़ितः स्वप्ने सद्यो मृत्युं लभेन्नरः ॥२०॥
सूर्य्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति सम्मुखम् ।
विपरीतं परीतं वा स सद्यो मृत्युमृच्छति ॥२१॥
यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं बाधते क्षुधा ।
जायते दन्तघर्षश्च स गतायुर्न संशयः ॥२२॥
दीपगन्धं न यो वेत्ति त्रस्यत्यह्नि तथा निशि ।
नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति ॥२३॥
शक्रायुधञ्चार्द्धरात्रे दिवा ग्रहगणं तथा ।
दृष्ट्वा मन्येत संक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ॥२४॥
नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्नमनोन्नती ।
नेत्रञ्च वामं स्रवति यस्य तस्यायुरुद्गतम् ॥२५॥
आरक्ततामेति मुखं जिह्वा वा श्यामतां यदा ।
तदा प्राज्ञो विजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥२६॥
उष्ट्र-रासभयानेन यः स्वप्ने दक्षिणां दिशम् ।
प्रयाति तं च जानीयात् सद्योमृत्युं न संशयः ॥२७॥

केवल पन्द्रह दिन ही समझो ॥१२॥ स्नान करने भी जिसके पाँव और हृदय सूखे रहें और पी लेनेपर भी गला जिसका सूखा रहे वह ५ तक जीवित रहता है ॥१३॥ वायु से जिसके स्थानों को कष्ट पहुँचता हो तथा जल से अवयव कटते से मालूम हों उसकी मृत्यु हुई समझनी चाहिये ॥ १४ ॥ जो मनुष्य स्वप्न अपने को रीछ या बन्दरपर सवार होकर दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए देखे उसकी तत्क्षण समझनी चाहिये ॥ १५ ॥ जो मनुष्य में यह देखे कि लाल और काले कपड़े पहिने स्त्रियां हँसती हुईं उसको दक्षिण दिशामें ले हैं तो उसकी मृत्यु निकट है ॥ १६ ॥ यदि स्वप्न कोई महा बलवान् पुरुष नङ्गा, हजामत हुआ, हँसता हुआ और बकताहुआ दिखाई दे समझना चाहिये कि मृत्यु आगई ॥१७॥ जो पुरु स्वप्न में अपने को शिर से पाँव के तलुए त कीचड़ में सना हुआ देखे तो वह शीघ्र मरजाता ॥१८॥ जो मनुष्य स्वप्न में बाल, अङ्गारा, राख,साँ अथवा सूखी नदी देखे तो उसकी ग्यारहवें दि मृत्यु हो जावेगी ॥ १९ ॥ जो मनुष्य स्वप्न में अप को कराल, विकट, काले, हाथ में हथियार लि हुए पुरुषों द्वारा पत्थरों से मारा हुआ देखे तो उ की मृत्यु शीघ्र होती है ॥ २० ॥ सूर्योदय के सम जिसके सन्मुख अथवा बाँये या दाँये गीदड़ी रोत हुई चली जाय तो उसकी मृत्यु जल्दी होती है । जिसको भोजन कर लेने पर भी क्षुधा पीड़ित क और जिसके अनायास दाँत से दाँत घिसें उसकी आयु समाप्त हो चुकी इसमें कोई संशय नहीं ॥२२॥ जिसको दीपक की गन्ध न आतीहो और जो रात और दिन डरता रहे और जो अपनी छाया को दूसरों के नेत्रों में न देखे वह जीवित नहीं रह सकता ॥२३॥ जो आधी रात के समय इन्द्रधनुष और दिनमें तारागण देखे तो ज्ञानी को समझना चाहिये कि उसका जीवन क्षीण हो चुका है ॥२४॥ यदि नाक टेढ़ी होजाय, कान ऊँचा नीचा होजाय अथवा बाँये नेत्र से आँसू निकलते रहें तो जानना चाहिये कि आयु समाप्त हो चुकी है ॥ २५ ॥ यदि मुख लाल और जिह्वा काली होजाय तो बुद्धिमान् को समझना चाहिये कि उसकी मृत्यु निकट ही आ पहुँची ॥ २६ ॥ जो मनुष्य स्वप्न में अपने को ऊँट या गदहे पर दक्षिण दिशा को जाता हुआ देखे तो जान ले कि उसकी मृत्यु निस्सन्देह शीघ्र

पिधाय कर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम् ।
नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोऽपि न जीवति ॥२८॥
पततो यस्य वै गर्त्ते स्वप्ने द्वारं पिधीयते ।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात् तदन्तं तस्य जीवितम्२६॥
ऊर्द्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः संपरिवर्त्तमाना । मुखस्य चोष्मा शुषिरंच नाभेः शंसन्ति पुंसामपरं शरीरम् ॥३०॥
स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः ।
जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ॥३१॥
यश्चाभिहन्यते दुष्टैर्भूतैरात्रावथो दिवा ।
स मृत्युं सप्तरात्रन्तु नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३२
स्ववस्त्रममलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यथासितम् ।
यः पुमान् मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत्॥३३॥
स्वभाववैपरीत्यन्तु प्रकृतेश्च विपर्य्ययः ।
कथयन्ति मनुष्याणां सदासन्नौ यमान्तकौ ॥३४॥
येषां विनीतः सततं येऽस्य पूज्यतमा मता ।
तानेव चावजानाति तानेव च विनिन्दति ॥३५॥
देवान् नार्चयते वृद्धान् गुरून् विप्रांश्च निन्दति ।
मातापित्रोर्न सत्कारं जामातॄणां करोति च ॥३६॥
योगिनां ज्ञानविदुषामन्येषाञ्च महात्मनाम् ।
प्राप्ते तु काले पुरुषस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः ॥३७॥
योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते ।
संवत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानिशम् ॥३८॥
विलोक्या विशदा चैषां फलपंक्तिः सुभीषणा ।
विज्ञाय कार्य्यो मनसि स च कालो नरेश्वर ॥३९॥
ज्ञात्वा कालंच तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः ।
युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत् ४०
दृष्टारिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम् ।
तत्स्वभावं तदालोक्य काले यावत्युपागतम् ॥४१॥
तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योगवित् ।
पूर्वाह्णे चापराह्णे च मध्याह्ने चापि तद्दिने ॥४२॥
यत्र वा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम् ।
तत्रैव तावद्युञ्जीत यावत् प्राप्तं हि तद्दिनम् ॥४३॥
ततस्त्यक्त्वा भयं सर्व्वं जित्वा तं कालमात्मवान्।

होगी ॥२७॥ जो मनुष्य अपने दोनों कान वन्द कर के अपनी ही आवाज़ न सुने तथा जिसकी आँखों की रोशनी जाती रहे वह भी जीवित नहीं रहता है ॥२८॥ जो स्वप्न में अपने को गर्त में गिरा हुआ देखे और उससे निकलने का मार्ग भी वन्द देखे तथा उस गड्ढे में से न उठे तो समझले कि उसके जीवन का अन्त आगया ॥२६॥ जिसकी दृष्टि उलट जाय और नेत्र लाल-लाल होकर स्थिर न रहें, मुख से गर्म श्वास निकले तथा नाभि सूख जाय तो समझना चाहिये कि वह मनुष्य शरीर को छोड़ेगा ॥३०॥ जो मनुष्य स्वप्न में अग्नि में गिरपड़े और उसमें से न निकले अथवा जल में डूब जाय तो उसके जीवन का भी अन्त समझना चाहिये ॥ जिसको दुष्ट भूत रात्रि अथवा दिन में मारें वह पुरुष सातवीं रात्रि के अन्त में निस्सन्देह मर जायगा ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य अपने निर्मल सफ़ेद कपड़ों को लाल या काले देखे वह मृत्यु के समीप ही है ऐसा जानना चाहिये ॥३३॥ जिसका स्वभाव विपरीत और प्रकृति उलटी हो जाय तो समझना चाहिये उसके पास यमदूत आपहुँचे ॥ ३४ ॥ जिन मनुष्यों का विनीत हो और जो उसके पूज्यतम हों उन्हीं की निन्दा और अपमान जो व्यक्ति करे॥३५॥ जो देवताओं का पूजन न करे और वृद्धों, गुरुओं और ब्राह्मणों की निन्दा करे तथा माता, पिता और जमाई का सत्कार न करे ॥ ३६ ॥ तथा योगियों, ज्ञानियों, पण्डितों और महात्माओं का भी सत्कार न करे तो ऐसे पुरुष का समय भी ज्ञानी लोग निकट आया समझते हैं ॥३७॥ हे राजन् ! योगियों को इन अरिष्टों को यत्न पूर्वक देखते रहना चाहिये क्योंकि यह दिन रात्रि अथवा वर्ष के अन्तमें फल देते रहते हैं ॥३८॥ हे राजन् ! इन अरिष्टों का फल बड़ा भीषण है, इसलिये इनके कार्य और काल को मनमें जान ले ॥ ३९ ॥ उस काल को भली प्रकार जानकर योगी को चाहिये कि अभय स्थान में जा कर योग करे जिससे उस काल का कुफल उसको न हो ॥४०॥ अरिष्ट को जानकर और मरने का भय छोड़कर उस अरिष्ट के स्वभाव को समझे और जब तक वह समय आवे ॥ ४१ ॥ उसके निमित्त उसी दिन पूर्वाह्न, अपराह्न और मध्याह्न में योग करे ॥ ४२ ॥ और यदि वह अरिष्ट रात्रिमें होता दिखाई दे तो जब तक वह दिन आवे उसके पहिले ही योग करे ॥४३॥ इसके अनन्तर सब भय को त्याग कर उस काल को जीते और उसी स्थानमें अथवा

तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र वा स्थैर्य्यमात्मनः ॥४४॥
युञ्जीत योगं निर्जित्य त्रीन् गुणान् परमात्मनि।
तन्मयश्चात्मना भूत्वा चिद्वृत्तिमपि सन्त्यजेत्॥४५॥
ततः परमनिर्व्वाणमतीन्द्रियमगोचरम्।
यद्बुद्धेर्येन्न चाख्यातुं शक्यते तत् समश्नुते ॥४६॥
एतत् सर्व्वं समाख्यातं तवालर्क यथार्थवत्।
प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म संक्षेपात् तन्निबोध मे ॥४७॥
शशाङ्करश्मि संयोगाचन्द्रकान्तमणिः पयः।
समुत्सृजति नायुक्तः सोपमा योगिनः स्मृता॥४८॥
यथार्करश्मि संयोगादर्ककान्तो हुताशनम्।
आविष्करोति नैकः सन्नुपमा सापि योगिनः॥४९॥
पिपीलिकाखु-नकुल-गृहगोधा-कपिञ्जलाः।
वसन्ति स्वामिवद्गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोऽन्यतः ५०॥
दुःखन्तु स्वामिनो ध्वंसे तस्य तेषां न किञ्चन।
वेश्मनो यत्र राजेन्द्र सोऽपमा योगसिद्धये ॥५१॥
मृद्देहिकाल्पदेहापि मुखाग्रेणाप्यणीयसा।
करोति मृद्भारचयमुपदेशः स योगिनः ॥५२॥
पशु-पक्षि-मनुष्याद्यैः पत्र-पुष्प-फलान्वितम्।
वृक्षं विलुप्यमानन्तु दृष्ट्वा सिध्यन्ति योगिनः ॥५३॥
रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्य तिलकाकृतिम्।
सह तेन विवर्द्धन्तं योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४॥
द्रवपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतो भुवः।
तुङ्गमङ्गं विलोक्योच्चैर्विज्ञातं किं न योगिना ॥५५॥
सर्व्वस्वे जीवनायालं निखाते पुरुषस्य या।
चेष्टा तां तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिनः कृतकृत्यता॥५६॥
तद्गृहं यत्र वसतिस्तद्भोज्यं येन जीवति।
येन सम्पद्यते चार्थस्तत् सुखं ममतात्र का ॥५७॥
अभ्यर्थितोऽपि तैः कार्य्यं करोति करणैर्यथा।
तथा बुद्ध्यादिभिर्योगी पारक्यैः साधयेत् परम्॥५८॥

जड़ उवाच

ततः प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कः स महीपतिः।

दूसरे स्थान में अपने मन को स्थिर करके रक्खे॥ तीनों गुणों को जीत कर योग करे और परमात्मा में मन लगाकर चैतन्य वृत्ति को भी छोड़ दे॥४५॥ इसपर वह योगी इन्द्रियों से अगोचर और बुद्धि से परे जो परम निर्वाणपद है उसको पाता है॥४६॥ हे अलर्क! हमने ये सब तुमसे यथार्थ रूपसे कहा अब जिस तरह योगी को ब्रह्म प्राप्त होता है वह सुनो॥४७॥ चन्द्रमा की किरणों के संयोग से चंद्र-कान्त मणि जल छोड़ती है और यदि किरणें न लगें तो नहीं, इसी प्रकार योगियों की उपमा है॥ सूर्यकान्त मणि सूर्य के लगने से अग्नि उत्पन्न करती है और न लगनेसे नहीं,यही उपमा योगियों के लिये भी है॥ ४६॥ जिस प्रकार चींटी, चूहा, नेवला, छिपकली और कपिञ्जल घर में उसके स्वामी के ही समान रहते हैं परन्तु उस घरके नष्ट भ्रष्ट हो जाने पर दूसरेमें चले जाते हैं॥५०॥ परन्तु जिसप्रकार उस घरके स्वामीको उसके टूटनेकादुःख होताहै उस प्रकार उनकोनहीं, इसी प्रकार हे राजन्! योगसिद्धि की उपमा जाननी चाहिये॥५१॥ छोटे शरीर वाली चींटी अपने मुख के छोटेसे अग्रभाग से मिट्टी का ढेर इकट्ठा करती हुई मानों योगी को उपदेश करती है॥ ५२॥ पशु, पक्षी और मनुष्य आदिक जिस तरह पत्तों, फूलों और फलोंसे युक्त वृक्षों को धीरे-धीरे काट डालते हैं इसको देखकर योगियों को योग सिद्ध करना चाहिये॥५३॥ जिस प्रकार हरिण के बच्चे के सींगकी नोक पहिले तिल के समान दिखाई देती है और फिर हरिणके साथ साथ बढ़ती हैं उसी प्रकार धीरे-धीरे योगी सिद्धि को प्राप्त करे॥ ५४॥ जल से पूर्ण पात्र को शिरपर रखकर यदि कोई पृथ्वी पर चलताहै तो उस पात्र को ऊँचा देखकर योगी योग में अपने को ऊँचा रक्खे॥५५॥ और ज़मीन से खोद कर जो तुच्छ वस्तु निकाली जाती है पुरुष का चित्त उसी में लगा रहता है, इसका तत्त्वपूर्वक समझनाही योगी की कृतकृत्यता है॥ ५६॥ घर वह है जिसमें मनुष्य रहे भोजन वह है जिससे वह जीवितरहे और धन वह है जिससे सुख हो फिर ममता करनेसे क्या? ॥ ५७॥ जिस प्रकार बुद्धिमान् लोग बाधाओं के उपस्थित होने पर भी उद्यम को नहीं छोड़ते इसी प्रकार इन्द्रियों को जीतकर योगी लोग योग-साधन करते हैं॥ ५८॥

जड़ (सुमति) बोले—

इसके अनन्तर राजा अलर्क दत्तात्रेयजी को

प्रश्रयावनतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ॥५६॥

अलर्क उवाच

दिष्ट्या दैवैरिदं ब्रह्मन् पराभिभवसम्भवम् ।
उपपादितमत्युग्रं प्राणसन्देहदं भयम् ॥६०॥
दिष्ट्या काशिपतेर्भूरि-बलसम्पत्पराक्रमः ।
यदुच्छेदादिहायातः स युष्मत्सङ्गदो मम ॥६१॥
दिष्ट्या मन्दबलश्चाहं दिष्ट्या भृत्याश्च मे हताः ।
दिष्ट्या कोषः क्षयं यातो दिष्ट्याहं भीतिमागतः॥६२॥
दिष्ट्या त्वत्पादयुगलं मम स्मृतिपथं गतम् ।
दिष्ट्या त्वदुक्तयः सर्व्वा मम चेतसि संस्थिताः॥६३॥
दिष्ट्या ज्ञानं ममोत्पन्नं भवतश्च समागमात् ।
भवता चैव कारुण्यं दिष्ट्या ब्रह्मन् कृतं मम ॥६४॥
अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये ।
यथेदमुपकाराय व्यसनं सङ्गमात् तव ॥६५॥
सुबाहुरुपकारी मे स च काशिपतिः प्रभो ।
ययोः कृतेऽहं सम्प्राप्तो योगीश भवतोऽन्तिकम्॥६६॥
सोऽहं तव प्रसादाग्नि-निर्दग्धाज्ञानकिल्विषः ।
तथा यतिष्ये येनेदृङ्न भूयां दुःखभाजनम् ॥६७॥
परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्त्तिपादपकाननम् ।
त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्महात्मनः ॥६८॥

दत्तात्रेय उवाच

गच्छ राजेन्द्र भद्रं ते यथा ते कथितं मया ।
निर्म्ममो निरहङ्कारस्तथा चर विमुक्तये ॥६९॥

जड़ उवाच

एवमुक्तः प्रणम्यैनमाजगाम त्वरान्वितः ।
यत्र काशिपतिर्भ्राता सुबाहुश्चास्य सोऽग्रजः ॥७०॥
समुपेत्य महाबाहुं सोऽलर्कः काशिभूपतिम् ।
सुबाहोरग्रतो वीरमुवाच प्रहसन्निव ॥७१॥
राज्यकामुक काशीश भुज्यतां राज्यमूर्ज्जितम् ।
यथा वा रोचते तद्वत् सुबाहोः सम्प्रयच्छ वा ॥७२॥

काशिराज उवाच

किमलर्क परित्यक्तं राज्यं ते संयुगं विना ।
क्षत्रियस्य न धर्म्मोऽयं भवांश्च क्षत्रधर्म्मवित् ॥७३॥
निर्ज्जितामात्यवर्गस्तु त्यक्त्वा मरणजं भयम् ।

प्रणाम कर हर्ष से विनय पूर्वक वचन बोले ॥५९॥

अलर्क बोले—

हे भगवन् ! मेरे भाग्य धन्य हैं कि जो मुझे अति उग्र प्राणों को भय देने वाला सन्देह उत्पन्न हुआ ॥ ६० ॥ काशिराज का प्रचुर बल, सम्पत्ति और पराक्रम धन्य है कि जिससे कष्ट पाकर मैं यहाँ आया और आपसे सत्सङ्ग हुआ ॥ ६१ ॥ मेरा बल घटना, सेना और सेवकों का मारा जाना, कोष का क्षीण होना, और मुझको भय होना ये सब कल्याणकारी ही हुए ॥६२॥ ये कितनी कल्याणमयी घटना है कि आपके चरण युगल मेरे स्मृति पटल पर अङ्कित होगये और आपने जो कुछ कहा वह मेरे चित्त में बैठ गया ॥ ६३॥ आपके समागम से जो ज्ञान मुझे हुआ तथा हे ब्रह्मन् ! आपने जो मेरे ऊपर करुणा की वह धन्य है ॥ ६४ ॥ पुरुष के शुभ दिन आने पर अनर्थ भी कल्याणकारी होजाता है जिस तरह कि आपके सङ्ग से दुःख भी मेरे उपकार का कारण हुआ ॥६५॥ सुबाहु और काशिराज भी मेरे उपकारी हुए कि जिनके कारण मैं आप जैसे योगीश्वर के पास आया ॥ ६६॥ आपकी कृपा रूपी अग्नि से मेरा अज्ञानरूपी पाप जल गया, अब मैं वही यत्न करूँगा कि जिससे फिर इस तरह दुःख का भागी न बनूं ॥६७॥ आप जैसे ज्ञान देने वाले महात्मा से आज्ञा लेकर गृहस्थरूपी बन को जो दुःखरूपी वृक्षों से पूर्ण है छोड़ूंगा ॥६८॥

दत्तात्रेय बोले—

हे राजन् ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो । जिस तरह मैंने तुमको बताया है निरहङ्कार और निर्मम रहकर मुक्ति के लिए प्रयत्न करो ॥ ६९ ॥

जड़ (सुमति) बोले—

यह कहे जाने पर उनको प्रणाम करके राजा अलर्क जहाँ काशिराज और बड़े भाई सुबाहु थे, वहाँ शीघ्र पहुंचे ॥ ७० ॥ और काशी नरेश के पास पहुँचकर अलर्क सुबाहु के सामने हँसते हुए उनसे बोले ॥ ७१ ॥ हे राज्य के इच्छुक काशीनरेश ! जीते हुए इस राज्य को अब तुम भोगो अथवा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो सुबाहु को देदो ॥७२ ॥

काशिराज बोले—

यह राज्य तुमने बिना युद्ध किये क्यों छोड़ा, यह क्षत्रिय-धर्म नहीं है । आप तो क्षत्रियधर्म के जानने वाले हैं ॥७३॥ सेना के हारने पर मरने का भय छोड़कर राजा स्वयं धनुष बाण लेकर वैरी के

सन्दधीत शरं राजा लक्ष्यमुद्दिश्य वैरिणम् ॥७४॥
तं जित्वा नृपतिर्भोगान् यथाभिलषितान् वरान्।
भुञ्जीत परमं सिद्धयै यजेत च महामखैः ॥७५॥

सन्मुख आते हैं ॥ ७४ ॥ उस वैरी को जीतकर यथेष्ट भोगों को भोगते हैं और परम सिद्धि के लिए यज्ञ आदि भी करते हैं ॥७५॥

अलर्क उवाच

एवमीदृशकं वीर ममाप्यासीन्मनः पुरा।
साम्प्रतं विपरीतार्थं शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥७६॥
यथायं भौतिकः सङ्घस्तथान्तःकरणं नृणाम्।
गुणास्तु सकलास्तद्वदशेषेष्वेव जन्तुषु ॥७७॥
चिच्छक्तिरेक एवायं यदा नान्योऽस्ति कश्चन।
तदा का नृपते ज्ञानान्मित्रारि-प्रभु-भृत्यता ॥७८॥
तन्मया दुःखमासाद्य त्वद्भयोद्भवमुत्तमम्।
दत्तात्रेयप्रसादेन ज्ञानं प्राप्तं नरेश्वर ॥७९॥
निर्ज्जितेन्द्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा सङ्गमशेषतः।
मनो ब्रह्मणि सन्धाय तज्जये परमो जयः ॥८०॥
संसाध्यमन्यत् तत्सिद्धयै यतः किञ्चिन्न विद्यते।
इन्द्रियाणि च संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति॥८१॥

सोऽहं न तेऽरिर्न ममासि शत्रुः सुबाहुरेषो न ममापकारी। दृष्टं मया सर्व्वमिदं यथावदन्विष्यतां भूप रिपुस्त्वयान्यः ॥८२॥

इत्थं स तेनाभिहितो नरेन्द्रो हृष्टः समुत्थाय ततः सुबाहुः। दिष्ट्येति तं भ्रातरमाभिनन्द्य काशीश्वरं वाक्यमिदं बभाषे ॥८३॥

अलर्क बोले—

हे वीर! जैसा तुम कहते हो मेरा पहिले वैसा ही मन था परन्तु अब विपरीत होगया है, इसका कारण सुनो ॥७६॥ जैसा यह भौतिक सङ्घ है वैसा ही मनुष्यों का अन्तःकरण है और सब जीव जन्तुओं में गुण भी हैं ॥ ७७ ॥ परन्तु उनमें पुरुष एक ही है और जब वह एक ही है तो हे काशिराज! फिर मित्र, शत्रु, स्वामी और सेवक क्या? ॥ ७८ ॥ हे नरेश! तुम्हारे भय से मैं दुःख पाकर दत्तात्रेयजी के पास गया और उनकी कृपासे यह ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ ॥ ७९ ॥ मैंने सब सङ्गको छोड़ कर और इन्द्रियों को जीतकर अपने मनको ब्रह्ममें लगाया है और यही उत्तम विजय है ॥८० ॥ उसी सिद्धि के लिए जिसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है यह साधना है। इन्द्रियों का संयम करनेसे वह सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ८१ ॥ अतः मैं तुम्हारा और तुम मेरे शत्रु नहीं हो और ये सुबाहु भी मेरा अपकारी नहीं हैं। मैं इस सबको यथार्थ रूपसे देखता हूँ इसलिये हे राजन्! आप अपने लिए दूसरा शत्रु ढूंढ लीजिए ॥ ८२ ॥ अलर्क के इस प्रकार कहने पर सुबाहु प्रसन्न होकर उठा और 'धन्य है' इस तरह भाई का अभिनन्दन करके काशी नरेश के प्रति कहने लगा ॥ ८३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें अरिष्टकथन नाम ४३वाँ अ० समाप्त।

चौवालीसवां अध्याय

सुबाहुरुवाच

यदर्थं नृपशार्द्दूल त्वामहं शरणं गतः।
तन्मया सकलं प्राप्तं यास्यामि त्वं सुखी भव ॥ १ ॥

सुबाहु बोले—

हे राजन्! जिस आशय के लिए मैं आपकी शरण में आया था वह पूरा होगया, अब मैं जाता हूँ, आप सुखी हों ॥ १ ॥

काशिराज उवाच

किं निमित्तं भवान् प्राप्तो निष्पन्नोऽर्थश्च कस्तव।
सुबाहो तन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥
समाक्रान्तमलर्केण पितृपैतामहं महत्।
राज्यं देहीति निर्ज्जित्य त्वयाहमभिचोदितः ॥ ३ ॥

काशिराज बोले—

हे सुबाहु! किस लिये आप मेरे पास आये थे और कौनसा आशय आपका सफल हुआ मुझसे कहो, मुझे बड़ा कौतूहल है ॥ २ ॥ पहिले आपने मुझसे कहा था कि अलर्क ने मेरे बाप-दादे का राज्य हड़प करलिया है उसे जीतकर मुझे दो ॥३॥

ततो मया समाक्रम्य राज्यमस्यानुजस्य ते ।
एतत् ते वशमानीतं तद्भुङ्क्ष्व स्वकुलोचितम्॥ ४ ॥

सुवाहुरुवाच

काशिराज निबोध त्वं यदर्थमयमुद्यमः ।
कृतो मया भवांश्चैव कारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥ ५ ।
भ्राता ममायं ग्राम्येषु शक्तो भोगेषु तत्त्ववित् ।
विमूढौ बोधवन्तौ च भ्रातरावग्रजौ मम ॥ ६ ॥
तयोर्मम च यन्मात्रा वाल्ये स्तन्यं यथा मुखे ।
तथाववोधो विन्यस्तः कर्णयोरवनीपते ॥ ७ ॥
तयोर्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः ।
प्रकाश्यं मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव॥ ८ ॥
यथैकसार्थयातानामेकस्मिन्नवसीदति ।
दुःखं भवति साधूनां तथास्माकं महीपते ॥ ९ ॥
गार्हस्थ्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन् नरेश्वर ।
सन्वन्धिन्यस्य देहस्य बिभ्रति भ्रातृकल्पनाम्॥१०॥
ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद्वैराग्यभावना ।
भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ॥११॥
तदस्य दुःखाद्वैराग्यं सम्बोधादवनीपते ।
समुद्भूतं कृतं कार्य्यं भद्रं तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥१२॥
उष्ट्वा मदालसागर्भे पीत्वा तस्यास्तथा स्तनम् ।
नान्यनारीसुतैर्यातं वर्त्म यात्विति पार्थिव ॥१३॥
विचार्य्य तन्मया सर्व्वं युष्मत्संश्रयपूर्व्वकम् ।
कृतं तच्चापि निष्पन्नं प्रयास्ये सिद्धये पुनः ॥१४॥
उपेक्ष्यते सीदमानः स्वजनो वान्धवः सुहृत् ।
यैर्नरेन्द्र न तान् मन्ये सेन्द्रिया विकला हि ते॥१५
सुहृदि स्वजने वन्धौ समर्थे योऽवसीदति ।
धर्म्मार्थ-काम-मोक्षेभ्यो वाच्यास्ते तत्र न त्वसौ॥१६
एतत् त्वत्सङ्गमाद्भूप मया कार्य्यं महत् कृतम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ज्ञानभाग्भव सत्तम ॥१७॥

काशिराज उवाच

उपकारस्त्वया साधोरलर्कस्य कृतो महान् ।
... कथं न करोषि स्वमानसम् ॥१८॥

इसपर मैंने तुम्हारे छोटे भाई से राज्य जीतकर अपने वशमें किया अब तुम इसे लो और भोगो ॥

सुवाहु बोले—

हे काशिराज ! जिस कारण यह उद्यम मैंने किया और आपसे कराया उसे सुनिये ॥ ५ ॥ यह मेरा छोटा भाई अलर्क जो तत्वज्ञ है सांसारिक भोगों में आसक्त होरहा था। मेरे दो बड़े भाई भी पहिले मूर्ख थे लेकिन पीछे उनको बोध हुआ ॥ ६॥ हे राजन् ! उन दोनोंको तथा मुझको माताने बाल्यावस्था से जब हम स्तन का दूध पीतेथे और कानों से बात समझने लगे, उपदेश किया ॥७॥ उनदोनों ने और मैंने वह पदार्थ प्राप्त किया जिसको सब कोई नहीं जानते हैं और जिससे हृदय में प्रकाश होताहै परन्तु यह बात अलर्कको न हुई ॥८॥ जिस प्रकार साधुओं को धन से सुख की प्राप्ति नहीं होती उसी प्रकार हे राजन् ! हमको भी धनसे दुख होता है ॥९ ॥ हे राजन् ! इस देह के सम्बन्धरूप भाई में स्थित आतमा गृहस्थ के मोह में फँस कर दुख पाता था ॥१०॥ इस पर मैंने यह निश्चय करके कि इसको दुःख से वैराग्य की भावना होगी आप से उद्योग कराया ॥११॥ हे राजन् ! इसको दुःख से ज्ञान और ज्ञान से वैराग्य हुआ। मैं इसी कार्य के लिये आपके पास आया था और वह पूरा होगया अब आपका कल्याणहो मैं जाता हूँ ॥१२॥ मदालसा के गर्भ में रहकर और उसका दूध पीकर जिससे दूसरी स्त्रीका पुत्र न होऊँ वह उपाय करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥ मैं यह विचार कर यहाँ आया जो आपके आश्रय से पूर्ण हुआ अब मैं योगकी सिद्धि के लिये जाता हूँ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जो लोग स्वजनों, वान्धवों और मित्रोंको उनके दुःखमें छोड़ देते हैं उनको मैं सुखी नहीं समझता हूं और उन की इन्द्रियां सदैव विकल रहती हैं ॥ १५॥ स्वजनों मित्रों और भाई-वन्धुओं के सुखी होते हुए जो मनुष्य स्वयं दुःखी है उसी को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं उनको नहीं जो सुखी हैं॥ हे राजन् ! आपके संसर्ग से मैंने यह महान् कार्य किया, आपका कल्याण हो, मैं जाता हूँ। आप भी आत्मज्ञानी हो जाओ ॥ १७॥

काशिराज बोले—

हे साधु ! तुमने अलर्क का तो बड़ा उपकार किया परन्तु मेरे उपकार के निमित्त अब मन क्यों नहीं लगाते हो ॥ १८॥ साधुओं की सङ्गति मनुष्यों

फलदायी सतां सद्भिः सङ्गमो नाफलो यतः ।
तस्मात् त्वत्संश्रयाद्युक्ता मया प्राप्ता समुन्नतिः॥१६॥

सुवाहुरुवाच

धर्म्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुपार्थचतुष्टयम् ।
तत्र धर्म्मार्थकामास्ते सकला हीयतेऽपरः ॥२०॥
तत् ते संक्षेपतो वक्ष्ये तदिहैकमनाः शृणु ।
श्रुत्वा च सम्यगालोच्य यतेथाः श्रेयसे नृप ॥२१॥
ममेति प्रत्ययो भूप न कार्य्योऽहमिति त्वया ।
सम्यगालोच्यधर्म्मो हि धर्म्माभावे निराश्रयः॥२२॥
कस्याहमिति संज्ञेयमित्यालोच्य त्वयात्मना ।
वाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिपु ॥२३॥
अव्यक्तादिविशेपान्तमविकारमचेतनम् ।
व्यक्ताव्यक्तं त्वया ज्ञेयं ज्ञाता कश्चाहमित्युत ॥२४॥
एतस्मिन्नेव विज्ञाते विज्ञातमखिलं त्वया ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्व स्वमिति मूढ़ता ॥२५॥
सोऽहं सर्व्वगतो भूप लोकसंव्यवहारतः ।
मयेदमुच्यते सर्व्वं त्वया पृष्टो व्रजाम्यहम् ॥२६॥
एवमुक्त्वा ययौ धीमान् सुवाहुः काशिभूमिपम् ।
काशिराजोऽपि सम्पूज्य सोऽलर्कं स्वपुरं ययौ॥२७॥
अलर्कोऽपि सुतं ज्येष्ठमभिपिच्य नराधिपम् ।
वनं जगाम सन्त्यक्त-सर्व्वसङ्गः स्वसिद्धये ॥२८॥
ततः कालेन महता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्राप्य योगर्द्धिमतुलां परं निर्व्वाणमाप्तवान् ॥२६॥
पश्यन् जगदिदं सर्व्वं सदेवासुरमानुपम् ।
पाशैर्गुणमयैर्वद्धं वध्यमानश्च नित्यशः ॥३०॥
पुत्रादिभ्रातृपुत्रादि-स्वपारक्यादिभावितैः ।
आकृष्यमाणं करणैर्दुःखार्त्तं भिन्नदर्शनम् ॥३१॥
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारं महामतिः ।
आत्मानञ्च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत । ३२॥
अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्व्वं राज्यमनुष्ठितम् ।
इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम्॥३३॥

को सदा फल देने वाली होतीहै, वह कभी नहीं होती इसलिये आपकी कृपा से मेरी उन्नति हुई ॥ १६ ॥

सुवाहु बोले—

धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष यही चार पुरुपार्थ हैं जिनमें धर्म, अर्थ और काम तो आपके हैं ही, परन्तु मोक्ष नहीं है ॥ २०॥ उसको भी मैं संक्षेप में कहता हूँ, आप एकाग्र चित्त होकर सुनिये। उस को सुनकर और आलोचना करके अपने कल्याण के लिये यत्न कीजिये ॥२१॥ हे राजन्! मैं हूँ या यह मेरा है, यह ममत्व कभी न करो और धर्म पूर्वक रहो, कारण-धर्म के अभावमें मनुष्य आश्रय हीन हो जाता है ॥ २२ ॥ 'मैं कौन हूँ' इसको जान कर अर्थके वाहर और भीतर जो आत्मा है उसको उसी तरह देखो जिस तरह योगी लोग उसे रात्रि में देखते हैं ॥ २३ ॥ उस आत्मा को जानो जिसका आदि, मध्य और अन्त अव्यक्त है, जो विकार व अचेतन हैं,जो व्यक्त और अव्यक्तहै तथा मैं कौन हूँ यह भी समझो ॥२४॥ इसके जानने पर ही आप यह समझ लो कि आपने सब कुछ जानलिया, जो आत्मा नहीं है उसको आत्मा कहना अथवा जो धन किसी का नहींहै उसे अपना कहना मूर्खताहै॥ हे राजन्! यह मैं सर्वव्यापी हूँ लेकिन लौकिक व्यवहार से आपके पूछने पर यह सब मैंने कहा, अव मैं जाता हूँ ॥ २६ ॥ काशी नरेश से इस प्रकार कहकर विद्वान् सुवाहु चले गये और काशिराजभी अलर्क का सम्मान करके अपने नगरको गये ॥२७॥ अलर्क भी अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक करके दुनियां के सङ्ग को छोड़ कर आत्मसिद्धि के लिये वनको चले गये ॥ २८॥ फिर वह अलर्क वहुत काल तक निश्चिन्त और अवाध योग करके अतुल ऋद्धि को प्राप्त कर परम निर्वाण पद को पहुँचे ॥ २६ ॥ देवता, असुर और मनुष्यों से युक्त इस संसारको देखकर कि यह गुणरूपी पाशोंसे वँधा हुआहै और नित्य वँधता ही जाता है तथा ॥ ३० ॥ पुत्र, भाई, वन्धुओं के मोह में दुःखित होकर इन्द्रियाँ पारे के समान आर्त रहती हैं ॥ ३१ ॥ और लोग अज्ञानरूपी कीचड़में फँसे हुएहैं कि जिससे उद्धार होना कठिन है तथा अपने को उससे निकला हुआ देखकर उन्होंने यह गीत गाया ॥३२॥ हमारी पहिले जो राजा की स्थिति थी वह कितनी कष्टमय थी। मुझे पीछे ज्ञान हुआ कि योग की अपेक्षा कोई दूसरा सुख नहीं ॥३३॥

जड़ उवाच

तातैनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम् ।
प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ॥३४॥
ततोऽहमपि यास्यामि किं यज्ञैः किं जपेन मे ।
कृतकृत्यस्य करणं ब्रह्मभावाय कल्पते ॥३५॥
त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्रयतिष्ये तथा मुक्तौ यथा यास्यामि निर्वृतिम्॥३६॥

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुज्ञां ततश्च सः ।
ब्रह्मन् जगाम मेधावी परित्यक्तपरिग्रहः ॥३७॥
सोपि तस्य पिता तद्वत् क्रमेण सुमहामतिः ।
वानप्रस्थं समास्थाय चतुर्थाश्रमसभ्यगात् ॥३८॥
तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धं गुणादिकम् ।
प्राप सिद्धिं परां प्राज्ञस्तत्कालोपात्तसम्मतिः ॥३९॥
एतत् ते कथितं ब्रह्मन् यत्पृष्टा भवता वयम् ।
विस्तरं यथावच्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४०॥

जड़ (सुमति) बोले—

हे पिता ! इसलिये आप मोक्ष प्राप्ति के लिये उत्तम योग को करो जिससे कि ब्रह्मकी प्राप्ति हो, उसको पाकर आपको कोई शोक न होगा ॥ ३४ ॥ अब मैं भी जाता हूँ, मुझे यज्ञ और जप से क्या ? कृतकृत्य को वही करना चाहिये जिससे ब्रह्म की प्राप्ति हो ॥ ३५ ॥ आपकी आज्ञा लेकर मैं निश्चिन्त और बाधा रहित होकर मुक्ति के लिये चेष्टा करूँगा जिससे कि निवृत्ति को प्राप्त होऊँ ॥

पक्षी बोले—

हे जैमिनिजी ! जड़ अपने पिता से यह कहकर और उनकी आज्ञा प्राप्त कर सांसारिक बन्धन को छोड़ वनको चलागया ॥३७॥ उसका महाबुद्धिमान् पिता भी उसी तरह क्रम से वाणप्रस्थ आश्रम में पहुँचकर और बाद इसके चौथे आश्रममें प्राप्तहुआ ॥ ३८ ॥ वह विद्वान् ब्राह्मण अपने पुत्रसे ज्ञान प्राप्त कर और गुण आदिक बन्धनों को त्यागकर परम सिद्धि को पहुँच गया ॥ ३९ ॥ हे जैमिनिजी ! जो कुछ आपने हमसे पूछा वह हमने विस्तार पूर्वक यथार्थरूपसे आपको बताया, अब आप और क्या सुनने की इच्छा करते हैं ? ॥ ४० ॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में पिता-पुत्र संवादमें जड़ोपाख्यान नाम ४४वाँ अ० समाप्त ।

पैंतालीसवाँ अध्याय

जैमिनिरुवाच

सम्यगेतन्ममाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः ।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म्म वैदिकम् ॥ १ ॥
अहो पितृप्रसादेन भवतां ज्ञानमीदृशम् ।
येन तिर्य्यक्त्वमप्येतत् प्राप्य मोहस्तिरस्कृतः ॥ २ ॥
धन्या भवन्तः संसिद्ध्यै प्रागवस्थास्थितं यतः ।
भवतां विषयोद्भूतैर्न मोहैश्चाल्यते मनः ॥ ३ ॥
दिष्ट्या भगवता तेन मार्कण्डेयेन धीमता ।
भवन्तो वै समाख्याताः सर्व्वसन्देहहृत्तमाः ॥ ४ ॥
संसारेऽस्मिन् मनुष्याणां भ्रमतामतिसङ्कटे ।
भवद्विधैः समं सङ्गो जायते न तपस्विनाम् ॥ ५ ॥
यद्यहं सङ्गमासाद्य भवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः ।
न स्यां कृतार्थस्तन्नूनं न मेऽन्यत्र कृतार्थता ॥ ६ ॥
प्रवृत्ते च निवृत्ते च भवतां ज्ञानकर्म्मणि ।

जैमिनि बोले—

हे श्रेष्ठ पक्षियो ! आपने प्रवृत्ति और निवृत्ति शीर्षक दोनों वैदिक कर्म भली भांति मुझसे कहे ॥ अहा ! पिता की कृपा से आपको इतना ज्ञान प्राप्त हुआ कि पक्षि-योनि में भी आपने मोह को त्यागा है ॥ २ ॥ आपको धन्य है कि जो पहिली जैसी अवस्था में अब भी स्थित हो, आपका मन विषयों से उत्पन्न मोह से चलायमान नहीं होता ॥ ३ ॥ यह मेरा भाग्य धन्य है कि जो विद्वान् मार्कण्डेयजी ने मेरा सन्देह छुड़ाने के लिये आपको बताया ॥ ४ ॥ इस संसार में जो सङ्कट में पड़े हुए मनुष्योंसे पूर्ण हैं आप सरीखोंका सत्सङ्ग तपस्वियोंको भी दुर्लभ है ॥५ ॥ यदि मैं आप जैसे ज्ञानियों के सत्सङ्ग से भी कृतार्थ न होऊँगा तो फिर मुझे कहाँ कृतार्थता मिलेगी ? ॥ ६ ॥ प्रवृत्ति, निवृत्ति तथा ज्ञान-कर्म में

मतिमस्तमलां मन्ये यथा नान्यस्य कस्यचित् । ७ ॥
यदि त्वनुग्रहवती मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमाः ।
भवतां तत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ॥ ८ ॥
कथमेतत् समुद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
कथञ्च प्रलयं काले पुनर्यास्यति सत्तमाः ॥ ९ ॥
कथंच वंशाद्देवर्षि-पितृभूतादिसम्भवाः ।
मन्वन्तराणि च कथं वंशानुचरितंच यत् ॥१०॥
यावत्यः सृष्टयश्चैव यावन्तः प्रलयास्तथा ।
यथा कल्पविभागश्च या च मन्वन्तरस्थितिः ॥११॥
यथा च क्षितिसंस्थानं यत् प्रमाणञ्च वै भुवः ।
यथास्थिताः समुद्राद्रि-निम्नगाः काननानि च॥१२॥
भूर्लोकादिस्वर्लोकानां गणः पातालसंश्रयः ।
गतिस्तथार्कसोमादि-ग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥१३॥
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्व्वमेतदाभूतसंप्लवम् ।
उपसंहृते च यच्छेषं जगत्यस्मिन् भविष्यति ॥१४॥

जैसी निर्मल आपकी मति है वैसी किसी दूसरे की नहीं ॥७॥ हे श्रेष्ठ पक्षियो ! यदि आपका अनुग्रह मुझ पर है तो पूर्णतः बताइये कि ॥८॥ यह जगत जो स्थावर और जङ्गम से युक्त है किस प्रकार उत्पन्न हुआ और प्रलयकाल उपस्थित होने पर किस तरह नष्ट होजायगा ? ॥९॥ और देवता, ऋषि पितर और भूतादिक कैसे और किस वंशसे उत्पन्न होते हैं और मनवन्तर कैसेहुए तथा उनके वंशों का चरित्र क्या है ? ॥१०॥ सृष्टि और प्रलय का काल तथा कल्पों का विभाग और मन्वन्तरों की स्थिति ॥११॥ जिस प्रकार कि पृथ्वी की स्थिति है और उसके प्रमाण तथा समुद्र, नदियों और वनों का वर्णन ॥१२॥ और भूलोक, स्वर्गलोक तथा पाताल आदि की स्थिति तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रहादिक, ऋक्ष और ज्योतिष की गति ॥ १३ ॥ इस सबको सुनना चाहता हूँ तथा एकार्णव होने पर जब सृष्टि का उपसंहार हो जाता है तब क्या शेष रहता है यह भी बताइये ॥१४॥

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलो यस्त्वया मुनिसत्तम ।
पृष्टस्तं ते प्रवक्ष्यामस्तच्छ्रृणुष्वेह जैमिने ॥१५॥
मार्कण्डेयेन कथितं पुरा क्रौष्टुकये यथा ।
द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नाताय धीमते ॥१६॥
मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः ।
क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ यदेतत् पृष्टवान् प्रभो ॥१७॥
तस्य चाकथयत् प्रीत्या यन्मुनिभृगुनन्दनः ।
तत् ते प्रकथयिष्यामः शृणु त्वं द्विजसत्तम ॥१८॥
प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम् ।
जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ।
प्रलये चान्तकर्त्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् ॥१९॥

पक्षी बोले—

हे मुनिश्रेष्ठ जैमिनि ! तुमने हमारे ऊपर प्रश्न का अतुल भार डाल दिया है, जो कुछ तुमने पूछा है उसको कहते हैं सुनो ॥ १५ ॥ जिस प्रकार कि पहिले मार्कण्डेयजी ने क्रौष्टुकी से कहा था जो कि ब्राह्मण के पुत्र, शांत और व्रती थे ॥१६॥ एक बार बहुत से श्रेष्ठ ब्राह्मण महात्मा मार्कण्डेय के पास पहुँचे और वहाँ पर क्रौष्टुकि ने वही पूछा जो आपने हमसे पूछा है ॥ १७ ॥ उनसे जो कुछ प्रेम पूर्वक महामुनि मार्कण्डेयजी ने कहा वही हम हे विप्रवर ! आपसे कहते हैं, सुनिये ॥ १८ ॥ कमलयोनि ब्रह्माजी जो जगत की उत्पत्ति करते हैं और विष्णु जो सृष्टि का पालन करते हैं तथा रुद्र जो प्रलय काल में सृष्टि का अन्त करते हैं । इन तीनों स्वरूपी जगत के स्वामी ईश्वरको प्रणाम करके॥१९॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पुराणमेतद्वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिःसृताः ॥२०॥
पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुला: परमर्षयः ।
वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः ॥२१॥
धर्म्मज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यञ्च महात्मनः ।
तस्योपदेशेन विना न हि सिद्धं चतुष्टयम् ॥२२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

अव्यक्त जन्म ब्रह्माजी के उत्पन्न होते ही यह पुराण और वेद उनके मुखसे निकले ॥२०॥ ऋषियों ने पुराण की बहुतसी संहितायें बनाईं और वेदोंके भी सहस्रों विभाग किये ॥२१॥ हे महात्मन् ! धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य ये चारों इसके उपदेश के बिना सिद्ध नहीं होते हैं ॥२२॥ ब्रह्मा के मानसी

वेदान् सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्य मानसाः ।
पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्य मानसाः ॥२३॥
भृगोः सकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तञ्च द्विजन्मनाम् ।
ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥२४॥
दक्षेण चापि कथितमिदमासीत् तदा मम ।
तत् तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥२५
सर्व्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना ।
यथाश्रुतं मया पूर्व्वं दक्षस्य गदतो मुने ॥२६॥
प्रणिपत्य जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् ।
चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् ॥२७॥
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्ति-स्थिति-संयमे ।
यत्कारणमनौपम्यं यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ॥२८॥
तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते ।
प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामि भूतवर्गमनुत्तमम् ॥२९॥
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
प्रमाणैः पंचभिर्गम्यं स्रोतोभिः सद्भिरन्वितम् ॥३०॥
पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम् ।
तच्छ्रूयतां महाभाग परमेण समाधिना ॥३१॥
प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महर्षयः ।
यदाहुः प्रकृतिं सूक्ष्मां नित्यां सदसदात्मिकाम्॥३२॥
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसंश्रयम् ।
गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्ज्जितम् ॥३३॥
अनाद्यन्तं जगद्योनिं त्रिगुणप्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥३४॥
प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषतः ।
गुणसाम्यात् ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने॥३५॥
गुणभावात् सृज्यमानात् सर्गकाले ततः पुनः ।
प्रधानं तत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत् समावृणोत् ॥३६॥
यथा वीजं त्वचा तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधोदितः ॥३७॥
ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधो वै व्यजायत ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्च स तामसः ॥३८॥
महता चावृतः सोऽपि यथाव्यक्तेन वै महान् ।
भूतादिस्तु विकुर्व्वाणःशब्द तन्मात्रकं ततः ॥३९॥

पुत्र सप्त ऋषियों ने वेदोंको ग्रहण किया और उन के मानस से जो भृगु आदि मुनि पैदा हुए उन्होंने पुराणों को ग्रहण किया ॥ २३ ॥ भृगु मुनि ने इस पुराण को च्यवन ऋषि से कहा और च्यवन ने ऋषियों से। उन महात्मा ऋषियों ने इसे दक्ष से कहा ॥ २४ ॥ फिर दक्षने इसको मुझसे कहा और मैं इस कलियुग के पापनाशक पुराण को आपसे कहता हूँ ॥२५॥ हे महाभाग ! जो कुछ मैंने पहिले दक्ष से सुना था वह अब आप मुझसे ध्यानपूर्वक सुनिये ॥ २६ ॥ जगत की उत्पत्ति के कारण,अजन्म अव्यय तथा चराचर जगत को निर्माण करने वाले परम पद को प्रणाम करके ॥ २७॥ ब्रह्मादि पुरुषको जो उत्पत्ति, स्थिति और नाश का कारण है और स्वयंभू है और जिसमें सब स्थित हैं ॥ २८ ॥ उस हिरण्यगर्भ बुद्धिमान को प्रणाम करके उत्तम भूत-वर्ग का वर्णन करता हूँ ॥२९॥ जिसका आदि और अन्त महान है और जो विशेष रूप और लक्षणों से युक्त हैं, जो पांच प्रमाणों से जाना जाताहै तथा जो समीचीन तरङ्ग से परिपूर्ण है ॥ ३०॥ जो पुरुषों से अधिष्ठित और नित्य है तथा जो अनित्य की तरह स्थित है उसको हे महाभाग ! अत्यन्त ध्यान पूर्वक सुनो ॥३१॥ उस अव्यक्त को महर्षि प्रधान कारण कहते हैं, और सत् असत् मय नित्या और सूक्ष्मा प्रकृतिभी वहीहै ॥३२॥ और वह ध्रुव, अक्षय और अजर है तथा वह अप्रमेय और किसी के आश्रित नहीं है। वह गन्ध, रूप और रस से हीन है तथा निःशब्द और स्पर्श से रहित है ॥३३॥ वह आदि अन्त से रहित है, जगत का कारणहै, तीनों गुणों की उत्पत्ति और नाश करने वाला है तथा असाम्प्रत और अविज्ञेय वह ब्रह्म पहिले वर्तमान रहता है ॥ ३४ ॥ प्रलय होने पर वह निःशेष रूपसे सब में व्याप्त रहताहै और क्षेत्रज्ञाधिष्ठित गुणों के साथ वही ब्रह्म ॥३५॥ गुण भाव से उत्पन्न होकर सृष्टिकाल में प्रधान तत्व को उत्पन्न करता है और उसे घेर लेता है ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार बीज त्वचा से घिरा हुआ होता है उसी प्रकार वह महान् अव्यक्तसे घिरा हुआहै तथा वह सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार काहै ॥३७॥ फिर उससे अहङ्कार तीन प्रकार का उत्पन्न होता है, वैकारिक तैजस और तामस इन्हीं तीनों से भूतादि हैं ॥३८॥ वह अहङ्कार भी महान् से आवृत है जिस प्रकार कि महान् अव्यक्त से घिरा हुआ है और जब भूतादि विकारग्रस्त होतेहैं तो शब्द तन्मात्रा उत्पन्न

ससर्ज्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् ततः ॥४०॥
स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र संशयः ।
बलवान् जायते वायुस्तस्य स्पर्शगुणो मतः ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥४१॥
वायुश्चापि विकुर्व्वाणो रूपमात्रं ससर्ज्ज ह ।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥४२॥
स्पर्शमात्रस्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् ।
ज्योतिश्चापि विकुर्व्वाणं रसमात्रं ससर्ज्ज ह ॥४३॥
सम्भवन्ति ततो ह्यापश्चासन् वै ता रसात्मिकाः ।
रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्रं समावृणोत् ॥४४॥
आपश्चापि विकुर्व्वत्यो गन्धमात्रं ससज्जिरे ।
सङ्घातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मतः॥४५॥
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्च ते ॥४६॥
न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषतः ।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात् तु तामसात् ॥४७॥
वैकारिकादहङ्कारात् सत्त्वोद्रिक्तात् तु सात्त्विकात् ।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत् सम्प्रवर्त्तते ॥४८॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पंच कर्म्मेन्द्रियाणि च ।
तेजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥४९॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी ।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ॥५०॥
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाक् पंचमी भवेत् ।
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यंच कर्म्म तत्॥५१॥
आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समाविशत् ।
त्रिगुणो जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥५२॥
रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।
द्विगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥५३॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपंच रसमात्रं समाविशत् ।
तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः॥५४॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपंच रसो गन्धं समाविशत ।
संहता गन्धमात्रेण आवृण्वंस्ते महीमिमाम् ॥५५॥

होती है ॥ ३९ ॥ शब्द तन्मात्रा से आकाश शब्द लक्षण उत्पन्न होता है और आकाश शब्द मात्राको भूतादि आवृत कर लेते हैं ॥ ४० ॥ उस आकाश शब्द मात्रा से स्पर्श तन्मात्रा उत्पन्न होती है इसमें सन्देह नहीं और उसी स्पर्श से बलवान् वायु उत्पन्न होती है जिसका गुण स्पर्श है ॥ ४१ ॥ जब वायु विकार को प्राप्त होती है तब रूप मात्रा पैदा होती है, वायु से ज्योति उत्पन्न होती है जिसका गुण रूप है ॥४२॥ स्पर्श मात्रा जो वायु है वह रूप मात्रा को घेरे हुए है और ज्योति के विकार को प्राप्त होने पर रस मात्रा की सृष्टि होती है ॥ ४३ ॥ रस मात्रा से रसात्मक जो फल है वह उत्पन्नहोता है और रसमात्रा जो जल है उस पर रूप मात्रा का आवरण है ॥ ४४ ॥ विकार को प्राप्त होने पर जल गन्ध मात्रा को उत्पन्न करता है और जब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तब गन्ध उसका गुण हो जाता है ॥४५॥ तन्मात्राका अर्थ सर्वमयी है अर्थात् प्रत्येक सर्वमय पदार्थ की तन्मात्रा कही । तन्मात्रा विशेष वाची नहीं है इस कारण उसको अविशेष कहते हैं ॥४६॥ अविशेष होने के कारण तन्मात्रा न शान्त हैं, न घोर हैं और न मूढ़ हैं । उनको भूत-तन्मात्रसर्ग भी कहते हैं और ये तामस अहङ्कार से उत्पन्न होते हैं ॥ ४७ ॥ सात्विक अहङ्कारके विकार को प्राप्त होने पर वैकारिक सर्ग उत्पन्न होते हैं ॥ पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों को देवता लोग तैजस इन्द्रियां भी कहते हैं तथा इन्हीं दशों को वैकारिक भी कहा है और ग्यारहवें मनको भी देवताओं ने वैकारिक कहा है ॥४९॥ कर्ण, त्वचा नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पाँचों शब्दादिकों का ज्ञान प्राप्त कराने के कारण ज्ञानेन्द्रियां कहाती हैं ॥ पांव, गुदा, लिंग,हाथ और वाणी ये पांचों क्रमशः चलने, मल त्यागने, आनन्द प्राप्त करने, कार्यकरने और बोलने के कर्मों को करनेके कारण कर्मेन्द्रियां हैं ॥ ५१ ॥ आकाश शब्दमात्रा में स्पर्श मात्रा के प्रविष्ट होनेपर उसमेंसे द्विगुणित वायु उत्पन्न होती है जिसका गुण स्पर्श है ॥५२॥ शब्द और स्पर्श इन दोनों गुणों में रूप के समावेश होने पर दुगनी अग्नि उत्पन्न होती है जो कि शब्द, स्पर्श और रूप युक्त है ॥ ५३ ॥ जब शब्द, स्पर्श और रूप रस में प्रवेश करते हैं तो रसात्मक जो जल है वह इन चारों गुणों से युक्त होकर उत्पन्न होता है ॥ ५४ ॥ जब शब्द, स्पर्श, रूप और रस गन्धमें प्रवेश करते हैं तो गन्ध सहित ये पाँचों इस पृथ्वी को आवृ

तस्मात् पंचगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु दृश्यते।
शान्ता घोराश्च मूढ़ाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ॥५६॥
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम्।
भूमेरन्तस्त्विमं सर्व्वं लोकालोकं घनावृतम् ॥५७॥
विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः।
गुणं पूर्व्वस्य पूर्व्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ॥५८॥
नानावीर्य्याः पृथग्भूताः सप्तैते संहतिं विना।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥५९॥
समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्च ते।
एकसङ्घातचिह्नाश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥६०॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥६१॥
जलबुद्बुदवत् तत्र क्रमाद्वै वृद्धिमागतम्।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत् तदुदकेशयम् ॥६२॥
प्राकृतेऽण्डे विवृद्धः सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः।
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥६३॥
आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत।
तेन सर्व्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥६४॥
मेरुस्तस्यानुसम्भूतो जरायुश्चापि पर्व्वताः।
समुद्रा गर्भसलिलं तस्याण्डस्य महात्मनः ॥६५॥
तस्मिन्नण्डे जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम्।
द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ॥६६॥
जलानिलानलाकाशैस्ततो भूतादिना वहिः।
वृतमण्डं दशगुणैरेकैकत्वेन तैः पुनः ॥६७॥
महता तत्प्रमाणेन सहैवानेन वेष्टितः।
महांस्तैः सहितः सर्व्वैरव्यक्तेन समावृतः ॥६८॥
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्।
अन्योन्यमावृत्यतया अष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ॥६९॥
एषा सा प्रकृतिर्नित्या तदन्तः पुरुषश्च सः।
ब्रह्माख्यः कथितो यस्ते समासाच्छ्रूयतां पुनः॥७०॥
यथा मग्नो जले कश्चिदुन्मज्जन् जलसम्भवम्।
जलंच क्षिपति ब्रह्मा स तथाप्रकृतिर्विभुः ॥७१॥
अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते।

कर लेते हैं ॥५५॥ इसी कारण ये पृथ्वी पाँच गुणों से युक्त सब भूतों में स्थूल दिखाई देती है। ये पाँचों गुण शान्त, घोर, मूढ़ और विशेष कहलाते हैं ॥ ५६ ॥ एक दूसरे में प्रवेश करने के कारण ये एक दूसरे को धारण करते हैं और पृथ्वी के बीच में जो मेघों से आच्छादित लोकालोक हैं उनको प्राप्त करते हैं ॥ ५७ ॥ ये निश्चित होने के कारण विशेष और इन्द्रियों से ग्राह्य हैं और आपस में एक से दूसरा गुण क्रम पूर्वक ग्रहण करता है॥५८॥ ये गुण बड़े बलवान् हैं तथा अलग-अलग रहकर ये प्रजा उत्पन्न करने को समर्थ नहीं हैं ॥ ५९ ॥ इन का एक दूसरे से संयोग है और ये एक दूसरे के आश्रित हैं तथा ये सब मिलकर अशेष एक हो जाते हैं ॥ ६०॥ अव्यक्त के अनुग्रह से पुरुषमें प्रवेश कर महदादि विशेष अण्डको उत्पन्न करते हैं॥६१॥ जल के बुलबुले की तरह वह अंडा वृद्धि को प्राप्त होता है। हे महाबुद्धे! वह अण्ड उत्पन्न होकर जल में शयन करता है ॥ ६२॥ उसी प्राकृत अण्ड में ब्रह्मा नाम क्षेत्रज्ञ बढ़ते हैं, वही ब्रह्माशरीरी और प्रथम पुरुष हैं ॥ ६३ ॥ वही आदि कर्ता तथा सब भूतों के पहिले वही ब्रह्माजी विराजमान रहते हैं और उन्हींसे यह त्रैलोक्य सचराचर व्याप्त है॥६४॥ मेरु आदि पर्वत भी उसी से उत्पन्न हुए हैं तथा उस महान् अण्डे के भीतर का जो जल है वही समुद्र है ॥ ६५ ॥ उसी अण्डेमें देवता, असुर और मनुष्यों से पूर्ण जगत है और द्वीप, पर्वत, समुद्र और ज्योति सहित लोकों का संग्रह भी उसीमें है ॥६६॥ जल, वायु,अग्नि, आकाश तथा भूतादि बाहर से दश-दश गुण एक-एक होकर उस अण्डेको घेर लेते हैं ॥ ६७ ॥ वे गुण महत्तत्व के साथ पुरुष को घेर लेते हैं तथा उन गुणों सहित महान् अव्यक्तसे आवृत होजाताहै ॥६८॥ इन सातों प्राकृत आवरणों से वह अण्डा घिरा हुआ है और एक दूसरे से आवृत होने के कारण आठों प्रकृतियां भी इसमें स्थित हैं ॥ ६९॥ यह प्रकृति नित्य है और उसके भीतर पुरुष विराजमान है जिसको ब्रह्म कहते हैं और उसका विस्तार पूर्वक हाल सुनिये ॥ ७० ॥ जिस प्रकार कोई व्यक्ति जल में डूब कर फिर उस में से निकले और जल को फेंके उसी प्रकार ब्रह्मा प्रकृति से उत्पन्न होते हैं ॥ ७१ ॥ अव्यक्त को क्षेत्र और ब्रह्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। ये सब क्षेत्र और

एतत् समस्तं जानीयात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् ॥७२॥
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः।
अबुद्धिपूर्व्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्वयथा ॥७३॥

क्षेत्रज्ञ के लक्षण हैं ॥ ७२ ॥ इसी को क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्राकृत सर्ग कहते हैं, इसका आदि बुद्धि से नहीं होता और यह पहिले बिजली के समान उत्पन्न होता है ॥ ७३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में ब्रह्मोत्पत्ति नाम ४५वां अ० समाप्त।

छियालीसवां अध्याय

कौष्टुकिरुवाच

भगवंस्त्वण्डसम्भूतिर्यथावत् कथिता मम।
ब्रह्माण्डे ब्रह्मणो जन्म तथा चोक्तं महात्मनः॥ १ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तो भृगुकुलोद्भव।
यदा न सृष्टिभूतानामस्ति किं नु न चास्ति वा।
काले वै प्रलयस्यान्ते सर्व्वस्मिन्नुपसंहृते ॥ २ ॥

कौष्टुकिजी बोले—

हे भगवन्! आपने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और ब्रह्माजी के जन्म का मुझसे यथावत् वर्णन किया ॥ १ ॥ हे भृगुकुल में उत्पन्न मार्कण्डेयजी! अब आपसे यह सुननेकी इच्छा करताहूँ कि प्रलयकाल के अन्त में जब कि सबका उपसंहार हो जाता है जीवों की सृष्टि रहती है या नहीं ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत्।
तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसञ्चरः ॥ ३ ॥
आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव साधर्म्येणावतिष्ठतः ॥ ४ ॥
तदा तमश्च सत्त्वञ्च समत्वेन गुणौ स्थितौ।
अनुद्रिक्तावनूनौ च तत्प्रोतौ च परस्परम् ॥ ५ ॥
तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम्।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुसृतं स्थितम् ॥ ६ ॥
उत्पत्तिब्रह्मणो यावदायुषो द्विपरार्द्धिकम्।
तावद्दिनं परेशस्य तत्समा संयमे निशा ॥ ७ ॥
अहर्म्मुखे प्रबुद्धस्तु जगदादिरनादिमान्।
सर्व्वहेतुरचिन्त्यात्मा परः कोऽप्यपरक्रियः ॥ ८ ॥
प्रकृतिं पुरुषञ्चैव प्रविश्याशु जगत्पतिः।
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥ ९ ॥
यथा मदो नवस्त्रीणां यथा वा माधवानिलः।
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्तिमान् ॥१०॥
प्रधाने क्षोभ्यमाणे तु स देवो ब्रह्मसंज्ञितः।
समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थो यथा ते कथितं मया ॥११॥
स एव क्षोभकः पूर्व्वं स क्षोभ्यः प्रकृतेः पतिः।

मार्कण्डेयजी बोले—

जब यह सृष्टि प्रकृति में लीन हो जाती हैं तो इस प्राकृत को विद्वान् लोग प्रतिसञ्चर कहते हैं ॥३॥ जब अव्यक्त पुरुष विकार को छोड़ कर अपने में स्थित हो जाता है तब प्रकृति और पुरुष अपने २ धर्मानुसार स्थित हो जाते हैं ॥ ४॥ फिर तमोगुण और सतोगुण मिलकर एक होजाते हैं तथा एक दूसरे से न कम रहते हैं और न अलग रहते हैं॥५॥ जिस प्रकार तिलों में तेल और दूध में घी रहता है उसी प्रकार सतोगुण और तमोगुण में रजोगुण मिला हुआ रहता है ॥६॥ ब्रह्मा की उत्पत्ति से जब तक उनकी आयु होती है उसको द्विपरार्द्ध कहते हैं वह परब्रह्म का एक दिन होता है और उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है ॥ ७ ॥ वह जगत के आदि और अनादिमान, सबके कारण, अचिंत्यात्मा और परक्रिया हैं वह ब्रह्म प्रातःकाल में जाग कर ॥८॥ वे जगत के स्वामी जल्द प्रकृति और पुरुष में प्रवेश कर जाते हैं तथा परम योग से उनको क्षोभित करते हैं ॥९॥ जिस प्रकार वसन्त ऋतु का पवन और मद नई स्त्रियों को क्षोभित करता है उसी तरह वह योगयुक्त ब्रह्म प्रकृति और पुरुषको क्षोभित करता है ॥ १० ॥ प्रधान पुरुष के क्षोभित होने पर वह देव जिनको ब्रह्म कहते हैं अण्डकोश में स्थित हो उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार कि मैंने पहिले तुमसे कहा था ॥११॥ वही प्रकृति के स्वामी पुरुष जो पहिले क्षोभयुक्तथे अब क्षोभरहित होकर

स सङ्कोच-विकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः १२॥
उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम् ।
भुञ्जन् प्रवर्त्तते सर्गे ब्रह्मत्वं समुपाश्रितः ॥१३॥
ब्रह्मत्वे स प्रजाः सृष्ट्वा ततः सत्त्वातिरेकवान् ।
विष्णुत्वमेत्य धर्म्मेण कुरुते परिपालनम् ॥१४॥
ततस्तमोगुणोद्रिक्तो रुद्रत्वे चाखिलं जगत् ।
उपसंहृत्य वै शेते त्रैकाल्ये त्रिगुणोऽगुणः ॥१५॥
यथा प्रागव्यापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा ।
तथा स संज्ञामायाति ब्रह्मविष्ण्वीशकारिणीम् ॥१६॥
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रुद्रत्वे संहरत्यपि ।
विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः १७
रजो ब्रह्मा तमो रुद्रो विष्णुः सत्त्वं जगत्पतिः ।
एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः ॥१८॥
अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्याश्रयिणस्तथा ।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ॥१९॥
एव ब्रह्मा जगत्पूर्वो देवदेवश्चतुर्मुखः ।
रजोगुणं समाश्रित्य स्रष्टृत्वे स व्यवस्थितः ॥२०॥
हिरण्यगर्भो देवादिरनादिरुपचारतः ।
भूपद्मकर्णिकासंस्थो ब्रह्माग्रे समजायत ॥२१॥
तस्य वर्षशतं त्वेकं परमायुर्महात्मनः ।
ब्राह्मेणैव हि मानेन तस्य संख्यां निबोध मे ॥२२॥
निमेषैर्दशभिः काष्ठा तथा पंचभिरुच्यते ।
कलास्त्रिंशच्च वै काष्ठा मुहूर्त्तं त्रिंशतिः कलाः ॥२३॥
अहोरात्रं मुहूर्त्तानां नृणां त्रिंशत् तु वै स्मृतम् ।
अहोरात्रैश्च त्रिंशद्भिः पक्षौ द्वौ मास उच्यते ॥२४॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ।
तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम् ॥२५॥
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं शृणुष्व मे ॥२६॥
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कृतमुच्यते ।
शतानि सन्ध्या चत्वारि सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२७॥
त्रेता त्रीणि सहस्राणि दिव्याब्दानां शतत्रयम् ।
तत्सन्ध्या तत्समा चैव सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२८॥

सङ्कोच और विकाशसे प्रधानत्वमें स्थित रहते हैं॥ वे ही अगुण और अज होते हुए जगत् को उत्पन्न करते हैं और रजोगुण का भोग करते हुए और उत्पन्न करने में प्रवृत्त होने के कारण ब्रह्मा कहलाते हैं ॥ १३ ॥ वे ब्रह्मा होकर प्रजा की सृष्टि करते हैं और सतोगुण युक्त विष्णु होकर वे धर्म पूर्वक सृष्टि का पालन करते हैं ॥१४॥ तथा फिर तमोगुण से युक्त रुद्र रूप होकर सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करके शयन करते हैं, इस प्रकार तीनों काल में तीनों गुण कहे ॥ १५ ॥ जिस प्रकार किसान पहिले बोता है, फिर रक्षा करता है तथा फिर काटता है उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप पुरुषको जानना चाहिये ॥१६॥ ब्रह्मा होकर लोकों की सृष्टि करते हैं और रुद्र होकर उनका संहार करते हैं तथा विष्णु होकर उनका पालन करते हैं, यही तीन प्रकार की अवस्था स्वयम्भू की है ॥१७॥ रजोगुण ब्रह्मा, तमोगुण रुद्र और सतोगुण विष्णुहैं । इन्हीं तीनों गुणों के ये तीन देवता हैं ॥१८॥ ये तीनों गुण एक दूसरे से मिले रहते तथा एक दूसरे के आश्रितहैं, इनका एक क्षणभी वियोग नहींहोता और न ये एक दूसरे को छोड़ते हैं ॥१९॥ इस प्रकार जगत् के आदिकर्ता देवदेव, चतुर्मुख ब्रह्माहैं जो रजोगुण में प्राप्त होकर सृष्टि की रचना करते हैं ॥ २० ॥ वे ही हिरण्यगर्भ देव उपचार से सबके आदि और अनादि हैं और उन्हीं की नाभि से पहिले कमलकोश में ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं ॥२१॥ उन महात्मा की परम आयु सौ वर्ष की है उस वर्ष का प्रमाण ब्रह्म मान करके कहता हूं सुनिये ॥२२॥ दस या पाँच निमेषकी एक काष्ठा होतीहै, तीस काष्ठाकी एक कला और तीस कला का एक मुहूर्त होता है ॥ २३॥ तीस मुहूर्तका एक दिन रात मनुष्यों का होता है और तीस दिन रात अर्थात् पन्द्रह दिनका एक पक्ष और दो पक्ष का एक महीना होता है ॥ २४ ॥ छः महीने का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है जो दक्षिणायण और उत्तरायण दो अयन हैं वे ही देवताओं के क्रमशः एक रात और दिन हैं ॥ २५ ॥ अब देवताओं के बारह हज़ार वर्ष के चतुर्युग के सतयुग त्रेतादि विभागोंको सुनिये ॥२६॥ देवताओं के वर्ष के प्रमाण से चार हज़ार वर्षों का सतयुग होता है इसमें चारसौ वर्ष संध्या और इतना ही संध्यांश होता है ॥ २७॥ तीन हज़ार दिव्य वर्षोंका त्रेता होता है तथा इसकी तीनसौ वर्ष संध्या और इतना ही सन्ध्यांश है ॥ २८ ॥

द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां द्वे शते तथा।
तस्य सन्ध्या समाख्याता द्वे शताब्दे तदंशकः ।२६॥
कलिः सहस्रं दिव्यानामब्दानां द्विजसत्तम।
सन्ध्या सन्ध्यांशकश्चैव शतकौ समुदाहृतौ ॥३०॥
एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या कविभिः कृता।
एतत् सहस्रगुणितमहर्ब्राह्मयमुदाहृतम् ॥३१॥
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवः स्युश्चतुर्दश।
भवन्ति भागशस्तेषां सहस्रं तद्विभज्यते ॥३२॥
देवाः सप्तर्षयः सेन्द्रा मनुस्तत्सूनवो नृपाः।
मनुना सह सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्व्ववत् ॥३३॥
चतुर्युगाणां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः।
मन्वन्तरं तस्य संख्यां मानुषाब्दैर्निबोध मे ॥३४॥
त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ॥३५
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकं विना।
एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं दिव्यैर्वर्षैर्निबोध मे ॥३६॥
अष्टौ वर्ष सहस्राणि दिव्यया संख्यया युतम्।
द्विपञ्चाशत् तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु॥३७॥
चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्मयमहः स्मृतम्।
तस्यान्ते प्रलयः प्रोक्तो ब्रह्मन् नैमित्तिको बुधैः॥३८॥
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च विनाशिनः।
तथा विनाशमायाति महर्लोकश्च तिष्ठति ॥३९॥
तद्वासिनोऽपि तापेन जनलोकं प्रयान्ति वै।
एकार्णवे च त्रैलोक्ये ब्रह्मा स्वपिति वै निशि॥४०॥
तत्प्रमाणैव सा रात्रिस्तदन्ते सृज्यते पुनः।
एवन्तु ब्रह्मणो वर्षमेकं वर्षशतन्तु तत् ॥४१॥
शतं हि तस्य वर्षाणां परमित्यभिधीयते।
पञ्चाशद्भिस्तथा वर्षैः परार्द्धमिति कीर्त्यते ॥४२॥
एवमस्य परार्द्धन्तु व्यतीतं द्विजसत्तम।
यस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः॥४३॥
द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वै द्विज।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ॥४४॥

द्वापर दो हज़ार दिव्य वर्षों का होता है और इसमें दोसौ वर्ष सन्ध्या और दोसौ वर्ष सन्ध्यांश व्यतीत होता है॥ २९ ॥ हे कौष्टुकिजी! कलियुग का प्रमाण एकहज़ार दिव्यवर्ष है तथा इसमें भी सौ वर्ष सन्ध्या और सौ वर्ष सन्ध्यांश होता है॥ इन्हीं युगों को कवियों ने बारह वर्षीय कहा है,यह बारह हज़ार वर्षों का चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं उनका विभाग भी हज़ार से किया जाता है ॥३२॥ इन्द्र सहित सब देवता, सप्तर्षि,मनु और उनके पुत्र राजा लोग मनुके साथ उत्पन्न होते हैं तथा उसी प्रकार नाश को प्राप्त होजाते हैं ॥३३॥ इकहत्तर चतुर्युग का एक मन्वन्तर होताहै,मनुष्यों के वर्षसे उसका प्रमाण मुझसे सुनो ॥३४॥ हे द्विजसत्तम! तीनकरोड़ सड़सठ लाख बीस हज़ार वर्ष का एक मन्वन्तर मनुष्योंके वर्ष के हिसाबसे होता है, अब देवताओं के वर्ष के हिसाब से सुनो ॥३५, ॥ ३६ ॥ आठ और बावन अर्थात् साठ हज़ार देवताओं के वर्षों का एक मन्वन्तर होता है ॥३७॥ इस को चौदह से गुणा करने पर जो समय आता है उसको ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं। हे कौष्टुकिं! इस दिनके अन्तको पण्डित लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ॥३८॥ इस दिन के अन्त में भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक नष्ट होजातेहैं तथा इसी तरह महर्लोक भी नाश को प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इसके निवासी ताप के कारण जनलोक को भाग जाते हैं और तीनों लोकों में प्रलय होने पर ब्रह्मा रात को सो जाते हैं ॥ ४० ॥ जितना दिनहै उसी प्रमाणकी ब्रह्मा की रात्रि है। रात्रि के अन्त होने पर ब्रह्माजी पुनः सृष्टि की रचना करते हैं। इस प्रकार दिन रात्रि के ३६० दिन का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है और ऐसे सौ वर्षों की आयु ब्रह्मा की है ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा के इन सौ वर्षों को परम कहते हैं और इनके आधे पचास वर्षों को परार्द्ध कहते हैं ॥ ४२ ॥ हे विप्रवर! इस पहिले परार्द्ध के अन्त होने पर इस को पद्म नाम महाकल्प कहते हैं ॥४३॥ द्वितीय परार्द्ध को जो वर्तमान है वाराह कल्प कहते हैं, इसकी कल्पना पहिले ही करली गई है ॥४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में ब्रह्मायु प्रमाण नाम ४६वाँ अध्याय समाप्त।

सैंतालीसवाँ अध्याय

कौष्टुकिरुवाच

यथा ससर्ज्ज वै ब्रह्मा भगवानादिकृत् प्रजाः ।

प्रजापतिपतिर्देवस्तन्मे विस्तरतो वद ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयाम्येष ते ब्रह्मन् ससर्ज्ज भगवान् यथा ।

लोककृच्छाश्वतः कृत्स्नं जगत् स्थावर-जङ्गमम् ॥२॥

पद्मावसाने प्रलये निशासुप्तोत्थितः प्रभुः ।

सत्त्वोद्रिक्तस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥ ३ ॥

इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।

ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ४ ॥

आपो नारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुम ।

तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥ ५ ॥

विबुद्धः सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।

अनुमानात् समुद्धारं कर्त्तुकामस्तदा क्षितेः ॥ ६ ॥

अकरोत् स तनूरन्याः कल्पादिषु यथा पुरा ।

मत्स्यकूर्म्मादिकास्तद्वद्वाराहं वपुरास्थितः ॥ ७ ॥

वेदयज्ञमयं दिव्यं वेदयज्ञमयो विभुः ।

रूपं कृत्वा विवेशाप्सु सर्व्वगः सर्व्वसम्भवः ॥ ८ ॥

समुद्धृत्य च पातालान्मुमोच सलिले भुवम् ।

जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानो जगत्पतिः ॥ ६ ॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।

विततत्वात् तु देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥ १० ॥

ततः क्षितिं समीकृत्य पृथिव्यां सोऽसृजद्गिरीन् ।

प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्त्तकाग्निना ।

तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्व्वता भुवि सर्व्वशः ॥ ११ ॥

ला एकार्णवे मग्ना वायुनापस्तु संहताः ।

निपक्ता यत्र यत्रासंस्तत्र तत्राचलाऽभवन् ॥ १२ ॥

भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपोपशोभितम् ।

भूराद्यांश्चतुरो लोकान् पूर्व्ववत् समकल्पयत् ॥ १३ ॥

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।

अबुद्धिपूर्व्वकस्तस्मात् प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ १४ ॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।

कौष्टुकिजी बोले—

जिस प्रकार भगवान् आदिकर्ता प्रजापति, देवताओं के पति ब्रह्मा ने प्रजाओं को रचा, वह मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे कौष्टुकिजी ! जिस प्रकार कि लोक-कर्ता, शाश्वत ब्रह्माजी ने स्थावर और जङ्गम संसार को सृजा वह मैं आपसे कहताहूँ ॥२॥ पद्मकल्पके अन्त में जो प्रलय हुई उसकी रात्रि की समाप्तिपर ब्रह्माजी सोकर उठे तो उन्होंने संसारको सूना देखा ॥ ३ ॥ तो ब्रह्माजी ने ब्रह्मस्वरूप, जगत् की उत्पत्ति के कारण, अव्यय, देव नारायण के प्रति ये स्तुति की ॥ ४ ॥ आप, नारा और तनु जल के नाम कहे गये हैं, जल में शयन करने के कारण आपका नाम नारायण प्रसिद्ध है ॥५॥ इसपर नारायण उठे और जल में पृथ्वी को डूबा हुआ समझ कर यह अनुमान किया कि ब्रह्माजी को उसके उद्धारकी इच्छा है ॥६॥ उन्होंने दूसरा शरीर धारणकिया और जिस तरह कि पहिले कल्पों में मत्स्य और कच्छप का शरीर धारण किया था अबकी बार वाराह रूप धारण किया ॥७॥ सब स्थानों में गति वाले और सबके कारणभूत तथा वेद यज्ञमय परमेश्वरने यज्ञ संयुक्त वेदों का उद्धार किया और फिर वाराहरूप से जल में प्रवेश कर गये ॥८॥ पाताल से पृथ्वी को लाकर जल के ऊपर रक्खा और उस समय जन लोक के रहने वाले सिद्धों ने जगत्पतिका चिंतवन किया ॥ ६ ॥ उस जल के ऊपर पृथ्वी को नौका के समान स्थित किया और कच्छप रूप धारण कर पृथ्वी को अपने ऊपर लिया जिससे वह डूब न सके ॥१०॥ फिर पृथ्वी को एकसा करके पृथ्वी पर पहाड़ों की रचना की, पहिले सर्गमें पहाड़ संवर्तक अग्नि से जलकर और खण्ड-खण्ड होकर पृथ्वी पर चारों तरफ़ फैल गये थे ॥११॥ और प्रलय होने पर वायु से पानी के साथ बह गये थे, उन पहाड़ों को जहाँ-जहाँ वे पहिले थे वहाँ-वहाँही रख दिया गया ॥१२॥ फिर सात द्वीपों में पृथ्वी को विभाजित किया और पहिले की तरह भूलोक आदि चारों लोकों की रचनाकी ॥१३॥ जिस तरह पहिले कल्पों में सृष्टि थी उसका चिंतवन किया और उसका ध्यान करते ही तमोमय ॥१४॥ तम, मोह, महामोह अन्ध तामिस्र और पहिलेके समान पाँच अविद्यायें

अविद्या पञ्चपूर्व्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥१५॥
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ।
वहिरन्तश्चाप्रकाशः संवृतात्मा नगात्मकः ॥१६॥
मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ।
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरं पुनः ॥१७॥
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्य्यक्स्रोतो ह्यवर्त्तत ।
यस्मात् तिर्य्यक्प्रवृत्तिः सा तिर्य्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ॥
पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः ।
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥१६॥
अहङ्कृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ।
अन्तःप्रकाशास्ते सर्व्वे आवृतास्तु परस्परम् ॥२०॥
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।
ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्द्ध्वमवर्त्तत ॥२१॥
ते सुखप्रीतिवहुला वहिरन्तस्त्वनावृताः ।
प्रकाशा वहिरन्तश्च ऊर्द्ध्वस्रोतः समुद्भवाः ॥२२॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गो हि स स्मृतः ।
तस्मिन् सर्गेऽभवत् प्रीतिनिष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥२३॥
ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ।
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ॥२४॥
प्रादुर्बभौ तदाव्यक्तादर्व्वाक्स्रोतस्तु साधकः ।
यस्मादर्व्वाग्व्यवर्त्तन्त ततोऽर्व्वाक्स्रोतसस्तु ते॥२५
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥२६॥
तस्मात् ते दुःखवहुला भूयोभूयश्च कारिणः ।
प्रकाशा वहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ॥२७॥
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गः स चतुर्द्धा व्यवस्थितः ।
विपर्य्ययेण सिद्ध्या च शान्त्या तुष्ट्या तथैव च॥२८॥
निर्वृत्तं वर्त्तमानञ्च तेऽर्थं जानन्ति वै पुनः ।
भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥२६॥
ते परिग्रहिणः सर्व्वे संविभागरतास्तथा ।
चोदनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ॥३०॥
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥३१॥
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकः स्मृतः ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्व्वकः ॥३२॥

उस परमेश्वर से उत्पन्न हुईं ॥ १५ ॥ और उन्होंने ध्यान से पाँच प्रकार के प्राकृतसर्ग उत्पन्न किये । जिसके वाहर और भीतर कुछ प्रकाश नहींहै,ऐसा पर्वतात्मक है ॥ १६ ॥ प्रथम सर्ग मुख्य कहलाताहै कारण-यह पर्वतों में मुख्य है । इसको असाधित हुआ देखकर दूसरे सर्ग का ॥१७॥ ब्रह्माजीने ध्यान किया और इससे तिर्य्यक् स्रोत सर्ग उत्पन्न हुआ तिर्य्यक् प्रवृत्ति के कारण उस सर्गका नाम तिर्यक् स्रोत सर्गहुआ ॥१८॥ इससे तमोगुणी, अज्ञानी पशु आदिक उत्पन्न हुए जो उल्टी राह पर चलने वाले अज्ञानी हैं परन्तु अपने को ज्ञानी समझते हैं ॥१६॥ वे अहङ्कारी और अभिमानी अट्ठाईस प्रकार के हैं, उनके भीतर प्रकाशहै परन्तु वे एक दूसरेसे आवृत हैं ॥२०॥ इस सर्गको भी असाधक जानकर ब्रह्माजी ने अन्य सर्ग का ध्यानकिया जिससे सतोगुणयुक्त ऊर्द्ध्व स्रोत सर्ग नाम तीसरा सर्ग उत्पन्न हुआ २१ ऊर्ध्व स्रोत से उत्पन्न होने वालों में सुख प्रेम वहुत था और वे वाहर भीतर से अनावृत थे तथा उनके वाहर और भीतर प्रकाश भी विद्यमान था ॥ २२ ॥ तुष्टात्मा होने के कारण यह सर्ग देवसर्ग भी कहलाता है, इस सर्ग से ब्रह्माजी वहुत प्रसन्न हुए ॥ फिर ब्रह्मा ने दूसरे उत्तम और साधक सर्ग का ध्यान किया और उन सत्यवादी ब्रह्मा के ध्यान करने से ॥२४॥ अव्यक्त अर्वाक् स्रोत साधक सर्ग उत्पन्न हुआ और चूंकि यह उत्तमसर्ग पीछे उत्पन्न हुआ इसलिये इसका नाम अर्वाक् स्रोत सर्ग पड़ा इनमें प्रकाश वहुत है तमोगुण युक्त हैं परन्तु रजोगुण अधिक है ॥ २६॥ वार-वार जन्म लेनेके कारण जिनको वहुत दुःख होता है और जो वाहर भीतर से प्रकाशमान् है ऐसी उत्पत्ति चौथे मनुष्य साधक सर्ग की हुई ॥२७॥ पाँचवाँ अनुग्रहसर्ग है,यह चार प्रकार का है-(१) विपर्यय, (२) सिद्धि, (३) शान्ति और (४) तुष्टि ॥ २८ ॥ जो निवृत्ति और प्रवृत्ति का अर्थ जानते हैं और जिनसे भूतादिकों की उत्पत्ति होती है वह छठा सर्ग है ॥ २६ ॥ जो इधर उधर घूमते रहते हैं और विभाग में रत हैं तथा जो प्रेरित और दुःशील है उनको भूतादिक कहते हैं॥३०॥महान् जो ब्रह्माहैं उनकी उत्पत्तिप्रथम सर्ग है और तन्मात्रा की उत्पत्ति दूसरा सर्ग है जो भूतसर्गभी कहलाताहै ॥३१॥ तीसरा सर्ग वैकारिक है जिससे इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई है यह प्राकृत सर्ग बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ है ॥ ३२ ॥ मुख्य सर्ग

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
तिर्य्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्य्यग्योन्यः स पंचमः ३३
ततोऽद्ध्वर्स्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥३४॥
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः॥३५॥
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ।
इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः ॥३६॥

चौथा है जिससे स्थावर पैदा हुए हैं और पाँचवाँ तिर्यक् स्रोत सर्ग है जिससे तिर्यक् योनि की उत्पत्ति हुई है ॥३३॥ और छठा ऊर्ध्व स्रोत सर्ग है जिससे देवताओं की उत्पत्ति होती है, इसके बाद अर्वाक् स्रोत सर्ग नाम सातवाँ सर्ग है जिससे मनुष्यों की उत्पत्ति होती है इसको मनुष्यसर्ग भी कहते हैं ॥ ३४ ॥ आठवां अनुग्रहसर्ग है जिसमें सात्विक और तामस दोनों हैं। इस प्रकार पाँच वैकृत और तीन प्राकृत ये आठ सर्ग हुए ॥ ३५ ॥ उपरोक्त प्राकृत और वैकृत आठ सर्ग हैं तथा नवाँ कौमार सर्ग है, इस प्रकार प्रजापति के कुल नौ सर्ग हैं ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें प्राकृत-वैकृत सर्ग नाम ४७वाँ अ० समाप्त ।

अड़तालीसवां अध्याय

कौष्टुकिरुवाच

समासात् कथिता सृष्टिः सम्यग्भगवता मम ।
देवादीनां भवं ब्रह्मन् विस्तरात् तु ब्रवीहि मे॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन् भाविता पूर्व्वकर्म्मभिः ।
ख्याता तया ह्यनिर्म्मुक्ताः प्रलये ह्युपसंहृताः॥ २ ॥
देवाद्याः स्थावरान्ताश्च प्रजा ब्रह्मंश्चतुर्व्विधाः।
ब्रह्मणः कुर्व्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तदा ॥ ३ ॥
ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥ ४ ॥
युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्व्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥ ५ ॥
उत्ससर्ज्ज ततस्तान्तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥ ६ ॥
अन्यां तनुमुपादाय सिसृक्षुः प्रीतिमाप सः ।
सत्त्वोद्रेकास्ततो देवा मुखतस्तस्य जज्ञिरे ॥ ७ ॥
उत्ससर्ज्ज च भूतेशस्तनुं तामप्यसौ विभुः ।
सा चापविद्धा दिवसं सत्त्वप्रायमजायत ॥ ८ ॥
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ।
पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥ ९ ॥
सृष्ट्वा पितॄनुत्ससर्ज्ज तनुं तामपि स प्रभुः ।

कौष्टुकिजी बोले—

हे भगवन् ! आपने सृष्टि को तो विस्तारपूर्वक मुझसे कहा । अब देवताओं की उत्पत्ति का हाल मुझे विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे ब्रह्मन् ! पूर्व जन्म में किये हुए शुभ कर्मों से बाद में कुशल ही होती है। शुभ कर्म करने वाले प्रलयकाल में नष्ट हो जाने पर पुनः जन्म लेने पर पुण्यवान् ही होते हैं ॥ २ ॥ हे विप्रवर ! सृष्टि को रचते समय ब्रह्मा ने अपने मानस से देवताओं से लेकर स्थावर पर्यंत चार प्रकार की सृष्टि रचनेकी इच्छा की ॥३॥ इसके अनन्तर देवता, असुर,पितर और मनुष्य, इन चार प्रकार की सृष्टि रचने की इच्छा से ब्रह्मा ने जल के साथ अपनी आत्मा को जोड़ दिया ॥४॥ युक्तात्मा होने पर ब्रह्मा की तमोमात्रा बलवती हुई और उनकी जंघाओं से असुरों की उत्पत्ति हुई ॥ ५ ॥ फिर ब्रह्मा ने उस तमोमात्रा युक्त शरीर को त्यागदिया जिससे वह शरीर फिर रात्रि होगया ॥ ६॥ फिर दूसरा शरीर धारण कर प्रीत संयुक्त सृष्टि रचने की इच्छा की तो सतोगुण के उद्रेक से ब्रह्मा के मुख से देवताओं की सृष्टि हुई ॥७॥ फिर ब्रह्माजी ने उस शरीर को भी छोड़ दिया तो वही शरीर सतोगुणयुक्त दिन होगया ॥ इसके बाद सत्त्वमात्रा युक्त दूसरा शरीर धारण किया और अपने को पितृवत् मानते हुए पितरोंकी सृष्टि की ॥९ ॥ पितरों की सृष्टि करके प्रभु ब्रह्माजी

सा चोत्सृष्टाभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता १०॥
रजोमात्रात्मिकामन्यां तनुं भेजेऽथ स प्रभुः।
ततो मनुष्याः सम्भूता रजोमात्रासमुद्भवाः ॥११॥
सृष्ट्वा मनुष्यान् स विभुरुत्ससर्ज्ज तनुं ततः।
ज्योत्स्ना समभवत् सा च नक्तान्तेऽहर्म्मुखे च या १२
इत्येतास्तनवस्तस्य देवदेवस्य धीमतः।
ख्याता राज्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च वै द्विज १३
ज्योत्स्ना सन्ध्या तथैवाहः सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम्।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात् त्रियामिका १४
तस्माद्देवा दिवा रात्रावसुरास्तु बलान्विताः।
ज्योत्स्नागमे च मनुजाः सन्ध्यायां पितरस्तथा १५॥
भवन्ति बलिनोऽधृष्या विपक्षाणां न संशयः।
तद्विपर्य्ययमासाद्य प्रयान्ति च विपर्य्ययम् ॥१६॥
ज्योत्स्ना राज्यहनी सन्ध्या चत्वार्य्येतानि वै प्रभोः।
ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपश्रितानि तु ॥१७॥
चत्वार्य्येतान्यथोत्पाद्य तनुमन्यां प्रजापतिः।
रजस्तमोमयीं रात्रौ जगृहे क्षुत्तृडन्वितः ॥१८॥
तदन्धकारे क्षुत्क्षामानसृजद्भगवानजः।
विरूपान् श्मश्रुलानत्तुमारब्धास्ते च तां तनुम्॥१९॥
रक्षाम इति तेभ्योऽन्ये य ऊचुस्ते तु राक्षसाः।
खादाम इति ये चोचुस्ते यक्षा यक्षणाद्द्विज ॥२०॥
तान् दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्य्यन्त वेधसः।
समारोहणहीनाश्च शिरसो ब्रह्मणस्तु ते।
सर्पणात् तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः॥२१॥
सर्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्म्ममे।
वर्णेन कपिलेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः ॥२२॥
ध्यायतो गां ततस्तस्य गन्धर्व्वा जज्ञिरे सुताः।
जज्ञिरे पिवतो वाचं गन्धर्व्वास्तेन ते स्मृताः॥२३॥
अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः ॥२४॥
ततः स्वदेहतोऽन्यानि वयांसि पशवोऽसृजत्।
मुखतोऽजाः ससर्ज्जाथ वक्षसश्चावयोऽसृजत्।
गावश्चैवोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्म्ममे २५॥

ने उस शरीर को भी छोड़ दिया जो दिन और रात्रि के बीचका काल जो संध्या है वह होगया॥ इसके अनन्तर प्रभु ब्रह्माजी ने रजोगुण पूर्ण दूसरा शरीर धारण किया जिससे रजोगुणयुक्त मनुष्य उत्पन्न हुए॥११॥ मनुष्यों को उत्पन्न कर ब्रह्माजी ने उस शरीर को भी छोड़ दिया और वह शरीर रात्रि के अन्त और दिन के आदि का ज्योत्स्ना काल होगया ॥१२॥ हे द्विजवर! रात्रि, दिन, संध्या और ज्योत्स्ना (प्रातःकाल) ये देवादिदेव ब्रह्माजी के ही शरीर कहलाते हैं॥ १३॥ ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिन ये तीनों सतोगुणयुक्तहैं तथा रात्रि तमोगुणी है इसीलिये ये त्रियामिका कहलाती है ॥१४॥ इस कारण दिन में देवता और रात्रि में असुर बलवान् होतेहैं तथा इसी प्रकार ज्योत्स्नामें मनुष्यों और सन्ध्या में पितरों को समझना चाहिये ॥१५॥ अपने-अपने समयमें ये बली होतेहैं और निःसंदेह शत्रुओं से पराजित नहीं होतेहैं, इससे उल्टाचलने पर विपरीत फल होता है॥ १६॥ ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या ये चारों तीनों गुणोंसे युक्त प्रभु ब्रह्माजी के शरीर हैं॥ १७॥ इन चारों को उत्पन्न करने के पश्चात् ब्रह्मा ने रजोगुण और तमोगुण से युक्त रात्रि में भूख और प्यास से पीड़ित दूसरा शरीर धारणकिया ॥१८॥ उस अन्धकारमें भगवान् अजन्मा ब्रह्माजी ने बड़ी भयानक दाढ़ी, मूँछवाली क्षुधा की उत्पत्ति की जो कि उससमय ब्रह्माजी को खाने कोउद्यत हुई॥ १९॥ जिन लोगों ने यह कहा कि रक्षा करो ब्रह्मा को मत खाओ वे राक्षस कहलाये और जो यह कहकर चिल्लाये कि ब्रह्मा को खाजाओ वह यक्षगण हुए॥ २०॥ फिर ब्रह्माने उसको अप्रिय भाव से देखा तो उनके बाल झड़ गये और फिर उनके शिरपर बाल नहीं आये। पृथ्वी पर गिरते ही वे बाल सर्प होगये तथा हीन उत्पत्ति के कारण वे अहि भी कहलाते हैं॥ २१॥ उन सर्पों को देखकर ब्रह्माजीको क्रोध हुआ और उनके क्रोध से उग्रभूत, कपिलवर्ण, विशेष मांसाहारी लोग पैदा हुए॥२२॥ फिर ब्रह्मा ने वाणी का ध्यान करते हुए गन्धर्व पुत्रों को उत्पन्न किया। चूँकि इनको ब्रह्माने वाणी का पान करते हुए सृजा था इसलिये यह गन्धर्व कहलाये ॥२३॥ इस प्रकार ब्रह्माजी ने इन आठ देवयोनियों की रचना की ॥२४॥ इसके बाद अपने देहसे पक्षियों और पशुओंको उत्पन्न किया। उन्होंने मुख से बकरी, छाती से भेड़ तथा दोनों पार्श्वों और उदर से गाय को उत्पन्न किया॥ २५॥

पद्भ्याञ्चाश्वान्समातङ्गान्रासभान्छशकान् मृगान्
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपाश्च जातयः ॥२६॥
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥२७॥
एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा ह्ययजच्चाध्वरे विभुः।
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ॥२८॥
गौरजो महिषो मेषः अश्वाश्वतरगर्दभाः।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे॥२६॥
श्वापदं द्विखुरं हस्ती वानराः पक्षिपंचमाः।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥३०॥
गायत्रीञ्च ऋचंचैव त्रिवृत् साम रथन्तरम्।
अग्निष्टोमंच यज्ञानां निर्म्ममे प्रथमान्मुखात् ॥३१॥
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पंचदशं तथा।
बृहत्साम तथोक्तञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥३२॥
सामानि जगतीच्छन्दः स्तोमं पंचदशं तथा।
वैरूपमतिरात्रञ्च निर्म्ममे पश्चिमान्मुखात् ॥३३॥
एकविंशमथर्व्वाणमाप्तोर्य्यामाणमेव च।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
वयांसि च ससर्ज्जादौ कल्पस्य भगवान् विभुः ॥३५॥
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्व्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ॥३६॥
ततोऽसृजत् स भूतानि स्थावराणि चराणि च।
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्व्वांस्तथैवाप्सरसांगणान्॥३७
नर-किन्नर-रक्षांसि वयःपशु-मृगोरगान्।
अव्ययंच व्ययंचैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम् ॥३८॥
तेषां ये यानि कर्म्माणि प्राक् सृष्टेः प्रतिपेदिरे।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३९॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत् तस्य रोचते॥४०॥
इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः।
नानात्वं विनियोगंच धातैव व्यदधात् स्वयम्॥४१॥
नाम रूपंच भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपंचनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥४२॥
ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु सृष्टयः।

तथा दोनों पाँवोंसे घोड़ों, हाथियों, गधों, खरगोशों, हरिणों, ऊँटों और अश्वतरों को पैदा किया तथा नाना जाति की ॥२६॥ औषधियों और मूलफलोंकी रचना अपने रोमों से की ॥२७॥ इस प्रकार पशुओं और औषधियों की रचना करके ब्रह्मा ने यज्ञ की रचना की इसलिये कल्प के आदि में त्रेतायुग में यज्ञ मुख्य है ॥२८॥ गाय, बकरा, भैंसा, मेढ़, घोड़ा, अश्वतर और गदहा ये सब ग्रामपशुहैं अब जङ्गली पशुओं को सुनो ॥ २९ ॥ श्वापद अर्थात् व्याघ्रादि, दो खुर वाले जैसे घोड़ा वगैरह, हाथी और बन्दर ये चारों प्रकार के, पाँचवें पक्षी, छठे जलचर और सातवें सर्प आदि ये जङ्गली सृष्टि है ॥३०॥ गायत्री, ऋग्वेद, त्रिवृत्, साम, रथान्तर और यज्ञोंमें अग्निष्टोम ये ब्रह्मा के प्रथम मुख से उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ यजुर्वेद, त्रिष्टुभछन्द, स्तोत्र और पन्द्रह बृहत्साम ब्रह्माजी के दक्षिण मुख से निकले ॥ ३२॥ सामवेद, जगतीछन्द, तथा पन्द्रह स्तोत्र, वैरूप और अतिरात्र ब्रह्माजी के पश्चिम मुख से उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ इक्कीस अथर्वण, अर्य्यामा, अनुष्टुपछन्द और वैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर मुख से सृजा ॥ ३४ ॥ बिजली, वज्र, मेघ, रोहिणी, इन्द्र धनुष और पक्षियों को भगवान् ब्रह्माजी ने कल्प के आदि में सृजा ॥३५॥ ब्रह्माजी ने उच्चावच भूतों को अपने शरीर से उत्पन्न किया तथा देवता, असुर, पितर और मनुष्य इन चारों को पहिले रचा ॥३६॥ इसके अनन्तर स्थावर और जङ्गम प्राणियोंको तथा यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों और उसी प्रकार अप्सरागणों को उत्पन्न किया ॥३७॥ तथा नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थावर और जङ्गम आदि की रचनाकी ॥३८॥ इनमें जो जिसका कर्म पहिले था वही सृष्टि होने पर हुआ तथा बार-बार जन्म लेने पर भी वही हुआ ॥ ३९ ॥ हिंसा और अहिंसा, मृदुत्व और क्रूरता, धर्म और अधर्म सत्य और झूंठ इनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित हुआ ॥४०॥ इन्द्रियों के अर्थ भूतों में और शरीरों में प्रभु ब्रह्माजी ने नाना प्रकार का संयोग स्थित किया ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी ने आदि में ही जीवोंके नाम रूप तथा कर्मों के प्रपञ्च और देवताओंके वेदशब्द आदि की रचना की ॥ ४२ ॥ जो नाम कि ऋषियों के पहिले थे तथा जो सृष्टि देवताओं की थी उसी

शर्व्वर्य्यन्ते प्रसूतानामन्येषाञ्च ददाति सः ॥४३॥
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥४४॥
एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
शर्व्वर्य्यन्ते प्रबुद्धस्य कल्पे कल्पे भवन्ति वै ॥४५॥

प्रकार रात्रि के अन्त होने पर ब्रह्माजी फिर बनाते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार रजःस्वला स्त्री ऋतुकाल में जैसा रूप देखती है वैसा ही बालक उसके उत्पन्न होता है उसी प्रकार युगादि में जिसका जो भाव था उसको ॥४४॥ उसी प्रकार अव्यक्तजन्म ब्रह्माजी ने रात्रि व्यतीत होने पर जाग कर प्रत्येक कल्प में रचा ॥ ४५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सृष्टि-प्रकरण नाम ४८वाँ अध्याय समाप्त।

उनंचासवां अध्याय

कौष्टुकिरुवाच

अर्व्वाक्स्रोतस्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः।
ब्रह्मन् विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा समसृजद्यथा ॥ १ ॥
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च महामते।
यच्च येषां स्मृतं कर्म्म विप्रादीनां वदस्व तत् ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मणः सृजतः पूर्व्वं सत्याभिध्यायिनस्तथा।
मिथुनानां सहस्रन्तु मुखात् सोऽथासृजन्मुने ॥ ३ ॥
जातास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः सचेतसः।
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज्ज ह ॥ ४ ॥
ते सर्व्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः।
ससर्ज्जान्यत् सहस्रन्तु द्वन्द्वानामूरुतः पुनः ॥ ५ ॥
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः।
पद्भ्यां सहस्रमन्यच्च मिथुनानां ससर्ज्ज ह ॥ ६ ॥
उद्रिक्तास्तमसा सर्व्वे निःश्रीका ह्यल्पचेतसः।
ततः संहर्षमाणास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ॥ ७ ॥
अन्योन्यहृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः।
ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः॥८॥
मासि मास्यार्त्तवं यत् तु न तदासीत् तु योषिताम्।
तस्मात् तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः ॥ ९ ॥
आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ताः सकृत्।
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः॥१०
ध्यानेन मनसा तासां प्रजानां जायते सकृत्।
शब्दादिर्विषयः शुद्धः प्रत्येकं पंचलक्षणम् ॥११॥

कौष्टुकि बोले—

हे मार्कण्डेयजी! आपने मनुष्यों का अर्वाक् स्रोत तो मुझसे कहा अब आप मनुष्योंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई यह विस्तार पूर्वक कहें ॥ १ ॥ हे महामतिमान्! और गुण, कर्म के अनुसार जो ब्राह्मण आदिकों के वर्ण हुए उनको भी कहिये ॥२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनि! सत्यसंध ब्रह्माजी ने सृष्टि रचने के समय पहिले हज़ारों स्त्री पुरुषों को अपने मुख से उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ वे सब सतोगुणी हुए और अपने तेज से बढ़ने लगे। इसके बाद अपनी छाती से अन्य हज़ार स्त्री-पुरुषों को पैदा किया ॥ ४ ॥ वे सब रजोगुण से युक्त बड़े भोगी और क्रोधी उत्पन्नहुए तथा फिर अपनी जंघाओंसे दूसरे हज़ार स्त्री-पुरुषों के जोड़ों को उत्पन्न किया ॥ ५ ॥ वे सब रजोगुण और तमोगुण से युक्त इच्छा और शील-वान् हुए तथा इसके अनन्तर ब्रह्माजीने अपने पैरों से हज़ार स्त्री-पुरुषों के मिथुनों को उत्पन्न किया ॥ वे सब तमोगुणयुक्त, श्रीहीन और अल्प बुद्धिवाले हुए। वे सब प्रसन्न चित्त और स्त्री-पुरुष के जोड़े से उत्पन्न हुए ॥७॥ उन सबको आपस में मैथुन से बड़ी प्रसन्नता हुई और उसी समय से इस कल्प में मैथुन से ही सृष्टि होती है ॥ ८ ॥ उस काल में स्त्रियों को ऋतुकाल न होता था अतः मैथुन करने पर भी सन्तानोत्पत्ति न होती थी ॥ ९ ॥ केवल अवस्था समाप्त होते समय स्त्री पुरुष सन्तति पैदा करते थे और जब ही से इस कल्प में मैथुन से प्रजोत्पत्ति होती है ॥ १० ॥ ध्यान और मन से ही एक बार सन्तति उत्पन्न होती थी। शब्दादिक पाँचों लक्षण प्रत्येक के शुद्ध थे ॥ ११ ॥ यही प्रजा-

इत्येषा मानसी सृष्टिर्या पूर्व्वं वै प्रजापतेः।
तस्यान्ववायसम्भूता यैरिदं पूरितं जगत् ॥१२॥
सरित्सरःसमुद्रांश्च सेवन्ते पर्व्वतानपि।
तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णा युगे तस्मिंश्चरन्ति वै॥१३॥
तृप्तिं स्वाभाविकीं प्राप्ता विषयेषु महामते।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वेषो नापि मत्सरः॥१४॥
पर्व्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेतास्तु सर्व्वशः।
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः॥१५॥
पिशाचोरग-रक्षांसि तथा मत्सरिणो जनाः।
पशवः पक्षिणश्चैव नक्रा मत्स्याः सरीसृपाः॥१६॥
अवारका ह्यण्डजा वा ते ह्यधर्म्मप्रसूतयः।
न मूल-फल-पुष्पाणि नार्त्तवा वत्सराणि च ॥१७॥
सर्व्वकालसुखः कालो नात्यर्थं धर्म्मशीलता।
कालेन गच्छता तेषां चित्रा सिद्धिरजायत ॥१८॥
ततश्च तेषां पूर्व्वाह्णे मध्याह्ने च वितृप्तता।
पुनस्तथेच्छतां तृप्तिरनायासेन साभवत् ॥१९॥
इच्छताञ्च तथायासो मनसः समजायत।
अपां सौक्ष्म्यात् ततस्तासां सिद्धिर्नाना रसोल्लसा २०
समजायत चैवान्या सर्व्वकामप्रदायिनी।
असंस्कार्य्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः॥२१॥
तासां विना तु सङ्कल्पं जायन्ते मिथुनाः प्रजाः।
समं जन्म च रूपंच म्रियन्ते चैव ताः समम् ॥२२॥
अनिच्छाद्वेषसंयुक्ता वर्त्तन्ते तु परस्परम्।
तुल्यरूपायुषः सर्व्वा अधमोत्तमतां विना ॥२३॥
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु।
आयुःप्रमाणं जीवन्ति न च क्लेशाद्विपत्तयः॥२४
क्वचित्क्वचित्पुनःसाभूत् क्षितिर्भाग्येन सर्व्वशः।
कालेन गच्छता नाशमुपयान्ति यथा प्रजाः ॥२५॥
तथा ताः क्रमशो नाशं जग्मुः सर्व्वत्र सिद्धयः।
तासु सर्व्वासु नष्टासु नभसः प्रच्युता नराः ॥२६॥
प्रायशः कल्पवृक्षास्ते सम्भूता गृहसंज्ञिताः।
सर्व्वप्रत्युपभोगश्च तासां तेभ्यः प्रजायते ॥२७॥

पति ब्रह्माजी की मानुषी सृष्टि है जिसके अन्वयसे उत्पन्न हुई सृष्टि सब जगतपूर्ण है ॥ १२ ॥ वे लोग नदी, तालाव, समुद्र और पहाड़ों को सेवन करते थे तथा उस युग में जाड़ा और गर्मी कम पड़ते थे ॥१३॥ हे महामति क्रौष्टुकिजी! प्राप्त विषयों में उन की स्वाभाविक तृप्ति थी और उनको न कोई विघ्न था न कोई द्वेष और न कोई ईर्ष्या ॥ १४ ॥ वे लोग विना घर के ही पर्वतों और समुद्रोंको सेवन करते थे तथा प्रसन्न मन से इच्छा रहित विचरतेथे॥१५॥ इसके बाद ब्रह्माजी ने पिशाच, सर्प, राक्षस, अभिमानी और ईर्ष्यायुक्त लोग, पशु, पक्षी, मगर, मछली और विच्छू आदि को रचा ॥ १६ ॥ तथा फिर अवारक, अण्डज आदि पशुओं को पैदा किया। ये सब धर्म, मूल, फल, पुष्प, ऋतु और वर्ष के विचार अथवा ज्ञान से रहित थे ॥१७॥ उस सृष्टिको सब कालमें सुख था, तथा धर्म और शील उस समय कुछ न था, केवल समयके व्यतीत होने पर ही उन लोगों को अनायास सिद्धि होती थी॥ उन लोगों को पूर्वाह्न और मध्याह्न में तृप्ति नहीं होती थी, परन्तु जब वे लोग इच्छा करते तो उन को अनायास तृप्ति होजाती ॥ १९ ॥ जिस बातकी इच्छा करते थे वह पूरी हो जाती थी तथा जल और नाना प्रकार की सूक्ष्म सिद्धियाँ रस और उल्लास पूर्वक प्राप्त होजाती थीं ॥ २० ॥ उन लोगों को मनवांछित फल देने वाली सिद्धि प्राप्त होती थी और प्रजा संस्कारों से रहित तथा हमेशा जवान बनी रहती थी ॥२१॥ उनके सङ्कल्प के बिना ही प्रजा मिथुन रूप से उत्पन्न होती थी तथा जिस प्रकार वे एक साथ पैदा होते थे उसी प्रकार एक साथ मर भी जाते थे ॥ २२ ॥ इच्छा और द्वेष से रहित वे आपस में रहते थे, उनके रूप और आयु समान थे और उनमें कोई अधम और उत्तम न थे ॥२३॥ मानुषी चार हज़ार वर्षों की उनकी आयु होती थी तथा उनको कभी क्लेश और आपत्ति न होती थी॥२४॥ पृथ्वी से उनका सम्बन्ध होने के कारण कभी-कभी उनको सिद्धि होती थी और और समय व्यतीत होने पर जिस तरह वे नाश को प्राप्त होते थे उसी तरह वह सिद्धि भी नष्ट हो जाती थी ॥२५॥ इसी प्रकार जब सिद्धियाँ नष्ट हो जाती थीं तब मनुष्य स्वर्ग से च्युत होकर पृथ्वी पर आजाते थे ॥ २६॥ वे लोग प्रायः कल्प वृक्ष की तरह गृहसंज्ञक वृक्ष होकर पृथ्वी पर उत्पन्न होते थे और उनके भोग भी उसी प्रकार पैदा होजातेथे

वर्त्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे तदा ।
ततः कालेन वै रागस्तासामाकस्मिकोऽभवत् ॥२८॥
मासि मास्यार्त्तवोत्पत्त्या गर्भोत्पत्तिः पुनः पुनः ।
रागोत्पत्त्या ततस्तासां वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः ॥२९॥
ब्रह्मन्नन्यपरेषान्तु पेतुः शाखा महीरुहाम् ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥३०॥
तेष्वेव जायते तेषां गन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिकं महावीर्य्यं पुटके पुटके मधु ॥३१॥
तेन वा वर्त्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य वै ।
ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभान्वितास्तु ताः ॥३२॥
वृक्षास्ताः पर्य्यगृह्णन्त ममत्वाविष्टचेतसः ।
नेशुस्तेनापचारेण तेऽपि तासां महीरुहाः ॥३३॥
ततो द्वन्द्वान्यजायन्त शीतोष्णक्षुन्मुखानि वै ।
तास्तु द्वन्द्वोपघातार्थं चक्रुः पूर्वं पुराणि तु ॥३४॥
मरुधन्वेषु दुर्गेषु पर्व्वतेषु दरीषु च ।
संश्रयन्ति च दुर्गाणि वार्क्षं पार्व्वतमौदकम् ॥३५॥
कृत्रिमञ्च तथा दुर्गं मित्वा मित्वात्मनोऽङ्गुलैः ।
मानार्थानि प्रमाणानि तास्तु पूर्वं प्रचक्रिरे ॥३६॥
परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः ।
बालाग्रञ्चैव निष्काञ्च यूकांचाथ यवोदरम् ॥३७॥
एकादशगुणं तेषां यवमध्यं तथाङ्गुलम् ।
षड्ङ्गुलं पदं तच्च वितस्तिर्द्विगुणं स्मृतम् ॥३८॥
द्वे वितस्ती तथा हस्तो ब्राह्मयतीर्थादिवेष्टनम् ।
चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नाड़िकायुगमेव च ॥३९॥
धनुषां द्वे सहस्रे तु गव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् ।
प्रोक्तञ्च योजनं प्राज्ञैः संख्यानार्थमिदं परम् ॥४०॥
चतुर्णामथ दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तच्च कुर्य्यात् सतस्तु ते ॥४१॥
पुरंच खेटकंचैव तद्वद्द्रोणीमुखं द्विजः ।
शाखानगरकंचापि तथा कर्व्वटकं त्रयी ॥४२॥
ग्रामसङ्घोपविन्यासं तेषु चावसथान् पृथक् ।
सोत्सेधवप्रकारंच सर्व्वतः परिखावृतम् ॥४३॥
योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम् ।
प्रागुदक्प्लवनं शस्तं शुद्धवंशबहिर्गमम् ॥४४॥

जब वे त्रेता युग में इस तरह वर्तमान थे तो उस काल में उनको अकस्मात् प्रीति उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ फिर हर महीने में ऋतुकाल और गर्भोत्पत्ति होने लगी तथा फिर उन गृहसंज्ञक वृक्षों में राग पैदा होने लगा ॥२९॥ हे ब्रह्मन् ! उन वृक्षों से जो अन्य वृक्ष उत्पन्न होते थे उनके फलों में वस्त्र और आभूषण उत्पन्न होने लगे ॥३०॥ उनमें ही सुन्दर गंध, वर्ण और रस से युक्त विना मक्खी के मधु से भरे हुए दौने उत्पन्न होने लगे ॥३१॥ त्रेतायुग में इसी प्रकार लोग रहते थे कि कालान्तर में उनको लोभ होने लगा ॥ ३२ ॥ ममतायुक्त होकर वे उन वृक्षों को ग्रहण करने लगे इससे वे वृक्ष भी उनके उपचार से नष्ट होगये ॥ ३३ ॥ फिर उनमें आपस में झगड़े होने लगे और उन झगड़ों को मिटाने के लिये उन्होंने पुरों का निर्माण किया ॥ ३४ ॥ मरु और धनुदेश में, दुर्गों में, पर्वतोंमें, तथा कन्दराओं में सब कोई आश्रय प्राप्त करने लगे ॥ ३५ ॥ अपनी अंगुलियों से नाप कर दुर्ग बनाने लगे तथा नापके लिये एक प्रमाण भी स्थिर किया ॥ ३६ ॥ पृथ्वी की रज के परमाणु का सब से छोटा नाप बनाया, तीस परमाणु का एक त्रसरेणु, तीस त्रसरेणु का एक बालाग्र तथा तीस बालाग्र का एक निष्कल और तीस निष्कल का एक यूका और तीस यूका का एक यवोदर होता था ॥ ३७ ॥ और ग्यारह यवोदर का एक यवमध्य और ग्यारह यवमध्य का एक अंगुल होता है, छः अंगुल का एक पद और दो पद की एक विपस्ति होतीहै ॥३८॥ दो विपस्ति का एक हाथ जिसको कि ब्राह्मयतीर्थादिवेष्टन भी कहते हैं होता है तथा चार हाथ का एक धनुष जिसको दण्ड या नाडिकायुग भी कहते हैं होताहै ॥३९॥ दो हज़ार धनुष की एक गव्यूति (दो कोश) होती है और चार हज़ार धनुष को विद्वान् लोग संख्या के अर्थ योजन कहते हैं ॥४०॥ चार दुर्गों में से तीन तो उन्होंने अपने उठनेके लिये बनाये चौथा कृत्रिम सबने मिलकर तैयार किया ॥ ४१ ॥ पुर, खेटक और उसी प्रकार द्रोणीमुख, शाखानगर और तीन कर्व्वटक बनाये ॥४२॥ फिर उन्होंने ग्राम और रहने के अलग-अलग स्थान बनाये खाइयों से घिरे हुए गढ़ और दुर्ग बनाये ॥ ४३ ॥ पुर एक कोस चौड़ा और आठ कोस लम्बा होता है, इसमें पानी का उतार पूर्व की ओर होता है और इसके बाहर शुद्ध बांस लगाये जाते हैं ॥४४॥

तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेन च कर्व्वटम्।
न्यूनं द्रोणीमुखं तस्मादष्टभागेन चोच्यते ॥४५॥
प्राकारं परिखाहीनं पुरं वर्म्मवदुच्यते।
शाखानगरकंचान्यन्मन्त्रि-सामन्त-भुक्तिमत् ॥४६॥
तथा शूद्रजनप्राया: स्वसमृद्धिकृषीवला:।
क्षेत्रोपभोग्यभूमध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिता ॥४७॥
अन्यस्मान्नगरादेर्या कार्य्यमुद्दिश्य मानवः।
क्रियते वसतिः सा वै विज्ञेया वसतिर्नरैः ॥४८॥
दुष्टप्रायो विना क्षेत्रैः परभूमिचरो बली।
ग्राम एवाक्रिमीसंज्ञो राजवल्लभसंश्रयः ॥४६॥
शकटारूढभाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना।
गोसमूहस्तथा घोषो यत्रेच्छाभूमिकेतनः ॥५०॥
त एवं नगरादींस्तु कृत्वा वासार्थमात्मनः।
निकेतनानि द्वन्द्वानां चक्रुरावसथाय वै ॥५१॥
गृहाकारा यथा पूर्व्वं तेषामासन् महीरुहाः।
तथा संस्मृत्य तत् सर्व्वं चक्रुर्वेश्मानि ताः प्रजाः ॥५२॥
वृक्षस्यैवं गताः शाखास्तथैवञ्चापरा गताः।
नताश्चैवोन्नताश्चैव तद्वच्छालाः प्रचक्रिरे ॥५३॥
याः शाखाः कल्पवृक्षाणां पूर्व्वमासन् द्विजोत्तम।
ता एव शाखा गेहानां शालात्वं तेन तासु तत् ॥५४॥
कृत्वा द्वन्द्वोपघातं ते वार्त्तोपायमचिन्तयन्।
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेष्वशेषतः ॥५५॥
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः।
ततः प्रादुर्ब्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतामुखे तदा ॥५६॥
वार्त्तास्वसाधिता ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।
तासां वृष्टयुदकानीह यानि निम्नगतानि वै ॥५७॥
वृष्ट्यावरुद्धैरभवत् स्रोतःखातानि निम्नगाः।
ये पुरस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥५८॥
ततो भूमेश्च संयोगा दोषध्वस्तास्तदाभवन्।
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥५६॥
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे।
प्रादुर्भावस्तु त्रेतायामाद्योऽयमौषधस्य तु ॥६०॥
तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे मुने।

इससे आधे को खेटक और खेटक से जो आधा हो उसे कर्व्वटक कहते हैं। कर्वटक के आधे को द्रोणीमुख और चौथाई को अन्तभाग कहते हैं॥ वह दुर्ग जिसमें खाई न हो वह पुर कहलाता है और जिसमें मन्त्री, सामन्त आदि रहते हों और भोग की सामग्री बहुत हो वह शाखानगर कहाता है ॥४६॥ तथा जहाँ अधिकतर शूद्र लोग रहते हों और समृद्धिशाली किसान हों और जो पृथ्वी खेतों के योग्य हो उसकी संज्ञा ग्राम है ॥४७॥ और नगर से बाहर किसी कार्य विशेष का उद्देश्य कर के जो बस्ती बनाई जाती है उसको बस्ती कहते हैं ॥४८॥ जहाँ विना खेतों के ही दूसरे की भूमि पर रहने वाले लोग रहते हों, वह दुष्ट चाहे राजा के प्रिय ही क्यों न हों उस ग्राम को अक्रिमी कहते हैं ॥ ४६ ॥ जहाँ पर गुआले अपने बर्तन-भाँड़ों को गाड़ियों पर लाद कर रखते हों, जहां दुकानें आदि न हों, तथा जहाँ गौओं का समूह रहता हो और इच्छावर्ती भूमि मिल जाती हो उसको घोष कहते हैं ॥५०॥ तब अपने रहने के लिये नगर आदि बना कर उन्होंने मकान बनाये जिनमें स्त्री-पुरुष जोड़े से रहने लगे ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार पहिले वे वृक्षों के नीचे रहते थे उसी विचार को लेकर उन्होंने अपने रहने के मकान बनाये ॥ ५२ ॥ वृक्ष की जिस प्रकार कोई ऊँची, कोई नीची शाखायें होती हैं उसी प्रकार प्रजाओं ने ऊंचे नीचे घर बनाये ॥ ५३ ॥ हे विप्रवर ! जिस प्रकार कि कल्प वृक्ष की पहिले शाखायें थीं उसी तरह की शालायें मनुष्योंने अपने लिये बनाईं ॥ ५४ ॥ जब उन स्त्री-पुरुषों ने एक दूसरे के उपघात का उपाय सोचा तो मधु सहित वे कल्प वृक्ष समूल नष्ट होगये ॥ ५५ ॥ इसपर वे प्रजालोग शोक, तृषा और भूखसे व्याकुल हुए तो फिर उनके लिये त्रेतायुग में सिद्धिका उदय हुआ॥ उनके विना चाहे हुए ही वर्षा हुई और उस वर्षा का जल पृथ्वी पर रहा तथा नदियों में चला गया ॥ ५७ ॥ उस वर्षा के जल से जो पृथ्वी पर गिरा स्रोत, खाई और नदियां भरगईं ॥५८॥ फिर भूमि और जल के संयोग से विना जोते और बोये हुए ही गाँव और जङ्गल की चौदह प्रकार की औषधियां उत्पन्न हुईं ॥५६॥ तथा ऋतु के फूल, फल, वृक्ष और गुल्म इत्यादि भी उत्पन्न हुए, इस प्रकार त्रेता युग के आरम्भ में औषधियों का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ६० ॥ हे मुनि ! त्रेतायुग में प्रजाजन उन्हीं औषधियों पर निर्भर रहते थे कि अकस्मात् उनको

राग-लोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिकौ तदा॥६१॥
ततस्ताः पर्य्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्व्वतान्।
वृक्ष-गुल्मौषधीश्चैवमात्मन्यायाद्यथा बलम्॥६२॥
तेन दोषेण ता नेशुरोषध्यो मिषतां द्विज।
अग्रसद्भू युगपत् तास्तदौषध्यो महामते॥६३॥
पुनस्तासु प्रनष्टासु विभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः क्षुधार्त्ताः परमेष्ठिनम्॥६४॥
स चापि तत्त्वतो ज्ञात्वा तदा ग्रस्तां वसुन्धराम्।
वत्सं कृत्वा सुमेरुन्तु दुदोह भगवान् विभुः॥६५॥
दुग्धेयं गौस्तदा तेन शस्यानि पृथिवीतले।
जज्ञिरे तानि वीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः ६६
ओषध्यः फलपाकान्ता गणाः सप्तदश स्मृताः।
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः॥६७॥
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कोरदूषाः सचीनकाः।
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः॥६८॥
आढ़काश्चणकाश्चैव गणाः सप्तदश स्मृताः।
इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयः पुरा॥६९॥
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश।
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः॥७०॥
प्रियङ्गुसप्तमा ह्येते अष्टमास्तु कुलत्थकाः।
श्यामाकास्त्वथ नीवारा यत्तिलाः सगवेधुकाः ७१॥
कुरुविन्दा मर्कटकास्तथावेणुयवाश्च ये।
ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश॥७२॥
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः।
ततः स तासां वृद्ध्यर्थं वार्त्तोपायं चकार ह॥७३॥
ब्रह्मा स्वयम्भुर्भगवान् हस्तसिद्धिञ्च कर्म्मजाम्।
ततःप्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे॥७४॥
संसिद्धायान्तु वार्त्तायां ततस्तासां स्वयं प्रभुः।
मर्य्यादां स्थापयामास यथान्यायं यथागुणम्॥७५॥
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्म्मान् धर्म्मभृतां वर।
लोकानां सर्व्ववर्णानां सम्यग्धर्म्मार्थपालिनाम्॥७६॥
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम्॥७७॥
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्म्ममनुवर्त्तताम्।

राग और लोभ पैदा होगये ॥६१॥ फिर उन लोगों ने अपने-अपने बलके अनुसार नदियों,खेतों,पर्वतों, वृक्षों, औषधियों और गुल्मों को अपने-अपने लिये हथिया लिया ॥ ६२॥ हे द्विजवर! इस दोष से वे औषधियां देखते-देखते नष्ट होगईं। हे महामते! उन औषधियों को पृथ्वी हठात् लय करगई ॥६३॥ उन औषधियों के नष्ट होनेपर प्रजा क्षुधासे दुखित और भ्रान्त होकर परमेश्वर ब्रह्मा की शरण में गई ॥६४॥ वह भगवान् ब्रह्मा भी उस पृथ्वी को जो औषधियों को ग्रस्त करगई थी तत्व से जान गये और उन्होंने सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर पृथ्वी को दुहा ॥ ६५॥ फिर पृथ्वी से दूध के स्थान पर बीज उत्पन्न हुए और उन बीजों की उत्पत्ति ग्राम और जङ्गल में हुई ॥ ६६ ॥ फल के पकने पर औषधियां निम्नलिखित सत्रह प्रकार की हैं-व्रीह, यव, गोधूम, अणव, तिल ॥ ६७ ॥ कौनी, उदार, दूषा, चीना, माष, मूँग, मसूर, निष्पाव, कुलथी ॥ ६८ ॥ और आढक तथा चना यही सत्रह प्रकारकी ग्राम्य औषधियां पहिले उत्पन्न हुईं ॥ ६९॥ यज्ञ सम्बन्धी औषधियां जो ग्रामों और वनों में पैदा होती हैं चौदह प्रकार की हैं यथा व्रीह, यव,गोधूम, अणव, और तिल ॥ ७० ॥ तथा कौनी, कुलथी, श्यामाक, नीवार, तिल, गवेधुक ॥ ७१ ॥ और कुरुविन्द, मर्कटक, वेणुयव इस प्रकार ग्रामों और वनों में उत्पन्न होने वाली यह चौदह औषधियां हैं ॥७२॥ जब बोने पर भी औषधियां पृथ्वी पर अंकुरित न हुईं तो ब्रह्माजी ने उनकी वृद्धि के लिये अन्य उपाय किया ॥ ७३ ॥ फिर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने अपनी कर्मजा हस्तसिद्धि को रचा और उससे वे कृष्टपच्या औषधियां उत्पन्न होने लगीं ॥ ७४ ॥ इस बात के सिद्ध होने पर स्वयं प्रभु ब्रह्माजीने उन प्रजाओं के लिये उनके न्याय और गुणके अनुसार मर्यादा स्थापित की ॥ ७५ ॥ हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ क्रौष्टुकिजी! और धर्म पालन के लिये लोकों के सब वर्णों के आश्रमों और धर्मोंको निश्चय किया॥ क्रिया करनेवाले ब्राह्मणोंके लिये प्राजापत्य स्थानहै तथा युद्ध में न भागने वाले क्षत्रियों के लिये इन्द्र स्थान है ॥७७॥ अपने धर्म में रत वैश्यों को वायु-

गान्धर्व्वं शूद्रजातीनां परिचर्य्यानुवर्त्तताम् ॥७८॥
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥७९॥
सप्तर्षीणान्तु यत् स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम् ।
योगिनाममृतं स्थानमिति वै स्थानकल्पना ॥८०॥

लोक और सेवाव्रती शूद्रों को गन्धर्वलोक मिलता है ॥ ७८ ॥ जो लोग गुरु के स्थान में रहकर गुरुकी सेवा करतेहैं वे अट्ठासी हज़ार ऊर्ध्वरेता ऋषीश्वरों के स्थान को जाते हैं ॥ ७९ ॥ सप्तर्षियों का जो स्थान है वह वनवासियों को मिलता है तथा प्राजापत्य स्थान गृहस्थियों को और ब्रह्मस्थान सन्यासियों को मिलता और योगियों को मोक्ष स्थान प्राप्त होता है, इस प्रकार प्रजाओं के लिये स्थान की कल्पना की गई ॥ ८० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सृष्टि-प्रकरण नाम ४९वां अध्याय समाप्त ।

पचासवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीः प्रजाः ।
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्य्यैस्तैः कारणैः सह ॥ १ ॥
क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ।
ते सर्व्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः ॥ २ ॥
देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषयाः स्मृताः ।
एवम्भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ॥ ३ ॥
यदास्य ताः प्रजाः सर्व्वा न व्यवर्द्धन्त धीमतः ।
अथान्यान् मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ४
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा ।
मरीचिं दक्षमत्रिञ्च वशिष्ठञ्चैव मानसम् ॥ ५ ॥
नव ब्रह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
ततोऽसृजत् पुनर्ब्रह्मा रुद्रं क्रोधात्मसम्भवम् ॥ ६ ॥
सङ्कल्पंचैव धर्म्मंच पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजम् ।
सनन्दनादयो ये च पूर्व्वं सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ ७ ॥
न ते लोकेषु सज्जन्तो निरपेक्षाः समाहिताः ।
सर्व्वे तेऽनागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥ ८ ॥
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥ ९ ॥
अर्द्धनारीनरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा स तदान्तर्दधे ततः ॥१०॥
स चोक्तो वै पृथक् स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् ।
पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा तु सः ॥११॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकिजी ! इसके अनन्तर ध्यान करते हुए ब्रह्माजी ने मानसी प्रजा को उत्पन्न किया। ये प्रजा ब्रह्माजी के शरीर से कार्य और कारण सहित पैदा हुई ॥१॥ उन विद्वान् ब्रह्माजी के शरीर से ब्रह्मज्ञानी लोग उत्पन्न हुए तथा जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूँ वे सब लोग ब्रह्मा के शरीर से ही उत्पन्न हुए ॥ देवताओंसे लेकर स्थावरों तक सबप्रजा त्रिगुणात्मक थीं और इसी प्रकार स्थावर और जङ्गम प्राणियों की सृष्टि हुई ॥३॥ जब ब्रह्माजी की बनाई हुई वह प्रजा न बढ़ी तब बुद्धिमान् ब्रह्माजीने अपने सदृश अन्य मानसी पुत्रों की रचनाकी ॥४॥ भृगु, पुलस्त्य पुलह, क्रतु, अङ्गिरस, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ यह मानसी पुत्र हुए ॥५॥ ये पुराणों में नव ब्रह्म कहलाते हैं। इसके बाद ब्रह्माजीने अपने कोप से रुद्र को उत्पन्न किया ॥६॥ पूर्व लोगों के पहिले उत्पन्न हुए सङ्कल्प और धर्मको भी ब्रह्माजी ने रचा तथा उन्होंने सनन्दनादि को पहिले बनाया ॥ ७ ॥ ये लोग संसार में आसक्त न हुए, वे सब निरपेक्ष ज्ञानी और राग द्वेष से रहित थे ॥८॥ जब ये लोग लोक-सृष्टि से निरपेक्ष होगये तो ब्रह्माजीको महान् क्रोध हुआ जिससे सूर्य के समान कान्तिमान ॥९॥ एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिसका आधा शरीर स्त्री और आधा पुरुष का सा था। वह यह कहकर कि 'आत्मा का विभाग करो' अन्तर्धान होगया ॥१०॥ उसके ऐसा कहने पर ब्रह्माजी ने स्त्री और पुरुष को पृथक्-पृथक् उत्पन्न किया और उन्होंने पुरुषत्व के ग्यारह विभाग किये ॥११॥ फिर उन ब्रह्माजी ने

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्तैः पुंस्त्वं स्त्रीत्वंच स प्रभुः।
विभेद बहुधा देवः पुरुषै रसितैः सितैः ॥१२॥
ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्व्वं स्वायम्भुवं प्रभुः।
आत्मनः सदृशं कृत्वा प्रजापालो मनुं द्विजः॥१३॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम्।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे विभुः ॥१४॥
तस्माच्च पुरुषात् पुत्रौ शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रख्यातावात्मकर्म्मभिः ॥१५॥
कन्ये द्वे च तथा ऋद्धिं प्रसूतिञ्च ततः पिता।
ददौ प्रसूतिं दक्षाय तथा ऋद्धिं रुचेः पुरा ॥१६॥
प्रजापतिः स जग्राह तयोर्यज्ञः सदक्षिणः।
पुत्रो जज्ञे महाभाग दम्पती मिथुनं ततः ॥१७॥
यज्ञस्य दक्षिणायान्तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे॥१८॥
तस्य पुत्रास्तु यज्ञस्य दक्षिणायां सभास्वराः।
प्रसूत्याञ्च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिस्तथा ॥१९॥
ससर्ज्ज कन्यास्तासांच सम्यङ्नामानि मे शृणु।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा॥२०॥
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी।
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्म्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥२१॥
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः।
ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिस्तथा क्षमा२२
सन्नतिश्चानुसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा।
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ॥२३॥
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्च ऋषयस्तथा।
वशिष्ठोऽत्रिस्तथा वह्निः पितरश्च यथाक्रमम् ॥२४॥
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः।
श्रद्धा कामं श्रीश्च दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ॥२५॥
सन्तोषंच तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरजायत।
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेव च ॥२६॥
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम्।
व्यवसायं प्रजज्ञे व क्षेमं शान्तिरसूयत ॥२७॥
सुखं सिद्धिर्यशः कीर्त्तिरित्येते धर्म्मसूनवः।
कामादतिर्मुदं हर्षं धर्म्मपौत्रमसूयत ॥२८॥

सौम्य, दुर्जन, शान्त, श्वेत, श्याम आदि अनेक प्रकार के पुरुष, स्त्री और देवगण उत्पन्न किये॥१२॥ हे विप्रवर ! फिर प्रभु ब्रह्माजी ने अपने समान ही अपने शरीर से स्वायंभुवमनु को प्रजापालन के निमित्त उत्पन्न किया ॥१३॥ तपस्विनी निष्पाप स्त्री शतरूपाको स्वायम्भुवमनुने पत्नी रूपमें ग्रहणकिया ॥१४॥ शतरूपाने स्वायम्भुवमनु से दो पुत्र उत्पन्न किये जो कि अपने सुकर्मों से प्रियव्रत और उत्तानपाद के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥ १५ ॥ और उनके ऋद्धि तथा प्रसूति नाम दो कन्यायें हुईं जिनमेंसे प्रसूति को दक्षके साथ और ऋद्धि को रुचि मुनिके साथ स्वायम्भुवमनु ने विवाह दिया ॥ १६ ॥ फिर दक्ष प्रजापति ने यज्ञ पुरुष नाम अपने पुत्र को उसकी स्त्री दक्षिणा सहित जुड़वां पैदा किया ॥ १७ ॥ फिर दक्षिणा ने यज्ञ से बारह पुत्र उत्पन्न किये जो कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में यामा नाम से प्रसिद्ध हुए ॥ दक्षिणा से उत्पन्न यज्ञ के वे पुत्र बड़े तेजस्वी हुए तथा प्रसूति ने दक्षसे चौबीस ॥१८॥ कन्यायें उत्पन्न कीं जिनके कि नाम मुझसे सुनो। (१) श्रद्धा (२) लक्ष्मी, (३) धृति, (४) तुष्टि, (५) पुष्टि, (६) मेधा, (७) क्रिया ॥ २० ॥ (८) बुद्धि, (९) लज्जा, (१०) वपु, (११) शान्ति, (१२) कीर्ति इन सब तेरहों दक्ष-कन्याओं को धर्म ने पत्नी रूप से ग्रहण किया ॥२१॥ अब बची हुई ग्यारह सुन्दर नेत्रवाली कन्यायें ये थीं-(१) ख्याति, (२) सती, (३) सम्भूति, (४) स्मृति, (५) प्रीति (६) क्षमा ॥ और (७) सन्तति, (८) अनसूया, (९) ऊर्ज्जा, (१०) स्वाहा, (११) स्वधा। इनका क्रम से भृगु, भव, मरीचि, अंगिरा ॥२३॥ पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अत्रि, अग्नि और पितर के साथ विवाह होगया ॥ २४ ॥ हे मुनिसत्तम ! उन कन्याओं की मुनियों से जो सन्तान हुई वह सुनिये। श्रद्धा का पुत्र काम, लक्ष्मी का दर्प, धृति का नियम ॥ २५ ॥ तुष्टि का सन्तोष, पुष्टि का लोभ, मेधाका श्रुत और क्रिया के नय और विनय हुए ॥२६॥ बुद्धिका लज्जा का विनय और वपु का पुत्र व्यवसाय हुए। तथा शान्ति का क्षेम ॥ २७॥ सिद्धि का सुख और कीर्ति का यश हुआ। ये सब धर्म के पुत्र हैं तथा काम का पुत्र हर्ष हुआ जो धर्म का पौत्र कहलाया॥

हिंसा भार्य्या त्वधर्म्मस्य तस्यां जज्ञे तथानृतम्।
कन्या च निर्ऋतिस्तस्यां सुतौ द्वौ नरकं भयम्॥२९॥
माया च वेदना चैव मिथुनं द्वयमेतयोः।
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्॥३०॥
वेदनात्मसुतंचापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्।
मृत्योर्व्याधि-जरा-शोक-तृष्णा-क्रोधाश्च जज्ञिरे॥३१॥
दुःखोद्भवाः स्मृता ह्येते सर्व्वे वा धर्म्मलक्षणाः।
नैषां भार्य्यास्ति पुत्रो वा सर्व्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥३२॥
निर्ऋतिश्च तथा चान्या मृत्योर्भार्य्याभवन्मुने।
अलक्ष्मीर्नाम तस्यांच मृत्योः पुत्राश्चतुर्दश॥३३॥
अलक्ष्मीपुत्रका ह्येते मृत्योरादेशकारिणः।
विनाशकालेषु नरान् भजन्त्येते शृणुष्व तान्॥३४॥
इन्द्रियेषु दशस्वेते तथा मनसि च स्थिताः।
स्वे स्वे नरं स्त्रियं वापि विषये योजयन्ति हि॥३५॥
अथेन्द्रियाणि चाक्रम्य रागक्रोधादिभिर्नरान्।
योजयन्ति यथा हानिं यान्त्यधर्म्मादिभिर्द्विज॥३६॥
अहङ्कारगतश्चान्यस्तथान्यो बुद्धिसंस्थितः।
विनाशाय नराः स्त्रीणां यतन्ते मोहसंश्रिताः॥३७॥
तथैवान्ये गृहे पुंसां दुःसहो नाम विश्रुतः।
क्षुत्क्षामोऽधोमुखो नग्नश्चीरी काकसमस्वनः॥३८॥
स सर्व्वान् खादितुं सृष्टो ब्रह्मणा तपसो निधिः।
दंष्ट्राकरालमत्यर्थं विवृतास्यं सुभैरवम्॥३९॥
तमत्तुकाममाहेदं ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्व्वब्रह्ममयः शुद्धः कारणं जगतोऽव्ययः॥४०॥

ब्रह्मोवाच

नात्तव्यं ते जगदिदं जहि कोपं शमं व्रज।
त्यजैनां तामसीं वृत्तिमपास्य रजसः कलाम्॥४१॥

दुःसह उवाच

क्षुत्क्षामोऽस्मि जगन्नाथ पिपासुश्चापि दुर्व्वलः।
कथं तृप्तिर्मियां नाथ भवेयं बलवान् कथम्।
कश्चाश्रयो समाख्याहि वर्त्तेयं यत्र निर्वृतः॥४२॥

ब्रह्मोवाच

तवाश्रयो गृहं पुंसां जनश्चाधार्म्मिको बलम्।

अधर्म की हिंसा नामी भार्या से अनृत नाम का पुत्र और निर्ऋति नाम की कन्या हुई तथा उनके दो पुत्र और हुए (१) नरक, (२) भय॥२९॥ फिर उन के माया और वेदना नामके मिथुन उत्पन्न हुए तथा माया का पुत्र मृत्यु जो जीवोंका संहार करनेवाला था उत्पन्न हुआ॥३०॥ वेदना का रौरव से दुःख नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और मृत्यु के व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए॥३१॥ ये सब अधर्म के लक्षण हैं तथा ये दुःख से उत्पन्न होते हैं। इनके न कोई स्त्री है और न पुत्र, ये ऊर्ध्वरेतस हैं॥३२॥ हे मुनि! मृत्यु की निर्ऋति और अलक्ष्मी दो भार्या हुईं। अलक्ष्मी से मृत्यु के चौदह पुत्र उत्पन्न हुए॥३३॥ अलक्ष्मीके ये पुत्र मृत्युका आदेश मानने वाले हैं और विनाश के समय मनुष्यों के पास ये किस तरह आते हैं वह सुनो॥३४॥ दशों इन्द्रियों तथा मन में स्थित रहकर ये अपने-अपने विषय में स्त्रियों और पुरुषों को लगा देते हैं॥३५॥ हे विप्रवर! फिर इन्द्रियों को आकर्षित करके मनुष्यों को राग और क्रोधादिक में प्रवृत्त करदेते हैं जिससे कि वे अधर्म के कारण हानि उठाते हैं॥ कोई अहङ्कार में तथा कोई बुद्धि में स्थित रहकर मोह उत्पन्न कराते हैं और स्त्री-पुरुषों के नाश के लिये यत्नवान् रहते हैं॥३७॥ इसी प्रकार मनुष्योंके गृह में दुःसह नाम का एक और विघ्न होता हैजो भूख से पीड़ित, नीचा मुख किये हुए, नङ्गा और कौएकी सी आवाज़ वाला है॥३८॥ तपोनिधि ब्रह्माजी ने जब इसको उत्पन्न किया तो ये विकराल दांत, विवर्ण और भयानक आकृति वाला सबको खाने को उद्यत हुआ॥३९॥ फिर लोकों के पितामह सर्वब्रह्ममय, शुद्ध जगत् के कारण अव्यय ब्रह्माजी उस दुःसह से जो सबको खाने की इच्छा करता था बोले॥४०॥

ब्रह्माजी बोले—

तुमको यह जगत् न खाना चाहिये, क्रोध को छोड़कर शान्त हो जाओ। तामसी वृत्ति को छोड़ कर राजसी कला को धारण करो॥४१॥

दुःसह बोला—

हे जगत् के स्वामी! मैं भूख से पीड़ित, प्यासा और दुर्बल हूं। मेरी किस प्रकार तृप्ति होगी और मैं कैसे बलवान् होऊँगा? मेरे रहनेका स्थान कौनसा है उसको बताइये जहाँ मैं निवृत्त होकर रहूँ॥४२॥

ब्रह्माजी बोले—

जहाँ अधर्मी लोग रहते हैं वहीं पर तुम्हारा

पुष्टिं नित्यक्रियाहान्या भवान् वत्स गमिष्यति ॥४३॥
वृथा स्फोटाश्च ते वस्त्रमाहारश्च ददामि ते।
क्षतं कीटावपन्नञ्च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥४४॥
भग्नभाण्डगतं तद्वत् मुखवातोपशामितम्।
उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम् ॥४५॥
भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेव च।
विदिङ्मुखं सन्ध्ययोश्चनृत्य-वाद्य-स्वरोत्तमम् ॥४६॥
उदक्योपहतं भुक्तमुदक्यादृष्टमेव च।
यच्चोपघातवत् किंचिद्भक्ष्यं पेयमथापि वा।
एतानि तव पुष्ट्यर्थमन्यच्चापि ददामि ते ॥४७॥
अश्रद्धया हुतं दत्तमस्नातैर्यदवज्ञया।
यन्नाम्बुपूर्व्वकं क्षिप्तमनर्थीकृतमेव च ॥४८॥
त्यक्तुमाविष्कृतं यत् तु दत्तञ्चैवातिविस्मयात्।
दुष्टं क्रुद्धार्त्तदत्तंच यक्ष तद्भागि तत् फलम् ॥४६॥
यच्च पौनर्भवः किंचित् करोत्यामुष्मिकं क्रमम्।
यच्च पौनर्भवा योषित् तद्वयक्ष तव तृप्तये ॥५०॥
कन्या शुल्कोपधानाय समुपास्ते धनक्रियाः।
तथैव यक्ष पुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्च याः ॥५१॥
यच्चार्थं निर्वृतं किंचिदधीतं यन्न सत्यतः।
तत् सर्व्वं तव कालांश्च ददामि तव सिद्धये ॥५२॥
गुर्व्विण्यभिगमे सन्ध्यानित्यकार्य्यव्यतिक्रमे ॥५३॥
असच्छास्त्रक्रियालाप-दूषितेषु च दुःसह।
तवाभिभवसामर्थ्यं भविष्यति सदा नृषु ॥५४॥
पङ्क्तिभेदे वृथापाके पाकभेदे तथा क्रिया।
नित्यंच गेहकलहे भविता वसतिस्तव ॥५५॥
अपोष्यमाणे च तथा बद्धे गोवाहनादिके।
असन्ध्याभ्युक्षितागारे काले त्वचो भयं नृणाम् ॥५६॥
नक्षत्र-ग्रहपीड़ासु त्रिविधोत्पातदर्शने।
अशान्तिकपरान् यक्ष नरानभिभविष्यसि ॥५७॥

आश्रय है। जहाँ नित्य नैमित्तिक क्रियाओं का अभाव है वहीं से तुम्हारी पुष्टि होगी। अतः हे वत्स! तुम वहाँ ही जाओ ॥ ४३ ॥ जो लोग वृथा हँसते या बोलते हों वहीं तुम्हारा वस्त्र है और तुम को आहार भी देता हूँ क्षत, अथवा जिस वस्तु में कीड़े पड़गये हों, जो कुत्ते द्वारा देखली गई हो ॥ जो टूटे वर्तन में रक्खी हो, उसी प्रकार जो फूंक मारकर ठण्डी कीगई हो, जो झूंठी तथा अपक्व और संस्कारहीन हो ॥४५॥ फटे हुए आसन पर बैठकर जो अतिथि को विना दिये हुए खाया जाय, अथवा जो कुदिशाओं की ओर बैठकर सन्ध्याओंके अथवा नृत्य और गीत के समय खाया जाय ॥४६॥ ऋतुमती स्त्री का स्पर्श किया हुआ अथवा देखा हुआ, अथवा किसी का झूंठा किया हुआ ये सब तथा और कुछ तेरी पुष्टि के लिये भोजन और पान देता हूँ ॥ ४७ ॥ विना श्रद्धा के जो हवन कियागया हो, विना स्नान किये जो अवज्ञापूर्वक दिया गया हो, विना जल छिड़की हुई वस्तु तथा जो वस्तु वेकार पड़ीहो ॥४८॥ जो वस्तु त्यागीहुई हो अथवा वहुत लोगों द्वारा देखी गई हो, जो वस्तु भय से किसी ने दी हो अथवा दुष्ट, क्रोधी और दुःखी द्वारा दी हुई हो इस सबके खाने का फल हे यक्ष! तुमको होगा ॥ ४६ ॥ पुनर्भू पुरुष या स्त्री जो कुछ कर्म करते हैं हे यक्ष! वह सब तुम्हारी तृप्ति के लिये होगा ॥५०॥ कन्या को वेचकर जो धन प्राप्त होता है तथा उस धन से जो कर्म किया जाता है और असत् शास्त्रीय जो क्रियायें हैं हेयक्ष! वे सब तुम्हारी पुष्टिके लियेहैं ॥५१॥ जो विना अर्थके कार्य किया जाय और जो सत्यपूर्वक अध्ययन न किया जाय वह सब तुम्हारी सिद्धि के लिये है ॥ ५२ ॥ तुम्हारी सिद्धि के काल ये होंगे, गर्भिणी से मैथुन करने तथा संध्यादि नित्यकर्मों के व्यतिक्रम के समय आदि ॥ ५३ ॥ असत् शास्त्रों की क्रिया या आलापके समय हे दुःसह! तुम्हारा पराक्रम लोगों पर होगा ॥५४॥ और तुम पंक्तिभेद, वृथा पाक और पाकभेद तथा गृह-कलह में जाकर निवास करो ॥ जहाँ गौ तथा अन्य वाहनमें प्रयोग किये जानेवाले पशु विना खिलाये पिलाये बाँध दिये जाते हों तथा संध्याकाल से पहिले जिस घरमें सफ़ाई न कीगई हो वहाँ मनुष्यों को तुमसे भय होगा ॥ ५६॥ नक्षत्र अथवा ग्रहों की पीड़ामें तथा तीनों प्रकारके उत्पात दिखाई देने पर जो मनुष्य उनकी शांति के उपाय नहीं करते हैं उनको तुम अपना भय दिखाओगे ॥

वृथोपवासिनो मर्त्या द्यूत-स्त्रीषु सदा रताः ।
त्वद्राषणोपकर्त्तारो वैड़ालव्रतिकाश्च ये ॥५८॥
अब्रह्मचारिणाधीतमिज्या चाविदुषा कृता ।
तपोवने ग्राम्यभुजां तथैवानिर्ज्जितात्मनाम् ॥५९॥
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्राणांच स्वकर्म्मतः ।
परिच्युतानां या चेष्टा परलोकार्थमीप्सताम् ॥६०॥
तस्याश्च यत् फलं सर्व्वं तत् ते यक्ष भविष्यति ।
अन्यच्च ते प्रयच्छामि पुष्टयर्थं संनिबोध तत् ॥६१॥
भवतो वैश्वदेवान्ते नामोच्चारणपूर्व्वकम् ।
एतत् तवेति दास्यन्ति भवतो बलिमूर्ज्जितम् ॥६२॥
यः संस्कृताशी विधिवच्छुचिरन्तस्तथा बहिः ।
अलोलुपोऽजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्ज्जय ॥६३॥
पूज्यन्ते हव्य-कव्याभ्यां देवताः पितरस्तथा ।
यामयोऽतिथयश्चापि तद्गेहं यक्ष वर्ज्जय ॥६४॥
यत्र मैत्री गृहे बाल-वृद्ध-योषिन्नरेषु च ।
तथा स्वजनवर्गेषु गृहं तच्चापि वर्ज्जय ॥६५॥
योषितोऽभिरता यत्र न बहिर्गमनोत्सुकाः ।
लज्जान्विताः सदा गेहं यक्ष तत् परिवर्ज्जय ॥६६॥
वयःसम्बन्धयोग्यानि शयनान्याशनानि च ।
यत्र गेहे त्वया यक्ष तद्वर्ज्यं वचनान्मम ॥६७॥
यत्र कारुणिका नित्यं साधुकर्म्मण्यवस्थिताः ।
सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथा यक्ष तद्गृहम् ॥६८॥
यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सु गुरु-वृद्ध-द्विजातिषु ।
न तिष्ठन्ति गृहं तच्च वर्ज्यं यक्ष त्वया सदा ॥६९॥
तरुगुल्मादिभिर्द्वारं न विद्धं यस्य वेश्मनः ।
मर्म्मभेदोऽथवा पुंसस्तच्छ्रेयो भवनं न ते ॥७०॥
देवता-पितृ-मर्त्यानामतिथीनाञ्च वर्त्तनम् ।
यस्यावशिष्टेनान्नेन पुंसस्तस्य गृहं त्यज ॥७१॥
सत्यवाक्यान् क्षमाशीलानहिंस्रान् नानुतापिनः ।
[illegible]न् यक्ष त्यजेथाश्चानसूयकान् ॥७२॥

जो व्यर्थ उपवास करता है, जो सदैव जुआ और स्त्रियों में आसक्त रहता है, जो दुर्वचन बोलता है तथा जिसकी छली वृत्ति बिल्ली की सी है ॥ ५८॥ बिना ब्रह्मचर्य पालन किये हुए जो वेद पाठ करता है, मूर्खों द्वारा किया हुआ यज्ञ, तथा तपोवन में अजितेन्द्रियों या गृहस्थियों की तरह रहना ॥५९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र जो अपने कर्मों से च्युत होकर परलोक की इच्छा के कारण क्रियायें करते हैं॥६०॥हे यक्ष ! उपरोक्त इन सबकी क्रियाओं का फल तुमको होगा और भी जो तुम्हारी पुष्टि के लिये देता हूँ उसको सुनो ॥ ६१ ॥ वैश्वदेव कर्म के अन्त में तुम्हारे नाम का उच्चारण करके तुमको बलि दी जायेगी जिससे कि तुम्हारी पुष्टि होगी॥ जो विधिवत् संस्कार किया हुआ अन्न खाते हों और भीतर बाहर से पवित्र हों, लोभ रहित हों तथा स्त्री के वश में न हों ऐसे लोगों के गृहों को तुम न जाना ॥ ६३॥ जहाँ देवताओं और पितरोंका हव्य कव्य आदिसे पूजन होताहो और जहाँ अतिथियों और ब्राह्मणों का सत्कार होता हो हे यक्ष ! वहाँ तुम मत जाना ॥६४॥ जिस घरमें बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष और स्वजनों में परस्पर मैत्री हो वहाँ भी तुम न जाओ ॥६५॥जहाँ स्त्रियाँ प्रेमपूर्वक रहती हों और बाहर निकलने के लिये उत्सुक न हों तथा लज्जायुक्त हों हे यक्ष ! वहाँभी तुमको जाना वर्जित है ॥ ६६ ॥ हे यक्ष ! जहां अवस्था और सम्बन्ध के अनुसार भोजन और शयन होता है उस घरमें भी मेरे वचन से तुम्हारा निषेध है ॥६७॥ हे यक्ष! जहाँ दयावान् रहते हों, जहाँपर लोग नित्य साधुकर्म में स्थित हों और जो युक्त आहार विहार करते हों ऐसे घरको भी छोड़ देना ॥ ६८ ॥ हे यक्ष ! जहाँ आसन पर बैठे हुए गुरु, वृद्धजन या ब्राह्मण लोग हों वहाँ घर वाला सम्मान के कारण उनके बराबर न बैठे ऐसे स्थान पर तुम न जाना ॥६९॥ जिस घर का द्वार वृक्ष या लता आदि से घिरा न हो तथा जहाँ मर्मभेदी बात करने वाला पुरुष न हो ऐसे घर में जाने से तुम्हारा कल्याण न होगा ॥ ७० ॥ जिस घरमें देवता, पितर, मनुष्य, अतिथि आदि को भोजन कराकर बचे हुए अन्न को मनुष्य खाते हों उस घर को भी छोड़ो ॥ ७१ ॥ हे यक्ष ! सत्य बोलने वाले, क्षमा और शील रखने वाले, हिंसा न करने वाले, दूसरों को पीड़ा न देने वाले, और किसी की बुराई न करने वाले, ऐसे पुरुषों को तुम त्याग देना ॥ ७२ ॥

भर्त्तृशुश्रूषणे युक्तामसत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् ।
कुटुम्ब-भर्त्तृशेषान्न-पुष्टाञ्च त्यज योषितम् ॥७३॥
यजनाध्ययनाभ्यास-दानासक्तमतिं सदा ।
याजनाध्यापनादान-कृतवृत्तिं द्विजं त्यज ॥७४॥
दानाध्ययन-यज्ञेषु सदोद्युक्तञ्च दुःसह ।
क्षत्रियं त्यज सच्छुक्लशस्त्राजीवात्तवेतनम् ॥७५॥
त्रिभिः पूर्व्वगुणैर्युक्तं पाशुपाल्य-वणिज्ययोः ।
कृषेश्चावाप्तवृत्तिञ्च त्यज वैश्यमकल्मषम् ॥७६॥
दानेज्या-द्विजशुश्रूषा-तत्परं यक्ष सन्त्यज ।
शूद्रंच ब्राह्मणादीनां शुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥७७॥
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन कृतवृत्तिर्गृहे गृही ।
यत्र तत्र च तत्पत्नी तस्यैवानुगतात्मिका ॥७८॥
यत्र पुत्रो गुरोः पूजां देवानाञ्च तथा पितुः ।
पत्नी च भर्त्तुः कुरुते तत्रालक्ष्मीभयं कुतः ॥७९॥
यदानुलिप्तं सन्ध्यासु गृहमम्बुसमुक्षितम् ।
कृतपुष्पबलिं यक्ष न त्वं शक्नोपि वीक्षितुम् ॥८०॥
भास्करादृष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च ।
सूर्य्यावलोकदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भाजनम् ॥८१॥
यत्रोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।
विषाश्च ताम्रपात्राणि तद्गृहं न तवाश्रयः ॥८२॥
यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी ।
भार्य्या पुनर्भूर्वल्मीकस्तद्गृयक्ष तव मन्दिरम् ॥८३॥
यस्मिन् गृहे नराः पंच स्त्रीत्रयं तावतीश्च गाः ।
अन्धकारेन्धनाग्निञ्च तद्गृहं वसतिस्तव ॥८४॥
एकच्छागं द्विबालेयं त्रिगवं पंचमाहिषम् ।
षडश्वं सप्तमातङ्गं गृहं यक्षाशु शोषय ॥८५॥
कुद्दालदात्रपिठकं तद्वत् स्थाल्यादिभाजनम् ।

जो स्त्री स्वामी की सेवा में तत्पर हो, दुष्टा स्त्रियों का साथ न करती हो, कुटुम्ब का भरण पोषणकर बचे हुए अन्न से अपने को पुष्ट करती हो ऐसी स्त्री को भी छोड़देना ॥७३॥ यजन,अध्ययन, वेदाभ्यास तथा दान आदिमें जिसकी रुचिहो तथा यज्ञकराना पढ़ाना और दान लेना आदि जिसकी वृत्ति हो ऐसे ब्राह्मणको छोड़देना ॥७४॥ हे दुःसह ! जो दान, अध्ययन, यज्ञादि में सदा उद्यत हो और जो क्षात्र धर्म के अनुसार उत्तम जीविका करता हो ऐसे क्षत्रिय को भी छोड़देना ॥ ७५ ॥ जो उपरोक्त दान, अध्ययन और यज्ञादि करने के तीनों गुणों से युक्त हो तथा पशुपालन, व्यवसाय और खेती से अपनी जीविका प्राप्त करता हो ऐसे निष्पाप वैश्य को भी छोड़देना ॥७६॥ दान, यज्ञ और ब्राह्मण की सेवा में तत्पर तथा ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों की सेवा से उपजीविका करने वाला जो शूद्र हो उसको भी हे यक्ष ! तुम छोड़ देना ॥ ७७ ॥ जिस घरमें गृहस्थी श्रुति और स्मृति के विरोध में न चलता हो और वह जहाँ कहीं भी रहे उसकी स्त्री उसकी अनुगामिनी हो ॥७८॥ जहाँपर पुत्र गुरु, देवताओं और पिता की तथा पत्नी अपने पति की पूजा करती है वहाँ अलक्ष्मी का भय कैसा ? ॥७९॥ जो घर संध्या समय लीपा जाय, जहाँ जल छिड़का जाय और जहाँ फूलों सहित देवताओं का पूजन किया जाय हे यक्ष ! उस घरको तुम नहीं देख सकते ॥ ८० ॥ जिस घर की शय्याओंको सूर्य न देखते हों अर्थात जहां लोग सूर्योदय से पूर्व सोकर उठते हों तथा अग्नि और जल कभी न घटता हो और सूर्योदय तक दीपक जलता हो ऐसे घरों में लक्ष्मी सदैव निवास करती है ॥ ८१ ॥ जिस घरमें बैल, चन्दन, वीणा, शीशा, शहद, घी, विष या तांबे के पात्र हों उस घरमें तुम्हारा आश्रय नहीं होगा ॥ ८२ ॥ जिस घर में काँटेदार वृक्ष हों अथवा जहाँ धान बोया हुआ हो और जिस घरमें पुनर्भू स्त्री हो या जो दीमक का खाया हुआ हो, हे यक्ष ! ऐसे घर को तुम अपना ही समझना ॥ ८३ ॥ जिस घरमें पाँच पुरुष तीनस्त्री और तीन गाय रहती हों और जहाँ अंधकार में ईंधन जलाकर प्रकाश करतेहों उस घर में तुम रहना ॥८४॥ हे यक्ष ! जिस घरमें एक बकरी, दो बछियां, तीन गाय, पाँच भैंस, छः घोड़े और सात हाथी हों उस घरको तुम शीघ्र नष्ट करदेना ॥ जहाँ कुदाल, हँसिया, पीढ़ा और उसी तरह थाली आदि बर्तन इधर-उधर फैले हुए पड़े रहते हों वह

यत्र तत्रैव क्षिप्तानि तव दद्युः प्रतिश्रयम् ।८६॥
मुषलोलूखले स्त्रीणामास्या तद्वदुदुम्बरे ।
अवस्करे मन्त्रणंच यक्षैतदुपकृत् तव ॥८७॥
लङ्घ्यन्ते यत्र धान्यानि पक्वापक्वानि वेश्मनि ।
तद्वच्छास्त्राणि तत्र त्वं यथेष्टं चर दुःसह ॥८८॥
स्थालीपिधाने यत्राग्निर्दत्तो दर्व्वीफलेन वा ।
गृहे तत्र हि रिष्टानामशेषाणां समाश्रयः ॥८९॥
मानुषास्थि गृहे यत्र दिवारात्रं मृतस्थितिः ।
तत्र यक्ष तवावासस्तथान्येषांच रक्षसाम् ॥९०॥
अदत्त्वा भुञ्जते ये वै बन्धोः पिण्डं तथोदकम् ।
सपिण्डान् सोदकांश्चैव तत्कालेतान् नरान् भज९१॥
यत्र पद्मसहापद्मौ युवती मोदकाशिनी ।
वृषभैरावतो यत्र कल्प्यते तद्गृहं त्यज ॥९२॥
अशस्त्रा देवता यत्र सशस्त्राश्चाहवं विना ।
कल्प्यन्ते मनुजैरर्च्चास्तत् परित्यज मन्दिरम् ॥९३॥
पौरजानपदा यत्र प्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः ।
क्रियन्ते पूर्व्ववद्गेहे न त्वं तत्र गृहे चर ॥९४॥
शूर्पवातघटाम्भोभिः स्नानं वस्त्राम्बुविप्रुपैः ।
नखाग्रसलिलैश्चैव तान् याहि हतलक्षणान् ॥९५॥
देशाचारान् समयान ज्ञातिधर्म्मं
जपं होमं मङ्गलं देवतेष्टिम् ।
सम्यक् शौचं विधिवल्लोकवादान्
पुंसस्त्वया कुर्व्वतो माऽस्तु सङ्गः ॥९६॥
मार्कण्डेय उवाच
इत्युक्त्वा दुःसहं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।
चकार शासनं सोऽपि तथा पङ्कजजन्मनः ॥९७॥

घर तुमको आश्रय देना चाहताहै ऐसा समझो८६॥ हे यक्ष ! जो स्त्रियां मूसल या ओखली पर अथवा गूलर के पेड़के नीचे बैठती हों या घर के पीछे आपसमें बात करती हों उन स्त्रियोंको तुम अपना उपकारी समझना ॥ ८७ ॥ हे दुःसह ! जिस घर में कच्चे अथवा पक्के धान्योंका और उसी तरह शास्त्रों का निरादर होता हो वहाँ पर तुम इच्छानुसार विचरो॥८८॥ जिस घरमें थाली,सरपोश, या कलछी से अग्नि दी जाती हो उस घर में अशेष अरिष्टोंका स्थान है ॥ ८९ ॥ जिस घर में मनुष्य की हड्डी हो, या एक दिन और रात मुर्दा पड़ा रहे वहाँ पर हे यक्ष तुम्हारा और दूसरे राक्षसों का वास होगा ॥ जो मनुष्य अपने भाई बन्धुओं को पिंड और जल न देकर स्वयं भोजन करलेताहै उस मनुष्यके पास तथा उस पिंड और जलमें तुम निवास करो॥९१॥ जहाँ पद्म और महापद्म रहता हो, स्त्री मोदकखाने वाली हो अथवा शिवजी के नान्दी या ऐरावत हाथी की मूर्ति हो उस घरको भी तुम छोड़ देना ॥ जहाँ अशस्त्र देवता अथवा युद्ध बिना शस्त्र अस्त्रों की मनुष्य पूजा करतेहों उस घर को भी तुम छोड़ देना ॥९३॥जिस घरमें पुरवासी उत्सवपूर्वक आकर रहें उस घर में तुम न जाना ॥९४॥ सूप की हवासे ठण्डा किये हुए जल से, घड़े के जल से, कपड़े के निचोड़े हुए जल से अथवा नखोंसे स्पर्श किये हुए जल से जो कुलक्षणी लोग स्नान करते हैं उनके पास तुम जाओ ॥ ९५ ॥ देश काल के अनुसार आचरण करने वाले, जाति, धर्म, जप, होम,मङ्गल, देवताओं का पूजन करने वाले, भली प्रकार पवित्र रहने वाले तथा विधिवत् बात चीत करने वाले जो लोग हैं उनका तुम सङ्ग मत करना ॥ ९६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

दुःसहसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये और दुःसह भी कमलयोनि ब्रह्माजी की आज्ञानुसार रहने लगा ॥ ९७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में यक्षानुशासन नाम ५०वां अ० समाप्त ।

इक्यावनवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच
दुःसहस्याभवद्भार्य्या निर्म्माष्टिर्नाम नामतः ।
जाता कलेस्तु भार्य्यायामृतौ चाण्डालदर्शनात् ॥१॥

मार्कण्डेयजी बोले—

निर्माष्टि नाम की दुःसह की पत्नी हुई जो कि कलि की स्त्री से ऋतुकाल में चाण्डाल के सम्पर्क से पैदा हुई थी ॥ १ ॥ उन दोनों की जगत्व्यापी

तयोरपत्यान्यभवन् जगद्व्यापीनि षोड़श ।
अष्टौ कुमाराः कन्याश्च तथाष्टावतिभीषणाः॥ २ ॥
दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्च परिवर्त्तस्तथापरः ।
अङ्गधुक् शकुनिश्चैव गण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥ ३ ॥
गर्भहा शस्यहा चान्यः कुमारास्तनयास्तयोः ।
कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौ तासां नामानि मे शृणु॥४॥
नियोजिका वै प्रथमा तथैवान्या विरोधिनी ।
स्वयंहारकरी चैव भ्रामणी ऋतुहारिका ॥ ५ ॥
स्मृतिवीजहरे चान्ये तयोः कन्येऽतिदारुणे ।
विद्वेषण्यष्टमी नाम कन्या लोकभयावहा ॥ ६ ॥
एतासां कर्म्म वक्ष्यामि दोषप्रशमनंच यत् ।
अष्टानांच कुमाराणां श्रूयतां द्विजसत्तम ॥ ७ ॥
दन्ताकृष्टिः प्रसूतानां बालानां दशनस्थितः ।
करोति संहर्षमति चिकीर्षुर्दुःसहागमम् ॥ ८ ॥
तस्योपशमनं कार्य्यं सुप्तस्य सितसर्षपैः ।
शयनस्योपरि क्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ॥ ६ ॥
सुवर्चसौषधीस्नानात् तथा सच्छास्त्रकीर्त्तनात् ।
उष्ट्रकण्टकखड्गास्थि-क्षौमवस्त्रविधारणात् ॥१०॥
तिष्ठत्यन्यकुमारस्तु तथास्त्वित्यसकृद्ब्रुवन् ।
शुभाशुभे नृणां युङ्क्ते तथोक्तिस्तच्च नान्यथा ॥११॥
तस्माद्दृष्टे मङ्गल्यं वक्तव्यं पण्डितैः सदा ।
दुष्टे श्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयो जनार्दनः ।
चराचरगुरुर्ब्रह्मा या यस्य कुलदेवता ॥१२॥
अन्यगर्भे परान् गर्भान् सदैव परिवर्त्तयन् ।
रतिमाप्नोति वाक्यंच विवक्षोरन्यदेव यत् ॥१३
परिवर्त्तकसंज्ञोऽयं तस्यापि सितसर्षपैः ।
रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्च रक्षां कुर्व्वीत तत्त्ववित् ॥१४
अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषु स्फुरणोदितम् ।
शुभाशुभं समाचष्टे कुशैस्तस्याङ्गताड़नम् ॥१५॥
काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यः श्वशृगालगतोऽपि वा ।
शुभाशुभंच कुशलैः कुमारोऽन्यो ब्रवीति वै ॥१६॥
तत्रापि दुष्टे व्याक्षेपः प्रारम्भत्याग एव च ।
शुभे द्रुततरं कार्य्यमिति प्राह प्रजापतिः ॥१७॥
गण्डान्तेषु स्थितश्चान्यो मुहूर्त्तार्द्धं द्विजोत्तमः ।

सोलह सन्तान हुईं जिनमें आठ पुत्र और आठ अति भीषण कन्यायें थीं ॥ २ ॥ (१) दन्ताकृष्टि, (२) तथोक्ति, (३) परिवर्त्त, (४) अङ्गधृक्, (५) शकुनी, (६) गण्डप्रान्तरति, (७) गर्भहा, (८) शस्यहा, ये आठ पुत्र हुए अब कन्याओं के आठ नामों को सुनिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ (१) नियोजिका, (२) विरोधिनी, (३) स्वयंहारकरी, (४) भ्रामणी, (५) ऋतुहारिका, (६) स्मृतिहरा, (७) बीजहरा तथा (८) अति दारुण विद्वेषिणी जिसने कि संसार को भयभीत कर रक्खा है ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे विप्रवर ! अब मैं इनके कर्मों का तथा इनके दोषों की शान्ति का वर्णन करता हूँ। पहिले आठ पुत्रों का हाल सुनिये ॥७॥ पहिला पुत्र दन्ताकृष्टि नवजात बालकोंके दांतों पर आता है जिससे उनके दाँत किटकिटातेहैं और दुःसह के आगमन को बतलाते हैं ॥ ८ ॥ इसकी शान्ति इस प्रकार करे कि सोतेहुए बालकके दाँतों और शय्या पर तिल और सरसों छिड़क दे ॥ ९ ॥ अथवा सुन्दर औषधियों के जलसे स्नान करावे या सत्शास्त्र का कीर्तन करावे, ऊँट या तेंदुए की हड्डी को गले में बाँधे या रेशमी वस्त्र पहिनावे ॥१०॥जो बालक शुभमें, अशुभमें वृथा हर समय बोलता रहे उसको तथोक्ति नाम दुःसहका दूसरा पुत्र आगया समझना चाहिये ॥११॥ उस दोषकी शान्तिके लिए पण्डितों ने कहा है कि जो अरिष्ट या माङ्गल्य देखे, सुने या कहे गये हैं उनका जप या भगवान् का कीर्तन करावे अथवा कुल देवता ब्रह्माजीका पूजन करे ॥१२॥जो एक के गर्भको दूसरे के गर्भमें रखनेसे होता है और स्त्रियों से वृथा बकवाद कराता है ॥ उसको परिवर्तक कहते हैं, इससे प्रभावित स्त्रीकी सफेद सरसों छिड़क कर और रक्षोघ्न मन्त्र जप कर ज्ञानी पुरुष रक्षा करे ॥१४॥ चौथा अङ्गधृक् है जो वायु के समान अङ्गों में प्रविष्ट होकर फड़कन पैदा करता है और शुभ अशुभ बातें बकवाता है इसके दोष की निवृत्ति अङ्गों पर कुशाओं के मारने से होती है ॥१५॥ दुःसह का पाँचवां पुत्र शकुन है जो काक आदि पक्षियों में प्रविष्ट होकर आकाश में विचरता है और मनुष्यों को शुभाशुभ बताता है ॥ १६ ॥ उसके बोलने के समय किसी कार्य का प्रारम्भ न करें और यदि वह शुभ बोले तो कार्य शीघ्र सिद्ध हो ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है ॥ १७ ॥ हे द्विजवर ! छठा गंडप्रान्तरति नामक है जो लोगों के गण्डान्त योग में आधी घड़ी तक रहता है यह

सर्व्वारम्भान् कुमारोऽन्ति शस्तताश्चानसूयतास् ॥१८॥
विप्रोक्त्या देवतास्तुत्या मूलोत्खातेन च द्विज।
गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तदृक्षग्रहपूजनैः ॥१९॥
पुनश्च धर्म्मोपनिषत्करणैः शस्त्रदर्शनैः।
अवज्ञया जन्मनश्च प्रशमं याति गण्डवान् ॥२०॥
गर्भे स्त्रीणां तथाऽन्यस्तु फलनाशी सुदारुणः।
तस्य रक्षा सदा कार्य्या नित्यं शौचनिषेवणात् ॥२१॥
प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात्।
विशुद्धगेहावसथादनायासाच्च वै द्विज ॥२२॥
तथैव शस्यहा चान्यः शस्यर्द्धिमुपहन्ति यः।
तस्यापि रक्षां कुर्व्वीत जीर्णोपानद्धिधारणात् ॥२३॥
तथापसव्यगमनाच्चाण्डालस्य प्रवेशनात्।
बहिर्बलिप्रदानाच्च सोमाम्बुपरिकीर्त्तनात् ॥२४॥
परदार-परद्रव्य-हरणादिषु मानवान्।
नियोजयति चैवान्यान् कन्या सा च नियोजिका ॥२५॥
तस्याः पवित्रपठनात् क्रोधलोभादिवर्ज्जनात्।
नियोजयति मामेषु विरोधाच्च विवर्ज्जनम् ॥२६॥
आक्रुष्टोऽन्येन मन्येत ताड़ितो वा नियोजिका।
नियोजयत्येनमिति न गच्छेत् तद्वशं बुधः ॥२७॥
परदारादिसंसर्गे चित्तमात्मानमेव च।
नयोजयत्यत्र सा मामिति प्राज्ञो विचिन्तयेत् ॥२८॥
विरोधं कुरुते चान्या दम्पत्योः प्रीयमाणयोः।
बन्धूनां सुहृदां पित्रोः पुत्रैः सावर्णिकैश्च या ॥२९॥
विरोधिनी सा तद्रक्षां कुर्व्वीत बलिकर्म्मणा।
तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ॥३०॥
धान्यं खलाद्गृहाद्गोभ्यः पयः सर्पिस्तथापरा।
समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्ति च कन्यका ॥३१॥
सा स्वयंहारिकेत्युक्ता सदान्तर्द्धानतत्परा।
महानसादर्द्धसिद्धमन्नागारस्थितं तथा ॥३२॥
परिविश्यमानञ्च सदा सार्द्धं भुङ्क्ते च भुञ्जता।

सब कार्यों के आरम्भ को नष्ट करता है। अति प्रशस्त और अनिन्दित ॥१८॥ ब्राह्मणोंके आशीर्वाद से, देवताओं की स्तुति से, मूल नक्षत्र की शान्ति से, गोमूत्र और सरसों के स्नान कराने से और उसके नक्षत्र के ग्रह के पूजन करने से ॥ १९ ॥ तथा फिर धर्मोपनिषदोंका पाठ करने से और शस्त्रों का दर्शन कराने से गण्डान्त में जन्म होने के दोष की शान्ति होती है ॥ २० ॥ दुःसह का सातवां पुत्र गर्भहा है जो स्त्रियों का गर्भ नष्ट कर देता है तथा जो बड़ा भयानक है और नित्य पवित्र रहकर उस से अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ हे द्विजवर! प्रसिद्ध मन्त्र लिखकर उसे गले में बाँधकर शुद्ध माला धारण करके, स्वच्छ घर में रहकर तथा दानादि देकर उससे रक्षा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ आठवां शस्यहा है जो अन्नोंकी वृद्धि को नष्ट करता है इससे भी पुराने जूते पहिन कर खेत की रक्षा करनी चाहिये ॥२३॥ तथा खेतके चारों तरफ घूम कर, अथवा चाण्डाल से स्पर्श करा कर, खेत के बाहर बलिदान करके अथवा चन्द्रमा या जल की स्तुति करके भी शस्यहा की शान्ति करनी चाहिये ॥२४ ॥ दूसरे की स्त्री या धन के हरण करने में जो मनुष्यों की प्रवृत्ति कराती है वह दुःसह की प्रथम पुत्री नियोजिका है ॥ २५ ॥ पवित्र पाठ से, क्रोध और लोभ को छोड़ने से तथा यह सोचने से कि नियोजिका मुझको प्रवृत्त कररही है विरोधी बातों को मनुष्य छोड़ दे ॥२६॥ यदि कोई व्यक्ति गाली दे तो यह समझ ले कि यह नियोजिका की मार है, वही ऐसी योजना करतीहै यह सोचकर बुद्धिमान् मनुष्य उसके वशीभूत न हो ॥ २७ ॥ यदि चित्त दूसरे की स्त्री से संसर्ग करने को हो तो बुद्धिमान् यह समझले कि नियोजिका मुझको फँसा रही है ॥२८॥ जो प्रिय दम्पति में, भाई बन्धुओं में, माता पिता और पुत्रों में तथा सजातीयोंमें विरोध करा देती है ॥२९॥ वह विरोधिनी कहलाती है उससे बलिकर्म द्वारा तथा विवाद रहित शास्त्रीय आचार से अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३० ॥ दुःसह की तीसरी कन्या जो खलिहान से धान्यों को और घर से दूध, घी को और ऋद्धि सिद्धि को नष्ट कर देती है ॥ ३१ ॥ वह स्वयं-हारिका कहलाती है और सदैव अन्तर्धान रहती है। वह रसोईघर में प्रवेश करके रसोई को सिद्ध नहीं होने देती ॥ ३२॥ तथा वहाँ प्रविष्ट होकर भोजन करने वाले के साथ में स्वयं भोजन करती है और जो मनुष्य अन्न को

उच्छेपणं मनुष्याणां हरत्यन्नञ्च दुर्हरा ॥३३॥
कर्म्मान्तागारशालाभ्यः सिद्धर्द्धिं हरति द्विज।
गोस्त्रीस्तनेभ्यश्च पयः क्षीरहारी सदैव सा ॥३४॥
दध्नो घृतं तिलात् तैलं सुरागारात् तथा सुराम्।
रागं कुसुम्भकादीनां कार्पासात् सूत्रमेव च ॥३५॥
सा स्वयंहारिका नाम हरत्यविरतं द्विज।
कुर्य्याच्छिखण्डिनो द्वन्द्वं रक्षार्थं कृत्रिमां स्त्रियम्॥३६
रक्षार्थैव गृहे लक्ष्या वर्ज्ज्या च सोध्मतांस्तथा ॥३७॥
होमाग्नि-देवता-धूप-भस्मना च पारिप्क्रिया।
कार्य्या क्षीरादिभाण्डानामेव तद्रक्षणं स्मृतम्॥३८॥
उद्वेगं जनयत्यन्या एकस्थाननिवासिनः।
पुरुपस्य तु या प्रोक्ता भ्रामणी सा तु कन्यका॥३९॥
तस्याथ रक्षा कुर्व्वीत विक्षिप्तैः सितसर्पपैः।
आसने शयने चोर्व्व्यां यत्रास्ते स तु मानवः॥४०॥
चिन्तयेच्च नरः पापा मामेषा दुष्टचेतना।
भ्रामयत्यसकृज्जप्यं भुवः सूक्तं समाधिना ॥४१॥
स्त्रीणां पुष्पं हरत्यन्या प्रवृत्तं सा तु कन्यका।
अथ प्रवृत्तं सा ज्ञेया दौःसहा ऋतुहारिका ॥४२॥
कुर्व्वीत तीर्थ-देवौक-श्चैत्य-पर्व्वतसानुपु।
नदीसङ्गमखातेपु स्नपनं तत्प्रशान्तये ॥४३॥
मन्त्रवित् कृततत्त्वज्ञः पर्व्वसूपसि च द्विज।
चिकित्साज्ञश्च वै वैद्यः सम्प्रयुक्तैर्वरौपधैः ॥४४॥
स्मृतिश्चापहरत्यन्या स्त्रीणां सा स्मृतिहारिका।
विविक्तदेशसेवित्वात् तस्याश्चोपशमो भवेत् ॥४५॥
बीजापहारिणी चान्या स्त्रीपुंसोरतिभीपणा।
मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमो भवेत् ॥४६॥
अष्टमी द्वेपणी नाम कन्या लोकभयावहा।
या करोति नवद्विष्टं नरं नारीमथापि वा ॥४७॥
मधु-क्षीर-घृताक्तांस्तु शान्त्यर्थं होमयेत् तिलान्।
कुर्व्वीत मित्रविन्दाख्य तथेष्टिं तत्प्रशान्तये ॥४८॥
एतेपान्तु कुमाराणां कन्यानां द्विजसत्तम।
अष्टत्रिंशदपत्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥४९॥
दन्ताकृष्टेरभूत् कन्या विजल्पा कलहा तथा।

चुराते हैं उनके अन्नको भी हरण करलेती है ॥३३॥ हे द्विज ! जिस घरमें सुकर्म न हुआहो यह उसकी ऋद्धि, सिद्धिको हरण करलेती है तथा गाय और स्त्री के स्तनों से दूध हरण करलेती है ॥३४॥ दही में से घी, तिलों में से तेल और मदिरा के स्थान से मदिरा तथा और कपास में से सूत ॥ ३५ ॥ हे क्रौष्टुकिजी ! यह स्वयंहारिका निरन्तर हरण करती है, इससे बचने के लिये एक स्त्रीकी तथा दो मोरों की कृत्रिम आकृति घरमें काढ़नी चाहिये, उन तसवीरों का मिटना वर्जित है ॥ ३६ ॥३७॥ हवन की अग्नि में धूप दे और अग्नि की उस भस्म को स्त्री अपने स्तन पर मले तथा दूध के वर्तन में रक्खे इस प्रकार इससे रक्षा होतीहै ॥३८॥ भ्रामणी नाम की दुःसह की चौथी पुत्री एक जगह रहने वाले पुरुषों में उद्वेग पैदा करती है ॥ ३९ ॥ इससे बचने के लिये जहाँ पर पुरुष रहता हो वहाँ पर बैठने और सोने के स्थान पर सफेद सरसों छिड़क दे ॥ ४० ॥ और मनुष्य को विचार करना चाहिये ये दुष्टा पापिनी भ्रामणी मुझे घुमा रही है तथा समाधिपूर्वक पृथ्वी सूक्त का जप करे ॥ ४१ ॥ दुःसह की पाँचवीं पुत्री जो स्त्रियों के मासिकधर्म का हरण करती है वह इसी कारणसे ऋतुहारिका कहलाती है ॥ ४२ ॥ इसकी शान्ति के लिये स्त्रीको तीर्थ, देवालय, यज्ञशाला, पर्वत के किनारे या नदं सङ्गम पर स्नान करावे ॥४३॥ हे क्रौष्टुकि ! मन्त्र और तत्व के जानने वाले लोगों को चाहिये कि उस स्त्री को पर्वों में प्रातःकाल स्नान करावे तथा चिकित्सा जानने वाले सद्वैद्य से उसको उत्तम औषधियों द्वारा अच्छा करावे ॥४४॥ जो स्त्रियों की स्मृति को हर लेती है वह दुःसह की छठी कन्या स्मृतिहारिका है, इसकी शान्ति पवित्र स्थानों का सेवन करने से होती है ॥ ४५ ॥ दुःसह की अति भीपण सातवीं पुत्री बीजहरा है जो स्त्री-पुरुषों का स्वप्न में क्रमशः रज और वीर्य हरण करती है, शुद्ध भोजन और स्नान करने से इसकी शान्ति हो जाती है ॥४६॥ आठवीं कन्या द्वेपिणी है जो संसार में अति भयानक है और स्त्री पुरुषों में द्वेष उत्पन्न करती है ॥४७॥ उसकी शान्ति के लिये मधु, क्षीर, घृत और तिलसे हवनकरे तथा मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे ॥४८॥ हे क्रौष्टुकिजी ! अब दुःसह की इन पुत्रियों और पुत्रों की अड़तीस सन्तानों के नाम मुझसे सुनो ॥ ४९ ॥ दन्ताकृष्टि के दो कन्यायें हुईं (१) विजल्पा (२) कलहा। विजल्पा जो अवज्ञा,

अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पा तत्प्रशान्तये ॥५०॥
तामेव चिन्तयेत् प्राज्ञः प्रयतश्च गृही भवेत् ।
कलहा कलहं गेहे करोत्यविरतं नृणाम् ॥५१॥
कुटुम्बनाशहेतुः सा तत्प्रशान्तिं निशामय ।
दूर्व्वाङ्कुरान् मधु-घृत-क्षीराक्तान् बलिकर्म्मणि५२
विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलं मित्रंच कीर्त्तयेत् ।
भूतानां मातृभिः सार्द्धं बालकानान्तु शान्तये॥५३॥
विद्यानां तपसाञ्चैव संयमस्य यमस्य च ।
कृष्यां वाणिज्यलाभे च शान्तिं कुर्व्वन्तु मे सदा५४॥
पूजिताश्च यथान्यायं तुष्टिं गच्छन्तु सर्व्वशः ।
कुष्माण्डा यातुधानाश्च ये चान्ये गणसंज्ञिताः ५५॥
महादेवप्रसादेन महेश्वरमतेन च ।
सर्व्वं एते नृणां नित्यं तुष्टिमाशु व्रजन्तु ते ॥५६॥
तुष्टाः सर्व्वं निरस्यन्तु दुष्कृतं दुरनुष्ठितम् ।
महापातकजं सर्व्वं यच्चान्यद्विघ्नकारणम् ॥५७॥
तेषामेव प्रसादेन विघ्ना नश्यन्तु सर्व्वशः ।
उद्वाहेषु च सर्व्वेषु वृद्धिकर्म्मसु चैव हि ॥५८॥
पुण्यानुष्ठानयोगेषु गुरुदेवार्च्चनेषु च ।
जप-यज्ञ-विधानेषु यात्रासु च चतुर्द्दश ॥५९॥
शरीरारोग्यभोग्येषु सुखदानधनेषु च ।
वृद्धबालातुरेष्वेव शान्तिं कुर्व्वन्तु मे सदा ॥६०॥
सोमाम्बुपौ तथाम्भोधिः सविता चानिलानलौ ।
तथोक्तः कालजिह्वोऽभूत् पुत्रस्तालनिकेतनः ॥६१॥
स येषां जननीसंस्थस्तानसाधून् विबाधते ।
परिवर्त्तसुतौ द्वौ तु विरूप-विकृतौ द्विज ॥६२॥
तौ तु वृक्षाग्र-परिखा-प्राकाराम्भोधिसंश्रयौ ।
गुर्व्विण्याः परिवर्त्तं तौ कुरुतः पादपादिषु ॥६३॥
क्रौष्टुके परिवर्त्तन्त्या गर्भाक्रामो यथोदरात् ।
न वृक्षश्चैव नैवाद्रिं न प्राकारं महोदधिम् ॥६४॥
परिखां वा समाक्रामेदबला गर्भधारिणी ।
अङ्गधुक् तनयं लेभे पिशुनं नाम नामतः ॥६५॥
सोऽस्थिमज्जागतः पुंसां बलमत्त्यजितात्मनाम् ।
श्येन-काक-कपोतांश्च गृध्रोलूकैश्च वै सुतान् ॥६६॥
जग्राप शकुनिः पंच जगृहुस्तान् सुरासुराः ।

झूठ और कुत्सित वाक्यों में मनुष्य को प्रवृत्त करती है उसकी शान्ति के लिये ॥ ५० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उसी का चिंतवन करे। कलहा मनुष्यों के गृहों में कलह उत्पन्न करती है ॥ ५१ ॥ कलहा कुटुम्ब के नाश का कारण होती है, उसकी शांति का उपाय सुनो। मधु, घी और दूध के सहित दूब के अंकुरों से बलिकर्म करे ॥ ५२ ॥ तथा अग्नि में डाले और हवन करे, फिर मित्रवृन्दाका कीर्तनकर मातृगणों के साथ भूतों का कीर्तन करे जिससे बालकों को शान्ति मिले ॥५३॥ तथा यह कहे कि विद्याओं के, तप, संयम और यमके तथा वाणिज्य के लाभ में आप मेरी सदैव रक्षा करें ॥५४॥ कूष्मांड यातुधान तथा अन्य जो गण हैं वे न्यायानुसार पूजित होकर सन्तोष को प्राप्त हों ॥ ५५ ॥ महादेव के प्रसाद से सब मनुष्य नित्य तुष्टि को प्राप्त कर आपको पावें ॥५६॥ सन्तुष्ट होकर सब दुष्कृत, पाप और पाप से उत्पन्न जो और विघ्न के कारण हैं उनको काटें ॥५७॥ उन गणों के प्रसाद से विवाहों अथवा वृद्धिके जो कर्महैं उनमें जो विघ्न उपस्थित हों उनका नाश हो ॥५८॥ पुण्य और अनुष्ठान के योगों में, गुरु और देवताओं की पूजामें, जप और यज्ञ के विधानों में और यात्रा आदि में जो चौदह गण हैं वे ॥५९॥ शरीर के आरोग्य आदि भोगों में, सुख, दान और धन में तथा वृद्ध, बालक और आतुरों में सदा मेरी रक्षा करें ॥६०॥ तथा चन्द्रमा, वरुण, समुद्र, सूर्य, वायु और अग्नि भी मेरी रक्षा करें। तथोक्त का कालजिह्वा नाम का पुत्र हुआ जो ताल के वृक्षपर रहता है ॥ ६१ ॥ यह कालजिह्वा जिन माताओं में स्थित हो जाता है उनकी संतानों को बहुत दुःख देता है। हे विप्र ! परिवर्तक के विरूप और विकृत नाम के दो पुत्र हुए ॥ ६२ ॥ वे वृक्षों, खाइयों, महलों, नदियों और तालावोंमें रहते हैं तथा अन्य स्थानों में घूमते हुए गर्भिणी स्त्रियों को दुःख देते हैं ॥ ६३ ॥ हे क्रौष्टुकि ! इन स्थानों में घूमती हुई गर्भिणी स्त्री पर वे आक्रमण करते हैं, अतः पेड़, पहाड़, क़िले व समुद्र पर ॥ ६४ ॥ तथा खाई आदि जहाँ हों वहाँ गर्भवती को न जाना चाहिये। अङ्गध्रुक् का पिशुन नाम पुत्र हुआ ॥६५॥ वह अजितेन्द्रिय पुरुषोंकी हड्डी और मज्जामें पहुँच कर उनके बलको खाता है। बाज़, कौआ, कबूतर, गिद्ध, उल्लू ये पाँच पुत्र ॥६६॥ शकुनि के हुए, इन को देवताओं और राक्षसों ने रक्खा। मृत्यु ने

श्येनं जग्राह मृत्युश्च काकं कालो गृहीतवान् ॥६७॥
उलूकं निर्ऋतिश्चैव जग्राहातिभयावहम् ।
गृध्रं व्याधिस्तदीशोऽथ कपोतंच स्वयं यमः ॥६८॥
एतेषामेव चैवोक्ता भूताः पापोप्पादने ।
तस्माच्छ्य नादयो यस्य निलीयेयुः शिरस्यथ ।
तेनात्मरक्षणायालं शान्तिं कुर्य्याद्द्विजोत्तम ॥६६॥
गेहे प्रसूतिरेतेषां तद्वन्नीड़विवेशनम् ।
नरस्तं वर्ज्जयेद्गेहं कपोताक्रान्तमस्तकम् ॥७०॥
श्येनः कपोतो गृध्रश्च काकोलूकौ गृहे द्विज ।
प्रविष्टः कथयेदन्तं वसतां तत्र वेश्मनि ॥७१॥
ईदृक् परित्यजेद्गेहं शान्तिं कुर्य्याच्च पण्डितः ।
स्वप्नेऽपि हि कपोतस्य दर्शनं न प्रशस्यते ॥७२॥
षड़पत्यानि कथ्यन्ते गण्डप्रान्तरतेस्तथा ।
स्त्रीणां रजस्यवस्थानं तेषां कालांश्च मे शृणु ॥७३॥
चत्वार्य्यहानि पूर्व्वाणि तथैवान्यत् त्रयोदश ।
एकादश तथैवान्यदपत्यं तस्य वै दिने ।७४॥
अन्यद्दिनाभिगमने श्राद्धदाने तथापरे ।
पर्व्वस्वथान्यत् तस्मात् तु वर्ज्ज्यान्येतानि पण्डितैः ॥
गर्भहन्तुः सुतो निघ्नो मोहनी चापि कन्यका ।
प्रविश्य गर्भमत्त्येको भुक्त्वा मोहयतेऽपरा ॥७६॥
जायन्ते मोहनात् तस्याः सर्पमण्डूककच्छपाः ।
सरीसृपाणि चान्यानि पुरीषमथवा पुनः ॥७७॥
षण्मासान् गुर्व्विणीमांसमश्नुवानामसंयताम् ।
वृक्षच्छायाश्रयां रात्रावथवा त्रिचतुष्पथे ॥७८॥
श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्ज्जिताम् ।
रुद्यमानां निशीथेऽथ आविशेत् तामसौ स्त्रियम् ७६॥
शस्यहन्तुस्तथैवैकः क्षुद्रको नाम नामतः ।
शस्यर्द्धिं स सदा हन्ति लब्ध्वा रन्ध्रं शृणुष्व तत् ८०॥
अमङ्गल्यदिनारम्भेष्वतृप्तो वपते च यः ।
क्षेत्रेष्वनुप्रवेशं वै करोत्यन्तोपसङ्गिषु ॥८१॥
तस्मात् कल्पः सुप्रशस्ते दिनेऽभ्यर्च्च्य निशाकरम् ।
कुर्य्यादारम्भसुस्निग्ध हृष्टस्तुष्टः सहायवान् ॥८२॥
नियोजिकेति या कन्या दुःसहस्य मयोदिता ।

बाज़को और कालने कौएको लिया ॥६७॥ निर्ऋति ने अति भयानक उल्लू को लिया तथा व्याधि ने गिद्ध को और यमराज ने कबूतर को लिया ॥ ६८ ॥ इन्हीं पक्षियों के बोलने पर जीव पापमें प्रवृत्त होते हैं। हे विप्रवर ! बाज़ आदि ये पक्षी जिसके घर या शिर पर बैठते हैं उसको अपनी रक्षा के लिये शान्ति करनी चाहिये ॥ ६६ ॥ जिस घरमें यह पैदा हों या अपना घोंसला बनालें उस घर को मनुष्य छोड़ दे। यदि शिरपर कबूतर बैठजाय तो उसकी भी शान्ति करनी चाहिये ॥७०॥ हे विप्र ! घर में कबूतर, गिद्ध, कौआ, और उल्लू का प्रविष्ट हो जाना यह बताता है कि उस घर में रहने वालोंका अन्त आगया ॥७१॥ ऐसे घर को पण्डित छोड़ दे अथवा उसकी शान्ति करे, स्वप्न में भी कबूतरको देखना अच्छा नहीं है ॥७२॥ गण्डप्रान्तरति की भी छः सन्तानें हैं, ये स्त्रियों की रज में रहती हैं इनके समय मुझसे सुनो ॥७३॥ स्त्री के ऋतुमती होने के चौथे दिनतक उसमें पहिला पुत्र, त्रयोदशीके दिन दूसरा, एकादशी के दिन तीसरा पुत्र स्त्री के रज-स्थान में रहता है ॥७४॥ चौथा दिनमें मैथुन करने के समय तथा पाँचवाँ श्राद्ध और दान करने के समय और छठा पर्वो के दिनोंमें रजस्थानमें रहता है इसलिये पण्डितों को चाहिये कि उपरोक्त दिनों में मैथुन न करे ॥ ७५ ॥ गर्भहा का पुत्र विघ्नहा और उसकी कन्या मोहिनी नाम की हुई । गर्भ में घुस कर विघ्न उसको खा जाता है तथा मोहिनी भी उसे खाकर मोहन करदेती है ॥ ७६ ॥ मोहन करने से गर्भ से सर्प, मेंढक या कछुआ पैदा होता है अथवा कभी-कभी उस गर्भका वृश्चिक या विष्ठा भी हो जाता है ॥ ७७ ॥ छः महीने के भीतर यदि गर्भिणी स्त्री माँस खाय तो तथा असंयत रहने से रात्रि को वृक्ष की छाया में ठहरने से, चौराहा, तिराया या श्मशान में जाने से तथा विना बिछाये ज़मीन पर सोने से, रात्रि को रोनेसे मोहिनी उस स्त्री में प्रवेश कर जाती है ॥ ७८-७६ ॥ शस्यहा का क्षुद्रक नाम एक पुत्र है जो छिद्र पाकर किस तरह शस्य को नष्ट करदेता है यह सुनो ॥ ८० ॥ अशुभ दिन में अथवा अतृप्त होकर जो खेत बोया जाताहै उस खेत में क्षुद्रक प्रवेश कर जाता है ॥८१॥ इस लिये अच्छे मुहूर्त और उत्तम दिन को चन्द्रमाका पूजन करके हृष्टपुष्ट और बलवान् होकर कार्य का आरम्भ करे या खेत को बोवे ॥ ८२ ॥ दुःसह की नियोजिका नाम कन्या का वर्णन मैं कर चुका हूँ

जातं प्रचोदिकासंज्ञं तस्याः कन्याचतुष्टयम् ॥८३॥
मत्तोन्मत्तप्रमत्तास्तु नवा नार्य्यस्तु ताः सदा ।
समाविशन्ति नाशाय चोदयन्तीह दारुणम् ॥८४॥
अधर्म्मं धर्म्मरूपेण कामंचाकामरूपिणम् ।
अनर्थञ्चार्थरूपेण मोक्षंचामोक्षरूपिणम् ॥८५॥
दुर्व्विनीता विना शौचं दर्शयन्ति पृथङ्नरान् ।
भ्राम्यन्ते ताभिरष्टाभिः पुरुषार्थात् पृथङ्नराः॥८६॥
तासां प्रवेशश्च गृहे सन्ध्यर्क्षेषु उदुम्बरे ।
धात्रे विधात्रे च बलिर्यत्र काले न दीयते ॥८७॥
भुञ्जतां पिबतां वापि सङ्गिभिर्जलविप्रुषैः ।
नवनारीषु संक्रान्तिस्तासामास्वभिजायते ॥८८॥
विरोधिन्याख्रयः पुत्राश्चोदको ग्राहकस्तथा ।
तमःप्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपं शृणुष्व मे ॥८९॥
प्रदीपतैलसंसर्ग-दूषिते लङ्घिते तथा ।
मुषलोलूखले यत्र पादुके वासने स्त्रियः ॥९०॥
शूर्पदात्रादिकं यत्र पदाकृष्य तथासनम् ।
यत्रोपलिप्तंचानर्च्य विहारः क्रियते गृहे ॥९१॥
दर्व्वीमुखेण यत्राग्निराहृतोऽन्यत्र नीयते ।
विरोधिनीसुतास्तत्र विजृम्भन्ते प्रचोदिताः ॥९२॥
एको जिह्वागतः पुंसां स्त्रीणाञ्चालीकसत्यवान् ।
चोदको नाम स प्रोक्तः पैशुन्यं कुरुते गृहे ॥९३॥
अवधानकृतश्चान्यः श्रवणस्थोऽतिदुर्म्मतिः ।
करोति ग्रहणं तेषां वचसां ग्राहकस्तु सः ॥९४॥
आक्रम्यान्यो मनो नृणां तमसाच्छाद्य दुर्म्मतिः।
क्रोधं जनयते यस्तु तमःप्रच्छादकस्तु सः ॥९५॥
स्वयंहार्य्यास्तु चौर्य्येण जनितं तनयत्रयम् ।
सर्व्वहार्य्यर्द्धहारी च वीर्य्यहारी तथैव च ॥९६॥
अनाचान्तगृहेष्वेते मन्दाचारगृहेषु च ।
अप्रक्षालितपादेषु प्रविशत्सु महानसम् ॥९७॥
खलेषु गोष्ठेषु च वै द्रोहो येषु गृहेषु वै ।
तेषु सर्व्वे यथान्यायं विहरन्ति रमन्ति च ॥९८॥
भ्रामण्यास्तनयस्त्वेकः काकजङ्घ इति स्मृतः ।
रतिं सर्व्वो नैव प्राप्नोति वै पुरे ॥९९॥

उसकी प्रचोदिका धर्म वाली चार कन्यायें हुईं ॥ उनके नाम हैं-(१) मत्ता (२) उन्मत्ता (३) प्रमत्ता और (४) नवा। ये मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर के उनके नाश की प्रेरणा करती हैं ॥८४॥ ये मनुष्य को धर्म से अधर्म, अकाम से काम, अर्थ से अनर्थ और मोक्ष से अमोक्षमें प्रेरित करती हैं ॥ ८५ ॥ ये दुर्विनीत हैं और अपवित्र मनुष्यों को दिखाई देती हैं, ये सातों पुरुषों को अर्थ से अलगकर घुमाती हैं ॥८६॥ इनका प्रवेश घर, संध्या, ऋक्ष और गूलर में है तथा उस जगह में भी है जहाँ धाता, विधाता और काल को वलि नहीं दिया जाता है ॥ ८७ ॥ उपरोक्त वलि दिये विना जो भोजन खाया और पानी पिया जाताहै उसके साथ ये मनुष्योंमें प्रवेश करती हैं तथा नई स्त्रियों में भी ये शीघ्र घुसजाती हैं ॥ ८८ ॥ विरोधिनी के चार पुत्र हैं (१) चोदक (२) ग्राहक और तीसरा तमः प्रच्छादक, अब इनका स्वरूप सुनो ॥८९॥ जलते हुए दीपक के तेल से भींगी हुई जगह पर, लाँघी हुई चीज पर, मूशल, ओखली या खड़ाऊँ में ॥९०॥ तथा सूप, दरेतीऔर स्त्रियों के पाँव से खींचे हुए आसन पर और उस घर में जहाँ विना लीपे और पूजन किये लोग रहते हैं ॥९१॥ तथा जहाँ कलछी से अग्नि निकाल कर दूसरे को दी जाती है विरोधिनीके पुत्र इन स्थानों में रहते हैं और मनुष्यों में बकवाद कराते हैं ॥९२॥ चोदक नाम का नियोजिका का पहिला पुत्र स्त्री और पुरुषों की जीभ पर बैठकर असत्य भाषण कराता और कुटिलता पैदा करता है ॥९३॥ दूसरा दुर्मति कान में स्थित रहता है तथा स्त्री-पुरुषों के वचनों को ग्रहण करता है, इसी कारण उसका नाम ग्राहक है ॥ ९४ ॥ तीसरा दुर्बुद्धि मनुष्यों के मन पर आक्रमण करता है और उसको तमोगुण से आच्छादित करके क्रोध उत्पन्न करता है, इसलिये उसको तमः प्रच्छादक कहते हैं ॥९५॥ स्वयंहारी के चौर्य से तीन पुत्र उत्पन्न हुए (१) सर्वहारी (२) अर्द्धहारी और (३) वीर्यहारी ॥९६॥ जो घर लीपा नहीं जाता तथा जहाँ सदाचार की न्यूनता है और जहाँ विना पाँव धोये लोग पाकशाला आदि में घुस जाते हैं ॥९७॥ उपरोक्त स्थानोंमें तथा खलिहानों में, गोष्ठों में और जिन घरों में परस्पर विद्रोह हो वहाँ यह अच्छी तरह रमण करते हैं ॥ भ्रामणी के एक पुत्रहुआ जिसको काकजंघ कहते हैं उससे प्रभावित हुआ मनुष्य कहीं आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ ९९ ॥

भुञ्जन् यो गायते मैत्रे गायते हसते च यः ।
सन्ध्यामैथुनिनंचैव नरमाविशति द्विज ॥१००॥
कन्यात्रयं प्रसूता सा या कन्या ऋतुहारिणी १०१॥
एका कुचहरा कन्या अन्या व्यञ्जनहारिका ।
तृतीया तु समाख्याता कन्यका जातहारिणी १०२॥
यस्या न क्रियते सर्व्वः सम्यग्वैवाहिको विधिः ।
कालातीतोऽथवा तस्या हरत्येका कुचद्वयम्॥१०३॥
सम्यक् श्राद्धमदत्त्वा च तथानर्च्च्य च मातरम् ।
विवाहितायाः कन्याया हरति व्यञ्जनं तथा॥१०४॥
अग्न्यम्बुशून्ये च तथा विधूपे सूतिकागृहे ।
अदीपशस्त्रमुषले भूतिसर्षपवर्ज्जिते ॥१०५॥
अनुप्रविश्य सा जातमपहृत्यात्मसम्भवम् ।
क्षणप्रसविनी बालं तत्रवोत्सृजते द्विज ॥१०६॥
सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना ।
तस्मात् संरक्षणं कार्य्यं यत्नतः सूतिकागृहे ॥१०७॥
स्मृतिञ्चाप्रयतानाञ्च शून्यागारनिषेवणात् ।
अपहन्ति सुतस्तस्याः प्रचण्डो नाम नामतः॥१०८॥
पौत्रेभ्यस्तस्य सम्भूता लीकाः शतसहस्रशः ।
चण्डालयोनयश्चाष्टौ दण्डपाशातिभीषणाः ॥१०९॥
क्षुधाविष्टास्ततो लीकास्ताश्च चण्डालयोनयः ।
अभ्यधावन्त चान्योन्यमत्तुकामाः परस्परम्॥११०॥
प्रचण्डो वारयित्वा तु तास्ताश्चण्डालयोनयः ।
समये स्थापयामास यादृशे तादृशं शृणु ॥१११॥
अद्यप्रभृति लीकानामावासं यो हि दास्यति ।
दण्डं तस्याहमतुलं पातयिष्ये न संशयः ॥११२॥
चण्डालयोन्यावसथे लीका या प्रसविष्यति ।
तस्याश्च सन्ततिः सर्व्वा सा च सद्यो नशिष्यति ११३
प्रसूते कन्यके द्वे तु स्त्रीपुंसोर्वीजहारिणी ।
वातरूपामरूपांच तस्याः प्रहरणन्तु ते ॥११४॥
वातरूपा निषेकान्ते सा यस्मै क्षिपते सुतम् ।
स पुमान् वातशुक्रत्वं प्रयाति वनितापि वा ॥११५॥
तथैव गच्छतः सद्यो निर्वीजत्वमरूपया ।
अस्नाताशी नरो योऽसौ तथा चापिवियोनिगः११६॥

भोजन करते समय जो गाते या हँसते हैं अथवा संध्या समय जो मैथुन करतेहैं हे द्विज ! काकजंघ उनके शरीर में प्रवेश कर जाता है ॥१००॥ दुःसह की कन्या ऋतुहारिणी के तीन कन्यायें उत्पन्न हुईं पहिली का नाम कुचहरा, दूसरीका व्यञ्जनहारिका और तीसरी जातहारिणी नाम से विख्यात हुई ॥ जिस स्त्री के विवाह को विधि पूर्वक नहीं किया जाता है अथवा जिसका विवाह मुहूर्त चूकने पर होता है उसके दोनों स्तनों को कुचहरा हरण कर लेती है ॥ १०३ ॥ भली भांति श्राद्ध किये विना अथवा मातृगणों को पूजे विना जो कन्या विवाही जाती है उसके भोजन को व्यंजनहरा हरलेती है ॥ जिस प्रसविनी स्त्री के घर में अग्नि, जल, धूप, शस्त्र या मुशल न हो अथवा सरसों भी छिड़का हुआ न हो उस घर में वह जातहारिणी प्रवेश कर के उस बालक को हरण कर लेती है जिससे हे क्रौष्टुकिजी ! वह बालक क्षण भर में मर जाता है ॥१०५॥१०६॥ वह भयानक जातहारिणी सदा मांस भक्षण करती है इससे बचने के लिये प्रसूतिगृह का भली भांति प्रबन्ध होना चाहिये ॥ १०७ ॥ जब सूतिगृह सूना रहता है तब स्मृतिहरा का पुत्र प्रचण्ड उस घर में प्रवेश करके उस स्त्रीकी बुद्धि को हरण कर लेता है ॥१०८॥ प्रचण्ड के पुत्र और पौत्रों से लाखों लीक उत्पन्नहुए जो चाण्डाल योनि तथा दण्ड और पाश हाथमें लिये हुए अति भयानक थे ॥ १०९ ॥ वे चाण्डाल योनि लीक भूख से पीड़ित होकर एक दूसरे को खाने की इच्छा से एक दूसरेके ऊपर दौड़े॥११०॥ उन चांडालयोनियों को प्रचण्ड ने रोका और जिस प्रकार उनका समय निश्चित किया वह सुनो ॥ १११ ॥ आज से पीछे जो मनुष्य लीकों को स्थान देगा उसको मैं अतुल दण्ड दूँगा जिससे वह गिरेगा इसमें संशय नहीं ॥ ११२ ॥ जिस चांडाल के घर में स्त्री प्रवेश करती है उसकी सन्तान और स्वयं वह लीकों के दोष से नष्ट होजाते हैं ॥ ११३॥ स्त्री और पुरुषों के वीर्य को हरण करनेवाली बीजहारिकाके दो कन्या उत्पन्न हुईं (१) वातरूपा (२) अरूपा, इनका परिहार सुनो॥११४॥ जो मनुष्य ऋतुकाल में स्त्रीगमन करता है वातरूपा उसके तथा स्त्री के शरीर में प्रवेश कर वीर्य सम्बन्धी प्रमेहादि रोग उत्पन्न करती है ॥ ११५॥ इसी तरह ऋतुकाल के बाद शुद्ध होने पर जो मनुष्य स्त्रीसे भोग नहीं करता उसके शरीर में अरूपा प्रवेश करके उसका वीर्य हरण

विद्वेषिणी तु या कन्या भृकुटीकुटिलानना ।
तस्या द्वौ तनयौ पुंसामपकारप्रकाशकौ ॥११७॥
निर्वीजत्वं नरो याति नारी वा शौचवर्ज्जिता ।
पैशुन्याभिरतं लोलमसज्जलनिषेवणम् ॥११८॥
पुरुषद्वेषिणंचैतौ नरमाक्रम्य तिष्ठतः ।
मात्रा भ्रात्रा तथा मित्रैरभीष्टैः स्वजनैः परैः॥११९॥
विद्विष्टो नाशमायाति पुरुषो धर्म्मतोऽर्थतः ।
एकस्तु स्वगुणाल्लोके प्रकाशयति पापकृत् ॥१२०॥
द्वितीयस्तु गुणान् मैत्रीं लोकस्यामपकर्षति ।
इत्येते दौःसहाः सर्व्वे यक्ष्मणः सन्ततास्त्वथ ।
पापाचाराः समाख्याता यैर्व्याप्तमखिलं जगत्१२१॥

करती है ॥११६॥ और विद्वेषिणीके जिसकी भृकुटि सदैव तनी रहती है दो पुत्र उत्पन्न हुए, पहिला पुरुषों का उपकारक और दूसरा प्रकाशक ॥११७॥ जो पुरुष नपुंसक हो तथा जो स्त्री अपवित्र हो, चुगली खाने में जिसकी रुचि हो, जो चञ्चल हो अथवा अशुद्ध जल से स्नान करताहो ॥११८॥ जिस पुरुष में द्वेष भाव हो ऐसे पुरुषों में ये दोनों प्रवेश कर जाते हैं तथा माता, भ्राता, मित्र, प्रिय और स्वजनों से ॥ ११९॥ जो विरोध करा कर मनुष्य के धर्मार्थ को नष्ट करता है वह प्रकाशक अपने गुण से संसार में पापी को प्रगट करता है ॥ १२०॥ दूसरा गुणों और मित्रता का नाश कर देता है॥ हे क्रौष्टुकिजी ! यक्ष्म दुःसह की इन सब सन्तानों का जो पापी हैं तथा जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्तहै मैंने आपसे वर्णन किया ॥१२१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें दौःसहोत्पत्ति समापन नाम ५१वाँ अ० समाप्त ।

बावनवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

इत्येष तामसः सर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥
तनयाश्च तथैवाष्टौ पत्न्यः पुत्राश्च ते तथा ।
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतः प्रभोः ॥ २ ॥
प्रादुरासीदथाङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः ।
रुरोद सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विजसत्तम ॥ ३ ॥
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ।
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच जगत्पतिम् ॥ ४ ॥
रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीर्धैर्य्यमावह ।
एवमुक्तस्ततः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद ह ॥ ५ ॥
ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः ।
स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीः पुत्रांश्च वै द्विज॥ ६ ॥
भवं सर्व्वं तथेशानं तथा पशुपतिं प्रभुः ।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥ ७ ॥
चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार ह ॥ ८ ॥
सूर्य्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च ।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् ।

मार्कण्डेयजी बोले—

अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का तामस सर्ग तो यह हुआ, अब उनके रुद्र सर्ग को कहता हूँ सुनो ॥१॥ जब प्रभु ब्रह्माजी ने कल्प के आदि में अपने समान पुत्र उत्पन्न करने का विचार किया तो उनके आठ पुत्र और आठ पुत्रियां उत्पन्न हुईं और वे पुत्रियां उन आठ पुत्रों की स्त्रियां हुईं ॥ २ ॥ हे विप्रवर ! ब्रह्माजी के अङ्क से जो नीलवर्ण पुत्र हुआ वह दौड़ कर बड़े ऊंचे स्वर से रोने लगा ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी ने उस रोते हुए पुत्र से पूछा कि तुम क्यों रोते हो ? उसने कहा कि मेरा नाम रखिये । इसपर जगत् के स्वामी ब्रह्माजी उससे बोले ॥४ ॥ हे देव ! तुम मत रोओ, धैर्य रक्खो, तुम्हारा नाम रुद्र होगा । उस से ऐसा कहने पर वे सातों भी रोने लगे ॥ ५ ॥ तब प्रभु ब्रह्माजी ने उन सातों के नाम भी रखदिये इन आठों के स्थान तथा इनकी स्त्री और पुत्रों के नाम भी सुनो ॥ ६ ॥ पितामह ने उनके भव, सर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ये सात नाम रक्खे ॥७॥ इस प्रकार नामकरण करके उनका स्थान भी निश्चित किया ॥८ ॥ सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश और चन्द्रमा, ये क्रमशः ब्रह्माजी के उपरोक्त सात पुत्रों के स्थान हैं तथा

सुवर्च्चला तथैवोमा विकेशी चापरा स्वधा ॥ ६ ॥
स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम् ।
सूर्य्यादीनां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह ॥१०॥
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ।
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात् सुतः ॥११॥
एवम्प्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्य्यामविन्दत ।
दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वं कलेवरम् ॥१२॥
हिमवद्दुहिता साभून्मेनायां द्विजसत्तम ।
तस्या भ्राता तु मैनाकः सखाम्भोधेरनुत्तमः ।
उपयेमे पुनश्चैनामनन्यां भगवान् भवः ॥१३॥
देवौ धाता-विधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत ।
श्रियंच देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ॥१४॥
आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः ।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥१५॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च पिता मम महायशाः ।
मनस्विन्यामहं तस्मात् पुत्रो वेदशिरा मम ॥१६॥
धूम्रवत्यां समभवत् प्राणस्यापि निबोध मे ।
प्राणस्य द्युतिमान् पुत्र उत्पन्नस्तस्य चात्मजः ॥१७
अजराश्च तयोः पुत्राः पौत्राश्च बहवोऽभवन् ।
पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत ॥१८॥
विरजाः पर्व्वतश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ।
तयोः पुत्रांस्तु रक्षिष्ये वंशसंकीर्त्तने द्विज ॥१६॥
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमती तथा ॥२०॥
अनुसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।
सोमं दुर्व्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्च योगिनम् ॥२१॥
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ।
पूर्व्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२२॥
कर्दमश्चार्व्ववीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ।
क्षमा तु सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापतेः ॥२३॥
क्रतोस्तु सन्नतिर्भार्य्या वालिखिल्यानसूयत ।
षष्टिर्यानि सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥२४॥
ऊर्ज्जायान्तु वशिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।
रजोगात्रोर्द्ध्वबाहुश्च सबलश्चानघस्तथा ॥२५॥

सुवर्च्चला, उमा, विकेशी, स्वधा ॥ ६ ॥ और स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी, हे क्रौष्टुकिजी ! ये रुद्र सहित सूर्यादिक ब्रह्माजी के आठ पुत्रों की क्रमसे स्त्रियाँ हुईं ॥१०॥ तथा इनके पुत्र क्रमशः शनिश्चर शुक्र, मङ्गल मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध हुए ॥११॥ इसी प्रकार रुद्र ने सती को अपनी स्त्री बनाया जिसने दक्ष के क्रोध करने के कारण अपने शरीरको छोड़ दिया ॥१२॥ हे विप्रवर ! वह मेनासे हिमवानकी पुत्री हुई, उसका भ्राता मैनाक हुआ जिसका मित्र समुद्र है और फिर इन पार्वतीजी ने स्वयं भगवान् शिव के साथ विवाह किया ॥ भृगु की स्त्री ख्याति से धाता और विधाता नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए और देवदेव नारायणजी की स्त्री लक्ष्मीजी हुईं ॥ १४ ॥ महात्मा मेरु की दोनों कन्यायें आयति और नियतिधाता और विधाताकी स्त्रियां हुईं और उनसे क्रमशः दो पुत्र हुए ॥ १५ ॥ प्राण और मेरा पिता मृकण्डु । मृकण्डु का विवाह मनस्विनी से हुआ जिससे मेरी उत्पत्ति हुई और मेरे पुत्र का नाम वेदशिरा है ॥ १६ ॥ धूम्रवती से प्राण की जो सन्तान हुई उसको सुनो । प्राण का पुत्र द्युतिमान् हुआ तथा द्युतिमान् का छोटा भाई ॥ १७ ॥ अजरा हुआ, उन दोनों के बहुत से पुत्र और नाती हुए और मरीचि की स्त्री संभूति से पूर्णमास नाम का पुत्र हुआ ॥ १८ ॥ महात्मा पूर्णमास के विरजा और पर्वत नाम के दो पुत्र हुए। हे द्विज ! इन दोनों के पुत्रों के नाम वंश वर्णन में कहूंगा ॥ १६ ॥ अङ्गिरा की स्त्री स्मृति के कन्यायें उत्पन्न हुईं जिनके नाम हैं सिनीवाली, कुहू, राका, भानुमती तथा ॥ २० ॥ अनुसूया जिसने अत्रि मुनि से विवाह किया जिसके पुण्यात्मा सोम, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय पुत्रहुए ॥२१॥ पुलस्त्य की प्रीति नाम स्त्री से दत्तोलि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ जो पूर्वजन्मके स्वायंभुव मन्वन्तरमें अगस्त्य के नाम से विख्यात थे ॥ २२ ॥ कर्दम, अर्व्ववीर और सहिष्णु ये तीनों पुत्र पुलह प्रजापति की स्त्री क्षमा से उत्पन्न हुए ॥२३॥ क्रतु की स्त्री सन्नति हुई जिससे वालिखिल्य लोग उत्पन्न हुए, ये ही साठ हज़ार ऊर्ध्वरेतस ऋषि हुए ॥ २४ ॥ वशिष्ठ की ऊर्ज्जा नाम की स्त्री से सात पुत्र हुए, (१) रज, (२) गात्र, (३) ऊर्ध्वबाहु, (४) सबल, (५)

सुतपाः शुक्र इत्येते सर्व्वे सप्तर्षयः स्मृताः ।
योऽसावग्निरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ॥२६॥
तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ।
पावकं पवमानंच शुचिञ्चापि जलाशिनम् ॥२७॥
तेषान्तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पंच च ।
कथ्यन्ते बहुशश्चैते पिता पुत्रत्रयंच यत् ॥२८॥
एवमेकोनपंचाशद्वुर्ज्जयाः परिकीर्त्तिताः ।
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा ये व्याख्याता मया तव॥२६॥
अग्निष्वात्ता वर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ।
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वैधारिणीं तथा ॥३०
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ।
उत्तमज्ञानसम्पन्ने सर्व्वैः समुदिते गुणैः ॥३१॥
इत्येषा दक्षकन्यानां कथितापत्यसन्ततिः ।
श्रद्धावान् संस्मरन्नेतानानपत्योऽभिजायते ॥३२॥

अनघ ॥ २५ ॥ (६) सुतपा, (७) शुक्र । ये ही सप्तर्षि कहलाते हैं, और ब्रह्मा के प्रथम पुत्र जो अग्नि हैं ॥२६॥ उनके स्वाहा से परम उदार और तेजस्वी तीन पुत्र हुए-(१) पावक, (२) पवमान् और तीसरा जल का भोजन करनेवाला शुचि॥२७॥ उनके पैंतालीस सन्तानें हुईं, तथा तीन पुत्र और पिता सहित ॥ २८ ॥ वे उनंचास दुर्ज्जय हुए । हे विप्रवर ! ब्रह्माजी ने जो पितरों को सृजा वह मैंने तुमसे वर्णन करदिया है ॥२६॥ अग्निष्वाता,वर्हिषद, अनग्नि और साग्नि इनसे स्वधा के दो कन्यायें हुईं (१) मेना और (२) धारिणी ॥ ३० ॥ हे द्विज ! वे दोनों उत्तम ज्ञान से युक्त, सर्वगुण सम्पन्न, ब्रह्मवादिनी हुईं ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी की कन्याओं की सन्तति का यही वर्णन है, जो इसको श्रद्धा पूर्वक स्मरण करता है उसके सन्तान उत्पन्न होती है ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में रुद्रसर्गाभिधान नाम ५२वां अध्याय समाप्त ।

तिरेपनवाँ अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

स्वायम्भुवं त्वयाख्यातमेतन्मन्वन्तरंच यत् ।
तदहं भगवन् सम्यक् श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् १
मन्वन्तरप्रमाणंच देवा देवर्षयस्तथा ।
ये च क्षितीशा भगवन् देवेन्द्रश्चैव यस्तथा ॥ २ ॥

क्रौष्टुकिजी बोले—

हे भगवन् ! आपने जो स्वायंभुव मन्वन्तर का वर्णन किया उसको मैं भली प्रकार सुनना चाहता हूँ, कहिये ॥१॥ मन्वन्तरका प्रमाण तथा उस काल में जो देवता, ऋषि, राजा लोग और देवेन्द्र हुए उनका वर्णन कीजिये ॥२॥

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तराणां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः ।
मानुषेण प्रमाणेन शृणु मन्वन्तरंच मे ॥ ३ ॥
त्रिंशत्कोव्यस्तु संख्याताः सहस्राणि च विंशतिः ।
सप्तपष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ।
मन्वन्तरप्रमाणंच इत्येतत् साधिकं विना ॥ ४ ॥
अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम् ।
द्विपंचाशत् तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च ॥ ५ ॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा ।
औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ ६ ॥
षडेते मनवोऽतीतास्तथा वैवस्वतोऽधुना ।

मार्कण्डेयजी बोले—

इकत्तर चतुर्युगोंका एक मन्वतन्र होता है अब मनुष्यों के वर्ष के प्रमाण से मन्वन्तर का समय सुनो ॥ ३ ॥ मनुष्यों के तीस करोड़ अड़सठ लाख वीस हज़ार वर्षों का एक मन्वन्तर होताहै मन्वंतर का यही प्रमाण है ॥ ४ ॥ और देवताओं के आठ लाख बावन हज़ार वर्ष का प्रमाण ॥ ५ ॥ स्वायंभुव मन्वन्तर का है, और इसके बाद इतना ही स्वारोचिष मन्वन्तर होता है तथा औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुस ॥ ६ ॥ ये सब छः मन्वन्तर हैं, इनके बीतने पर वैवस्वत मन्वन्तर होता है जो

सावर्णिः पंच रौच्याश्च भौत्याश्चागमिनस्त्वमी ७
एतेषां विस्तरं भूयो मन्वन्तरपरिग्रहे।
वक्ष्ये देवानृषींश्चैव यक्षेन्द्राः पितरश्च ये ॥८॥
उत्पत्तिं संग्रहं ब्रह्मन् श्रूयतामस्य सन्ततिः।
यच्च तेषामभूत् क्षेत्रं तत्पुत्राणां महात्मनाम् ॥९॥
मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पुत्रास्तु तत्समाः।
यैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपर्व्वता ।१०
ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षं निवेशिता।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्व्वमाद्ये त्रेतायुगे तथा ॥११॥
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य च।
प्रियव्रतात् प्रजावत्यां वीरात् कन्या व्यजायत॥१२॥
कन्या सा तु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः।
कन्ये द्वे दश पुत्रांश्च सम्राट् कुक्षी च ते उभे ॥१३॥
तयोव भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश।
अग्नीध्रो मेधातिथिश्च वपुष्मांश्च तथापरः ॥१४॥
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् भव्यः सवनः सप्त एव ते।
मेधाग्निबाहुमित्राश्चतपो योग परायणाः।
जातिस्मरा महाभागा न राज्यायमनो दधुः ॥१५॥
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत् तान् सप्त सप्तसु पार्थिवान्।
द्वीपेष्वेतेषु धर्म्मेण द्वीपांश्चैव निबोध मे।
जम्बुद्वीपे तथाग्नीध्रं राजानं कृतवान् पिता ॥१६॥
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः।
शाल्मले तु वपुष्मन्तं ज्योतिष्मन्तं कुशाह्वये ॥१७॥
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमन्तं भव्यं शाकाह्वयेश्वरम्।
पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् सुतम् ॥१८
महावीतो धातकिश्च पुष्कराधिपतेः सुतौ।
द्विधा कृत्वा तयोर्वर्षं पुष्करं संन्यवेशयत् ॥१९॥
भव्यस्य पुत्राः सप्तासन् नामतस्तान् निबोध मे।
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो वनीयकः ॥२०॥
कुशोत्तरोऽथ मेधावी सप्तमस्तु महाद्रुमः।
तन्नामकानि वर्षाणि शाकद्वीपे चकार सः ॥२१॥
तथा द्युतिमतः सप्त पुत्रास्तांश्च निबोध मे।
कुशलो मनुगश्चोष्णः प्राकारश्चार्थकारकः ॥२२॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तमः परिकीर्त्तितः।

आजकल चल रहा है और सावर्णि पञ्चरौच्य तथा भौत्य के आने पर ॥७॥ इनका विस्तार पूर्वक वर्णन मन्वन्तरों के वृत्तान्त में करूँगा तथा देवता ऋषि, यक्ष और पितर जो मन्वन्तरों में आते हैं॥ हे ब्रह्मन्! उनकी उत्पत्ति, संग्रह और सन्तति को सुनो तथा उनके जो क्षेत्र और महात्मा पुत्र हुए उनको भी कहूँगा ॥९॥ स्वायम्भुवमनु के दश पुत्र उन्हीं के समान हुए जिन्होंने कि सातों द्वीप और पर्वतों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को ॥१०॥ समुद्र के सहित अपने वश में कर लिया। पहिले स्वायंभुव मन्वन्तर में त्रेता युग के आदि में ॥११॥ प्रियव्रतके पुत्र और स्वायम्भुव के पौत्रों ने पृथ्वी पर राज्य किया। वीर प्रियव्रत ने कन्या प्रजावती से ॥१२॥ जो प्रजापति कर्द्दम की पुत्री थी विवाह किया। उन दोनों से दो कन्यायें और दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥१३॥ वे दसों भाई प्रजापति के समान शूरवीर थे। (१) अग्नीध्र, (२) मेधातिथि, (३) वपुष्मान् ॥१४॥ तथा (४) ज्योतिष्मान् (५) द्युतिमान्, (६) भव्य, (७) सवन। ये सात हुए और मेधा, अग्निबाहु तथा मित्र इन तीनों छोटे भाइयोंने राज्य में चित्त न दिया और तपस्या करनेके लिये योगी होगये ॥१५॥ राजा प्रियव्रत ने बड़े सात पुत्रों को सात द्वीपों का राजा बना दिया। अग्नीध्र को जम्बु द्वीप का राज्य मिला ॥१६॥ प्रियव्रत ने मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप, वपुष्मान् को शाल्मलि द्वीप तथा ज्योतिष्मान् को कुश द्वीप का राजा किया॥ १७॥ तथा क्रौंच द्वीप का राजा द्युतिमान् को, शाकद्वीप का भव्य को और पुष्कर का अधिपति सवन को बनाया ॥१८॥ पुष्कर के राजा सवन के महावीत और धातकि नाम दो पुत्र हुए जिन्होंने कि पुष्कर को आधा-आधा बांट लिया ॥ १९ ॥ भव्य के सात पुत्र हुए जिनके नाम मुझसे सुनो। (१) जलद, (२) कुमार, (३) सुकुमार, (४) वनीयक॥२०॥ (५) कुशोत्तर, (६) मोदाकी और (७) महाद्रुम। इन सातों को शाकद्वीप के सात भाग करके देदिये जिससे कि इनके नाम से सातवर्ष कहलाने लगे ॥२१॥ इसी प्रकार द्युतिमान् के सात पुत्र हुए जिनके नाम मुझसे सुनो। (१) कुशल, (२) मनुग, (३) उष्ण, (४) प्राकार, (५) अर्थकारक ॥२२॥ (६) मुनि और (७) दुन्दुभि। इन्हीं सातों के नाम

तेषां स्वनामधेयानि क्रौञ्चद्वीपे तथाभवन् ॥२३॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे पुत्रनामाङ्कितानि वै।
तत्रापि सप्त वर्षाणि तेषां नामानि मे शृणु ॥२४॥
उद्भिदं वैष्णवञ्चैव सुरथं लम्बनं तथा।
धृतिमत्प्रभाकरंचैव कापिलञ्चापि सप्तमम् ॥२५॥
वपुष्मतः सुता सप्त शाल्मलेशस्य चाभवन्।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥२६॥
वैद्युतो मानसश्चैव केतुमान् सप्तमस्तथा।
तथैव शाल्मले तेषां समनामानि सप्त वै ॥२७॥
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै।
येषां नामाङ्कितैर्वर्षैः प्लक्षद्वीपस्तु सप्तधा ॥२८॥
पूर्व्वं शाकभवं वर्षं शिशिरन्तु सुखोदयम्।
आनन्दञ्च शिवंचैव क्षेमकंच ध्रुवं तथा ॥२९॥
प्लक्षद्वीपादिभूतेषु शाकद्वीपान्तिमेषु वै।
ज्ञेयः पंचसु धर्म्मश्च वर्णाश्रमविभागजः ॥३०॥
नित्यः स्वाभाविकश्चैव अहिंसाविधिवर्ज्जितः।
पंचस्वेतेषु वर्षेषु सर्व्वं साधारणं स्मृतम् ॥३१॥
अग्नीध्राय पिता पूर्व्वं जम्बूद्वीपं ददौ द्विज।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमा नव ॥३२॥
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः।
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ॥३३॥
रम्यश्च पंचमः पुत्रो हिरण्यः षष्ठ उच्यते।
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः ॥३४॥
नवमः केतुमालश्च तन्नाम्ना वर्षसंस्थितिः।
यानि किम्पुरुषाख्याणि वर्ज्जयित्वा हिमाह्वयम् ३५
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः।
विपर्य्ययो न तेष्वस्ति जरा-मृत्युभयं न च ॥३६॥
धर्म्माधर्म्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः।
न वै चतुर्युगावस्था नार्त्तवा ऋतवो न च ॥३७॥
अग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विज।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः ॥३८॥
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राज्यमास्थितः।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः ॥३९॥
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।

से क्रौंच द्वीप में सात वर्षों के नाम पड़े तथा उस को सात भागों में बाँटा गया ॥ २३ ॥ ज्योतिष्मान् के कुशद्वीप में पुत्रों के नाम से सात वर्ष हुए, उन के नाम मुझसे सुनो ॥ २४ ॥ (१) उद्भिद, (२) वैष्णव, (३) सुरथ, (४) लम्बन, (५) धृतिमत् (६) प्रभाकर और (७) कापिल ॥२५॥ शाल्मलि द्वीप के स्वामी वपुष्मान् के सात पुत्र हुऐ (१) श्वेत, (२) हरित, (३) जीमूत, (४) रोहित ॥ (५) वैद्युत, (६) मानस और (७) केतुमान्। इन्हीं सातों के लिये शाल्मलि के सात खण्ड हुए और इनके नामों से वहाँ सात वर्ष कहलाये ॥२७॥ प्लक्षद्वीप के राजा मेधातिथि के भी सात पुत्र हुए जिनके नाम से प्लक्षद्वीप में अलग-अलग वर्ष हुए तथा प्लक्षद्वीप को सात भागों में विभक्त किया गया ॥ २८॥ उनके नाम ये हैं-(१) शाकभव, (२) शिशिर, (३) सुखोदय, (४) आनन्द, (५) शिव (६) क्षेमक और (७) ध्रुव ॥२९॥ प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच और शाक इन पाँच द्वीपों में वर्णाश्रम धर्म प्रचलित है ॥३०॥ यहाँ स्वाभाविकतया हिंसा नहीं होती है तथा इन पाँचों द्वीपों में सब धर्म साधारण हैं ॥३१॥ हे क्रौष्टुकिजी ! पिता प्रियव्रत ने अग्नीध्र को जम्बुद्वीप दिया था, उसके नौ पुत्र हुए जो प्रजापति के समान थे ॥ ३२ ॥ बड़े का नाम नाभि और उससे छोटे का नाम किम्पुरुष था तथा तीसरे का नाम हरिवर्ष और चौथे का इलावर्त हुआ ॥ ३३ ॥ पाँचवें पुत्र का नाम रम्य, छठे का हिरण्य, सातवें का कुरु और आठवें का भद्राश्व हुआ ॥ ३४ ॥ नवां पुत्र केतुमाल हुआ, इन्हीं नौ पुत्रोंके नाम जम्बूद्वीपके नौ वर्ष हुए और किंपुरुष आदि जो वर्ष हैं उनमें हिमवर्ष को छोड़कर ॥३५॥ सब वर्षों में स्वाभाविकतया सिद्धि रहती है और विना प्रयत्न किये ही सब जीव सुखी रहते हैं वहाँ न विपत्तिहै और न वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय है ॥३६॥ वहाँ धर्म, अधर्म तथा उत्तम, मध्यम और अधम कुछ नहीं है और न वहाँ चारों युगहैं और न ऋतुयें ॥ ३७ ॥ हे द्विज ! अग्नीध्र का पुत्र नाभि और उसके ऋषभदेव हुए। ऋषभ के भरत आदि सौ पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ ऋषभ अपने पुत्र भरत को राज्याभिषेक करके पुलह के आश्रम को तप करने के लिये चले गये ॥३९॥ पिता ने भरतको हिमालय के दक्षिण का वर्ष दिया जो कि उसके नाम पर

तस्मात् तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥४०॥
भरतस्याप्यभूत् पुत्रः सुमतिर्नाम धार्म्मिकः ।
तस्मिन् राज्यं समावेश्य भरतोऽपि वनं ययौ ॥४१॥
एतेषां पुत्रपौत्रैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तु भुक्ता स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥४२॥
एष स्वायम्भुवः सर्गः कथितस्ते द्विजोत्तम ।
पूर्व्वमन्वन्तरे सम्यक् किमन्यत् कथयामि ते ॥४३॥

भारतवर्ष नाम से विख्यात हुआ ॥ ४० ॥ भरत को भी सुमति नाम धार्मिक पुत्र हुआ जिसको कि राज्य देकर भरत भी वन को गये ॥ ४१ ॥ इस स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रियव्रत के पुत्र पौत्रों ने सप्तद्वीपा वसुन्धरा को भोगा ॥ ४२ ॥ हे क्रौष्टुकि ! ये मैंने स्वायंभुव मन्वन्तर आपसे कहा, अब मैं और क्या कहूँ यह बताइये ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मन्वन्तर कथन नाम ५३वाँ अध्याय समाप्त ।

चौवनवां अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्व्वता वा कति द्विज ।
कियन्ति चैव वर्षाणि तेषां नद्यश्च का मुने ॥ १ ॥
महाभूतप्रमाणंच लोकालोकं तथैव च ।
पर्य्यासं परिमाणञ्च गतिं चन्द्रार्कयोरपि ॥ २ ॥
एतत् प्रब्रूहि मे सर्व्वं विस्तरेण महामुने ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शतार्द्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशो द्विज ।
तस्या हि स्थानमखिलं कथयामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥
ये ते द्वीपा मया प्रोक्ता जम्बूद्वीपादयो द्विज ।
पुष्करान्ता महाभाग शृणवेषां विस्तरं पुनः ॥ ५ ॥
द्वीपात् तु द्विगुणो द्वीपो जम्बूः प्लक्षोऽथ शाल्मलः ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करद्वीप एव च ॥ ६ ।
लवणेक्षु-सुरा-सर्पिर्दधि-दुग्ध-जलाब्धिभिः ।
द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्ध्या सर्व्वतः परिवेष्टिताः ॥ ७ ॥
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं प्रवक्ष्येऽहं निबोध मे ।
लक्षमेकं योजनानां वृत्तो विस्तारदैर्घ्यतः ॥ ८ ॥
हिमवान् हेमकूटश्च ऋषभो मेरुरेव च ।
नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी सप्तास्मिन् वर्षपर्व्वताः ॥ ९ ॥
द्वौ लक्षयोजनायामौ मध्ये तत्र महाचलौ ।
तयोर्दक्षिणतो यौ तु यौ तथोत्तरतो गिरी ॥१०॥
दशभिर्दशभिर्न्यूनैः सहस्रैस्तैः परस्परम् ।
द्विसाहस्रोच्छ्रयाः सर्व्वे तावद्विस्तारिणश्च ते ॥११॥

क्रौष्टुकिजी बोले—

हे मार्कण्डेयजी ! कितने द्वीप, समुद्र, पर्वत और वर्ष हैं और उनमें कौनसी नदियां हैं ? ॥ १ ॥ पृथ्वी का प्रमाण, लोकालोक और उनके चारों ओर का प्रमाण और चन्द्रमा सूर्य की गति भी ॥ हे महामुनि ! ये सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे द्विज ! सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है, अब उसके सब स्थानोंको कहता हूँ सुनो ॥ ४ ॥ हे विप्र ! मैंने तुमको जम्बू आदि द्वीपों से लेकर पुष्कर तक बताये, अब इनका विस्तार सुनो ॥५॥ एक द्वीप से दूसरा द्वीप दुगना है अर्थात् जम्बू द्वीप से दुगना प्लक्ष, प्लक्ष से दुगना शाल्मलि, शाल्मलि से दुगना कुश, कुश से से दुगना क्रौंच, क्रौंच से दुगना शाक और शाकसे दुगना पुष्कर है ॥६॥ और यह द्वीप लवण, ईख के रस, सुरा, घृत, दही, दूध और जल के समुद्रों से जो एक से दूसरा दुगना है चारों ओर घिरे हुए हैं ॥७॥ अब मैं जम्बू द्वीप का प्रमाण कहता हूँ सुनो । वह एक लाख योजन लम्बा और चौड़ा है ॥ ८ ॥ हिमवान, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी ये सात इसमें वर्ष-पर्वत हैं ॥ ९ ॥ इसके बीच में एक-एक लाख योजन के दो महान् पर्वत हैं, इन दोनों के उत्तर और दक्षिण में दो-दो पर्वत और हैं ॥ १० ॥ वे पर्वत लम्बाई में दशांश कम हैं तथा वे दो हज़ार योजन ऊँचे और इतने ही चौड़े

समुद्रान्तःप्रविष्टाश्च षड्स्मिन् वर्षपर्व्वताः ।
दक्षिणोत्तरतो निम्ना मध्ये तुङ्गायता क्षितिः॥१२
विद्याद्वै दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे ।
इलावृतं तयोर्मध्ये चन्द्रार्द्धाकारवत् स्थितम् ॥१३॥
ततः पूर्व्वेण भद्राश्वं केतुमालंच पश्चिमे ।
इलावृतस्य मध्ये तु मेरुः कनकपर्व्वतः ॥१४॥
चतुरशीतिसाहस्रस्तस्योच्छ्रायो महागिरेः ।
प्रविष्टः षोड़शाधस्ताद्विस्तीर्णं षोड़शैव तु ॥१५॥
शरावसंस्थितत्वाच्च द्वात्रिंशन्मूर्द्धि्न विस्तृतः ।
शुक्लः पीतोऽसितो रक्तः प्राच्यादिषु यथाक्रमम्॥१६॥
विप्रो वैश्यस्तथा शूद्रः क्षत्रियश्च सवर्णतः ।
तस्योपरि तथैवाष्टौ पूर्व्वादिषु यथाक्रमम् ॥१७॥
इन्द्रादिलोकपालानां तन्मध्ये ब्रह्मणः सभा ।
योजनानां सहस्राणि चतुर्दश समुच्छ्रिता ॥१८॥
अयुतोच्छ्रायस्तस्याधस्तथा विष्कम्भपर्व्वतः ।
प्राच्यादिषु क्रमेणैव मन्दरो गन्धमादनः ॥१९॥
विपुलश्च सुपार्श्वश्च केतुपादपशोभिताः ।
कदम्बो मन्दरे केतुजम्बूर्वै गन्धमादने ॥२०॥
विपुले च तथाश्वत्थः सुपार्श्वे च वटो महान् ।
एकादशशतायामा योजनानामिमे नगाः ॥२१॥
जठरो देवकूटश्च पूर्व्वस्यां दिशि पर्व्वतौ ।
आनील-निषधौ प्राप्तौ परस्परनिरन्तरौ ॥२२॥
निषधः पारिपात्रश्च मेरोः पार्श्वे तु पश्चिमे ।
यथा पूर्व्वौ तथा चैतावानीलनिषधायतौ ॥२३॥
कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणेन महाचलौ ।
पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२४॥
शृङ्गवान् जारुधिश्चैव तथैवोत्तरपर्व्वतौ ।
यथैव दक्षिणे तद्वदन्तर्वान्तर्व्यवस्थितौ ॥२५॥
मर्य्यादापर्व्वता ह्येते कथ्यन्तेऽष्टौ द्विजोत्तम ।
हिमवद्धेमकूटादिपर्व्वतानां परस्परम् ॥२६॥
नव योजनसाहस्रं प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् ।
मेरोरिलावृते तद्वदन्तरे वै चतुर्दिशम् ॥२७॥
...न यानि वै जम्बा गन्धमादनपर्व्वते ।

हैं ॥ ११॥ छः वर्ष-पर्वत समुद्र तक फैले हुए हैं और दक्षिण, उत्तर, नीचे तथा मध्य में वे ऊँचे हैं॥१२॥ तीन वर्ष दक्षिण तथा तीन वर्ष उत्तर में हैं और इलावर्त उन दोनों के बीच में अर्द्धचन्द्राकार की तरह स्थित है ॥ १३ ॥ उसके पूर्व में भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल हैं और इलावर्त के मध्य में सुवर्ण का मेरु पर्वत है ॥ १४ ॥ वह महान् पर्वत चौरासी हज़ार योजन ऊँचा है, वह सोलहहज़ार योजन पृथ्वी में धँसा हुआ और सोलह हज़ार योजन चौड़ा है ॥१५॥ इस पर्वतका शिखर बत्तीस हज़ार योजन चौड़ा है और शरावकी तरह स्थित है तथा पूर्व में श्वेत, दक्षिण में पीला, पश्चिम में नीला और उत्तरमें लाल रङ्गका मालूम होताहै ॥१६॥ ये पर्वत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंका है और उसके ऊपर पूर्वादि आठों दिशाओं में ॥ १७ ॥ इन्द्रादि लोकपाल रहते हैं तथा इसके बीच में ब्रह्मलोकहै, ये चौदह हज़ार योजन ऊँचा है ॥ १८ ॥ उसके नीचे दस हजार योजन ऊँचे विष्कम्भ आदि चार पर्वत क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में हैं (१) मन्दर (२) गन्धमादन ॥१९॥ (३) विपुल और (४) सुपार्श्व । इन चारों पर्वतों के ऊपर चार वृक्ष उनकी चार ध्वजाओं के सदृश हैं, मन्दर पर कदम्ब का वृक्ष, गन्धमादन पर जम्बू का वृक्ष ।, विपुल के ऊपर पीपल और सुपार्श्व के ऊपर बर-गद का वृक्षहै । इन पर्वतों का विस्तार ग्यारहसौ योजन है ॥२१॥ इसके पूर्व की दिशा में जठर और देवकूट पर्वत हैं तथा जठर के पास आनील और देवकूट के पास निषध पर्वत है ॥ २२ ॥ मेरु पर्वतके पश्चिम की ओर निषध और पारिपात्र हैं तथा पूर्व में स्थित जठर और देवकूट का जितना प्रमाण है उतना ही आनील और निषध का भी है ॥२३॥ मेरु के दक्षिण की ओर हिमवान् और कैलाश पर्वत हैं. इनका विस्तार भी उतना ही है जितना कि पूर्व और पश्चिम के पर्वतों का है तथा यह समुद्र के अन्दर तक फैले हुए हैं ॥२४॥ मेरु पर्वत के उत्तर की ओर शृङ्गवान् और जारुधि पर्वतहैं तथा जिस प्रकार दक्षिण के पर्वत समुद्र में घुसे हुए हैं उसी प्रकार ये भी समुद्र के अन्दर प्रविष्ट होगये हैं २५॥ हे क्रौष्टुकिजी ! ये आठों मर्यादा पर्वत हैं और हिमवान् तथा हेमकूट पर्वत परस्पर ॥२६॥ नौहज़ार योजन तक फैले हुएहैं और दक्षिण उत्तर इत्यादि चारों दिशाओं में इलावर्तके मध्यमें स्थित हैं ॥२७॥ और गंधमादन पर्वतपर जो जामुनके पेड़का फलहै

गजदेहप्रमाणानि पतन्ति गिरिमूर्द्धनि ॥२८॥
तेषां स्रावात् प्रभवति ख्याता जम्बूनदीति वै ।
यत्र जाम्बूनदं नाम कनकं सम्प्रजायते ॥२९॥
सा परिक्रम्य वै मेरुं जम्बूमूलं पुनर्नदी ।
विशति द्विजशार्दूल पीयमाना जनैश्च तैः ॥३०॥
भद्राश्वेऽश्वशिरा विष्णुर्भारते कूर्मसंस्थितिः ।
वराह केतुमाले च मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥३१॥
तेषु नक्षत्रविन्यासाद्विषयाः समवस्थिताः ।
चतुर्ष्वपि द्विजश्रेष्ठ ग्रहाभिभवपाठकाः ॥३२॥

वह हाथी के शरीर के बराबर है और पर्वत के शिखर पर गिरता रहता है ॥२८॥ उस फल में से जो रस निकलता है उससे जम्बू नदीका प्रादुर्भाव होता है जिसमें जाम्बूनद नामक सुवर्ण निकलता है ॥ २९ ॥ वह जाम्बू नदी मेरु पर्वत की परिक्रमा देती हुई उसी जम्बू के वृक्षके नीचे बहती है जिस से वहाँ के लोग उसी का जल पीते हैं ॥ ३० ॥ भद्राश्व वर्ष में विष्णु हयग्रीव रूप से भारतवर्ष में कूर्म, केतुमाल में वाराह तथा उत्तर में मत्स्यरूप से विराजते हैं ॥३१॥ हे क्रौष्टुकिजी ! इन चारों वर्षों में नक्षत्रों का आवागमन रहता है तथा ग्रहों का प्रभाव भी पड़ता है ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में भुवनकोष में जम्बूद्वीप कथन नाम का ५४वाँ अध्याय समाप्त ।



पचपनवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

शैलेषु मन्दराद्येषु चतुर्ष्वेव द्विजोत्तम ।
वनानि यानि चत्वारि सरांसि च निबोध मे ॥ १ ॥
पूर्व्वं चैत्ररथं नाम दक्षिणे नन्दनं वनम् ।
वैभ्राजं पश्चिमे शैले सावित्रं चोत्तराचले ॥ २ ॥
अरुणोदं सरः पूर्व्वं मानसं दक्षिणे तथा ।
शीतोदं पश्चिमे मेरोर्महाभद्रं तथोत्तरे ॥ ३ ॥
शीतार्त्तश्चक्रमुञ्जश्च कुलीरोऽथ सुकङ्कवान् ।
मणिशैलोऽथ वृषवान् महानीलो भवाचलः ॥ ४ ॥
सबिन्दुर्मन्दरो वेणुस्तामसो निषधस्तथा ।
देवशैलश्च पूर्व्वेण मन्दरस्य महाचलः ॥ ५ ॥
त्रिकूटशिखराद्रिश्च कलिङ्गोऽथ पतङ्गकः ।
रुचकः सानुमांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथ विशाखवान्॥६॥
श्वेतोदरः समूलश्च वसुधारश्च रत्नवान् ।
एकशृङ्गो महाशैलो राजशैलः पिपाठकः ॥ ७ ॥
पञ्चशैलोथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः ।
इत्येते दक्षिणे पार्श्वे मेरोः प्रोक्ता महाचलाः ॥ ८ ॥
सुरक्षः शिशिराक्षश्च वैदूर्य्यः पिङ्गलस्तथा ।
पिञ्जरोऽथ महाभद्रः सुरसः कपिलो मधुः ॥ ९ ॥
अञ्जनः कुक्कुटः कृष्णः पाण्डुरश्चाचलोत्तमः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे द्विजोत्तम ! मन्दरादिक चारों पर्वतों में जो चार वन और चार सरोवर हैं उन्हें मुझसे सुनिये ॥ १ ॥ पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में नन्दनवन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सावित्र नामका वन है॥२॥ पूर्वी पर्वत पर अरुणोद, दक्षिण में मानस, पश्चिम में शीतोद और उत्तर में महाभद्र नाम का सरोवर है ॥ ३ ॥ शीतार्त्त, चक्रमुंज, कुलीर, सुपङ्कवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानील, भवाचल ॥४॥ सबिंदु । मन्दर, वेणु, तामस और निषध और देवशैल, ये महापर्वत ये मन्दराचल के पूर्व की ओर हैं ॥ ५ ॥ त्रिकूट, शिखराद्रि, कलिङ्ग, पतंगक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान् ॥ ६ ॥ श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, महाशैल एक शृङ्ग, शैलराज पिपाठक ॥ ७ ॥ और पर्वतश्रेष्ठ पञ्चशैल, कैलाश हिमालय ये महापर्वत मेरु की दक्षिण दिशा में हैं ॥ ८ ॥ सुरक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु ॥ ९ ॥ अञ्जन, कुक्कुट, कृष्ण, पर्वतश्रेष्ठ पाण्डुर, सहस्र शिखर और शृङ्ग

ग्रहस्रशिखरश्चाद्रिः पारिपात्रः सशृङ्गवान् ॥१०॥
पश्चिमेन तथा मेरोर्विष्कम्भात् पश्चिमाद्बहिः।
एतेऽचलाः समाख्याताः शृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ११
शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसनाभस्तथाचलः।
कपिलेन्द्रस्तथा शैलः सानुमान् नील एव च ॥१२॥
स्वर्णशृङ्गी शातशृङ्गी पुष्पको मेघपर्व्वतः।
विरजाक्षो वराहाद्रिर्मयूरो जारुधिस्तथा ॥१३॥
इत्येते कथिता ब्रह्मन् मेरोरुत्तरतो नगाः।
एतेषां पर्व्वतानान्तु द्रोण्योऽतीव मनोहराः ॥१४॥
वनैरमलपानीयैः सरोभिरुपशोभिताः।
तासु पुण्यकृतां जन्म मनुष्याणां द्विजोत्तम ॥१५॥
एते भौमा द्विजश्रेष्ठ स्वर्गाः स्वर्गगुणाधिकाः।
न तासु पुण्यपापानामपूर्व्वाणामुपार्ज्जनम् ॥१६
पुण्योपभोगा एवोक्ता देवानामपि तास्वपि।
शीतान्ताद्येषु चैतेषु शैलेषु द्विजसत्तम ॥१७॥
विद्याधराणां यक्षाणां किन्नरोरगरक्षसाम्।
देवानाञ्च महावासा गन्धर्व्वाणाञ्च शोभनाः॥१८॥
महापुण्या मनोज्ञैश्च सदेवोपवनैर्युताः।
सरांसि च मनोज्ञानि सर्व्वर्त्तुसुखदोऽनिलः ॥१९॥
न चैतेषु मनुष्याणां वैमनस्यानि कुत्रचित्।
तदेवं पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ॥२०॥
भद्राश्वभारताद्यानि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम्।
भारतं नाम यद्वर्षं दक्षिणेन मयोदितम् ॥२१॥
तत् कर्म्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्य-पापयोः।
एतत् प्रधानं विज्ञेयं यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ॥२२॥
तस्मात् स्वर्गापवर्गौ च मानुष्यनारकावपि।
तिर्य्यक्त्वमथवाप्यन्यत् नरः प्राप्नोति वै द्विज॥२३॥

वान् पारिपात्र पर्वत ॥ १० ॥ ये मेरु की पश्चिम दिशा में पश्चिमी, विष्कम्भ के बाहिर हैं। इन पर्वतों के बाद अब और उत्तर पर्वतों को सुनिये ॥ ११ ॥ शंखकूट, वृषभ, हंसनाभ पर्वत, कपिलेन्द्र पर्वत तथा सानुमान् और नील ॥१२॥ और स्वर्ण-शृङ्गी, शातशृङ्गी, पुष्पक, मेघपर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर, जारुधि ॥१३॥ हे ब्रह्मन्! ये पर्वत मेरु के उत्तर में स्थित हैं। इन पर्वतोंकी घाटियां अत्यन्त मनोहर हैं ॥ १४ ॥ वे घाटियां वनों और निर्मल जल वाले सरोवरों से सुशोभित हैं। हे द्विजोत्तम! उनमें धर्मात्मा लोगों का जन्म होता है ॥१५॥ हे द्विजश्रेष्ठ! ये स्वर्गसे भी अधिक गुणवाले पृथ्वी के स्वर्ग हैं। इनमें पुण्य-पापों की वृद्धि नहीं होती है ॥ १६ ॥ हे द्विजोत्तम! इनमें देवताओं के पवित्र उपभोग भी उपस्थित हैं और इन शीतांता-दिक पर्वतोंमें विद्याधर, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस, देवता और गन्धर्वों के सुन्दर २ निवास-स्थान हैं ॥१७-१८॥ जो कि बड़े पवित्र हैं और मनोहर उप-वनों से युक्त हैं। वहाँ मनोहर सरोवरहैं तथा सब ऋतुओं में सुख देने वाली वायु चलती रहती है। इनमें कहीं पर मनुष्यों को दुःख नहीं होता, इस प्रकार मैंने चार पत्र वाला पृथ्वी-कमल वतला दिया ॥ २०॥ इसके चारों ओर भद्राश्व भारतादिक चार पत्र हैं। भारतवर्ष जो मैंने दक्षिण की ओर वतलाया है ॥ २१ ॥ यही कर्मभूमि है, अन्यत्र नहीं यहाँ पुण्य-पाप की प्राप्ति होती है, इसे ही प्रधान समझना चाहिये क्योंकि इसी में सब निहित है॥ हे द्विज! इसी भारतवर्ष से मनुष्य स्वर्ग, मोक्ष, नरक, पक्षि योनि अथवा और योनि भी प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में भुवनकोष नाम ५५वाँ अध्याय समाप्त।

छप्पनवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ध्रुवाधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य यत्।
ततः प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

जगत् के आधार और संसार के कारण श्री-नारायण के चरणसे त्रिपथगामिनी गङ्गाजी उत्पन्न

सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारमम्भसाम् ।
ततः सम्बध्यमानार्क-रश्मिसङ्गतिपावनी ॥ २ ॥
पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्द्धा ततो ययौ ।
मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती विवर्त्तिता ॥ ३ ॥
विकीर्य्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा ।
मन्दराद्येषु पादेषु प्रविभक्तोदका समम् ॥ ४ ॥
चतुर्ष्वपि पपाताम्बु विभिन्नाङ्घ्रि शिलोच्चया ।
पूर्वा शीते तिविख्याता ययौ चैत्ररथं वनम् ॥ ५ ॥
तत् प्लावयित्वा च ययौ वरुणोदं सरोवरम् ।
शीतान्तंच गिरिंतस्मात्ततश्चान्यान् गिरीन् क्रमात्६
गत्वा भुवं समासाद्य भद्राश्वाज्जलधिं गता ।
तथैवालकनन्दाख्यं दक्षिणे गन्धमादने ॥ ७ ॥
मेरुपादवनं गत्वा नन्दनं देवनन्दनम् ।
मानसंच महावेगात् प्लावयित्वा सरोवरम् ॥ ८ ॥
असाद्य शैलराजानं रम्यं हि शिखरं तथा ।
तस्माच्च पर्व्वतान् सर्व्वान् दक्षिणोपक्रमोदितान्॥९॥
तान् प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ।
दधार तत्र तां शम्भुर्न मुमोच वृषध्वजः ॥१०॥
भगीरथेनोपवासैः स्तुत्या चाराधितो विभुः ।
तत्र मुक्ता च शर्व्वेण सप्तधा दक्षिणोदधिम्॥११॥
प्रविवेश त्रिधा प्राच्यां प्लावयन्ती महानदी ।
भगीरथरथस्यानु स्रोतसैकेन दक्षिणाम् ॥१२॥
तथैव पश्चिमे पादे विपुले सा महानदी ।
स्वरक्षुरिति विख्याता वैभ्राजं साचलं ययौ ॥१३॥
शीतोदंच सरस्तस्मात् प्लावयन्ती महानदी ।
स्वरक्षुः पर्व्वतं प्राप्ता ततश्च त्रिशिखं गता ॥१४॥
तस्मात् क्रमेण चाद्रीणां शिखरेषु निपत्य सा ।
केतुमालं समासाद्य प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥१५॥
सुपार्श्वन्तु तथैवाद्रिं मेरुपादं हि सा गता ।
तत्र सोमेति विख्याता सा ययौ सवितुर्वनम्॥१६॥
तत् पावयन्ती सम्प्राप्ता महाभद्रं सरोवरम् ।
ततश्च शंखकूटं सा प्रयाता वै महानदी ॥१७॥

हुई ॥ १ ॥ वह सुधाके कारण और जल के आधार चन्द्रमा में प्रवेश करके सूर्य की किरणों से पवित्र होने लगीं ॥२॥ वे मेरु पर्वत की पीठ पर पहुँच कर चार धाराओं में बहने लगीं तथा मेरुकूट पर्वत के अन्त में जाकर ठहर गईं ॥ ३ ॥ उनका जल वहाँ जाकर फैलगया और वे निरावलम्ब होकर मन्दराचल आदि पर्वतों में जाकर विरक्त होगईं ॥ ४ ॥ जब वे चारों पहाड़ों पर गिरीं तो पहाड़ फटफट कर जल के साथ वहगये और इसके बाद गङ्गाजी पूर्व में शीत कहलाईं तथा वहाँ से चैत्ररथ वनको चली गईं ॥ ५ ॥ चैत्ररथ को प्लावित करती हुई वे वरुणोद सरोवर को गईं तथा वहाँ से शीतांत पर्वत को और शीतान्त से क्रमशः अन्य पर्वतों पर होती हुई ॥ ६ ॥ भूमि पर आईं और भद्राश्व खण्ड में होकर समुद्र में मिलगईं । इसी प्रकार अलकनन्दा नाम की दूसरी धारा दक्षिण में गन्धमादन पर्वत पर होकर ॥ ७ ॥ मेरुपाद वन और देवताओं के नन्दन वन को प्लावित करती हुई बड़े वेग से मानसरोवर में पहुँची ॥ ८ ॥ तथा वहाँ से शैलराज पर्वत के रमणीक शिखर पर पहुँची और दक्षिण के सब पर्वतों की परिक्रमा देती हुई ॥ उनको प्लावित करके महागिरि हिमवान्पर पहुँची वहाँ पर उसे महादेवजी ने अपनी जटाओं में रख लिया और फिर न छोड़ा ॥ १० ॥ भागीरथजी के तपस्या करने और महादेवजी की स्तुति और आराधना करने पर शिवजी ने उसे मुक्त किया। फिर गङ्गाजी सात धाराओं में बहने लगीं जिनमें से चार समुद्र में मिलगईं ॥११॥ महानदी गङ्गाजी की तीन धारायें प्लावित करती हुई पूर्व की ओर गईं जिनमें से एक भागीरथ के पीछे दक्षिण की ओर गई ॥ १२ ॥ उसी प्रकार पश्चिम में महानदी श्रीगङ्गाजी विपुलेशा होकर वैभ्राज नाम वनमें गईं जिससे उनका नाम स्वरक्षु विख्यात हुआ ॥ १३ ॥ फिर वहाँ से ही जलमय करती हुईं शीतोद नाम तालाव में आईं और फिर वहाँ से त्रिशिख पर्वत पर पहुंचीं ॥१४॥ फिर क्रम से सब पर्वतोंके शिखरों पर होती हुईं केतुमाल वर्ष में आकर क्षार समुद्र में प्रविष्ट होगईं ॥१५॥ श्रीगङ्गाजी की चौथी धारा सुपार्श्व और मेरु पर्वत पर होती हुई सविता वन में गई जहाँ वह सोमा नाम से विख्यात हुईं ॥१६॥ वहाँ से प्रान्तों को जल से ओतप्रोत करती हुईं महाभद्र सरोवर पर पहुँचीं जहाँ से चलकर फिर शंखकूट पर्वत पर प्राप्त हुईं ॥ १७ ॥ वहाँ से फिर

तस्माच्च वृषभादीन् सा क्रमात् प्राप्य शिलोच्चयान्।
महार्णवमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान् कुरून् ॥१८॥
एवमेषा मया गङ्गा कथिता ते द्विजर्षभ।
जम्बूद्वीपनिवेशाश्च वर्षाणि च यथातथम् ॥१९॥
वसन्ति तेषु सर्व्वेषु प्रजाः किम्पुरुषादिषु।
सुखप्राया निरातङ्का न्यूनतोत्कर्षवर्ज्जिताः ॥२०॥
नवस्वपि च वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः।
एकैकस्मिंस्तदा देशे नद्यश्चाद्रिविनिःसृताः ॥२१॥
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम।
तेषूद्भिदानि तोयानि मेघवार्य्यत्र भारते ॥२२॥
वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी तथा।
कर्म्मजा च नृणां सिद्धिर्वर्षेष्वेतेषु चाष्टसु ॥२३॥
कामप्रदेभ्यो वृक्षेभ्यो वार्क्षी सिद्धिः स्वभावजा।
स्वाभाविकी समाख्याता तृप्तिर्देश्या च दैशिकी॥२४॥
अपां सौक्ष्माच्च तोयोत्था ध्यानोपेता च मानसी।
उपासनादिकार्य्याच्च कर्म्मजा साप्युदाहृता ॥२५॥
न चैतेषु युगावस्था नाधयो व्याधयो न च।
पुण्यापुण्यसमारम्भो नैव तेषु द्विजोत्तम ॥२६॥

क्रम पूर्वक वृषभ आदि पर्वतों पर पहुँच कर उन प्रान्तों को जलमय करती हुई उत्तर के महासमुद्र में मिलगई ॥१८॥ हे क्रौष्टुकिजी! इस प्रकार मैंने आपसे गङ्गाजी का वर्णन किया और जम्बू आदि द्वीपों और उनके वर्षोंका भी ठीक-ठीक वर्णनकिया ॥ १९ ॥ उन किम्पुरुष आदि वर्षोंमें सर्वत्र प्रजाजन सुखपूर्वक निर्भय हो एकसी दशा में रहते हैं, वहाँ न कोई न्यून है और न कोई उत्कृष्ट है ॥२०॥ और नौ वर्षों में से प्रत्येक में सात-७ कुलाचल पर्वत हैं जिनमें से नदियाँ निकलती हैं ॥२१॥ हे द्विजोत्तम! किम्पुरुष आदि आठ वर्षों में सब वस्तु पृथ्वी से विना किसी यत्न के मिलती हैं परन्तु भारतवर्ष में मेघों की वर्षा से सब कुछ होता है ॥२२॥ इन आठ वर्षों में वार्क्षी, स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्था मानसी और कर्मजा ये सिद्धियां मनुष्यों को प्राप्त होती हैं ॥ २३ ॥ वृक्षों से कामना सिद्ध होने को वार्क्षी, स्वभाव से ही कार्य सिद्ध होने को स्वाभाविकी और देश से ही कार्य सिद्ध होने को देश्या सिद्धि कहते हैं ॥२४॥ जब थोड़े जलसे कार्य सिद्ध होजाय उसको तोयोत्था, ध्यान से ही अभिलाषा पूर्ण होने को मानसी और उपासना आदि से कार्य सिद्ध होने को कर्मजा सिद्धि कहते हैं ॥ २५ ॥ हे क्रौष्टुकिजी! इन वर्षों में न युग धर्म है और न आधि-व्याधि हैं तथा इनमें पुण्य और पाप का प्रसङ्ग भी नहीं है ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में गङ्गावतार नाम ५६वां अ० समाप्त।



सत्तावनवां अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् कथितन्त्वेतज्जम्बूद्वीपं समासतः।
यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म्म नान्यत्र पुण्यदम् ॥ १ ॥
पापाय वा महाभाग वर्ज्जयित्वा तु भारतम्।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यंचान्तश्च गम्यते ॥ २ ॥
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म्म विधीयते।
तस्माद्विस्तरशो ब्रह्मन् ममैतद्भारतं वद ॥ ३ ॥
ये चास्य भेदा यावन्तो यथावत् स्थितिरेव च।
योऽयं द्विजशार्द्दूल ये चास्मिन् देशपर्व्वताः॥ ४ ॥

क्रौष्टुकि बोलेः—

हे मार्कण्डेय जी। जम्बूद्वीप का वर्णन आपने पूर्णतया किया तथा आपने यह भी कहा कि वहाँ पुण्य का देने वाला कर्म ॥ १ ॥ और पाप आदि भारत वर्ष के अतिरिक्त कहीं नहीं है। भारत वर्ष में ही स्वर्ग, मोक्ष, जन्म और मरण है ॥२॥ अन्यत्र मनुष्यों के लिये कर्म का विधान नहीं है परन्तु भारत वर्ष कर्म-भूमि कहलाती है। इसलिये हे विप्रवर! इस भारतवर्ष का वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन्! इसके भेद, इसकी स्थिति और इसमें जो देश और पर्वत हैं उनका भी वर्णन करिये॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोध मे ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥ ५ ॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्व्वो वारुणस्तथा॥ ६ ॥
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ॥ ७ ॥
पूर्व्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तःस्थिता द्विज८॥
इज्याध्यायवणिज्याद्यैः कर्म्मभिः कृतपावनाः ।
तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्म्मभिरिष्यते ॥ ९ ॥
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापंच वै तदा ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्व्वतः ।
विन्ध्यश्च पारिपात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः ॥१०॥
तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥११॥
विस्तारोच्छ्रायिणो रम्या विपुलाश्चात्र सानवः ।
कोलाहलः सवैभ्राजो मन्दरो दर्द्दुराचलः ॥१२॥
वातस्वनो वैद्युतश्च मैनाकः स्वरसस्तथा ।
तुङ्गप्रस्थो नागगिरी रोचनः पाण्डुराचलः ॥१३॥
पुष्पो गिरिदुर्ज्जयन्तो रैवतोऽर्व्वुद एव च ।
ऋष्यमूकः सगोमन्तः कूटशैलः कृतस्मरः ॥१४॥
श्रीपर्व्वतश्च कोरश्च शतशोऽन्ये च पर्व्वताः ।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्य्याश्च भागशः ॥१५॥
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ्निबोध मे ।
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥१६॥
यमुना च शतद्रुश्च वितस्तेरावती कुहुः ।
गोमती धूतपापा च वाहुदा सदृशद्वती ॥१७॥
विपासा देविका रंक्षुर्निश्चीरा गण्डकी तथा ।
कौशिकी चापगा विप्र हिमवत्पादनिःसृताः ॥१८॥
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ।
वेण्वा सानन्दनी चैव सदानीरा मही तथा ॥१९॥
पारा चर्म्मण्वती तापी विदिशा वेत्रवत्यपि ।
शिप्रा ह्यवर्णी च तथा पारिपात्राश्रयाः स्मृताः॥२०॥
शोणो महानदश्चैव नर्म्मदा सुरथाद्रिजा ।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि ! भारतवर्ष के नौ भाग (भेद) हैं और यह समुद्र तक फैले हुए हैं तथा एक दूसरे से अगम्य हैं ॥ ५ ॥ (१) इन्द्रद्वीप (२) कशेरुमान् (३) ताम्रवर्ण (४) गभस्तिमान् (५) नागद्वीप (६) सौम्य (७) गान्धर्व और (८) वारुण ॥ ६ ॥ तथा नवाँ भारतवर्ष है ये समुद्र से घिरा हुआ है तथा इस द्वीप का विस्तार उत्तर से दक्षिण तक एक हज़ार योजन है ॥७॥ इसके पूर्व में किरात तथा पश्चिम में यवन रहते हैं । हे विप्र ! इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्थित हैं ॥ ८ ॥ यज्ञ, वेद-पठन, और व्यवसाय आदि कर्मों से ये चारों वर्ण पवित्र होते हैं तथा इन्हीं कर्मों से इनका व्यवहार भी चलता है ॥ ९ ॥ तथा इन्हीं कर्मों से इनको स्वर्ग और अपवर्ग मिलता है तथा पाप और पुण्य होते हैं । महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारिपात्र ये सात इसमें पर्वत हैं ॥१०॥ तथा इनके समीप और भी हज़ारों पहाड़ हैं ॥११॥ इनके अतिरिक्त बहुत से लम्बे चौड़े, रमणीक, ऊँचे और विशाल सानव हैं । कोलाहल, सवैभ्राज, मन्दर, दुर्दराचल ॥१२॥ वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि और पाण्डुराचल॥१३॥ पुष्पगिरि, दुर्ज्जयन्त, रैवत, अर्वुद, ऋष्यमूक, सगोमन्त, कूटशैल, और कृतस्मर ॥१४॥ श्रीपर्वत, कोर तथा अन्य सैकड़ों पर्वत हैं, इन पर्वतों के आस पास म्लेच्छ और आर्य्य जातियाँ रहती हैं ॥१५॥ ये लोग जिन श्रेष्ठ नदियों का जल पीते हैं उनके नाम सुनो, गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु और चन्द्रभागा ॥ १६ ॥ और यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, कुहु, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृशद्वती ॥ १७ ॥ विपासा, देविका, रक्षु, निश्चीरा, गण्डकी, कौशिकी ये सब नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलती हैं ॥१८॥ वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वेण्वा, नन्दनी, सदानीरा, तथा मही ॥ १९ ॥ पारा, चर्म्मण्वती, तापी, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा, और अवर्णी इन सब नदियों का उद्गम स्थान [illegible] पर्वत है ॥ २० ॥ शोण, महानद, नर्मदा, सुरथा

मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥२१॥
चित्रोत्पला सतमसा करमोदा पिशाचिका ।
तथान्या पिप्पलिश्रोणिर्विपाशा वञ्जुला नदी॥२२॥
सुमेरुजा शुक्तिमती शकुली त्रिदिवाक्रमुः ।
स्कन्धपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥२३॥
शिप्रा पयोष्णी निर्व्विन्ध्या तापी सनिषधावती ।
वेण्वा वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥२४॥
करतोया महागौरी दुर्गा चान्तःशिरा तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः॥२५॥
गोदावरी भीमरथा कृष्णवेण्वा तथापरा ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्य्यथापगा ॥२६॥
लिह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिदुत्तमाः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा सूत्पलावती ॥२७॥
मलयाद्रिसमुद्भूताः नद्यः शीतजलास्त्विमाः ।
पितृसोमर्षिकुल्या च इक्षुका त्रिदिवा च या ॥२८॥
लाङ्गलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ॥२९॥
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वा गङ्गाः समुद्रगाः ३०
विश्वस्य: मातरः सर्व्वाः सर्व्वाः पापहराः स्मृताः ।
अन्याः सहस्रशश्चोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तम ॥३१॥
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः ।
मत्स्याश्वकूटाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः३२
अथर्व्वाश्चार्कलिङ्गाश्च मलकाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः॥३३॥
सह्यस्य चोत्तरे यास्तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥३४॥
गोवर्द्धनं पुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः ।
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः॥३५
अपरान्ताश्च शूद्राश्च पल्लवाश्चर्म्मखण्डिकाः ।
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धु-सौवीर-मद्रकाः ॥३६॥
शतद्रुजाः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः ।
माठरा बहुभद्राश्च कैकेया दशमालिकाः ॥३७॥
क्षत्रियो निवेशाश्च वैश्य-शूद्रकुलानि च ।

अद्रिजा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा तथा ॥२१॥ चित्रोत्पला, सतमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलिश्रोणि, विपाशा, और वंजुला ॥ २२ ॥ सुमेरुजा, शुक्तिमती, शकुली, त्रिदिवाक्रमु, स्कन्धपाद प्रसूता तथा वेग वाहिनी ॥२३॥ शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या तापी, सनिषधावती वेण्वा, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती ॥२४ ॥ करतोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिरा ये सब पुण्य सलिला शुभ नदियाँ विन्ध्याचल पर्वत से निकलीं हैं ॥ २५ ॥ गोदावरी, भीमरथा, कृष्णवेण्वा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या, और कावेरी ॥२६॥ ये उत्तम नदियाँ लिह्यपाद पर्वत से निकली हैं । कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती ॥ २७ ॥ ये शीतल जल वाली नदियाँ मलयाचल पर्वत से निकली हैं। पितृसोमा, ऋषिकुल्या, इक्षुका, और त्रिदिवा ॥२८॥ तथा लाङ्गलिनी और वंशकरा ये महेन्द्र पर्वत से निकलती हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्द वाहिनी ॥ २९ ॥ और कृपा तथा पलाशिनी इन नदियों की उत्पत्ति शुक्तिमान् पर्वत से है। ये सब पुण्यवती नदियाँ सरस्वती, गङ्गा और समुद्र, में गिरी हैं ॥ ३० ॥ हे क्रौष्टुकि जी ! ये सब जगत की मातायें हैं तथा सब पापों को हरण करने वाली हैं। भारत वर्ष में और भी छोटी छोटी हज़ारों नदियाँ हैं ॥ ३१ ॥ इनमें से कुछ नदियाँ तो वर्षा-ऋतु में ही बहती हैं और कुछ सदैव वहा करती हैं। मत्स्यदेश, अश्वकूटा, कुल्या, कुन्तला, काशी और कोशला ॥३२॥ अथर्व अर्कलिङ्ग, मलक और वृक ये सब देश मध्यप्रदेशीय कहलाते हैं ॥ ३३ ॥ सह्य पर्वत के उत्तर में जहाँ गोदावरी नदी बहती है वह प्रदेश समस्त पृथ्वी में अत्यन्त मनोहर है ॥३४॥ मुनि शुक्राचार्य का जो गोवर्द्धन नगर है वह भी परम रमणीक है। वाल्हीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक ॥ ३५ ॥ अपरान्त, शूद्र, पल्लव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र ॥ ३६ ॥ शतद्रु, कलिङ्ग, पारद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, कैकेय और दशमालिक ॥ ३७ ॥ इन सब देशों में क्षत्री, वैश्य और

काम्बोजा दरदाश्चैव वर्व्वरा हर्षवर्द्धनाः ॥३८॥
चीनाश्चैव तु खाराश्च वहुला वाह्यतो नराः।
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च कशेरुकाः ॥३९॥
लम्पाकाः शूलकाराश्च चुलिका जागुडैः सह।
औषधाश्चानिभद्राश्च किरातानाश्च जातयः ४०॥
तामसा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तुङ्गनास्तथा।
शूलिकाः कुहकाश्चैव जर्णा दर्व्वास्तथैव च ॥४१॥
एते देशा ह्युदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान् निवोध मे।
अध्रारका मुदकरा अन्तर्गिर्य्या वहिर्गिराः ॥४२॥
यथा प्रवङ्गा रङ्गेया मानदा मानवर्त्तिकाः।
ब्राह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा ज्ञेयमल्लकाः ॥४३॥
प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
मल्ला मगध-गोमन्ताः प्राच्या जनपदाः स्मृताः॥४४॥
अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः।
पुण्ड्राश्च केरलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च॥४५॥
शैलूषा मूषिकाश्चैव कुसुमा नाम वासकाः।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः ॥४६॥
आभीराः सहवैशिक्या आढ़क्या शवराश्च ये।
पुलिन्दा विन्ध्यमौलेया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥४७॥
पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः।
नैषिकाः कुन्तला अन्ध्रा उद्भिदा वनदारकाः॥४८
दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान् निवोध मे।
सूर्य्यारकाः कालिवला दुर्गाश्चानीकटैः सह ॥४९॥
पुलिन्दाश्च सुमीनाश्च रूपपाः स्वापदैः सह।
तथा कुरुमिनश्चैव सर्व्वे चैव कठाक्षराः ॥५०॥
नासिक्यावाश्च ये चान्ये ये चैवोत्तरनर्म्मदाः।
भीरुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि ॥५१॥
काश्मीराश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्व्वुदैः सह।
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणु विन्ध्यनिवासिनः ॥५२॥
सरजाश्च करूषाश्च केरलाश्चोत्कलैः सह।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोज्याःकिष्किन्धकैःसह५३॥
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा।
तुम्बुरास्तुम्बुलाश्चैव पटवो नैषधैः सह ॥५४॥
अन्नजास्तुष्टिकाराश्च वीरहोत्रा ह्यवन्तयः।

शूद्र लोग रहते हैं। काम्बोज, दरद, वर्व्वर और हर्षवर्द्धन ॥३८॥ चीन, खार, वहुल, वाह्यतोनर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल और कशेरुक ॥३९॥ तथा लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड, औषध और निभद्र इन देशों में किरात लोग रहते हैं॥४०॥ तामस, हंसमार्ग, काश्मीर, तुङ्गन, शूलिक, कुहक, जर्ण और दर्व्व ॥४१॥ ये देश औदीच्यों के रहने के हैं अब पूर्वी देशोंको मुझसे सुनो। अध्रारक, मुदकर अन्तर्गिरी, वहिर्गिर॥४२॥ प्रवङ्ग, रङ्गेय, मानद, मानवर्तिक, ब्राह्मोत्तर प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमल्लक ॥४३॥प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध-गोमन्त ये पूर्वी देश कहलाते हैं ॥४४॥ इनके अतिरिक्त दक्षिण दिशावर्ती देश हैं। पुण्ड्र, केरल, गोलाङ्गूल॥४५॥ शैलूष मूषिक, कुसुम, वासक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग॥४६॥ आभीर, वैशिक्य, आढ़क्य, शवर, पुलिन्द, विन्ध्यमौलेय, वैदर्भ, दण्डक ॥४७॥ पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन नैषिक, कुन्तल, अन्ध्र, उद्भिज, वनदारक ॥४८॥ ये देश दक्षिणी हैं, अब अपरान्त देशों को सुनो। सूर्य्यारक, कालिवल, दुर्ग, अनीकट॥४९॥ पुलिन्द सुमीन, रूपप, स्वापद, कुरुमिन, कठाक्षर॥५०॥ नासिक्य, तथा दूसरे जो नर्मदा के उत्तर में हैं, भीरुकच्छ, समाहेय और सारस्वत॥५१॥ काश्मीर, सुराष्ट्र, अवन्त, अर्व्वुद, इन देशों के रहने वाले अपरान्त हैं, अब विन्ध्य-निवासियों को सुनो॥५२॥ सरज, करूष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किंधक ॥५३॥ कोशल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर तुम्बुल, पट नैषध॥५४॥ अन्नज, तुष्टिकार, वीर होत्र, अवन्ती ये लोग इन्हीं के नाम पर वने देशों

एते जनपदाः सर्व्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५५॥
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्रयिणश्च ये ।
नीहारा हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्गणाः खसाः ॥५६॥
कुन्तप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दार्व्वा सकृत्रकाः ।
त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥५७॥
कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः ।
एतत् तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम् ॥५८॥
दक्षिणापरितो ह्यस्य पूर्व्वेण च महोदधिः ।
हिमवानुत्तरेणास्य कार्म्मुकस्य यथा गुणः ॥५९॥
तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तम ।
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतस्तथा ॥६०॥
मृगपश्वप्सरोयोनिस्तद्वत् सर्व्वे सरीसृपाः ।
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो ब्रह्मन् शुभाशुभैः ६१॥
प्रयाति कर्म्मभूर्ब्रह्मन् नान्या लोकेषु विद्यते ।
देवानामपि विप्रर्षे सदैवैष मनोरथः ॥६२॥
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ ।
मनुष्यः कुरुते तत् तु यन्न शक्यं सुरासुरैः ॥६३॥
तत्कर्म्मनिगडग्रस्तैः स्वकर्म्मख्यापनोत्सुकैः ।
न किञ्चित् क्रियते कर्म्म सुखलेशोपबृंहितैः ॥६४॥

में विन्ध्याचल पर्वत की पीठ पर रहते हैं ॥ ५५ ॥ अब उन देशों को कहूँगा जो पर्वतों पर स्थित हैं, नीहार, हंसमार्ग, कुरव, गुर्गण, खस ॥ ५६ ॥ कुन्त प्रावरण, ऊर्ण, दार्व, कृत्रक, त्रिगर्त, मालव, किरात, तामस ॥ ५७ ॥ सतयुग आदि चारों युगों से युक्त जिसमें विधि है, इस प्रकार चारों ओर से बसा हुआ भारत वर्ष है ॥ ५८ ॥ जिसके दक्षिण, पश्चिम और पूर्व में समुद्र है उत्तर की ओर धनुष की प्रत्यंचा की तरह हिमालय पर्वत है॥५९॥ हे विप्रवर ! यह भारतवर्ष ब्रह्मत्व, अमरेशता, देवतत्व और मरुद्गणों का कारण है ॥ ६० ॥ मृग, पशु, अप्सरा, सर्प और स्थावर आदि सब योनियाँ हे ब्रह्मन् ! यहीं के शुभाशुभ कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त हुआ करती हैं ॥ ६१ ॥ हे ब्रह्मन् ! लोकों में कर्मभूमि और दूसरी कोई नहीं है। हे विप्रर्षे ! देवताओं का सदा यही मनोरथ रहता है कि ॥ ६२ ॥ वे देवत्व से छूटकर पृथ्वी में मनुष्यता को प्राप्त करें क्योंकि मनुष्य वह कर्म कर सकता है जिसको कि देवता और असुर नहीं कर सकते ॥ ६३ ॥ क्योंकि वे कर्म-बन्धन से युक्त हैं तथा अपने कर्मों की प्रशंसा कराने की इच्छा रखते हैं और थोड़े सुख से युक्त हैं इस कारण वे सुरासुर कुछ भी कर्म नहीं कर सकते ॥ ६४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में नद्यादि वर्णन नाम ५७वाँ अ० समाप्त ।

अट्ठावनवाँ अध्याय

कौष्टुकिरुवाच

भगवन् कथितं सम्यग्भवता भारतं मम ।
सरितः पर्व्वता देशा ये च तत्र वसन्ति वै ॥ १ ॥
किन्तु कूर्म्मस्त्वया पूर्व्वं भारते भगवान् हरिः ।
कथितस्तस्य संस्थानं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २ ॥
कथं स संस्थितो देवः कूर्म्मरूपी जनार्दनः ।
शुभाशुभं मनुष्याणां व्यज्यते च ततः कथम् ।
यथामुखं यथापादं तस्य तद्ब्रूह्यशेषतः ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

प्राङ्मुखो भगवान् देवः कूर्म्मरूपी व्यवस्थितः ।
आक्रम्य भारतं वर्षं नवभेदमिदं द्विजः ॥ ४ ॥

कौष्टुकि जी बोलेः—

हे मार्कण्डेय जी ! आपने मुझ से भारत वर्ष का भली भाँति वर्णन किया और वहाँ जो नदी, पर्व्वत और देश हैं उनका भी वर्णन किया ॥ १ ॥ किन्तु पहिले जो आपने भारतवर्ष में विष्णुभगवान् के कूर्म स्वरूप की स्थिति कही थी उसको मैं पूर्ण रूप से सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ यहाँ पर देव कूर्म रूपी भगवान् किस तरह रहते हैं, यहाँ किस तरह मनुष्यों को शुभाशुभ होता है। उनका कैसा मुख तथा कैसे पाँव हैं यह विस्तार पूर्वक कहिये ॥ ३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे विप्र ! कूर्मरूपी भगवान् पूर्व मुख होकर स्थित हैं तथा भारत वर्ष के नौ भेद हैं ॥४॥

५ वैश्य-शूद्रकुलानि च । मालक ॥ २७ ॥ इन सब देशों में क्षत्री, वैश्य और

नवधा संस्थितान्यस्य नक्षत्राणि समन्ततः ।
विषयाश्च द्विजश्रेष्ठ ये सम्यक् तान् निबोध मे ॥५॥
वेदमन्त्रा विमाण्डव्याः शाल्वनीयास्तथा शकाः।
उज्जिहानास्तथा वत्स घोषसंख्यास्तथा खशाः॥६॥
मध्ये सारस्वता मत्स्याः शूरसेनाः समाथुराः।
धर्म्मारण्या ज्योतिषिका गौरग्रीवा गुडाश्मकाः॥७॥
उद्देहकाः सपाञ्चालाः सङ्केताः कङ्कमारुताः ।
कालकोटिसपाषण्डाः पारिपात्रनिवासिनः ॥ ८ ॥
कापिङ्गलाः कुरुर्वाह्यस्तथैवोडुम्बरा जनाः ।
गजाह्वयाश्च कूर्म्मस्य जलमध्यनिवासिनः ॥ ९ ॥
कृत्तिका रोहिणी सौम्या एतेषां मध्यवासिनाम् ।
नक्षत्रत्रितयं विप्र शुभाशुभविपाटकम् ॥१०॥
वृषध्वजोऽञ्जनश्चैव जम्व्वाख्यो मानवाचलः ।
शूर्पकर्णो व्याघ्रमुखः खर्म्मकः कर्व्वटाशनः ॥११॥
तथा चन्द्रेश्वराश्चैव खशाश्च मगधास्तथा ।
गिरयो मैथिलाः पौण्ड्रास्तथा वदनदन्तुराः ॥१२॥
प्राग्ज्योतिषाः सलौहित्याः सामुद्राः पुरुपादकाः ।
पूर्णोत्कटो भद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ॥१३॥
कशाया मेखलामुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपाः ।
वर्द्धमानाः कोशलाश्च मुखे कूर्म्मस्य संस्थिताः ॥१४
रौद्रः पुनर्व्वसुः पुष्यो नक्षत्रत्रितयं मुखे ।
पादे तु दक्षिणे देशाः क्रौष्टुके वदतः शृणु ॥१५॥
कलिङ्ग-वङ्ग-जठराः कोशला मूषिकास्तथा ।
चेदयश्चोर्द्ध्वकर्णाश्च मत्स्याद्या विन्ध्यवासिनः॥१६॥
विदर्भा नारिकेलाश्च धर्म्मद्वीपास्तथैलिकाः ।
व्याघ्रग्रीवा महाग्रीवास्त्रैपुराः श्मश्रुधारिणः ॥१७॥
कैष्किन्ध्या हैमकूटाश्च निषधाः कटकस्थलाः।
दशार्णा हारिका नग्ना विषादाः काकुलालकाः १८॥
तथैव पर्णशवराः पादे वै पूर्व्वदक्षिणे ।
अश्लेषर्क्षं तथा पैत्र्यं फल्गुन्यः प्रथमास्तथा ॥१९॥
नक्षत्रत्रितयं पादमाश्रितं पूर्व्वदक्षिणम् ।
लङ्का कालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा॥२०॥
महेन्द्र-मलयाद्रौ च दर्दुरे च वसन्ति ये ।
कर्कोटकवने ये च भृगुकच्छाः सकोङ्कणाः ॥२१॥

इसके चारों ओर नौ नक्षत्र स्थित हैं तथा हे विप्रवर ! इसके चारों ओर जो विषय हैं उनको सुनो ॥ ५ ॥ वेदमन्त्र, विमाण्डव्य, शाल्वनीय, शक, उज्जिहान तथा हे वत्स ! घोषसंख्य और खश ॥६॥ भारतवर्ष के मध्य में सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक गौरग्रीव और गुडाश्मक ॥७॥ उद्देहक, पाँचाल, संकेत, कङ्कमारुत, कालकोटि, पाषण्ड, ये सब देश पारिपात्र पर्वत के आश्रित हैं ॥८॥ कापिंगल, कुरु, वाह्य और उडुम्बुर निवासी तथा हस्तिणा ये जल के रहने वाले कूर्म्म भगवान् की पीठ के मध्य में स्थित हैं ॥ ९ ॥ हे कौष्टुकिजी ! कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा ये तीनों नक्षत्र उन मध्य-निवासियों के शुभ और अशुभ को बतलाते हैं ॥ १० ॥ वृषध्वज, अञ्जन, जम्वाख्य, मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, खर्म्मक और कर्व्वटाशन ॥११॥ तथा चन्द्रेश्वर, खश, मगध मैथिल, पौण्ड्र और वदनदन्तुर ॥१२॥ प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्र, पुरुपादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर और हे कौष्टुकिजी ! इसी प्रकार उदयगिरि ॥१३॥ कशाय, मेखला, मुष्ट ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्द्धमान और कोशल ये सब देश भगवान् कूर्म्म के मुख पर स्थित हैं ॥१४॥ आर्द्रा, पुनर्व्वसु और पुष्य ये तीन नक्षत्र इन देशों के निवासियों को शुभाशुभ बतलाते हैं। हे क्रौष्टुकि ! कूर्म्म भगवान् के दक्षिण चरण पर जो देश स्थित हैं उनको सुनो ॥ १५ ॥ कलिङ्ग, वङ्ग, जठर, कोशल, मूषिक, चेदय, ऊर्ध्व-कर्ण और मत्स्यादि जो विन्ध्य-निवासी देश हैं ॥१६॥ तथा विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप तथा ऐलिक, व्याघ्र-ग्रीव, त्रैपुर और श्मश्रुधारी ॥ १७ ॥ किष्किन्धा, हैमकूट, निषध, दशार्ण, हारिक, नग्न, विषाद और काकुलालक ॥ १८ ॥ तथा पर्ण और शवर ये देश कूर्म भगवान् के पूर्व दक्षिण चरण पर स्थित हैं । श्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुणी ॥ १९ ॥ ये तीनों नक्षत्र पूर्व दक्षिण चरण पर स्थित रहते हैं । लङ्का कालाजिन, शैलिक और निकट ॥ २० ॥ तथा महेन्द्र, मलयाद्रि और दर्दुर पर्वतों पर जो लोग आश्रित हैं वे, तथा भृगुकच्छा और कोङ्कन ॥ २१॥

ग्र्व्वाश्चैव तथाभीरा वेण्वातीरनिवासिनः ।
अवन्तयो दासपुरास्तथैवाकणिनो जनाः ॥२२॥
महाराष्ट्राः सकर्णाटा गोनर्दाश्चित्रकूटकाः ।
चोलाः कोलगिराश्चैव क्रौञ्चद्वीपजटाधराः ॥२३॥
कावेरी ऋष्यमूकस्था नासिक्याश्चैव ये जनाः ।
शंखशुक्त्यादिवैदूर्य्य-शैलप्रान्तचराश्च ये ॥२४॥
तथा वारिचराः कोलाश्चर्म्मपट्टनिवासिनः ।
गणवाह्याः पराः कृष्णा द्वीपवासनिवासिनः ॥२५॥
सूर्य्याद्रौ कुमुदाद्रौ च ते वसन्ति तथा जनाः ।
औखावनाः सपिशिकास्तथा ये कर्म्मनायकाः ॥२६॥
दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः ।
ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः ॥२७॥
तिलङ्गाकुञ्जरदरी-कच्छवासाश्च ये जनाः ।
ताम्रपर्णी तथा कुक्षिरिति कूर्म्मस्य दक्षिणः ॥२८॥
फल्गुन्यश्चोत्तरा हस्ता चित्रा चर्क्षत्रयं द्विज ।
कूर्म्मस्य दक्षिणे कुक्षौ वाह्यपादस्तथापरम् ॥२९॥
काम्बोजाः पह्लवाश्चैव तथैव वड़वामुखाः ।
तथा च सिन्धुसौवीराः सानर्त्ता वनितामुखाः ॥३०॥
द्रावणाः मार्गिगाः शूद्राः कर्णप्राधेयवर्व्वराः ।
किराताः पारदाः पाण्ड्यास्तथा पारशवाः कलाः ३१
धूर्त्तका हैमगिरिकाः सिन्धुकालकवैरताः ।
सौराष्ट्रा दरदाश्चैव द्राविड़ाश्च महार्णवाः ॥३२॥
एते जनपदाः पादे स्थिता वै दक्षिणेऽपरे ।
स्वात्यो विशाखा मैत्रश्च नक्षत्रत्रयमेव च ॥३३॥
मणिमेघः क्षुराद्रिश्च खञ्जनोऽस्तगिरिस्तथा ।
अपरान्तिका हैहयाश्च शान्तिका विप्रशस्तकाः ३४॥
कोङ्कणाः पञ्चनदका वमना ह्यवरास्तथा ।
तारक्षुरा ह्यङ्गतकाः शर्कराः शाल्मवेश्मकाः ॥३५॥
गुरुस्वराः फाल्गुनका वेणुमत्याश्च ये जनाः ।
तथा फाल्गुलुका घोरा गुरुहाश्चकलास्तथा ॥३६॥
एकेक्षणा वाजिकेशा दीर्घग्रीवाः सुचूलिकाः ।
अश्वकेशास्तथा पुच्छे जनाः कूर्म्मस्य संस्थिताः ३७॥
ऐन्द्रं मूलं तथाषाढ़ा नक्षत्रत्रयमेव च ।
माण्डव्याश्चण्डखाराश्च अश्मका ललनास्तथा ॥३८॥

ये सब तथा आभीर और वेण्वातीर निवासी, अवन्ती, दासपुर तथा जहाँ आकणिन लोग रहते हैं ॥ २२ ॥ महाराष्ट्र, कर्णाट, गोनर्द्दा, चित्रकूट चोल, कोलगिरि, क्रौंचद्वीप और जटाधर ॥ २३ ॥ कावेरी और ऋष्यमूक के निकटवर्ती लोग, शंख, शुक्ता और वैदूर्य्य आदि पर्वतों पर रहनेवाले ॥२४॥ तथा वारिचर, कोल, चर्म्मपट्ट, गणवाह्य और कृष्णद्वीप आदि के रहने वाले लोग ॥ २५ ॥ सूर्य्याद्रि, कुमुद्राद्रि पर जो लोग रहते हैं वे औखावन, पिशिक और कर्म्मनायक ॥ २६ ॥ दक्षिण, कौरुप, ऋषिक, तापसाश्रम ऋषभ, सिंहल और काञ्चीनिवासी ॥ २७ ॥ तिलङ्ग, कुञ्जरदरी, और कच्छवासी ये सब लोग कूर्म भगवान् के दक्षिण कुक्षि में वसते हैं ॥ २८ ॥ उत्तरा फाल्गुणी, हस्त और चित्रा ये तीनों नक्षत्र भी कूर्म्म की दक्षिण कोखमें स्थित हैं। अब बांये पाँव पर जो कुछ है वह कहता हूँ ॥ २९ ॥ काम्बोज, प्रह्लव, वड़वामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त और वनितामुख ॥ ३० ॥ द्रावण, मार्गिगा, शूद्रा, कर्णप्राधेय, वर्व्वर, किरात, पारद, पाण्ड्य, पारशव और कला ॥ ३१ ॥ धूर्त्तका, हैमगिरिका, सिन्धुकाल, सौराष्ट्र, दरद, द्राविण और महार्णव ॥ ३२ ॥ उन देशों के लोग कूर्म भगवान् के वाह्य के दक्षिण पाँव पर स्थित हैं तथा स्वाति, विशाखा और अनुराधा ये तीन नक्षत्र उनके वहाँ ही हैं ॥ ३३ ॥ मणिमेघ, क्षुराद्रि, खञ्जन, अस्तगिरि, अपरान्तिका, हैहय, शान्तिक और विप्रशस्तक ॥ ३४ ॥ कोङ्कण, पञ्चनदक, वमन, तारक्षुरा, अङ्गतक, शर्कर और शाल्मवेश्मक ॥ ३५ ॥ गुरुस्वर, फाल्गुणक और जो लोग वेणुमती के रहने वाले हैं और फाल्गुलुक, घोर, गुरुह और चकल ॥ ३६ ॥ एकेक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव, सुचूलिक और अश्वकेश ये सब लोग कूर्म्म भगवान् के पुच्छ भाग में स्थित हैं ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ ये तीन पुच्छ भाग के नक्षत्र हैं । माण्डव्य, चण्डखार, अश्मक और ललन ॥ ३८ ॥ कुन्यतालड़ह, स्त्रीवाह्य, वालिका,

वैश्य-शूद्रकुलानि च । मालक ॥ २७ ॥ इन सब देशों में क्षत्री, वैश्य और

कुन्यता लड़हाश्चैव स्त्रीवाह्या वालिकास्तथा ।
नृसिंहा वेणुमत्याश्च वलावस्थास्तथापरे ॥३६॥
धर्म्मबद्धास्तथालूका उरुकर्मस्थिता जनाः ।
वामपादे जनाः पार्श्वे स्थिताः कूर्म्मस्य भागुरे॥४०॥
आषाढ़ाश्रवणे चैव धनिष्ठा यत्र संस्थिता ।
कैलासो हिमवांश्चैव धनुष्मान् वसुमांस्तथा ॥४१॥
क्रौञ्चाः कुरुवकाश्चैव क्षुद्रवीणाश्च ये जनाः ।
रसालयाः सकैकेया भोगप्रस्थाः सयामुनाः ॥४२॥
अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च अग्नीज्याः सार्दना जनाः ।
तथैवाश्वमुखाः प्राप्ताश्चिविड़ाः केशधारिणः ॥४३॥
दासेरका वाटधानाः शवधानास्तथैव च ।
पुष्कलाधमकैरातास्तथा तक्षशिलाश्रयाः ॥४४॥
अम्बाला मालवा मद्रा वेणुकाः सवदन्तिकाः ।
पिङ्गला मानकलहा हूणाः कोहलकास्तथा ॥४५॥
माण्डव्या भूतियुवकाः शातका हेमतारकाः ।
यशोमत्याः सगान्धाराः स्वरसागरराशयः । ४६॥
यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः श्यामकास्तथा ।
क्षेमधूर्त्ताश्च कूर्म्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः ॥४७॥
वारुणश्चात्र नक्षत्रं तत्र प्रौष्ठपदाद्वयम् ।
येन किन्नराज्यञ्च पशुपालं सकीचकम् ॥४८॥
काश्मीरकं तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा ।
दवदास्त्वङ्गनाश्चैव कुलटा वनराष्ट्रकाः ॥४६॥
सैरिष्ठा ब्रह्मपुरकास्तथैव वनवाह्यकाः ।
किरात-कौशिकानन्दा जनाः पह्लवलोलनाः ॥५०॥
दार्व्वादा मरकाश्चैव कुरटाश्चान्नदारकाः ।
एकपादाः खशा घोषाः स्वर्गभौमानवद्यकाः ॥५१॥
तथा सयवना हिङ्गाश्चीरप्रावरणाश्च ये ।
त्रिनेत्राः पौरवाश्चैव गन्धर्व्वाश्च द्विजोत्तम ॥५२॥
पूर्व्वोत्तरन्तु कूर्म्मस्य पादमेते समाश्रिताः ।
रेवत्याश्वाश्चि दैवत्यं याम्यंचर्क्षमिति त्रयम् ॥५३॥
तत्र पादे समाख्यातं पाकाय मुनिसत्तम ।
देशेष्वेतेषु चैतानि नक्षत्राण्यपि वै द्विज ॥५४॥
एतत्पीड़ा अमी देशाः पीड्यन्ते ये क्रमोदिताः ।
यान्ति चाभ्युदयं विप्र ग्रहैः सम्यगवस्थितैः ॥५५॥

नृसिंह, वेणुमती और वालावस्था ॥ ३६ ॥ धर्मबद्धा, उलूक, उरुकर्म निवासी लोग कूर्म भगवान् के बाँये पाँव में रहते हैं ॥ ४०॥ उत्तराषाढ़, श्रावण और धनिष्ठा ये तीनों नक्षत्र भी वहाँ पर स्थित हैं कैलाश, हिमवान्, धनुष्मान् और वसुमान् ॥ ४१ ॥ क्रौञ्च, कुरुवक और क्षुद्रवीण जो लोग हैं और रसालय, कैकेय, भोगप्रस्थ और यामुन ॥ ४२ ॥ अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्नीज्य तथा अर्द्दन लोग और अश्वमुख चिविड़ और केशधारी ॥ ४३ ॥ दासेरक वाटधान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात, तक्ष और शिलाश्रय ॥ ४४ ॥ अम्बाला, मालवा, भद्र, वेणुक सवदन्तिक, पिङ्गल, मानकलह, हूण और कोहलक ॥ ४५ ॥ माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हेमतारक, यशोमत्य, गान्धार और स्वर सागर राशि ॥ ४६ ॥ यौधेय, दासमेय, राजन्या, श्यामक और क्षेमधूर्तक ये सब देश भगवान् कूर्म की बाँई कोख में स्थित हैं ॥ ४७ ॥ शतभिष, पूर्वाभाद्र, और उत्तराभाद्र ये तीनों नक्षत्र उन देशों के हैं । नरराज्य, पशुपाल, कीचक ॥ ४८ ॥ काश्मीरक, राष्ट्र, अभिसारजन, दवदाङ्गना, कुलटा और वनराष्ट्रक ॥ ४६ ॥ सौरिष्ट, ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिक, नन्द और पल्हव लोलन ॥ ५० ॥ दार्व्वाद, मरक, कुरट, अन्नदारक, एकपाद, खश, घोष, स्वर्ग भौम और अनवद्यक ॥ ५१ ॥ तथा यवन, हिंग, चीरप्रावण और हे विप्रवर ! त्रिनेत्र, पौरव और गन्धर्व्व ॥ ५२ ॥ यह सब लोग कूर्म भगवान् के पूर्वोत्तर चरण में आश्रित हैं तथा रेवती, अश्विनी और भरणी यह तीन उनके नक्षत्र हैं ॥ ॥ ५३ ॥ हे मुनीश्वर ! कूर्म के जिस-जिस भाग में जो-जो देश और उनके जो-जो नक्षत्र हैं वे सब मैंने तुमसे कहे ॥५४॥ इन देशोंमें नक्षत्रों के बिगड़ने से मनुष्यों को पीड़ा होती है और उत्तम गृहों के साथ नक्षत्रों के स्थित होने पर मनुष्य अभ्युदय को प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥ जिस नक्षत्र का जो ग्रह

स्यर्क्षस्य पतिर्यो वै ग्रहस्तद्भावितो भयम् ।
देशस्य मुनिश्रेष्ठ तदुत्कर्षे शुभागमः ॥५६॥
प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् ।
भयं लोकस्य भवति शोभनं वा द्विजोत्तम ॥५७॥
स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तोः सामान्यमिति भीतिदम् ।
ग्रहैर्भवति पीड़ोत्थमल्पायासमशोभनम् ॥५८॥
तथैव शोभनः पाको दुःस्थितैश्च तथा ग्रहैः ।
अल्पोपकाराय नृणां देशज्ञैश्चात्मनो बुधैः ॥५६॥
द्रव्ये गोष्ठेऽथ भृत्येषु सुहृत्सु तनयेषु वा ।
भार्य्यायाञ्च ग्रहे दुःस्थे भयं पुण्यवतां नृणाम् ६०॥
आत्मन्यथाल्पपुण्यानां सर्व्वत्रैवातिपापिनाम् ।
नैकत्रापि ह्यपापानां भयमस्ति कदाचन ॥६१॥
दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मजम् ।
नक्षत्रग्रहसामान्यं नरो भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥६२॥
परस्पराभिरक्षा च ग्रहादौःस्थ्येन जायते ।
एतेभ्य एव विप्रेन्द्र शुभहानिस्तथाशुभैः ॥६३॥
यदेतत् कूर्म्मसंस्थानं नक्षत्रेषु मयोदितम् ।
एतत् तु देशसामान्यमशुभं शुभमेव च ॥६४॥
तस्माद्विज्ञाय देशर्क्षं ग्रहपीड़ां तथात्मनः ।
कुर्व्वीत शान्तिं मेधावी लोकवादांश्च सत्तम ॥६५॥
आकाशादेवतानांच दैत्यादीनाञ्च दोहृदाः ।
पृथ्वयां पतन्ति ते लोके लोकवादा इति श्रुताः॥६६॥
तां तथैव बुधः कुर्य्याल्लोकवादान् न हापयेत् ।
तेषां तत्करणान्नृणां युक्तो दुष्टागमक्षयः ॥६७॥
शुभोदयं महानिञ्च पापानां द्विजसत्तम ।
प्रज्ञाहानिं प्रकुर्य्युस्ते द्रव्यादीनाञ्च कुर्व्वते ॥६८॥
तस्माच्छान्तिपरः प्राज्ञो लोकवादरतस्तथा ।
लोकवादांश्च शान्तीश्च ग्रहपीड़ासु कारयेत् ॥६९॥
अद्रोहाद्युपवासांश्च शस्तं चैत्यादिवन्दनम् ।
जपं होमं तथा दानं स्नानं क्रोधादिवर्ज्जनम् ॥७०॥
अद्रोहः सर्व्वभूतेषु मैत्रीं कुर्य्याच्च पण्डितः ।
वर्ज्जयेदसतीं वाचमतिवादांस्तथैव च ॥७१॥
ग्रहपूजाञ्च कुर्व्वीत सर्व्वपीड़ासु मानवः ।
एवं शाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम ॥७२॥
वैश्य-शूद्रकुलानि च ।

स्वामी है उसके बिगड़ने पर लोगों पर विपत्ति आती है तथा उसका उत्कर्ष होने पर हे मुनिवर! प्रजा को सुख होता है ॥५६॥ हे द्विजश्रेष्ठ! प्रत्येक देश के नक्षत्र और ग्रह के अनुसार प्रजा को भय या सुख होता है ॥ ५७ ॥ अपने-अपने नक्षत्रों के अशुभ होने पर देशों में प्रजाको अत्यन्त भय और दुःख होता है ॥ ५८ ॥ ग्रहों की कुस्थिति के कारण जो भय होता है उसको दूर करने के लिये ज्ञानी लोग मनुष्यों के लिये जप, दान आदि का आदेश करते हैं ॥ ५६ ॥ ग्रह की कुत्सित स्थिति में पुण्यवान् लोगों को भी धन, गोष्ठ, भृत्य, मित्र, पुत्र,स्त्री आदि करके भय होताहै ॥६०॥ यदि ग्रह शुभ होतो अल्प-पुण्य वालों, नितान्त पापियों तथा निष्पापी इनमें से किसी को कष्ट नहीं होता ॥ ६१ ॥ दिशा, देश, प्रजा, राजा और पुत्र की सानुकूलता या प्रतिकूलता मनुष्य अपने ग्रह या नक्षत्रके अनुसार भोगता है ॥६२॥ ग्रहों की स्वस्थ स्थिति होने पर परस्पर रक्षा होती है तथा हे विप्रेन्द्र! इनकी दुष्ट स्थिति होने पर कष्ट होता है ॥६३॥ नक्षत्रों सहित जो कूर्म के संस्थान का मैंने वर्णन किया है वह सब देशों में शुभाशुभ फल का देने वाला है ॥६४॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इसलिये अपने देश, नक्षत्र, ग्रहपीड़ा आदि को मालुम करके बुद्धिमानों को चाहिये कि पण्डितों से उसकी शान्ति करावें ॥६५॥ आकाश में जो देवताओं और दैत्यों का भी शत्रु है और जो पृथ्वी पर गिर कर लोकवाद कहलाता है ॥ ६६ ॥ उस लोकवाद तथा ग्रहों की शान्ति बुद्धिमानों को करानी चाहिये क्योंकि इन्हीं ग्रहादि के कारण मनुष्यों को क्लेश और अशुभ होता है ॥ ६७ ॥ हे विप्रवर! ग्रह सानुकूल होने पर शुभ का उदय और पापों का नाश करते हैं तथा प्रतिकूल होनेपर बुद्धि और धन का हरण कर लेते हैं ॥ ६८ ॥ इस लिये बुद्धिमानों को चाहिये कि लोकवाद और ग्रहों की शान्ति पीड़ा होने पर करावें ॥ ६६ ॥ मनुष्यों को चाहिये कि वैर रहित रहें, उपवास करें, शान्ति-स्तोत्र पढ़ें, जप, हवन, स्नान और दान आदि करें तथा क्रोध से दूर रहें ॥७०॥ पण्डित को चाहिये कि वैर रहित होकर सब प्राणियों से मैत्री करे तथा असत्य भाषण और अत्यन्त विवाद न करे ॥ ७१ ॥ सब कष्टों में मनुष्यों को ग्रह की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार अशेष और घोर कष्ट भी मिट जाते हैं हैं॥ ७२ ॥ पवित्र मनुष्यों को भी
... वैश्य और

प्रयतानां मनुष्याणां ग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः ।
एष कूर्म्मो मया ख्यातो भारते भगवान् विभुः ॥७३॥
नारायणो ह्यचिन्त्यात्मा यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
तत्र देवाः स्थिताः सर्व्वे प्रतिनक्षत्रसंश्रयाः ॥७४॥
तथा मध्ये हुतवहः पृथ्वी सोमश्च वै द्विज ।
मेषादयस्त्रयो मध्ये मुखे द्वौ मिथुनादिकौ ॥७५॥
प्राग्दक्षिणे तथा पादे कर्कसिंहौ व्यवस्थितौ ।
सिंह-कन्या-तुलाश्चैव कुक्षौ राशित्रयं स्थितम् ॥७६॥
तुलाथ वृश्चिकश्चाभौ पादे दक्षिणपश्चिमे ।
पृष्ठे च वृश्चिकेनैव सह धन्वी व्यवस्थितः ॥७७॥
वायव्ये चास्य वै पादे धनुर्ग्राहादिकं त्रयम् ।
कुम्भ-मीनौ तथैवास्य उत्तरं कुक्षिमाश्रितौ ॥७८॥
मीन-मेषौ द्विजश्रेष्ठ पादे पूर्व्वोत्तरे स्थितौ ।
कूर्म्मे देशास्तथर्क्षाणि देशेष्वेतेषु वै द्विज ॥७६॥
राशयश्च तथर्क्षेषु ग्रहा राशिष्ववस्थिताः ।
तस्माद्ग्रहर्क्षपीड़ासु देशपीड़ां विनिर्दिशेत् ॥८०॥
तत्र स्नात्वा प्रकुर्व्वीत दानहोमादिकं विधिम् ।
स एष वैष्णवः पादो ब्रह्मा मध्ये ग्रहस्य यः ।
नारायणाख्योऽचिन्त्यात्मा कारणं जगतः प्रभुः॥८१॥

ग्रहों के कारण शुभाशुभ होता है। कूर्मभगवान् का जो भारत में स्थित हैं मैंने वर्णन किया ॥७३॥ कूर्म भगवान् अचिन्तात्मा हैं और इन्हीं में सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है तथा इन्हीं में देवताओं और नक्षत्रों की स्थिति है ॥७४॥ हे क्रौष्टुकिजी ! अग्नि, पृथ्वी, चन्द्रमा यह कूर्म भगवान् के मध्य में स्थित हैं तथा मेष और वृष भी मध्य में हैं। कर्क और मिथुन कूर्म के मुख में हैं ॥ ७५ ॥ कर्क और सिंह कूर्म के दक्षिण चरण में स्थित हैं तथा सिंह,कन्या और तुला यह तीनों राशियां कूर्म की कोख में हैं ॥७६॥ तुला और वृश्चिक यह दोनों दक्षिण पश्चिम चरण में स्थित हैं। कूर्म की पीठ पर वृश्चिक और धनु स्थित हैं ॥७७॥ कूर्म भगवान् के वायव्य चरण में धन, मकर और कुम्भ राशियां हैं तथा उनकी उत्तर कुक्षिमें कुम्भ और मीनहैं ॥७८॥ हे द्विजवर! पूर्वोत्तर चरणमें मीन और मेष स्थितहैं। हे विप्र ! कूर्म में देश, देश में नक्षत्र ॥ ७६ ॥ नक्षत्र में राशि और राशियों में ग्रहों की स्थिति है, इसलिये ऋक्ष-पीड़ा में ग्रह-पीड़ा समझना चाहिये ॥ ८० ॥ ऐसी स्थिति में स्नान करके विधि पूर्वक दान देना और हवन आदि करना चाहिये, इसको वैष्णव पाद कहते हैं जिसको ब्रह्मा ने मध्यमें ग्रहण किया और जो जगत् के कारण प्रभु नारायण के नाम से विख्यात है ॥ ८१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें कूर्म-निवेश नाम ५८वाँ अ० समाप्त ।



उनसठवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु भारतं वर्षं यथावत् कथितं मुने ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च तथातिष्यं चतुर्युगम् ॥ १ ॥
अत्रैवैतद्युगानान्तु चातुर्व्वर्ण्योऽत्र वै द्विज ।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैव तथैकंच शरच्छतम् ॥ २ ॥
जीवन्त्यत्र नरा ब्रह्मन् कृतत्रेतादिके क्रमात् ।
देवकूटस्य पूर्व्वस्य शैलेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
पूर्व्वेण यत् स्थितं वर्षं भद्राश्वं तन्निबोध मे ।
श्वेतपर्णश्च नीलश्च शैवालश्चाचलोत्तमः ॥ ४ ॥
कौरञ्जः पर्णशालाग्रः पंचैते तु कुलाचलाः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनिवर ! मैंने आपसे भारतवर्ष का यथावत् वर्णन किया तथा त्रेता, द्वापर आदि चारों युगों को भी बताया ॥१॥ हे द्विज ! इन चारों युगों में चारों वर्णों के मनुष्यों की आयु क्रमशः चारसौ, तीनसौ, दोसौ और सौ वर्ष है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! सतयुग, त्रेता आदि युगों में इस क्रम से लोग जीवित रहते हैं। शैलराज देवकूट के पूर्व में ॥३॥ जो भद्राश्व वर्ष है उसको मुझसे सुनो। उसमें श्वेतपर्ण, नील, पर्वतों में श्रेष्ठ शैवाल ॥ ४ ॥ कौरञ्ज और पर्णशालाग्र यह पाँच कुलपर्वत हैं उनमें से

तेषां प्रसूतिरन्ये ये बहवः क्षुद्रपर्व्वताः ॥ ५ ॥
तैर्विशिष्टा जनपदा नानारूपाः सहस्रशः ।
ततः कुमुदसङ्काशाः शुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥ ६ ॥
इत्येवमादयोऽन्येऽपि शतशोऽथ सहस्रशः ।
शीता शंखावती भद्रा चक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥ ७ ॥
नद्योऽथ बह्वयो विस्तीर्णाः शीततोयौघवाहिकाः ।
अत्र वर्षे नराः शंखशुद्धहेमसमप्रभाः ॥ ८ ॥
दिव्यसङ्गमिनः पुण्या दशवर्षशतायुषः ।
मन्दोत्तमौ न तेषु स्तः सर्व्वे ते समदर्शनाः ॥ ९ ॥
तितिक्षादिभिरष्टाभिः प्रकृत्या ते गुणैर्युताः ।
तत्राप्यश्वशिरा देवश्चतुर्व्बाहुर्जनार्द्दनः ॥१०॥
शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रि-हस्तैश्चाक्षित्रयान्वितः ।
तस्याप्यथैवं विषया विज्ञेया जगतः प्रभोः ॥११॥
केतुमालमतो वर्षं निबोध मम पश्चिमम् ।
विशालः कम्बलः कृष्णो जयन्तो हरिपर्व्वताः ॥१२॥
विशोको वर्द्धमानश्च सप्तैते कुलपर्व्वताः ।
अन्ये सहस्रशः शैला येषु लोकगणः स्थितः ॥१३॥
मौलयस्ते महाकायाः शाकपोतकरम्भकाः ।
अङ्गुलप्रमुखाश्चापि वसन्ति शतशो जनाः ॥१४॥
ये पिबन्ति महानद्योरक्षुं श्यामां सकम्बलाम् ।
अमोघां कामिनीं श्यामां तथैवान्याः सहस्रशः॥१५॥
अत्राप्यायुः समं पूर्व्वैरत्रापि भगवान् हरिः ।
वराहरूपी पादास्य-हृत्-पृष्ठ-पार्श्वतस्तथा ॥१६॥
त्रिनक्षत्रयुते देशे नक्षत्राणि शुभानि च ।
इत्येतत् केतुमालं ते कथितं मुनिसत्तम ॥१७॥
अतः परं कुरून् वक्ष्ये निबोधेह ममोत्तरान् ।
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ॥१८॥
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ।
सर्व्वकामप्रदास्ते हि सर्व्वकामफलप्रदाः ॥१९॥
भूमिर्मणिमयी वायुः सुगन्धः सर्व्वदासुखः ।
जायन्ते मानवास्तत्र देवलोकपरिच्युताः ॥२०॥
मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि वै ।

१... वश्य-शूद्रकुलानि च ।

बहुत से छोटे-छोटे पर्वत निकलते हैं ॥ ५ ॥ इन पर्वतों के अतिरिक्त हज़ारों नाना प्रकार के देश उस भद्राश्व वर्ष में हैं तथा कुमुद के समान, शुद्ध और मङ्गल वहाँ के किनारे हैं ॥ ६ ॥ ऐसे तथा अन्य सैकड़ों हज़ारों पर्वत वहाँ पर हैं । शीता, शंखावती, भद्रा और चक्रावर्ता आदि ॥ ७ ॥ बड़े विस्तार वाली तथा अगाध शीतल जल वाली नदियाँ हैं । इस वर्ष में मनुष्य शंख और सुन्दर सुवर्ण की तरह कान्तिमान् हैं ॥ ८ ॥ उन लोगोंकी दिव्य गति है तथा वे पुण्यात्मा हैं उनकी आयु एकसौदस वर्ष की है । उन लोगों में उत्तम और मध्यम कोई नहीं है तथा वे सब समदर्शी हैं ॥ ९ ॥ वे लोग स्वभाव से ही तितिक्षा आदि आठों गुणों से युक्त हैं और वहाँ अश्वशिरा, चतुर्भुज भगवान जनार्दन रहते हैं ॥१० ॥ भगवान् अश्वशिरा शिर हृदय, लिङ्ग, चरण, हाथ और तीन नेत्रों से युक्तहैं उस जगत् में उसी प्रभु का विषय जानना चाहिये ॥११॥ अब पश्चिम में स्थित केतुमाल वर्ष का हाल सुनो । विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरि पर्वत ॥१२॥ विशोक और वर्द्धमान् यह सात वहाँ पर कुल पर्वत हैं और भी हज़ारों छोटे-छोटे पर्वत हैं जिनमें लोग रहते हैं ॥१३॥ वे विशाल शरीर वाले हैं तथा उनके शिर बड़े हैं । शाक, पोतक, रम्भक और अंगुल आदि प्रमुख सहस्रों मनुष्य वहाँ रहते हैं ॥ १४ ॥ यह लोग जिन महानदियों के जल को पीते हैं उनके नाम सुनो । अक्षु, श्यामा, कम्बला, अमोघा, कामिनी आदि तथा और भी हज़ारों नदियां वहाँ पर हैं ॥ १५ ॥ वहाँ भी आयु एकसौ दस वर्ष की होती है तथा यहां वाराहरूपी हरि भगवान् रहते हैं जिनके चरण, हृदय. मुख, पीठ और पार्श्व हैं ॥ १६ ॥ यह देश भी तीन नक्षत्रों से युक्त है जिनका कि शुभाशुभ फल होता है । हे मुनिवर ! मैंने आपसे इस प्रकार केतुमाल वर्ष का वर्णन किया ॥ १७ ॥ अब उत्तर दिशा की ओर जो कुरु वर्ष है उसको कहता हूँ, सुनो । वहां के वृक्ष पुष्प और मीठे फल नित्य देते हैं ॥१८ ॥ वहाँ वृक्षों से फल रूप में वस्त्र आभूषण उत्पन्न होते हैं । वे वृक्ष सब कामनाओं के देने वाले तथा पूर्ण फल करने वाले हैं ॥ १९ ॥ वहां की पृथ्वी मणिमयी है और वायु सर्वदा सुखदायक और सुगन्धिमयी चलती है । जो लोग देवलोक से च्युत होते हैं वे वहाँ पर जन्मते हैं ॥ २० ॥ वहां स्त्री-पुरुष जोड़े से समान काल और स्थिति में जन्म धारण करते हैं

अन्योन्यमनुरक्तानि चक्रवाकोपमाणि च ॥२१॥
चतुर्द्दशसहस्राणि तेषां सार्द्धानि वै स्थितिः ।
चन्द्रकान्तश्च शैलेन्द्रः सूर्य्यकान्तस्तथापरः ॥२२॥
तस्मिन् कुलाचलौ वर्षे तन्मध्ये च महानदी ।
भद्रसोमा मयात्युर्व्व्यां पुण्यामलजलौघिनी ॥२३॥
सहस्रशस्तथैवान्या नद्यो वर्षेऽपि चोत्तरे ।
तथान्याः क्षीरवाहिण्यो घृतवाहिन्य एव च ॥२४॥
दध्नो ह्रदास्तदा तत्र तथान्ये चानुपर्व्वताः ।
अमृतास्वादकल्पानि फलानि विविधानि च ॥२५॥
वनेषु तेषु वर्षेषु शतशोऽथ सहस्रशः ।
तत्रापि भगवान् विष्णुः प्राक्शिरा मत्स्यरूपवान् २६
विभक्तो नवधा विप्र नक्षत्राणां त्रयं त्रयम् ।
दिशस्तथापि नवधा विभक्ता मुनिसत्तम ॥२७॥
चन्द्रद्वीपः समुद्रे च भद्रद्वीपस्तथापरः ।
तत्रापि पुण्यो विख्यातः समुद्रान्तर्महामुने ॥२८॥
इत्येतत् कथितं ब्रह्मन् कुरुवर्षं मयोत्तरम् ।
शृणु किम्पुरुषादीनि वर्षाणि गदतो मम ॥२९॥

तथा उनमें चकवा चकई की तरह प्रीति स्थिर रहती है ॥२१॥ वहाँ लोगों की आयु साढ़े चौदह हज़ार वर्ष की होती है। चन्द्रकान्त पर्वत तथा सूर्यकान्त ॥ २२ ॥ उस वर्षमें यह दोनों कुल पर्वत हैं, उसके मध्यमें महानदी भद्रसोमा जिसकी जल राशि पवित्र और पुण्यवती है ॥ २३ ॥ तथा अन्य सहस्रों नदियां बहती हैं और वहाँ क्षीर-वाहिनी तथा घृतवाहिनी नदियां भी हैं ॥२४॥ वहां पर अनेक दधि के कुण्ड हैं तथा अनेक रमणीक पर्वत हैं। वहाँ पर अनेक प्रकार के फल हैं जिनका स्वाद अमृत के समान है ॥ २५ ॥ उस वर्ष में सैकड़ों हज़ारों वन हैं तथा वहाँ भगवान् विष्णु मत्स्य रूप से पूर्व की ओर मुख करके स्थित हैं ॥ हे क्रौष्टुकिजी ! उस वर्षमें तीन नक्षत्रोंके नौ विभाग हैं। हे मुनिवर ! दिशायें भी वहाँ नौ भागों में बँटी हुई हैं ॥ २७ ॥ समुद्र में चन्द्रद्वीप है तथा दूसरा भद्रद्वीप अति पवित्र है। हे महामुने ! इसके चारों ओर समुद्र है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने आपसे उत्तर वर्ती कुरु वर्ष का वर्णन किया अब किम्पुरुष आदि वर्षों का वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ २९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में उत्तर-कुरु कथन नाम ५९वाँ अध्याय समाप्त ।

—:०:—

साठवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

यत् तु किम्पुरुषं वर्षं तत् प्रवक्ष्याम्यहं द्विज ।
यत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणां वपुष्मताम् ॥ १ ॥
अनामया ह्यशोकाश्च नरा यत्र तथा स्त्रियः ।
प्लक्षः षण्डश्च तत्रोक्तः सुमहान् नन्दनोपमः ॥ २ ॥
तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाः सदा ।
स्थिरयौवननिष्पन्नाः स्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥ ३ ॥
अतः परं किम्पुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्ष्यते ।
महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ४ ॥
देवलोकच्युताः सर्व्वे देवरूपाश्च सर्व्वशः ।
हरिवर्षे नराः सर्व्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ॥ ५ ॥
न जरा बाधते तत्र न जीर्य्यन्ते च कर्हिचित् ।
तावन्तमेव ते कालं जीवन्त्यथ निरामयाः ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकिजी ! किम्पुरुष नामक वर्ष का वर्णन अब मैं करताहूँ जहांकि पुरुषोंकी आयु दस हज़ार वर्ष है ॥ १ ॥ वहाँ पुरुष स्त्रियां शोक रहित और प्रसन्न चित्त हैं। उस वर्ष में प्लक्ष नामक एक विशाल वन है जो नन्दनवन के समान है ॥ २ ॥ उसी वनके फलों का रस पीते हुए वहाँ के पुरुष सदा युवा बने रहते हैं तथा इसी कारण से वहाँ की स्त्रियों में कमल की सुगन्धि आती है ॥३॥ किंपुरुष के बाद हरिवर्ष का वृत्तान्त कहता हूँ जहाँ पुरुष चांदी के समान कान्तिमान हैं ॥ ४ ॥ देवता-के लोकों से गिरकर लोग देवरूप होकर उस वर्ष में आते हैं हरिवर्ष में सब लोग ईख का रस पीतेहैं ॥५॥ वहाँ लोगोंको वृद्धावस्था नहीं सताती है और न वे जीर्ण होते हैं। जब तक वे जीवित रहते हैं तब तक रोग रहित रहते हैं ॥६॥ अब मेरु वर्ष के

मेरुवर्षं मया प्रोक्तं मध्यमं यदिलावृतम् ।
न तत्र सूर्य्यस्तपति न ते जीर्य्यन्ति मानवाः ॥ ७ ॥
लभन्ते नात्मलाभश्च रश्मयश्चन्द्र-सूर्य्ययोः ।
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च मेरोस्तत्र परा द्युतिः ॥ ८ ॥
पद्मप्रभा पद्मगन्धा जम्बूफलरसाशिनः ।
पद्मपत्रायताक्षास्तु जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ९ ॥
वर्षाणान्तु सहस्राणि तत्राप्यायुस्त्रयोदश ।
सरावाकारसंस्तारो मेरुमध्ये इलावृते ॥१०॥
मेरुस्तत्र महाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् ।
रम्यकं वर्षमस्माच्च कथयिष्ये निबोध तम् ॥११॥
वृक्षस्तत्रापि चोत्तुङ्गो न्यग्रोधो हरितच्छदः ।
तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्त्तयन्ति वै ॥१२॥
वर्षायुतायुषस्तत्र नरास्तत्फलभोगिनः ।
रतिप्रधानविमला जरादौर्गन्ध्यवर्ज्जिताः ॥१३॥
तस्मादथोत्तरं वर्षं नाम्ना ख्यातं हिरण्मयम् ।
हिरण्वती नदी तत्र प्रभूतकमलोज्ज्वला ॥१४॥
महाबलाः सतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः ।
यक्षरूपा महासत्त्वा धनिनः प्रियदर्शनाः ॥१५॥

इलावर्त खण्ड का वर्णन करते हैं जहां न तो सूर्य तपता है और न मनुष्य वृद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ चन्द्रमा और सूर्य की किरणें वहां लोग अपने लाभके लिये लेते हैं तथा नक्षत्रों और ग्रहों का प्रकाश मेरु पर्वत के परे होता है ॥ ८ ॥ वहाँ के मनुष्यों की कान्ति कमल के समान है तथा उनमें से कमल की सी सुगन्धि आती है। वे लोग जम्बू फल के रस को पीते हैं और उनके नेत्र कमल के समान हैं ॥ ९ ॥ वहां लोगों की आयु तेरह हज़ार वर्ष की होती है, इलावर्त के मध्य में जो मेरु पर्वतहै उसका आकार ढकने का सा है ॥१०॥ वहांपर मेरु नामका विशाल पर्वत है जिसको इलावृत भी कहते हैं। अब मैं रम्यक वर्ष को कहता हूँ उसको सुनो ॥ ११॥ वहां पर हरे पत्ते वाला बड़ा ऊँचा एक बरगद का पेड़ है जिसके कि फलों के रस को पीकर वे लोग जीवित रहते हैं ॥१२॥ वहां पर मनुष्य दस हज़ार वर्ष की आयु वाले होते हैं। वे स्वच्छ तथा रति में कुशल होते हैं। उन लोगों को बुढ़ापा और दुर्गंध कभी नहीं आती ॥ १३ ॥ उसके उत्तर में हिरण्मय नाम एक वर्ष है जहां पर कि स्वच्छ हिरण्वतीनदी कमलों से युक्त विद्यमान है ॥ १४ ॥ वहांपर मनुष्य बड़े बलवान, तेजस्वी, यक्ष के समान, पराक्रमी, धनी और प्रीतियुक्त होते हैं ॥१५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में भुवनकोष नाम ६०वां अध्याय समाप्त ।

इकसठवाँ अध्याय

कौष्टुकिरुवाच

कथितं भवता सम्यक् यत् पृष्टोऽसि महामुने ।
भूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणानि तथा ग्रहाः ॥ १ ॥
तेषाञ्चैव प्रमाणंच नक्षत्राणाञ्च संस्थितिः ।
भूरादयस्त्रया लोकाः पातालान्यखिलान्यपि ॥ २ ॥
स्वायम्भुवं तथा ख्यातं मुने मन्वन्तरं मम ।
तदन्तराण्यहं श्रोतुमिच्छे मन्वन्तराणि वै ।
मन्वन्तराधिपान् देवानृषींस्तत्तनयान् नृपान् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तरं मयाख्यातं तव स्वायम्भुवञ्च यत् ।
स्वारोचिषाख्यमन्यत् तु शृणु तस्मादनन्तरम् ॥ ४ ॥

कौष्टुकिजी बोले—

हे मार्कण्डेयजी ! जो कुछ मैंने पूछा वह आपने पृथ्वी, समुद्र आदि की स्थिति तथा ग्रह आदि सबका वर्णन किया ॥ १ ॥ ग्रहों के प्रमाण, नक्षत्रों की स्थिति, भू आदिक तीनों लोक और सब पाताल ॥२॥ और स्वायंभुव मन्वन्तर का वृत्तान्त भी आपने मुझसे कहा। इसके बाद अब मैं मन्वंतरों तथा मन्वन्तरों के राजा, देवता, राजर्षि और उन के पुत्रों का वर्णन सुनने की इच्छा करता हूँ ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

मैंने आपसे स्वायंभुव मन्वन्तरका वर्णन किया अब दूसरे मन्वन्तर स्वारोचिष को मुझसे सुनो ॥

कश्चिद्द्विजातिप्रवरः पुरेऽभूदरुणास्पदे।
वरुणायास्तटे विप्रो रूपेणात्यश्विनावपि ॥ ५ ॥
मृदुस्वभावः सद्वृत्तो वेदवेदाङ्गपारगः।
सदातिथिप्रियो रात्रावागतानां समाश्रयः ॥ ६ ॥
तस्य बुद्धिरियं त्वासीदहं पश्ये वसुन्धराम्।
अतिरम्यवनोद्यानां नानानगरशोभिताम् ॥ ७ ॥
अथागतोऽतिथिः कश्चित् कदाचित् तस्य वेश्मनि।
नानौषधिप्रभावज्ञो मन्त्रविद्याविशारदः ॥ ८ ॥
अभ्यर्थितस्तु तेनासौ श्रद्धापूतेन चेतसा।
तस्याचख्यौ स देशांश्च रम्याणि नगराणि च ॥ ९ ॥
वनानि नद्यः शैलांश्च पुण्यान्यायतनानि च।
स ततो विस्मयाविष्टः प्राह तं द्विजसत्तमम् ॥ १० ॥
अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः।
त्वं नातिवृद्धो वयसा नातिवृत्तश्च यौवनात्।
कथमल्पेन कालेन पृथिवीमटसि द्विज ॥ ११ ॥

ब्राह्मण उवाच

मन्त्रौषधिप्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः।
योजनानां सहस्रं हि दिनार्द्धेन व्रजाम्यहम् ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स विप्रस्तं भूयः प्रत्युवाचेदमादरात्।
श्रद्दधानो वचस्तस्य ब्राह्मणस्य विपश्चितः ॥ १३ ॥
मम प्रसादं भगवन् कुरु मन्त्रप्रभावजम्।
द्रष्टुमेतां मम महीमतीवेच्छा प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥
प्रादात् स ब्राह्मणश्चास्मै पादलेपमुदारधीः।
अभिमन्त्रयामास दिशं तेनाख्यातान्च यत्नतः॥ १५
तेनानुलिप्तपादोऽथ स द्विजो द्विजसत्तम।
हिमवन्तमगाद्द्रष्टुं नानाप्रस्रवणान्वितम् ॥ १६ ॥
सहस्रं योजनानां हि दिनार्द्धेन व्रजामि यत्।
आयास्यामीति सञ्चिन्त्य तदर्द्धेनापरेण हि ॥ १७ ॥
सम्प्राप्तो हिमवत्पृष्ठं नातिश्रान्ततनुर्द्विज।
विचचार ततस्तत्र तुहिनाचलभूतले ॥ १८ ॥
पादाक्रान्तेन तस्याथ तुहिनेन विलीयता।
प्रक्षालितः पादलेपः परमौषधिसम्भवः ॥ १९ ॥

वरुणा नदी के तट पर स्थित अरुणास्पद नगर में अश्विनीकुमारों के समान रूपवान् कोई ब्राह्मण रहता था ॥ ५ ॥ वह ब्राह्मण कोमल स्वभाव वाला सच्चरित्र, वेदवेदाङ्ग विशारद, सदैव अतिथियोंको को प्रिय तथा रात्रि में आने वालों को आश्रय देने वाला था ॥ ६ ॥ एक दिन उस ब्राह्मणको यह बुद्धि उपजी कि वह पृथ्वी को अत्यन्त रमणीक वन, उद्यान और शोभायमान नगरों सहित देखे ॥ ७ ॥ इसी समय उसके घर पर एक अतिथि आया जो नाना प्रकार की औषधियों के प्रभाव तथा मन्त्र विद्या को खूब जानता था ॥ ८ ॥ श्रद्धापूर्वक पवित्र चित्त से अतिथि की अभ्यर्थना करके उसने उनसे पूछा कि वह कौनसे रमणीक नगर या देशसे आये हैं ॥ ९ ॥ वन, नदी, पर्वत और बहुत से पुण्य तीर्थों को उसने बताया जिस पर आश्चर्य चकित होकर ब्राह्मण ने उससे कहा ॥ १० ॥ हे विप्रदेव! अनेक देशों को देखने पर आपको थकावट नहीं हुई मालुम होती है। आप न बहुत वृद्ध हैं और न युवा हैं, इतने अल्प काल में आपने किस प्रकार पृथ्वी का भ्रमण कर लिया ॥ ११ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे विप्र! मन्त्रों और औषधियों के प्रभाव से मेरी गति अनियन्त्रित है। मैं आधे दिन में एक हज़ार योजन चलता हूँ ॥ १२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उस महात्मा अतिथि की बातों में श्रद्धा रखते हुए उस ब्राह्मणने फिर मानपूर्वक उससेकहा ॥ १३ ॥ हे भगवन्! मेरे ऊपर दया करके उस मन्त्र को मुझसे कहिये, इस पृथ्वी को देखने की मेरी बड़ी इच्छा है ॥ १४ ॥ तब उस उदार अतिथि ब्राह्मण ने उसको पादलेप दे दिया तथा उसकी बताई हुई दिशाओं को अभिमन्त्रित करके वह चला गया ॥ *हे द्विजसत्तम! उस लेप को पाँव में लगाकर वह* ब्राह्मण अनेक झरनों से युक्त हिमालय पर्वत को देखने के लिये गया ॥ १६ ॥ उसने सोचा कि आधे दिन में एक हज़ार योजन जाऊँगा तथा दिन के दूसरे आधे भाग में वहां से लौट आऊँगा ॥ १७ ॥ वह ब्राह्मण बिना श्रम के ही हिमालय की पीठ पर पहुंच कर वहां विचरने लगा ॥ १८ ॥ वह परमौषधि पादलेप चलने से तथा बर्फ से घुलकर विलीन

ततो जड़गतिः सोऽथ इतश्चेतश्च पर्य्यटन् ।
ददर्शातिमनोज्ञानि सानूनि हिमभूभृतः ॥२०॥
सिद्धगन्धर्व्वजुष्टानि किन्नराभिरतानि च ।
क्रीड़ाविहाररम्याणि देवादीनामितस्ततः ॥२१॥
दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ।
नातृप्यत द्विजश्रेष्ठः प्रोद्भूतपुलको मुने ॥२२॥
क्वचित् प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ।
प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्च निनादितम् ॥२३॥
दात्यूहकोयष्टिकाद्यैः क्वचिच्चातिमनोहरैः ।
पुंस्कोकिलकलालापैः श्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥२४॥
प्रफुल्लतरुगन्धेन वासितानिलवीजितम् ।
मुदा युक्तः स ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ॥२५॥
दृष्ट्वा चैतं द्विजसुतो हिमवन्तं महाचलम् ।
श्वो द्रक्ष्यामीति सञ्चिन्त्य मतिं चक्रे गृहं प्रति ॥२६॥
विप्रभ्रष्टपादलेपोऽथ चिरेण जड़ितक्रमः ।
चिन्तयामास किमिदं मयाज्ञानादनुष्ठितम् ॥२७॥
यदि प्रलेपो नष्टो मे विलीनो हिमवारिणा ।
शैलोऽतिदुर्गमश्चायं दूरञ्चाहमिहागतः ॥२८॥
प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ।
कथमत्र करिष्यामि सङ्कटं महदागतम् ॥२९॥
इदं रम्यमिदं रम्यमित्यस्मिन् वरपर्व्वते ।
सक्तदृष्टिरहं तृप्तिं न यास्येऽब्दशतैरपि ॥३०॥
किन्नराणां कलालापाः समन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।
प्रफुल्लतरुगन्धांश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥३१॥
सुखस्पर्शस्तथा वायुः फलानि रसवन्ति च ।
हरन्ति प्रसभं चेतो मनोज्ञानि सरांसि च ॥३२॥
एवं गते तु पश्येयं यदि कञ्चित् तपोनिधिम् ।
स ममोपदिशेन्मार्गं गमनाय गृहं प्रति ॥३३॥

मार्कण्डेय उवाच

स एवं चिन्तयन् विप्रो बभ्राम च हिमाचले ।
भ्रष्टपादौषधिवलो वैक्लव्यं परमं गतः ॥३४॥
तं ददर्श भ्रमन्तञ्च मुनिश्रेष्ठं वरूथिनी ।
वराप्सरा महाभागा मौलेया रूपशालिनी ॥३५॥
तस्मिन् दृष्टे ततः साभूद्द्विजवर्य्ये वरूथिनी ।

होगई ॥ १९ ॥ इसके बाद वह जड़गति होकर इधर उधर घूमने लगा तो उसने हिमालय पर्वत के एक अत्यन्त मनोरम स्थान को देखा ॥ २० ॥ वहां पर सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर विहार कर रहे थे तथा देवताओं की क्रीड़ाके रमणीक स्थान इधर उधर बने हुए थे ॥२१॥ सैकड़ों दिव्य अप्सराओं से घिरे हुए उस स्थान को देखकर ब्राह्मण की तृप्ति न हुई, वह पुलकायमान हो गया ॥ २२ ॥ कहीं झरनों से गिरते हुए जल का मनोहर दृश्य था, कहीं मोर नाच रहे थे तथा वह स्थान सुन्दर पक्षियों की ध्वनि से गूञ्ज रहा था ॥ २३ ॥ कोयल आदि के अति मनोहर आलापों से वह स्थान अत्यन्त रम्य हो रहा था ॥ २४ ॥ प्रफुल्लित वृक्षों की सुगन्ध से भरी हुई हवा से युक्त उस स्थानको हिमालय पर्वत पर उस प्रसन्न चित्त ब्राह्मणने देखा ॥२५॥महापर्वतहिमवान् को देखकर ब्राह्मणने सोचा कि कल फिर आकर देखूँगा, अब घर को चलूं ॥२६॥ परन्तु पादलेप के धुल जाने से वह जड़गति होगया और चल न सका। फिर उसने सोचा कि अनजान में मैंने यह क्या किया ? ॥ २७ ॥ वर्फ से मेरा पादलेप धुलगया। यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मैं अति दूर यहां आयगा हूँ ॥ २८ ॥ अग्नि पूजा आदि नित्यक्रिया भी मैं अब कैसे करूँगा ? यह तो महान् सङ्कट आगया ॥ २९ ॥ इस रमणीक पर्वत पर यह रमणीक है वह रमणीकहै यह देखते हुए मुझे सैकड़ों वर्षों में भी तृप्ति न होगी ॥ ३० ॥ चारों ओर किन्नरों के सुन्दर गायनों से मेरे कान आसक्त होरहे हैं तथा फूले हुए वृक्षों की सुगन्धि से मेरी नाक को महान् सुख होरहा है ॥३१॥ यहाँ की वायु के सुखस्पर्श से, रसदार फलों के रस ने और सरोवरों से मेरा चित्त लुभायमान होरहा है ॥ ३२ ॥ इस अवस्था में यदि कोई तपोनिधि मुझे घर जाने के लिये मार्ग का दिग्दर्शन करे तो उत्तम हो ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पाँव की औषधिके धुलजाने से परम विकलता को प्राप्त वह ब्राह्मण यह सोचता हुआ हिमालय पर घूमता रहा ॥ ३४ ॥ इतने ही में उस घूमते हुए मुनिश्रेष्ठ को सुन्दरी अप्सरा वरूथिनी नामक महाभागा ने देखा ॥३५॥ वरूथिनी उस ब्राह्मण को

मदनाकृष्टहृदया सानुरागा हि तत्क्षणात् ॥३६॥
चिन्तयामास को न्वेष रमणीयतमाकृतिः ।
सफलं मे भवेज्जन्म यदि मां नावमन्यते ॥३७॥
अहोऽस्य रूपमाधुर्य्यमहोऽस्य ललिता गतिः ।
अहो गम्भीरता दृष्टेः कुतोऽस्य सदृशो भुवि ॥३८॥
दृष्टा देवास्तथा दैत्याः सिद्धगन्धर्व्वपन्नगाः ।
कथमेकोऽपि नास्त्यस्य तुल्यरूपो महात्मनः॥३९॥
यथाहमस्मिन् मय्येष सानुरागस्तथा यदि ।
भवेदत्र मया कार्य्यस्तत्कृतः पुण्यसंचयः ॥४०॥
यद्येष मयि सुस्निग्धां दृष्टिमद्य निपातयेत् ।
कृतपुण्या न मत्तोऽन्या त्रैलोक्ये वनिता ततः॥४१॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं सञ्चिन्तयन्ती सा दिव्ययोषित् स्मरातुरा ।
आत्मानं दर्शयामास कमनीयतराकृतिम् ॥४२
तान्तु दृष्ट्वा द्विजसुतश्चारुरूपां वरूथिनीम् ।
सोपचारं समागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥४३॥
का त्वं कमलगर्भाभे कस्य किं वानुतिष्ठसि ।
ब्राह्मणोऽहमिहायातो नगरादरुणास्पदात् ॥४४॥
पादलेपोऽत्र मे ध्वस्तो विलीनो हिमवारिणा ।
यस्यानुभावादत्राहमागतो मदिरेक्षणे ॥४५॥

वरूथिन्युवाच

मौलेयाहं महाभागा नाम्ना ख्याता वरूथिनी ।
विचरामि सदैवात्र रमणीये महाचले ॥४६॥
साहं त्वद्दर्शनाद्विप्र कामवक्तव्यतां गता ।
प्रशाधि यन्मया कार्य्यं त्वदधीनास्मि साम्प्रतम्॥४७॥

ब्राह्मण उवाच

येनोपायेन गच्छेयं निजगेहं शुचिस्मिते ।
तन्ममाचक्ष्व कल्याणि हानिर्नोऽखिलकर्म्मणाम् ॥४८
नित्यनैमित्तिकानान्तु महाहानिर्द्विजन्मनः ।
भवत्यतस्त्वं हे भद्रे मामुद्धर हिमालयात् ॥४९॥
प्रशस्यते न प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन ।
अपराद्धं न मे भीरु देशदर्शनकौतुकम् ॥५०॥
सतो गृहे द्विजाग्र्यस्य निष्पत्तिः सर्व्वकर्म्मणाम् ।

देखकर कामदेव से आकृष्ट हो तत्क्षण आसक्त हो गई ॥३६॥ वह मनमें सोचने लगी कि इतना सुन्दर यह कौन है यदि यह मुझे मान ले तो मेरा जीवन सफल हो जावे ॥ ३७ ॥ अहा ! इसका रूप-माधुर्य और इसकी सलौनी चाल, इसकी गंभीर चितवन के कारण इसके समान संसार में कौन रूपवान है? ॥ ३८ ॥ मैंने बहुत से देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व और नागों को देखा है परन्तु इस महात्मा के समान कोई रूपवान् नहीं है ॥ ३९ ॥ यदि जिस प्रकार मेरी प्रीति इसमें होगईहै उसी प्रकार इसकी प्रीति मुझमें होजाय तो मेरा कार्य सिद्ध होजाय ॥ यदि यह मेरी ओर प्रेममयी दृष्टि से देख ले तो तीनों लोक में मेरे समान पुण्यवती स्त्री दूसरी नहीं है ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार विचार करती हुई उस कामातुर अप्सरा ने अपने आपको अति सुन्दर रूप में दिखाया ॥ ४२ ॥ वह ब्राह्मण भी उस रूपवती वरूथिनी को देखकर उससे उपचार पूर्वक यह वचन बोला ॥४३॥ हे कमल-गर्भ के समान कान्तिवाली ! तुम कौन हो और कहाँ रहती हो ? मैं तो वरुणास्पद नगर से आया हुआ ब्राह्मण हूँ ॥ ४४ ॥ मेरा पादलेप बर्फ के जल से धुलकर विलीन होगया है जिस कारण से कि हे मदिरा के से नेत्र वाली ! मैं यहाँ आ पहुँचा ॥ ४५ ॥

वरूथिनी बोली—

अप्सरा ने कहा कि मैं वरूथिनी नामक अनमोल और अति भाग्यवान् अप्सरा हूं और सदा इस रमणीक पर्वत पर विचरती रहती हूँ ॥४६॥ हे विप्र ! तुम्हारे दर्शन से मैं कामासक्त हो रही हूँ । जो मुझको आज्ञा हो सो करूँ, इस समय मैं तुम्हारे आधीन हूँ ॥४७॥

ब्राह्मण बोला—

हे सुन्दरी ! जिस उपायसे मैं अपने घर पहुँच सकूं उसको मुझसे कहो, क्योंकि विना घर पहुंचे मेरी समस्त क्रियाओं की हानि हो रही है ॥ ४८ ॥ नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं का उल्लंघन होना ब्राह्मण के लिये बड़ी हानि है इसलिये हे भद्रे ! तू मुझे हिमालय से उद्धारकर ॥४९॥ हे भीरु ! ब्राह्मण को प्रवास में रहना उचित नहीं और न उसको कुतूहलवश देशों को देखते हुए घूमनाही चाहिये ॥ ५० ॥ उत्तम ब्राह्मण की सब क्रियाओं की सिद्धि घर पर ही होती है तथा प्रदेश में रहने से इसी

नित्यनैमित्तिकानाञ्च हानिरेवं प्रवासिनः ॥५१॥
सा त्वं किं वहुनोक्तेन तथा कुरु यशस्विनि ।
यथा नास्तं गते सूर्य्ये पश्यामि निजमालयम् ॥५२

वरूथिन्युवाच

मैवं ब्रूहि महाभाग मा भूत् स दिवसो मम ।
मां परित्यज्य यत्र त्वं निजगेहमुपैष्यसि ॥५३॥
अहो रम्यतरः स्वर्गो न यतो द्विजनन्दन ।
अतो वयं परित्यज्य तिष्ठामोऽत्र सुरालयम् ॥५४॥
स त्वं सह मया कान्त कान्तेऽत्र तुहिनाचले ।
रममाणो न मर्त्यानां बान्धवानां स्मरिष्यसि ॥५५॥
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान् भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ।
दास्याम्यत्र तथाहं ते स्मरेण वशगा हृता ॥५६॥
वीणावेणुस्वनं गीतं किन्नराणां मनोरमम् ।
अङ्गाह्लादकरो वायुरुष्णान्नमुदकं शुचि ॥५७॥
मनोऽभिलषिता शय्या सुगन्धमनुलेपनम् ।
इहासतो महाभाग गृहे किं ते निजेऽधिकम् ॥५८॥
इहासतो नैव जरा कदाचित् ते भविष्यति ।
त्रिदशानामियं भूमिर्यौवनोपचयप्रदा ॥५९॥
इत्युक्त्वा सानुरागा सा सहसा कमलेक्षणा ।
आलिलिङ्ग प्रसीदेति वदन्ती कलमुन्मनाः ॥६०॥

ब्राह्मण उवाच

मा मां स्प्राक्षीर्व्रजान्यत्र दुष्टे यः सदृशस्तव ।
मयान्यथा याचिता त्वमन्यथैवाप्युपैषि माम् ॥६१॥
सायं प्रातर्हुतं हव्यं लोकान् यच्छति शाश्वतान् ।
त्रैलोक्यमेतदखिलं मूढे हव्ये प्रतिष्ठितम् ।
लघूपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ॥६२॥

वरूथिन्युवाच

किं ते नाहं प्रिया विप्र रमणीयो न किं गिरिः ।
गन्धर्व्वान् किन्नरादींश्च त्यक्त्वाभीष्टो हि कस्तव ६३॥
निजमालयमप्यस्माद्भवान् यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्लभान् ६४

ब्राह्मण उवाच

अभीष्टा गार्हपत्याद्याः सततं मे त्रयोऽग्नयः ।
रम्यं ममाग्निशरणं देवी विस्तरणी प्रिया ॥६५॥

प्रकार नित्य और नैमित्तिक क्रियायें छूट जाती हैं ॥५१॥ हे यशस्विनी ! अधिक कहने से क्या लाभ है ऐसा करो जिससे सूर्यास्त के पहिले मैं अपने घर पहुँच जाऊँ ॥५२॥

वरूथिनी बोली—

हे महाभाग ! ऐसा मत कहो, वह दिन कभी न हो जब कि तुम मुझे छोड़ कर अपने घर जाओ ॥५३॥ हे ब्राह्मण ! इससे अधिक रमणीक स्वर्ग भी नहीं है, इसी लिये हम स्वर्ग को छोड़कर यहाँ रहती हैं ॥५४॥ हे कान्त ! तुम एकान्त में इस पर्वतपर मेरे साथ रमण करो । रमण करते हुए तुम मनुष्यलोक के अपने भाई वन्धुओं को भूल जाओगे ॥५५॥ मेरे हृदय को कामदेव ने वश में करलिया है मैं तुमको माला, वस्त्र, अलंकार, भोजन, चन्दन आदि सब कुछ दूंगी ॥५६॥ यहाँ किन्नरोंके मनोहर गीत और वीणा तथा वेणु के शब्द सुनाई देते हैं तथा वायु बड़ी सुखकर है । यहां का अन्न ताज़ा तथा जल पवित्र है ॥ ५७ ॥ यहां पर मन वांछित शय्या तथा सुगन्धियुक्त चन्दन है । हे महाभाग ! इससे अधिक तुम्हारे घर में क्या है ? ॥ ५८॥ यहाँ रहते हुए तुम्हें बुढ़ापा कभी न होगा । यह भूमि देवताओं की बनाई हुई है, कारण-यहाँ सदा यौवन रहता है ॥५९॥ यह कहकर अनुराग सहित हो वह कमलनयनी 'मुझपर प्रसन्न हो' यह कहती हुई ब्राह्मण से लिपटने को उद्यत हुई ॥६०॥

ब्राह्मण बोला—

हे दुष्टे ! मुझको स्पर्श न कर और अन्यत्र जा जहां कि तेरे ही समान तुझको मिल जाय । मैंने वृथा ही तुझसे पूछा, तू मुझसे वृथा ही मिलना चाहती है ॥ ६१ ॥ मनुष्य सायं और प्रातः दोनों दफा हवन करके स्वर्ग को जाते हैं । हे मूढ़े ! यह तीनों लोक होममें ही स्थित हैं । ऐसा सरल उपाय मुझे बता जिससे मैं शीघ्र अपने घर जाऊँ ॥ ६२ ॥

वरूथिनी बोली—

हे ब्राह्मण ! क्या मैं तुम्हारी प्रिया नहीं हूँ और क्या यह पर्वत रमणीक नहीं है ? गन्धर्वों और किन्नरों को छोड़कर तुमको क्या अभीष्ट है ? ॥६३॥ आप निस्सन्देह अपने घर को जावेंगे परन्तु थोड़े ही समयके लिये मेरे साथ दुर्लभ भोगोंको भोगो ॥

ब्राह्मण बोला—

गार्हपत्य आदि तीनों शाश्वत अग्नियां ही मुझ को अभीष्ट हैं, अग्नि की शरण ही मुझको रमणीक है और देवी वाणी मेरी प्रिया है ॥६५॥

वरूथिन्युवाच

अष्टावात्मगुणा ये हि तेषामाद्यौ दया द्विज ।
तां करोषि कथं न त्वं मयि सद्धर्म्मपालक ॥६६॥
त्वद्विमुक्ता न जीवामि तथा प्रीतिमती त्वयि ।
नैतद्वदाम्यहं मिथ्या प्रसीद कुलनन्दन ॥६७॥

ब्राह्मण उवाच

यदि प्रीतिमती सत्यं नोपचाराद्ब्रवीषि माम् ।
तदुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ॥६८॥

वरूथिन्युवाच

निजमालयमप्यस्माद्भवान् यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्लभान्६९

ब्राह्मण उवाच

न भोगार्थाय विप्राणां शस्यते हि वरूथिनि ।
इह क्लेशाय विप्राणां चेष्टा प्रेत्याफलप्रदा ॥७०॥

वरूथिन्युवाच

सन्त्राणं म्रियमाणाया मम कृत्वा परत्र ते ।
पुण्यस्यैव फलं भावि भोगाश्चान्यत्र जन्मनि ॥७१॥
एवञ्च द्वयमप्यत्र तवोपचयकारणम् ।
प्रत्याख्यानादहं मृत्युं त्वञ्च पापमवाप्स्यसि॥७२॥

ब्राह्मण उवाच

परस्त्रियं नाभिलषेदित्यूचुर्गुरवो मम ।
तेन त्वां नाभिवाञ्छामि कामं विलप शुष्य वा॥७३॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स महाभागः स्पृष्ट्वापः प्रयतः शुचिः ।
प्राहेदं प्रणिपत्याग्निं गार्हपत्यमुपांशुना ॥७४॥
भगवन् गार्हपत्याग्ने योनिस्त्वं सर्व्वकर्म्मणाम् ।
त्वत्त आहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्च नान्यतः ॥७५॥
युष्मदाप्यायनाद्देवा वृष्टिशस्यादिहेतवः ।
भवन्ति शस्यादखिलं जगद्भवति नान्यतः ॥७६॥
एवं त्वत्तो भवत्येतद्येन सत्येन वै जगत् ।
तथाहमद्य स्वं गेहं पश्येयं सति भास्करे ॥७७॥

वरूथिनी बोली—

हे द्विज ! आत्मा के आठ गुण हैं उनमें दया मुख्य है । हे धर्मपालक ! इसलिये तुम मुझपर दया क्यों नहीं करते ? ॥६६॥ हे कुलनन्दन ! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ, मेरी तुम में प्रीति है । तुम्हारे छोड़ने पर मैं जीवित न रहूँगी, यह मैं मिथ्या नहीं कहती हूँ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मण बोला—

यदि तेरी प्रीति सच्ची है और केवल उपचार मात्र नहीं है तो ऐसा उपाय बतला जिससे मैं अपने घर पहुँच जाऊँ ॥ ६८ ॥

वरूथिनी बोली—

आप निस्सन्देह अपने घर को पहुँच जावेंगे, परन्तु थोड़े ही समय के लिये मेरे साथ अलभ्य भोगों को भोगिये ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे वरूथिनि ! शास्त्रों में ब्राह्मणों के लिये भोग नहीं लिखा है । ब्राह्मणों का जीवन इस संसार में अवश्य दुखदाईहै परन्तु परलोकमें वह फलप्रदहै॥

वरूथिनी बोली—

हे ब्राह्मण ! मेरे साथ भोग करके मुझ मृतप्राय की रक्षा करो, इस से तुम्हें सब पुण्य का फल होगा ॥ ७१ ॥ यहाँ पर तुम्हें दो लाभ हैं, परन्तु इसके विपरीत करने से मेरी मृत्यु होगी और तुमको पाप लगेगा ॥७२॥

ब्राह्मण बोला—

मेरे गुरुने कहाथा कि अन्य स्त्री की अभिलाषा न करना इस कारण मैं तेरी इच्छा पूर्ण नहीं सकता तू विलाप कर अथवा न कर ॥७३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह कहकर वह भाग्यवान् ब्राह्मण जल को स्पर्श कर पवित्र हो गार्हपत्य भगवान् अग्नि के प्रति यह बोला ॥ ७४ ॥ हे भगवन् ! गृहकी देवता अग्नि ! आप सब कर्मों के कारण हैं । आप में हवन करने से सब अग्नियाँ तृप्त हो जाती हैं ॥७५॥ आप के तृप्त होने से ही सब देवता वर्षा करते हैं जिस से पृथ्वी पर अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से ही सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों का जीवन है ॥ ७६ ॥ अगर आप ऐसे हैं तो इसी सत्य से मैं सूर्यास्त से पहिले घर पहुंच जाऊं ॥ ७७ ॥ यदि मैंने उनके

तथा वै वैदिकं कर्म्म स्वकाले नोज्झितं मया।
न सत्येन पश्येयं गृहस्थोऽद्य दिवाकरम्। ७८॥
यथा च न परद्रव्ये परदारे च मे मतिः।
कदाचित् साभिलाषाभूत् तथैतत् सिद्धिमेतु मे॥७९॥

समय पर वैदिक कर्मों को न छोड़ा हो तो उसी सत्य से मैं आज घर पहुँच कर सूर्यको देखूं ॥७८॥ यदि मेरी अभिलाषा दूसरे के धन और स्त्री में कभी नहीं हुई हो तो उस सत्य से मेरा प्रण सिद्ध हो ॥ ७९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें स्वारोचिष मन्वंतर में ब्राह्मणवाक्य नाम ६१वाँ अध्याय समाप्त।

—:o:—

बासठवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु वदतस्तस्य द्विजपुत्रस्य पावकः।
गार्हपत्यः शरीरे तु सन्निधानमथाकरोत् ॥ १ ॥
तेन चाधिष्ठितः सोऽथ प्रभामण्डलमध्यगः।
व्यदीपयत तं देशं मूर्त्तिमानिव हव्यवाट् ॥ २ ॥
तस्यास्तु सुतरां तत्र तादृग्रूपे द्विजन्मनि।
अनुरागोऽभवद्विप्रं पश्यन्त्या देवयोषितः ॥ ३ ॥
ततः सोऽधिष्ठितस्तेन हव्यवाहेन तत्क्षणात्।
यथा पूर्वं तथा गन्तुं प्रवृत्तो द्विजनन्दनः ॥ ४ ॥
जगाम च त्वरायुक्तस्तया देव्या निरीक्षितः।
आ दृष्टिपातात् तन्वङ्ग्या निश्वासोत्कम्पिकन्धरम्॥५॥
ततः क्षणेनैव तदा निजगेहमवाप्य सः।
यथाप्रोक्तं द्विजश्रेष्ठश्चकार सकलाः क्रियाः ॥ ६ ॥
अथ सा चारुसर्व्वाङ्गी तत्रासक्तात्ममानसा।
निश्वासपरमा निन्ये दिनशेषं तथा निशाम् ॥ ७ ॥
निश्वसत्यनवद्याङ्गी हाहेति रुदती मुहुः।
मन्दभाग्येति चात्मानं निनिन्द मदिरेक्षणा ॥ ८ ॥
न विहारे न चाहारे रमणीये न वा वने।
न कन्दरेषु रम्येषु सा बबन्ध तदा रतिम् ॥ ९ ॥
चकार रममाणे च चक्रवाकयुगे स्पृहाम्।
मुक्ता तेन वरारोहा निनिन्द निजयौवनम् ॥१०॥
क्वागताहमिमं शैलं दुष्टदैवबलात्कृता।
क्व च मासः स मे दृष्टेर्गोचरं तादृशो नरः ॥११॥
यद्यद्य स महाभागो न मे सङ्गमुपैष्यति।
तत्कामाग्निरवश्यं मां क्षपयिष्यति दुःसहः ॥१२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उस ब्राह्मण के इस प्रकार कहने पर गार्हपत्य अग्निदेव ने उसके शरीर में प्रवेश किया ॥ १ ॥ उनसे अधिष्ठित वह ब्राह्मण उस देश में ऐसे दीप्तमान् होने लगा जैसे प्रभामण्डल के बीच में मूर्तिमान् अग्नि शोभा देता है ॥ २ ॥ उस अप्सराने जब ब्राह्मण के उस रूप को देखा तो उसको और भी अधिक अनुराग होगया ॥ ३ ॥ अग्नि के प्रवेश कर जाने पर वह ब्राह्मण कुमार पहिले की भांति तत्क्षण जाने को प्रवृत्त हुआ ॥ ४ ॥ उस अप्सरा के देखते ही देखते वह शीघ्र चला गया और उस के विरह में वह सुन्दरी कम्पित शरीर वाली हो कर श्वास लेने लगी ॥ ५ ॥ तब क्षण भर में ही उस ब्राह्मण ने अपने घर पहुँच कर पूर्वोक्त समस्त क्रियायें सम्पन्न कीं ॥ ६ ॥ और वह सुन्दरी उस ब्राह्मण में आसक्त मनवाली होकर लम्बी लम्बी श्वास लेने लगी, इतनेही में दिन समाप्त हुआ और रात्रि होगई ॥ ७ ॥ वह सुन्दरी गर्म श्वास लेकर रोती हुई हाहा-कार करने लगी तथा अपने मन्द भाग्य और युवावस्था को भी धिक्कारने लगी ॥ ८ ॥ उसको न भोजन में, न विहार में, न उस रमणीक वन में और न उन रम्य कन्दराओं में प्रीति हुई ॥ जैसे चकवा के विरह में चकई दुःखित होती है उसी प्रकार वह ब्राह्मण के वियोग में दुःखित हो अपने यौवन को कोसने लगी ॥ १० ॥ मैं दुष्ट दैव के योगसे इस पर्वतपर क्यों आगई जो मेरी दृष्टिगोचर ऐसा मनुष्य हुआ? ॥ ११ ॥ क्योंकि उस महाभाग से अब मेरा सङ्ग न होगा, इसलिये यह असह्य कामाग्नि मुझे अवश्य नष्ट करदेगी ॥ १२ ॥

रमणीयमभूद्यत् तत् पुंस्कोकिलनिनादितम्।
तेन हीनं तदेवैतद्दहतीवाद्य मामलम् ॥१३॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं सा मदनाविष्टा जगाम मुनिसत्तमम्।
ववृधे च तदा रागस्तस्यास्तस्मिन् प्रतिक्षणम्॥१४॥
कलिर्नाम्ना तु गन्धर्व्वः सानुरागो निराकृतः।
तया पूर्व्वमभूत् सोऽथ तदवस्थां ददर्श ताम्। १५॥
स चिन्तयामास तदा किं न्वेषा गजगामिनी।
निश्वासपवनम्लाना गिरावत्र वरूथिनी ॥१६॥
मुनिशापक्षता किं नु केनचित् किं विमानिता।
वाष्पवारिपरिक्लिन्नमियं धत्ते यतो मुखम् ॥१७॥
ततः स दध्यौ सुचिरं तमर्थं कौतुकात् कलिः।
ज्ञातवांश्च प्रभावेण समाधेः स यथातथम् ॥१८॥
पुनः स चिन्तयामास तद्विज्ञाय मुनेः कलिः।
ममोपपादितं साधु भाग्यैरेतत् पुराकृतैः ॥१९॥
मयैषा सानुरागेन बहुशः प्रार्थिता सती।
निराकृतवती सेयमद्य प्राप्या भविष्यति ॥२०॥
मानुषे सानुरागेयं तत्र तद्रूपधारिणि।
रंस्यते मय्यसन्दिग्धं किं कालेन करोमि तत् २१॥

मार्कण्डेय उवाच

आत्मप्रभावेण ततस्तस्य रूपं द्विजन्मनः।
कृत्वा चचार यत्रास्ते निषण्णा सा वरूथिनी॥२२॥
सा तं दृष्ट्वा वरारोहा किञ्चिदुत्फुल्ललोचना।
समेत्य प्राह तन्वङ्गी प्रसीदेति पुनः पुनः ॥२३॥
त्वया त्यक्ता न सन्देहः परित्यक्ष्यामि जीवितम्।
तत्राधर्म्मः कष्टतरः क्रियालोपो भविष्यति ॥२४॥
मया समेत्य रम्येऽस्मिन् महाकन्दरकन्दरे।
मत्परित्राणजं धर्म्ममवश्यं प्रतिपत्स्यसे ॥२५॥
आयुषः सावशेषं मे नूनमस्ति महामते।
निवृत्तस्तेन नूनं त्वं हृदयाह्लादकारकः ॥२६॥

कलिरुवाच

किं करोमि क्रियाहानिर्भवत्यत्र सतो मम।
त्वमप्येवंविधं वाक्यं ब्रवीषि तनुमध्यमे ॥२७॥
यदहः सङ्कटं प्राप्तो यद्ब्रवीमि करोषि तत्।

कोयलों के नाद से रमणीक यह वन उस ब्राह्मणके विना मुझे जला रहा है ऐसा मालूम होता है ॥१३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि मुनि! इस प्रकार कामासक्त हुई वरूथिनी का अनुराग उस ब्राह्मण में प्रतिक्षण बढ़ता गया ॥१४॥ फिर कलि नाम के गन्धर्व ने जो उससे प्रेम करता था तथा जो पहिले उससे अपमानित हो चुका था वरूथिनी को उस अवस्था में देखा ॥१५॥ उसने सोचा कि गजगामिनी वरूथिनी क्यों इस प्रकार इस पहाड़ पर श्वास लेती हुई म्लान होरही है ॥१६॥ या तो इसको किसी मुनिने शाप दिया है अथवा किसी मनुष्य ने इसका अपमान किया है जो इसका मुख आंसुओं की धार से भीगा हुआ है ॥ १७ ॥ तब कलि ने कौतुकवश इस बात को जानने के लिये बहुत देर तक ध्यान किया और ध्यान के प्रभाव से यथार्थ बातको जान लिया ॥१८॥ फिर उस ब्राह्मण की बात जानकर उसने मनमें कहा कि उस ब्राह्मण ने मेरा बड़ा उपकार किया तथा ये मेरे पूर्वजन्म के पुण्य से ऐसा हुआ है ॥ १९ ॥ पहिले मैंने बड़े प्रेम से इसकी चाह की थी परन्तु इसने मेरा अनादर किया, अब यह मुझे प्राप्त होगी ॥२०॥ यह मनुष्य पर आसक्त हुई है, इसलिये यदि मैं उसी मनुष्य का सा रूप धारण करलूं तो यह निस्सन्देह मुझसे प्रेम करेगी ॥२१॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब अपने प्रभाव से उस ब्राह्मणका रूप धारण कर वह जिधर वरूथिनी बैठी थी उधर घूमने लगा ॥२२॥ वह सुन्दरी उसे देखतेही प्रसन्नतासे विकसित नेत्र होकर उसके पास आकर कहने लगी कि मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥ २३ ॥ तुम्हारे छोड़ देने पर मैं निस्सन्देह जीवन का परित्याग करूंगी और इससे तुमको पाप लगेगा और तुम्हारी सब क्रियायें नष्ट हो जायेंगी ॥२४॥ इस रमणीक पर्वतकी कन्दरा में यदि मेरे साथ मेरे प्राणोंकी रक्षा करोगे तो तुमको बड़ा धर्म होगा ॥ २५ ॥ हे महान् बुद्धि वाले! निश्चय मेरी आयु समाप्त होने को है जो मेरे आनन्द देने वाले तुम मुझ से छूटते नहीं हो ॥ २६ ॥

कलि बोला—

हे सुन्दरी! जो तुम ऐसा कहतीहो तो बताओ मेरी कौनसी क्रिया की हानि होगी ॥२७॥ मुझे यह सङ्कट है कि जो कुछ मैं कहूँ उसको तुम करो तो

यदि स्यात् सङ्गमो मेऽद्य भवत्या सह नान्यथा २८॥

वरूथिन्युवाच

प्रसीद यद्ब्रवीषि त्वं तत् करोमि न ते मृषा।
ब्रवीम्येतदनाशङ्क्यं यत् ते कार्य्यं मयाधुना ॥२६॥

कलिरुवाच

नाद्य सम्भोगसमये द्रष्टव्योऽहं त्वया वने।
निमीलिताक्ष्याः संसर्गस्तव सुभ्रु मया सह ॥३०॥

वरूथिन्युवाच

एवं भवतु भद्रं ते यथेच्छसि तथास्तु तत्।
मया सर्व्व प्रकारं हि वशे स्थेयं तवाधुना ॥३१॥

मेरा और तुम्हारा संसर्ग होगा अन्यथा नहीं॥२८॥

वरूथिनी वोली—

आप प्रसन्न हों। जो कुछ तुम कहोगे वही मैं करूंगी, इसमें झूंठ नहीं है। जो कार्य मुझसे अशक्य हो उसको भी कहो मैं करूंगी ॥२६॥

कलि वोला—

हे सुन्दरी! सम्भोग के समय तुम आंखें बन्द रख कर मुझ को न देखो तो ऐसा होसकता है॥

वरूथिनी वोली—

आपका कल्याण हो, जो आपकी इच्छा है वही मैं करूंगी। मैं इस समय सब प्रकार से आपके वश में हूं॥३१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वारोचिष मन्वन्तर नाम ६२वां अ० समाप्त।

तिरेसठवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः सह तया सोऽथ रराम गिरिसानुषु।
फुल्लकाननहृद्येषु मनोज्ञेषु सरःसु च ॥१॥
कन्दरेषु च रम्येषु निम्नगापुलिनेषु च।
मनोज्ञेषु तथान्येषु देशेषु मुदितो द्विज ॥२॥
वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपं तस्य तेजसा।
अचिन्तयद्भोगकाले निमीलितविलोचना ॥३॥
ततः कालेन सा गर्भमवाप मुनिसत्तम।
गन्धर्व्ववीर्य्यतो रूपं चिन्तनाच्च द्विजन्मनः ॥४॥
तां गर्भधारिणीं सोऽथ सान्त्वयित्वा वरूथिनीम्।
विप्ररूपधरो यातस्तया प्रीत्या विसर्ज्जितः ॥५॥
जज्ञे स बालो द्युतिमान् ज्वलन्निव विभावसुः।
स्वरोचिर्भिर्यथा सूर्य्यो भासयन् सकला दिशः॥ ६॥
स्वरोचिर्भिर्यतो भाति भास्वानिव स वालकः।
ततः स्वरोचिरित्येवं नाम्ना ख्यातो वभूव सः॥ ७॥
ववृधे च महाभागो वयसानुदिनं तथा।
गुणौघैश्च यथा बालः कलाभिः शशलाञ्छनः॥ ८॥
स जग्राह धनुर्व्वेदं वेदांश्चैव यथाक्रमम्।
विद्याश्चैव महाभागस्तदा यौवनगोचरः ॥ ६॥
मन्दराद्रौ कदाचित् स विचरंश्चारुचेष्टितः।
ददर्शैकां तदा कन्यां गिरिप्रस्थे भयातुराम् ॥१०॥

मार्कण्डेयजी वोले—

वह गन्धर्व वरूथिनी के साथ पहाड़ों, किनारों, फूले हुए वनों और मनोहर सरोवरों में विहार करने लगा॥१॥ हे ब्राह्मण! वह रमणीक कन्दराओं, नदियों के किनारों तथा अन्य मनोहर देशों में प्रसन्न होकर रमण करने लगा॥२॥ भोग के समय वरूथिनी आंखें बन्द कर लेती और अग्नि से अधिष्ठित उस ब्राह्मण की तेजमयी मूर्ति का ध्यान करती॥३॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! कुछ कालमें ब्राह्मणरूपी गन्धर्व के वीर्य से वरूथिनी ने गर्भ प्राप्त किया॥४॥ उस गर्भवती वरूथिनी को सान्त्वना देकर ब्राह्मण रूपधारी वह गन्धर्व उससे प्रीति पूर्वक विसर्जित होगया॥५॥ गर्भ की अवधि पूर्ण होने पर जिस प्रकार सूर्य सकल दिशाओंको प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार कान्तिमान् एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥६॥ जिस प्रकार अपने तेज से सूर्य प्रकाशमान् होते हैं उसी प्रकार वह बालक तेज युक्त हुआ। इसी कारण वह स्वरोचि नाम से विख्यात हुआ॥७॥ जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी कलाओं से दिन दिन वढ़ता है उसी प्रकार वह बालक अवस्था तथा गुणों में दिन प्रति दिन वढ़ने लगा॥८॥ वह भाग्यवान् बालक धनुर्वेद, वेद तथा क्रम से विद्याओं को पढ़कर यौवन सम्पन्न हुआ॥ मन्दराचल पर्वत पर विचरते हुए उसने भयभीत हुई एक कन्या को पर्वतीय प्रदेश में देखा ॥१०॥

त्रायस्वेति निरीक्ष्यैनं सा तदा वाक्यमब्रवीत् ।
मा भैषीरिति स प्राह भयविप्लुतलोचनाम् ॥११॥
किमेतदिति तेनोक्ते वीरवाक्ये महात्मना ।
ततः सा कथयामास श्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥१२॥

कन्योवाच

अहमिन्दीवराक्षस्य सुता विद्याधरस्य वै ।
नाम्ना मनोरमा जाता सुतायां मरुधन्वनः ॥१३
मन्दारविद्याधरजा सखी मम विभावरी ।
कलावती चाप्यपरा सुता पारस्य वै मुनेः ॥१४
ताभ्यां सह मया यातं कैलासतटमुत्तमम् ।
तत्र दृष्टो मुनिः कश्चित् तपसातिकृशाकृतिः ।
क्षुत्क्षामकण्ठो निस्तेजा दूरपाताक्षितारकः ॥१५॥
मयावहसितः क्रुद्धः स तदा मां शशाप ह ।
क्षामक्षामस्वरः किञ्चित् कम्पिताधरपल्लवः ॥१६॥
त्वयावहसितो यस्मादनार्य्ये दुष्टतापसि ।
तस्मात् त्वामचिरेणैव राक्षसोऽभिभविष्यति ॥१७॥
दत्ते शापे मत्सखीभ्यां स तु निर्भर्त्सितो मुनिः ।
धिक् ते ब्राह्मण्यमक्षान्त्या कृतं ते निखिलं तपः॥१८
अमर्षेणैर्धर्पितोऽसि तपसा नातिकर्शितः ।
क्षान्त्यास्पदं वै ब्राह्मण्यं क्रोधसंयमनं तपः ॥१६॥
एतच्छ्रुत्वा ददौ शापं तयोरप्यमितद्युतिः ।
एकस्याः कुष्ठमङ्गेषु भाव्यन्यस्यास्तथा क्षयः॥२०॥
तयोस्तथैव तज्जातं यथोक्तं तेन तत्क्षणात् ।
ममाप्येवं महद्रक्षः समुपैति पदानुगम् ॥२१॥
न शृणोषि महानादं तस्यादूरेऽपि गर्ज्जतः ।
तृतीयमद्य दिवसं यन्मे पृष्ठं न मुञ्चति ॥२२॥
अस्त्रग्रामस्य सर्व्वस्य हृदयग्राहमद्य ते ।
तं प्रयच्छामि मां रक्ष रक्षसोऽस्मान्महामते ॥२३॥
प्रादात् स्वायम्भुवस्यादौ स्वयं रुद्रः पिनाकधृक् ।
स्वायम्भुवो वशिष्ठाय सिद्धवर्य्याय दत्तवान् ॥२४॥
तेनापि दत्तं मन्मातुः पित्रे चित्रायुधाय वै ।
प्रादादौद्वाहिकं सोऽपि मत्पित्रे श्वशुरः स्वयम्॥२५॥
मयापि शिक्षितं वीर सकाशाद्बालया पितुः ।

यह इसको देखकर बोली कि मेरी रक्षा करो । इस पर वह उस कन्या से जिसकी भय से आंखें बन्द हो रहीं थीं बोला कि तुम मत डरो ॥ ११ ॥ उस महात्मा स्वरोचिष के वीरता युक्त यह पूछने पर कि क्या बात है उसने श्वास लेते हुए अस्पष्ट अक्षरों में कहा ॥१२॥

कन्या बोली—

मैं इन्दी वराक्ष नाम विद्याधरकी बेटी मनोरमा हूँ और मेरी माँ मरुधन्वा की बेटी है ॥ १३ ॥ मेरी विभावरी नामक सखी मन्दार विद्याधर की पुत्रीहै और दूसरी कलावती पारमुनि की कन्या है ॥१४॥ उन दोनों के साथ उत्तम कैलाश तट पर घूमते हुए वहाँ मैंने एक मुनि को देखा जिनकी आकृति तपस्या से अति क्षीण और निस्तेज होगई थी, तथा जिनका कण्ठ भूख प्यास से सूखा हुआ और आँखें गढ़हे में घुसी हुई थीं ॥१५॥ उनको देखकर मुझे हंसी आगई जिससे उन्होंने क्रोधित होकर मुझे कमज़ोरी से काँपते हुए स्वर और होठों से शाप दिया ॥ १६॥ हे दुष्टे ! जो कि तू मुझे देखकर हंसी है इसलिये बहुत शीघ्र तुझको एक राक्षस भक्षण करेगा ॥१७॥ मुझे शाप देनेपर मेरी सखियों ने मुनि की निन्दा की और कहा कि तुम्हारे ब्राह्मणत्वको धिकार है कि तुम में क्षमा नहीं है, तुमने वृथा ही तप किया ॥१८॥ मालुम होता है कि तुम क्रोध से ही क्षीण होरहे हो तपसे नहीं । क्षमावान् होना ही ब्राह्मणत्व है और क्रोध का नियन्त्रण करना तप है ॥१६॥ यह सुनकर उस अमित तेजस्वी मुनि ने उन दोनों को भी शाप दिया कि एक को कुष्ट और दूसरी को क्षय रोग होगा ॥ २० ॥ उसके उसी क्षण कहते ही वे दोनों कुष्ट और क्षय रोगसे ग्रसित होगई और मेरे पीछेभी यह महान् राक्षस चला आता है ॥ २१ ॥ क्या आप उसके गर्जने की आवाज को नहीं सुनते हैं ? आज तीन दिनसे यह मेरा पीछा नहीं छोड़ता है ॥ २२ ॥ मेरे पास सम्पूर्ण अस्त्रों का हृदय मौजूद है । हे महामते ! इसको मैं आपको देती हूँ, आप इस राक्षससे मेरी रक्षा करें ॥ २३ ॥ इस हृदय को सब से पहिले पिनाकधारी स्वयं महादेवजी ने स्वायम्भुवमनु को दिया था और स्वायंम्भुव ने इसे सिद्धवर्य वशिष्ठजी को दिया ॥२४ ॥ वशिष्ठजी ने यह मेरे नाना चित्रायुध को दिया जिसने मेरी माता के विवाह में इसको मेरे पिता को दिया ॥ २५ ॥ हे वीर ! मेरे पिता ने इसको मुझे बाल्यावस्था में ही दे दिया ।

हृदयं सकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ॥२६॥
तदिदं गृह्यतां शीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ।
ततो जहि दुरात्मानमेनं ब्रह्मसमागतम् ॥२७॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्ते ततस्तेन वार्य्युपस्पृश्य तस्य तत् ।
अस्त्राणां हृदयं पादात् सरहस्यनिवर्त्तनम् ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे रक्षस्तत् तदा भीषणाकृतिः ।
नर्दमानो महानादमाजगाम त्वरान्वितः ॥२९॥
मयाभिभूता किं त्राणमुपैति द्रुतमेहि मे ।
भक्षाय किं चिरेणेति ब्रुवाणं तं ददर्श सः ॥३०॥
स्वरोचिश्चिन्तयामास दृष्ट्वा तं समुपागतम् ।
गृह्णात्वेष वचः सत्यं तस्यास्त्विति महामुनेः ॥३१॥
जग्राह समुपेत्यैनां त्वरया सोऽपि राक्षसः ।
त्राहि त्राहीति करुणं विलपन्तीं सुमध्यमाम् ॥३२॥
ततः स्वरोचिः संक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् ।
दृष्ट्वा निवेश्य तद्रक्षो ददर्शानिमिषेक्षणः ॥३३॥
तदाभिभूतः स तदा तामुत्सृज्य निशाचरः ।
प्रसीद शाम्यतामस्त्रं श्रूयताञ्चेत्यभाषत ॥३४॥
मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते ।
प्रदत्तादतितीव्रेण ब्रह्ममित्रेण धीमता ॥३५
उपकारी न मे त्वत्तो महाभागाधिकोऽपरः ।
येनाहं सुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥३६॥

स्वरोचिरुवाच

ब्रह्ममित्रेण मुनिना किं निमित्तं महात्मना ।
शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापो दत्तोऽभवत् पुरा ॥३७॥

राक्षस उवाच

ब्रह्ममित्रोऽष्टधा च्छिन्नमायुर्व्वेदमधीतवान् ।
त्रयोदशाधिकारंच प्रगृह्याथर्व्वणो द्विजः ॥३८॥
अहंचेन्दीवराक्षेति ख्यातोऽस्या जनकोऽभवम् ।
विद्याधरपतेः पुत्रो नलनाभस्य खड्गिनः ॥३९॥
मया च याचितः पूर्व्वं ब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ।
आयुर्व्वेदमशेषं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥४०॥
यदा तु बहुशो वीर प्रश्रयावनतस्य मे ।

यह सम्पूर्ण अस्त्रों का हृदय और शत्रुओं के नाश करने वाला है ॥२६॥ इसलिये इसको जो सम्पूर्ण अस्त्रों का काम देता है आप ग्रहण कीजिये और ब्राह्मण के शाप के कारण आये हुए इस दुष्ट को मारिये ॥ २७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह कहकर उसने हाथ में जल लेकर अस्त्रोंके हृदय को उसके रहस्य निवर्तन सहित स्वरोचि को दे दिया ॥ २८ ॥ इसी अवसर में वह भीषण आकार वाला राक्षस घोर गर्जन करता हुआ शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा ॥ २९ ॥ मुझ से भयभीत हुआ कोई भी तेरी रक्षा नहीं करेगा, शीघ्र मेरे पास आ जिससे मैं तुझे खाऊं । इस प्रकार बोलते हुए उस को स्वरोचि ने देखा ॥ ३० ॥ उसको पास आया हुआ देखकर स्वरोचिने सोचाकि यदि इसको यह राक्षस पकड़ ले तो महामुनि का वचन भी सत्य होजाय ॥३१॥ उस राक्षस ने शीघ्रही उस मनोरमा के पास आकर उसको पकड़ लिया और वह सुन्दरी करुणा पूर्वक विलाप करने लगी कि "मुझे बचाइये, मुझे बचाइये" ॥३२॥ तब स्वरोचि ने क्रुद्ध होकर उस भीषण चण्डास्त्र को शीघ्र उस राक्षस की ओर चला दिया ॥ ३३ ॥ उससे डरकर निशाचर ने मनोरमा को छोड़दिया और वह कहनेलगा कि आप प्रसन्न होकर इस अस्त्र को शान्त करें और मेरी बात सुनें ॥३४॥ हे महान् तेजस्वी ! मुझ को तुमने बुद्धिमान् ब्रह्ममित्र के दिये हुए अति घोर शाप से बचा लिया ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! तुमसे अधिक मेरा और कोई उपकारी नहीं है जो कि तुमने महान् शाप के घोर कष्ट से मुझको मुक्त किया है ॥ ३६ ॥

स्वरोचि बोले—

महात्मा ब्रह्ममित्र ने तुमको किस कारणसे शाप दिया था यह कहो ॥ ३७ ॥

राक्षस बोला—

ब्राह्मण ब्रह्ममित्रने अष्टाङ्ग सहित आयुर्वेदऔर तेरहों अधिकार सहित अथर्ववेद का अध्ययन किया है ॥३८॥ मैं इन्दीवराक्ष नाम इस मनोरमा का पिता हूँ और विद्याधरों के पति नलनाभ का पुत्र हूँ ॥३९॥ मैंने पहिले ब्रह्ममित्र मुनि से याचना की थी कि हे भगवन् ! आयुर्वेदको सम्पूर्णतः मुझे पढ़ाइये ॥ ४० ॥ हे वीर ! यद्यपि मैंने उनसे बहुत अनुनय विनय पढ़ाने के लिये किया परन्तु उन्होंने

न माद्दाद्याचितो विद्यामायुर्व्वेदात्मिकां मम॥४१॥
शिष्येभ्यो ददतस्तस्य मयान्तर्धानगेन हि।
आयुर्व्वेदात्मिका विद्या गृहीताभूत् तदानघ॥४२॥
गृहीतायान्तु विद्यायां मासैरष्टाभिरन्तरात्।
ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीव पुनः पुनः॥४३॥
मत्यभिज्ञाय मां हासान्मुनिः कोपसमन्वितः।
विकम्पिकन्धरः प्राह मामिदं परुषाक्षरम्॥४४॥
राक्षसेनेव यस्मान्मे त्वयाऽदृश्येन दुर्म्मते।
हृता विद्यावहासश्च मामवज्ञाय वै कृतः॥४५॥
तस्मात् त्वं राक्षसः पाप मच्छापेन निराकृतः।
भविष्यसि न सन्देहः सप्त रात्रेण दारुणः॥४६॥
इत्युक्ते प्रणिपाताद्यै रुपचारैः प्रसादितः।
स मामाह पुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानसः॥४७॥
यन्मयोक्तमवश्यं तद्भावि गन्धर्व्व मान्यथा।
किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वं प्राप्स्यसे वपुः॥४८॥
नष्टस्मृतिर्यदा क्रुद्धः स्वमपत्यं चिखादिषुः।
निशाचरत्वं गन्तासि तदस्त्रानलतापितः॥४९॥
पुनः संज्ञामवाप्य स्वामवाप्स्यसि निजं वपुः।
तथैव स्वमधिष्ठानं लोके गन्धर्व्वसंज्ञिते॥५०॥
सोऽहं त्वया महाभाग मोक्षितोऽस्मान्महाभयात्।
निशाचरत्वाद्द्वयद्वीर तेन मे प्रार्थनां कुरु॥५१॥
इमां ते तनयां भार्य्यां प्रयच्छामि प्रतीच्छताम्।
आयुर्व्वेदश्च सकलस्त्वष्टाङ्गो यो मया ततः।
मुनेः सकाशात् सम्प्राप्तस्तं गृहीष्व महामते॥५२॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यां स च दिव्याम्बरोज्ज्वलः।
स्रग्भूषणधरो दिव्यं पुराणं वपुरास्थितः॥५३॥
दत्त्वा विद्यां ततः कन्यां स दातुमुपचक्रमे।
तमाह सा तदा कन्या जनितारं स्वरूपिणम्॥५४॥
अनुरागो मयाऽप्यत्र तातातीव महात्मनि।
दर्शनादेव सञ्जातो विशेषेणोपकारिणि॥५५॥
किन्त्वेषा मे सखी सा च मत्कृते दुःखपीड़िते।
अतो नाभिलषे भोगान् भोक्तुमेतेन वै समम्॥५६॥

मुझे आयुर्वेद न पढ़ाया॥४१॥ हे निष्पाप स्वरोचि! जब वे शिष्यों को पढ़ाते थे उस समय अन्तर्धान होकर मैंने उस आयुर्वेद विद्या को प्राप्त किया॥४२॥ छिपे हुए रहकर मैंने आठ महीने में वह विद्या पढ़ ली। इसके बाद मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मैं बार२ हंसने लगा॥४३॥ मुझको हंसते हुए देखकर मुनि समझ गये और क्रोधसंयुक्त कम्पित शरीर होकर कठोर शब्दों में कहने लगे॥४४॥ हे दुर्बुद्धि! राक्षस की तरह तूने अदृश्य होकर विद्या पढ़ ली है और अब तू हँसकर मेरा अपमान करता है॥४५॥ इस लिये तू मेरे शाप से सात रातके भीतर एकदारुण राक्षस होजायगा॥४६॥ उनके ऐसा कहने पर मैंने प्रणाम आदि अनुनय विनयसे उनको प्रसन्न किया तो फिर कोमल हृदय होकर मुनि ने मुझ से कहा॥४७॥ हे गन्धर्व! जो मैंने कहा है वह तो अवश्य होगा, परन्तु तुम राक्षस होकर पुनः इस शरीर को प्राप्त करोगे॥४८॥ अपनी स्मृति को खोकर क्रोध के वश होकर जब तू अपनी लड़की के खानेको उद्यत होगा तब किसी के अस्त्र की अग्नि के ताप से तेरा राक्षसपन चला जायगा॥४९॥ फिर होश में आकर तू अपने शरीर को प्राप्त करेगा और गन्धर्वलोक को जायगा॥५०॥ हे महाभाग! तुमने मुझे इस राक्षसत्व रूपी महाभय से मुक्त किया है इसलिये अब मुझसे वर माँगो॥५१॥ इस कन्या को तुम्हें देताहूँ इसे ग्रहणकरो और अष्टाङ्ग सहित आयुर्वेद जो मैंने मुनि से पढ़ा है वह भी ग्रहण करो॥५२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह कहकर उसने वह विद्या स्वरोचि को दे दी और आप सुन्दर माला और आभूषण आदि धारण करके पूर्ववत् अपने गन्धर्व रूप में प्रकट होगया॥५३॥ उस विद्या को देकर कन्या को देने का जब गन्धर्व ने आयोजन किया तो वह कन्या अपने पिता से कहने लगी॥५४॥ हे तात! इस महात्मा में जो कि मेरे विशेष उपकारी हैं दर्शन से ही मेरी प्रीति होगई॥५५॥ किन्तु मेरी दो सखियाँ मेरे ही कारण दुःख से पीड़ित हैं इसलिये मैं उन को इस अवस्था में छोड़कर भोग विलास करना नहीं चाहती॥५६॥ ऐसी निर्दयता तो पुरुष भी

रूपैरपि नो शक्या कर्त्तुमित्थं नृशंसता ।
भावरुचिरैर्मादृक् कथं योषित् करिष्यति ॥५७॥
हं यथा ते दुःखार्त्ते मत्कृते कन्यके पितः ।
था स्थास्यामि तद्वद्दुःखे तच्छोकानलतापिता ॥५८॥

करने को समर्थ नहीं हैं जिसमें मैं तो स्त्री हूँ जो स्वभाव से ही कोमल होती है ॥ ५७ ॥ हे पिता ! जिस तरह वे दोनों सखियां मेरे कारण दुःखित होगई हैं उसी तरह मैं भी उनके दुःख की शोकाग्नि में जलती हुई स्थित रहूँगी ॥ ५८ ॥

स्वरोचिरुवाच

गायुर्व्वेदप्रसादेन ते करिष्ये पुनर्नवे ।
सख्यौ तव महाशोकं समुत्सृज सुमध्यमे ॥५९॥

स्वरोचि बोले—

हे सुन्दरी ! तुम शोक को छोड़ दो, आयुर्वेद के प्रसाद से मैं तुम्हारी दोनों सखियों का नया जीवन कर दूँगा ॥५९॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः पित्रा स्वयं दत्तां तां कन्यां स विधानतः ।
उपयेमे गिरौ तस्मिन् स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ॥६०॥
दत्त्वान्तु तां तदा कन्यामभिसान्त्वय च भाविनीम् ।
जगाम दिव्यया गत्या गन्धर्व्वः स्वपुरं ततः ॥६१॥
स चापि सहितस्तन्वया तदुद्यानं तदा ययौ ।
कन्यकायुगलं यत्र तच्छापात् तु गदातुरम् ॥६२॥
ततस्तयोः स तत्त्वज्ञो रोगघ्नैरौषधै रसैः ।
चकार नीरुजे देहे स्वरोचिरपराजितः ॥६३॥
ततोऽतिशोभने कन्ये विमुक्ते व्याधितः शुभे ।
स्वकान्त्योद्द्योतिदिग्भागं चक्रांते तन्महीधरम् ॥६४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर पिता ने उस कन्याको विधि पूर्वक प्रदान किया और स्वरोचि ने उस सुन्दरी से उसी पर्वत पर विधि पूर्वक विवाह किया ॥ ६० ॥ उस कन्या को प्रदान करने के बाद गन्धर्व ने उस भाविनी को अनेक प्रकार से सांत्वना दी और आप दिव्य गति से गन्धर्वलोक को चला गया ॥६१॥ स्वरोचि भी सुन्दरी सहित उस उद्यानमें गये जहाँ मनोरमा की दोनों सखियाँ मुनि के शाप से रोगयुक्त हुई पड़ी थीं ॥६२॥ फिर महात्मा स्वरोचिने रोगनाशक औषधियों के रससे उन दोनों सखियों का शरीर नीरोग कर दिया ॥ ६३ ॥ रोगरहित होनेके कारण वे दोनों सखियां अत्यन्त शोभित होने लगीं और उन्होंने अपनी कान्ति की ज्योति से उस पर्वत को सब दिशाओं में प्रकाशित कर दिया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय० में स्वारोचिष मन्वन्तर (२) नाम ६३वाँ अ० समाप्त ।

चौंसठवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवं विमुक्तरोगा तु कन्यका तं मुदान्विता ।
स्वरोचिषमुवाचेदं शृणुष्व वचनं प्रभो ॥ १ ॥
मन्दारविद्याधरजा नाम्ना ख्याता विभावरी ।
उपकारिन् स्वमात्मानं प्रयच्छामि प्रतीच्छ माम् ॥२॥
विद्याञ्च तुभ्यं दास्यामि सर्व्वभूतरुतानि ते ।
ययाभिव्यक्तिमेष्यन्ति प्रसादपुरगो भव ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

वे दोनों सखियां रोग से छूटगईं और उनमें से एक ने प्रसन्नता पूर्वक स्वरोचि से कहा, "हे प्रभो ! सुनो" ॥१॥ मैं मन्दार नाम विद्याधर की कन्या विभावरीहूँ, आप उपकारी हैं इसलिये अपने को आपके समर्पण करती हूँ, आप मुझे स्वीकार करें ॥ २ ॥ मैं आपको एक विद्या भी देती हूँ जिससे सब जीवों की बोली का ज्ञान आपको हो जायगा । आप मुझपर प्रसन्न हों ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विति तेनोक्ते धर्म्मज्ञेन स्वरोचिषा ।
द्वितीया तु तदा कन्या इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उसके इस प्रकार कहने पर धर्मात्मा स्वरोचि ने उससे "एवमस्तु" कहा और उसे अङ्गीकार कर लिया । दूसरी सखी भी इस प्रकार कहनेलगी ॥४॥

कुमारब्रह्मचार्य्यासीत् पारो नाम पिता मम ।
ब्रह्मर्षिः सुमहाभागो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५ ॥
तस्य पुंस्कोकिलालाप-रमणीये मधौ पुरा ।
आजगामाप्सराभ्यासं प्रख्याता पुञ्जिकस्तना ॥६॥
कामवक्तव्यतां नीतः स तदा मुनिपुङ्गवः ।
तत्संयोगेऽहमुत्पन्ना तस्यामत्र महाचले ॥ ७ ॥
विहाय मां गता सा च मातास्मिन् निर्ज्जने वने ।
बालामेकां महीपृष्ठे व्यालश्वापदसंकुले ॥ ८ ।
ततः कलाभिः सोमस्य वर्द्धन्तीभिरवक्षयम् ।
आप्याय्यमानाहरहर्वृद्धिं यातास्मि सत्तम ॥ ९ ॥
ततः कलावतीत्येतन्मम नाम महात्मना ।
गृहीतायाः कृतं पित्रा गन्धर्व्वेण शुभानना ॥१०॥
न दत्ताहं तदा तेन याचितेन महात्मना ।
देवारिणालिना शप्तस्ततो मे घातितः पिता ॥११॥
ततोऽहमतिनिर्व्वेदादात्मव्यापादनोद्यता ।
निवारिता शम्भुपत्न्या सत्या सत्यप्रतिश्रवा ॥१२॥
मा शुचः सुभ्रु भर्त्ता ते महाभागो भविष्यति ।
स्वरोचिर्नाम पुत्रश्च मनुस्तस्य भविष्यति ॥१३॥
आज्ञाश्च निधयः सर्व्वे करिष्यन्ति तवादृताः ।
यथाभिलषितं वित्तं प्रदास्यन्ति च ते शुभे ॥१४॥
यस्या वत्से प्रभावेण विद्यायास्तां गृहाण मे ।
पद्मिनी नाम विद्येयं महापद्माभिपूजिता ॥१५॥
इत्याह मां दक्षसुता सती सत्यपरायणा ।
स्वरोचिस्त्वं ध्रुवं देवी नान्यथा सा वदिष्यति॥१६॥
साहं प्राणप्रदायाद्य तां विद्यां स्वं तथा वपुः ।
प्रयच्छामि प्रतीच्छ त्वं प्रसादसुमुखो मम ॥१७॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विति तामाह स तु कन्यां कलावतीम् ।
विभावर्य्याः कलावत्याः स्निग्धदृष्ट्यानुमोदितः॥१८॥
जग्राह च ततः पाणी स तयोरमरद्युतिः ।
नदत्सु देवतूर्य्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ॥१९॥

हे कुमार ! वेद वेदाङ्ग के जानने वाले, भाग्यवान् ब्रह्मर्षि ब्रह्मचारी पार मुनि मेरे पिता हैं ॥ ५ ॥ एक समय कोकिलों की ध्वनि से परम रमणीक वसंत ऋतु में पुञ्जिकस्त नाम अप्सरा उनके पास आई ॥ उस महापर्वत पर कामासक्त होकर मुनिने उससे भोग किया, और उस संयोग से मेरा जन्म हुआ ॥ ७ ॥ मुझको उस निर्जन वन में जहाँ सर्प और सिंह भरे हुए थे, पृथ्वी पर अकेला छोड़कर मेरी माता चली गई ॥ ८ ॥ फिर जिस तरह चन्द्रमा कलाओं से दिन-दिन बढ़ता है उसी तरह मैं वृद्धि को प्राप्त होती गई ॥ ९ ॥ इसी कारण मेरे पिता ने मेरा नाम कलावती रक्खा और इसके बाद मुझे एक गन्धर्व पालने के लिये पिता से मांग कर ले गया ॥१० ॥ फिर मेरे पिता से एक राक्षस ने मुझे माँगा । उनको न देने पर उस राक्षसने उन्हें सोते समय शूल से मार डाला ॥ ११ ॥ इससे मैं अति निराश होकर आत्मघात करनेपर उद्यतहुई तो उस समय शिवजी की पत्नी सतीने मुझको ऐसा करने से रोका ॥१२॥ हे सुन्दरी ! तू सोच मत कर । तेरे स्वामी महाभाग स्वरोचि होंगे और उनके पुत्र मनु होंगे ॥ १३ ॥ हे शुभे ! सम्पूर्ण निधियां तेरी आज्ञा को मानेंगी और तुमको मनवांछित धनादि देंगी ॥ महापद्म से पूजित पद्मिनी नाम विद्या मैं तुम्हें देती हूँ, इसको ग्रहण करो, इसी विद्या के प्रभाव से सब निधियां तुम्हारी होंगी ॥१५॥ सत्य-परायणा दक्षकन्या सती ने मुझसे ऐसा कहा था। स्वरोचि निश्चय ही तुम हो । देवी असत्य नहीं कह [illegible] ॥१६॥ वह कलावती मैं हूँ, उस विद्या तथा [illegible] शरीर को मैं आपके अर्पण करती हूँ । आप स्वीकार करके मुझपर प्रसन्न हों ॥ १७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

स्वरोचि उस कन्या कलावतीसे बोले कि ऐसाही होगा । विभावरी तथा कलावती के स्निग्ध प्रेम से स्वरोचि बहुत प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥ देवताओं की सी कान्ति वाले स्वरोचि ने उन दोनों के साथ [illegible] करलिया । उस विवाह में देवताओं ने बाजे बजाये और अप्सरायें नाचीं ॥ १९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वरोचिषमन्वन्तर (२) नाम ६४वाँ अध्याय समाप्त ।

पैंसठवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः स ताभिः सहितः पत्नीभिरमरद्युतिः ।
रराम तस्मिन् शैलेन्द्रे रम्यकानननिर्झरे ॥ १ ॥
सर्व्वोपभोगरत्नानि मधूनि मधुराणि च ।
निधयः समुपाजह्रुः पद्मिन्या वशवर्त्तिनः ॥ २ ॥
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान् गन्धाढ्यमनुलेपनम् ।
आसनान्यतिशुभ्राणि काञ्चनानि यथेच्छया ॥ ३ ॥
सौवर्णानि महाभाग करकान् भाजनानि च ।
तथा शय्याश्च विविधा दिव्यैरास्तरणैर्युताः ॥ ४ ॥
एवं स ताभिः सहितो दिव्यगन्धादिवासिते ।
रराम स्वरुचिर्भाभिर्भासिते वरपर्व्वते ॥ ५ ॥
ताश्चापि सह तेनेति लेभिरे मुदमुत्तमाम् ।
रममाणा यथा स्वर्गे तथा तत्र शिलोच्चये ॥ ६ ॥
कलहंसी जगादैकां चक्रवाकीं जले सतीम् ।
तस्य तासाञ्च ललिते सम्बन्धे च स्पृहावती ॥ ७ ॥
धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः ।
दयिताभिः सहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥८॥
सन्ति यौवनिनः श्लाघ्यास्तत्पत्न्यो नातिशोभनाः ।
जगत्यामल्पकाः पत्न्यः पतयश्चातिशोभनाः ॥ ९ ॥
अभीष्टाः कस्यचित् कान्ता कान्तः कस्याश्चिदीप्सितः ।
परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥१०॥
धन्योऽयं दयिताभीष्टो ह्येताश्चास्यातिवल्लभाः ।
परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ॥११॥
एतन्निशम्य वचनं कलहंसीसमीरितम् ।
उवाच चक्रवाकी तां नातिविस्मितमानसा ॥१२॥
नायं धन्यो यतो लज्जा नान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ।
अन्यां स्त्रियमयं भुङ्क्ते न सर्व्वास्वस्य मानसम् ॥१३॥
चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठाने यतः सखि ।
ततो हि प्रीतिमानेष भार्य्यासु भविता कथम् ॥१४॥
नैता न दयिताः पत्युर्नैतासां दयितः पतिः ।
विनोदमात्रमेवैता यथा परिजनोऽपरः ॥१५॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद वह देवताओं की सी कान्तिवाला स्वरोचि उन स्त्रियों के साथ उस पर्वत पर तथा बन और झरनों में विहार करनेलगा ॥१॥ उपभोग के सब रत्न, मधु और मधुर रस उनके लिये पद्मिनी विद्या के प्रभावसे सब निधियां वशवर्तिनी होकर उपस्थित करती थीं ॥ २ ॥ माला, वस्त्र, अलङ्कार, गन्ध, चन्दन आदि लेप तथा सोने के बने हुए सुन्दर आसन तथा अन्य वस्तुयें जिनकी वे इच्छा करते थे ॥ ३॥ सोने के बर्तन तथा नाना प्रकार की शय्यायें और उपरोक्त सब वस्तुयें उन को निधियां देती थीं ॥ ४ ॥ दिव्य गन्धों सहित उस सुन्दर पर्वत पर स्वरोचि उन स्त्रियों के साथ रमण करने लगे ॥ ५ ॥ वे स्त्रियां भी स्वरोचि के साथ प्रेम पूर्वक रहतीं थीं और उस पर्वत पर इस प्रकार रमण करतीं थीं जिस प्रकार कि वे स्वर्ग में हों ॥ ६ ॥ स्वरोचि और उसकी स्त्रियों का ललित सम्बन्ध देखकर स्पृहा करके एक हंसनी जल में दूसरी चक्रवाकी से बोली ॥ ७॥ अत्यन्त पुण्यवान् यह स्वरोचि धन्य है जो यौवनावस्था में अपनी स्त्रियों सहित इच्छित भोगों को भोगता है ॥८॥ इस संसार में बहुधा यदि पति सुन्दर और युवा है तो उसकी स्त्री कुरूपा है और यदि पत्नी अच्छी है तो पति अच्छा नहीं है ॥ ९ ॥ कहीं स्त्री की क्षुद्र है तो कहीं पुरुष की। परस्पर दाम्पत्य-प्रेम अति दुर्लभ है ॥१० ॥ यह स्वरोचि धन्य है कि इसकी पत्नियां इसको चाहती हैं और यह भी उनको बहुत प्यार करता है। जिन स्त्री-पुरुषों में परस्पर प्रीति है वे धन्य हैं ॥११॥ हंसिनी के इन वचनोंको सुनकर चक्रवाकी ने आश्चर्य रहित होकर कहा ॥ यह स्वरोचि धन्य नहीं है कारण-इसको अन्य स्त्री के सामीप्य से लज्जा नहीं है। जब यह एकके अतिरिक्त दूसरी स्त्री से भी भोग करता है तो इस की प्रीति सब में बराबर नहीं हो सकती ॥ १३ ॥ जब इसके चित्त का अनुराग एक स्त्री में स्थित नहीं है तो इसकी प्रीति सब स्त्रियोंमेंबराबर किस प्रकार हो सकती है? ॥ १४ ॥ इसलिये न तो यह पति की स्त्रियां हैं और न स्त्रियों का यह पति है। ये तो केवल विनोद मात्र है अथवा जिस तरह अन्य लोग हैं उसी तरह ये भी हैं ॥ १५ ॥ यदि

एतासाञ्च यदीष्टोऽयं तत् किं प्राणान् न मुञ्चति ।
आलिङ्ग्यपरां कान्तां ध्यायतो वै कान्तयान्यया१६
विद्याप्रदानमूल्येन विक्रीतो ह्येष भृत्यवत् ।
प्रवर्त्तते न हि प्रेम समं बह्वीषु तिष्ठति ॥१७॥
कलहंसि पतिर्धन्यो मम धन्याहमेव च ।
यस्यैकस्याश्चिरं चित्तं यस्याश्चैकत्र संस्थितम् ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

सर्व्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौ स्वरोचिरपराजितः ।
निशम्य लज्जितो दध्यौ सत्यमेव हि नानृतम्॥१९॥
ततो वर्षशते याते रममाणो महागिरौ ।
रममाणः समं ताभिर्ददर्श पुरतो मृगम् ॥२०॥
सुस्निग्धपीनावयवं मृगीयूथविहारिणम् ।
वासिताभिः स्वरूपाभिर्मृगीभिः परिवारितम् ॥२१॥
आकृष्टघ्राणपुटका जिघ्रन्तीस्तास्ततो मृगीः ।
उवाच स मृगो रामा लज्जात्यागेन गम्यताम्॥२२॥
...हं स्वरोचिस्तच्छीलो न चैवाहं सुलोचनाः ।
निर्लज्जा बहवः सन्ति तादृशास्तत्र गच्छतः ॥२३॥
एका त्वनेकानुगता तथा हासास्पदं जने ।
अनेकाभिस्तथैवैको भोगदृष्ट्या निरीक्षितः ॥२४॥
तस्य धर्म्मक्रियाहानिरहन्यहनि जायते ।
सक्तोऽन्यभार्य्यया चान्य-कामासक्तः सदैव सः २५॥
यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलः परलोकपराङ्मुखः ।
तं कामयत भद्रं वो नाहं तुल्यः स्वरोचिषा ॥२६॥

इन लोगों का यही इष्ट है तो जब ये एक स्त्री से आलिंगन करके दूसरीसे भोग करताहै तो तीसरी स्त्री प्राण क्यों नहीं छोड़ देती ॥ १६ ॥ इन स्त्रियों ने विद्या दानरूपी मूल्य देकर स्वरोचि को बतौर सेवक के खरीद लिया है । एक पुरुष का प्रेम कई स्त्रियों में बराबर नहीं रह सकता है ॥ १७ ॥ हे हंसनी ! मेरा पति और मैं धन्यहूँ, कारण-मैं एक हूँ और मेरा पति भी एक है और एक का एक में प्रेम स्थित है ॥१८॥

मार्कण्डेयजी बोले—

स्वरोचि जो सब जीवों की बोली समझते थे इस वार्तालाप को सुनकर बड़े लज्जित हुए और उन्होंने मनमें निश्चय किया कि यह सत्य है, इसमें झूठ नहीं ॥ १९ ॥ इसके बाद वह उस पर्वत पर सौ वर्ष तक विहार करते रहे । विहार करते हुए उन्होंने एक मृग को देखा ॥ २० ॥ जो सुन्दर और हृष्ट पुष्ट था तथा मृगियों के झुंड में विहार कर रहा था । वह सुन्दर हरिणियों से घिरा हुआ उन के द्वारा सूंघा जारहा था ॥२१॥ वे हरिणियां आकर्षित होकर उसको सूंघती और उससे लिपटती थीं । वह मृग उनसे बोला कि तुम मुझे लज्जा मत छोड़ने दो और यहाँ से जाओ ॥ २२॥ मैं स्वरोचि नहीं हूँ और न उसका सा मेरा शील है । उसके समान बहुत से निर्लज्ज मृग हैं, तुम उनके पास जाओ ॥ २३ ॥ जिस प्रकार एक स्त्री की बहुत से पुरुषों के साथ रहने से संसार में हँसी होती है उसी प्रकार एक पुरुष का अनेक स्त्रियोंको भोगना निन्दित है ॥२४॥ जो पुरुष अन्य स्त्री में कामासक्त रहता है उसकी धार्मिक क्रियाओं की दिनपर दिन हानि होती जाती है ॥ २५ ॥ जो ऐसे चरित्र वाला और परलोक से विमुख मृग हो उसको तुम ढूंढ़ लो, मैं स्वरोचि के तुल्य नहीं हूँ ॥२६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वरोचिष मन्वन्तर (४) नाम ६५वां अध्याय समाप्त ।

छियासठवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवं निरस्यमानास्ता हरिणेन मृगाङ्गनाः ।
श्रुत्वा स्वरोचिरात्मानं मेने स पतितं यथा ॥ १ ॥
त्यागे चकार च मनः स तासां मुनिसत्तम ।
चक्रवाकीमृगप्रोक्तो मृगचर्य्याजुगुप्सितः ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हरिण द्वारा मृगियों के प्रति कहे हुए वचनों को सुनकर स्वरोचि ने अपने को पतित समझा ॥ हे क्रौष्टुकिजी ! चकवाकी एवं मृग की कही हुई नसीहत से उन्होंने स्त्रियों के त्यागने की इच्छा की

समेत्य ताभिर्भूयश्च वर्द्धमानमनोभवः ।
आक्षिप्तनिर्व्वेदकथो रेमे वर्षशतानि षट् ॥ ३ ॥
किन्तु धर्म्माविरोधेन कुर्व्वन् धर्म्माश्रिताः क्रियाः ।
भुङ्क्ते स्वरोचिर्विषयान् सह ताभिरुदारधीः ॥ ४ ॥
ततश्च जज्ञिरे तस्य त्रयः पुत्राः स्वरोचिषः ।
विजयो मेरुनन्दश्च प्रभावश्च महाबलः ॥ ५ ॥
मनोरमा च विजयं प्रासूतेन्दीवरात्मजा ।
विभावरी मेरुनन्दं प्रभावञ्च कलावती ॥ ६ ॥
पद्मिनी नाम या विद्या सर्व्वभोगोपपादिका ।
स तेषां तत्प्रभावेण पिता चक्रे पुरत्रयम् ॥ ७ ॥
प्राच्यान्तु विजयं नाम कामरूपे नगोपरि ।
विजयाय सुतायादौ स ददौ पुरमुत्तमम् ॥ ८ ॥
उदीच्यां मेरुनन्दस्य पुरीं नन्दवतीमिति ।
ख्यातां चकार प्रोत्तुङ्ग-वप्रप्राकारमालिनीम् ॥ ९ ॥
कलावतीसुतस्यापि प्रभावस्य निवेशितम् ।
पुरं तालमिति ख्यातं दक्षिणापथमाश्रितम् ॥१०॥
एवं निवेश्य पुत्रान् स पुरेषु पुरुषर्षभः ।
रेमे ताभिः समं विप्र मनोज्ञेष्वतिभूमिषु ॥११॥
एकदा तु गतोऽरण्ये विहरन् स धनुर्द्धरः ।
चकर्ष धनुरालोक्य वराहमतिदूरगम् ॥१२॥
अथाह काचिदभ्येत्य तं तदा हरिणाङ्गना ।
मय्येव पात्यतां बाणः प्रसीदेति पुनः पुनः ॥१३॥
किमनेन हतेनाद्य ममाशु विनिपातय ।
त्वया निपातितो बाणो दुःखान्मां मोक्षयिष्यति १४॥

स्वरोचिरुवाच

न ते शरीरं सरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ।
किं नु तत्कारणं येन त्वं प्राणान् हातुमिच्छसि १५॥

मृग्युवाच

अन्यास्वासक्तहृदये यस्मिंश्चेतः कृतास्पदम् ।
मम तेन विना मृत्युरौषधं किमिहापरम् ॥१६॥

स्वरोचिरुवाच

कस्त्वां नाभिलषेद्भीरु सानुरागासि कुत्र वा ।
यदप्राप्तो निजान् प्राणान् परित्यक्तुं व्यवस्यसि १७॥

॥२॥ परन्तु स्त्रियों के पास आते ही उसकी कामवासना और भी बढ़ी, वह सब ज्ञान-कथा भूल गया तथा उसने छःसौ वर्षतक और उन स्त्रियों के साथ विहार किया ॥ ३ ॥ परन्तु वह बुद्धिमान् स्वरोचि विषयों में आसक्त होता हुआ भी धर्मपूर्वक सब क्रियाओं को करता रहा ॥ ४ ॥ इसके बाद स्वरोचि के तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम कि विजय, मेरुनन्द और प्रभाव हुए ॥ ५ ॥ इन्दीवर की पुत्री मनोरमा से विजय, विभावरी से मेरुनन्द और कलावती से प्रभाव उत्पन्न हुए ॥६ ॥ सब भोगों को उत्पन्न करने वाली जो पद्मिनी नाम विद्या थी उसके बल से स्वरोचि ने तीन नगर बसाये ॥७॥ उस पर्वत के पूर्व दिशा की ओर उस ने कामरूप विजय नाम नगर बसाया जिसे पहिले पुत्र विजय को दे दिया ॥८॥ उत्तर दिशा की ओर बड़े-बड़े भुवनों से युक्त नन्दवती नाम नगरी स्थापित की जिसको कि उसने मेरुनन्द को दिया ॥९॥ दक्षिण की ओर एक नगर जिसका नाम कि ताल था बसाकर कलावती के पुत्र प्रभाव को दिया १०॥ हे क्रौष्टुकिजी ! अपने पुत्रों को इस प्रकार अलग अलग राज्य देकर वह पुरुष श्रेष्ठ उन स्त्रियों के साथ पूर्ववत् रमण करता रहा ॥ ११ ॥ एक बार धनुष हाथ में लेकर बन में विचरते हुए उन्होंने एक शूकर का पीछा किया और जब वह बहुत दूर पर दिखाई दिया तो धनुष को खैंचा ॥ १२ ॥ उस समय एक हरिणी वहाँ आकर यह बोली कि आप प्रसन्न होकर यह बाण मुझ पर छोड़ दीजिये, वह बार बार ऐसा कहने लगी ॥१३॥ इस शूकर के मारनेसे क्या लाभहै, मुझको शीघ्र मारिये। आप का बाण लगनेसे मैं अपने दुखोंसे मुक्त होजाऊँगी॥

स्वरोचि बोले—

हम तेरे शरीर में कोई रोग भी नहीं देखते हैं फिर तू क्यों अपना प्राण-घात करना चाहती है? ॥

मृगी बोली—

जिस पुरुष को मैं चाहती हूँ वह अन्य स्त्री पर आसक्त है। फिर उसके बिना मेरी औषधि मृत्यु ही है दूसरी नहीं ॥१६॥

स्वरोचि बोले—

वह कौन पुरुष है जिसमें कि तेरा अनुराग है और जो तुझे नहीं चाहताहै तथा जिसके न मिलने के कारण तू प्राण-त्याग करना चाहती है ॥ १७ ॥

मृग्युवाच
त्वामेवेच्छामि भद्रं ते त्वया मेऽपहृतं मनः।
वृणोम्यहमतो मृत्युं मयि बाणो निपात्यताम् ॥१८॥
स्वरोचिरुवाच
त्वं मृगी चञ्चलापाङ्गी नररूपधरावयम्।
कथं त्वया समं योगो मद्विधस्य भविष्यति ॥१९॥
मृग्युवाच
यदि सापेक्षितं चित्तं मयि ते मां परिष्वज।
यदि वा साधु चित्तं ते करिष्यामि यथेप्सितम्।
एतावताहं भवता भविष्याम्यतिमानिता ॥२०॥
मार्कण्डेय उवाच
आलिलिङ्ग ततस्तां स स्वरोचिर्हरिणाङ्गनाम्।
तेन चालिङ्गिता सद्यः साभूद्दिव्यवपुर्धरा ॥२१॥
ततः स विस्मयाविष्टः का त्वमित्यभ्यभाषत।
सा चास्मै कथयामास प्रेमलज्जाजड़ाक्षरम् ॥२२॥
अहमभ्यर्थिता देवैः काननस्यास्य देवता।
उत्पादनीयो हि मनुस्त्वया मयि महामते ॥२३॥
प्रीतिमत्यां मयि सुतं भूर्लोकपरिपालकम्।
तमुत्पादय देवानां त्वामहं वचनाद्वदे ॥२४॥
मार्कण्डेय उवाच
ततः स तस्यां तनयं सर्व्वलक्षणलक्षितम्।
तेजस्विनमिवात्मानं जनयामास तत्क्षणात् ॥२५॥
जातमात्रस्य तस्याथ देववाद्या निसस्वनुः।
जगुर्गन्धर्व्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२६॥
सिषिचुः शीकरैर्नागा ऋषयश्च तपोधनाः।
देवाश्च पुष्पवर्षञ्च मुमुचुश्च समन्ततः ॥२७॥
तस्य तेजः समालोक्य नाम चक्रे पिता स्वयम्।
द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः॥२८॥
स बालो द्युतिमान् नाम महाबलपराक्रमः।
स्वरोचिषःसुतोयस्मात् तस्मात् स्वारोचिषोऽभवत् २९
स चापि विचरन् रम्ये कदाचिद्गिरिनिर्झरे।
स्वरोचिर्ददृशे हंसं निजपत्नीसमन्वितम् ॥३०॥
उवाच स तदा हंसीं साभिलाषां पुनः पुनः।
उपसंह्रियतामात्मा चिरं ते क्रीड़ितं मया ॥३१॥

मृगी बोली—
हे भद्र! मैं तुमको ही चाहती हूँ और तुमही ने मेरे मनको हरण कियाहै। अतः अब मैं मृत्यु ही चाहती हूँ, आप बाण मारिये ॥१८॥
स्वरोचि बोले—
तू तो चञ्चला मृगी है और मैं मनुष्य रूपधारी हूँ, मेरा तेरे साथ किस प्रकार योग होगा? ॥१९॥
मृगी बोली—
यदि तुम्हारा अनुराग मुझ में है तो मुझ से आलिङ्गन करो। यदि आप मुझसे इच्छित भोग करेंगे तो जो कुछ आप चाहेंगे वह मैं होजाऊंगी॥
मार्कण्डेयजी बोले—
इसके अनन्तर स्वरोचि ने उस हरिणी को आलिङ्गन किया। उसके आलिङ्गन करते ही वह हरिणी शीघ्रही दिव्य शरीर वाली स्त्री होगई॥२१॥ उस समय विस्मयान्वित होकर स्वरोचि उससे बोले तुम कौन हो? उसने प्रेम से लज्जित होकर कहा ॥२२॥ मैं इस वनकी देवी हूँ, मुझसे देवताओं ने प्रार्थना की है अतः मैं आपसे कहती हूँ कि हे महामते! मुझसे मनु को पैदा कीजिये ॥२३॥ देवताओं के वचन से मैं आपसे कहती हूँ कि मुझ प्रीतिमती में भूलोक का पालन करने वाला पुत्र उत्पन्न कीजिये ॥२४॥
मार्कण्डेयजी बोले—
इसके बाद स्वरोचि ने सब लक्षणों से युक्त और अपने समान तेजस्वी एक पुत्र उस हरिणी से पैदा किया ॥ २५ ॥ उस पुत्र के पैदा होने के समय देवता लोग बाजे बजानेलगे, गन्धर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ २६ ॥ तथा नागलोग और तपोधन ऋषिगण उस बालक के ऊपर जलके छींटे मारने लगे और देवता लोग पुष्पों की वर्षा करने लगे ॥२७॥ पिता ने उसका तेज देखकर स्वयं उस का नाम द्युतिमान् रक्खा कारण कि वह अपने तेज से सब दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था ॥ वह बालक द्युतिमान् बड़ा बली और पराक्रमी हुआ और स्वरोचि का पुत्र होनेके कारण स्वारोचिष कहलाया ॥ २९ ॥ एक बार स्वरोचि ने उस रमणीक पर्वत पर विचरते हुए एक हंस और हंसिनी को देखा ॥३०॥ हंसिनीको कामवासनायुक्त देखकर हंस ने कहा कि अब मुझको छोड़ दो, मैं ने तुम्हारे साथ बहुत काल तक क्रीड़ा की ॥ ३१ ॥

किं सर्व्वकालं भोगैस्ते आसन्नं चरमं वयः ।
परित्यागस्य कालो मे तव चापि जलेचरि ॥३२॥

सदैव भोग करने से ही क्या लाभ है ? अवस्थाभी चरम-सीमा को पहुँच गई है । हे जलचरि ! अब मेरे और तेरे वियोग का समय है ॥ ३२॥

हंस्युवाच

अकालः को हि भोगानांसर्व्वभोगात्मकं जगत् ।
यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थं ब्राह्मणैः संयतात्मभिः ॥३३॥
दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान् वाञ्छमाना विवेकिनः ।
दानानि च प्रयच्छन्ति पूर्णधर्म्मांश्च कुर्व्वते ॥३४॥
स त्वं नेच्छसि किं भोगान् भोगश्रेष्ठाफलं नृणाम् ।
विवेकिनां तिरश्चयाश्च किं पुनः संयतात्मनाम् ॥३५॥

हंसिनी बोली—

भोग के लिये कौनसा समय नहीं है ? यह समस्त संसार भोगात्मक है । ब्राह्मण लोग भी संयतात्मा होकर भोग के लिये ही यज्ञ करते हैं ॥ ज्ञानी लोग दृष्ट अदृष्ट भोगों की इच्छा करते हुए दान देते हैं तथा धार्मिक क्रियायें करते हैं ॥ ३४ ॥ जब बड़े-बड़े ज्ञानी और संयतात्मा लोगों के कर्म का फल भोग ही है तो तुम तिर्यग योनि में होकर भी भोग की इच्छा क्यों नहीं करते ? ॥ ३५ ॥

हंस उवाच

भोगेष्वसक्तचित्तानां परमात्मान्विता मतिः ।
भविष्यति कदा सङ्गमुपेतानाञ्च बन्धुषु ॥३६॥
पुत्र-मित्र-कलत्रेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ।
सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥३७॥
किं न पश्यसि वा भद्रे जातसङ्गं स्वरोचिषम् ।
आबाल्यात् कमसंसक्तं मग्नं स्नेहाम्बुकर्दमे ॥३८॥
यौवनेऽतीव भार्य्यासु साम्प्रतं पुत्र-नप्तृषु ।
स्वरोचिषो मनो मग्नमुद्धारं प्राप्यते कुतः ॥३९॥
नाहं स्वरोचिषस्तुल्यः स्त्रीबाध्यो वा जलेचरि ।
विवेकवांश्च भोगानां निवृत्तोऽस्मि च साम्प्रतम् ॥४०॥

हंस बोला—

भोगों और भाई-बन्धुओंमें आसक्त चित्तवालों की परमात्मामें बुद्धि किस तरह स्थिर होगी?॥३६॥ पुत्र, मित्र और स्त्री आदि में आसक्त मनुष्य इस प्रकार दुःख पाते हैं जिस प्रकार वृद्ध हाथी तालाब की कीचड़ में फंस जाता है ॥ ३७ ॥ हे भद्रे ! तुम स्वरोचि को क्यों नहीं देखतीं जो कि बाल्यावस्था से ही कामासक्त होकर स्नेहरूपी जल की कीचड़ में मग्न होरहे हैं ॥ ३८ ॥ स्वरोचि अपनी युवावस्था में स्त्रियों में आसक्त थे और अब अपने पुत्रों में आसक्तहैं । इनका मन इस कीचड़से कैसे निकलेगा ॥ ३९ ॥ हे हंसिनी ! मैं स्वरोचिकी तरह स्त्रीके वश में नहीं हूँ । मुझे विवेक है इसलिये मैं अब भोगों से निवृत्त होता हूँ ॥ ४०॥

मार्कण्डेय उवाच

स्वरोचिरेतदाकर्ण्य जातोद्वेगः खगेरितम् ।
आदाय भार्य्यास्तपसे ययावन्यत् तपोवनम् ॥४१॥
तत्र तप्त्वा तपो घोरं सह ताभिरुदारधीः ।
जगाम लोकानमलान् निवृत्ताखिलकल्मषः ॥४२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हंस के मुख से यह वचन सुनकर स्वरोचिको उद्विग्नता हुई और वे स्त्रियों सहित तप करने के लिये दूसरे तपोवन को चले गये ॥ ४१ ॥ वहाँ वे स्त्रियों सहित घोर तप करके अपने संपूर्ण पापों को निवृत्त करतेहुए निर्मल लोकों में पहुँचगये॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वारोचिष मन्वन्तर (५) नाम ६६वाँ अध्याय समाप्त ।

सड़सठवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः स्वारोचिषं नाम्ना द्युतिमन्तं प्रजापतिम् ।
मनुं चकार भगवांस्तस्य मन्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥
तत्रान्तरे तु ये देवा मुनयस्तत्सुताश्च ये ।
क्रौष्टुके ये तान् गदतस्त्वं निशामय ॥२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब द्युतिमान् नाम स्वारोचिष को भगवान् प्रजापति ने मनु की पदवी दी, अब उसके मन्वंतर को सुनो ॥ १ ॥ हे क्रौष्टुकि ! उस मन्वन्तर में जो देवता, मुनि और राजा लोग मनु के पुत्र हुए उन का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥२॥ स्वारोचिष मन्वंतर

देवाः पारावतास्तत्र तथैव तुषिता द्विज ।
स्वारोचिषेऽन्तरे चेन्द्रो विपश्चिदिति विश्रुतः ॥ ३ ॥
ऊर्ज्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तोलिऋषभस्तथा ।
निश्चरश्चार्व्ववीराश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ४ ॥
चैत्र-किम्पुरुषाद्याश्च सुतास्तस्य महात्मनः ।
सप्तासन् सुमहावीर्य्याः पृथिवीपरिपालकाः ॥ ५ ॥
तस्य मन्वन्तरं यावत् तावत् तद्वंशविस्तरे ।
भुक्तेयमवनिः सर्व्वा द्वितीयं वै तदन्तरम् ॥ ६ ॥
स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य च ।
निशम्य मुच्यते पापैः श्रद्दधानो हि मानवः ॥ ७ ॥

में पारावत और तुषित नाम देवता हुए और विपश्चिति नाम इन्द्र हुए ॥ ३ ॥ ऊर्ज्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्व्ववीर ये सप्तर्षि उस मन्वन्तर में हुए ॥ ४ ॥ उस महात्मा स्वारोचिषके चैत्र, किम्पुरुष आदि सात पुत्र हुए जो बड़े बलवान् और पृथ्वी के पालने वाले थे ॥ ५ ॥ जब तक उस मन्वन्तर की अवधि रही तब तक उसी वंश के लोगों ने इस पृथ्वी पर राज्य किया अन्य किसी वंश ने नहीं ॥ ६ ॥ जो मनुष्य स्वारोचिष के जन्म और चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनताहै वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें स्वारोचिष मन्वन्तर नाम (६) ६७वाँ अ० समाप्त ।

अड़सठवां अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् कथितं सर्व्वं विस्तरेण त्वया मम ।
स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य तु ॥ १ ॥
या तु सा पद्मिनी नाम विद्या भोगोपपादिका ।
तत्संश्रया ये निधयस्तान् मे विस्तरतो वद ॥ २ ॥
अष्टौ ये निधयस्तेषां स्वरूपं द्रव्यसंस्थितिः ।
भवताभिहितं सम्यक् श्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता ।
तदाधाराश्च निधयस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४ ॥
यत्र पद्म-महापद्मौ तथा मकर-कच्छपौ ।
मुकुन्दो नन्दकश्चैव नीलः शङ्खोऽष्टमो निधिः ॥ ५ ॥
सत्यामृद्धौ भवन्त्येते सिद्धिस्तेषां हि जायते ।
एते ह्यष्टौ समाख्याता निधयस्तव क्रौष्टुके ॥ ६ ॥
देवतानां प्रसादेन साधुसंसेवनेन च ।
एभिरालोकितं वित्तं मानुषस्य सदा मुने ॥ ७ ॥
यादृक् स्वरूपं भवति तन्मे निगदतः शृणु ।
पद्मो नाम निधिः पूर्व्वं मयस्य भवति द्विज ॥ ८ ॥
सुतस्य तत्सुतानाञ्च तत्पौत्राणाञ्च नित्यशः ।
दाक्षिण्यसारं पुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ॥ ९ ॥

क्रौष्टुकिजी बोले—

हे भगवन् ! आपने मुझसे स्वरोचि और उसके पुत्र स्वारोचिष के जन्म का वर्णन विस्तार पूर्वक कहा ॥ १ ॥ भोगों को उत्पन्न करनेवाली जो पद्मिनी नामक विद्याहै उसके आश्रित जो निधियां हैं उनका मुझसे विस्तार पूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥ हे गुरुदेव ! आठों निधियों के स्वरूप और द्रव्यों करके उनकी जो स्थिति है उसको मैं अच्छी तरह आपसे सुनना चाहता हूँ ॥३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पद्मिनी नामक विद्या की देवता लक्ष्मीजी हैं और वे ही उन निधियों की आधारभूत हैं, सुनिये ॥४॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील और शंख ये आठों निधियां लक्ष्मीजी के पास रहती हैं ॥ ५॥ सतोगुणयुक्त जिसको ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं उन्हीं को ये निधियाँ भी उत्पन्न होजाती ६ । हे क्रौष्टुकि ! ये ही आठों निधियाँ हैं जो तुमको सुनाई ॥ ६ ॥ हे मुनि ! जो लोग देवताओं को प्रसन्न करते हैं अथवा साधु-सेवा करते हैं उनके धन को ये निधियाँ देखती हैं ॥ ७ ॥ हे द्विज ! इन निधियों के स्वरूप मुझसे सुनो । पद्मिनी नामक निधि पहिले मय नामक राक्षस के घरमें रहती थी ॥ ८ ॥ वह उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों से बहुत प्रसन्न रहकर उनके घरमें सदैव रहती थी ॥ ९ ॥

त्त्वाधारो महाभोगो यतोऽसौ सात्त्विको निधिः॥१०॥
सुवर्ण-रूप्य-ताम्रादिधातूनाञ्च परिग्रहम्।
करोत्यतितरां सोऽथ तेषांच क्रयविक्रयम् ॥११॥
करोति च तथा यज्ञान् दक्षिणाञ्च प्रयच्छति।
सभां देवनिकेतांश्च स कारयति तन्मनाः ॥१२॥
सत्त्वाधारो निधिश्चान्यो महापद्म इति श्रुतः।
सत्त्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः ॥१३॥
करोति पद्मरागादि-रत्नानाञ्च परिग्रहम्।
मौक्तिकानां प्रवालानां तेषांच क्रय-विक्रयान् ॥१४॥
ददाति योगशीलेभ्यस्तेषामावसथांस्तथा।
स कारयति तच्छीलः स्वयमेव च जायते ॥१५॥
तत्प्रसूतास्तथाशीलाः पुत्रपौत्रक्रमेण च।
पूर्वार्द्धमात्रः सप्तासौ पुरुषांश्च न मुञ्चति ॥१६॥
तामसो मकरो नाम निधिस्तेनावलोकितः।
पुरुषोऽथ तमःप्रायः सुशीलोऽपि हि जायते ॥१७॥
बाण-खड्गर्ष्टि-धनुषां चर्म्मणाञ्च परिग्रहम्।
दसनानांच कुरुते याति मैत्रीञ्च राजभिः ॥१८॥
ददाति शौर्य्यवृत्तीनां भूभुजां ये च तत्प्रियाः।
क्रयविक्रये च शस्त्राणां नान्यत्र प्रीतिमेति च ॥१९॥
एकस्यैव भवत्येष न च तस्यानुजानुगः।
द्रव्यार्थं दस्युतो नाशं संग्रामे चापि स व्रजेत् ॥२०॥
कच्छपश्च निधिर्योऽसौ नरस्तेनाभिवीक्षितः।
तमःप्रधानो भवति यतोऽसौ तामसो निधिः ॥२१॥
व्यवहारानशेषांस्तु पुण्यजातैः करोति च।
कर्म्मस्थानखिलांश्चैव न विश्वसिति कस्यचित् ॥२२॥
समस्तानि यथाङ्गानि संहरत्येव कच्छपः।
तथा विष्टभ्य चित्तानि तिष्ठत्यायतमानसः ॥२३॥
न ददाति न वा भुङ्क्ते तद्विनाशभयाकुलः।
निधानमुर्व्वयां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः ॥२४॥
रजोगुणमयश्चान्यो मुकुन्दो नाम यो निधिः।
नरोऽवलोकितस्तेन तद्गुणो भवति द्विज ॥२५॥
...वेणु-मृदङ्गानामातोद्यस्य परिग्रहम्।

इस निधि का आधार सतोगुण है तथा यह महान् भोगों को उत्पन्न करनेवाली है, अतः यह सात्विक निधि कहलाती है ॥ १० ॥ यह सोना, चाँदी और ताँबा आदि धातुओं को देने वाली है तथा जिस मनुष्य पर इसका प्रभाव है वह इन धातुओं की बहुत ख़रीद या बिक्री करता है ॥११॥ वह मनुष्य यज्ञ करता है तथा दक्षिणा देता है। उससे प्रभावित होकर वह देवसभा व मन्दिर बनवाताहै ॥१२॥ दूसरी निधि सतोगुण प्रधान महापद्म है। उससे प्रभावित मनुष्य सतोगुण प्रधान होजाता है ॥१३॥ यह निधि पद्मराग आदि रत्नों को प्राप्त कराती है तथा मोती, मूंगा आदि की ख़रीद और बिक्री भी कराती है ॥ १४ ॥ उन योगशील पुरुषों को यह हव्यों का स्थान बनाती है। यह निधि मनुष्य के शील को बनाती है ॥१५॥ तथा उसके पुत्र और पौत्रों में भी वैसाही शील उत्पन्न करती है तथा उस पुरुष को सात पुश्त तक नहीं छोड़ती ॥१६॥ तीसरी मकर नामक तामसी निधिहै, उससे प्रभावित मनुष्य सुशील होतेहुए भी तमोगुणी होजाता है ॥१७॥ वह ढाल, तलवार तथा धनुषबाण धारण करता है और उसकी रुचि राजाओं के साथ मैत्री करने में रहती है ॥१८॥ उस मनुष्य की वृत्ति शूर-वीरों की सी होती है और वह ऐसे ही लोगों को प्रिय होता है। इसकी प्रीति शस्त्रों के क्रय-विक्रय में ही होती है अन्यत्र नहीं ॥ १९ ॥ यह निधि एक ही मनुष्य तक सीमित रहती है और वह मनुष्य धन के लिये किसी चोर से अथवा संग्राममें मारा जाता है ॥ २० ॥ चौथी कच्छप निधि है। इसका जिस मनुष्य पर प्रभाव होता है वह तमोगुणी हो जाता है क्योंकि यह तामसी निधि है ॥२१॥ परंतु इसका व्यवहार पुण्यशील लोगों से होता है और यह सम्पूर्ण कर्मों के करने वाले मनुष्यों को प्रभावित करती है। इससे प्रभावित पुरुष को किसी का विश्वास नहीं होता ॥२२॥ जिस प्रकार कच्छप अपने अङ्गों को समेट लेताहै उसी तरह वह पुरुष सब वस्तुओं से अपना मन हटाकर धन में लगाता है ॥ २३ ॥ वह मनुष्य न तो देता है और न स्वयं खाता है और धन के विनाश होजाने के भय से व्याकुल रहता है। यह निधि उससे पृथ्वीमें धन गढ़वाती है जो कि एक पुश्त तक ही चलता है ॥ पाँचवीं निधि मुकुन्द नामक रजोगुणमयी है। हे द्विज ! यह जिस मनुष्य को देखती है वह गुणी होता है ॥२५॥ वह मनुष्य वीणा, वेणु और मृदङ्ग

करोति गायतां वित्तं नृत्यताञ्च प्रयच्छति ॥२६॥
वन्दिनामथ सूतानां विटानां लास्यपाठिनाम् ।
ददात्यहर्निशं भोगान् भुङ्क्ते तैश्च समं द्विज॥२७॥
कुलटास्वरतिश्चास्य भवत्यन्यैश्च तद्विधैः ।
प्रयाति सङ्गमेकंच यं निधिर्भजते नरम् ॥२८॥
रजस्तमोमयश्चान्यो नन्दो नाम महानिधिः ।
उपैति स्तम्भमधिकं नरस्तेनावलोकितः ॥२६॥
समस्तधातुरत्नानां पुण्यधान्यादिकस्य च ।
परिग्रहं करोत्येप तथैव क्रयविक्रयम् ॥३०॥
आधारः स्वजनानांच आगताभ्यागतस्य च ।
सहते नापमानोक्तिं स्वल्पामपि महामुने ॥३१॥
स्तूयमानश्च महतीं प्रीतीं वध्नाति यच्छति ।
यं यमिच्छति वै कामं मृदुत्वमुपयाति च ॥३२॥
बह्यो भार्य्या भवन्त्यस्य सूतिमत्योऽतिशोभनाः।
रतये सप्त च नरान् निधिर्नन्दोऽनुवर्त्तते ॥३३॥
प्रवर्द्धमानोऽथ नरमष्टभागेन सत्तम ।
दीर्घायुष्टञ्च सर्व्वेषां पुरुषाणां प्रयच्छति ॥३४॥
बन्धूनामेव भरणं ये च दूरादुपागताः ।
तेषां करोति वै नन्दः परलोके न चादृतः ॥३५॥
भवत्यस्य न च स्नेहः सहवासिपु जायते ।
पूर्व्वमित्रेपु शैथिल्यं प्रीतिमन्यैः करोति च ॥३६॥
तथैव सत्त्व-रजसी यो विभर्त्ति महानिधिः ।
स नीलसंज्ञस्तत्सङ्गी नरस्तच्छीलवान् भवेत् ॥३७॥
वस्त्र-कार्पास-धान्यादि-फल पुष्पपरिग्रहम् ।
मुक्ता-विद्रुम-शंखानां शुक्त्यादीनां तथा मुने॥३८॥
काष्ठादीनां करोत्येप यच्चान्यज्जलसम्भवम् ।
क्रयविक्रयमन्येषां नान्यत्र रमते मनः ॥३६॥
तड़ागान् पुष्करिण्योऽथ तथारामान् करोति च ।
बन्धञ्च सरितां वृक्षांस्तथारोपयते नरः ॥४०॥
अनुलेपनपुष्पादि-भोगं भुक्त्वाभिजायते ।
त्रिपौरुषश्चापि निधिर्नीलो नामैप जायते ॥४१॥
रजस्तमोमयश्चान्यः शंखसंज्ञो हि यो निधिः ।
तेनापि नीयते विप्र तद्गुणित्वं निधीश्वरः ॥४२॥
एकस्यैव भवत्येप नरं नान्यमुपैति च ।

आदि का संग्रह करताहै तथा गायकों और नाचने वालों को धन देताहै ॥२६॥ हे द्विज ! वह वंदिजनों भाटों, चारणों और नटों आदि को सदा भोजन दिया करता है तथा आपभी उनके साथ भोजन करता है ॥ २७॥ इसकी कुलटा स्त्रियों में तथा वैसे ही अन्य वेश्यागामी पुरुषों से प्रीति रहती है, यह निधि मनुष्य की एक पुश्त तक चलती है ॥ २८ ॥ छठवीं महानिधि नन्द नामक है जो रजोगुण और तमोगुण से युक्त है। यह जिस मनुष्य पर दृष्टि करती है वह ॥ २६ ॥ समस्त धातुओं, रत्नों और धनों आदि का संग्रह करता है तथा उनका क्रय और विक्रय करता है ॥ ३० ॥ वह अपने स्वजनों, अतिथियों और अभ्यागतोंका पालन करताहै तथा वह थोड़ी भी अपमान की बात नहीं कहता है॥ वह विनम्र होकर सबके साथ प्रीति रखताहै और जिस-जिस बात की वह कामना करता है वह पूरी होजाती है ॥३२ ॥ कमल के समान इस सुन्दर पुरुष को बहुत सी स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। यह नन्द नामक निधि सात पुश्तों तक चलती है ॥ ३३ ॥ हे क्रौष्टुकि ! यह आठों अङ्गों से वृद्धि को प्राप्त हुई सब मनुष्यों को दीर्घायु कर देती है ॥ ३४ ॥ वह मनुष्य दूर से आये हुए भाई-बन्धुओं का भरण करता है। नन्द से प्रभावित मनुष्य परलोक को नहीं मानता ॥ ३५ ॥ उसकी प्रीति पुरवासियों से नहीं होती है। पुराने मित्रों से उसकी प्रीति में शिथिलता आती है तथा वह अन्य नये मित्रों से प्रीति करता है ॥३६॥ सातवीं निधि सतोगुण और रजोगुण से युक्त नील नामक है जिसका सङ्गी पुरुष सत्सङ्गी होता है ॥ ३७ ॥ वह वस्त्र, कपास, धान्य, फल, पुष्प आदि का संग्रह करता है तथा मोती, मूंगा, शंख, सीप, काष्ठ तथा अन्य वस्तुयें जो जल से पैदा होती हैं उनका भी संग्रह और क्रय-विक्रय करता है, उसका मन अन्यत्र नहीं लगता ॥ ३८-३६॥ वह मनुष्य तालाब, बावड़ी तथा बाग लगवाता है। वह नदियों के बांध बनवाता तथा वृक्ष लगाता है ॥४०॥ वह मनुष्य चन्दन, पुष्प और भोग आदि को लेकर अति प्रसन्न होता है। यह नील नामक निधि तीन पुश्त तक चलती है ॥ ४१ ॥ आठवीं शंख नामक निधि रजोगुण और तमोगुण से युक्त है। हे विप्र ! जिस पर इसकी दृष्टि होती है वह गुणी होजाता है ॥ ४२ ॥ यह एक पुरुप के आश्रित रहकर दूसरे के पास नहीं जाती है। हे क्रौष्टुकिजी ! जिस मनुष्यके पास शंख निधि

...स्य शंखो निधिस्तस्य स्वरूपं क्रौष्टुके शृणु ॥४३॥
...क एवात्मना सृष्टमन्नं भुङ्क्ते तथाम्बरम् ।
...दन्नभुक् परिजनो न च शोभनवस्त्रधृक् ॥४४॥
... ददाति सुहृद्भार्य्या-भ्रातृ-पुत्र-स्नुषादिषु ।
...स्वपोषणपरः शंखी नरो भवति सर्व्वदा ॥४५॥
...त्येते निधयः ख्याता नराणामर्थदेवताः ।
...मिश्रावलोकनान्मिश्राः स्वभावफलदायिनः ॥४६॥
...यथा ख्यातस्वभावस्तु भवत्येव विलोकनात् ।
...सर्व्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेषा द्विज पद्मिनी ॥४७॥

हो उसका स्वरूप सुनो ॥४३॥ वह मनुष्य अपना पैदा किया हुआ अन्न खाता है तथा अपनेही उपार्जित वस्त्र पहिनता है। वह कभी दूसरे का अन्न नहीं खाता और न अच्छे कपड़े पहिनता है ॥४४॥ वह मित्र, पत्नी, भाई, पुत्र, बहिन आदि को अन्न वस्त्र नहीं देता । शंख निधि वाला पुरुष सदा अपने ही पोषणमें तत्पर रहता है ॥४५॥ ये निधियां मनुष्यों की अर्थ देवता कहलाती हैं। यदि एक से अधिक निधि की दृष्टि मनुष्य पर पड़े तो एक से अधिक निधि का ही फल मनुष्य को होताहै ॥४६॥ जितनी निधियों की दृष्टि पड़ती है उतनी निधियों का ही फल होता है। जहां सब निधियों का समारोह हो वहाँ पद्मिनी नाम विद्या भी होती है ॥४७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में निधि निर्णय नाम ६८वां अ० समाप्त ।

उनत्तरवां अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

विस्तरात् कथितं ब्रह्मन् मम स्वारोचिषं त्वया ।
मन्वन्तरं तथैवाष्टौ ये पृष्टा निधयो मया ॥ १ ॥
स्वायम्भुवं पूर्व्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम् ।
मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयोत्तमसंज्ञितम् ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमो नाम नामतः ।
सुरुच्यास्तनयः ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ३ ॥
धर्म्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः ।
अतीत्य सर्व्वभूतानि बभौ भानुपराक्रमः ॥ ४ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च पुरे पुत्रे च धर्म्मवित् ।
दुष्टे च यमवत् साधौ सोमवच्च महामुने ॥ ५ ॥
बाभ्रवीं बहुलां नाम उपयेमे स धर्म्मवित् ।
उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्र इवोत्तमः ॥ ६ ॥
ख्यातामतीव तस्यासीद्द्विजवर्य्य मनः सदा ।
स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम् ॥ ७ ॥
अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैति न हि तन्मनः ।
स्वप्ने चैव तदालम्बि मनोऽभूत् तस्य भूभृतः ॥ ८ ॥
स च तस्याः सुचार्व्वङ्ग्या दर्शनादेव पार्थिवः ।
ददाति स्पर्शनं गात्रे गात्रस्पर्शे च तन्मयः ॥ ६ ॥

क्रौष्टुकिजी बोले—

हे ब्रह्मन् ! आपने मुझसे स्वारोचिष मन्वन्तर का हाल विस्तार पूर्वक कहा और जो मैंने आठों निधियां पूँछीं उनको भी आपने बताया ॥१॥ आपने पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर का वर्णन भी मुझसे किया, अब उत्तम नाम तीसरे मन्वन्तर को मुझसे कहिये ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उत्तानपाद राजा के सुरुचि नाम स्त्रीसे महान् बली और पराक्रमशाली उत्तम नाम का पुत्र हुआ ॥ वह राजा धर्मात्मा, महात्मा और पराक्रमी था तथा वह सब प्राणियों में सूर्य के समान तेजस्वी था॥४॥ हे महामति क्रौष्टुकिजी ! वह धर्मज्ञ शत्रु और मित्र तथा प्रजा और पुत्र को समान समझता था। वह दुष्टों के लिये यम और सज्जनों के लिये चन्द्रमा के समान था ॥ ५ ॥ उत्तानपाद के पुत्र धर्मज्ञ उत्तम ने बहुला नाम सुन्दरी से उसी तरह विवाह किया जिस प्रकार कि इन्द्र ने शची से किया था ॥ ६ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस प्रकार चन्द्रमा रोहिणीमें प्रीति रखते हैं उसी प्रकार उत्तमने बहुलामें अपना चित्त लगाया ॥ ७ ॥ उस राजा की आसक्ति और किसी काम में न होती थी तथा स्वप्न में भी वह दत्त-चित्त होकर उसी को देखता था ॥ ८ ॥ वह राजा उस सुन्दरी को देखते ही शरीर से शरीर का आलिङ्गन करके तन्मय होजाता था ॥६॥ बहुला का

श्रोत्रोद्वेगकरं वाक्यं प्रियमप्यवनीपतेः।
तस्यापि भूरि सम्मानं मेने परिभवं ततः ॥१०॥
अवमेने स्रजं दत्तां शुभान्याभरणानि च।
उत्तस्थावङ्गपीडेव पिबतोऽस्य वरासवम् ॥११॥
भुञ्जता च नरेन्द्रेण क्षणमात्रं करे धृता।
बुभुजे स्वल्पकं भक्ष्यं द्विज नातिमुदावती ॥१२॥
एवं तस्यानुकूलस्य नानुकूला महात्मनः।
प्रभूततरमत्यर्थं चक्रे रागं महीपतिः ॥१३॥
अथ पानगतो भूपः कदाचित् तां मनस्विनीम्।
सुरापूतं पानपात्रं ग्राहयामास सादरः ॥१४॥
पश्यतां भूमिपालानां वारमुख्यैः समन्वितः।
प्रगीयमाणमधुरगेयगायनतत्परैः ॥१५॥
सा तु नेच्छति तत्पात्रमादातुं तत्पराङ्मुखी।
समक्षमवनीशानां ततः क्रुद्धः स पार्थिवः ॥१६॥
उवाच द्वाःस्थमाहूय निश्वसन्नुरगो यथा।
निराकृतस्तया देव्या प्रियया पतिरप्रियः ॥१७॥
द्वाःस्थैनां दुष्टहृदयामादाय विजने वने।
परित्यजाशु नैतत् ते विचार्य्यं वचनं मम ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो नृपस्य वचनमविचार्य्यमवेक्ष्य सः।
द्वाःस्थस्तत्याज तां सुभ्रूमारोप्य स्यन्दने वने॥१९॥
सा च तं विपिने त्यागं नीता तेन महीभृता।
अदृश्यमाना तं मेने परं कृतमनुग्रहम् ॥२०॥
सोऽपि तत्रानुरागार्त्ति-र्दह्यमानात्ममानसः।
औत्तानपादिर्भूपालो नान्यां भार्य्यामविन्दत २१॥
सस्मार तां सुचार्व्वङ्गीमहर्निशमनिव्रतः।
चकार च निजं राज्यं प्रजा धर्म्मेण पालयन् ॥२२॥
प्रजाः पालयतस्तस्य पितुः पुत्रानिवौरसान्।
आगत्य ब्राह्मणः कश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ॥२३॥

ब्राह्मण उवाच

महाराज भृशार्त्तोऽस्मि श्रूयतां गदतो मम।
नृणामार्त्तिपरित्राणमन्यतो न नराधिपात् ॥२४॥
मम भार्य्या प्रसुप्तस्य केनाप्यपहृता निशि।
गृहद्वारमनुद्घाट्य तां समानेतुमर्हसि ॥२५॥

शब्द सुनते ही राजा को बहुत उद्वेग होता था, परन्तु वह उसको सुनकर बहुत प्रसन्न होता था ॥ १० ॥ बहुला का अधरामृत पान करतेसमय उस को माला तथा आभूषण कष्टदायक मालुम होते थे अतः वह उनको उतार कर रख देता था ॥११॥ वह राजा खाते समय भी उसका हाथ पकड़ कर थोड़ा सा खालिया करता था, परन्तु वह स्त्री प्रसन्न न थी ॥१२॥ राजा का प्रेम बहुलामें अधिक था परन्तु ऐसे अनुकूल महात्मा से भी वह अनुकूल न थी॥ एक दफा सुरा पीते हुए राजा ने सुरासे भरा हुआ हुआ एक पात्र सम्मानपूर्वक उस सुन्दरी को दिया ॥१४॥ उस समय वहाँ राजाओं और मुख्यःमुख्य मनुष्योंका समारोह था तथा बहुतसे गायक मधुर स्वर से गीत गारहे थे ॥१५॥ उसने उस पात्र को न लिया और अपना मुँह फेर लिया। समस्त राजाओं के सामने अपमानित होनेके कारण राजा को बड़ा क्रोध आया ॥१६॥ क्रोध में सर्प की तरह फुसकार लेते हुए उसने द्वारपालों को बुलाकर कहा कि इस देवी ने मुझे अप्रिय समझ कर मेरा अपमान किया है ॥ १७ ॥ हे द्वारपालो! शीघ्र ही इस दुष्टा को निर्जन वनमें लेजाकर छोड़ आओ, यह मेरा वचनहै, तुम इसमें कुछ विचार न करो॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर राजाकी आज्ञा सुनकर वे द्वारपाल विना देखे और विचारे हुए उस सुन्दरी को रथमें बैठा कर लेगये और वनमें छोड़ आये ॥ १९ ॥ राजा से त्यक्त होकर और उस वनमें छूटकर उसने अपने को धन्य माना कि अब उस राजाको मैं दिखाई न दूँगी ॥२०॥ परन्तु राजा उत्तम उसके प्रेम में विह्वल रहने लगा और उसने अन्य स्त्रीकी इच्छा न की ॥२१॥ राजा दिन रात उस सुन्दरीके ध्यानमें रहता था। इसके साथही वह अपने राज्य में प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करता था ॥२२॥ जिस तरह पिता अपने पुत्र का पालन करता है उसी प्रकार उत्तम प्रजा का भरणपोषण करता था। एक दफा दुःखी हुए किसी ब्राह्मण ने राजा से आकर कहा ॥ २३ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे महाराज! मैं बहुत दुःखी हूँ, मेरी बात सुनिये, क्योंकि राजा के अतिरिक्त मनुष्योंके दुःख कौन दूर कर सकता है ॥ २४ ॥ रात्रि के समय किसी ने द्वार खोलकर मेरी सोती हुई स्त्री को हरण करलिया है, उसे आपही लाने को समर्थहैं॥

राजोवाच

न वेत्सि केनापहृता क्व वा नीता तु सा द्विज ।
यतामि विग्रहे कस्य कुतो वाप्यानयामि ताम् ॥२६॥

ब्राह्मण उवाच

तथैव स्थगिते द्वारि प्रसुप्तस्य महीपते ।
हृता हि भार्य्या किं केनेत्येतद्विज्ञायते भवान् ॥२७
त्वं रक्षिता नो नृपते षड्भागादानवेतनः ।
धर्म्मस्य तेन निश्चिन्ताः स्वपन्ति मनुजा निशि २८॥

राजोवाच

न ते दृष्टा मया भार्य्या यादृग्रूपा च देहतः ।
वयश्चैव समाख्याहि किंशीला ब्राह्मणी च ते ॥२६॥

ब्राह्मण उवाच

कठोरनेत्रा सात्युचा ह्रस्वबाहुः कृशानना ।
विरूपरूपा भूपाल न निन्दामि तथैव ताम् ॥३०॥
वाचि भूपातिपरुषा न सौम्या सा च शीलतः ।
इत्याख्याता मया भार्य्या साकारा दुर्निरीक्षणा३१॥
मनागतीतं भूपाल तस्याश्च प्रथमं वयः ।
तादृग्रूपा हि मे भार्य्या सत्यमेतन्मयोदितम् ॥३२॥

राजोवाच

अलं ते ब्राह्मण तया भार्य्यामन्यां ददामि ते ।
सुखाय भार्य्या कल्याणी दुःखहेतुर्हि तादृशी॥३३॥
कल्ये सुरूपता विप्र कारणं शीलमुत्तमम् ।
रूपशीलविहीना या त्याज्या सा तेन हेतुना ॥३४॥

ब्राह्मण उवाच

रक्ष्या भार्य्या महीपाल इति न श्रुतिरुत्तमा ।
भार्य्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ॥३५॥
आत्मा हि जायते तस्यां सा रक्ष्यातो नरेश्वर ।
प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥३६॥
तस्यामरक्ष्यमाणायां भविता वर्णसङ्करः ।
स पातयेन्महीपाल पूर्व्वान् स्वर्गादधः पितॄन् ॥३७॥
धर्म्महानिश्चानुदिनमभार्य्यस्य भवेन्मम ।
नित्यक्रियाणां विभ्रंशात् स चापि पतनाय मे॥३८॥

राजा उत्तम बोले—

हे ब्राह्मण! जब तुम ही नहीं जानते हो कि किसने तुम्हारी स्त्री को हरण किया और वह उसे कहाँ लेगया तो फिर मैं किसको पकड़ूं और उसे कहाँ से लाऊँ ? ॥ २६ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे राजन्! सोतेहुए किसीने द्वार खोलकर मेरी स्त्री को चुरा लिया है यह कोई नहीं जानता, आप ही इसको जान सक्ते हैं ॥२७॥ हे राजन्! अपनी आय का छठा भाग हम आपको अपनी रक्षा के लिये देते हैं और इसी धर्म से मनुष्य रात्रि में बेखटके सोते हैं ॥२८॥

राजा बोले—

मैंने तुम्हारी ब्राह्मणी को शरीर व रूप से नहीं देखा है, तुम उसकी अवस्था और शील आदि को बताओ ॥ २६ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे राजन्! उसके नेत्र कठोर हैं, वह बहुत ऊँची है तथा उसकी बाहु छोटी-छोटी हैं, उसका मुख कृश है और वह कुरूप है तो भी मैं उसकी निन्दा नहीं करता हूँ ॥ ३० ॥ हे राजन्! उसकी वाणी कठोर और स्वभाव दुष्ट है। मेरी स्त्री जिस का रूप देखने योग्य नहीं है इस प्रकार की है॥३१॥ हे पृथ्वीपते! उसकी पहिली अवस्था व्यतीत हो चुकी है। इस प्रकार की मेरी स्त्री है जिसको कि मैं सत्य कहता हूँ ॥३२॥

राजा बोले—

हे ब्राह्मण! वह स्त्री तुम्हारे दुःख का कारण थी, उसे रहने दो। मैं तुम्हारे सुख के निमित्त दूसरी भद्र स्त्री देताहूँ ॥३३॥ हे विप्र! पत्नी बनाने में रूप और शील मुख्य कारण है। रूप और शील रहित स्त्री त्याज्य है ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे राजन्! उत्तम श्रुति यही कहतीहै कि पत्नी की अवश्य रक्षा करनी चाहिये क्योंकि भार्यासे ही पुत्र की उत्पत्ति होती है ॥३५॥ हे राजन्! स्त्री की अवश्य रक्षा करनी चाहिये क्योंकि उससे आत्मा रूप पुत्र उत्पन्न होता है और पुत्र से अपनी रक्षा होती है ॥३६॥ हे पृथ्वीपति! उसकी रक्षा न करने से उसके वर्णसङ्कर पुत्र उत्पन्न होता है जो कि पितरों को स्वर्ग से भी गिरा देता है ॥ ३७ ॥ स्त्री के बिना दिन पर दिन मेरे धर्म की हानि होगी। तथा नित्य-क्रियाओं की हानि होने पर मेरा पतन

तस्याञ्च पृथिवीपाल भवित्री मम सन्ततिः।
तव षड्भागदात्री सा भवित्री धर्म्महेतुकी ॥३६॥
तदेतत् ते मयाख्याता पत्नी या मे हृता प्रभो।
तां समानय रक्षायां भवानधिकृतो यतः ॥४०॥

मार्कण्डेय उवाच

स तस्यैवं वचः श्रुत्वा विमृष्य च नरेश्वरः।
सर्व्वोपकरणैर्युक्तमारुरोह महारथम् ॥४१॥
इतश्चेतश्च तेनासौ परिबभ्राम मेदिनीम्।
ददर्श च महारण्ये तापसाश्रममुत्तमम् ॥४२॥
अवतीर्य्य च तत्रासौ प्रविश्य ददृशे मुनिम्।
कौश्यां वृष्यां समासीनं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥४३॥
स दृष्ट्वा नृपतिं प्राप्तं समुत्थाय त्वरान्वितः।
सम्मान्य स्वागतेनैव शिष्यमाहार्घमानय ॥४४॥
तमाह शिष्यः शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्य किं मुने।
तदाज्ञापय संचिन्त्य तवाज्ञां हि करोम्यहम् ॥४५॥
ततोऽवगतवृत्तान्तो भूपतेस्तस्य स द्विजः।
सम्भाषासनदानेन चक्रे सम्मानमात्मवान् ॥४६॥

ऋषिरुवाच

किं निमित्तमिहायातो भवान् किं ते चिकिर्षितम्।
उत्तानपादतनयं वेद्मि त्वामुत्तमं नृप ॥४७॥

राजोवाच

ब्राह्मणस्य गृहाद्भार्य्या केनाप्यपहृता मुने।
अविज्ञातस्वरूपेण तामन्वेष्टुमिहागतः ॥४८॥
पृच्छामि यत् ते तन्मे त्वं प्रणतस्यानुकम्पया।
अभ्यागतस्याथ गृहं भगवन् वक्तुमर्हसि ॥४६॥

ऋषिरुवाच

पृच्छ मामवनीपाल तत् प्रष्टव्यमशङ्कितः।
वक्तव्यञ्चेत् तव मया कथयिष्यामि तत्त्वतः ॥५०॥

राजोवाच

गृहागताय यो मह्यं प्रथमे दर्शने मुने।
त्वया समुद्यतो दातुं कथं सोऽर्घो निवर्त्तितः ॥५१॥

ऋषिरुवाच

त्वद्दर्शनेन रभसादाज्ञप्तोऽर्घ्यं मया नृप।
यदा तदाहमेतेन शिष्येण प्रतिबोधितः ॥५२॥
एष वेत्ति जगत्यत्र मत्प्रसादादनागतम्।

होजायेगा ॥३८॥ हे नृपति! उससे मेरी सन्तति होगी जोकि आपको छठा भाग देगी तथा मेरे धर्म का कारण होगी ॥ ३६ ॥ हे प्रभु! जिस तरह मेरी स्त्री हरी गई वह मैंने आपसे कहदिया। अब उस को लाकर मेरी रक्षा करना आपके अधिकारमें है४०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

वह राजा ब्राह्मण के वचन सुनकर तथा मनमें विचार करके सब साज-सामान के साथ रथ पर चढ़ा ॥ ४१ ॥ उसने पृथ्वी पर इधर-उधर घूमतेहुए एक बड़े वनमें तपस्वी का एक उत्तम आश्रम देखा ॥ ४२ ॥ उसने वहाँ उतर कर एक आश्रम में प्रवेश किया और सूर्य के समान तेजस्वी तथा कुशासन पर बैठे हुए एक मुनि को देखा ॥ ४३ ॥ नृप को आया हुआ देखकर मुनि शीघ्रता से उठे और सम्मानपूर्वक उनका स्वागत करके शिष्यसे बोले कि अर्घ्य लाओ ॥ ४४ ॥ शिष्य ने मुनि से कहा कि इनको अर्घ्य दिया जाय या नहीं, यह विचार कर आज्ञा दीजिये, आप जो आज्ञा देंगे वही मैं करूंगा ॥ ४५ ॥ उस मुनिने फिर ध्यानसे राजाका वृत्तान्त जानकर अर्घ्य के लिये निषेध करदिया और बात-चीतसे तथा आसन देकर राजाका सम्मान किया॥

ऋषि बोले—

हे राजन्! आप किस निमित्त से यहाँ आये हैं तथा आपकी क्या इच्छा है? मैं जानता हूँ आप महाराज उत्तानपाद के पुत्र उत्तम हैं ॥ ४७ ॥

राजा बोले—

हे मुनिजी! किसी ने ब्राह्मण के घर से उसकी स्त्री हरण करली है उसको ही ढूंढता हुआ मैं यहाँ आ पहुंचा ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! मैं विनयपूर्वक एक बात आपसे पूछता हूँ, आप दया करके मुझे बताइये क्योंकि मैं आपके घर पर आया हूँ ॥४६॥

ऋषि बोले—

हे महीपाल! जो कुछ आपको पूछना हो वह निःशङ्क होकर पूछिये। उसको तत्त्वतः मैं आप को बतलाऊँगा ॥ ५० ॥

राजा बोले—

हे ऋषि! जब मैं आपके घर पर आया था तो देखते ही आपने अर्घ्य देने को कहा था, वह अर्घ्य फिर क्यों नहीं दिया गया? ॥ ५१॥

ऋषि बोले—

हे राजन्! आपको देखकर जल्दी में मैंने अर्घ्य देने की आज्ञा देदी थी परन्तु फिर इस शिष्य ने मुझे बोध कराया ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार मैं भूत, भविष्य और वर्तमान का हाल जानता हूँ उसी

यथाहं समतीतंच वर्त्तमानञ्च सर्व्वतः ॥५३॥
आलोच्याज्ञापयेत्युक्ते ततो ज्ञातं मयापि तत् ।
ततो न दत्तवानर्घमहं तुभ्यं विधानतः ॥५४॥
सत्यं राजन् त्वमर्घार्हः कुले स्वायम्भुवस्य च ।
तथापि नार्घयोग्यं त्वां मन्यामो वयमुत्तमम् ॥५५॥

राजोवाच

किं कृतं हि मया ब्रह्मन् ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ।
येन त्वत्तोऽर्घमर्हामि नाहमभ्यागतश्चिरात् ॥५६॥

ऋषिरुवाच

किं विस्मृतं ये यत् पत्नी त्वया त्यक्ता च कानने ।
परित्यक्तस्तमा सार्द्धं त्वया धर्म्मो नृपाखिलः॥५७॥
पक्षेण कर्म्मणो हान्या भयात्यस्पर्शतां नरः ।
विएमूत्रैर्वार्षिकी यस्य हानिस्ते नित्यकर्म्मणः॥५८॥
पत्न्यानुकूलया भाव्यं यथाशीलेऽपि भर्त्तरि ।
दुःशीलापि तथा भार्य्या पोषणीया नरेश्वर॥५९॥
प्रतिकूला हि सा पत्नी तस्य विप्रस्य या हृता।
तथापि धर्म्मकामोऽसौ त्वामुद्दयातितरां नृप॥६०॥
चलतः स्थापयस्यन्यान् स्वधर्म्मेषु महीपते ।
त्वां स्वधर्म्माद्विचलितं कोऽपरः स्थापयिष्यति॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

विलक्ष्यः स महीपाल इत्युक्तस्तेन धीमता ।
तथेत्युक्त्वा च पप्रच्छ हृतां पत्नीं द्विजन्मनः ॥६२॥
भगवन् केन नीता सा पत्नी विप्रस्य कुत्र वा ।
अतीतानागतं वंत्सि जगत्यवितथं भवान् ॥६३॥

ऋषिरुवाच

तां जहाराद्रितनयो बलाको नाम राक्षसः ।
द्रक्ष्यसे चाद्य तां भूप उत्पलावतके वने ॥६४॥
गच्छ संयोजयाशु त्वं भार्य्यया हि द्विजोत्तमम् ।
मा पापास्पदतां यातु त्वमिवासौ दिने दिने ॥६५॥

प्रकार मेरी कृपा से यह शिष्य भी जानता है ॥५३॥ जब इस शिष्य ने कहा कि विचार करके आज्ञा दीजिये, तब मैंने आपका सब वृत्तान्त मनमें जान लिया और आपको विधानपूर्वक अर्घ्य न दिया ॥ हे राजन् ! यह सत्य है कि आप स्वायम्भुव के कुल में उत्पन्न होकर अर्घ्य के अधिकारी हैं परन्तु हम आपको अर्घ्य के योग्य नहीं मानते हैं ॥५५॥

राजा बोले—

हे ब्रह्मन् ! मैंने ज्ञान से अथवा अज्ञान से कौन सा पाप किया है जिससे इतने दिन बाद आये हुए मुझको आप अर्घ्य के अयोग्य समझते हैं ॥५६॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! क्या आप भूल गये कि आपने पत्नी को वन में छोड़ने से उसके साथ सम्पूर्ण धर्मों को भी छोड़ दिया है ? ॥ ५७ ॥ जिस मनुष्य की एक पक्षतक क्रियाओं की हानि हुई हो उसको स्पर्श नहीं करना चाहिये, जिसके नित्यकर्मों की हानि एक वर्ष तक हुई हो उसका तो कहना ही क्या है ॥ ५८ ॥ हे नरेश्वर ! जिस प्रकार पुरुष का कर्तव्य है कि अनुकूल और दुशीला स्त्री का पालन करे, उसी प्रकार दुःशीला स्त्री का भी पोषण करना मनुष्य को उचित है ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! इस ब्राह्मण की स्त्री यद्यपि इससे प्रतिकूल चलती थी परन्तु धर्म की कामना से ये ब्राह्मण आपसे अपनी स्त्री की याचना करता है ॥६०॥ हे पृथ्वीपते ! आप तो अधर्म करने वालों को धर्म में स्थित करते हो, परन्तु जब आप ही धर्म से विचलित होते हैं तो आपको कौन धर्म में स्थापित करेगा ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

वह राजा ऋषि की यह बात सुनकर लज्जित हुआ और फिर ब्राह्मण की पत्नीकी चोरीके विषय में पूछने लगा ॥ ६२ ॥ हे भगवन् ! ब्राह्मण की वह पत्नी किसने ली है तथा वह अब कहाँ है ? आप भूत, भविष्य और वर्तमान को जानते हैं, इस लिये कहिये ॥ ६३ ॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! उस ब्राह्मणी को अद्रि के पुत्र बलाक नाम राक्षस ने चुराया है । आप उसको आज ही उत्पलावर्तक वन में देख सकेंगे ॥ ६४ ॥ आप जाइये और शीघ्र इस श्रेष्ठ ब्राह्मण को इसकी पत्नी दिलवाइये जिससे दिनपर दिन आपकी तरह यह भी पाप का भागी न बने ॥६५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें उत्तम मन्वंतर नाम ६९वाँ अध्याय समाप्त ।

सत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

अथारुरोह स्वरथं प्रणिपत्य महामुनिम्।
तेनाख्यातं वनं तच्च प्रययावुत्पलावतम्॥ १॥
यथाख्यातस्वरूपाञ्च भार्य्यां भर्त्रा द्विजस्य ताम्।
भक्षयन्तीं ददर्शाथ श्रीफलानि नरेश्वरः॥ २॥
पप्रच्छ च कथं भद्रे त्वमेतद्वनमागता।
स्फुटं ब्रवीहि वैशालेरपि भार्य्या सुशर्म्मणः॥ ३॥

ब्राह्मण्युवाच

सुताहमतिरात्रस्य द्विजस्य वनवासिनः।
पत्नी विशालपुत्रस्य यस्य नाम त्वयोदितम्॥ ४॥
साहं हृता बलाकेन राक्षसेन दुरात्मना।
प्रसुप्ता भवनस्यान्ते भ्रातृ-मातृवियोजिता॥ ५॥
भस्मीभवतु तद्रक्षो येनास्म्येवं वियोजिता।
मात्रा भ्रातृभिरन्यैश्च तिष्ठाम्यत्र सुदुःखिता॥ ६॥
अस्मिन् वनेऽतिगहने तेनानीयाहमुज्झिता।
न वेद्मि कारणं किं तन्नोपभुंक्ते न खादति॥ ७॥

राजोवाच

अपि तज्ज्ञायते रक्षस्त्वामुत्सृज्य क्व वै गतम्।
अहं भर्त्रा तवैवात्र प्रेषितो द्विजनन्दिनि॥ ८॥

ब्राह्मण्युवाच

अस्यैव काननस्यान्ते स तिष्ठति निशाचरः।
प्रविश्य पश्यतु भवान् न बिभेति ततो यदि॥ ९॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रविवेश ततः सोऽथ तया वर्त्मनि दर्शिते।
ददर्श परिवारेण समवेतञ्च राक्षसम्॥ १०॥
दृष्टमात्रे ततस्तस्मिन् त्वरमाणः स राक्षसः।
दूरादेव महीं मूर्द्धा स्पृशन् पादान्तिकं ययौ॥ ११॥

राक्षस उवाच

ममात्रागच्छता गेहं प्रसादस्ते महान् कृतः।
प्रशाधि किं करोम्येष वसामि विषये तव॥ १२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद राजा महामुनि को प्रणाम कर अपने रथ पर चढ़ मुनिके बताये हुए उत्पलावर्तक वन की ओर चला॥ १॥ वहाँ पहुँच कर राजा ने एक स्त्री को जिसका स्वरूप बिल्कुल वैसाही था जैसा कि उस ब्राह्मण ने अपनी स्त्री का बताया था देखा॥ २॥ राजाने उससे पूछा, "हे भद्रे! तुम इस वन में कैसे आईं? सत्य कहो, तुम तो विशाल नाम ब्राह्मण के पुत्र की स्त्री हो"॥ ३॥

ब्राह्मणी बोली—

मैं वनवासी ब्राह्मण अतिरात्रकी पुत्री हूँ तथा जिसका आपने नाम लिया उस विशाल पुत्र की स्त्री हूँ॥ ४॥ मुझको बलाक नाम दुष्ट राक्षस ने रात्रि में सोते हुए घर से चुरा लिया है तथा इसी कारण मेरा भाई! माता और पति से वियोग हो गया है॥५॥ जिस राक्षस ने कि मेरा माता और भाई-बन्धुओं से वियोग करा दिया है वह जलकर भस्म होजाय, मैं यहाँ अत्यन्त दुःखित होकर रहती हूँ॥६॥ इस अत्यन्त गहन वन में उसने मुझे लाकर रक्खा है, मुझे इसका कारण नहीं मालुम है परन्तु न तो वह मुझसे भोग की ही इच्छा रखता है और न मुझे खाता ही है॥ ७॥

राजा बोले—

हे ब्राह्मणी! क्या तू जानती है कि वह राक्षस तुझे छोड़कर कहाँ गया। मैं तेरे स्वामी का भेजा हुआ आया हूँ॥ ८॥

ब्राह्मणी बोली—

इसी वन के दूसरे छोर पर वह राक्षस रहता है। यदि आपको भय न हो तो वन में प्रवेश कर देख लीजिये॥ ९॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर राजा ने ब्राह्मणी के बताये हुए मार्ग से वन में प्रवेश किया और शीघ्र ही परिवार समेत राक्षस को देखा॥ १०॥ शीघ्र वह राक्षस राजाको देखते ही दूर से ही झुक कर प्रणाम करता हुआ राजा के निकट पहुँचा॥ ११॥

राक्षस बोला—

आप जो यहाँ मेरे घर पर आये यह आपकी बड़ी कृपा है, क्योंकि मैं आपके राज्य में रहता हूँ इसलिये आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ॥ १२॥

अर्घञ्चेमं प्रतीच्छ त्वं स्थीयताञ्चेदमासनम् ।
वयं भृत्या भवान् स्वामी दृढमाज्ञापयस्व माम्॥१३॥

राजोवाच

कृतमेव त्वया सर्व्वं सर्व्वामेवातिथिक्रियाम् ।
किमर्थं ब्राह्मणवधूस्त्वयानीता निशाचर ॥१४॥
नेयं सुरूपा सन्त्यन्या भार्य्यार्थञ्चेत् हृता त्वया ।
भक्ष्यार्थं चेत् कथं नात्ता त्वयैतत् कथ्यतां मम॥१५॥

राक्षस उवाच

न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप राक्षसाः ।
सुकृतस्य फलं यत् तु तदश्नीमो वयं नृप ॥१६॥
स्वभावंच मनुष्याणां योषितांच विमानिताः ।
मानिताश्च समश्नीमो न वयं जन्तुखादकाः ॥१७॥
तदस्माभिर्नृणां क्षान्तिभुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा ।
भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च ॥१८॥
सन्ति नः प्रमदा भूप रूपेणाप्सरसां समाः ।
राक्षस्यस्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषु रतिः कथम् ॥१९॥

राजोवाच

यद्येषा नोपभोगाय नाहाराय निशाचर ।
गृहं प्रविश्य विप्रस्य तत् किमेषा हृता त्वया॥२०॥

राक्षस उवाच

मन्त्रवित् स द्विजश्रेष्ठो यज्ञे यज्ञे गतस्य मे ।
रक्षोघ्नमन्त्रपठनात् करोत्युच्चाटनं नृप ॥२१॥
वयं बुभुक्षितास्तस्य मन्त्रोच्चाटनकर्म्मणा ।
क्व यामः सर्व्वयज्ञेषु स ऋत्विग्भवति द्विज ॥२२॥
ततोऽस्माभिरिदं तस्य वैकल्यमुपपादितम् ।
पत्न्या विना पुमानिज्या-कर्म्मयोग्यो न जायते॥२३

मार्कण्डेय उवाच

वैकल्योच्चारणात् तस्य ब्राह्मणस्य महामतेः ।
ततः स राजातिभृशं विपस्मः समजायत ॥२४॥
वैकल्यमेव विप्रस्य वदन् मामेव निन्दति ।
न... च मां सोऽप्याह मुनिसत्तमः ॥२५॥

आप इस अर्घ्य को लीजिये तथा इस आसन पर बैठिये । आप स्वामी हैं और हम सेवक हैं, आप आज्ञा करें ॥ १३ ॥

राजा बोले—

हे राक्षस ! तुमने यह सब अतिथि-सत्कार तो किया परन्तु यह बताओ कि तुम इस ब्राह्मण की स्त्री को क्यों ले आये हो ? ॥ १४ ॥ यदि तुम इस को अपनी स्त्री बनाने के लिये लाये हो तो यह स्वरूपवान् नहीं वरन् कुरूपा है और यदि खाने के लिये लाये हो तो तुमने इसको अबतक क्यों नहीं खाया, यह मुझसे कहो ॥ १५ ॥

राक्षस बोला—

हे राजन् ! हम लोग मनुष्य-भक्षी नहीं हैं, वे राक्षस दूसरे हैं । हम लोग इस वनके उत्तम फल खाते हैं ॥ १६ ॥ मेरा तथा मेरी स्त्रियों का स्वभाव मनुष्यों जैसा है । मैं अपनी स्त्रियों का मान करता हूँ तथा वे मेरा करती हैं, हम मनुष्य-भक्षी नहीं हैं ॥ १७ ॥ क्योंकि मैं मनुष्यों पर दया करता हूँ इस लिये वे मुझसे क्रुद्ध रहते हैं, यदि मैं भी दुष्ट स्वभाववाला होता तो वे मुझको गुणवान् समझते ॥१८॥ हे राजन् ! हमारे यहाँ अनेक स्त्रियाँ अप्सराओं के समान रूपवान् हैं, उन सुन्दर राक्षसियों के होते हुए मेरी कुरूपा मनुष्य-स्त्रियों में प्रीति कैसे होगी ? ॥ १९ ॥

राजा बोले—

हे निशाचर ! यदि यह ब्राह्मणी न तो भोग के लिये और न खाने के लिये है तो तुमने ब्राह्मण के घर में घुस कर इसको क्यों हरण किया ? ॥ २० ॥

राक्षस बोला—

हे राजन् ! वह ब्राह्मण मन्त्रज्ञ है और जिस यज्ञ में मैं जाता हूँ वहाँ ही से रक्षोघ्न मन्त्र पढ़कर वह मेरा उच्चाटन करदेता है ॥ २१ ॥ उसके मन्त्र-उच्चारण से हम लोग भूखे हैं, हे राजन ! अब हम कहाँ जांय क्योंकि वह सभी यज्ञों में ऋत्विक होता है ॥ २२ ॥ इसलिये हमने इसके लिये यह उपाय निकाला है । स्त्री के विना वह यज्ञकर्म करने के योग्य न रहेगा ॥ २३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि ! उस ब्राह्मण की यह विकलता का विचार करके राजाको अत्यन्त दुःख होनेलगा ॥२४॥ उस ब्राह्मण की विकलता का वर्णन करके यह राक्षस मेरी निन्दा करता है, मुनिने भी मुझे अर्घ्य के अयोग्य बताया था ॥ २५॥ राक्षसने उस ब्राह्मण,

वैकल्यं तस्य विप्रस्य राक्षसोऽप्याह मे यथा।
अपत्नीकतया सोऽहं सङ्कटं महदास्थितः ॥२६॥

की विकलता बतलाकर मानों मेरी ही विकलता बताई है। बिना स्त्री के मैं अत्यधिक सङ्कटापन्न हो गया हूँ॥ २६॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं चिन्तयतस्तस्य पुनरप्याह राक्षसः।
प्रणामनम्रो राजानं बद्धाञ्जलिपुटो मुने ॥२७॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनि! इस प्रकार सोच करते हुए उस राक्षस ने राजा से हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए कहा॥ २७॥

राक्षस उवाच

नरेन्द्राज्ञाप्रदानेन प्रसादः क्रियतां मम।
भृत्यस्य प्रणतस्य त्वं युष्मद्विषयवासिनः ॥२८॥

राक्षस बोला—

हे राजन्! मुझ दीन सेवक पर आप कृपा करके आज्ञा दीजिये, हम आपके राज्य में रहने वाले हैं॥ २८॥

राजोवाच

स्वभावं वयमश्रौष्मस्त्वयोक्तं यन्निशाचर।
तदर्थिनो वयं येन कार्य्येण शृणु तन्मम ॥२९॥
अस्यास्त्वयाद्य ब्राह्मण्या दौःशील्यमुपभुज्यताम्।
येन त्वयात्तदौःशील्या तद्विनीता भवेदियम् ॥३०॥
नीयतां यस्य भार्य्येयं तस्य वेश्म निशाचर।
अस्मिन् कृते कृतं सर्व्वं गृहमभ्यागतस्य मे ॥३१॥

राजा बोले—

हे राक्षस! जिस प्रकार ब्राह्मणहै उसी प्रकार मेरा भी हाल है। इसलिये जो मैं कहूँ वह सुनो। ॥२९॥ आज तुम इस ब्राह्मणी के दुःशील को भक्षण कर जाओ जिससे कि यह अपने दुःशील को छोड़ कर नम्र हो जावे॥ ३०॥ हे निशाचर! फिर इसको उस ब्राह्मण के घर पहुँचा देना जिस की कि यह स्त्री है, तुम्हारे ऐसा करने पर मेरे यहाँ आने का आशय पूर्ण हो जायगा॥ ३१॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राक्षसस्तस्याः प्रविश्यान्तः स्वमायया।
भक्षयामास दौःशील्यं निजशक्त्या नृपाज्ञया॥३२॥
दौःशील्येनातिरौद्रेण पत्नी तस्य द्विजन्मनः।
तेन सा सम्परित्यक्ता तमाह जगतीपतिम् ॥३३॥
स्वकर्म्मफलपाकेन भर्त्तुस्तस्य महात्मनः।
वियोजिताहं तद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥३४॥
नास्य दोषो न वा तस्य मम भर्त्तुर्महात्मनः।
ममैव दोषो नान्यस्य सुकृतं ह्युपभुज्यते ॥३५॥
अन्यजन्मनि कस्यापि विप्रयोगः कृतो मया।
सोऽयं मयाप्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः॥३६॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर वह राक्षस राजा की आज्ञा के अनुसार अपनी माया से उस ब्राह्मणी के अन्दर घुस गया और उसने अपनी शक्ति से उसके दुःशील को खा लिया॥ ३२॥ जब उस ब्राह्मणी की वह भीषण दुःशीलता निकल गई तब वह राजा के प्रति बोली ॥३३॥ अपने कर्म के फलसे ही मेरा अपने महात्मा पति से वियोग होकर इस राक्षस का साथ हुआ॥ ३४॥ इस राक्षस का और उस महात्मा मेरे पति का कोई दोष नहीं है तथा न यह और किसी का दोष है, यह मेरे किये कर्म का भोग है॥ ३५॥ पूर्व जन्म में मैंने किसी का वियोग किया होगा जिसके कारण कि मुझे वियोग सहना पड़ा। इस महात्मा का कोई दोष नहीं है॥३६॥

राक्षस उवाच

प्रापयामि तवादेशादिमां भर्त्तृगृहं प्रभो।
यदन्यत् करणीयं ते तदाज्ञापय पार्थिव ॥३७॥

राक्षस बोला—

हे प्रभु! आपकी आज्ञा से मैं इसे पति के घर पहुँचाता हूँ। हे राजन्! अब जो कुछ और करना हो उसे आज्ञा करें॥३७॥

राजोवाच

अस्मिन् कृते कृतं सर्व्वं त्वया मे रजनीचर।
आगन्तव्यश्च ते वीर कार्य्यकाले स्मृतेन मे ॥३८॥

राजा बोले—

हे निशाचर! इतना करने पर मैं समझूंगा कि तुमने सब कुछ कर दिया। कार्य होने पर मैं तुम को याद करूँ तो तुम मेरे पास आना॥३८॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम् ।
निन्ये भर्त्तृगृहं शुद्धां दौःशील्यापगमात् तदा ॥२६॥

मार्कण्डेयजी बोले—

राजा के यह कहने पर उस राक्षस ने उस ब्राह्मणी को जिसका कि दुःशील नष्ट होगया था उसे पति के घर पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में औत्तम मन्वन्तर में द्विज भार्यानयननाम ७०वाँ अध्याय समाप्त ।

इकहत्तरवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तां प्रेषयित्वा राजापि स्वभर्त्तृगृहमङ्गनाम् ।
चिन्तयामास निश्वस्य किमत्र सुकृतं भवेत् ॥ १ ॥
अनर्घयोग्यताकष्टं स मामाह महामनाः ।
वैकल्यं विप्रमुद्दिश्य तथाहायं निशाचरः ॥ २ ॥
सोऽहं कथं करिष्यामि त्यक्ता पत्नी मया हि सा ।
अथवा ज्ञानदृष्टिं तं पृच्छामि मुनिसत्तमम् ॥ ३ ॥
सञ्चिन्त्येत्थं स भूपालः समारुह्य च तं रथम् ।
ययौ यत्र स धर्म्मात्मा त्रिकालज्ञो महामुनिः ॥ ४ ॥
अवरुह्य रथात् सोऽथ तं समेत्य प्रणम्य च ।
यथावृत्तं समाचख्यौ राक्षसेन समागमम् ॥ ५ ॥
ब्राह्मण्या दर्शनञ्चैव दौःशील्यापगमं तथा ।
प्रेषणं भर्त्तृगेहे च कार्य्यमागमने च यत् ॥ ६ ॥

ऋषिरुवाच

ज्ञातमेतन्मया पूर्व्वं यत् कृतं ते नराधिप ।
कार्य्यमागमने चैव मत्समीपे तवाखिलम् ॥ ७ ॥
पृच्छ मामिह किं कार्य्यं मयेत्युद्विग्नमानसः ।
त्वय्यागते महीपाल शृणु कार्य्यञ्च यत् त्वया ॥ ८ ॥
पत्नी धर्म्मार्थकामानां कारणं प्रबलं नृणाम् ।
विशेषतश्च धर्म्मश्च सन्त्यक्तस्त्यजता हि ताम् ॥ ६ ॥
अपत्नीको नरो भूप न योग्यो निजकर्म्मणाम् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृप ॥१०॥
त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम् ।
अत्याज्यो हि यथा भर्त्ता स्त्रीणां भार्य्या तथा नृणाम् ॥

राजोवाच

भगवन् किं करोम्येष विपाको मम कर्म्मणाम् ।

मार्कण्डेयजी बोले—

राजा उस ब्राह्मणी को उसके पति के घर भिजवाकर श्वास ले लेकर चिन्ता करने लगा कि मेरा पुण्य किस तरह चले ॥१॥ यह बड़े कष्ट की बात है कि उस मुनि ने मुझको अर्घ्य के अयोग्य बताया था तथा ब्राह्मण के बहाने से उस राक्षसने मेरी निन्दा की ॥ २ ॥ अपनी उस पत्नी को त्याग कर अब मैं क्या करूँ अथवा ज्ञानचक्षु उस मुनि से ही पूछूँ ॥ ३ ॥ वह राजा इस प्रकार सोच कर अपने रथ पर चढ़कर वहाँ गया जहाँ वह धर्मात्मा त्रिकालज्ञ ऋषि रहता था ॥ ४ ॥ उस मुनि के पास आने पर राजाने रथ से उतर मुनिको प्रणाम किया तथा राक्षस से मिलने पर जो कुछ हुआ था वह कह सुनाया ॥ ५ ॥ ब्राह्मणी को देखना, उसका दुःशील हरण, उसका स्वामी के घर भेजा जाना तथा अपने आने का कारण, यहसब कह दिया ॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! आपने जो कुछ किया वह तथा आपके यहाँ आने का कारण सब कुछ मुझे पहिले ही विदित है ॥ ७ ॥ हे पृथ्वीपालक ! तुम मुझसे पूछो कि तुम उद्विग्न चित्त क्यों हो । अपने यहाँ पर आने का कारण भी तुम सुनो ॥ ८ ॥ मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम का प्रबल कारण स्त्री ही है उसको छोड़ देने से मनुष्य का विशेष धर्म छूट जाता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी हो स्त्री के बिना वह मनुष्य अपने कर्मों के योग्य नहीं है ॥ १० ॥ आपने अपनी स्त्रीको छोड़कर अच्छा नहीं किया । पतिको अपनी स्त्री उसी प्रकार न छोड़नी चाहिये जिस प्रकार कि स्त्री को अपना पति न छोड़ना चाहिये ॥११॥

राजा बोले—

हे भगवन् ! मैं क्या करूँ यह मेरे कर्मोंका फल है । मेरे अनुकूल होते हुए भी वह मुझसे प्रतिकूल

नानुकूलानुकूलस्य यस्मात् त्यक्ता ततो मया॥१२॥
यद्यत् करोति तत् क्षान्तं दह्यमानेन चेतसा ।
भगवंस्तद्वियोगार्त्ति-विभीतेनान्तरात्मना ॥१३॥
साम्प्रतन्तु वने त्यक्ता न वेद्मि क नु सा गता ।
भक्षिता वापि विपिने सिंह-व्याघ्र निशाचरैः ॥१४॥

ऋषिरुवाच

न भक्षिता सा भूपाल सिंह-व्याघ्र-निशाचरैः ।
सा त्वविप्लुतचारित्रा साम्प्रतन्तु रसातले ॥१५॥

राजोवाच

सा नीता केन पातालमास्ते साऽदूषिता कथम् ।
अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१६॥

ऋषिरुवाच

पाताले नागराजोऽस्ति प्रख्यातश्च कपोतकः ।
तेन दृष्टा त्वया त्यक्ता भ्रममाणा महावने ॥१७॥
सा रूपशालिनी तेन सानुरागेण पार्थिव ।
वेदितार्थेन पातालं नीता सा युवती तदा ॥१८॥
ततस्तस्य सुता सुभ्रूर्नन्दा नाम महीपते ।
भार्य्या मनोरमा चास्य नागराजस्य धीमतः ॥१९॥
तया मातुः सपत्नीयं सा भवित्रीति शोभना ।
दृष्ट्वा स्वगेहं सा नीता गुप्ता चान्तःपुरे शुभा ॥२०॥
यदा तु याचिता नन्दा न ददाति नृपोत्तरम् ।
मूका भविष्यसीत्याह तदा तां तनयां पिता ॥२१॥
एवं शप्ता सुता तेन सा चास्ते तत्र भूपते ।
नीता तेनोरगेन्द्रेण धृता तत्सुतया सती ॥२२॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो राजा परं हर्षमवाप्य तमपृच्छत ।
द्विजवर्य्यं स्वदौर्भाग्य-कारणं दयितां प्रति ॥२३॥

राजोवाच

भगवन् सर्व्वलोकस्य मयि प्रीतिरनुत्तमा ।
किं नु तत् कारणं येन स्वपत्नी नातिवत्सला ॥२४॥
मम चासावतीवेष्टा प्राणेभ्योऽपि महामुने ।
सा च मां प्रति दुःशीला ब्रूहि यत् कारणं द्विज ॥२५॥

ऋषिरुवाच

पाणिग्रहणकाले त्वं सूर्य्य-भौम-शनैश्चरैः ।

थी, इसी कारण से मैंने उसे छोड़ा ॥१२॥ वह जो कुछ भी कहती थी उसको मैं क्षमा करदिया करता था। हे भगवन् ! उसके वियोगरूपी अग्नि से मेरा हृदय अबतक जल रहा है॥ १३॥ उसको वन में छोड़कर मैं नहीं जानता कि वह कहाँ गई अथवा उसको वनमें सिंह, व्याघ्र, राक्षसादिने खालिया॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! उसको सिंह, व्याघ्र अथवा राक्षस आदि ने नहीं खाया है वह अब भी शुद्ध चरित्र वाली है तथा रसातल में रहती है ॥ १५॥

राजा बोले—

हे ब्रह्मन् ! उसको पातालमें कौन लेगया तथा वह अब तक दोषरहित किस प्रकार है ? यह बड़ी अद्भुत बात है, कृपा कर बताइये ॥१६॥

ऋषि बोले—

पाताल में कपोतक नाम का नागराज है। तुम्हारे छोड़ देने पर उसको उस वनमें घूमते हुए नागराज ने देखा ॥१७॥ हे राजन् ! उस रूपवती स्त्री से प्रेमपूर्वक उसका हाल पूछकर वह उसे पाताल को लिवाकर लेगया॥ १८॥ हे नृप ! वहाँ उस नागराज की सुन्दरी नन्दा नाम पुत्री थी तथा उस बुद्धिमान् की स्त्री का नाम मनोरमा था ॥१९॥ यह सुन्दरी तेरी मां की सपत्नी होगी इस प्रकार उसने अपनी पुत्री नन्दा से कहा और वह उसे अपने घर के गुप्त अन्तःपुर में लेगई॥ २०॥ जिस समय नागराज ने यह कहा नन्दा ने उसका कुछ उत्तर न दिया। इसपर नागराज ने कहा कि तू गूँगी होजा॥ २१॥ हे राजन् ! पिता के इस प्रकार शाप देने पर नन्दा गूँगी होगई और फिर नागराज ने आपकी स्त्रीको अपनी कन्याके साथ रखदिया॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर तो राजा बड़े हर्षित होकर उनसे पूछने लगे कि अपनी स्त्री के प्रति मेरे इस दुर्भाग्य का कारण क्या है ? ॥ २३॥

राजा बोले—

हे भगवन् ! सब लोगों में मेरी प्रीति अपनी स्त्री में अत्युत्तम थी। परन्तु मुझे यह नहीं मालुम कि वह मुझसे प्रीति क्यों नहीं रखती ॥ २४॥ हे महामुनिजी ! मैं उसको प्राणों से भी अधिक प्रिय रखता था परन्तु वह मेरे प्रति दुःशील रखती थी, हे द्विज ! इसका कारण बताइये ॥२५॥

ऋषि बोले—

पाणिग्रहण के समय तुम्हारी स्त्री के ग्रह को

ुक्र-वाचस्पतिभ्याश्च तव भार्य्यावलोकिता ॥२६॥
न्मुहूर्त्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा ।
रस्परविपक्षौ तौ ततः पार्थिव ते भृशम् ॥२७॥
ाच्छ त्वं स्वधर्म्मेण परिपालय मेदिनीम् ।
त्नीसहायः सर्व्वाश्च कुरु धर्म्मव्रतीः क्रियाः ॥२८॥

मार्कण्डेय उवाच

त्युक्ते प्रणिपत्यैनमारुह्य स्यन्दनं ततः ।
त्तमः पृथिवीपाल आजगाम निजं पुरम् ॥२९॥

सूर्य, मङ्गल शनिश्चर, शुक्र और बृहस्पति देख रहे थे ॥२६॥ उस मुहूर्तमें चन्द्रमा और बुधभी परस्पर विपक्षी होते हुए आपको अनिष्ट करनेवाले थे॥२७॥ इसलिये अब आप जाइये और धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करिये तथा अपनी स्त्री के साथ सब धार्मिक क्रियाओं को संपादित करिये ॥ २८॥

मार्कण्डेयजी बोले—

ऋषि के ऐसा कहने पर राजाने उनको प्रणाम किया और अपने रथ पर चढ़ कर राजा उत्तम अपने नगर को गये ॥ २९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में औत्तम मन्वन्तर में ७१वाँ अ० समाप्त।

बहत्तरवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तः स्वनगरं प्राप्य तं ददर्श द्विजं नृपः ।
ामेतं भार्य्यया चैव शीलवत्या मुदान्वितम् ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब अपने नगर में पहुँचकर राजा ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को अपनी शीलवती स्त्री के सहित देखा ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

ाजवर्य्य कृतार्थोऽस्मि यतो धर्म्मो हि रक्षितः ।
र्म्मज्ञेनेह भवता भार्य्यामानयता मम ॥ २ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे राजन् ! मैं आपसे कृतार्थ हुआ। आप धर्मज्ञ हैं, आपने मेरी स्त्री को लाकर मेरे धर्म की रक्षा की ॥ २ ॥

राजोवाच

ृतार्थस्त्वं द्विजश्रेष्ठ निजधर्म्मानुपालनात् ।
यं सङ्कटिनो विप्र येषां पत्नी न वेश्मनि ॥ ३ ॥

राजा बोले—

हे श्रेष्ठ विप्र ! आप तो धर्म का पालन करने के कारण कृतार्थ होगये परन्तु मैं बड़े सङ्कट में हूँ क्योंकि मेरे घर में स्त्री नहीं है ॥ ३ ॥

ब्राह्मण उवाच

रेन्द्र सा हि विपिने भक्षिता श्वापदैर्यदि ।
अलं तया किमन्यस्या न पाणिगृह्यते त्वया ।
क्रोधस्य वशमागम्य धर्म्मो न रक्षितस्त्वया ॥ ४ ॥

ब्राह्मण बोला—

हे राजन् ! यदि आपकी स्त्री को किसी पशु ने वन में खालिया हो तो अब वह कहाँ से आवेगी अब आप दूसरी स्त्री से विवाह क्यों नहीं करते ? आपने क्रोध के वशीभूत होकर अपने धर्म की रक्षा न की ॥ ४ ॥

राजोवाच

न भक्षिता मे दयिता श्वापदैः सा हि जीवति ।
अविदूषितचारित्रा कथमेतत् करोम्यहम् ॥ ५ ॥

राजा बोले—

मेरी स्त्री को जानवरों ने नहीं खाया, वह जीवित है तथा उसका चरित्र भी दोष रहित है, ऐसी स्थिति में मैं यह कैसे कर सकता हूँ ? ॥ ५ ॥

ब्राह्मण उवाच

यदि जीवति ते भार्य्या न चैव व्यभिचारिणी ।
तदपत्नीकताजन्म किं पापं क्रियते त्वया ॥ ६ ॥

ब्राह्मण बोला—

यदि आपकी स्त्री जीवितहै और व्यभिचारिणी नहीं हुई है तो स्त्री के बिना आप पाप क्यों कमा रहे हैं ? ॥ ६ ॥

राजोवाच

आनीतापि हि सा विप्र प्रतिकूला सदैव मे ।
दुःखाय न सुखायालं तस्या मैत्री न वै मयि ।
तथा त्वं कुरु यत्नं मे यथा सा वशगामिनी ॥ ७ ॥

ब्राह्मण उवाच

तव सम्प्रीतये तस्या वरेष्टिरुपकारिणी ।
क्रियते मित्रकामैर्या मित्रविन्दां करोमि ताम् ॥ ८ ॥
अप्रीतयोः प्रीतिकरी सा हि सञ्जननी परम् ।
भार्य्या-पत्योर्मनुष्येन्द्र तां तवेष्टिं करोम्यहम् ॥ ९ ॥
यत्र तिष्ठति सा सुभ्रूस्तव भार्य्या महीपते ।
तस्मादानीयतां सा ते परां प्रीतिमुपैष्यति ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तः स तु सम्भारानशेषानवनीपतिः ।
आनिनाय चकारेष्टिं स च तां द्विजसत्तमः ॥ ११ ॥
सप्तकृत्वः स तु तदा चकारेष्टिं पुनः पुनः ।
तस्य राज्ञो द्विजश्रेष्ठो भार्य्यासम्पादनाय वै ॥ १२ ॥
यदारोपितमैत्रीं ताममन्यत महामुनिः ।
स्वभर्त्तरि तदा विप्रस्तमुवाच नराधिपम् ॥ १३ ॥
आनीय तां नरश्रेष्ठ या तवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ।
भुङ्क्ष्व भोगांस्तया सार्द्धं यज यज्ञांस्तथादृतः ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तस्तेन विप्रेण भूपालो विस्मितस्तदा ।
सस्मार तं महावीर्य्यं सत्यसन्धं निशाचरम् ॥ १५ ॥
स्मृतस्तेन तदा सद्यः समुपेत्य नराधिपम् ।
किं करोमीति सोऽप्याह प्रणिपत्य महामुने ॥ १६ ॥
ततस्तेन नरेन्द्रेण विस्तरेण निवेदिते ।
गत्वा पातालमादाय राजपत्नीमुपाययौ ॥ १७ ॥
आनीता चातिहार्देन सा ददर्श तदा पतिम् ।
उवाच च प्रसीदेति भूयो भूयो मुदान्विता ॥ १८ ॥
ततः स राजा रभसा परिष्वज्याह मानिनीम् ।
प्रिये प्रसन्न एवाहं भूयोऽप्येवं ब्रवीषि किम् ॥ १९ ॥

पत्न्युवाच

यदि प्रसादप्रवणं नरेन्द्र मयि ते मनः ।
तदेतदभियाचे त्वां तत् कुरुष्व ममार्हणम् ॥ २० ॥

राजा बोले—

हे ब्राह्मण ! यदि वह आ भी जायगी तो उसके प्रतिकूल होने के कारण मुझे दुःख ही होगा सुख नहीं, कारण-वह मुझसे मैत्री नहीं रखती, इसलिये तुम ऐसा यत्नकरो जिससे वह मेरे वशमें होजाय॥

ब्राह्मण बोला—

हे राजन् ! यदि आप उस स्त्री से प्रीति करना चाहते हैं तो मित्रविन्दा यज्ञ आपके लिये करूंगा जिसको कि वे लोग करते हैं जो मित्र की कामना करते हैं ॥८॥ हे राजन् ! जिन स्त्री-पुरुष में परस्पर प्रीति न हो उनमें मित्रविन्दा-यज्ञ प्रीति करा देता है, इसलिये वह यज्ञ मैं आपके लिये करूँगा ॥ ९ ॥ हे पृथ्वी के स्वामी ! जहाँ तुम्हारी सुन्दरी स्त्री है वहाँ से उसको ले आइये, वह अब तुमसे परम प्रीति करेगी ॥१०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उस ब्राह्मण के ऐसा कहने पर राजा ने सब सामग्री यज्ञ की मँगाई और उस श्रेष्ठ ब्राह्मण से मित्रविन्दा यज्ञ कराया ॥ ११ ॥ उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने राजा और उसकी स्त्री में परस्पर प्रीति होजाय इसके लिये सात बार वह यज्ञ कराया ॥ १२ ॥ जब वह मित्रविन्दा यज्ञ सम्पूर्ण होगया तब ब्राह्मण ने राजा से कहा ॥१३॥ हे राजन् ! अब आप अपनी स्त्रीको लाकर अपने पास रखिये तथा उसके साथ आदरपूर्वक भोगों को भोगिये और यज्ञ करिये ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

ब्राह्मण के ऐसा कहने पर राजा प्रसन्न हुए तथा उन्होंने उस बलवान् और सत्य प्रतिज्ञा वाले राक्षस को स्मरण किया ॥ १५ ॥ हे क्रौष्टुकिजी ! स्मरण करते ही वह राक्षस शीघ्र राजा के पास पहुँचा और कहने लगा कि मैं क्या करूँ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर राजा ने विस्तार पूर्वक सब बात उससे कहदी और वह राक्षस पाताल में जाकर राजपत्नी को ले आया ॥ १७ ॥ उसने आकर पति को देखा और हृदयसे प्रसन्न होकर बारबार कहने लगी, 'आप मुझपर प्रसन्न हों' ॥१८॥ फिर राजा उस मानिनी स्त्री को आलिङ्गन करके बोले, "मैं तो प्रसन्न ही हूँ, फिर हे प्रिये ! तुम ऐसा क्यों कहती हो ?" ॥ १९ ॥

पत्नी बोली—

हे राजन् ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो आप से मैं एक याचना करती हूँ, आप उसको पूरा करें ॥ २० ॥

राजोवाच

निःशङ्कं ब्रूहि मत्तो यद्भवत्या किञ्चिदीप्सितम्।
तदलभ्यं न ते भीरु तवायत्तोऽस्मि नान्यथा॥२१॥

राजा बोले—

हे प्रिये! जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो वह मुझ से निःशङ्क कहिये। यदि कोई वस्तु अलभ्य होगी तो भी मैं तुमको दूँगा॥२१॥

पत्न्युवाच

मदर्थं तेन नागेन सुता शप्ता सखी मम।
मूका भविष्यसीत्याह सा च मूकत्वमागता॥२२॥
तस्याः प्रतिक्रियां प्रीत्या मम शक्नोति चेद्भवान्।
वाग्विघातप्रशान्त्यर्थं ततः किं न कृतं मम॥२३॥

पत्नी बोली—

नागराज ने मेरी सखी को जो कि उनकी पुत्री थी मेरे ही कारण शाप देकर कहा कि तू गूंगी होजा और वह गूंगी होगई॥ २२॥ मेरी रुचि यह है कि उसका कुछ उपकार करूँ, यदि आपकी शक्ति में हो तो ऐसा उपाय कीजिये जिससे वह बोलने लगे। यदि यह होजायगा तो मैं समझूंगी कि सब कुछ होगया॥२३॥

मार्कण्डेयवाच

ततः स राजा तं विप्रमाहास्मिन् कीदृशी क्रिया।
तन्मूकतापनोदाय स च तं प्राह पार्थिवम्॥२४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर राजा ने उस ब्राह्मण से पूछा कि ऐसी कौनसी क्रिया है जिससे उसकी मूकता ठीक हो जाय। इसपर ब्राह्मण ने राजा से कहा॥२४॥

ब्राह्मण उवाच

भूप सारस्वतीमिष्टिं करोमि वचनात् तव।
पत्नी तवेयमानृण्यं यातु तद्वाक्प्रवर्त्तनात्॥२५॥

ब्राह्मण बोला—

हे राजन्! आपकी आज्ञा से मैं सरस्वती-यज्ञ करूँगा जिससे कि आपकी पत्नी अपनी सखी के बोलने से प्रसन्न होजाय॥ २५॥

मार्कण्डेय उवाच

इष्टिं सारस्वतीं चक्रे तदर्थं स द्विजोत्तमः।
सारस्वतानि सूक्तानि जजाप च समाहितः॥२६॥
ततः प्रवृत्तवाक्यां तां गर्गः प्राह रसातले।
उपकारः सखीभर्त्रा कृतोऽयमतिदुष्करः॥२७॥
इत्थं ज्ञानं समासाद्य नन्दा शीघ्रगतिः पुरम्।
ततो राज्ञीं परिष्वज्य स्वसखीमुरगात्मजा॥२८॥
तञ्च संस्तूय भूपालं कल्याणोक्त्या पुनः पुनः।
उवाच मधुरं नागी कृतासनपरिग्रहा॥२९॥
उपकारः कृतो वीर भवता यो ममाधुना।
तेनास्म्याकृष्टहृदया यद्ब्रवीमि शृणुष्व तत्॥३०॥
तव पुत्रो महावीर्य्यो भविष्यति नराधिप।
तस्याप्रतिहतं चक्रमस्यां भुवि भविष्यति॥३१॥
सर्व्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञो धर्म्मानुष्ठानतत्परः।
मन्वन्तरेश्वरो धीमान् भविष्यति स वै मनुः॥३२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने सखी के बोलने के निमित्त सरस्वती का इष्ट किया और सरस्वती के सूक्तों का जप किया॥२६॥ उस नागकन्याके बोलने पर पाताल में गर्ग मुनि ने कहा कि यह कठिन उपकार इसकी सखी के स्वामी ने किया है॥७॥ इस बात को जानकर नागकन्या नन्दा शीघ्रगति से उस नगर में पहुंची और वहाँ जाकर अपनी सखी उस रानी से आलिङ्गन किया॥ २८॥ और वह नागकन्या आसन पर बैठकर कल्याणमयी एवं मधुर वाणी से राजा से विनय करने लगी॥२९॥ हे वीर! आज जो आपने मेरा उपकार किया है इससे मेरा हृदय आपकी ओर आकर्षित होगया है इसलिये जो मैं कहूँ वह सुनो॥३०॥ हे राजन्! आपका एक अत्यन्त बलवान् पुत्र होगा जो कि इस पृथ्वी पर चक्रवर्ती राज्य करेगा॥ ३१॥ वह सब शास्त्रों के अर्थ और तत्व का जानने वाला, धार्मिक क्रियाओं के करने में तत्पर और मन्वन्तर का प्रवर्तक और बुद्धिमान मनु होगा॥३२॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्त्वा वरं तस्मै नागराजसुता ततः।
[सखीं] तां सम्परिष्वज्य पातालमगमन्मुने॥३३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि! इसके बाद वह नागकन्या उस राजा को इस प्रकार वर देकर और अपनी सखी से आलिङ्गन कर पाताल को चली गई॥ ३३॥ उस

तत्र तस्य तया सार्द्धं रमतः पृथिवीपतेः ।
जगाम कालः सुमहान् प्रजाः पालयतस्तथा ॥३४॥
ततः स तस्यां तनयो जज्ञे राज्ञो महात्मनः ।
पौर्णमास्यां यथा कान्तश्चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः॥३५
तस्मिन् जाते मुदं प्रापुः प्रजाः सर्व्वा महात्मनि ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च ॥३६॥
तस्य दृष्ट्वा वपुः कान्तं भविष्यं शीलमेव च ।
औत्तमश्चेति मुनयो नाम चक्रुः समागताः ॥३७॥
जातोऽयमुत्तमे वंशे तत्र काले तथोत्तमे ।
उत्तमावयवस्तेन औत्तमोऽयं भविष्यति ॥३८॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्तमस्य सुतः सोऽथ नाम्ना ख्यातस्तथौत्तमः ।
मनुरासीत् तत्प्रभावो भागुरे श्रूयतां मम ॥३९॥
उत्तमाख्यानमखिलं जन्म चैवोत्तमस्य च ।
नित्यं शृणोति विद्वेषं स कदाचिन्न गच्छति ॥४०॥
इष्टैर्दारैस्तथा पुत्रैर्बन्धुभिर्वा कदाचन ।
वियोगो नास्य भविता शृण्वतः पठतोऽपि वा॥४१॥
तस्य मन्वन्तरं ब्रह्मन् वदतो मे निशामय ।
श्रूयतां तत्र यश्चेन्द्रो ये च देवास्तथर्षयः ॥४२॥

राजा को अपनी स्त्री के साथ रमण करते तथा प्रजा का पालन करते करते बहुत काल व्यतीत हो गया ॥३४॥ तब राजा के उस स्त्री से एक पुत्र पैदा हुआ जिसकी कान्ति पूर्णमासीके चन्द्रमाके सदृश थी ॥ ३५ ॥ उस महात्मा पुत्र के उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण प्रजा आनन्द को प्राप्त हुई । उस समय देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और पुष्पों की वर्षा की ॥ ३६ ॥ उस बालक का शरीर, प्रकाश और शील देखकर आये हुए मुनियों ने उसका नाम औत्तम रक्खा ॥ ३७ ॥ उन्होंने कहा कि यह बालक उत्तम वंश और उत्तम समय में उत्पन्न हुआ है तथा इसके सब अवयव उत्तम हैं इसलिये इसका नाम औत्तम होगा ॥३८॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उत्तम के इस पुत्रका नाम औत्तम हुआ । वह मनु हुआ । अब उसके प्रभाव को सुनो ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य उत्तम महाराज के जन्म और चरित्र को नित्य सुनता है उससे कभी कोई विरोध नहीं करता ॥ ४० ॥ इस चरित्र के पढ़ने या सुनने से प्रियजनों, स्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवों से कभी वियोग नहीं होता ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस मन्वन्तर का हाल तथा उसमें जो इन्द्र, देवता और ऋषि हुए यह मुझसे सुनिये ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में औत्तम मन्वन्तर नाम ७२वाँ अध्याय समाप्त ।

तिहत्तरवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तरे तृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्य प्रजापतेः ।
देवानिन्द्रमृषीन् भूपान् निबोध गदतो मम ॥ १ ॥
स्वधामानस्तथा देवा यथानामानुकारिणः ।
सत्याख्यश्च द्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानां तथा गणः॥ २ ॥
तृतीये तु गणे देवाः शिवाख्या मुनिसत्तम ।
शिवाः स्वरूपतस्ते तु श्रुताः पापप्रणाशनाः ॥ ३ ॥
प्रतर्दनाख्यश्च गणो देवानां मुनिसत्तम ।
चतुर्थस्तत्र कथित औत्तमस्यान्तरे मनोः ॥ ४ ॥
वशवर्त्तिनः पंचमेऽपि देवास्तत्र गणे द्विज ।
यथाख्यातस्वरूपास्तु सर्व्व एव महामुने ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

प्रजापति औत्तम के इस तीसरे मन्वन्तर में जो देवता, इन्द्र, ऋषि, राजा आदि हुए उनको मुझसे सुनो ॥१॥ प्रथम तो उसमें स्वधामान नाम देवता हुए जिनके गुण कि उनके नाम के अनुसार थे । दूसरे देवता तथा गण सत्य नाम से कहलाये ॥ २ ॥ हे मुनिवर ! तीसरे देवता लोग शिव नाम से प्रसिद्ध हुए । वे शिव के समान कल्याणमय और पापों के नाश करने वाले थे ॥३॥ हे क्रौष्टुकि ! उस औत्तम मन्वन्तर में देवताओं का चौथा गण प्रतर्दन नाम कहलाया ॥ ४ ॥ हे द्विज ! वशवर्ती नाम पाँचवें गण में जो देवता हुए उनके स्वरूप भी उनके नामों के अनुसार थे ॥ ५ ॥ ये ही पाँच देव-

एते देवगणाः पंच स्मृता यज्ञभुजस्तथा ।
मन्वन्तरे मनुश्रेष्ठ सर्व्वे द्वादशका गणाः ॥ ६ ॥
तेषामिन्द्रो महाभागस्त्रैलोक्ये स गुरुर्भवेत् ।
शतं क्रतूनामाहृत्य सुशान्तिर्नाम नामतः ॥ ७ ॥
यस्योपसर्गनाशाय नामाक्षरविभूषिता ।
अद्यापि मानवैर्गाथा गीयते तु महीतले ॥ ८ ॥
सुशान्तिर्देवराट् कान्तः सुशान्तिं स प्रयच्छति ।
सहितः शिवसत्याद्यै स्तथैव वशवर्त्तिनः ॥ ९ ॥
अजः परशुचिर्दिव्यो महाबलपराक्रमाः ।
पुत्रास्तस्य मनोरासन् विख्याताख्रिदशोपमाः॥१०॥
तत्सूतिसम्भवभूमिः पालिताभून्नरेश्वरः ।
यावन्मन्वन्तरं तस्य मनोरुत्तमतेजसः ॥११॥
चतुर्युगाणां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादिसंज्ञानां यान्युक्तानि युगे मया ॥१२॥
स्वतेजसा हि तपसो वरिष्ठस्य महात्मनः ।
तनयाश्चान्तरे तस्मिन् सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥१३॥
तृतीयमेतत् कथितं तव मन्वन्तरं मया ।
तामसस्य चतुर्थन्तु मनोरन्तरमुच्यते ॥१४॥
वियोनिजन्मनो यस्य यशसा द्योतितं जगत् ।
जन्म तस्य मनोर्ब्रह्मन् श्रूयतां गदतो मम ॥१५॥
अतीन्द्रियमशेषाणाममूनां चरितं तथा ।
तथा जन्मापि विज्ञेयं प्रभावश्च महात्मनाम् ॥१६॥

गण यज्ञ में भोग करने वाले थे। उस श्रेष्ठ मनु के मन्वन्तर में सब बारह गण थे ॥ ६ ॥ उनके तीनों लोक में गुरु महाभाग, सुशान्ति नाम इन्द्र हुए जो कि सौ यज्ञ करके इन्द्रत्व को प्राप्त हुए थे ॥७॥ इन के नाम के अक्षरों को पृथ्वीतल पर अमङ्गल के नाश करने के लिये अब तक मनुष्य लोग गाते हैं॥ वे कहते हैं कि देवराट् सुशान्ति शिव, सत्य और वशवर्ती देवताओं के सहित हमको सुख और शान्ति दें ॥९॥ उस मनु के देवताओंके सदृश तीन महाबली और पराक्रमी पुत्र अज, परशुचि और दिव्य नाम वाले हुए ॥ १० ॥ उत्तम मनु का जब तक मन्वन्तर रहा तब तक उसी के वंश के राजा लोग पृथ्वी पर शासन करते रहे ॥ ११ ॥ जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूँ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारों युगोंके इकत्तर चतुर्युग एक मन्वंतर में होते हैं ॥१२॥ महात्मा वशिष्ठ के तेजस्वी सात पुत्र उस मन्वन्तर में सप्तर्षि कहलाये ॥ १३ ॥ इस प्रकार मैंने तीसरे मन्वन्तर का हाल कह दिया। अब तामस नाम चौथे मन्वन्तरको कहता हूँ ॥१४॥ हे क्रौष्टुकि मुनि ! जिस मनु का जन्म मनुष्येतर योनि में हुआ था और जिसके यश से जगत प्रकाशित होगया था उसका वर्णन मुझसे सुनो ॥ सब महात्मा और जितेन्द्रिय मनुओं में तामसमनु का जन्म,प्रभाव और चरित्र अत्यन्त उत्तमहै॥१६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में औत्तम मन्वन्तर नाम ७३वाँ अध्याय समाप्त ।

चौहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

राजाभूद्भुवि विख्यातः स्वराष्ट्रो नाम वीर्य्यवान् ।
अनेकयज्ञकृत् प्राज्ञः संग्रामेष्वपराजितः ॥ १ ॥
तस्यायुः सुमहत् प्रादात् मन्त्रिणाराधितो रविः ।
पत्नीनाञ्च शतं तस्य धन्यानामभवत् द्विज ॥ २ ॥
तस्य दीर्घायुषः पत्न्यो नातिदीर्घायुषो मुने ।
कालेन जग्मुर्निधनं भृत्य-मन्त्रिजनास्तथा ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पृथ्वी पर स्वराष्ट्रनाम एक बड़ा बलवान् राजा हुआ जिसने अनेक यज्ञ किये और जो संग्रामों में पराजित न हुआ ॥ १ ॥ मन्त्रों से आराधित सूर्यने उसको बड़ी आयु प्रदान की। हे द्विज ! उसके सौ पत्नियाँ बड़ी पतिव्रता हुईं ॥ २ ॥ हे क्रौष्टुकि ! यद्यपि वह दीर्घायु था परन्तु उसकी स्त्रियों की अवस्था अधिक न निकली जो कि समय पाकर मृत्यु को प्राप्त होगईं और इसी प्रकार धीरे धीरे राजा के मन्त्री और सेवक भी मरगये ॥ ३ ॥

स भार्य्याभिस्तथायुक्तो भृत्यैश्च सहजन्मभिः ।
उद्विग्नचेताः सम्प्राप वीर्य्यहानिमहर्निशम् ॥ ४ ॥
तं वीर्य्यहीनं निभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तं सुदुःखितम् ।
अनन्तरो विमर्दाख्यो राज्याच्च्यावितवांस्तदा ॥५॥
राज्याच्च्युतं सोऽपि वनं गत्वा निर्विण्णमानसः ।
तपस्तेपे महाभागो वितस्तापुलिने स्थितः ॥ ६ ॥
ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षास्वभ्रङ्कपाशिकः ।
जलशायी च शिशिरे निराहारो यतव्रतः ॥ ७ ॥
ततस्तपस्यतस्तस्य प्रावृट्काले महाप्लवः ।
बभूवानुदिनं मेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥ ८ ॥
न दिग्विज्ञायते पूर्व्वा दक्षिणा वा न पश्चिमा ।
नोत्तरा तमसा सर्व्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥ ६ ॥
ततोऽतिप्लवने भूपः स नद्याः प्रेरितस्तटम् ।
प्रार्थयन्नपि नावाप ह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥१०॥
अथ दूरे जलौघेन ह्रियमाणो महीपतिः ।
आससाद जले रौहीं स पुच्छे जगृहे च ताम् ॥११॥
तेन प्लवेन स ययावुह्यमानो महीतले ।
इतश्चेतश्चान्धकारे आससाद तटं ततः ॥१२॥
विस्तारि पङ्कमत्यर्थं दुस्तरं स नृपस्तरन् ।
तथैव कृष्यमाणोऽन्यद्रम्यं वनमवाप सः ॥१३
तत्रान्धकारे सा रौही चकर्ष वसुधाधिपम् ।
पुच्छे लग्नं महाभागं कृशं धमनिसन्ततं ॥१४
तस्याश्च स्पर्शसम्भूतामवापमुदमुत्तमाम् ।
सोऽन्धकारे भ्रमन् भूयो मदनाकृष्टमानसः ॥१५
विज्ञाय सानुरागं तं पृष्ठस्पर्शनतत्परम् ।
नरेन्द्रं तद्वनस्यान्तः सा मृगी तमुवाच ह ॥१६॥
किं पृष्ठं वेपथुमता करेण स्पृशसे मम ।
अन्यथैवास्य कार्य्यस्य सञ्जाता नृपते गतिः ॥१७
नास्थाने वो मनो यातं नागम्याहं तवेश्वर ।
किन्तु त्वत्सङ्गमे विघ्नमेष लोलः करोति मे ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मृग्याश्च जगतीपतिः ।
जातकौतूहलो रौहीमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥

स्त्रियों तथा सेवकादिकों के मरने से राजा दिन रात उदास रहने लगा जिससे कि वह बलहीन होता गया ॥४॥ सेवकों और मन्त्री आदिकों से विहीन राजा बहुत दुःखित और बलहीन होगया और उसको विमर्द नाम राजा ने राज्य से च्युत कर दिया ॥ ५॥ राज्य से च्युत होकर वह राजा विरक्त होकर वितस्ता नदी के किनारे तप करने लगा ॥ ६ ॥ गर्मी की ऋतु में वह पाँचों अग्नियां तपता तथा वर्षा ऋतु में भीगता था और जाड़ों में वह निराहार रहकर जल में शयन करता था ॥७॥ वर्षा ऋतुमें एक बार उसके तप करते हुए निरंतर बरसते हुए मेघों ने इतनी वृष्टि की कि जलार्णव होगया ॥ ८ ॥ उस समय उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम आदि किसी दिशा का ज्ञान न होता था और सर्वत्र अँधेरा छागया ॥ ९ ॥ उस नदी के तट पर जलार्णव में राजा के दुःखित होकर प्रार्थना करने पर भी कोई ठिकाना न मिला ॥ १० ॥ वह राजा उस जलार्णव में बहुत दूरतक बहा चलागया कि जल में उसको एक हरिणी मिल गई जिसको कि उसने पूँछ से पकड़ लिया ॥११॥ फिर उस जल में डूबते उछलते हुए हरिणी के सहारे से राजा नदी के तट पर पहुँच गया ॥ १२ ॥ फिर कीचड़ और दुस्तर दलदल को पार करके वह हरिणी राजा को एक दूसरे रमणीक वन में लेगई ॥ १३ ॥ पूंछ को पकड़े हुए वह भाग्यवान् राजा हरिणी द्वारा अन्धकार में बहुत दूरतक खींचा गया जिस से कि वह अत्यन्त थक गया ॥ १४ ॥ उस हरिणी के स्पर्श से राजा को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ और उस अन्धकार में घूमते हुए उसको कामदेव ने आकृष्ट कर लिया ॥१५॥ राजा के अनुराग और पीठ के स्पर्श करने आदि को जानकर उस हरिणी ने राजा से कहा ॥१६॥ हे राजन्! आप कामासक्त होकर हाथ से मेरी पीठ को क्यों सिराते हैं, इस कार्य के करने से आपका सत्कर्म नष्ट होजायगा ॥ हे प्रभु! आपने अनुचित स्थान में चित्त को नहीं लगाया है और मैं आपके लिये अगम्या भी नहीं हूँ परन्तु मेरे आपके सङ्गम में लोल विघ्न डालते हैं ॥ १८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उस मृगी के यह वचन सुनकर राजा को बड़ा कौतूहल हुआ और वे उस हरिणी से यह वचन बोले ॥ १९ ॥

राजोवाच

का त्वं ब्रूहि मृगी वाक्यं कथं मानुषवद्वद ।
कश्चैव लोलो यो विघ्नं त्वत्सङ्गे कुरुते मम॥२०॥

मृग्युवाच

अहं ते दयिता भूप प्रागासमुत्पलावती ।
भार्य्या शताग्रमहिषी दुहिता दृढ़धन्वनः ॥२१॥

राजोवाच

किन्तु यावत् कृतं कर्म्म येनेमां योनिमागता ।
पतिव्रता धर्म्मपरा सा चेत्थं कथमीदृशी ॥२२॥

मृग्युवाच

अहं पितृगृहे बाला सखीभिः सहिता वनम् ।
रन्तुं गता ददर्शैकं मृगं मृग्या समागतम् ॥२३॥
ततः समीपवर्त्तिन्या मया सा ताड़िता मृगी ।
मया त्रस्ता गतान्यत्र क्रुद्धः प्राह ततो मृगः ॥२४॥
मूढ़े किमेवं मत्तासि धिक् ते दौःशील्यमीदृशम् ।
आधानकालो येनायं त्वया मे विफलीकृतः ॥२५॥
वाचं श्रुत्वा ततस्तस्य मानुषस्येव भाषतः ।
भीता तमब्रवं कोऽसीत्येतां योनिमुपागतः ॥२६॥
ततः स प्राह पुत्रोऽहमृषेर्निर्वृतिचक्षुषः ।
सुतपा नाम मृग्यान्तु साभिलाषो मृगोऽभवम्॥२७॥
इमाञ्चानुगतः प्रेम्णा वाञ्छितश्चानया वने ।
त्वया वियोजिता दुष्टे तस्माच्छापं ददामि ते॥२८॥
मया चोक्तं तवाज्ञानादपराधः कृतो मुने ।
प्रसादं कुरु शापं मे न भवान् दातुमर्हति ॥२९॥
इत्युक्तः प्राह मां सोऽपि मुनिरित्थं महीपते ।
न प्रयच्छामि शापं ते यद्यात्मानं ददामि ते ॥३०॥
मया चोक्तं मृगी नाहं मृगरूपधरा वने ।
लप्स्यसेऽन्यां मृगीं तावन्मयि भावो निवर्त्त्यताम् ३१
इत्युक्तः कोपरक्ताक्षः स प्राह स्फुरिताधरः ।
नाहं मृगी त्वयेत्युक्तं मृगी मूढ़े भविष्यसि ॥३२॥
भृशं मव्यथिता प्रणम्य मुनिमब्रवम् ।

राजा बोले—

हे हरिणी ! यह तुम क्या कहती हो और मनुष्य की तरह किस प्रकार बोलती हो, और यह लोल कौन है जो मेरे और तुम्हारे सङ्गम में विघ्न डालता है ? ॥ २० ॥

मृगी बोली —

हे राजन् ! मैं उत्पलावती नाम तुम्हारी पहिली स्त्री हूं जो कि दृढ़धन्वा की पुत्री और तुम्हारी सौ रानियों में अग्रणी थी ॥२१॥

राजा बोले—

तू तो अत्युत्कृष्ट पतिव्रत धर्म के पालने वाली थी फिर तूने ऐसा कौनसा कर्म किया जिससे यह योनि पाई ॥ २२ ॥

मृगी बोली—

पिता के घर पर एक समय बाल्यावस्था में अपनी सखियों के साथ खेलने को वन में गई तो वहाँ हरिणी के साथ एक मृग को देखा ॥ २३ ॥ जब वह मृगी मेरे पास आई तो मैंने उसे मारा और मेरे डर से वह दूर चलीगई जिससे क्रोधित होकर वह मृग बोला ॥ २४ ॥ हे मूर्खे ! तू इतनी प्रमत्त क्यों है ? तेरी इस दुष्टता को धिक्कार है कि तूने मेरे गर्भाधान करनेका समय विफल करदिया ॥ मनुष्य की तरह उसको बोलते हुए सुनकर मैं डर गई और मैंने उससे पूछा कि तुम कौन हो और इस योनि में किस तरह प्राप्त हुए ॥२६॥ वह बोला कि मैं निवृत्तिचक्षुप नाम ऋषि का पुत्र हूँ और मेरा नाम सुतपा है । इस मृगी से भोग करने की इच्छा से मैं हरिण होगया ॥ २७॥ मैं इस हरिणी को बहुत चाहता हूँ और यह भी मुझसे प्रीति रखती है । हे दुष्टे ! तूने इससे मेरा वियोग करा दिया इसलिये तुझे मैं शाप देता हूँ ॥२८॥ मैंने कहा कि हे मुनि ! अज्ञान से मैंने आपका यह अपराध किया है । कृपा करें और आप मुझे शाप न दें ॥ हे राजन् ! मेरे ऐसा कहने पर वह मुनि कहनेलगा कि मैं तुझे शाप न दूँगा परन्तु मैं तुझे अपनी आत्मा देता हूँ ॥ ३० ॥ मैंने उस मृगरूपी मुनि से कहा कि मैं हरिणी नहीं हूँ । तू दूसरी हरिणी की इच्छा कर तथा मुझसे ऐसा भाव मत रख ॥ ३१ ॥ जब मैंने उससे ऐसा कहा तब क्रोधसे उसके होठ काँपने लगे और आँखें लाल होगईं । वह बोला, हे मूर्खे ! जो तू यह कहती है कि मैं मृगी नहीं हूँ सो तू मृगीही होगी॥३२॥ फिर अत्यन्त दुःखित होकर मैंने उस क्रुद्ध हुए मुनि को प्रणाम कर बार-बार कहा

स्वरूपस्थमतिक्रुद्धं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥३३॥
बालानभिज्ञा वाक्यानां ततःप्रोक्तमिदं मया ।
पितर्य्यसति नारीभिर्व्रियते हि पतिः स्वयम् ॥३४॥
सति ताते कथञ्चाहं वृणोमि मुनिसत्तम ।
सपराधाथवा पादौ प्रसीदेश नमाम्यहम् ॥३५॥
प्रसीदेति प्रसीदेति प्रणताया महामते ।
इत्थं लालप्यमानायाः स प्राह मुनिपुङ्गवः ॥३६॥
न भवत्यन्यथा प्रोक्तं मम वाक्यं कदाचन ।
मृगी भविष्यसि मृता वनेऽस्मिन्नेव जन्मनि ॥३७॥
मृगत्वे च महाबाहुस्तव गर्भमुपैष्यति ।
लोलो नाम मुनेः पुत्रः सिद्धवीर्य्यस्य भाविनि॥३८॥
जातिस्मरा भवित्री त्वं तस्मिन् गर्भमुपागते ।
स्मृतिं प्राप्य तथा वाचं मानुषीमीरयिष्यसि ॥३९॥
तस्मिन् जाते मृगीत्वात् त्वं विमुक्ता पतिनार्चिता ।
लोकानवाप्स्यसि प्राप्या ये न दुष्कृतकर्म्मभिः॥४०॥
सोऽपि लोलो महावीर्य्यः पितृशत्रून् निपात्य वै ।
जित्वा वसुन्धरां कृत्स्नां भविष्यति ततो मनुः॥४१॥
एवं शापमहं लब्ध्वा मृता तिर्य्यक्त्वमागता ।
त्वत्संस्पर्शाच्च गर्भो सौ सम्भूतो जठरे मम ॥४२॥
अतो ब्रवीमि नास्थाने तव यातं मनो मयि ।
न चाप्यगम्यो गर्भस्थो लोलो विघ्नं करोत्यसौ॥४३॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्तस्ततः सोऽपि राजा प्राप्य परां मुदम् ।
पुत्रो ममारीन् जित्वेति पृथिव्यां भविता मनुः ४४॥
ततस्तं सुषुवे पुत्रं सा मृगी लक्षणान्वितम् ।
तस्मिन् जाते च भूतानि सर्व्वाणि प्रययुर्मुदम्॥४५॥
विशेषतश्च राजासौ पुत्रे जाते महाबले ।
सा विमुक्ता मृगी शापात् प्राप लोकाननुत्तमान्॥४६॥
ततस्तस्यर्षयः सर्व्वे समेत्य मुनिसत्तम ।
अवेक्ष्य भाविनीमृद्धिं नाम चक्रुर्महात्मनः ॥४७॥
तामसीं भजमानायां योनिं मातर्य्यजायते ।
तमसा चावृते लोके तामसोऽयं भविष्यति ॥४८॥
ततः स तामसस्तेन पित्रा संवर्द्धितो वने ।

कि मुझपर कृपा कीजिये ॥ ३३ ॥ मैं बालिका हूँ, अज्ञानता में मैंने यह वचन कह दिये। जिस नारी का पिता नहीं होता है वह स्त्री अपना वर स्वयं चुन लेती है ॥३४॥ मेरा पिता मौजूद है ऐसी दशा में हे मुनिसत्तम! मैं आपको किस तरह वरूं। मैं आपके चरणों में नमस्कार करती हूँ, मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ३५ ॥ जब मैंने प्रणत होकर बार-बार कहा कि आप मुझ पर प्रसन्न हों तब वह मुनिसत्तम मुझसे बोले ॥३६॥ मेरा कहा हुआ कभी अन्यथा नहीं हो सकता। मरने पर तू इस वन में अवश्य मृगी होगी ॥ ३७ ॥ हे भाविनी ! जब तू हरिणी का जन्म धारण करलेगी तब सिद्ध वीर्य मुनि के पुत्र लोल तेरे गर्भ से उत्पन्न होंगे ॥ ३८ ॥ उसके गर्भ में आते ही तुझको पूर्वजन्म की स्मृति होजावेगी और उस स्मृति के कारण तू मनुष्य की तरह बोलेगी ॥३९॥ लोल के उत्पन्न होते ही तू हरिणी की योनि से छूटकर पति से पूजित हो तू उन लोकों को जायगी जिनको कि अत्यन्त दुष्कर तप आदि करके भी लोग नहीं पाते हैं ॥ ४० ॥ वह बलवान् लोल पिता के शत्रुओं को मार कर संपूर्ण पृथ्वी को जीतेंगे और मनु पद को प्राप्त होंगे॥४१॥ उसी शाप के कारण मैं मरकर तिर्य्यक् योनि में प्राप्त हुई हूँ। हे राजन्! मेरे उदर में आपके स्पर्श से यह गर्भ ठहर गया है ॥ ४२॥ इसी से मैं कहती हूँ कि आपने अनुचित स्थान में अपना मन नहीं लगाया है तथा मैं आपसे अगम्या भी नहीं हूँ परन्तु गर्भ में स्थित लोल विघ्न करते हैं ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह सुनकर राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ कि उनका पुत्र शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी पर मनु होगा ॥४४॥ फिर उस मृगी ने अच्छे लक्षणों से युक्त एक पुत्र को उत्पन्न किया जिसके उत्पन्न होते ही सब प्राणियों को प्रसन्नता हुई ॥ ४५ ॥ और विशेष आनन्द राजाको उस महाबली पुत्रके उत्पन्न होने से हुआ। वह हरिणी भी बन्धन से मुक्त होकर उत्तम लोकों को गई ॥४६॥ हे मुनिसत्तम! फिर सब ऋषि उसके पास आये और उस महात्मा पुत्र को ऋद्धियों से युक्त देखकर उसका नाम रखने लगे ॥४७॥ इसकी उत्पत्ति तामसी योनि में प्राप्त माता से हुई है और इसके उत्पन्न होने के समय संसार में अँधेरा छागया था अतः इसका नाम तामस होगा ॥४८॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! इसके अनन्तर उस तामस को उसके पिता ने उसी वन

जातबुद्धिरुवाचेदं पितरं मुनिसत्तम ॥४९॥
कस्त्वं तात कथं चाहं पुत्रो माता च का मम ।
किमर्थमागतश्च त्वमेतत् सत्यं ब्रवीहि मे ॥५०॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः पिता यथावृत्तं स्वराज्यच्यावनादिकम् ।
तस्याचष्टे महाबाहुः पुत्रस्य जगतीपतिः ॥५१॥
श्रुत्वा तत् सकलं सोऽपि समाराध्य च भास्करम् ।
अवाप दिव्यान्यस्त्राणि स संहाराण्यशेषतः ॥५२॥
कृतास्त्रस्तानरीन् जित्वा पितुरानीय चान्तिकम् ।
अनुज्ञातान् मुमोचाथ तेन स्वं धर्म्ममास्थितः ॥५३॥
पितापि तस्य स्वान् लोकां स्तपोयज्ञसमज्जितान् ।
विसृष्टदेहः सम्प्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रमुखं सुखम् ॥५४॥
जित्वा समस्तां पृथिवीं तामसाख्यः स पार्थिवः ।
तामसाख्यो मनुरभूत् तस्य मन्वन्तरं शृणु ॥५५॥
ये देवा यत्पतियश्च देवेन्द्रो ये तथर्षयः ।
ये पुत्राश्च मनोस्तस्य पृथिवीपरिपालकाः ॥५६॥
सत्यास्तथान्ये सुधियः सुरूपा हरयस्तथा ।
एते देवगणास्तत्र सप्तविंशतिका मुने ॥५७॥
महाबलो महावीर्य्यः शतयज्ञोपलक्षितः ।
शिखिरिन्द्रस्तथा तेषां देवानामभवद्विभुः ॥५८॥
ज्योतिर्द्धामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ।
पीवरश्च तथा ब्रह्मन् सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥५९॥
नरः क्षान्तिः शान्त-दान्त-जानु-जङ्घादयस्तथा ।
पुत्रास्तु तामसस्यासन् राजानः सुमहाबलाः ॥६०॥

में पाला । जब तामस में बुद्धि का उदय हुआ तब वह अपने पिता से बोला ॥ ४९ ॥ हे तात ! तुम कौन हो, मैं किस तरह तुम्हारा पुत्र हूँ तथा मेरी माता कौन है और आप किस कारणसे यहाँ आये हुए हैं यह सब सत्य-सत्य मुझसे कहिये ॥५०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब पिता ने अपने राज्य से च्युत होने आदि से लेकर जो वृत्तान्त था वह सब अपने महाबली पुत्र को कह सुनाया ॥५१॥ उस सब वृत्तान्त को सुनकर उसने सूर्य की आराधना की और उनसे दिव्य अस्त्रों तथा उनके चलाने की विद्या को ग्रहण किया ॥५२॥ वह उन अस्त्रों से सब शत्रुओं को जीतकर पिता के समीप ले आया और उनकी आज्ञा से शत्रुओं को छोड़कर अपने धर्म कार्य में स्थित हुआ ॥५३॥ उसका पिता भी तप यज्ञ आदि करके और अपने पुत्र का मुख देखकर सुखपूर्वक शरीर त्याग कर परलोक को गया ॥ ५४ ॥ तामस नाम उस राजा ने समस्त पृथ्वी को जीत लिया और वह तामस मनु के नाम से विख्यात हुआ । अब उसके मन्वन्तर को सुनो ॥५५॥ उस मन्वंतर में जो देवता, उनके स्वामी, देवेन्द्र और ऋषि तथा उस मनु के पुत्र जो राजा हुए उनको सुनो ॥५६॥ उस मन्वन्तर में सुधि, सुरूप और हर आदि सत्ताईस देवतागणहुए ॥५७॥ शिखि नाम महाबली और पराक्रमी राजा सौ यज्ञों को करके उन देवताओं का इन्द्र हुआ ॥५८॥ हे ब्रह्मन् ! ज्योतिधर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वलक और पीवर ये ही सात सप्तर्षि हुए ॥ ५९॥ तामस के पुत्र नर, क्षान्ति शान्त, दान्त, जानुजंघ आदि महाबली राजा हुए ॥ ६० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें तामस मन्वन्तर नाम ७४वाँ अ० समाप्त ।

पिचहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

पञ्चमोऽपि मनुर्ब्रह्मन् रैवतो नाम विश्रुतः ।
तस्योत्पत्तिं विस्तरशः शृणुष्व कथयामि ते ॥ १ ॥
ऋषिरासीन्महाभाग ऋतवागिति विश्रुतः ।
तस्यापुत्रस्य पुत्रोऽभूद्रेवत्यन्ते महात्मनः ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकिजी ! पाँचवां मनु रैवत नाम से विख्यात हुआ, उसकी उत्पत्ति मैं विस्तार पूर्वक कहता हूं, सुनिये ॥ १ ॥ ऋतवाक नाम एक ऋषि थे जिनके पहिले कोई पुत्र न था परन्तु फिर उनके एक पुत्र रेवती नक्षत्र के अन्त में हुआ ॥ २ ॥ हे

स तस्य विधिवच्चक्रे जातकर्म्मादिकाः क्रियाः ।
तथोपनयनादींश्च स चाशीलोऽभवन्मुने ॥ ३ ॥
यतः प्रभृति जातोऽसौ ततः प्रभृति सोऽप्यृषिः ।
दीर्घरोगपरामर्षमवाप मुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥
माता तस्य परामार्त्तिं कुष्ठरोगादिपीड़िता ।
जगाम स पिता चास्य चिन्तयामास दुःखितः ॥५॥
किमेतदिति सोऽप्यस्य पुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्म्मतिः ।
जग्राह भार्य्यामन्यस्य मुनिपुत्रस्य सम्मुखीम् ॥ ६ ॥
ततो विषण्णमनसा ऋतवागिदमुक्तवान् ।
अपुत्रता मनुष्याणां श्रेयसे न कुपुत्रता ॥ ७ ॥
कुपुत्रो हृदयायासं सर्व्वदा कुरुते पितुः ।
मातुश्च स्वर्गसंस्थांश्च स्वपितॄन् पातयत्यधः ॥ ८ ॥
सुहृदां नोपकाराय पितॄणाञ्च न तृप्तये ।
पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म तस्य दुष्कृतकर्म्मणः ॥ ९ ॥
धन्यास्ते तनया येषां सर्व्वलोकाभिसम्मताः ।
परोपकारिणः शान्ताः साधुकर्म्मण्यनुव्रताः ॥१०॥
अनिर्वृतं तदा मन्दं परलोकपराङ्मुखम् ।
नरकाय न सद्गत्यै कुपुत्रालम्बि जन्मनः ॥११॥
करोति सुहृदां दैन्यमहितानां तथा मुदम् ।
अकाले च जरां पित्रोः कुपुत्रः कुरुते ध्रुवम् ॥१२॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं सोऽत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्य चरितैर्मुनिः ।
दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तं गर्गमपृच्छत ॥१३॥

ऋतवागुवाच

सुव्रतेन पुरा वेदा गृहीता विधिवन्मया ।
समाप्य वेदान् विधिवत् कृतो दारपरिग्रहः ॥१४॥
सदारेण क्रियाः कार्य्याः श्रौताः स्मार्त्ता वषट्क्रियाः ।
न मे न्यूनाः कृताः काश्चिद्यावदद्य महामुने ॥१५॥
गर्भाधानविधानेन न काममनुरुन्धता ।
पुत्रार्थं जनितश्चायं पुन्नाम्नो बिभ्यता मुने ॥१६॥
सोऽयं किमात्मदोषेण मम दोषेण वा मुने ।
अस्मद्दुःखावहो जातो दौःशील्याद्बन्धुशोकदः १७

गर्ग उवाच

रेवत्यन्ते मुनिश्रेष्ठ जातोऽयं तनयस्तव ।

मुनि ! फिर उन्होंने उस लड़के की जातकर्म आदि क्रियायें और उपनयन संस्कार कराये परन्तु वह शीलवान् न हुआ ॥३॥ जिस समय से उस पुत्र की उत्पत्ति हुई उसी समय से वे ऋषि दीर्घ रोग और दुःख से घिर गये ॥४॥ उस पुत्रकी माता कुष्ट रोग से पीड़ित होकर बहुत दुःखी होगई और ऋषि भी इससे दुःखी होकर सोचने लगे ॥ ५ ॥ यह क्या है ? यह पुत्र तो अत्यन्त दुर्बुद्धि है कि इसने दूसरे मुनि पुत्र की भार्या सम्मुखी को ग्रहण करलिया ॥६॥ तब खिन्न-चित्त होकर ऋतवाक् बोले कि मनुष्यों के लिये कुपुत्र होने से बिना पुत्र के रहना उत्तम है ॥७॥ एक कुपुत्र माता-पिताके हृदय को सदैव संताप देता है और पितरों को भी स्वर्ग से नीचे गिरा देता है ॥८॥ दुष्ट पुत्र से न तो मित्रों का उपकार होता है और न पितरों की ही तृप्ति होती है। माता पिता के तो वह दुःख का कारण ही है, अतः ऐसे कुपुत्र को धिक्कार है ॥ ९ ॥ वे ही पुत्र धन्य हैं जिनकी सब लोग प्रशंसा करें तथा जो परोपकारी, शान्त चित्त और साधु कर्मों में प्रवृत्त हों ॥ १० ॥ कुपुत्र परलोक से विमुख होता है इस कारण उस मन्द के माता-पिता की सद्गति नहीं होती और वे नरक में जाते हैं ॥११॥ वह पुत्र मित्रों को दुःख और शत्रुओं को आनन्द देता है तथा माता पिता को समय आने से पहिले ही वृद्धा बना देता है ॥१२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार उस दुष्ट पुत्र के चरित्र से दुखित चित्त होकर मुनि ऋतवाक्ने इसका वृत्तान्त गर्ग मुनि से पूछा ॥ १३ ॥

ऋतवाक् बोले—

पूर्व काल में व्रती होकर मैंने विधिवत् वेदों का अध्ययनकिया और अध्ययन समाप्तकर विधिवत् अपना विवाह किया ॥१४॥ हे महामुनि ! स्त्री सहित मैंने श्रौत, स्मार्त और वषट् क्रियाओं को किया। मैंने किसी भी क्रिया को आज तक अपूर्ण न छोड़ा ॥१५॥ हे मुनि ! पुन्नाम नरक के डर से पुत्र प्राप्ति के लिये विधि पूर्वक गर्भाधान किया तथा कामके वश होकर कभी मैथुन न किया ॥१६॥ हे मुनि ! अपने दोष से अथवा मेरे दोष से किस प्रकार यह पुत्र उत्पन्न होगया है जिसके कि दुष्ट स्वभाव से हम तथा सब बन्धु-बान्धव दुखी हैं ॥

गर्ग बोले—

हे मुनिवर ! यह पुत्र रेतवी नक्षत्र के अन्त में

तेन दुःखाय ते दुष्टे काले यस्मादजायत ॥१८॥
न तेऽपचारो नैवास्य मातुर्नायं कुलस्य ते।
तस्य दौःशील्यहेतुस्तु रेवत्यन्तमुपागतम् ॥१९॥

ऋतवागुवाच

यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्यन्तसमुद्भवम्।
दौःशील्यमेतत् सा तस्मात् पततामाशु रेवती॥२०॥

मार्कण्डेय उवाच

तेनैवं व्याहृते शापे रेवत्यृक्षं पपात ह।
पश्यतः सर्व्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥२१॥
रेवत्यृक्षञ्च पतितं कुमुदाद्रौ समन्ततः।
भासयामास सहसा वन-कन्दर-निर्झरम् ॥२२॥
कुमुदाद्रिश्च तत्पातात् ख्यातो रैवतकोऽभवत्।
अतीव रम्यः सर्व्वस्यां पृथिव्यां पृथिवीधरः ॥२३॥
तस्यर्क्षस्य तु या कान्तिर्जाता पङ्कजिनी सरः।
ततो जज्ञे तदा कन्या रूपेणातीव शोभना ॥२४॥
रेवतीकान्तिसम्भूतां तां दृष्ट्वा प्रमुचो मुनिः।
तस्या नाम चकारेत्थं रेवती नाम भागुरे ॥२५॥
पोषयामास चैवैतां स्वाश्रमाभ्याससम्भवाम्।
प्रमुचः स महाभागस्तस्मिन्नेव महाचले ॥२६॥
तान्तु यौवनिनीं दृष्ट्वा कन्यकां रूपशालिनीम्।
स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या भर्त्ता भवेदिति ॥२७॥
एवं चिन्तयतस्तस्य ययौ कालो महान् मुने।
न चाससाद सदृशं वरं तस्या महामुनिः ॥२८॥
ततस्तस्या वरं प्रष्टुमग्निं स प्रमुचो मुनिः।
विवेश वह्निशालां वै प्रष्टारं प्राह हव्यभुक् ॥२९॥
महाबलो महावीर्य्यः प्रियवाग्धर्म्मवत्सलः।
दुर्गमो नाम भविता भर्त्ता ह्यस्या महीपतिः ॥३०॥

मार्कण्डेय उवाच

अनन्तरञ्च मृगयाप्रसङ्गेनागतो मुने।
तस्याश्रमपदं धीमान् दुर्गमः स नराधिपः ॥३१॥
प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः।
पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२॥
स प्रविश्याश्रमपदं तां तन्वीं जगतीपतिः।
पश्यमानस्तमृषिं प्रियेत्यामन्त्र्य पृष्टवान् ॥३३॥

उत्पन्न हुआ है। चूँकि यह दुष्ट कालमें उत्पन्न हुआ है अतः यह दुःख दे रहा है ॥१८॥ इसमें तुम्हारा, इसका, माता का अथवा कुल का दोष नहीं है। इसके दुःशील का हेतु वही रेवती नक्षत्र है ॥१९॥

ऋतवाक् बोले—

जो कि मेरा एक पुत्रभी रेवती नक्षत्र के अन्त में उत्पन्न होने से दुःशील को प्राप्त होगया तो इस रेवती नक्षत्र का पतन होजाय ॥२०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उनके शाप देते ही रेवती नक्षत्र सब लोगों के विस्मय पूर्वक देखते-देखते स्वर्ग से नीचे गिर पड़ा ॥२१॥ वह रेवती नक्षत्र कुमुदाद्रि पर्वत पर गिरा और उसके गिरते ही सहसा सब वन, कन्दरा और झरने प्रकाशित होगये ॥२२॥ इसके बाद से कुमुद पर्वत रैवतक नाम से विख्यात हुआ और तबही से वह पर्वत पृथ्वीपर सब पर्वतोंसे अधिक रमणीक होगया ॥२३॥ और उस नक्षत्र की कान्ति से वहाँ पर पङ्कजिनी नाम एक सरोवर प्रगट हुआ जिससे कि एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई ॥२४॥ प्रमुचि मुनि ने रेवती नक्षत्र की कान्ति से उत्पन्न उस कन्या को देखकर उसका नाम रेवती रक्खा ॥ २५ ॥ और उसी पर्वत पर स्थित अपने आश्रम में उसको लाकर प्रमुचि मुनि ने उसका पालन पोषण किया ॥ २६ ॥ जब वह सुन्दरी कन्या युवती हुई तो वे मुनि सोचने लगे कि इसका स्वामी कौन होगा ॥२७ ॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! उनको इस प्रकार सोचते हुए बहुत काल बीत गया परंतु महामुनि ने उस कन्या के योग्य वर न पाया ॥२८॥ इसके अनन्तर प्रमुचि मुनि उसका वर कौन होगा यह अग्नि से पूछने के लिये अग्निशालामें गये और वहाँ अग्नि से पूछा तो अग्नि ने कहा ॥ २९ ॥ इस कन्या का स्वामी महाबलवान् पराक्रमी, प्रियवचन बोलने वाला धर्मात्मा राजा दुर्गम होगा ॥३०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि मुनि! इसके बाद मृगया करते हुए उनके आश्रम पर राजा दुर्गम प्रसङ्गवश आये ॥३१॥ यह बलवान् और पराक्रमी राजा दुर्गम प्रियव्रत के वंश में कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न राजा विक्रमशील का पुत्र था ॥ ३२॥ वह राजा उस आश्रम में प्रवेश कर ऋषि को न देखकर उस सुन्दरी से 'हे प्रिया' यह कहकर पूछने लगा ॥३३॥

राजोवाच

क्व गतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः ।
तं प्रणोतुमिहेच्छामि तत् त्वं मन्नूहि शोभने ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच

अग्निशालां गतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्य भाषितम् ।
प्रियेत्यामन्त्रणञ्चैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ॥३५॥
स ददर्श महात्मानं राजानं दुर्गमं मुनिः ।
नरेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ॥३६॥
तस्मिन् दृष्टे ततः शिष्यमुवाच स तु गौतमम् ।
गौतमानीयतां शीघ्रमर्घोऽस्य जगतीपतेः ॥३७॥
एकस्तावदयं भूपश्चिरकालादुपागतः ।
जामाता च विशेषेण योग्योऽर्घस्य मतो मम ॥३८॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स चिन्तयामास राजा जामातृकारणम् ।
विवेद च न तन्मौनी जगृहेऽर्घञ्च तं नृपः ॥३९॥
तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घं महामुनिः ।
स्वागतं प्राह राजेन्द्रमपि ते कुशलं गृहे ॥४०॥
कोषे बलेऽथ मित्रेषु भृत्यामात्ये नरेश्वर ।
तथात्मनि महाबाहो यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ॥४१॥
पत्नी च ते कुशलिनी यत एवानुतिष्ठति ।
पृच्छाम्यस्यास्ततो नाहं कुशलिन्योऽपरास्तव॥४२॥

राजोवाच

त्वत्प्रसादादकुशलं न क्वचिन्मम सुव्रत ।
जातकौतूहलश्चास्मि मम भार्य्यात्र का मुने । ४३॥

ऋषिरुवाच

रेवती सुमहाभागा त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी ।
तव भार्य्या वरारोहा तां त्वं राजन् न वेत्सि किम् ४४

राजोवाच

सुभद्रां शान्ततनयां कावेरीतनयां विभो ।
सुराष्ट्रजां सुजाताञ्च कदम्बाञ्च वरूथजाम् ॥४५॥
विपाठां नन्दिनीञ्चैव वेद्मि भार्य्यां गृहे द्विज ।
तिष्ठन्ति मे न भगवन् रेवतीं वेद्मि कान्वियम् ॥४६॥

ऋषिरुवाच

प्रियेति साम्प्रतं येयं त्वयोक्ता वरवर्णिनी ।

राजा बोले—

हे शोभने ! इस आश्रम से मुनिश्रेष्ठ कहाँ गये यह तुम बताओ मैं उनको प्रणाम करने आया हूँ।

मार्कण्डेयजी बोले—

अग्निशाला को गये हुए वे मुनि उसकी बात चीत और 'प्रिये' के सम्बोधन को सुनकर शीघ्र वहाँ से निकले ॥ ३५ ॥ फिर मुनि ने राज्यचिह्नों से युक्त और विनय से झुके हुए महात्मा राजा दुर्गम को देखा ॥३६॥ उसको देखकर मुनिने अपने शिष्य गौतम से कहा, "हे गौतम ! महाराजके लिये शीघ्र अर्घ्य लाओ" ॥ ३७ ॥ एक तो यह राजा बहुतदिन बाद आये हैं और दूसरे यह मेरे जामाता हैं अतः विशेष अर्घ्य के योग्य हैं यह मेरा मत है ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसपर राजा सोचनेलगे कि मैं इनका जामाता किस प्रकार हुआ ? परन्तु वे कुछ न बोले और अर्घ्य ग्रहण कर लिया ॥ ३९ ॥ जब राजा आसन पर बैठ गये और उन्होंने अर्घ्य ग्रहण करलिया तो महामुनि ने पूछा, "राजन् ! आपका स्वागत है कहिये घर पर तो कुशल है ? ॥ ४० ॥ हे राजन् ! अपने कोष, सेना, मित्रों, सेवकों, मन्त्रियों तथा अपनी भी कुशल कहिये ॥ ४१ ॥ आपकी स्त्री जो यहाँ है वह कुशल है, अब आपकी अन्य स्त्रियों की कुशलता पूछता हूँ ॥४२॥

राजा बोले—

हे सुव्रत ! आपकी कृपा से मेरे यहाँ कहीं भी अकुशल नहीं है । हे मुनि ! मुझको आश्चर्य है कि मेरी यहाँ कौनसी पत्नी है ॥४३॥

ऋषि बोले—

त्रिलोकी में सुन्दरी रेवती नाम अपनी सौभाग्यवती स्त्रीको हे राजन् ! तुम किस प्रकार नहीं जानते हो ? ॥ ४४ ॥

राजा बोले—

हे भगवन् ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा और वरूथजा ॥ ४५ ॥ तथा विपाठा और नन्दिनी ये ही भार्या मेरे घर पर हैं जिनको मैं जानता हूँ । हे भगवन् ! मेरे यहाँ पर रेवतीनाम कोई स्त्री नहीं है जिसको कि मैं जानूं ॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! जिस सुन्दर वर्ण वाली स्त्री से अभी तुमने प्रिये कहकर सम्बोधन किया था क्या

कं विस्मृतं ते भूपाल श्लाघ्येयं गृहिणी तव ॥४७॥

राजोवाच

सत्यमुक्तं मया किन्तु भावो दुष्टो न मे मुने ।

तात्र कोपं भवान् कर्त्तुमर्हत्यस्मात्तु याचितः ॥४८॥

ऋषिरुवाच

सत्यं ब्रवीषि भूपाल न भावस्तव दूषितः ।

व्याजहार भवानेतद्वह्निना नृप चोदितः ॥४९॥

मया पृष्टो हुतवहः कोऽस्या भर्त्तेति पार्थिव ।

भविता तेन चाप्युक्तो भवानेवाद्य वै वरः ॥५०॥

तद्गृह्यतां मया दत्ता तुभ्यं कन्या नराधिप ।

प्रियेत्यामन्त्रिता चेयं विचारं कुरुषे कथम् ॥५१॥

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽसावभवन्मौनी तेनोक्तः पृथिवीपतिः ।

ऋषिस्तथोद्यतः कर्त्तुं तस्या वैवाहिकं विधिम् ॥५२॥

समुद्यतं सा पितरं विवाहाय महामुने ।

उवाच कन्या यत् किंचित् प्रश्रयावनताननना ॥५३॥

यदि मे प्रीतिमांस्तात प्रसादं कर्त्तुमर्हसि ।

रेवत्यृक्षे विवाहं मे तत् करोतु प्रसादितः ॥५४॥

ऋषिरुवाच

रेवत्यृक्षं न वै भद्रे चन्द्रयोगि व्यवस्थितम् ।

अन्यानि सन्ति ऋक्षाणि सुभ्रु वैवाहिकानि ते ॥५५॥

कन्योवाच

तात तेन विना कालो विफलः प्रतिभाति मे ।

विवाहो विफले काले मद्विधायाः कथं भवेत् ॥५६॥

ऋषिरुवाच

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रेवतीं प्रति ।

चकार कोपं क्रुद्धेन तेनर्क्षं विनिपातितम् ॥५७॥

मया चास्मै प्रतिज्ञाता भार्य्येति मदिरेक्षणा ।

न चेच्छसि विवाहं त्वं सङ्कटं नः समागतम् ॥५८॥

कन्योवाच

ऋतवाक् स मुनिस्तात किमेवं तप्तवांस्तपः ।

उसको तुम भूलगये, वही तुम्हारी पुण्यवती स्त्री है॥

राजा बोले—

हे मुनि ! यह सत्य है कि मैंने उसको प्रिया कहकर सम्बोधन किया परन्तु मेरा भाव दुष्ट न था। मैं आपसे याचना करता हूँ कि आप मुझ पर क्रोध न करें ॥ ४८ ॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! आपके भाव में कोई दोष न था, आपने जो कुछ कहा था वह अग्नि की प्रेरणा से सत्य कहा था ॥४९॥ हे महाराज ! मैंने पहिले ही अग्नि से पूछा था कि इस कन्या का स्वामी कौन होगा जिसपर उन्होंने आपके ही लिये कहा था, अतः अब आपही इस कन्या के स्वामी हैं ॥ ५० ॥ हे राजन् ! अब मैं इस कन्याको आपके लिये देता हूँ, आप स्वीकार कीजिये। इसको 'प्रिये' सम्बोधन करके अब आप क्या विचार करते हैं ? ॥ ५१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

मुनि के ऐसा कहनेपर राजा चुप हो गये और मुनि उनके विवाह के निमित्त तैयारी करने लगे ॥ जब कन्या ने अपने पिता महामुनि को विवाह की तैयारी करते देखा तो वह अत्यन्त विनय पूर्वक उनसे बोली ॥ ५३ ॥ हे तात ! यदि आपकी प्रीति मुझमें है तो मेरे ऊपर कृपा करें और प्रसन्न हो कर मेरे विवाह को रेवती नक्षत्र में करें ॥ ५४ ॥

ऋषि बोले—

हे पुत्री ! रेवती नक्षत्र अब चन्द्रमण्डल में स्थित नहीं है। हे सुन्दरी ! तुम्हारे विवाहके लिये और भी नक्षत्र हैं ॥ ५५ ॥

कन्या बोली—

हे तात ! रेवती नक्षत्र के विना मुझको समय विफल मालुम होताहै, मुझ जैसी कन्याका विवाह विफल काल में किस प्रकार होगा ॥ ५६ ॥

ऋषि बोले—

ऋतवाक् नाम एक प्रसिद्ध तपस्वी ने रेवती नक्षत्र के प्रति क्रोध करके उसका पतन करा दिया ॥ ५७ ॥ मैं तेरा विवाह राजा दुर्गम के साथ करने की प्रतिज्ञा कर चुकाहूँ, यदि तू अब विवाह करने की इच्छा न करेगी तो मुझ पर बड़ा संकट आ जायगा ॥ ५८ ॥

कन्या बोली—

हे तात ! क्या ऋतवाक् मुनि ने ही तपस्या की थी जो कि मेरे पिता आपने नहीं की है ? क्या

न त्वया मम तातेन ब्रह्मबन्धोः सुतास्मि किम्॥५६॥

ऋषिरुवाच

ब्रह्मबन्धोः सुता न त्वं बाले नैव तपस्विनः।
सुता त्वं मम यो देवान् कर्त्तमन्यान् समुत्सहे॥६०॥

कन्योवाच

तपस्वी यदि मे तातस्तत् किमृक्षमिदं दिवि।
समारोप्य विवाहो मे तदृक्षे क्रियते न तु॥६१॥

ऋषिरुवाच

एवं भवतु भद्रं ते भद्रे प्रीतिमती भव।
आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षं कृते तव॥६२॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तपःप्रभावेण रेवत्यृक्षं महामुनिः।
यथा पूर्वं तथा चक्रे सोमयोगि द्विजोत्तम॥६३॥
विवाहञ्चैव दुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम्।
निष्पाद्य प्रीतिमान् भूयो जामातारमथाब्रवीत्॥६४॥
औद्वाहिकं ते भूपाल कथ्यतां किं ददाम्यहम्।
दुर्लभ्यमपि दास्यामि ममाप्रतिहतं तपः॥६५॥

राजोवाच

मनोः स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नः सन्ततौ मुने।
मन्वन्तराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम्॥६६॥

ऋषिरुवाच

भविष्यत्येष ते कामो मनुस्त्वत्तनयो महीम्।
सकलां भोक्ष्यते भूप धर्म्मविच्च भविष्यति॥६७॥

मार्कण्डेय उवाच

तामादाय ततो भूपः स्वमेव नगरं ययौ।
तस्मादजायत सुतो रेवत्यां रैवतो मनुः॥६८॥
समेतः सकलैर्धर्म्मर्मानवैरपराजितः।
विज्ञानाखिलशास्त्रार्थो वेदविद्यार्थशास्त्रवित्॥६९॥
तस्य मन्वन्तरे देवान् मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान्।
कथ्यमानान् मया ब्रह्मन् निबोध सुसमाहितः॥७०॥
सुमेधसस्तत्र देवास्तथा भूपतयो द्विज।
वैकुण्ठाश्चामिताभाश्च चतुर्दश चतुर्दश॥७१॥

मैं आप जैसे ब्राह्मण की पुत्री नहीं हूँ ?॥ ५६॥

ऋषि बोले—

हे बाले! तू किसी ब्राह्मण अथवा तपस्वी की ही बेटी नहीं है, तू मेरी पुत्री है जो कि मैं चाहूँ तो देवताओं को भी बदल दूँ॥६०॥

कन्या बोली—

यदि मेरे पिता उद्भट तपस्वी हैं तो वे क्यों न इस नक्षत्र को पुनः स्वर्ग में स्थापित करके मेरा विवाह रेवती नक्षत्र में कर देते हैं?॥ ६१॥

ऋषि बोले—

हे भद्रे! तेरा कल्याण हो, यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है तो मैं तेरे लिये रेवती नक्षत्र को चन्द्र-मार्ग में स्थित करूँगा॥ ६२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे द्विजश्रेष्ठ! तब उन महामुनि ने अपने तप के प्रभाव से रेवती नक्षत्र को पहिले की तरह चन्द्रमा के साथ जोड़ दिया॥ ६३॥ फिर उस कन्या का विधिपूर्वक मन्त्रों सहित विवाह कर दिया और इसके बाद वे प्रसन्न होकर अपने जमाई से कहने लगे॥६४॥ हे राजन्! विवाह की दक्षिणा में मैं आपको क्या दूँ, कहिये। मैं अत्यन्त दुर्लभ वस्तु को भी आपके लिये दे सकता हूँ, क्योंकि मेरा तप अनियन्त्रित है॥६५॥

राजा बोले—

हे मुनिजी! मेरा जन्म स्वायम्भुव मनु के वंश में हुआ है। मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि मेरा पुत्र मन्वन्तर का अधीश्वर मनु हो॥६६॥

ऋषि बोले—

हे राजन्! तुम्हारी यह कामना पूर्ण होगी और तुम्हारा पुत्र मनु होकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करेगा तथा वह धर्मात्मा होगा॥६७॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब उस स्त्री को लेकर राजा अपने नगर को गये और वहाँ उस रेवती से एक पुत्र उत्पन्न किया जो कि रैवत मनु कहलाया॥ ६८॥ वह सब धर्मों से युक्त और सब मनुष्यों से अजेय हुआ। वह सब शास्त्रों और वेदविद्या के अर्थों को जानने वाला हुआ॥६९॥ हे ब्रह्मन्! उस मन्वन्तर में जो देवता मुनि. देवेन्द्र और राजा आदि हुए उनको मैं कहता हूँ तुम ध्यान से सुनो॥ ७०॥ हे द्विज! उस समय देवता सुमेध नाम से प्रसिद्ध हुए और वैकुण्ठ तथा अमिताभ नाम से क्रमशः चौदह २

तेषां देवगणानान्तु चतुर्णामपि चेश्वरः ।
नाम्ना विभुरभूदिन्द्रः शतयज्ञोपलक्षकः ॥७२॥
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूद्ध्वबाहुस्तथापरः ।
वेदबाहुः सुधामा च पर्ज्जन्यश्च महामुनिः ॥७३॥
वशिष्ठश्च महाभागो वेदवेदान्तपारगः ।
एते सप्तर्षयश्चासन् रैवतस्यान्तरे मनोः ॥७४॥
बलबन्धुमहावीर्य्यः सुयष्टव्यस्तथापरः ।
सत्यकाद्यास्तथैवासन् रैवतस्य मनोः सुताः ॥७५॥
रैवतान्तास्तु मनवः कथिता ये मया तव ।
स्वायम्भुवाश्रया ह्येते स्वारोचिषमृते तनुम् ॥७६॥

राजा हुए ॥ ७१ ॥ उन देवताओं के स्वामी विभु नाम इन्द्र हुए जिन्होंने कि सौ यज्ञ करलिये थे ॥ हे महामुनि ! हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊद्ध्र्वबाहु और पर्जन्य ॥ ७३ ॥ और वेदवेदाङ्ग के जानने वाले महाभाग वशिष्ठ यही सब रैवत मन्वन्तर में सप्तर्षि हुए ॥७४॥ बलबन्धु, महावीर्य्य, सुयष्टव्य और सत्यक इत्यादि रैवत मनु के पुत्र हुए ॥७५॥ हे क्रौष्टुकिजी ! रैवत मनु तक जितने मनुओं का हाल हमने आपसे कहा हैं वह सब स्वायम्भुव वंश के आश्रित है परन्तु स्वारोचिष वंश इससे पृथक् है ॥ ७६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें रैवत मन्वंतर नाम ७५वाँ अध्याय समाप्त ।



छियत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतत् कथितं तुभ्यं पञ्चमन्वन्तरं मया ।
चाक्षुपस्य मनोः षष्ठं श्रूयतामिदमन्तरम् ॥ १ ॥
अन्यजन्मनि जातोऽसौ चक्षुषः परमेष्ठिनः ।
चाक्षुपत्वमतस्तस्य जन्मन्यस्मिन्नपि द्विज ॥ २ ॥
अनमित्रस्य राजर्षेर्भद्रा भार्य्या महात्मनः ।
जज्ञे सुतं सुविद्वांसं शुचिं जातिस्मरं विभुम् ॥ ३ ॥
जातं माता निजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्य तं पुनः ।
परिष्वजति हार्द्देन पुनरुल्लापयत्यथ ॥ ४ ॥
जातिस्मरः स जातो वै मातुरुत्सङ्गमास्थितः ।
जहास तं तदा माता संक्रुद्धा वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
भीतास्मि किमिदं वत्स हासो यद्वदने तव ।
अकालबोधः सञ्जातः कच्चित् पश्यसि शोभनम् ॥ ६ ॥

पुत्र उवाच

मामत्तुमिच्छति पुरो मार्ज्जारी किं न पश्यसि ।
अन्तर्द्धानगता चेयं द्वितीया जातहारिणी ॥ ७ ॥
पुत्रप्रीत्या च भवती सहार्द्रा मामवेक्षती ।
उल्लाप्योल्लाप्य बहुशः परिष्वजति मां यतः ॥ ८ ॥
उद्भूतपुलका स्नेह-सम्भवास्राविलेक्षणा ।
ततो ममागतो हासः शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार मैंने आपसे पाँचों मन्वन्तरों का वर्णन किया। अब छठे मन्वन्तर चाक्षुप को सुनो ॥ १ ॥ हे द्विज ! पूर्व जन्म में यह परमेष्ठी चक्षुप के पुत्र थे अतः इस जन्म में यह चाक्षुप कहलाये ॥२॥ राजर्षि अनमित्र की स्त्री से एक विद्वान् और पवित्र पुत्र उत्पन्न हुआ जिसको कि पहिले जन्म की याद थी ॥ ३ ॥ जब ये उत्पन्न हुए तो माता ने इनको अपनी गोद में लेकर इनका दुलार किया तथा प्यार करके वह इनको हृदय से चिपटातीं थीं ॥ ४ ॥ माता की गोद में उनको पूर्व जन्म की याद आई और वे हँसने लगे। इस पर माता क्रोधित होकर उनसे कहने लगी ॥५॥ हे वत्स ! तुम्हारे मुख पर यह हँसी कैसी ? इसको देखकर मैं डरती हूं। तुमको यह असमय बोध किस प्रकार हुआ ॥६॥

पुत्र बोलाः—

क्या तुम नहीं देखतीं कि सामने खड़ी हुई मार्जारी मुझे खाना चाहती है और दूसरी अन्तर्द्धान हुई यह जातहारिणी है ॥ ७ ॥ पुत्र-प्रेम से आर्द्र होकर तुम मुझको देखती हो और बहुत प्रकार से मेरा लाड़ चाव कर मुझे गले से लगाती हो ॥ ८ ॥ अत्यन्त स्नेह से तुम्हारा शरीर पुलकित हो रहा है और नेत्रों में आँसू हैं। तुम्हारी इस प्रीति को देखकर मुझे हँसी आगई, अब इसका कारण सुनो ॥९॥

स्वार्थे प्रसक्ता मार्ज्जारी प्रसक्तं मामवेक्षते ।
तथान्तर्द्धानगा चैव द्वितीया जातहारिणी ॥१०॥
स्वार्थाय स्निग्धहृदये यथैवैते ममोपरि ।
प्रवृत्ते स्वार्थमास्थाय तथैव प्रतिभासि मे ॥११॥
किन्तु मदुपभोगाय मार्ज्जारी जातहारिणी ।
त्वन्तु क्रमेणोपभोग्यं मत्तः फलमभीप्स्यसि ॥१२॥
न मां जानासि कोऽप्येष न चैवोपकृतं मया ।
सङ्गतं नातिकालीनं पञ्चसप्तदिनात्मकम् ॥१३॥
तथापि स्निह्यसे सास्रा परिष्वजसि चाप्यति ।
तातेति वत्स भद्रेति निर्व्यलीकं ब्रवीषि माम् ॥१४॥

स्वार्थ के वशीभूत होकर यह बिल्ली मुझको देख रही है और उसी प्रकार यह जातहारिणी भी अपने स्वार्थ के लिये ही छिपी हुई मेरी ओर देख रही है ॥ १० ॥ जिस प्रकार स्वार्थ से वे मुझे देखती हैं उसी तरह मैं तुम्हारी प्रीतिभी समझता हूँ ॥ ११ ॥ भेद केवल इतना ही है कि बिल्ली और जातहारिणी तो मुझे फौरन ही खाजाना चाहती हैं और तुम धीरे धीरे मुझसे उपकार चाहती हो ॥ १२ ॥ तुम नहीं जानती हो कि मैं कौन हूँ और तुम्हारा उपकार मुझसे न होगा । मेरी उत्पत्ति इन पाँच सात दिन कीही नहीं है ॥ १३ ॥ तौ भी तुम मुझसे इतना स्नेह करती हो और तात, वत्स, भद्र आदि कह कर अपने शरीर से चिपटाती हो ॥ १४ ॥

मातोवाच

न त्वाहमुपकारार्थं वत्स प्रीत्या परिष्वजे ।
न चेदेतद्भवत्प्रीत्यै परित्यक्तास्म्यहं त्वया ।
स्वार्थो मया परित्यक्तो यस्त्वत्तो मे भविष्यति ॥१५॥

माता बोलीः—

हे वत्स ! मैं कुछ उपकार चाहने के लिये तुमको प्यार नहीं करती थी. तुम मुझसे प्रीति छोड़ सकते हो, और तुमसे यदि मेरा कोई स्वार्थ भी सधे तो उसको मैं छोड़ती हूँ ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा सा तमुत्सृज्य निष्क्रान्ता सूतिकागृहात् ।
जडाङ्गबाह्यकरणं शुद्धान्तःकरणात्मकम् ॥१६॥
जहार तं परित्यक्तं सा तदा जातहारिणी ।
सा हृत्वा तं तदा बालं विक्रान्तस्य महीभृतः ।
प्रसूतं पत्नीशयने न्यस्य तस्याददे सुतम् ॥१७॥
तमप्यन्यगृहे नीत्वा गृहीत्वा तस्य चात्मजम् ।
तृतीयं भक्षयामास सा क्रमाज्जातहारिणी ॥१८॥
हृत्वा हृत्वा तृतीयन्तु भक्षयत्यतिनिर्घृणा ।
करोत्यनुदिनं सा तु परिवर्त्तं तथान्ययोः ॥१९॥
विक्रान्तेऽपि ततस्तस्य सुतस्यैव महीपतिः ।
कारयामास संस्कारान् राजन्यस्य भवन्ति ये ॥२०॥
आनन्देति च नामास्य पिता चक्रे विधानतः ।
मुदा परमया युक्तो विक्रान्तः स नराधिपः ॥२१॥
कृतोपनयनं तन्तु गुरुराह कुमारकम् ।
जनन्याः प्रागुपस्थानं क्रियताञ्चाभिवादनम् ॥२२॥
स गुरोस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्यैवमथाब्रवीत् ।
वन्द्या मे कतमा माता जननी पालनी नु किम् ॥२३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

जब यह कहकर वह उसे छोड़ कर सूतिका गृह से निकल गई तो उस जड़ अङ्गवाले, शुद्धात्मा बालक को ॥ १६ ॥ जिसको कि उसकी माता ने छोड़ दिया था जातहारिणी उठाकर लेगई और उसे राजा विक्रम की प्रसूता स्त्री की शय्या पर रख दिया तथा उसकी जगह उस स्त्री के पुत्रको उठाकर लेगई ॥ १७ ॥ फिर उस पुत्र को दूसरे घर में ले गई और वहाँ से जिस बालक को लाई वह तीसरा बालक जातहारिणी द्वारा भक्षण कर लिया गया ॥१८॥ इसी प्रकार निर्दयी जातहारिणी एक बालक को दूसरे घर और दूसरे को तीसरे घर ले जाकर बदलती है और अन्त में तीसरे को खाजाती है ॥ १९ ॥ राजा विक्रान्त ने भी उस पुत्र के राजाओं के से संस्कार कराये ॥ २० ॥ उस बालक के पिता राजा विक्रान्त ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका नाम विधि पूर्वक आनन्द रक्खा ॥ २१ ॥ उपनयन संस्कार करते हुए गुरु ने कुमार से कहा कि पहिले अपनी माता को प्रणाम कर स्तुति करो ॥ २२ ॥ वह बालक गुरु के यह वचन सुन कर हँसा और बोला कि कौन सी माता की वन्दना करूँ, पालने वाली की अथवा जनने वाली की ? ॥ २३ ॥

गुरुरुवाच

नन्वियं ते महाभाग जनश्रीजारुथात्मजा।
विक्रान्तस्याग्रमहिषी हैमिनी नाम नामतः ॥२४॥

आनन्द उवाच

इयं जनित्री चैत्रस्य विशालग्रामवासिनः।
विप्राग्र्यबोधपुत्रस्य योऽस्यां जातोऽन्यतो वयम्॥२५॥

गुरुरुवाच

कुतस्त्वं कथयानन्द चैत्रः को वा त्वयोच्यते।
सङ्कटं महदाभाति क्व जातोऽत्र ब्रवीषि किम्॥२६॥

आनन्द उवाच

जातोऽहमवनीन्द्रस्य क्षत्रियस्य गृहे द्विज।
तत्पत्न्यां गिरिभद्रायामाददे जातहारिणी॥२७॥
तयात्र मुक्तो हैमिन्या गृहीत्वा च सुतञ्च सा।
बोधस्य द्विजमुख्यस्य गृहे नीतवती पुनः॥२८॥
भक्षयामास च सुतं तस्य बोधद्विजन्मनः।
स तत्र द्विजसंस्कारैः संस्कृतो हैमिनीसुतः॥२९॥
वयमत्र महाभाग संस्कृता गुरुणा त्वया।
मया तव वचः कार्य्यमुपैमि कतमां गुरो॥३०॥

गुरुरुवाच

अतीव गहनं वत्स सङ्कटं महदागतम्।
न वेद्मि किञ्चिन्मोहेन भ्रमन्तीव हि बुद्धयः॥३१॥

आनन्द उवाच

मोहस्यावसरः कोऽत्र जगत्येवं व्यवस्थिते।
कः कस्य पुत्रो विप्रर्षे को वा कस्य न बान्धवः॥३२॥
आरभ्य जन्मनो नृणां सम्बन्धित्वमुपैति यः।
अन्ये सम्बन्धिनो विप्र मृत्युना संनिवर्त्तिताः॥३३॥
अत्रापि जातस्य सतः सम्बन्धो योऽस्य बान्धवैः।
सोऽप्यस्तमन्ते देहस्य प्रयात्येषोऽखिलक्रमः॥३४॥
अतो ब्रवीमि संसारे वसतः को न बान्धवः।
को वापि संततं बन्धुः किं वो विभ्राम्यते मतिः॥३५॥
पितृद्वयं मया प्राप्तमस्मिन्नेव हि जन्मनि।
मातृद्वयंच किं चित्रं यदन्यद्देहसम्भवे॥३६॥

गुरु बोले:—

हे महाभाग! विक्रान्त महाराज की जो यह सबसे श्रेष्ठ रानी हैमिनी है वही तुम्हारी माता है उसकी वन्दना करो॥२४॥

आनन्द बोला:—

यह हैमिनी तो विशाल नगर के निवासी चैत्र की माता है। वह चैत्र बोध नाम ब्राह्मण का पुत्र कहलाता है, मेरी माता तो दूसरी है॥२५॥

गुरु बोले:—

हे आनन्द! यह तुम क्या कहते हो, यह चैत्र कौन है तथा तुम कहाँ उत्पन्न हुए हो, मुझसे कहो। मुझे तुम्हारी बातोंसे बड़ा संकट होगयाहै॥

आनन्द बोला:—

मैं महाराज चक्षुष की भार्या गिरिभद्रा से क्षत्रिय के घर उत्पन्न हुआ हूँ। मुझे जातहारिणी यहाँ उठाकर ले आई॥२७॥ वह मुझे हैमिनी के पास छोड़ कर इसके पुत्र को ब्राह्मण श्रेष्ठ बोध के घर लेगई॥२८॥ और ब्राह्मण बोध के पुत्र को वह जातहारिणी भक्षण कर गई। उस ब्राह्मण ने हैमिनी के पुत्र को ब्राह्मणोचित संस्कारों से पाला है॥२९॥ हे महाभाग! आप गुरु हैं और आपने ही मेरा संस्कार कराया है। मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ कहिये, मैं किसको माता समझूं॥३०॥

गुरु बोले:—

हे वत्स! अत्यन्त कठिन संकट उपस्थित होगया है, मोह से मेरी बुद्धि चक्कर खाती है और मेरी समझ में कुछ नहीं आता॥३१॥

आनन्द बोला:—

हे ब्रह्मर्षि! इस संसार की जसी स्थिति है उसमें मोह की क्या आवश्यकता है, यहाँ कौन किसका पुत्र है और कौन किसी का बन्धु है॥३२॥ जो मनुष्य जन्म धारण करते ही सम्बन्ध स्थापित करता है वह मरते ही सब सम्बन्धों को मिटा देता है॥३३॥ यहाँ भी यही बात है जन्म के समय जिन भाई बन्धुओं से सम्बन्ध स्थापित होता है मरने पर वह सब छूट जाता है॥३४॥ इसलिये मैं कहता हूँ कि संसार में कौन किसी का बन्धु है और कौन नहीं है। आप व्यर्थ क्यों भ्रम में पड़ते हैं॥३५॥ इसी जन्म में मुझको दो पिता और दो माताएं मिलीं, इसमें भी क्या आश्चर्य है?॥३६॥

सोऽहं तपः करिष्यामि त्वया यो ह्यस्य भूपतेः।
विशालग्रामतः पुत्रश्चैत्र आनीयतामिह ॥३७॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स विस्मितो राजा सभार्य्यः सह बन्धुभिः।
तस्मान्निवर्त्त्य ममतामनुमेने वनाय तम् ॥३८॥
चैत्रमानीय तनयं राज्ययोग्यं चकार सः।
सम्मान्य ब्राह्मणं येन पुत्रबुद्ध्या स पालितः॥३९॥
सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपे बाल एव महावने।
कर्म्मणां क्षपणार्थाय विमुक्तेः परिपन्थिनाम्॥४०॥
तपस्यन्तं ततस्तञ्च प्राह देवः प्रजापतिः।
किमर्थं तप्यसे वत्स तपस्तीव्रं वदस्व तत् ॥४१॥

आनन्द उवाच

आत्मनः शुद्धिकामोऽहं करोमि भगवंस्तपः।
बन्धाय मम कर्म्माणि यानि तत्क्षपणोन्मुखः॥४२॥

ब्रह्मोवाच

क्षीणाधिकारो भवति मुक्तियोग्यो न कर्म्मवान्।
सत्त्वाधिकारवान् मुक्तिमवाप्स्यति कथं भवान्॥४३
भवता मनुना भाव्यं षष्ठेन व्रज तत् कुरु।
अलं ते तपसा तस्मिन् कृते मुक्तिमवाप्स्यसि॥४४॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि तथेत्युक्त्वा महामतिः।
तत्कर्म्माभिमुखो यातस्तपसो विरराम ह ॥४५॥
चाक्षुषेत्याह तं ब्रह्मा तपसो विनिवर्त्तयन्।
पूर्वं नाम्ना बभूवाथ प्रख्यातश्चाक्षुषो मनुः ॥४६॥
उपयेमे विदर्भां स सुतामुग्रस्य भूभृतः।
तस्याञ्चोत्पादयामास पुत्रान् प्रख्यातविक्रमान् ४७
तस्य मन्वन्तरेशस्य येऽन्तरत्रिदशा द्विज।
ये चर्षयस्तथैवेन्द्रो ये सुताश्चास्य तान् शृणु ॥४८॥
आर्य्या नाम सुरास्तत्र तेषामेकोऽष्टको गणः।
प्रख्यातकर्म्मणां विप्र यज्ञे हव्यभुजामयम् ॥४९॥
प्रख्यातबलवीर्य्याणां प्रभामण्डलदुर्दृशाम्।
द्वितीयश्च प्रसूताख्यो देवानामष्टको गणः ॥५०॥

अतः मैं तो तप करूँगा और आप विशाल नगर से इस राजा के पुत्र को ले आइये ॥३७॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब वह राजा अपनी स्त्री और भाई-बन्धुओं सहित विस्मय को प्राप्त हुआ और उसमें से अपनी ममता हटाकर उसको वन जाने की अनुमति दे दी ॥३८॥ फिर राजा विक्रान्त ने अपने पुत्र चैत्र को बुलाकर उसको राज्य दे दिया और उस ब्राह्मण को भी जिसने कि उसे पुत्र समझकर पाला था सम्मानित किया ॥ ३९॥ और वह बालक आनन्द भी बन में उन कर्मों का नाश करने के लिये जो मुक्ति-मार्ग में बाधक हैं तपस्या करने लगा ॥४०॥ फिर प्रजापति ब्रह्माजी ने तपस्या करते हुए उस बालक से पूछा, "हे वत्स ! तुम यह उग्र तपस्या किस लिये कर रहे हो, कहो" ॥ ४१ ॥

आनन्द बोला—

हे भगवन् ! मैं अपनी आत्मा की शुद्धि के हेतु तथा उन कर्मोंके नाश करनेके लिये जोकि सांसारिक बन्धनों में डालते हैं तपस्या कर रहा हूँ ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—

जिसका कर्म क्षीण हो जाता है वही मुक्ति के योग्य होता है, कर्मवान् की मुक्ति नहीं होती, इसलिये तुम सत्वाधिकारी होकर मुक्तिको प्राप्तकरो ॥ तुम जाओ, तपस्या करने से तुमको कोई लाभ नहीं। तुम छठवें मनु होकर उसी कारण से मुक्ति प्राप्त करोगे ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

ब्रह्माजी के यह कहने पर उस महामति ने उन से कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा और फिर उसने तपस्या छोड़कर ब्रह्माजी के बताये हुए कर्मों में अपनी प्रवृत्ति की ॥ ४५ ॥ तप से निवारण करते समय ब्रह्माजी ने उनसे चाक्षुस कहा था, और यही उनका पहिला नाम था, इस कारण वे चाक्षुष मनु कहलाये ॥४६॥ उन्होंने राजा उग्र की कन्या विदर्भा से अपना विवाह किया और उससे अति बलवान् पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४७ ॥ उस मनु के मन्वन्तर में जो देवता, ऋषि, इन्द्र और उस मनु के पुत्र हुए उनको सुनो ॥ ४८ ॥ उस मन्वन्तर में आर्या नाम के देवता हुए और उनमें आठ देवताओं का एक गण होता था। हे विप्र ! ये देवतायज्ञ में हव्य भोजी प्रसिद्ध थे ॥ ४९ ॥ प्रसिद्ध बल वाले तथा प्रभा मण्डल के सदृश नेत्र वाले देवताओं के दूसरे अष्टक गण प्रसूत नाम के हुए ॥ ५० ॥ इसी

तथैवाष्टक एवान्यो भव्याख्यो देवतागणः ।
चतुर्थश्च गणस्तत्र यूथगाख्यस्तथाष्टकः ॥५१॥
लेखसंज्ञास्तथैवान्ये तत्र मन्वन्तरे द्विज ।
पञ्चमे च गणे देवास्तत्संज्ञा ह्यमृताशिनः ॥५२॥
शतं क्रतूनामाहृत्य यस्तेषामधिपोऽभवत् ।
मनोजवस्तथैवेन्द्रः संख्यातो यज्ञभागभुक् ॥५३॥
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधुः ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ॥५४॥
उरु-पूरु-शतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः ।
चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ॥५५॥
एतत् ते कथितं षष्ठं मया मन्वन्तरं द्विज ।
चाक्षुषस्य तथा जन्म चरितञ्च महात्मनः ॥५६॥
साम्प्रतं वर्त्तते योऽयं नाम्ना वैवस्वतो मनुः ।
सप्तमे येऽन्तरे तस्य देवाद्यास्तान् शृणुष्व मे॥५७॥

प्रकार देवगणों का तीसरा अष्टक भव्य नाम वाला था और चौथा अष्टक यूथग कहलाता था ॥ ५१ ॥ हे द्विज ! उस मन्वन्तर में पाँचवें देवगण लेखनाम वाले हुए। ये देवता अमृतपायी थे ॥ ५२ ॥ इन देवताओं के स्वामी मनोजव नाम इन्द्र हुए जिन्हों ने कि सौ यज्ञ किये थे और जो यज्ञ-भागके भोक्ता हुए ॥५३॥ सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अतिनामा और सहिष्णु ये उस मन्वन्तर के सात सप्तर्षि हुए ॥५४॥ महाबली उरू,पुरु और शतद्युम्न उस चाक्षुष मनु के पुत्र हुए जिन्होंने कि सम्पूर्ण पृथ्वीका स्वामित्व किया ॥५५॥ हे द्विज ! इस प्रकार जो आपने पूछा था वह छठा मन्वन्तर आपको कह सुनाया और इसके साथ महात्मा चाक्षुपका चरित्र भी आपको सुना दिया ॥५६॥ तथा इस समय जो मन्वन्तर वैवस्वत नाम वर्तमान है वह सातवाँ मन्वन्तर है अब उसके देवतादिको मुझसे सुनो ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में चाक्षुष मन्वन्तर में ७६वाँ अ० समाप्त ।

सतत्तरवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

मार्त्तण्डस्य रवेर्भार्य्या तनया विश्वकर्म्मणः ।
संज्ञा नाम महाभाग तस्यां भानुरजीजनत् ॥ १ ॥
मनुं प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् ।
विवस्वतः सुतो यस्मात् तस्माद्वैवस्वतस्तु सः ॥ २ ॥
संज्ञा च रविणा दृष्टा निमीलयति लोचने ।
यतस्ततः सरोषोऽर्कः संज्ञां निष्ठुरमब्रवीत् ॥ ३ ॥
मयि दृष्टे सदा यस्मात् कुरुषे नेत्रसंयमम् ।
तस्माज्जनिष्यसे मूढे प्रजासंयमनं यमम् ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

सूर्य भगवान् ने विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा नाम परम सौभाग्यवती अपनी भार्या से पुत्र उत्पन्न किये ॥१॥ विवस्वान् के पुत्र होनेके कारण वैवस्वत नाम वाले मनु बड़े यशस्वी और ज्ञानवान् हुए ॥२॥ रवि के तेज को न सह कर संज्ञा उनको देखने पर आँखें बन्द कर लेती थी । इसपर सूर्य भगवान् क्रोध कर संज्ञा के प्रति कठोर वचन कहने लगे ॥ हे मूर्खे ! मुझको देखकर जो तू सदैव नेत्र बन्द करलेती है इसलिये तू प्रजाओं को पीड़ा देने वाला पुत्र यम उत्पन्न करेगी ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सा चपलां दृष्टिं देवी चक्रे भयाकुला ।
विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ॥ ५ ॥
यस्माद्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना ।
तस्माद्विलोलां तनयां नदीं त्वं प्रसविष्यसि ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद भय से विह्वल होनेके कारण संज्ञा देवी की दृष्टि चपल होगई । चञ्चल नेत्रवाली उस को देखकर फिर सूर्य भगवान् बोले ॥ ५ ॥ जो इस समय मुझे देखकर तुम्हारी दृष्टि चपल होगई है इसलिये तुम नदी रूप एक चञ्चला पुत्री को उत्पन्न करोगी ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्यान्तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै ।

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके अनन्तर स्वामी के शाप देने के कारण

यमश्च यमुना चैव प्रख्याता सुमहानदी ॥ ७ ॥
सापि संज्ञा रवेस्तेजः सेहे दुःखेन भाविनी ।
असहन्ती च सा तेजश्चिन्तयामास वै तदा ॥ ८ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि क्व गतायाश्च निर्वृतिः ।
भवेन्मम कथं भर्त्ता कोपमर्कश्च नेष्यति ॥ ९ ॥
इति सञ्चिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा ।
बहु मेने महाभागा पितृसंश्रयमेव सा ॥१०॥
ततः पितृगृहे गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी ।
छायामयीमात्मतनुं निर्म्ममे दयिता रवेः ॥११
तांश्चोवाच त्वया वेश्मन्यत्र भानोर्यथा मया ।
तथा सम्यगपत्येषु वर्त्तितव्यं तथा रवौ ॥१२॥
पृष्टयापि न वाच्यं ते तथैतद्गमनं मम ।
सैवास्मि नाम संज्ञेति वाच्यमेतत् सदा वचः॥१३॥

छायासंज्ञोवाच

आकेशग्रहणाद्देवि आशापाच्च वचस्तव ।
करिष्ये कथयिष्यामि वृत्तन्तु शापकर्षणात् ॥१४॥
इत्युक्ता सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः ।
ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकल्मषम् ॥१५॥
बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्म्मणा ।
तस्थौ पितृगृहे सा तु कञ्चित् कालमनिन्दिता॥१६॥
ततस्तां प्राह चार्व्वङ्गीं पिता नातिचिरोषिताम् ।
स्तुत्वा च तनयां प्रेम-बहुमानपुरःसरम् ॥१७॥
त्वान्तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि ।
मुहूर्त्तार्द्धसमानि स्युः किन्तु धर्म्मो विलुप्यते ॥१८॥
बान्धवेषु चिरं वासो नारीणां न यशस्करः ।
मनोरथो बान्धवानां नार्य्या भर्त्तृगृहे स्थितिः॥१९॥
सा त्वं त्रैलोक्यनाथेन भर्त्रा सूर्य्येण सङ्गता ।
पितृगेहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके ॥२०॥
सा त्वं भर्त्तृगृहं गच्छ तुष्टोऽहं पूजितासि मे ।
पुनरागमनं कार्य्यं दर्शनाय शुभे मम ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ता सा तदा पित्रा तथेत्युक्त्वा च सा मुने ।

कुछ दिन बाद संज्ञा ने यम नाम पुत्र और यमुना नाम पुत्री को जो कि एक महान् नदी है उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ फिर वह संज्ञा बड़े दुःख से सूर्य के तेज को सहन करती और जब वह असह्य होगया तो वह सोचने लगी ॥ ८ ॥ 'मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँ जाने से मुझे सुख होगा ? और किस प्रकार मेरे स्वामी का क्रोध शान्त हो ? ॥ ९ ॥ इस प्रकार बहुत सोच विचार कर उस विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा ने पिता के आश्रम में जाना ही उचित समझा ॥ १० ॥ फिर उस यशस्विनी ने पिता के घर जाने का इरादा करके अपनी छाया को सूर्यकी पत्नी बने रहने के लिये छोड़ दिया ॥११॥ वह उस छायारूपी संज्ञा से बोली कि जिस प्रकार मैं यहाँ रहती थी उसी प्रकार तुम भी मेरे स्वामी सूर्य के इस घर में रहकर मेरे बच्चोंका पालन करना ॥१२॥ उनके पूछनेपर भी मेरा यहाँसे जाना न बताना और इस तरह बोलना जिससे वह मुझे यहीं समझें ॥

छाया संज्ञा बोली—

हे देवि ! जब तक सूर्य मेरे केश न पकड़ेंगे और शाप न देंगे तब तक मैं तुम्हारा कहा करूँगी परन्तु बाल खींचने पर अथवा शाप देने पर सब वृत्तान्त कह दूँगी ॥१४॥ छाया के यह कहने पर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई और वहाँ जा कर उसने अपने पिताको जो कि तपस्यासे निष्पाप होगये थे देखा ॥ १५ ॥ और विश्वकर्मा ने भी उस का बहुत आदर सत्कारकिया और वह कुछ समय तक सुख से पिता के घर रही ॥ १६ ॥ इसके बाद उस सुन्दर शरीर वाली अपनी कन्यासे विश्वकर्मा ने प्रेम और विनय पूर्वक कहा ॥१७॥ हे पुत्री ! तुम को देखते हुए मुझको बहुत दिन भी एक मुहूर्त्त के समान व्यतीत होगये परन्तु अब मैं देखता हूँ कि धर्म की हानि हो रही है ॥ १८॥ स्त्रियों का बहुत दिन तक पिता के घर रहना अच्छा नहीं है और भाई-बन्धुओं की अभिलाषा तो यही रहती है कि कन्या अपने स्वामी के घर रहे ॥ १९ ॥ हे पुत्री ! तुम्हारे स्वामी तो सूर्य भगवान् हैं जो त्रिलोकी के स्वामी हैं, तुम्हारा अधिक काल तक पिता के घर रहना उचित नहीं है ॥ २० ॥ इसलिये अब तुम अपने स्वामी के घर जाओ । मैंने प्रसन्न होकर तुम्हारा यथोचित सम्मान कर दिया है। हे शुभे ! फिर कभी मिलने के लिये आना ॥ २१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पिता के ऐसा कहने पर संज्ञा ने पिता से कहा

सम्पूजयित्वा पितरं जगामाथोत्तरान् कुरून् ॥२२॥
सूर्य्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती ।
तपश्चचार तत्रापि बड़वारूपधारिणी ॥२३॥
संज्ञेयमिति मन्वानो द्वितीयायामहर्पतिः ।
जनयामास तनयौ कन्याञ्चैकां मनोरमाम् ॥२४॥
छायासंज्ञा त्वपत्येषु यथा स्वेष्वतिवत्सला ।
तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥२५॥
लालनाद्युपभोगेषु विशेषमनुवासरम् ।
मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥२६॥
ताड़नाय च वै कोपात् पादस्तेन समुद्यतः ।
तस्याः पुनः क्षान्तिमता न तु देहे निपातितः ॥२७॥
ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं द्विज ।
किञ्चित् प्रस्फुरमाणोष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा॥२८॥
पितुः पत्नीममर्य्यादं यन्मां तर्जयसे पदा ।
भुवि तस्मादयं पादस्तवाद्यैव पतिष्यति ॥२९॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य यमः शापं मात्रा दत्तं भयातुरः ।
अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरःसरम् ॥३०॥

यम उवाच

नैतन्महदाश्चर्य्यं न दृष्टमिति केनचित् ।
माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ॥३१॥
यथा मनुर्ममाचष्टे नेयं माता तथा मम ।
निर्गुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा भवेत् ॥३२॥

मार्कण्डेय उवाच

एतस्यतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः ।
छायासंज्ञां समाहूय पप्रच्छ क्व गतेति सा ॥३३॥
सा चाह तनया त्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो ।
पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानि जनितानि मे ॥३४॥
इत्थं विवस्वतः सा तु बहुशः पृच्छतो यदा ।
नाचचक्षे ततः क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ॥३५॥
ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वतः ।

कि मैं ऐसा ही करूँगी, और वह पिता को प्रणाम कर उत्तर दिशा में कुरुदेशको चली गई॥२२॥ सूर्य के तेज को न चाहती हुई और उससे भयभीत हुई वह घोड़ी का रूप धारण कर वहाँ तपस्या करने लगी ॥ २३ ॥ उस दूसरी स्त्री छाया को ही संज्ञा समझ कर सूर्य भगवान् ने उससे दो पुत्र और एक कन्या मनोरमा को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ छाया जिस प्रकार अपनी सन्तानों को अति स्नेह से प्यार करती थी उस प्रकार वह संज्ञाके पुत्रपुत्रियों को नहीं चाहती थी ॥ २५ ॥ दिन पर दिन यही भेदपूर्ण व्यवहार खाने, पीने और पहिनने आदि में भी किया जाने लगा। इसको वैवस्वत मनु तो कुछ ध्यान में न लाये परन्तु यम को यह बात सहन न हुई ॥२६॥ एक दिन संज्ञा को मारने के लिये उन्होंने अपना पाँव उठाया परन्तु फिर वे शान्त होगये और शरीर में लात को न मारा॥२७॥ हे द्विज ! इसपर उस छायारूपी संज्ञा ने क्रोध कर काँपते हुए होठों से और दोनों हाथों को चलाते हुए यम को शाप दिया ॥ २८ ॥ मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूँ और क्योंकि तुम मुझको पद से प्रहार करना चाहते थे इसलिये यह तुम्हारा पद अभी पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ २९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

माताका दियाहुआ यह शाप सुनकर यम भय से व्याकुल होकर पिता के पास आये और प्रणाम करके उनसे बोले॥३० ॥

यम बोले—

हे तात ! यह महान् आश्चर्य की बात है जोकि कहीं भी नहीं देखी गई कि माता अपने वात्सल्य को छोड़कर पुत्र को शाप देती है ॥ ३१ ॥ जैसाकि मनु ने मुझसे कहा था। यह हमारी माता नहीं है क्योंकि अयोग्य पुत्र के प्रति भी माता कभी अनुचित व्यवहार नहीं करती है ॥३२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यम के यह वचन सुनकर तिमिरनाशी सूर्य भगवान् ने छाया को बुलाकर पूछा कि संज्ञा कहाँ गई ॥३३॥ वह बोली कि हे स्वामिन् ! मैं ही विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा हूँ और आपकी स्त्री हूँ, आपने ही मुझसे इस सन्तति को उत्पन्न किया है ॥ ३४ ॥ सूर्य ने बहुत प्रकार से उससे पूछा परन्तु छाया ने कुछ भेद न बताया। इसपर सूर्य भगवान् शाप देने को उद्यत हुए ॥ ३५ ॥ सूर्य को शाप देने को उद्यत देखकर छायाने उनको सबहाल कह सुनाया

विदितार्थश्च भगवान जगाम त्वष्टुरालयम् ॥३६॥
ततः स पूजयामास तदा त्रैलोक्यपूजितम् ।
भास्वन्तं परया भक्त्या निजगेहमुपागतम् ॥३७॥
संज्ञां पृष्टस्तदा तस्मै कथयामास विश्वकृत् ।
आगतैवेह मे वेश्म भवतः प्रेषितेति वै ॥३८॥
दिवाकरः समाधिस्थो बड़वारूपधारिणीम् ।
तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ॥३९॥
सौम्यमूर्त्तिः शुभाकारो मम भर्त्ता भवेदिति ।
अभिसन्धिश्च तपसो बुबुधेऽस्या दिवाकरः ॥४०॥
शातनं तेजसो मेऽद्य क्रियतामिति भास्करः ।
तंचाह विश्वकर्म्माणं संज्ञायाः पितरं द्विज ॥४१॥
संवत्सरभ्रमेस्तस्य विश्वकर्म्मा रवेस्ततः ।
तेजसः शातनं चक्रे स्तूयमानश्च दैवतैः ॥४२॥

और वे उसको जानकर विश्वकर्माके घर गये॥३६॥ फिर विश्वकर्मा ने अपने घर पर आये हुए सूर्य भगवान् का जो कि त्रिलोकी से पूजित हैं परम भक्ति से पूजन किया ॥ ३७ ॥ फिर सूर्य ने उनसे संज्ञा की बावत पूछा तो विश्वकर्मा ने कहा किवह यहाँ आई थी परन्तु कुछ दिन बाद मैंने उसे आप के यहाँ ही भेज दिया था ॥३८॥ फिर सूर्य भगवान् ने ध्यान किया तो संज्ञा को घोड़ी के वेप में उत्तर दिशा में स्थित कुरु देश में तप करते हुए देखा ॥ और सूर्य ने यह भी जाना कि वह इसलिये तप कर रही है कि उसके स्वामी शान्तमूर्त्ति और शुभ आकार वाले हो जावें ॥ ४०॥ हे क्रौष्टुकिजी ! इस पर सूर्य ने संज्ञा के पिता विश्वकर्मा से कहा कि मेरे तेज को घटा दीजिये ॥ ४१ ॥ फिर विश्वकर्मा ने सम्वत्सर चक्र वाले सूर्य के तेज को घटा दिया और देवताओं ने वहाँ आकर सूर्य भगवान् की स्तुति की ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें वैवस्वत मन्वन्तर नाम ७७वाँ अ० समाप्त ।

अठत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच
ततस्तं तुष्टुवुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम् ।
वाग्भिरीड्यमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः ॥ १ ॥
देवा ऊचुः
नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः ।
यजुःस्वरूपरूपाय साम्नां धामवते नमः ॥ २ ॥
ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः ।
शुद्धज्योतिःस्वरूपाय विशुद्धायामलात्मने ॥ ३ ॥
वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने ।
नमोऽखिलजगद्व्यापि-स्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥ ४ ॥
सर्व्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ।
नमः सूर्य्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे ॥ ५ ॥
भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः ।
शर्व्वरीहेतवे चैव सन्ध्याज्योत्स्नाकृते नमः ॥ ६ ॥
त्वं सर्व्वमेतद्भगवान् जगदुद्भ्रमता त्वया ।
भ्रमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—
इसके अनन्तर सब देवता और देवर्षि गण त्रैलोक्यसे वंदनीय सूर्यभगवान्‌की स्तुति करनेलगे।
देवता बोले—
हे भगवन् ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेदके स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ ज्ञान के धाम, अन्धकारनाशक, शुद्ध ज्योति और निर्मलात्मा आदि आपके स्वरूपों को प्रणाम है ॥ ३ ॥ वरिष्ठ, वरेण्य, पर, परमात्मा, समस्त जगत् व्यापी और आत्ममूर्ति आदि आपके स्वरूपों को नमस्कार है॥ आप सब पदार्थों के कारण और ज्ञानियों के चित्त में स्थित हैं । प्रकाश आत्मा स्वरूप सूर्य ! आपको नमस्कार है ॥५॥ भास्कर और दिवाकर रूप आप को नमस्कार है तथा रात्रि के कारणभूत और सन्ध्या ज्योत्स्ना के करने वाले आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! यह सम्पूर्ण जगत् आप ही हैं और आपके ही भ्रमण करने से आपके साथ सब चराचर ब्रह्माण्ड घूमता है ॥ ७ ॥ आपकी

त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्व्वं सञ्जायते शुचि।
क्रियते त्वत्करैः स्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता ॥ ८ ॥
होमदानादिको धर्म्मो नोपकाराय जायते।
तावद्यावन्न संयोगि जगदेतत् त्वदंशुभिः ॥ ९ ॥
ऋचस्ते सकला ह्येता यजूंष्येतानि चान्यतः।
सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः ॥१०॥
ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्म्मयः।
यतः साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः ॥११॥
त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परञ्चापरमेव च।
मूर्त्तामूर्त्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः ॥१२॥
निमेष-काष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः।
प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजःशमनं कुरु ॥१३॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा।
मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः ॥१४॥
यत् तस्य ऋङ्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी।
यजुर्म्मयेणापि दिवं स्वर्गः साममयं रवेः ॥१५॥
शातितास्तेजसो भागा ये त्वष्ट्रा दश पंच च।
त्वष्ट्रैव तेन सर्व्वस्य कृतं शूलं महात्मना ॥१६॥
चक्रं विष्णोर्वसूनाञ्च शङ्करस्य सुदारुणा।
पावकस्य तथा शक्तिः शिविका धनदस्य च ॥१७॥
अन्येषांच सुरारीणामस्त्राण्युग्राणि यानि वै।
यक्ष-विद्याधराणाञ्च तानि चक्रे स विश्वकृत् ॥१८॥
ततश्च षोड़शं भागं बिभर्त्ति भगवान् विभुः।
तत् तेजः पंचदशधा शातितं विश्वकर्म्मणा ॥१९॥
ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत् कुरून्।
ददृशे तत्र संज्ञाञ्च बड़वारूपधारिणीम् ॥२०॥
सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया।
जगाम सम्मुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ॥२१॥
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः।
नासत्यदस्रौ तनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२२॥
रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी चर्म्मी तनुत्रधृक्।
... समुद्भूतो वाणतूणसमन्वितः ॥२३॥

किरणों के स्पर्श से ही सब वस्तुयें पवित्र होती हैं आपकी किरणों के स्पर्श से ही जलादिकभी पवित्र होते हैं॥८॥ जब तक आपकी किरणों से जगत् का संयोग नहीं होता तवतक होम,दानादिक धर्म सफल नहीं होते ॥९॥ सब ऋचायें तथा यजुर्वेद के मन्त्र और साममन्त्र आपके अङ्ग से निकलते हैं ॥ १०॥ हे जगत् के स्वामी ! आप जिस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमय हैं उसी प्रकार आप त्रयीमय हैं ॥ ११ ॥ आप ब्रह्म के स्वरूप और पर तथा अपर हैं। तथा आप मूर्त्त, अमूर्त्त सूक्ष्म और स्थूल रूप से स्थित हैं ॥ १२ ॥ निमेष और काष्ठा आदि काल स्वरूप क्षयात्मक आप ही हैं, आप प्रसन्न हों और अपनी इच्छा से ही अपने तेज को शमन करें ॥ १३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--

देवताओं और देवर्षियों के इस प्रकार स्तुति करने पर तेजराशि अव्यय सूर्य भगवान् ने अपने तेजको कम करदिया ॥१४॥ भगवान् सूर्यके ऋग्मय तेज से पृथ्वी, यजुर्मय तेजसे आकाश, और साममय तेज से स्वर्ग की उत्पत्ति हुई ॥१५॥ शान्त हुए तेज के पन्द्रह भाग में से एक भाग का विश्वकर्मा ने महादेव का त्रिशूल निर्मित किया ॥१६॥ सूर्य के निकले हुए तेज से विश्वकर्मा ने विष्णु का चक्र, वसुओं के वाण, अग्नि की शक्ति और कुवेर की पालकी वनाई ॥१७॥ तथा अन्य देवताओं, यक्षों और विद्याधरों के लिये भी वहुत से उग्र अस्त्र विश्वकर्मा ने सूर्य के निकले हुए तेज से बनाये ॥ और उस तेज के सोलहवें भाग को भगवान् सूर्य ने स्वयं धारण किया तथा अवशिष्ट पन्द्रह भाग तेज को विश्वकर्मा ने शान्त करके देवताओं के अस्त्र वनाडाले ॥ १९ ॥ फिर घोड़े का रूप धारण कर सूर्य उत्तर दिशा में कुरुदेशको गये और वहाँ जाकर उन्होंने घोड़ी के रूपमें संज्ञा को देखा ॥२०॥ संज्ञा ने जब उनको आते हुए देखा तो पर पुरुष की शङ्का करके वह उनके सन्मुख आगई जिससे कि पीछे की तरफ की रक्षा होजावे ॥ २१ ॥ तब उन दोनों की नाक से नाक का योग होगया और उस घोड़ी रूपी संज्ञाके मुख से नासत्य और दस्र नाम वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ सूर्यके पृथ्वी पर गिरे हुए वीर्य से रेवन्त नाम एक पुरुष प्रकट हुआ जो घोड़े पर चढ़ा हुआ था तथा ढाल, तलवार, धनुष वाण और अन्य अस्त्र धारण किये हुए

ततः स्वरूपमतुलं दर्शयामास भानुमान्।
तस्यैषा च समालोक्य स्वरूपं मुदमाददे ॥२४॥
स्वरूपधारिणीञ्चेमामानिनाय निजाश्रयम्।
संज्ञां भार्य्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः ॥२५॥
ततः पूर्व्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः।
द्वितीयश्च यमः शापाद्धर्म्मदृष्टिरभूत् सुतः ॥२६॥
क्रिमयो मांसमादाय पादतोऽस्य महीतले।
पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ॥२७॥
धर्म्मदृष्टियतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते।
ततो नियोगं तं याम्ये चकार तिमिरापहः ॥२८॥
यमुना च नदी जज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी।
अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ॥२९॥
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोऽपि नियोजितः।
छायासंज्ञासुतानाञ्च नियोगः श्रूयतां मम ॥३०॥
पूर्व्वजस्य मनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रजः।
ततः सावर्णिकीं संज्ञामवाप तनयो रवेः ॥३१॥
भविष्यति मनुः सोऽपि बलिरिन्द्रो यदा तदा।
शनैश्चरो ग्रहाणांच मध्ये पित्रा नियोजितः ॥३२॥
तयोस्तृतीया या कन्या तपती नाम सा कुरुम्।
नृपात् संवरणात् पुत्रमवाप मनुजेश्वरम् ॥३३॥
तस्य वैवस्वतस्याहं मनोः सप्तममन्तरम्।
कथयामि सुतान् भूपानृषीन् देवान् सुराधिपम् ॥३४॥

था॥ २३ ॥ इसके अनन्तर सूर्य ने अपना अतुल स्वरूप दिखाया जिसको देखकर कि संज्ञाको अत्यंत प्रसन्नता हुई ॥ २४ ॥ फिर संज्ञा ने अपने पूर्वस्वरूप को पुनः धारण कर लिया और सूर्यभी उस प्रीतिमती भार्या को फिर अपने आश्रममें लेगये॥२५॥ इस के बाद संज्ञा के प्रथम पुत्र वैवस्वत मनु हुए और दूसरे पुत्र शाप के कारण धर्मदृष्टि यम हुए ॥२६॥ तीसरी कन्या यमुना नाम महानदी हुई और यम को पाँव के पृथ्वी पर गिरने का शाप सूर्य ने स्वयं शान्त कर दिया ॥ २७॥ और यमराज को जो धर्म में दृष्टि रखते थे और मित्र तथा शत्रुको समभाव से देखते थे, सूर्य ने प्रजाओं के धर्माधर्म का निर्णय करने के हेतु नियुक्त किया ॥२८॥ यमुना नाम कन्या नदी होकर कलिन्द देश में बहने लगी और महात्मा सूर्य ने अपने दोनों पुत्रोंको जो घोड़ीरूप संज्ञा से उत्पन्न हुए थे अश्विनीकुमारों के नाम से देवताओंका वैद्य बनाया ॥२९॥ सूर्यने रेवन्तको गुह्यकों का अधिपति बनाया। अब छाया के पुत्रों की जो नियुक्ति हुई उसको सुनो ॥ ३०॥ छायासंज्ञा के बड़े पुत्र का जो मनु के तुल्य था सूर्य ने सावर्णिक नाम रक्खा ॥ ३१॥ वह सावर्णिक जिस समय बलि इन्द्र होंगे उस समय मनु होंगे। दूसरे पुत्र शनैश्चर को सूर्य ने ग्रहों के मध्य में नियुक्त किया ॥ ३२ ॥ और तीसरी जो कन्या थी उसका नाम तपती रक्खा। तपतीके कुरुदेशके राजा सम्वरणसे मनुजेश्वर नाम एक पुत्र हुआ ॥३३॥ हे क्रौष्टुकि! अब उस सातवें मन्वन्तर में जो देवता, ऋषि और उस मनुके पुत्र राजा लोग हुए उनको कहता हूँ ॥३४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में वैवस्वत मन्वन्तर में वैवस्वतोपत्ति नाम ७८वां अध्याय समाप्त।

उनासीवाँ अध्याय

मार्कण्डेयवाच

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः।
भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौ यत्र देवगणाः स्मृताः ॥ १ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः।
साध्याश्च वसवो विश्वे धर्म्मपुत्रगणास्त्रयः ॥ २ ॥
भृगोस्तु भृगवो देवाः पुत्रा ह्यङ्गिरसः सुताः।
एष सर्गश्च मारीचो विज्ञेयः साम्प्रतं द्विजः ॥ ३ ॥
ऊर्ज्जस्वी नाम चैवेन्द्रो महात्मा यज्ञभागभुक्।

मार्कण्डेयजी बोले—

वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, विश्वेगण, मरुद्गण, भृगुगण और अङ्गिरसगण ये आठ देवताओंके गण कहाये ॥ १ ॥ आदित्य, वसु और रुद्रगण कश्यप के पुत्र हैं तथा साध्य, मरुत् और विश्वेगण देवताओं के धर्मपुत्र कहे गये हैं ॥ २ ॥ भृगुगण भृगु के पुत्र हैं और अङ्गिरस अङ्गिरा ऋषि की सन्तान हैं। हे द्विज! यह सर्ग मारीच नाम है जो इस समयतक वर्तमान है ॥ ३ ॥ और इस मनु के इन्द्र महात्मा

अतीतानागता ये च वर्त्तन्ते साम्प्रतञ्च ये ॥ ४ ।
सर्व्वे ते त्रिदशेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ।
सहस्राक्षाः कुलिशिनः सर्व्व एव पुरन्दराः ॥ ५ ॥
मघवन्तो वृषाः सर्व्वे शृङ्गिणो गजगामिनः ।
ते शतक्रतवः सर्व्वे भूताभिभवतेजसः ॥ ६ ॥
धर्म्माद्यैः कारणैः शुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः ।
भूतभव्यभवन्नाथाः शृणु चैतत्रयं द्विज ॥ ७ ॥
भूर्लोकोऽयं स्मृता भूमिरन्तरीक्षं दिवः स्मृतम् ।
दिव्याख्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलोक्यमिति गद्यते ॥ ८ ॥
अत्रिश्चैव वशिष्ठश्च काश्यपश्च महानृषिः ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ ९ ॥
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः ।
जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे ॥१०॥
इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभगो दिष्ट एव च ॥११॥
करूषश्च पृषध्रश्च वसुमान् लोकविश्रुतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥१२॥
वैवस्वतमिदं ब्रह्मन् कथितं ते मयान्तरम् ।
अस्मिन् श्रुते नरः सद्यः पठिते चैव सत्तम ।
मुच्यते पातकैः सर्व्वैः पुण्यञ्च महदश्नुते ॥१३॥

ऊर्जस्वी हैं जो कि यज्ञभाग के भोक्ता हैं और जो इन्द्र होचुके हैं, होने वाले हैं अथवा जो वर्तमान हैं ॥४॥ उन सबको समान लक्षणवाला जानना चाहिये वे सब एकहज़ार आंख वाले, वज्रको धारण करने वाले तथा पुरन्दर नाम से प्रसिद्ध होने वाले हैं ॥ ५ ॥ वे सब इन्द्र मघवान्, शृङ्गी और गजगामी हैं । उनमें से हर एक ने सौ यज्ञ किये हैं तथा वे सब तेजस्वी हैं ॥ ६ ॥ ये इन्द्र धर्मादि शुद्ध आचरणों करके स्वामित्व को प्राप्त हुए हैं तथा भूत भविष्यत् और वर्तमानपर आधिपत्य करते हैं अब हे द्विज ! इस मन्वन्तर के त्रैलोक्य को सुनो ॥७॥ भूर्लोक पृथ्वी, दिवलोक अंतरिक्ष और दिव्यलोक स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध हैं और यही इस मन्वंतर के त्रैलोक्य हैं ॥ ८ ॥ अत्रि, वशिष्ठ, काश्यप, गौतम भरद्वाज तथा कौशिक विश्वामित्र ॥ ९ ॥ और भगवान् ऋचीक के पुत्र यमदाग्नि यही सात इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं ॥ १० ॥ इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, दिष्ट ॥११॥ करूष, पृषध्र और वसुमान यही नौ पुत्र वैवस्वत मनु के संसार में प्रसिद्ध हैं ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने आप से वैवस्वत मन्वन्तर कहा । इसको सुनने से या पढ़ने से मनुष्य सब पापों से छूट कर महान् पुण्य को प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में वैवस्वत कीर्तन नाम ७९वाँ अध्याय समाप्त ।

अस्सीवाँ अध्याय

कौष्टुकिरुवाच
स्वायम्भुवाद्याः कथिताः सप्तैते मनवो मया ।
तदन्तरेषु ये देवा राजानो मुनयस्तथा ॥ १ ॥
अस्मिन् कल्पे सप्तमेऽन्ये भविष्यन्ति महामुने ।
मनवस्तान् समाचक्ष्व ये च देवादयश्च ये ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच
कथितस्तव सावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्च यः ।
ज्येष्ठ मनोस्तुल्यः स मनुर्भविताष्टमः ॥ ३ ॥

कौष्टुकिजी बोले—
हे मार्कण्डेयजी ! स्वायम्भुव आदि सात मन्वन्तरों का तथा उनके अन्दर जो देवता, राजा और मुनि हुए उन सबका वृत्तांत आपने वर्णन किया ॥ १ ॥ हे महामुनि मार्कण्डेयजी ! इस कल्प के इन सात मन्वन्तरोंके पश्चात् जो मन्वन्तर और होंगे उनका और उनके समय में जो देवता आदि होंगे उनका वृत्तांत कहिये ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—
मैं छाया संज्ञा के पुत्र सावर्णिक के विषय में आपसे कह चुका हूं कि वे अपने बड़े भाई मनु के तुल्य तेजस्वी हैं, वे ही सावर्णिक आठवें मनु होंगे

रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान् कृप एव च ।
ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रौणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ४ ॥
सुतपाश्चामिताभाश्च मुख्याश्चैव त्रिधा सुराः
विंशकः कथितश्चैषां त्रयाणां त्रिगुणो गणः ॥ ५ ॥
तपस्तपश्च शक्रश्च द्युतिर्ज्योतिः प्रभाकरः ।
प्रभासो दयितो धर्म्मस्तेजोरश्मिश्च वक्रतुः ॥ ६ ॥
इत्यादिकस्तु सुतपा देवानां विंशको गणः ।
प्रभुर्विभुर्विभासाद्यास्तथान्यो विंशको गणः ॥ ७ ॥
सुराणाममितानान्तु तृतीयमपि मे शृणु ।
दमो दान्तो रितः सोमो विन्ताद्याश्चैव विंशतिः॥ ८ ॥
मुख्या ह्येते समाख्याता देवा मन्वन्तराधिपाः ।
मारीचस्यैव ते पुत्राः काश्यपस्य प्रजापतेः ।
भविष्याश्च भविष्यन्ति सावर्णस्यान्तरे मनोः ॥ ९ ॥
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनिर्मुने ।
पाताल आस्ते योऽद्यापि दैत्यः समयबन्धनः॥ १० ॥
विरजाश्चार्व्ववीरश्च निर्म्मोहः सत्यवाक् कृतिः ।
विष्णवाद्याश्चैव तनयाः सावर्णस्य मनोर्नृपाः॥ ११ ॥

॥३॥ उस मन्वंतर में राम, व्यास, गालव, दीप्तमान्, कृप, श्रृङ्गीऋषि तथा अश्वत्थामा ये सातही सप्तर्षि होंगे ॥ ४ ॥ सुतपा, अमिताभा और मुख्या इन्हीं तीन देवताओं के गण त्रिगुण विंशक प्रसिद्ध होंगे ॥५॥ तप, तपस्वी, शक्र, द्युति, ज्योति प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेजराशि, और क्रतु ॥ ६ ॥ इत्यादि सुतपा नाम देवताओं के विंशक गण होंगे तथा प्रभु, विभास और विभु आदि दूसरे विंशक गण होंगे ॥७॥ तीसरे अमित नाम देवताओं के गणों को सुनो। वे दम, दान्त, ऋतु, सोम और विन्ता आदि विंशक गण हैं ॥८॥ यही मुख्य देवता इस मन्वन्तर के स्वामी होंगे। ये देवता सावर्णिक मन्वन्तर में मरीच अर्थात् प्रजापति कश्यप के पुत्र होंगे ॥ ९ ॥ हे मुनि! विरोचन के पुत्र राजा बलि इन देवताओं के इन्द्र होंगे। यह राजा बलि अपनी प्रतिज्ञा को पालने के लिये अब तक पाताल लोक में स्थित हैं ॥ १० ॥ विरजा, अर्व्ववीर, निर्म्मोह, सत्यवाक्, कृति और विष्णु आदि ये सावर्णिक मनु के पुत्र उस मन्वंतर के राजा होंगे ॥ ११ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर नाम ८०वाँ अध्याय समाप्त ।

इक्यासीवाँ अध्याय

॥ देवी माहात्म्य ॥

॥ ओ३म् नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिः सूर्य्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम ॥ १ ॥
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥ २ ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्व्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥ ३ ॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तथा ॥ ४ ॥
तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

सूर्य-पुत्र सावर्णिक की जो कि आठवें मनु कहे जाते हैं उत्पत्ति को मैं विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सुनिये ॥१॥ जिस प्रकार कि महामायाके प्रभाव से वह महाभाग सावर्णिक मन्वंतर के स्वामी हुए यह सुनिये ॥२॥ पहिले स्वारोचिष मन्वंतर में स्वारोचिष मनु के पुत्र चैत्रके वंश में सुरथ नाम राजा हुए जो कि समस्त पृथ्वी मण्डल पर राज्य करते थे ॥३॥ फिर प्रजा को औरस पुत्र की तरह पालते हुए उनके कोला-विध्वंसी लोग शत्रु होगये ॥ ४ ॥ उन प्रबल शत्रुओंके साथ राजा सुरथका घोर युद्ध हुआ और यद्यपि कोला-ध्वंसी लोग थोड़ी तादाद में थे तो भी युद्ध में उनकी ही विजय हुई ॥ ५ ॥ फिर वह

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ६ ॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्ब्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोषो वलश्चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ७ ॥
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ८ ॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्य्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ ६ ।
तस्थौ कञ्चित् स कालञ्च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे ॥१०॥
सोऽचिन्तयत् तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः ।
मत्पूर्व्वैः पालितं पूर्व्वं मया हीनं पुरं हि तत् ।
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्म्मतः पाल्यते न वा ॥११॥
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ।
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ॥१२॥
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ।
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्व्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥१३॥
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्व्वद्भिः सततं व्ययम् ।
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोषो गमिष्यति ॥१४॥
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ।
तत्र विप्राश्रमाभ्यासे वैश्यमेकं ददर्श सः ॥१५॥
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ।
सशोक इव कस्मात् त्वं दुर्म्मना इव लक्ष्यसे ॥१६॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ।
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१७॥

वैश्य उवाच

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ।
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ॥१८॥
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ।
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ॥१६॥
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ।
स्वजनानांच दाराणाञ्चात्र संस्थितः॥२०॥

सुरथ अपने नगर में अपनेही देशके स्वामी होगये परन्तु वहाँभी उन प्रवल शत्रुओंने उनको घेरलिया ॥६॥ फिर इनके नगर में ही इनके कमज़ोर हो जानेपर इनके दुष्ट और दुरात्मा मंत्रियों और सेना पतियों ने राज्य के खज़ाने और सेना पर अपना आधिपत्य जमा लिया ॥७॥ जब राजा सुरथ का स्वामित्व क्षीण होने लगा तो आखेट के वहाने वह अकेले घोड़े पर सवार होकर दुर्गम वनमें चलेगये ॥८॥ उन्होंने उस वनमें द्विजवर्य मेधा का आश्रम देखा जो कि प्रशान्त, पशु-पक्षियों से व्याप्त तथा मुनि के शिष्यों से शोभित था ॥६॥ मुनिसे सत्कार प्राप्त करने पर वह राजा कुछ समय के लिये उसी आश्रममें ठहर गया, वह बहुधा उस मुनिके सुन्दर आश्रम में इधर-उधर घूमता रहता था ॥ १० ॥ एक समय वह राजा वहाँ पर ममतायुक्त होकर सोचने लगा कि जो नगर मेरे पूर्वजों ने बसाया था उस को मैं छोड़कर चला आयाहूँ,न मालूम मेरे अधर्मी नौकर लोग प्रजा का धर्म पूर्वक पालन करतेहैं या नहीं ॥ ११ ॥ मैं नहीं जानता कि मेरे मदयुक्त उस बलवान् हाथी को शत्रु के वशमें होकर वह प्रधान खाना देता है या नहीं ॥ १२ ॥ जो मेरी प्रसन्नता के लिये नित्य मेरे पास आकर धन और भोजनादि पाते थे वे आज अपनी आजीविका के लिये दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे॥ १३ ॥ राजा अत्यन्त दुःखपूर्वक सोचने लगा कि जो खज़ाना मैंने बड़े परिश्रम से जमा किया था उसको नौकर लोग निरन्तर खर्च करके क्षीण कररहे होंगे ॥ १४ ॥ यह तथा अन्य बातें वह राजा सोच रहा था कि इतने में उसने आश्रम के पास एक वैश्य को देखा ॥१५॥ उसने वैश्य से पूछा कि तुम कौन हो और किस कारण से यहाँ आये हो तथा किस कारण से तुम उदास और शोकयुक्त प्रतीत होते हो ? ॥ १६ ॥ राजा के यह वचन सुनकर वह वैश्य राजा को प्रणाम कर विनयपूर्वक कहने लगा ॥ १७ ॥

वैश्य बोला—

धनियों के कुलमें उत्पन्न मैं समाधि नाम वैश्य हूँ और धन के लोभ से मेरे दुष्ट स्त्री पुत्रों ने मुझ को घर से बाहर निकाल दिया है ॥१८॥ स्त्री पुत्रादिकोंने मेरे धनको लेकर मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है इस कारण मैं दुःखी होकर भाई-बंधुओं से त्यागा हुआ इस वन में आया हूँ ॥ १९ ॥ और अब यहां रहते हुए मुझे स्त्री-पुत्रों और स्वजनोंकी कुशल क्षेम का कुछ भी पता नहीं है ॥ २० ॥ और

किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ।
कथं ते किं नु सद्वृत्ताः दुर्वृत्ता किं नु मे सुताः २१॥

मैं नहीं जानता कि घरपर उनकी कुशलहै या नहीं तथा वे अच्छे कार्यों में प्रवृत्त हैं या नहीं ॥ २१ ॥

राजोवाच

यैर्निरस्तो भवांल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ।
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥२२॥

राजा बोले—

जिन स्त्री-पुत्रादि ने धन के लोभ से तुमकोघर से निकाल दिया उनके स्नेह में तुम्हारे चित्त को ममत्व क्यों है ? ॥ २२ ॥

वैश्य उवाच

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ।
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ॥२३॥
यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ।
पतिस्वजनहार्दञ्च हार्दि तेष्वेव मे मनः ॥२४॥
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ।
यत् प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ॥२५॥
तेषां कृते मे निश्वासा दौर्म्मनस्यंच जायते ।
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥२६॥

वैश्य बोला—

जिस तरह आपने कहा वह सत्य है, परन्तु मैं क्या करूँ मेरा मन वशमें नहीं है और उनके प्रति निष्ठुर नहीं होता ॥२३॥ जिन स्त्री पुत्रों ने धन के लोभ से पति और पितृ-स्नेह को भुला दिया और और मुझको घर से निकाल दिया उनके प्रति अब भी मेरे हृदय में ममता है ॥२४॥ हे महाबुद्धि ! यह आश्चर्य है कि मैं यह सब जानता हुआ भी अनजान होरहा हूं कारण-कि उन भाई-बन्धुओं में भी मेरी ममता है जिन्होंने मेरे प्रति शत्रु का सा कर्म किया है ॥ २५ ॥ उन्हीं के लिये मैं श्वास छोड़ा करता हूँ तथा दुःखी रहता हूँ । मैं क्या उपायकरूँ जिससे कि मेरा मन उनकी प्रीति छोड़कर उनके प्रति निष्ठुर होजाय ? ॥२६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ।
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ॥२७॥
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ।
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्य-पार्थिवौ ॥२८॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब वे दोनों समाधि नाम वैश्य और नृपश्रेष्ठ सुरथ उस मुनि के पास जाकर बैठे ॥ २७ ॥ उन दोनों ने न्याय पूर्वक मुनि की पूजाकी और उनकी आज्ञा पाकर वे बैठगये । इसके बाद उन वैश्य और राजा ने कथा-वार्ता कहना शुरू किया ॥२८॥

राजोवाच

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ।
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ॥२९॥
ममत्वं मम राजस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोऽपि यथाऽज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ॥३०॥
अयंच निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ।
स्वजनेन च सन्त्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ॥३१॥
एवमेष तथाहंच द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ।
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ॥३२॥
तत् केनैतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ।
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥३३॥

राजा बोले—

हे भगवन् ! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ । मेरा चित्त मेरे वश में नहीं है और इस कारण मेरे मन को दुःख होता है ॥ २९ ॥ हे मुनिवर ! राज्य के सम्पूर्ण अङ्गों में मेरी ममता है । यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है मैं अज्ञान क्यों होता हूँ ? ॥ ३० ॥ यह वैश्य भी स्त्री, पुत्र, सेवक और स्वजनों द्वारा धन के लोभ में घर से निकाला गया है, परन्तु तो भी इसकी उनमें अत्यन्त प्रीति है । यह वैश्य और मैं दोनों बहुत दुःखी हैं कारण-कि हम दृष्टि-दोष से विषय को विपरीत समझकर ममता के वश में हो रहे हैं ॥ ३२ ॥ हे महाभाग ! यह किस तरह है कि ज्ञानियों को भी मोह होत है । मेरी और इस वैश्य की सी मूर्खता तो अविवेकी और अन्धों में होनी चाहिये ॥३३॥

ऋषिरुवाच

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ।

ऋषि बोले—

हे महाभाग ! विषय के समझने में सब जीवों

वेषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक् ॥३४॥
देवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥३५॥
ज्ञानिनो मनुजा सत्यं किन्तु ते न हि केवलम् ।
यतो हि ज्ञानिनः सर्व्वे पशु-पक्षि-मृगादयः ॥३६॥
ज्ञानंच तत्मनुष्याणां यत् तेषां मृग-पक्षिणाम् ।
मनुष्याणांच यत् तेषां तुल्यमन्यत् तथोभयोः॥३७॥
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतंगांछावचंचषु ।
कणमोक्षादृतान् मोहात् पीड्यमानानपि क्षुधा ॥३८॥
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ।
लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेते किं न पश्यसि ॥३९॥
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः ।
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणः ॥४०॥
तन्नात्र विस्मयः कार्य्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ।
महामाया हरेश्चैतत् तया संमोह्यते जगत् ॥४१॥
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥४२॥
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥४३॥
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्व्वेश्वरेश्वरी ॥४४॥

राजोवाच

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्म्मास्याश्च किं द्विज॥४५॥
यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ।
तत् सर्व्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥४६॥

ऋषिरुवाच

नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्व्वमिदं ततम् ।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ॥४७॥
देवानां कार्य्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥४८॥
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।
आस्तीर्य्य शेषमभजत् कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ॥४९॥
। द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।

को ज्ञान है परन्तु यह विषय भी सबका अलग २ है ॥३४॥ कुछ जीव दिन में अन्धे होते हैं और कुछ रात्रि में, तथा कुछ जीवों को दिन और रात्रि में समान दिखाई देता है ॥ ३५ ॥ सत्य बात तो यह है कि केवल मनुष्यों को ही ज्ञान नहीं होता, यह ज्ञान पशु, पक्षी और मृगादिकों में भी होता है ॥ जो ज्ञान मनुष्यों को हैं वही मृग और पक्षियों को है इस कारण मनुष्य और पशु-पक्षी ज्ञानमें बराबर हैं ॥ ३७ ॥ देखिये, क्षुधा से पीड़ित पशु पक्षी यह जानते हुए भी बच्चों के खाने से हमारी भूख नहीं जायगी, मोह वश अपनी चोंचों से बच्चों के मुख में आहार देते हैं ॥ ३८ ॥ हे मनुष्यों में सिंह ! क्या आप नहीं देखते कि ज्ञान होते हुए भी मनुष्य प्रत्युपकार की आशा से पुत्रों को पालते हैं ? ॥३९॥ संसार के पालने वाले ईश्वरकी महामायाके प्रभाव से मनुष्य ममता और मोह के गर्त में गिरते हैं ॥ इसलिये इसमें सन्देह न करना चाहिये कि महामाया जगत् के स्वामी जो विष्णु हैं उनकी योग निद्रा है और इसी से यह जगत् मोहित होरहा है ॥ ४१ ॥ वह देवी भगवती ज्ञानियों के चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती है ॥ ४२ ॥ उसी देवी ने इस चराचर जगत् को सृजा है तथा वह ही प्रसन्न होकर मुक्ति के लिये मनुष्यों को वर देती है ॥ ४३ ॥ वह देवी परम विद्या है तथा मुक्ति की कारणभूत और सनातनी है । वह देवी ही सांसारिक बन्धनों की कारण और सब ईश्वरों की ईश्वरी है ॥ ४४ ॥

राजा बोले—

हे भगवन् ! वह देवी कौन है जिसको कि आप महामाया कहते हैं । हे द्विज ! वह कैसे पैदा हुई और उसके कर्म क्या हैं ? ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्म के जानने वालों में श्रेष्ठ मुनि ! उस देवी का जो स्वभाव और स्वरूपहै और जिस तरह कि वह उत्पन्न हुई है वह सब मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥४६॥

ऋषि बोले—

वह जगत्मूर्ति नित्य है और उसी से यहसब है । तो भी उसकी उत्पत्ति संक्षेप में मुझसे सुनो ॥४७॥ यद्यपि वह देवताओं की कार्यसिद्धि के लिये संसार में प्रादुर्भूत होती है तो भी उसको नित्या कहते हैं ॥ ४८ ॥ कल्प के अन्त में जगत् में प्रलय होने पर जब भगवान् विष्णु योगनिद्रा में प्राप्त हो कर शेष पर शयन कर रहे थे ॥४९॥ तब विष्णु के कान के मल से दो भयङ्कर दैत्य जो कि मधु और

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥५०॥
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तंच जनार्दनम् ॥५१॥
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ।
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ॥५२॥
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता॥५४॥
अर्द्ध मात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्य्या विशेषतः ।
त्वमेव सा त्वं सावित्री त्वं देवी जननी परा ॥५५॥
त्वयैव धार्य्यते सर्व्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्व्वदा ॥५६॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५७॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥५८॥
प्रकृतिस्त्वञ्च सर्व्वस्य गुणत्रयविभाविणी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥५९॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥६०॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शंखिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी-परिघायुधा ॥६१॥
सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥६२॥
यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्व्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ६३॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पाताऽत्ति यो जगत् ।
साऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥६४॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।

कैटभ के नाम से विख्यात हुए निकले और ब्रह्माजी का वध करने को तैयार हुए॥ ५० ॥ प्रजापति ब्रह्मा विष्णु के नाभि कमलमें बैठे हुए थे। उन्होंने उन दोनों भयङ्कर असुरों को देखा परन्तु भगवान् विष्णु को सोया हुआ देखकर ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजी ने एकाग्र चित्त होकर भगवान् के नेत्रों में स्थित योग निद्रा की हरि के जगाने के निमित्त स्तुति की॥५२॥ वह योगनिद्रा विश्वेश्वरी, जगद्धात्री, स्थिति संहार कारिणी तथा तेजस्वी भगवान् विष्णु की अतुला भगवती थीं ॥ ५३ ॥

ब्रह्माजी बोले—

हे निद्रे! आपही स्वाहा, आपही स्वधा तथा आपही वषट्कार स्वरूपिणी हो । आप सुधा हो और नित्य अक्षरों में तीन प्रकार की मात्राओं के रूप से स्थित हो ॥ ५४ ॥ हे देवी! आप अर्द्धमात्रा स्वरूप से स्थित हैं, नित्या हैं तथा जिसका विशेष रूप से उच्चारण न किया जासके वह आप ही हैं। आपही सावित्री और परम जननी हैं ॥ ५५ ॥ यह सब आप ही से धारण किया जाता है और आप ही ने इस जगत का निर्माण किया है तथा आपही इस जगत् के पालन और नाश करनेवाली हैं ॥५६॥ हे जगन्मये! सृष्टि को उत्पन्न करने में आप सृष्टि-रूपा, पालन करने में स्थितिरूपा तथा अन्त करने में संहाररूपा होकर स्थित हैं ॥ ५७ ॥ आपही महा विद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महा-मोहा, महादेवी और महासुरी हैं ॥ ५८ ॥ आपही सबकी त्रिगुणमयी प्रकृतिहैं तथा भयङ्कर कालरात्रि मोहरात्रि, महारात्रि भी आप ही हैं ॥५९ ॥ आपही शोभा, ईश्वरी, लज्जा, बुद्धि, ज्ञान-लक्षणा, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा आदि हैं ॥६०॥ आप ही अपनी दशों भुजाओंमें खड्ग, शूल, मुण्ड, गदा चक्र, शंख, चाप, बाण, भुशुण्डी और परिघ धारण किये हुए हैं ॥ ६१॥ आप सौम्य हैं और सौम्यतरा हैं तथा सौम्यों में भी आप अत्यन्त सुन्दरीहैं तथा आपही पर, अपर, परमा और परमेश्वरी हैं ॥६२॥ हे समस्तात्मिके! जहाँ पर जो कुछ सत, असत् वस्तु है उस सब में शक्ति तुम्हीं हो, अतः ऐसी आप जो हैं उनकी कहाँ तक स्तुति की जाय ॥६३॥ जो भगवान् विष्णु तुम्हारी शक्ति से ही जगत की उत्पत्ति पालन और विनाश करते हैं, जब वह ही तुम्हारे वशीभूत होकर सोरहे हैं तो तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है? ॥६४॥ जबकि विष्णु, मैं और महादेव आपकी आज्ञा से ही शरीर धारण करते

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुंशक्तिमान्भवेत्६५
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥६६॥
प्रबोधश्च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥६७॥

ऋषिरुवाच

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ।
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ॥६८॥
नेत्रास्य-नासिका-बाहु-हृदयेभ्यस्तथोरसः ।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥६९॥
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ।
एकार्णवेऽहिशयनात् ततः स ददृशे च तौ ॥७०॥
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्य्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ॥७१॥
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ।
पंच वर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥७२॥
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥७३॥

भगवानुवाच

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ।
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥७४॥

ऋषिरुवाच

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्व्वमापोमयं जगत् ।
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः॥७५॥
प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः ।
आवां जहि न यत्रोर्व्वी सलिलेन परिप्लुता ॥७६॥

ऋषिरुवाच

तथेत्युक्त्वा भगवता शंख-चक्र-गदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥७७॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयःशृणु वदामि ते ॥७८॥

हैं तो आपकी स्तुति करने को कौन समर्थहैं ॥६५॥ हे देवि ! आपकी इन्हीं उदार प्रभावों से स्तुति की जाती है, आप इन दुष्ट मधु और कैटभ नाम दैत्यों को मोह प्राप्त कीजिये ॥६६॥ आप इन दोनों महान् दैत्यों का वध करनेके लिये अच्युत भगवान् विष्णु को जगाइये ॥ ६७ ॥

ऋषि बोले—

मधुकैटभ को मारने के लिये विष्णु को जगाने के निमित्त जब ब्रह्माजी ने इस प्रकार तामसी देवी की स्तुतिकी तब वह भगवती ॥६८॥ विष्णुभगवान् के नेत्र, नासिका, हृदय और छाती से निकल कर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी को दर्शन देने के निमित्त खड़ी होगई ॥६९॥ उस योगनिद्रा से मुक्त होकर भगवान् विष्णु शेष शय्या से उठे और उन्होंने एकार्णव में उन दोनों राक्षसों को देखा ॥ ७० ॥ फिर वे दोनों दुष्टात्मा अति बलवान् और पराक्रमी मधु, कैटभ क्रोध से आँखें लाल कर ब्रह्माजी को खाने के लिये उद्यत हुए ॥७१॥ तब विष्णु भगवान् उठकर उन दोनों के साथ युद्ध करने लगे। विष्णु ने पाँच हज़ार वर्ष तक उन दोनों दैत्यों से बाहु युद्ध किया ॥७२॥ फिर वे दोनों बलसे उन्मत्त और महामाया से विमोहित होकर भगवान् विष्णु से बोले कि हम तुम से प्रसन्नहैं तुम वर माँगो ॥७३॥

भगवान् बोले—

यदि तुम दोनों मुझ से प्रसन्न हो तो मुझे वर दो कि तुम दोनों मेरे हाथसे मारे जाओ ॥७४॥

ऋषि बोले—

इस प्रकार धोखे में आकर वे सब जगत में जल ही जल देखकर भगवान् कमलनयन से बोले कि ॥ ७५ ॥ हम तुम्हारे युद्ध से प्रसन्न हैं और तुम्हारे हाथ से हमारी मृत्यु श्लाघ्य है इसलिये जहाँ पर जल न हो वहाँ हमको मारो ॥ ७६ ॥

ऋषि बोले—

इस पर 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु ने उन दोनों का शिर अपनी जाँघ पर रख कर काट डाला ॥ इस प्रकार देवी की उत्पत्ति हुई जिसकी कि कि स्तुति ब्रह्माजी ने की है। अब इस देवी का प्रभाव सुनो मैं कहता हूँ ॥७८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वंतरमें देवीमाहात्म्यमें मधुकैटभवध नाम ८१वां अ०स० ।

बियासीवां अध्याय

ऋषिरुवाच

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानांच पुरन्दरे ॥ १ ॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥ २ ॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेश-गरुड़ध्वजौ ॥ ३ ॥
यथावृत्त तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ४ ॥
सूर्य्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषांचाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ५ ॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्व्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ६ ॥
एतद्वः कथितं सर्व्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणंच प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम्॥ ७ ॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ८ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात् ततः।
निश्चक्राम महत् तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥ ९ ॥
अन्येषाञ्चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत् तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥१०॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्व्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥११॥
अतुलं तत्र तत् तेजः सर्व्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥१२॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥१३॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यंचैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥१४॥
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनाञ्च कराङ्गुल्यः कौवेरेण च नासिका॥१५॥

ऋषि बोले—

पूर्वकाल में देवताओं और असुरों में पूरे सौ वर्ष युद्ध हुआ। उस समय राक्षसों का स्वामी महिषासुर और देवताओं के स्वामी इन्द्र थे ॥ १ ॥ उस समय महाबली असुरों ने देवताओं की सेना को पराजित कर दिया और महिषासुर सब देवताओं को जीत कर इन्द्र बन बैठा ॥२॥ तब परास्त होकर देवता लोग ब्रह्माजी को आगे करके वहाँ गये जहाँ महादेवजी और गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु थे ॥ ३ ॥ फिर देवताओं ने उन दोनों से महिषासुरका सब वृत्तान्त तथा जिस प्रकारकि उन का पराजय हुआ वह सब कह सुनाया ॥४॥ उन्होंने कहा कि सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम और वरुण तथा और देवताओं पर भी महिषासुर ने अधिकार जमा लिया है ॥५॥ उस दुष्टात्मा महिषासुर से स्वर्ग से निकाले हुए देवता पृथ्वी पर मनुष्यों की तरह घूमते फिरते हैं ॥ ६ ॥ इस प्रकार हमने आपके प्रति उस देवताओं के शत्रु का वृत्तान्त कहा। हम आपकी शरण आये हैं, आप उसके अब वध की चिन्ता करें ॥ ७ ॥ देवताओंके इस प्रकार वचन सुनकर विष्णु भगवान् और महादेवजी ने क्रोध किया जिससे कि उनकी भ्रकुटी और मुख तन गये ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर कोपयुक्त भगवान् विष्णु के मुख से एक महान् तेज निकला तथा उसी प्रकार ब्रह्मा और शङ्कर के मुख से भी एक तेज निकला ॥९॥ और भी इन्द्र आदि देवताओं के शरीर से महातेज निकल कर सब का तेज एक स्थान पर इकट्ठा होगया ॥ १० ॥ तब उन देवताओं ने देखा कि वह अत्यन्त तेज जलते हुए पहाड़ के समान होगया और दिशायें ज्वालाओं से व्याप्त होगईं ॥ ११ ॥ सब देवताओं के शरीरसे निकलाहुआ वह अतुल तेज एक स्थान पर एकत्रित होकर नारीरूप होगया। वह स्त्री तीनों गुणों से युक्त थी ॥ १२ ॥ महादेवजी के तेज से उसका मुख हुआ था तथा यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से भुजायें हुईं ॥ १३ ॥ चंद्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यभाग वरुण के तेज से जंघा और पृथ्वी के तेजसे नितंब हुए ॥ १४ ॥ ब्रह्मा के तेज से पाँव, सूर्य के तेज से अँगुलियां, वसुओं के तेज से हाथों की अँगुलियां और कुबेर के तेज से नासिका हुई ॥ १५ ॥ प्रजा-

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥१६॥
भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषांचैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥१७॥
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥१८॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रंच दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥१९॥
शंखञ्च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥२०॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद्गजात् ॥२१॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशंचाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥२२॥
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म्म च निर्म्मलम् २३॥
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूड़ामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२४॥
अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्व्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२५॥
अंगुरीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।
विश्वकर्म्मा ददौ तस्यै परशुञ्चातिनिर्म्मलम्॥२६॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाऽभेद्यञ्च दंशनम् ।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥२७॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजंचातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२८॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्व्वनागेशो महामणिविभूषितम् ।
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ॥२९॥
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ।
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्म्मुहुः ॥३०॥
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ।
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ॥३१॥
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ।

प्रजापति के तेज से दाँत उत्पन्न हुए तथा अग्नि के तेज से तीनों नेत्र हुए ॥ १६ ॥ दोनों संध्याओं के तेज से उनकी भ्रकुटियाँ और वायुके तेज से कान उत्पन्न हुए। उपरोक्त तथा अन्य देवताओं के तेज से वह शिवा उत्पन्न हुई ॥१७॥ महिषासुरसे पीड़ित हुए वे सब देवता समस्त देवताओं के तेज से उत्पन्न हुई उस देवी को देखकर हर्षित हुए ॥१८॥ उस समय महादेवजी ने अपने शूल में से एकशूल निकाल कर उनको दिया तथा विष्णुने अपने चक्र में से एक चक्र निकाल कर देवी को दिया ॥ १९ ॥ वरुण ने शंख, अग्नि ने शक्ति और वायु ने धनुष बाणों से भरेहुए दो तीरकश दिये ॥२०॥ देवताओं के स्वामी इन्द्र ने अपने वज्र में से निकाल कर एक वज्र देवी को दिया तथा उन्हीं सहस्र चक्षु वाले इन्द्र ने अपने ऐरावत हाथी का घण्टा भी उनको देदिया ॥ २१ ॥ यम ने अपने कालदण्ड में से एक दण्ड और वरुण ने पाश दिया तथा दक्ष प्रजापति ने अक्षमाला और ब्रह्मा ने कमण्डलु दिया ॥ २२ ॥ सूर्य ने उनके सब रोम कूपों में किरणों का समावेश किया तथा काल ने एक तलवार और सुन्दर एक ढाल उनको दी ॥ २३ ॥ क्षीर समुद्र ने एक निर्मल हार तथा दिव्याम्बर दिया तथा उसने एक चूड़ामणि, दिव्य कुण्डल और पहुँचियाँ भी दीं ॥२४॥ अर्द्ध-चन्द्रमा के समान स्वच्छ केयूर, सब भुजाओं में स्वच्छ बाजूबन्द और एक उत्तम कण्ठहार ॥२५॥ तथा सब अँगुलियों की अँगूठियाँ ये सब रत्न भी उसने दिये । विश्वकर्मा ने एक निर्मल परशुदिया ॥२६॥ और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र, अभेद्य, कवच तथा सिर और हृदय की निर्मल कमलों की माला भी दी ॥ २७ ॥ समुद्र ने एक अत्यन्त सुन्दर कमल देवी को दिया तथा हिमालय पर्वतने वाहन के लिये सिंह और अनेकों रत्न दिये ॥ २८ ॥ कुबेर ने सुरा से भरा हुआ एक पात्र दिया। सब नागों के स्वामी शेषनाग ने जो कि इस पृथ्वी को धारण किये हुये हैं महामणि से युक्त एक नागहार देवी को दिया ॥ २९ ॥ और भी देवताओं ने देवी को आभूषणों और आयुधों से सम्मानित किया और इसके बाद वह देवी बड़े ऊँचे स्वर से अट्टहास करने लगी ॥ ३० ॥ उसके घोर नाद से सम्पूर्ण आकाश व्याप्त होगया और समस्त दिशाओं में उस नाद का प्रतिशब्द होने लगा ॥३१॥ उस समय सम्पूर्ण लोक क्षोभ को प्राप्त हुये और समुद्र कम्पायमान होगये। पृथ्वी और

चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ॥३२॥
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ।
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥३३॥
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ।
सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ॥३४॥
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ।
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥३५॥
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ।
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ॥३६॥
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिस्वनेन ताम् ।
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम् ॥३७॥
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ॥३८॥
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ।
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ॥३९॥
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ।
अयुध्यतायुतानाञ्च सहस्रेण महाहनुः ॥४०॥
पंचाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ।
अयुतानां शतैः षड्भिर्वास्कलो युयुधे रणे ॥४१॥
गज-वाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ।
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥४२॥
विडालाक्षोऽयुतानाञ्च पंचाशद्भिरथायुतैः ।
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ॥४३॥
अन्ये च तत्रायुतशो रथ-नाग-हयैर्वृताः ।
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ॥४४॥
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ।
हयानांच वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ॥४५॥
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुषलैस्तथा ।
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥४६॥
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित् पाशांस्तथापरे ।
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ॥४७॥
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ।
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥४८॥

सम्पूर्ण पर्वत भी चलायमान होगये ॥ ३२ ॥ तब देवता लोग हर्षित होकर उस सिंह-वाहिनी देवी से बोले कि आपकी जय हो। और भक्ति से नम्र होकर मुनियों ने भी देवी की स्तुति की ॥ ३३ ॥ सम्पूर्ण त्रैलोक्य को क्षुभित देखकर देवताओं के वैरी राक्षस अपने-अपने आयुधोंको लेकर सेनाओं के सहित युद्ध के लिये उपस्थित होगये ॥ ३४ ॥ महिषासुर भी क्रोध से युक्त होकर और "अहा यह क्याहै !" यह कहकर अनेक असुरोंको लेकर उधर की तरफ दौड़ा जिधर से कि वह शब्द आ रहा था ॥ ३५ ॥ उसने देवी को तीनों लोकों में व्याप्त होते हुए देखा तथा उसने यह भी देखा कि उनके पाँवों के भार से पृथ्वी झुक गई है तथा उन के कुण्डलों की ज्योति से आकाश व्याप्त हो रहा है ॥३६॥ उनके धनुष खींचनेकी आवाज़से अनेकों लोक और पाताल चलायमान होगये थे तथा वे एक हज़ार भुजाओं से युक्त होकर सब दिशाओंमें चारों ओर विराजमान थीं ॥ ३७ ॥ फिर उस देवी के साथ राक्षस युद्ध में प्रवृत्त होगये और शस्त्र अस्त्रोंसे उस समय दिशायें प्रदीप्त होरही थीं॥३८॥ चिक्षुर नाम महिषासुर का सेनापति और दूसरा चामर नाम राक्षस जो बहुतसी चतुरंगिणी सेना के सहित था, ये दोनों देवी से खूब लड़े ॥ ३९ ॥ उदग्र नाम महा असुर साठ हज़ार रथ लेकर चढ़ा तथा महाहनु नाम राक्षस ने एक करोड़ सेना के साथ देवी से युद्ध किया ॥ ४० ॥ असिलोमा नाम महा असुरने पाँच करोड़ सेना लेकर और वाष्कल ने साठ लाख सेना के साथ रणमें युद्ध किया ॥४१॥ हज़ारों घोड़ों और हाथियों से घिरा हुआ वह आया और करोड़ों रथों के साथ उसने रणमें युद्ध किया ॥४२॥ विडाल नाम असुर पाँच लाख रथ लेकर आया और युद्ध करने लगा ॥४३॥ और भी अनेकों महाअसुर दस-दस हज़ार रथ, हाथी और घोड़े लेकर आये और देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४४॥ फिर करोड़ों हजार रथ, हाथी औरघोड़े लेकर युद्धस्थल में महिषासुर आया ॥४५॥ राक्षस गण तोमर, भिंदिपाल, शक्ति, मुशल, खड्ग, परशु और पट्टिशों से देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४६॥ कोई राक्षस शक्ति फेंकते थे और कोई पाश फेंकते थे और कोई खड्ग के प्रहार से देवीका वधकरना चाहतेथे॥४७॥ और वह चण्डिका देवी भी उनअस्त्र शस्त्रोंको अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा से कुतूहलमात्र में काट देती थी ॥४८॥ तब वहाँ ऋषि और देवता

अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ।
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ॥४६॥
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ।
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ॥५०॥
निश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ।
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ॥५१॥
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ।
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥५२॥
अवादयन्त पटहान् गणाः शंखास्तथापरे ।
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ॥५३॥
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ।
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्॥५४॥
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ।
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्॥५५॥
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ।
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ॥५६॥
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुषलेन भृशं हताः ।
केचिन्निपातिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ॥५७॥
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ।
सेनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥५८॥
केषाञ्चिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ।
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ॥५६॥
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ।
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधाकृताः ॥६०॥
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ।
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ॥६१॥
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्य्यलयाश्रिताः ।
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्ग-शक्त्यृष्टिपाणयः॥६२॥
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥६३॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साऽभवत् तत्र यत्राभूत् स महारणः ॥६४॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः ।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६५॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।

आये और देवी की स्तुति करने लगे। वह ईश्वरी अपने अस्त्र-शस्त्रों को उन राक्षसों के ऊपर छोड़ रही थी ॥ ४६ ॥ देवी का वाहन सिंह भी क्रोधित होकर असुरों की सेना में इस प्रकार घूम रहा था जिस प्रकार कि वन में अग्नि फैल जाती है ॥५०॥ फिर युद्ध करते हुए अम्बिका ने अपनी श्वास से लाखों गण उत्पन्न किये ॥५१॥ वे गण परशों, भिंदिपाल, तलवार और पट्टिशों से युद्ध करने और राक्षसों का नाश करने लगे। देवता लोग भी देवी की शक्ति से उत्साहित होकर ॥ ५२ ॥ खुशी से नगाड़े बजाने लगे। उस युद्ध के उत्सव में कोई देवता शंख और कोई मृदङ्ग बजा रहे थे ॥ ५३ ॥ फिर देवी ने त्रिशूल, गदा, शक्ति और तलवार के प्रहार से सैकड़ों बड़े असुरों का वध कर डाला॥ देवी ने बहुत से असुरों को गिरा दिया औरदूसरों को घण्टे के स्वर से मोहित करके पाश में बाँधकर खींच लिया ॥ ५५ ॥ कुछ दैत्य तलवार की तीक्ष्ण धार से कट गये, कुछ गदा के प्रहार से मारे गये और कुछ अचेत होकर भूमि पर पड़ गये ॥ ५६ ॥ कोई मूशल की मार से आहत होकर रुधिर वमन कर रहे थे और कोई शूलसे छाती में चोट खाकर टुकड़े २ होकर पृथ्वी पर गिर पड़े थे ॥५७ ॥ बहुत से बाणों की मार से उस रणाङ्गण में गिर पड़े कुछ असुर जो सेना के आगे-आगे चल रहे थे बाणों से कट कर गिर पड़े ॥५८॥ कुछ की भुजायें और कुछ के गले कट गये। कुछ के शिर कट कर गिर पड़े और कुछ बीचहूँमें से कट गये ॥ ५६ ॥ कुछ महा राक्षस जंघाओं के कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़े कुछ की भुजा, किसी की आँख अथवा किसी का पाँव कट गया। कुछ को देवी ने काट कर दो कर दिये ॥ ६० ॥ कुछ शिर के कट जाने पर भी फिर उठ बैठे और उन धड़ों ने ही हथियार लेकर देवी के साथ युद्ध किया ॥६१॥ उस युद्ध में वे चौताला के साथ नृत्य कर रहे थे और शिर कटेहुए कबन्ध हाथों में खड्ग, शक्ति और ऋष्टि लिये हुए तथा और भी महादैत्य 'ठहरो, ठहरो' कहते हुए देवीसे युद्ध कर रहे थे ॥६२-६३॥ जहाँ पर कि महा युद्ध हुआ था वह भूमि रथों, हाथियों, घोड़ों और राक्षसों के गिरने से अगम्या होगई थी ॥६४॥ उस असुर सेना के बीच में होकर हाथी, घोड़ों और दैत्यों के रुधिर से एक महान् नदी बह निकली ॥ जिस प्रकार अग्नि तृणों के ढेरको क्षण भर में भस्म

निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६६॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन् धुतकेशरः।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥६७॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं तथाऽसुरैः।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥६८॥

कर डालती है उसी प्रकार अम्बिका ने असुरों की उस महासैन्य को शीघ्रही नष्ट कर डाला ॥६६॥ जब वह सिंह धुतकेशर महानाद करता था तब मानो राक्षसों का प्राण निकल जाता था ॥६७॥ देवी के गणों पर जो कि वहाँ असुरों से युद्ध कर रहे थे देवताओं ने प्रसन्न होकर आकाश से पुष्प वृष्टि की ॥६८॥

इति श्रीमार्कण्डेय०में सावर्णिकमन्वंतरमें देवीमाहात्म्यमेंमहिषासुरसैन्यवधनाम ८२वाँ अ० स० ।



तिरासीवाँ अध्याय

ऋषिरुवाच

निहन्यमानं तत् सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम्॥१॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥२॥
तस्य च्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारंचैव वाजिनाम् ॥३॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजंचातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु च्छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥४॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्ग-चर्म्मधरोऽसुरः ॥५॥
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्द्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥६॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥७॥
चिक्षेप च ततस्तत् तु भद्रकाल्यां महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात्॥८॥
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥९॥
हते तस्मिन् महावीर्य्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुङ्काराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥११॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।

ऋषि बोले—

उस सेना को मरते हुए देखकर महान् असुर सेनापति चिक्षुर क्रोधान्वित होकर अम्बिका से युद्ध करने को गया ॥१॥ जिस प्रकार मेरु पर्वत पर मेघ जल की वर्षा करते हैं उसी तरह युद्ध में उस असुर ने देवी पर बाणों की वर्षा की ॥२॥ उसके तीक्ष्ण बाणों को देवी ने खेल की तरह काट डाला और उसके घोड़ों को उनके सारथियों सहित मार डाला ॥३॥ और शीघ्र उसके धनुष और ऊँची ध्वजा को भी काटडाला तथा उस राक्षसके शरीर को अपने बाणों से छेद डाला ॥४॥जब उस राक्षस के धनुष, रथ, अश्व और सारथि नष्ट होगये तब वह तलवार लेकर देवी के ऊपर दौड़ा ॥५॥ उसने तलवार की तीक्ष्ण धार से सिंह को शिरमें घायल किया और अत्यन्त वेग से देवी की भुजा में तलवार मारी ॥६॥ हे सुरथ ! वह तलवार उस देवी की भुजा से लगकर टुकड़े २ होगई, तब क्रोध से आँखें लाल करके उस राक्षस ने शूल को ग्रहण किया ॥७॥ उस महासुर ने आकाश से सूर्य के समान चमकता हुआ वह शूल भद्रकाली के ऊपर फेंका ॥८॥ उस शूलको आता हुआ देखकर देवी ने अपना शूलछोड़ा जिसने कि राक्षसके शूल और राक्षस चिक्षुर के सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥९॥ महिषासुर के सेनापति महा बलवान् चिक्षुर के मरने पर देवताओं का वैरी चामर हाथी पर चढ़ कर आया ॥१०॥ उसने भी देवी अम्बिकापर बड़ी तेज़ी से एक शक्ति चलाई जो कि देवी की हुँकार मात्र से पृथ्वी पर निस्तेज होकर गिर पड़ी ॥११॥ शक्ति को टूट कर पृथ्वी पर गिरते हुए देखकर

चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि सोऽच्छिनत्॥१२॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरेस्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१३॥
युध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१४॥
ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक् कृतम् ॥१५॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१६॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम्॥१७॥
उग्रास्यमुग्रवीर्य्यञ्च तथैव च महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१८॥
विड़ालस्यासिना कायात् पातयामास वै शिरः।
दुर्द्धरं दुर्म्मुखंचोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥१९॥
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्॥२०॥
कांश्चित् तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लांगूलताड़ितांश्चान्यान् शृङ्गाभ्याञ्च विदारितान्२१
वेगेन कांश्चिदपरान् नादेन भ्रमणेन च।
निश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥२२॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका॥२३॥
सोऽपि कोपान्महावीर्य्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्व्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥२४॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्य्यत।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्व्वतः ॥२५॥
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डखण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः॥२६॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाऽकरोत् ॥२७॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२८॥
ततः सिंहोऽभवत् सद्यो यावत् तस्याम्बिका शिरः।

चामर ने शूल को छोड़ा जिसे कि देवी ने बाणोंसे काट डाला ॥ १२ ॥ फिर सिंह कूद कर हाथी के मस्तक पर चढ़ गया और वहाँ उस देवताओं के बैरी से बाहु युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ वे दोनों युद्ध करते हुए उस हाथी से उतर कर पृथ्वी पर आये और एक दूसरे पर प्रहार करते हुए दारुण युद्ध करने लगे ॥१४॥ फिर उस सिंह ने कूद कर तमाचे के प्रहार से चामर का शिर धड़ से अलग कर दिया ॥ १५ ॥ देवी ने समरमें उदग्र को शिला और वृक्षादिसे मारडाला और कराल नाम राक्षस का दाँत, मुष्टि और हाथों से वध कर दिया ॥१६॥ देवी ने क्रुद्ध होकर गदा से उद्धत को चूर्ण कर डाला तथा उसने भिंदिपाल से वाष्कल और बाणों से ताम्र और अन्धक का वध कर दिया ॥ १७ ॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी ने शूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनु नाम राक्षसों का वध कर दिया ॥ १८ ॥ विडाल का शिर तलवार से काट कर पृथ्वी पर डाल दिया तथा दुर्द्धर और दुर्मुखनाम दो राक्षसों को बाणों से मार कर यमपुर भेज दिया ॥ १९ ॥ अपनी सेना के इस प्रकार क्षीण होने पर महिषासुर महिष रूप से देवी के गणों को त्रास देनेलगा ॥ २० ॥ महिषासुर ने कुछ को तुण्ड के प्रहार से, कुछ को खुरों की मार से और कुछ को पूंछ से मारा। कुछ गणों को उसने अपने सींगों से मार डाला ॥ २१ ॥ उसने कुछ गणों को वेगसे, कुछ को नाद, कुछ को घूमने की चपेट से तथा कुछ को अपने श्वास की हवा से पृथ्वी पर गिरा दिया॥ गणों को मार कर वह असुर देवी के सिंह को मारने के लिये दौड़ा और तब अम्बिका ने बहुत क्रोध किया ॥ २३ ॥ और वह महाबलवान् महिषासुर भी क्रोध करके पृथ्वी को खुरों से खोदनेलगा तथा वह सींगों से पर्वतों को उखाड़ कर गर्जा ॥ उसके चलने फिरने के वेग से पृथ्वी फटगई और उसकी पूँछ के वेग से समुद्र हिलकर सबको प्लावित करने लगा ॥ २५ ॥ उसके सींगके हिलाने से बादलोंके टुकड़े-टुकड़े होगये और उसके श्वास की हवाओं से पर्वत टुकड़े २ होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥२६॥ इस प्रकार क्रोध युक्त उस महिषासुर को आते हुए देखकर चण्डिकाने उसका हनन करने को क्रोध किया ॥२७॥ देवी ने पाश फेंक कर उस महान् राक्षस को बाँध लिया परन्तु उस बलशाली राक्षस ने अपने उस महिष रूप को छोड़ दिया ॥ २८ ॥ और वह शीघ्र सिंह बन गया और

छिनत्ति तावत् पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥२९॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद शायकैः।
तं खड्गचर्म्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः॥३०॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥३१॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३२॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥३३॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्य्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्याञ्च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्॥३४॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूत-मुखरागाकुलाक्षरम् ॥३५॥

देव्युवाच

गर्ज्ज गर्ज्ज क्षणं मूढ़ मधु यावत् पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्ज्जिष्यन्त्याशु देवताः॥३६॥

ऋषिरुवाच

एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढ़ा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताड़यत् ॥३७॥
ततः सोऽपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात् ततः।
अर्द्ध निष्क्रान्त एवाति देव्या वीर्य्येण संवृतः॥३८॥
अर्द्ध निष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः॥३९॥
ततो हाहाकृतं सर्व्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षञ्च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४०॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्व्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४१॥

जब तक कि अम्बिका उसका शिर काटने को गई वह हाथ में तलवार लिये हुए एक पुरुष के रूप में दिखाई दिया ॥२९॥ फिर इस पुरुष रूप महिषासुर को देवी ने बाणों से छेदन किया तो वह पुरुष के वेष को छोड़कर एक विशाल हाथी बन गया ॥३०॥ फिर उसने अपनी सूंड़ से देवी के वाहन सिंह को खेंच लिया और गरजने लगा। इसपर देवी ने उस की तलवार से सूंड़ काट ली ॥३१॥ फिर वह महा असुर पुनः महिष रूप से प्रकट हुआ जिससे चर और अचरयुक्त तीनों लोक क्षुभित होगये ॥ ३२ ॥ तब क्रोधित हुई जगत की माता चण्डिका ने बार बार मदिरा पानकिया जिससे कि उनके नेत्र लाल होगये और वे हँसने लगीं ॥३३॥ उधर वह असुर भी अपने बल से उन्मत्त होकर गरजने लगा और अपने सींगों से पहाड़ों को उखाड़-उखाड़ कर देवी के ऊपर फेंकने लगा ॥ ३४ ॥ देवी भी बाणों से उन पहाड़ों को चूर्ण करती हुई महिषासुर से बोली। मदिरा पान के कारण देवी का मुख-मण्डल लाल हो रहा था ॥ ३५ ॥

देवी बोली—

रे मूर्ख! तू क्षण भर और गरज ले जब तक कि मैं मदिरा पान करूँ। मैं तुझको यहीं मारूँगी और इसके बाद देवता लोग गर्जेंगे ॥३६॥

ऋषि बोले—

यह कहकर देवी कूद कर महिषासुर पर चढ़ गई और पाँव से दबाकर उसके कण्ठ में एक शूल मारा ॥ ३७ ॥ तब वह देवी के चरणों से दबा हुआ होने के कारण पूरा न निकल सका और देवी के बल के प्रभाव से आधा ही निकला ॥ ३८ ॥ निकला हुआ ही वह महा असुर युद्ध करने लगा तब देवी ने एक बड़ी तलवार से उसका [शिर] काट लिया जिससे कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥ फिर हाहाकार करती हुई दैत्यों की [सेना] नाश को प्राप्त होगई और देवताओं को परम ह[र्ष] हुआ ॥ ४० ॥ देवता और ऋषि गण देवी [की] आराधना करने लगे तथा गन्धर्वपति गाने [और] अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय०में सावर्णिकमन्वन्तरमें देवीमाहात्म्यमें महिषासुरवध नाम ८३वाँ अ० स०।



चौरासीवाँ अध्याय

ऋषिरुवाच

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्य्ये
तस्मिन् दुरात्मनि सुरारिवले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोऽधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ १ ॥
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥२॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलञ्च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ३ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ४ ॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किंचातिवीर्य्यमसुरक्षयकारि भूरि ।
किंचाहवेषु चरितानि तवाति यानि
सर्व्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ५ ॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्व्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ६ ॥
यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्य्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ७ ॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता च
अभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ८ ॥

ऋषि बोले—

देवी द्वारा उस दुष्टात्मा अति बलवान् महिषासुर के सेना सहित नष्ट होने पर इन्द्रादिक सब देवता विनय पूर्वक शिर तथा कन्धोंको झुका कर, हर्ष से पुलकायमान होकर देवी की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ जिस देवी ने कि अपनी शक्ति से सब जगत को व्याप्त कर रक्खा है और जो देवतागणों के तेज से उत्पन्न है उस सम्पूर्ण देवता और महर्षियों से पूजित देवी को हम भक्ति पूर्वक प्रणाम करते हैं, वह हमारा कल्याण करे ॥ २ ॥ जिसके प्रभाव और बल को भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजी कहने को असमर्थ हैं, वह देवी समस्त जगत का पालन करने के लिये पाप जन्य भय को नाश करने में अपनी बुद्धि रक्खे ॥ ३ ॥ जो पुण्यवान् लोगों के घर में लक्ष्मी, पापियों के घर में दरिद्र, धीमान् लोगों के हृदय में बुद्धि, सज्जनों में श्रद्धा, कुलीनों में लज्जा रूप से स्थित रहती है उस देवी को हम प्रणाम करते हैं । वह विश्व का पालन करे ॥ ४ ॥ हम आपके इस अचिन्त्य स्वरूप तथा असुरों को क्षय करने वाले पराक्रम और सब असुर और देवताओं में श्रेष्ठ चरित्र को किस प्रकार वर्णन कर सकते हैं ॥ ५ ॥ आप समस्त संसार की कारण, सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से युक्त, रागादि दोषों से रहित हैं, आपकी महिमा का पार विष्णु और शिव आदि देवताओं ने भी नहीं पाया है, आप सब की आश्रय तथा यह जगत आपका अंशभूत है, आप विकार रहित तथा परम आदि प्रकृति हैं ॥ ६ ॥ हे देवि ! आपके नाम से यज्ञों में सब देवता तृप्ति को प्राप्त होते हैं । स्वाहा और स्वधा यह आप ही के नाम हैं, स्वाहा से पितर गण और स्वधा से हम देवता लोग तृप्त होते हैं ॥ ७ ॥ आप मुक्ति की हेतु और अचिन्त्य हैं तथा सत्य, दया, ब्रह्मचर्यादिक नियम आपके साधन हैं । मोक्षार्थी मुनि लोग समस्त दोषों से रहित होकर आपको ही ब्रह्मज्ञान रूपी विद्या समझते हैं । हे देवि ! आप परम भगवती विद्या हैं ॥ ८ ॥

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीतरम्यपदपाठवतांच साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्व्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ॥ ६ ॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥१०॥
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्ति कान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥११॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान् मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१२॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१३॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्म्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१४॥
धर्म्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्म्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१५॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्व्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥१६॥
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्व्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।

हे देवि ! आप यजुर्वेद की विमल ऋचाओं तथा प्रणवयुक्त सुन्दर पद पाठावली और सामवेद के मन्त्रों रूपी तीनों वेदमयी शब्दात्मिका रूप हैं। आप जगत का बन्धन काटने वाली वार्ता तथा समस्त जगत का सङ्कट हरने वाली हैं ॥ ६ ॥ हे देवि ! आप मेधा और समस्त शास्त्र जानने वाली सरस्वती हैं तथा दुर्गम संसार सागर से पार करने वाली नौका रूप दुर्गा आप ही हैं। भगवान् के हृदय में रहने वाली लक्ष्मी और महादेवजी के अर्द्धाङ्ग में रहने वाली गौरी आप ही हैं ॥१०॥ कुछ मुस्कराते हुए तथा पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान कान्तिमान् और सुवर्ण के समान चमकते हुए आपके मुख को देखकर महिषासुर का रणमें क्रोध शान्त न हुआ यह बड़ा आश्चर्य है ॥ ११ ॥ हे देवि ! आपकी क्रोध युक्त कराल भौंहें और उदय-काल के लाल चन्द्रमा के समान मुख को देखकर महिषासुर ने उसी समय प्राणों को क्यों न छोड़ दिया यह बड़ा आश्चर्य है, क्योंकि क्रुद्ध यमराजके दर्शन कर कौन जीवित रह सकता है ? ॥ १२ ॥ हे देवि ! आप प्रसन्न हों, आप परम दयालु हैं। आप क्रुद्ध होकर हमारे शत्रुओं का शीघ्र नाश कर देती हैं, ये तो हमने अभी जान लिया है। कारण-आपने महिषासुर की विशाल सेना का नाश कर दिया है ॥ १३ ॥ हे देवि ! जिन लोगों पर आप प्रसन्न हैं वे ही लोग धन्य होते हैं, उन्हीं को मान्य समझा जाता है तथा वे ही धन और यशोपार्जन करते हैं, उन्हीं को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं तथा उन्हीं के सेवक, स्त्री, पुत्र आदि अभ्युदय को प्राप्त होते हैं ॥१४॥ हे देवि ! आपकी दया ही से सब धर्म और कर्म प्रति दिन किये जाते और सफल होते हैं। आपकी कृपा से लोग स्वर्ग में जाते हैं तथा तीनों लोकमें फलदाता आप ही हैं ॥ १५ ॥ हे दुर्गे ! जो आपका विपत्ति में स्मरण करते हैं उनका आप सङ्कट हरण कर लेती हैं और जो स्वस्थ अवस्था में आपका स्मरण करते हैं उनको आप और भी शुभ करती हैं। आपके अतिरिक्त दरिद्र, दुःख और भय के हरने वाली कौन है। आप सबपर उपकार करनेके लिये सदा दयालु-चित्त रहती हैं ॥ १६ ॥ हे देवि ! आपने इन राक्षसों को इसलिये मारा है कि इनके मारने से जगत को सुख होगा और दूसरे ये पापी, नारकी

संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१७॥
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्व्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१८॥
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥१९॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्य्यञ्च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२०॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपंच शत्रुभयकार्य्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२१॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२२॥
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिस्वनेन च ॥२३॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२४॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तैःरक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२५॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्व्वतः ॥२६॥

ऋषिरुवाच

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२७॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।

हैं, यह संग्राम में मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्ग में पहुँच जाँय ॥ १७ ॥ हे देवि ! क्या आप दृष्टिमात्र से ही देवताओं के वैरियोंका नाश नहीं करसकतीं थीं जो आपने उन पर शस्त्र-प्रहार किया ? परन्तु आप तो शत्रुओं पर भी दया करती हैं ऐसा हमारा मत है, कारण-आपने अपने शस्त्रों से राक्षसों को पवित्र कर स्वर्ग में पहुँचाया ॥ १८ ॥ हे देवि ! राक्षसों की आंखें आपके खड्ग और शूल की कान्ति से न फूटीं कारण-वे अर्द्धचन्द्रमा युक्त आपके मुख को देखरहीं थीं ॥ १९ ॥ हे देवि ! आपका शील पापियों का पाप नाश करने के लिये है और रूप आपका ऐसा है कि जिसकी तुलना नहीं की जासकती है। दैत्यों को मारने वाले आप के पराक्रम से आपकी वैरियों के प्रति भी दया प्रगट होती है ॥ २० ॥ हे देवि ! आपके पराक्रम और शत्रु को भय देने वाले रूप की उपमा किससे की जाय। हे वरदायिनी देवि ! चित्त में दया और प्रकट रूप से युद्ध में निष्ठुरता यह तीनों लोक में सिवायं आपके और किसमें है ॥ २१ ॥ हे देवि ! शत्रुओं का नाश करके आपने तीनों लोकोंकी रक्षा की है और समरमें मारकर उनको स्वर्गमें पहुंचाया है। हमारा सब भय आपने दूर कर दिया, इसके लिये हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥ हे देवि! अम्बिके ! शूल से, खड्ग से, घण्टा के स्वर से तथा धनुष खींचनेके शब्दसे हमारी रक्षा कीजिये॥ हे चण्डिके, हे ईश्वरी ! अपने शूल को घुमाकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में हमारी रक्षा कीजिये ॥ २४ ॥ और सौम्य रूप से जिससे कि आप तीनों लोकों में घूमती हैं तथा दूसरे अत्यन्त भयानकरूप से हमारी तथा पृथ्वीकी रक्षा कीजिये ॥२५॥ हे अम्बिके ! आपके हस्त कमल में जो तलवार, शूल गदा आदि अस्त्र हैं उनसे हमारी सर्वत्र रक्षा कीजिये ॥ २६ ॥

ऋषि बोले—

इस प्रकार देवताओं ने जगन्माता देवी की नन्दनवनोत्पन्न दिव्य पुष्पों से तथा चन्दनादि के लेप से पूजा की ॥ २७ ॥ फिर समस्त देवताओं ने देवीको दिव्य धूपसे पूजितकिया और वह सुमुखी

प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥२८॥
देव्युवाच
व्रियतां त्रिदशाः सर्व्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ।
ददाम्यहमितिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ॥२९॥
देवा ऊचुः
भगवत्या कृतं सर्व्वं न किञ्चिदवशिष्यते ।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥३०॥
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ।
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ॥३१॥
यश्च मर्त्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ।
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्व्वदाम्बिके ॥३२॥
ऋषिरुवाच
इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३३॥
इत्येतत् कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥३४॥
पुनश्च गौरीदेहा सा समुद्भूता यथाभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भ-निशुम्भयोः ॥३५॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाख्यातं यथावत् कथयामि ते ॥३६॥

कृपा करके प्रणाम करतेहुए उन देवताओंसे बोली।
देवी बोली—
हे देवताओ! बोलिये, अब आप मुझसे क्या अभिलाषा करते हैं आपने मेरा भली भांति पूजन किया है इसलिये प्रीति पूर्वक मैं वही दूँगी जो कि आप मांगेंगे ॥ २९ ॥
देवता बोले—
हे भगवती! आपने सब कुछ कर दिया, अब कुछ शेष नहीं है क्योंकि हमारा शत्रु महिषासुर था वह आपने मार दिया ॥३०॥ हे महेश्वरी! यदि आप हमको वर देना ही चाहती हैं तो हमने आप का स्मरण किया है और भविष्य में जब हम आप का स्मरणकरें तभी आप हमारे दुःखों को निवारण कीजिये ॥३१॥ हे विमलामुखी! जो मनुष्य आपकी इस स्तोत्र से स्तुति करे उसके धन धान्य, स्त्री आदि की वृद्धि के लिए आप सदैव उसपर प्रसन्न होकर सहायता करें ॥ ३२ ॥
ऋषि बोले—
हे गुरुथ! देवताओं ने जगत के तथा अपने हित के लिये देवी को प्रसन्न किया और भद्रकाली यह कहकर कि 'ऐसा ही होगा' अन्तर्ध्यान होगई ॥३३॥ हे राजन्! जिस प्रकार कि पूर्व काल में देवताओं के शरीर से तीनों लोकों की हितैषिणी देवी की उत्पत्ति हुई वह सब मैंने आपसे कही ॥ ३४ ॥ फिर वह दुष्ट दैत्यों तथा शुम्भ-निशुम्भ का वध करने के लिये गौरी रूप से उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ वह गौरी की उत्पत्ति लोकों की रक्षा के लिये और देवताओं के उपकार के लिये हुई, उसको मैं यथावत् कहता हूं सुनो ॥३६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तरमें महिषासुरवध समाप्ति नाम ८४वां अ० समाप्त।

पिचासीवाँ अध्याय

ऋषिरुवाच
पुरा शुम्भ-निशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥ १ ॥
तावेव सूर्य्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौवेरमथ याम्यञ्च चक्राते वरुणस्य च ॥ २ ॥
तावेव पवनर्द्धिञ्च चक्रतुर्वह्निकर्म्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ ३ ॥

ऋषि बोले—
पूर्व काल में शुम्भ निशुम्भ नाम दोनों राक्षसों ने इन्द्र का त्रैलोक्य तथा देवताओं का यज्ञ भाग अपने मदके बलसे हरण करलिया ॥ १ ॥ उन दोनों ने सूर्य पर और उसी प्रकार चन्द्रमा, कुबेर, यम और वरुण पर अपना अधिकार जमा लिया ॥ २ ॥ वे दोनों पवन और अग्नि को भी अपने वश में कर के उनका कार्य स्वयं करनेलगे और देवता लोग परास्त होकर राज्यसे च्युत होगये और भय से

हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्व्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥ ४ ॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात् परमापदः ॥ ५ ॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ६ ॥
देवा ऊचुः
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ७ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्य्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ ८ ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्म्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै सर्व्वाण्यै ते नमो नमः ॥९॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्व्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१०॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥११॥
या देवी सर्व्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥
या देवी सर्व्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥
या देवी सर्व्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥
या देवी सर्व्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५॥
या देवी सर्व्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥
या देवी सर्व्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥
या देवी सर्व्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥
या देवी सर्व्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥

कांपने लगे ॥ ३ ॥ उन दोनों महाअसुरोंने सब देवताओं को उनके अधिकारों से च्युत कर दिया और स्वर्ग से निकाल दिया इसपर देवताओं ने अपराजिता देवी का स्मरण किया ॥ ४ ॥ उन्होंने कहा, "हे देवि ! आपने हमको वरदान दिया हैकि विपत्ति में जिस समय हम आपका स्मरण करेंगे तो उसी क्षण आप हमारे कष्टों को हरण करेंगी"॥ ऐसा विचार करके देवतालोग पर्वतराज हिमालय पर गये और वहाँ जाकर भगवती विष्णुमाया की की स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥

देवता बोले—

हम लोग देवी, महादेवी, शिवा, प्रकृति, भद्रा को नम्रता पूर्वक निरन्तर प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ रुद्राणी को नमस्कार है तथा आप जो नित्या, गौरी, धात्री, ज्योत्स्ना, इन्द्ररूपा और परमानन्द रूपा हैं उनको नमस्कार है ॥ ८ ॥ दुःखीजनों का कल्याण करने वाली, वृद्धि और सिद्धि करनेवाली पर्वतों की श्री और सर्वाणी ! आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ संसार रूपी दुर्ग से पार करनेवाली दुर्गा, सब जगत का कार्य करने वाली, प्रकृति और पुरुष में भेदज्ञान रूपिणी, धूम्राकाली को हमारा निरन्तर प्रणाम है ॥ १० ॥ हे देवि ! आप अति सौम्य और अति रौद्र हैं, आपको हमारा प्रणामहै जगत के कारण और क्रिया शक्तिरूप ! आपको नमस्कार है ॥११॥ जो देवी सब प्राणियों में विष्णु की माया के नाम से प्रसिद्ध है उसको हमारा बार बार प्रणाम है ॥ १२ ॥ जो देवी सब प्राणियों में चेतना रूप से स्थित है उसको हम बार २ प्रणाम करते हैं ॥ १३ ॥ जो देवी सब जीवों में बुद्धि रूप से विद्यमान है उसको हम लोग अनेक प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥ जो देवी सब प्राणियों में निद्रा रूप से स्थित है उसको हम बार बार नमस्कार करते हैं ॥१५॥ जो देवी सब प्राणियों में भूखके रूप में स्थित है उसको हमारा अनेक प्रणाम है ॥१६॥ जो देवी सब प्राणियों में छायारूप से स्थित है उसको हम बार बार नमस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ जो देवी सब जीवों में शक्ति रूप से विराजती है उसको हम बार बार प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ जो देवी सब प्राणियों में तृष्णा रूप से रहती है उस को हम नमस्कार करते हैं ॥ १९ ॥ जो देवी सब

या देवी सर्व्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥
या देवी सर्व्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१॥
या देवी सर्व्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥
या देवी सर्व्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥
या देवी सर्व्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४॥
या देवी सर्व्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥
या देवी सर्व्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥
या देवी सर्व्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२७॥
या देवी सर्व्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥
या देवी सर्व्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२९॥
या देवी सर्व्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३०॥
या देवी सर्व्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३१॥
या देवी सर्व्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३२॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानाञ्चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥३३॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३४॥

स्तुता सुरैः पूर्व्वमभीष्टसंश्रयात् तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता। करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥३५॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च

जीवों में क्षमा रूप से स्थित है उसको हमारा नमस्कार है ॥ २० ॥ जो देवी सब जीवों में जाति रूप से स्थित है उसको हमारा प्रणाम है ॥ २१ ॥ जो देवी सब प्राणियों में लज्जा रूप से स्थित है उसको हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ जो देवी सब जीवों में शान्ति रूपसे विराजती है उसको हमारा वार वार प्रणाम है ॥ २३ ॥ जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धा रूप से स्थित है उसको हमारा वार वार प्रणाम है ॥ २४ ॥ जो देवी सब प्राणियों में कान्ति रूप से विराजती है उसको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २५ ॥ जो देवी सब जीवों में लक्ष्मी रूप से स्थित है उसको हमारा नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २६ ॥ जो देवी सब जीवों में वृत्ति रूप से स्थित है उसको हम वार वार प्रणाम करते हैं ॥ २७ ॥ जो देवी सब जीवों में स्मृति रूप से स्थित है उनको हमारा अनेक नमस्कार है ॥ २८ ॥ जो देवी सब प्राणियों में दया रूप से विराजती है उसको हम अनेक प्रणाम करते हैं ॥ २९ ॥ जो देवी सब जीवों में संतोष रूप से स्थित है उसको हम वार २ प्रणाम करते हैं ॥३०॥ जो देवी सब प्राणियों में माता होकर रहती है उसको हम वार वार प्रणाम करते हैं ॥ ३१ ॥ जो देवी सब प्राणियों में भ्रान्ति रूप से स्थित है उस को हमारा नमस्कार है ॥ ३२ ॥ जो सब प्राणियों में इन्द्रियों की अधिष्ठात्री देवी है और सब जीवों में व्याप्त है उसको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३३ ॥ जो चैतन्य रूप से इस सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है उस देवी को हम वार वार नमस्कार करते हैं ॥ ३४ ॥ हे शुभ करने वाली ईश्वरी देवी! पहिले देवताओं ने आपकी स्तुति की थी और महिषासुर के वध रूपी अभीष्ट के सिद्ध होजाने पर इन्द्र ने आपकी सेवा की थी। हमारी विपत्तियों का नाश करके आप हमारा कल्याण करें ॥ ३५ ॥ हे देवि! इस समय उद्धत दैत्यों से पीड़ित होकर हम देवता लोग आपको नमस्कार करते हैं । भक्ति से नम्र

सुरैर्नमस्यते। या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्व्वापदो भक्तिविनम्रमूर्त्तिभिः ॥३६॥

ऋषिरुवाच

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्व्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥३७॥
साऽब्रवीत् तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोषतश्चास्याः समुद्भूताऽब्रवीच्छिवा ॥३८॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥३९॥
शरीरकोषाद्यत् तस्याः पार्व्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥४०॥
तस्यां विनिर्गतायान्तु कृष्णाऽभूत् सापि पार्व्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥४१॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भ-निशुम्भयोः॥४२
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम्॥४३॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यताञ्चासुरेश्वर ॥४४॥
स्त्रीरत्नमतिचार्व्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥४५॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥४६॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥४७॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत् तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥४८॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम्॥४९
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुरासीत् प्रजापतेः ॥५०॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥५१॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।

होकर हम जब कभी आपका स्मरण करते हैं तभी आप हमारी विपत्तियों का नाश करती हैं ॥३६॥

ऋषि बोले—

हे राजन्! देवताओंके इस प्रकार स्तुति करने पर देवी पार्वती गङ्गा स्नान करने के हेतु आईं और देवताओं के सन्मुख प्रगट हुईं ॥ ३७ ॥ वह उन देवताओं से बोलीं कि तुम किसकी स्तुति करते हो, और उनके शरीर-कोश से शिवा निकल कर-उनसे बोली ॥३८॥ समर में शुम्भ और निशुंभ दैत्यों से परास्त होकर आप सब देवता मेरी स्तुति कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ क्योंकि वह अम्बिका पार्वतीजी के शरीर कोश से उत्पन्न हुई इसलिये उनको सब लोकों में कौशिकी कहते हैं ॥४०॥ उनके निकल जाने पर पार्वतीजी कृष्णवर्ण होगई और इसी कारण वे कालिका कहलाईं और हिमालय पर्वत पर रहने लगीं ॥ ४१॥ फिर अम्बिका के परम रूप को दैववशात् शुम्भ निशुम्भ के सेवक चण्ड मुण्ड ने देखा ॥ ४२॥ वे दोनों शुम्भ के पास जाकर बोले कि "हे महाराज! एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री है जो कि हिमालय पर्वत को प्रकाशमान कर रही है ॥ ४३ ॥ हे असुरेश्वर! ऐसा उत्तम रूप किसी का कहीं भी नहीं देखा गया है, मालूम होता है वह कोई देवी है, आप उसको ग्रहण करें ॥ ४४ ॥ हे दैत्येन्द्र! वह स्त्री अत्यन्त सुन्दरी और स्त्रियों में रत्न है, वह वहाँ पर समस्त दिशाओं को प्रकाशित कररही है, आप उसको अवश्य देखिये ॥४५॥ हे प्रभो! त्रिलोकी में जो श्रेष्ठ रत्न, मणि, गज अश्व आदि हैं वे इस समय आपके घर पर मौजूद हैं ॥ ४६ ॥ इन्द्र से आप हाथियों में रत्न ऐरावत को लाये और इसी प्रकार कल्पवृक्ष और उच्चैःश्रवा घोड़ा भी मिले ॥४७॥ ब्रह्मा का हंस युक्त विमान भी आपके आङ्गन में मौजूद है। वह भी एक रत्न है और बड़ा अद्भुत है ॥ ४८ ॥ कुबेर से आप महापद्म नाम निधि को लाये तथा समुद्र ने आपको अमलकंज की किंजल्किनी नाम माला प्रदान की ॥४९॥ वरुण का वह छत्र भी जो सुवर्ण वर्षाता है आपके घर पर मौजूद है और उसी तरह यह उत्तम रथ भी है जो कि पहिले प्रजापति के पास था ॥ ५० ॥ मृत्यु देने वाली जो शक्ति है उस को भी आप हरण करके ले आये हैं तथा वरुणका पाश आपके भाई के हाथ में रहता है ॥५१॥ समुद्र से उत्पन्न हुए जितने रत्न हैं वे सब आपके भाई

वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥५२॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥५३
ऋषिरुवाच
निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्ड-मुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥५४॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्य्यं त्वया लघु ॥५५॥
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥५६॥
दूत उवाच
देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥५७॥
अव्याहताज्ञः सर्व्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्ज्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥५८॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्व्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥५९॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नानि हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥६०॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत् प्रणिपत्य समर्पितम् ॥६१॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्व्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥६२॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥६३॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥६४॥
परमैश्वर्य्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥६५॥
ऋषिरुवाच
इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्य्यते जगत् ॥६६॥
देव्युवाच
सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित् त्वयोदितम् ।

निशुम्भ के पास हैं और अग्नि ने भी आपको एक अत्यन्त पवित्र वस्त्र भेंट किया है ॥५२॥ हे दैत्येन्द्र! ये सब रत्न आपने लिये हैं, अब इस स्त्री रत्न कल्याणी को आप क्यों नहीं ग्रहण करते ? ॥ ५३ ॥

ऋषि बोले—

चण्ड मुण्ड के इन वचनों को सुनकर शुम्भ ने देवी के पास सुग्रीव नाम दूत राक्षस को भेजा ॥ और उससे कह दिया कि देवी के पास जाकर मेरा वचन उसे सुना देना तथा जिस तरह वह प्रीति पूर्वक आवे उसे ले आना ॥ ५५ ॥ वह पर्वत के उस सुन्दर प्रदेश में गया जहाँ वह देवी रहती थी और वहाँ जाकर कोमल शब्दोंमें उससे कहा॥

दूत बोला—

हे देवि ! तीनों लोकोंके स्वामी दैत्येश्वर शुम्भ का भेजा हुआ मैं उसका दूत आपके पास यहाँ आया हूँ ॥ ५७ ॥ सब देवता लोग उसकी आज्ञा मानते हैं; उसने सब देवताओं को जीत लिया है। उसने जो कहा है वह सुनो ॥ ५८ ॥ यह त्रैलोक्य मेरा है,सब देवता मेरे वशवर्ती हैं और सब यज्ञों का भाग मैं पृथक् पृथक् ग्रहण करता हूँ ॥ ५९ ॥ तीनों लोकों में जो-जो सुन्दर रत्न हैं वे सब मेरे वशमें हैं और इसी प्रकार मैंने इन्द्रसे उसका वाहन ऐरावत हाथी हरण कर लिया है ॥६०॥ समुद्र-मथनके समय जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा निकला था उसको देवताओं ने मुझे करबद्ध होकर समर्पित किया है ॥ ६१॥ और जो-जो रत्न देवताओं, गन्धर्वों और नागगणों के पास थे वे सब मेरे पास विद्यमान् हैं ॥६२॥ हे देवि ! हम आपको संसार में स्त्री-रत्न समझते हैं इसलिये आप हमारे पास आइये, क्योंकि रत्न-भोक्ता हम ही हैं ॥६३॥ हे चञ्चलाक्षी ! मेरे अथवा मेरे छोटे भाई पराक्रमी निशुम्भ के पास तुम रहो, क्योंकि तुम रत्न रूप हो ॥ ६४ ॥ मेरे साथ विवाह करने से तुमको अतुल ऐश्वर्य प्राप्त होगा। यह विचार कर तुम मेरी स्त्री होकर रहो ॥६५॥

ऋषि बोले—

जब दूत ने ऐसा कहा तब देवी मुस्करा गईं और फिर दुर्गा देवी जो इस सम्पूर्ण जगत को धारण करती हैं गम्भीर वाणी से बोलीं ॥६६॥

देवी बोली—

हे दूत ! तुमने सच कहा, इसमें कुछ भी मिथ्या

त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ६७॥
किन्त्वत्र यत् प्रतिज्ञातं मिथ्या तत् क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥६८॥
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबली लोके स मे भर्त्ता भविष्यति ॥६६॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु॥७०॥

दूत उवाच

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भ-निशुम्भयोः॥७१॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्व्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका॥७२॥
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम्॥७३॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्द्धूत-गौरवा मा गमिष्यसि ॥७४॥

देव्युवाच

एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्य्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥७५॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत् सर्व्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु यत् ॥७६॥

नहीं है शुम्भ और निशुम्भ तीनों लोकों के अधिपति हैं ॥ ६७ ॥ किन्तु जो प्रतिज्ञा मैं कर चुकी हूँ वह कैसे मिथ्या हो सकती है? मैंने अल्प बुद्धि के कारण जो पहिले प्रतिज्ञा की थी उसको सुनो॥ जो संग्राम में मुझे जीत कर मेरा दर्प चूर्ण करेगा अथवा जो मेरे समान वली होगा वही मेरा स्वामी होगा ॥ ६६ ॥ इसलिये शुम्भ और निशुम्भ यहाँ आवें और मुझे जीतकर शीघ्र मेरा पाणिगृहण करें॥

दूत बोला—

हे देवि! मेरे आगे अभिमानकी बातें न करो, इस त्रिलोकी में शुम्भ निशुम्भ के आगे कौनसा मनुष्य ठहर सकता है ॥७१॥ सब देवता तो समर में उनके अन्य दैत्यों के आगे भी न ठहर सके जिसमें तुम तो स्त्री हो और वह भी अकेली ॥७२॥ जिन शुम्भादिकों के सन्मुख में इन्द्रादिक सब देवता भी न ठहर सके, उनके सन्मुख स्त्री होकर तुम किस प्रकार प्रयास करती हो ॥७३॥ अतः तुम मेरे कहने से शुम्भ निशुम्भ के पास चलो अन्यथा तुम्हारा गौरव क्षीण करके बाल पकड़ कर तुम्हें ले जाया जायगा ॥७४॥

देवी बोली—

शुम्भ और निशुम्भ ऐसे ही बली और पराक्रमी हैं। परन्तु मैं क्या करूँ, मैं पहिले प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ ॥७५॥ इसलिये तुम जाओ और जैसा मैंने कहा है वह अविकल उनको कह सुनाओ। इस पर वे असुरों के अधिपति जो उचित समझेंगे करेंगे ॥ ७६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वंतरमें देवीमाहात्म्यमें दूतसंवाद नाम ८५वां अ०स०।

छियासीवां अध्याय

ऋषिरुवाच

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥ १ ॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥ २ ॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ३ ॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।

ऋषि बोले—

देवी के यह वचन सुनकर वह दूत क्रोध से पूर्ण होकर दैत्यराज शुम्भ के पास गया और विस्तार पूर्वक सब हाल उसको सुना दिया ॥ १ ॥ दूतके उन वचनोंको सुनकर वह दैत्यराज क्रोधित हो अपने सेनापति धूम्रलोचन से कहने लगा ॥२॥ हे धूम्रलोचन! तुम शीघ्र अपनी सेना को लेकर जाओ और उस दुष्टा को बाल पकड़ कर खींच लाओ ॥ ३ ॥ उसकी रक्षा करने वाला यदि वहाँ कोई प्रकट हो तो वह चाहे देवता हो, यक्ष हो,

स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व्व एव वा ॥ ४ ॥

ऋषिरुवाच

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥ ५
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भ-निशुम्भयोः॥ ६ ॥
न चेत् प्रीत्याद्य भवती मद्भर्त्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ७ ॥

देव्युवाच

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत् तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुङ्कारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ ९ ॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिकाम् ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१०॥
ततो धुतसटः कोपात् कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥११॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रान्त्या चाधरेणान्यान् जघान सुमहासुरान्१२॥
केषाञ्चित् पाटयामास नखैः कोष्ठानि केशरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१३
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेशरः ॥१४
क्षणेन तद्बलं सर्व्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केशरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना॥१५॥
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलञ्च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेशरिणा ततः ॥१६॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्ड-मुण्डौ महासुरौ ॥१७॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुलैः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥१८॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्व्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥१९॥

या गन्धर्व हो तुरन्त मार डाला जाय ॥ ४ ॥

ऋषि बोले—

उसकी आज्ञा पाकर दैत्य धूम्रलोचन शीघ्रही साठ हज़ार राक्षसों को लेकर चला ॥ ५ ॥ उसने देवी को हिमालय पर्वत पर बैठे हुए देखकर ऊँचे स्वर से कहा कि तुम शुम्भ निशुम्भ के पास चलो ॥ ६ ॥ यदि तुम प्रीति पूर्वक मेरे स्वामी के पास नहीं चलोगी तो मैं बलपूर्वक तुम्हारे केश पकड़ कर तुमको दुःखी करूंगा और ले जाऊंगा ॥ ७ ॥

देवी बोली—

तुम दैत्यराज की आज्ञासे आये हो और सेना सहित होने के कारण बलवान् भी हो, यदि तुम मुझे बलपूर्वक लेजाओगे तो मैं तुम्हारा क्या करूंगी॥

ऋषि बोले—

इतना सुनकर वह राक्षस धूम्रलोचन देवी के ऊपर झपटा परन्तु अम्बिका ने उसे हुँकार से ही भस्म कर डाला ॥९॥ इसके बाद असुरों की महान् सेना कोप करने लगी परन्तु अम्बिका ने उन पर तीक्ष्ण बाण तथा फरशे बरसाये ॥ १० ॥ इसके बाद सिंह धुतसट जो देवी का वाहनथा असुरोंकी सेना में कूद पड़ा ॥ ११ ॥ उसने कुछ असुरों को हाथ के प्रहार से, कुछ को मुख से और कुछ को होठों से पकड़ कर मार डाला ॥ १२ ॥ उस सिंह ने कुछ दैत्यों का नखों से पेट फाड़ डाला और कुछ का शिर हाथ के प्रहार से अलग कर दिया ॥ १३ ॥ उस धुतकेशर ने बहुतों की भुजायें और शिर काट डाले तथा दूसरों के पेट फाड़ कर उनका रुधिर उसने पान कर लिया ॥ १४॥ थोड़े ही समयमें उस महात्मा सिंह ने जो कि देवी का वाहन था अत्यंत क्रोध करके राक्षसों की सैन्य को नष्ट कर डाला। देवी द्वारा दैत्य धूम्रलोचन का मरण और देवी के वाहन सिंह द्वारा समस्त सेना के नाश का समाचार सुनकर ॥१६॥ दैत्यराज शुम्भ के होठ क्रोधसे काँपनेलगे और उसने चंड-मुंडनाम महान् राक्षसों को आज्ञा दी ॥ १७ ॥ हे चंड, ! हे मुंड ! तुम बहुत सी सेना लेकर जाओ और उसको शीघ्र लाओ ॥ १८ ॥ उसको बाल पकड़ कर घसीट लाओ या बाँध कर ले आओ और यदि इसमें सन्देह हो तो उसे अशेष अस्त्रों से सब असुर मिलकर मा

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् २०

डालें ॥ १६ ॥ उस दुष्टा के मर जाने पर सिंह को भी मार डालना। अथवा यदि हो सके तो उस अम्बिका को शीघ्र बाँधकर ले आओ ॥२०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर नाम ८६वाँ अध्याय समाप्त।

सतासीवां अध्याय

ऋषिरुवाच

आज्ञप्तास्तु ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ १ ॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीशद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्र-शृङ्गे महति काञ्चने ॥ २ ॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ३ ॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मसीवर्णमभूत् तदा ॥ ४ ॥
भ्रुकुटीकुटिलात् तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ ५ ॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ६ ॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ७ ॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ८ ॥
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहि-योधघण्टासमन्वितान्।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ ६ ॥
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम् ॥१०॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥११॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥१२॥
बलिनां तद्बलं सर्व्वमसुराणां महात्मनाम्।
ममर्द्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत् तथा ॥१३॥

ऋषि बोले—

इस प्रकार आज्ञा पाकर दैत्य चण्ड और मुंड के नेतृत्व में बहुत से आयुधों और चतुरंगिणी सेना लेकर चले ॥१॥ इसके बाद उन्होंने हिमालय के शिखर पर सिंह पर बैठी हुई और कुछ-कुछ मुस्कराती हुई देवी को देखा ॥२॥ उसे देखकर वे उसको ले जाने का उद्योग करने लगे, कुछ धनुष चढ़ाकर तथा दूसरे तलवार लेकर उसके पास गये ॥३॥ तब अम्बिका ने उन वैरियों के प्रति कोप किया और क्रोध से उसका मुख कज्जल के समान कृष्ण वर्ण होगया ॥४॥ उसके कुटिल भ्रुकुटीयुक्त ललाट से उसी समय हाथमें तलवार और पाश लिये हुए भयङ्कर मुख वाली काली उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ वह विचित्र खट्वाङ्ग धारण किये हुए और मुण्डमाला पहिने हुए थी। बाघम्बर ओढ़े हुए शुष्क मांसवाली वह अत्यन्त भयङ्कर प्रतीत होती थी ॥ ६ ॥ वह अपने मुख से लम्बी जीभ निकाले हुए, अति भीषण गहरे लाल नेत्रोंवाली और अपने गर्जनसे दिशाओं को पूरित कर रही थी ॥७॥ वह बड़े वेग से असुरों पर टूट कर उनका संहार करने लगी और राक्षसों की सेना में वह उनके दलके दल भक्षण करगई ॥८॥ अंकुश महावत, सवार और घण्टा आदिके सहित हाथियों को एक हाथ से ही पकड़कर उसने अपने मुख में डाल लिया ॥ ६ ॥ उसी प्रकार घोड़ों को सवार सहित और रथों को सारथी सहित उसने अपने मुख में डाल कर दाँतोंसे चबा डाला ॥१०॥ काली ने किसी को बालों से पकड़कर, किसी को गर्दन मरोड़ कर, किसी को पाँवों के नीचे दाबकर कर और दूसरों को वक्षःस्थल पर प्रहार करके मार डाला ॥ ११ ॥ असुरों द्वारा चलाये हुए महान् अस्त्र, शस्त्रों को उसने क्रोधित होकर मुखमें डाल कर दाँतों से पीस डाला ॥ १२ ॥ उन बली और बड़े राक्षसों के दल में से उसने कुछका मर्दन कर डाला, कुछ को खागई और कुछ को मार डाला॥

असिना निहताः केचित् केचित् खट्वाङ्गताड़िताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१४॥
क्षणेन तद्बलं सर्व्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्॥१५॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः॥१६॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कविम्बानि सुवहूनि घनोदरम् ॥१७॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१८॥
उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्॥१९॥
अथ मुण्डोऽप्यधावत् तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥२०॥
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डञ्च सुमहावीर्य्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥२१॥
शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहास-मिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम्॥२२॥
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भञ्च हनिष्यसि ॥२३॥

ऋषिरुवाच

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः॥२४॥
यस्माच्चण्डञ्च मुण्डंच गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥२५॥

कुछ राक्षस तलवार से, कुछ खट्वाङ्ग के प्रहारसे और कुछ दांतों के अग्रभाग की चोट से मारे जा कर विनाश को प्राप्त होगये ॥ १५ ॥ थोड़ेही समय में काली ने राक्षसों की सम्पूर्ण सेना का नाश कर दिया। इसको देखकर चण्ड उस भीषण कालीकी ओर दौड़ा ॥१५॥ महासुर मुण्ड ने अति भयङ्कर बाणों की वर्षा से और हज़ारों चक्रों से काली को ढक दिया ॥ १६ ॥ वे अनेक चक्र काली से लगकर इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे जैसे मेघ में सूर्य की किरणें ॥ १७ ॥ फिर काली भीम नाद करतीहुई और क्रोधसे अपना भयङ्कर मुख और दांतदिखाती हुई हँसने लगी ॥१८॥ और महासिंह को उठाकर देवी चण्ड के ऊपर दौड़ी और उसके बाल पकड़ कर तलवार से उसका शिर काट लिया ॥ १९ ॥ चण्ड को गिरते देखकर मुण्ड देवी पर झपटा परन्तु उसको भी क्रोध करके देवी ने तलवार से मार कर गिरा दिया ॥ २० ॥ चण्ड और पराक्रमी मुंड के मारे जाने पर शेष सेना भय से व्याकुल हो कर इधर उधर भाग गई ॥ २१ ॥ फिर काली चंड और मुण्ड के शिरों को लेकर अम्बिका के पास आई और अट्टहासमिश्रित शब्दों में बोली ॥ २२ ॥ मैंने इस समररूपी यज्ञमें चण्ड मुण्डरूपी दो महा पशुओं की तुम्हारे लिये बलि दी है। अब शुम्भ और निशुम्भ का वध तुम स्वयं करोगी ॥२३॥

ऋषि बोले—

उन महा असुर चण्ड और मुण्ड को देखकर कल्याणी अम्बिका काली के प्रति बोली ॥२४॥ जो कि तुम चण्ड और मुण्ड को मार कर मेरे पास लाई हो इसलिये हे देवि! तुम चामुण्डा नाम से संसार में विख्यात होगी ॥ २५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिकमन्वंतरके देवी माहात्म्यमें चंडमुंड वध नाम ८७वाँ अ० स०।

अठासीवां अध्याय

ऋषिरुवाच

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ १ ॥
ततः कोपपराधीन-चेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्व्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ २ ॥

ऋषि बोले—

चण्ड और मुण्ड के समरभूमि में गिरने पर और उनकी बहुतसी सेना के नष्ट होने पर राक्षसों के स्वामी ॥ १ ॥ प्रतापी शुम्भ ने क्रोध से अपना मस्तिष्क खोकर दैत्यों की सब सेनाओं को तैयार होने के लिये आज्ञा दी ॥ २ ॥ आज उदायुध नाम

अद्य सर्व्वबलैर्दैत्याः षड़शीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥ ३ ॥
कोटिवीर्य्याणि पंचाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ४ ॥
कालका दौर्हृता मौर्य्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम॥ ५ ॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्ज्जगाम महासैन्य-सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥६ ॥
आयातं चण्डिका दृष्ट्वा तत् सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ ७ ॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तान् नादानम्बिका चोपबृंहयत् ॥ ८ ॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां शब्दापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना॥ ९ ॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिता ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्य्यबलान्विताः ॥११॥
ब्रह्मेश-गुह-विष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१२॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥१३॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥१४॥
माहेश्वरी वृषारूढ़ा त्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥१५॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी॥१६॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुड़ोपरि संस्थिता ।
शंख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-खड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१७॥
यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्॥१८॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेप-क्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥१९॥

दैत्यों की छियासी सेनायें और कम्बू नाम के चौरासी दैत्यों की सब सेनायें लड़ने के लिये चलें ॥३॥ कोटिवीर्य नाम राक्षसों के जो पचास कुल हैं वे सब मेरी आज्ञा से चलें ॥ ४ ॥ कालका, दौहृत, मौर्य्य, कालकेय आदि जो असुर हैं वे सब शीघ्र मेरी आज्ञा से युद्ध के लिये सजकर चलें ॥५॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राक्षसों का स्वामी, भैरव के समान शासन वाला वह शुम्भ हजारों सेनाओं को लेकर चला ॥ ६ ॥ उस अत्यन्त भयङ्कर सेना को आते हुए देखकर चण्डिका ने धनुष को चढ़ाया जिसके शब्द से सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश व्याप्त होगये ॥७॥ हे राजन् ! फिर उस सिंह ने भी महानाद किया और अम्बिका ने उसके गर्जनको अपने घण्टे के शब्द से और भी बढ़ा दिया ॥८॥ धनुष के शब्द, सिंह की गर्जना, और घण्टे के भीषण शब्द से सब दिशायें पूर्णहोगईं और उस शब्दने काली के गर्जन को भी दाब दिया ॥ ९ ॥ उस शब्द को सुनकर दैत्यों की सेना ने क्रुद्ध होकर देवीके सिंह और काली को चारों तरफ से घेर लिया ॥ १० ॥ हे राजन् ! उसी अवसर पर राक्षसोंका नाश करने के लिये और देवताओं का कल्याण करने के लिये बहुत से वीरों को लेकर ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, महादेव, विष्णु और इन्द्रकी शक्तियां उनके शरीरोंसे निकल कर उन्हीं का रूप धारण करके चण्डिका के पास आईं ॥ १२ ॥ जिस देवता का जो रूप, भूषण और वाहन था उसी उसको धारण करके उसकी शक्ति असुरों से युद्ध करने को आई ॥ १३ ॥ हंसयुक्त विमान पर बैठकर और हाथमें माला तथा कमंडल लिये हुए ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी आईं ॥ १४ ॥ बैल पर सवार होकर हाथमें सुन्दर त्रिशूल धारण किये हुए, भुजाओं में महासर्पों को लपेटे और चन्द्रकला भूषण पहिने शिवजी की शक्ति माहेश्वरी आईं ॥ १५ ॥ हाथमें शक्ति लिये हुए, सुन्दर मयूर पर सवार होकर स्वामिकार्तिकेयकी शक्ति कौमारी दैत्यों से लड़ने को आई ॥ १६ ॥ इसी प्रकार गरुड़ पर स्थित होकर शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग, खड्ग हाथ में लिये हुए विष्णु की वैष्णवी शक्ति आकर उपस्थित हुई ॥ १७ ॥ और यज्ञवाराह का अतुल रूप धारण करने वाले विष्णु भगवान् की शक्तिभी वाराही रूप से वहाँ आई ॥ १८॥ नृसिंह की शक्ति नारसिंही भी नृसिंह के सदृश शरीर धारण कर आई और अपने झंडे को आकाश में फहरा कर नक्षत्रों को अलग-अलग करने लगी ॥ १९ ॥ इसी

वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरिस्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥२०॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चंडिकाम् ॥२१॥
ततो देवीशरीरात् तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२२॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूतत्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः ॥२३॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भंच दानवावतिगर्व्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२४॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२५॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२६॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता २७॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः सर्व्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यतः कात्यायनी स्थिता ॥२८॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥२९॥
सा च तान् प्रहितान् बाणान् शूलचक्रपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाध्मात-धनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३०॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्व्वती व्यचरत् तदा ॥३१॥
कमंण्डलुजलाक्षेप-हतवीर्य्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥३२॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्यान् जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ३३॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३४॥
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३५॥

प्रकार हाथमें वज्र लिये हुए और गजराज ऐरावत पर सवार होकर सहस्रनेत्रा ऐन्द्री आई जिसका स्वरूप वैसाही थी जैसा कि इन्द्र का ॥ २० ॥ उस समय उन देवशक्तियों के साथ महादेवजीभी आये और चण्डिका से बोले कि, कि मुझे प्रसन्न करने के लिये असुरों को शीघ्र मारो ॥ २१ ॥ फिर देवी के शरीर से अत्यन्त भीषण, उग्रशक्तिवाली सैकड़ों शिवायें शब्द करती हुई निकलीं ॥ २२ ॥ तब अपराजिता देवी धूम्रवर्ण, जटाधारी महादेवजी से बोली, "हे भगवन्! आप शुम्भ और निशुम्भ के पास दूत बनकर जाँय" ॥ २३ ॥ और अभिमानी शुम्भ, निशुम्भ तथा अन्य दानवोंसे जो वहाँ युद्ध के लिये उपस्थित हों उनसे कहिये ॥२४॥ इन्द्र अब त्रिलोकी का राज्य करेंगे और देवता अपने-अपने यज्ञ भाग को लेंगे। यदि तुम लोग जीवित रहना चाहते हो तो पाताल को जाओ ॥२५॥ यदि तुम लोग बल के अहङ्कार से युद्ध करना चाहते हो तो आओ और अपने मांस से मेरी शिवाओं की तृप्ति करो ॥२६॥ जो कि देवी ने स्वयं शिव को दूतकार्य के लिये नियुक्त किया इसलिये इस लोक में वह शिवदूती के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥ २७॥ उन महान् असुरों ने भी देवीके उन वचनों को सुनकर क्रोध में पूर्ण हो उधर की ओर प्रस्थान किया जिधर कि देवी (कात्यायनी) मौजूद थीं ॥ २८ ॥ और उन्होंने प्रथम ही क्रोध से उन्मत्त होकर देवी के ऊपर बाणों और शक्तियों की वर्षा आरम्भ करदी ॥२९॥ परन्तु देवी ने राक्षसों के चलाये बाण, शूल, शक्ति और परशों को खेल में ही अपने धनुष के तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार देवी के चलाये हुए अस्त्रों को राक्षसों ने काट डाला। उस समय काली अपना शूल और खट्वाङ्ग लिये युद्ध क्षेत्र में विचरने लगी ॥३१॥ और ब्रह्माणी इधर-उधर घूमकर शत्रुओं पर अपने कमण्डलु का जल छिड़कती थी जिससे कि वे हतवीर्य और तेजहीन होजाते थे ॥ ३२ ॥ माहेश्वरी ने त्रिशूल से, वैष्णवी ने चक्र से और कौमारी ने शक्तिसे अत्यन्त क्रोध करके असुरों को मारा ॥ ३३ ॥ ऐन्द्री के वज्र की मार से सैकड़ों दैत्य और दानव कटकटकर रुधिर को प्रवाहित करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३४ ॥ वाराही शक्ति के तुण्ड प्रहार से विध्वस्त होकर, उनकी डाढ़ से छातियाँ फट फट कर, और उनके चक्र से अनेक राक्षस कटकट कर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३५ ॥ नारसिंही कुछ राक्षसों को नखों से

नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥३६॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३७॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३८॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तवीजो महासुरः ॥३६॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥४०॥
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तवीजमताड़यत् ॥४१॥
कुलिशेनाहतस्याशु तस्य सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४२॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्य्यबलविक्रमाः ॥४३॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसंम्भवाः ।
समं मातृभिरत्युग्र-शस्त्रपातातिभीषणम् ॥४४॥
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४५॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताड़यामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४६॥
वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४७॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तवीजं महासुरम् ॥४८॥
स चापि गदया दैत्यः सर्व्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातृ कोपसमाविष्टो रक्तवीजो महासुरः ॥४६॥
तस्याहतस्य वहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५०॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत् ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५१॥
विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चंडिका प्राहसत्वरा ।
कालीं चामुण्डे विस्तरं वदनं कुरु ॥५२॥

विदीर्ण करती हुई और दूसरों को भक्षण करती हुई रणभूमि में विचरने लगी तथा उसके नाद से सब दिशायें गूञ्ज उठीं ॥३६॥ कितनेही राक्षस शिवदूती देवी के प्रचण्ड अट्टहास से दूषित होकर और कुछ विदीर्ण होकर पृथ्वी पर गिर जाते थे जिनको कि वह भक्षण कर जाती थी ॥ ३७ ॥ इस प्रकार क्रुद्ध होकर शक्तियों ने दैत्यों की सेना का संहार किया। शेष राक्षसों की सेना देवियों का कोप देखकर भाग खड़ी हुई ॥ ३८ ॥ शक्तियों से मर्दित दैत्यों को भागते हुए देखकर रक्तवीज नाम का महान् राक्षस कुपित होकर युद्ध करने को आया ॥ ३६ ॥ उस राक्षस के शरीर से जो रक्त की बूंद पृथ्वी पर पड़ती थी उससे उसी आकार का एक और असुर पृथ्वीसे उत्पन्न होजाता था ॥४०॥ वह महासुर हाथ में गदा लेकर इन्द्र की शक्ति से युद्ध करने लगा। इसपर ऐन्द्री ने अपने वज्र से रक्तवीज को ताड़न किया ॥ ४१ ॥ वज्र से आहत होने पर राक्षस के शरीर से रुधिर बह निकला जिससे कि उसी रूप और पराक्रमके अनेकों योधा प्रगट होगये ॥४२॥ उसके शरीर से जितनी रक्तकी बूंदें गिरती थीं उतने ही उसके बल और पराक्रम के समान उनमें से दैत्य उत्पन्न होजाते थे ॥ ४३ ॥ रक्त से उत्पन्न वे दैत्य वहाँ पर भीषण शस्त्रपात करके शक्तियों से लड़ रहे थे ॥४४॥ फिर जब रक्तवीज का शिर वज्र से काटा गया तो उसमें से रुधिर बह निकला जिससे हजारों रक्तबीज पैदा होगये ॥४५॥ युद्ध में वैष्णवी शक्ति ने उसे चक्र से ताड़ित किया और ऐन्द्री ने रक्तबीज पर गदा का प्रहार किया ॥ ४६ ॥ जब वैष्णवी ने उसे चक्र से काटा तो उसके रुधिर से उत्पन्न हज़ारों उसी आकार वाले रक्तबीजों से जगत व्याप्त होगया ॥ उस महान् दैत्य रक्तवीज को कौमारी ने शक्ति से, वाराही ने तलवार से और माहेश्वरी ने त्रिशूल से मारा ॥४८॥ तब महादैत्य रक्तबीज ने भी क्रोधित होकर सब शक्तियों पर गदा से प्रहार किया ॥४६॥ शक्ति शूल आदि से घायल होने पर उसके शरीर से जो रक्त पृथ्वी पर गिरा उससे सैकड़ों रक्तबीज उत्पन्न होगये ॥५०॥ धीरे-धीरे उस असुर के रक्तसे निकले हुए रक्तबीज दैत्योंसे समस्त संसार व्याप्त होगया तब देवताओं को भय उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ उन देवताओं को व्याकुल देखकर चण्डिका देवी ने काली चामुंडा देवी से कहा कि तुम अपना मुख

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तविन्दून् महासुरान् ।
रक्तविन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिता॥५३॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान् महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५४॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे५५॥
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ।
मुखेन काली जगृहे रक्तवीजस्य शोणितम् ॥५६॥
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ।
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ॥५७॥
तस्याहतस्य देहात् तु बहु सुस्राव शोणितम् ।
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ॥५८॥
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ।
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्॥५९॥
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ।
जघान रक्तवीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ॥६०॥
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ।
नीरक्तश्च महीपाल रक्तवीजो महासुरः ॥६१॥
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ।
तेषां मातृगणो जातो ननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ॥६२॥

फैलाओ ॥ ५२ ॥ मेरे शस्त्रोंके लगनेसे जो रक्तविंदु दैत्यों से उत्पन्न हों उनको तुम शीघ्र अपने मुख में ले लिया करो जिससे कि वे पृथ्वी पर न गिरने पावें ॥ ५३ ॥ रक्तवीज के रुधिर से उत्पन्नहुए दैत्यों को तुम भक्षण करती हुई रणमें विचरो । इसतरह यह दैत्य क्षीणरक्त होकर नाशको प्राप्त होगा ॥५४॥ जिन दैत्यों को तुम भक्षण कर जाओगी उनसे दूसरे रक्तवीज उत्पन्न न हो सकेंगे ॥ ५५ ॥ काली से यह कहकर देवी ने रक्तवीज को शूल से मारा और उसके रुधिर को काली ने अपने मुख में ले लिया ॥ ५६ ॥ फिर रक्तवीज ने चण्डिका देवी को गदा से मारा परन्तु उनको उस गदा के प्रहार से तनिक भी वेदना न हुई ॥५७ ॥ रक्तवीजके घायल शरीर से बहुतसा रुधिर निकला परन्तु उस सब को काली चामुंडा ने अपने मुख में ले लिया ॥५८॥ रक्त के पड़ने से जो महादैत्य काली के मुख में उत्पन्न होगये उनको चामुंडा खागई और उनके शोणित को पान कर गई ॥ ५९ ॥ फिर उस रक्तवीज को देवी ने त्रिशूल, वज्र, बाण, तलवार और ऋष्टियों से मारा और चामुण्डा ने उसका रुधिर पी लिया ॥ ६० ॥ हे महीपाल ! फिर वह महादैत्य रक्तवीज अस्त्रशस्त्रों से आहत होकर रुधिरहीन पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६१॥ हे राजन् ! उस समय देवताओं को अतुल आनन्द हुआ और उनसे उत्पन्न शक्तियाँ उन्मत्तहो रुधिर पी पीकर नाचने लगीं ॥ ६२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय०में सावर्णिकमन्वन्तरमें देवीमाहात्म्य में रक्तवीजवध नाम ८८वाँ अ० स० ।



नवासीवाँ अध्याय

राजोवाच

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तवीजवधाश्रितम् ॥ १ ॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तवीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत् कर्म्म निशुम्भश्चातिकोपनः॥ २ ॥

ऋषिरुवाच

चकार कोपमतुलं रक्तवीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ ३ ॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।

राजा बोले—

हे भगवन् ! आपने यह विचित्र वर्णन मुझे देवी के चरित्र, माहात्म्य और रक्तवीज के वध का सुनाया ॥ १ ॥ अब मैं वह सुनने की इच्छा करता हूँ जो कि रक्तवीज के मरनेपर क्रुद्ध हो शुम्भ और निशुम्भ ने किया ॥ २ ॥

ऋषि बोले—

रक्तवीज के पतन होने और अन्य असुरों के मरने पर शुम्भ और निशुम्भ ने अत्यन्त क्रोध किया ॥ ३ ॥ अपनी विशाल सेनाको नष्ट हुआ देखकर क्रोधित हो निशुम्भ अपनी मुख्य सेना

अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययाऽसुरसेनया ॥ ४ ॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
सन्दष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥ ५ ॥
आजगाम महावीर्य्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृ तः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात् कृत्वा युद्धन्तु मातृभिः॥ ६
ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भ-निशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ ७ ॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिकाशु शरोत्करैः।
ताड़यामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ ८ ॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म्म चादाय सुप्रभम् ।
अताड़यन्मूर्द्धिन सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥ ९ ॥
ताड़िते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म्म चाप्यष्टचन्द्रकम्॥१०॥
छिन्ने चर्म्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥११॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१३॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१४॥
तस्मिन् निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्य्यतीवसंक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१५॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१६॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शंखमवादयत् ।
ज्याशब्दञ्चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१७॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥१८॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथोपदिशो दश ॥१९॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताड़यत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः२०॥
६९ . .र्व शिवदूती चकार ह ।

लड़ने को दौड़ा ॥४॥ उसके आगे, पीछे तथा अगल-बगल चारों तरफ महादैत्य क्रोधित होकर देवी को मारने को दौड़े ॥ ५ ॥ महाबलवान् शुम्भ की अपनी सेनाओं को लेकर चण्डिकाको मारने और शक्तियों से युद्ध करने के लिये आया ॥ ६ ॥ फिर देवी और शुम्भ निशुम्भ का घोर युद्ध हुआ, दोनों ओर से मेघों के समान बाणों की वर्षा हो रही थी ॥ ७ ॥ चंडिका ने अपने बाणोंसे उन दैत्यों के तीरों को काट डाला और अपने शस्त्रों से उन दैत्यराजों के शरीरों को ताड़न किया ॥ ८ ॥ निशुम्भ ने प्रभा युक्त ढाल और तलवार लेकर देवी के उत्तम वाहन सिंह के शिर में प्रहार किया ॥ ९ ॥ सिंह के आहत होने पर देवी ने शीघ्र निशुम्भकी तलवार, ढाल और चन्द्राष्टक को काट डाला ॥ १० ॥ ढाल और तलवार के टूटने पर असुर ने एक शक्ति फेंकी जिसको भी देवी ने अपने चक्र से दो टुकड़े कर डाले ॥११॥ क्रोधयुक्त होकर फिर निशुम्भ ने शूल चलाया जिसको कि देवी ने अपनी मुष्टि से चूर्ण कर डाला ॥ १२ ॥ फिर उसने चण्डिका पर गदा चलाई और उस गदा को भी देवी ने त्रिशूल से काट कर भस्म कर दिया ॥ १३ ॥ फिर हाथ में परशा लेकर आते हुए उस दैत्य को देवी ने बाणों से बेध कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १४ ॥ फिर पराक्रमी निशुम्भ के भूमि पर गिरते ही उसका भाई शुम्भ अत्यन्त क्रोध करके अम्बिकाको मारने के लिये आया ॥ १५ ॥ वह रथ पर बैठ कर अपनी आठों भुजाओं में परम अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करता हुआ आकाश को शोभायमान करने लगा ॥ १६ ॥ उसको आते हुए देखकर देवीने शंख बजाया और धनुष खींचकर अत्यन्त दुःसह शब्द किया ॥१७॥ उन्होंने अपने घण्टे के शब्द से समस्त दिशाओं को व्याप्त कर दिया और उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब समस्त दैत्य सेना के वध का विधान हो गया है ॥ १८ ॥ फिर सिंह भी महानाद करने लगा जिससे कि समस्त आकाश, पाताल और दशों दिशायें व्याप्त होगई ॥ १९ ॥ फिर काली ने आकाश में उछल कर दोनों हाथ पृथ्वी पर मारे जिसका कि पहिली गरजसे भी अधिक शब्द हुआ ॥ २० ॥ फिर शिवदूती ने भयङ्कर अट्टहास किया

तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२१॥
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२२॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया॥२३॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२४॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान् देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२५॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥२६॥
ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्म्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केशरिणं तथा ॥२७॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥२८॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्त्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः शायकांश्च तान्॥२९
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३०॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३१॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३२॥
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः।
महाबलो महावीर्य्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३३॥
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत् तदा।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३४॥
ततः सिंहश्चखादोग्र-दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३५॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३६॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३७॥

जिसके शब्द से दैत्य भयभीत होगये और शुम्भ ने क्रोध किया ॥ २१ ॥ तब अम्बिका ने कहा, "हे दुरात्मन्! तनिक ठहर।" उस समय आकाश में स्थित देवताओं ने जय-जयकार किया ॥२२॥ शुम्भ ने आकर ज्वाला के समान अति भीषण शक्ति चलाई। देवी ने अग्नि के ढेर के समान आती हुई उस शक्ति को महोल्का नाम अस्त्रसे काट डाला॥ शुम्भ के सिंहनादसे उस समय तीनों लोक व्याप्त होगये। हे राजन्! उस भीषण शब्द से सब लोग थर्रा गये ॥२४॥ शुम्भ के चलाये हुए बाणोंको देवी ने और देवी के चलाये हुए बाणोंको शुम्भने अपने तीक्ष्ण बाणों से सैकड़ों हजारों टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २५ ॥ फिर चण्डिका ने क्रुद्ध होकर उसे शूल से मारा। तब वह उससे चोट खाकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २६ ॥ उसी समय निशुंभ ने होश में आकर धनुष हाथ में लिया और बाणों से देवी, काली और सिंह को मारने लगा ॥ २७ ॥ फिर उस दानवेन्द्र ने दस हजार भुजायें धारण कर उन सब में चक्रायुध लिया और चण्डिका देवी को आच्छादित कर दिया ॥ २८॥ तब दुर्गति नाश करने वाली भगवती दुर्गा ने क्रोधित होकर उन चक्रों को और उसके धनुष को अपने बाणों से काट डाला ॥ २९ ॥ फिर निशुंभ वेग से गदा लाकर दैत्य सेना के साथ चण्डिका को मारने को दौड़ा ॥ ३० ॥ चण्डिका ने उसकी आती हुई गदा को अपने तीक्ष्ण धार वाले खड्ग से काट गिराया फिर असुर ने शूल को लिया ॥ ३१ ॥ देवताओं के वैरी निशुम्भ को शूल हाथ में लिये आता हुआ देखकर चण्डिका ने उसकी छाती में अपना शूल मारा ॥ ३२ ॥ शूल से वेधित होते ही उसकी छाती से एक दूसरा महाबली और पराक्रमी दैत्य 'ठहरो ठहरो' यह कहता हुआ निकला ॥ ३३ ॥ उसको निकलते हुए देखकर देवी बहुत हँसी और उसने उस दैत्य का शिर काट कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ३४ ॥ तब सिंह अपनी उग्र दंष्ट्राओं से और काली तथा शिवदूती उनके शिर, धड़ और अन्य राक्षसों को खागई ॥ ३५ ॥ कुछ दैत्यों को कौमारी ने अपनी शक्ति से काट डाला और ब्रह्माणी ने अपने अभिमन्त्रित जल से कितने ही असुरों को भस्म कर डाला ॥ ३६ ॥ कितने ही असुर माहेश्वरी के शूल से कट कर पृथ्वी पर गिर पड़े और कुछ वाराही की तुण्ड के प्रहार से चूर्ण

खण्डखण्डश्च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्र-विमुक्तेन तथापरे ॥३८॥
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे काली-शिवदूती-मृगाधिपैः ॥३९॥

होगये ॥ ३७ ॥ कुछ दानवों को वैष्णवी ने चक्र से काट कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला और कुछ ऐन्द्री के वज्र से हत होगये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार बहुतसे दैत्य नष्ट होगये और बहुत से रण से भाग गये। जो बाक़ी बचे उनको काली, शिवदूती और सिंह ने भक्षण कर लिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय०में सावर्णिकमन्वंतरमें देवीमाहात्म्यमें निशुंभवधनाम ८९वाँ अ० स० ।



नव्वैवाँ अध्याय

ऋषिरुवाच
निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलञ्चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ १ ॥
बलावलेपदुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्व्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे याऽतिमानिनी॥ २ ॥
देव्युवाच
एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ३ ॥
ऋषिरुवाच
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत् तदाम्बिका॥ ४ ॥
देव्युवाच
अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदा स्थिता।
तत् संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ५ ॥
ऋषिरुवाच
ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।
पश्यतां सर्व्वदेवानामसुराणाञ्च दारुणम् ॥ ६ ॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्व्वलोकभयङ्करम् ॥ ७ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ ८ ॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी।
बभञ्ज लीलयैवोग्र-हुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ ९ ॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।

ऋषि बोले—
अपने भाई निशुम्भ और सब सेना का बध हुआ देखकर शुम्भ क्रोधित होकर देवी से बोला ॥ १ ॥ हे दुष्टा दुर्गे! दूसरे के बल पर तुम गर्व मत करो। तुम दूसरेके बल पर आश्रित होकर तो युद्ध करती हो और अपने को बहुत कुछ समझती हो ॥ २ ॥
देवी बोली—
इस जगत में मैं एक ही हूँ और मुझसे अतिरिक्त दूसरी कौन है? रे दुष्ट! देख, यह सम्पूर्ण शक्तियाँ मुझसे ही रहती हैं ॥ ३ ॥
ऋषि बोले—
तब ब्रह्माणी आदि जितनी शक्तियां थीं वे सब देवी के शरीर में लीन होगईं और अम्बिका अकेली रह गई ॥ ४ ॥
देवी बोली—
मैं ही अपने विभव से अनेकों रूप में स्थित थी उन सबको मैंने समेट लिया और अब मैं एक हूँ, तू भी ठहर ॥ ५ ॥
ऋषि बोले—
सब देवताओं और असुरों के देखते देखते देवी और शुम्भ का दारुण युद्ध होने लगा ॥ ६ ॥ तीक्ष्ण बाणों और दारुण अस्त्र शस्त्रों की वर्षा होने लगी और उस समय उन दोनों का सब संसार को भय उत्पन्न करने वाला युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ अम्बिका ने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े उनको दैत्यराज शुम्भ ने अपने शस्त्रों से काटडाला ॥ ८ ॥ उस दैत्य ने जिन अस्त्रों को छोड़ा उनको अंबिका ने खेलने मात्र में ही हुंकार आदि शब्दों से काट दिया ॥ ९ ॥ फिर उस असुर ने सैकड़ों बाणों से देवी को आच्छादित कर दिया। उन सब बाणों

सापि तत् कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः॥१०॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करस्थिताम्॥११॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रञ्च भानुमत्।
अभ्यधावत् तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः॥१२॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका।
धनुर्म्मुक्तैः शितैर्वाणैश्चर्म्म चार्ककरामलम्॥१३॥
हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः॥१४॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत् तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान्॥१५॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तञ्चापि सा देवी तलेनोरस्यताड़यत्॥१६॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः॥१७॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका॥१८॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्ध-मुनिविस्मयकारकम्॥१९॥
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले॥२०॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया॥२१॥
तमायान्तं ततो देवी सर्व्वदैत्यजनेश्वरम्।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि॥२२॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्व्वताम्॥२३॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत् स्वास्थ्यमतीवाप निर्म्मलञ्चाभवन्नभः॥२४॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते॥२५॥
ततो देवगणाः सर्व्वे हर्षनिर्भरमानसाः।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्व्वा ललितं जगुः॥२६॥

को और उसके धनुष को देवी ने कुपित होकर काट डाला॥१०॥ धनुष के कटने पर दैत्यराज ने एक शक्ति उठाई। जबकि वह शक्ति शुम्भ के हाथ में ही थी देवी ने उसे अपने चक्र से काट डाला ॥ ११ ॥ फिर दैत्यराज शुम्भ एक खड्ग और ढाल जिसमें सूर्य के समान शतचन्द्र लगे हुए थे लेकर देवी के ऊपर झपटा॥१२॥ उसके आते ही चंडिका ने अपने धनुष से छूटे हुए बाणों से उसके खड्ग और सूर्य की सी छटावाले ढाल को काट दिया॥ इसके बाद वह दैत्य अश्वहीन और सारथी के बिना होगया तथा उसका धनुष भी काट दिया गया। फिर वह एक भयानक मुग्दर उठाकर अम्बिका के मारने को उद्यत हुआ ॥ १४ ॥ देवी ने उस मुद्गर को अपने तीक्ष्ण बाणों से काट दिया फिर वह देवी को मुष्टि से मारने को शीघ्र दौड़ा ॥ १५॥ दैत्यराज ने देवी के हृदय में मुष्टिका प्रहार किया और देवी ने भी हाथ से उसे छाती में मारा ॥ १६ ॥ देवी के करतल के प्रहार से वह पृथ्वी पर गिरपड़ा परन्तु वह दैत्यराज सहसा फिर उठपड़ा॥ उठकर वह देवी को पकड़ कर ऊँचा आकाश में ले गया, परन्तु वहाँ भी निराधार ही देवी ने उस से युद्ध किया ॥१८॥ आकाशमें दैत्य और चंडिका देवी का परस्पर ऐसा युद्ध हुआ कि उससे सिद्ध और मुनि लोग विस्मित होगये ॥ १९ ॥ फिर अम्बिका ने बहुत काल तक उस दैत्यसे युद्ध कर के उसे उछाला और फिर घुमाकर पृथ्वी पर फेंक दिया ॥ २० ॥ धरणी पर गिर कर वह फिर उठा और फिर वह दुष्टात्मा मुष्टि तान कर चण्डिकाको मारने के लिये दौड़ा ॥ २१॥ तब देवी ने उस दैत्य राज को आते हुए देखकर उसको शूल से छातीमें वेध कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २२ ॥ देवीके शूल से क्षत होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरने से समुद्र, द्वीप और पर्वत सहित सम्पूर्ण पृथ्वी चलायमान होगई ॥ २३ ॥ उस दुष्टात्मा के मरने पर समस्त संसार प्रसन्न होकर स्वस्थ हुआ तथा आकाश भी उसके भय से निर्मल होगया॥ मेघों के उत्पात और उल्कापात आदि जो पहिले हुआ करते थे वे उसके मरने से सब शान्त होगये और नदियां सीधी बहने लगीं ॥ २५ ॥ फिर सब देवगण उसके मरने से प्रसन्न होगये और गन्धर्व लोग ललित गीत गाने लगे ॥ २६ ॥ दूसरे गन्धर्व

अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः ॥२७

बाजे बजाने लगे और अप्सरायें नाचनेलगीं। हवा चलने लगी और सूर्य का प्रकाश बढ़ गया। अग्नि जो शान्त होगई थी प्रज्वलित होगई तथा दिशाओंमें जो कोलाहल होरहाथा शान्त होगया॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिकमन्वन्तरके देवीमाहात्म्यमें शुंभवध नाम ६०वाँ अ० समाप्त।

इक्यानवेवाँ अध्याय

ऋषिरुवाच

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्नि-पुरोगमास्ताम्। कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलम्भा-द्विकाशिवक्त्रास्तु विकाशिताशाः ॥ १ ॥

देवि प्रपन्नार्त्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतो-ऽखिलस्य। प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ २ ॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि । अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-दाप्याय्यते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्य्ये ॥ ३ ॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्य्या विश्वस्य बीजं परमासि माया। सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ४ ॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु। त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ५ ॥

सर्व्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ६ ॥

सर्व्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

सर्व्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्व्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

सृष्टि-स्थिति-विनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१०॥

ऋषि बोले—

देवी द्वारा उस दैत्यराज के मारे जानेपर इन्द्र सहित सब देवता अग्निको आगे कर सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए देवी की स्तुति करनेलगे॥ हे देवि! आप भक्तों की विपत्ति दूर करनेवाली हैं, आप समस्त जगत की माता हैं। हे विश्व की ईश्वरी! आप प्रसन्न हूजिये। आप चराचर विश्व की ईश्वरी देवीहैं अतः विश्वकी रक्षा कीजिये॥२॥ आप ही जगत की एक आधाररूप हैं तथा आपही पृथ्वी रूप से स्थित हैं। हे अतुल पराक्रम वाली! आपही जल रूपसे स्थित होकर सबको आनन्द देती हैं॥ ३॥ आपही विश्व की कारण अनन्तवीर्य वैष्णवी शक्ति हैं और आपही वह परम माया हैं जिससे कि समस्त जगत मोह को प्राप्त होरहा है, आपकी प्रसन्नता ही संसार में मुक्ति का कारण होती है॥ ४॥ हे देवि! समस्त विद्यायें आपही के भेद स्वरूप हैं जगत की सब स्त्रियाँ आप ही का अंश हैं। हे अम्ब! आपही सब जगत में व्याप्त हैं, आपकी स्तुति क्या हो सकती है? आप स्तुति से परे हैं॥ ५॥ हे देवि! आप सब जीवों को स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हैं। आपकी स्तुति के लिये बहुत कुछ कहना वृथा है॥६॥ आप सबके हृदय में बुद्धि रूप से विराजमान होती हैं। अतः आपही स्वर्ग और मोक्ष के देने वाली देवि हैं। हे नारायणि! आपको नमस्कार है॥ ७॥ कला और काष्ठा रूप से परिणाम देने वाली आप ही हैं, आप ही संसार का नाश करने में समर्थ हैं, अतः हे नारायणि! आपको प्रणाम है॥ ८॥ आप सब मङ्गलों का रूप हैं, कल्याण करने वाली और सब अर्थ का साधन करने वाली आपही हैं, आप ही शरण देनेवाली त्र्यम्बका गौरी हैं, हे नारायणि! आपको नमस्कार है॥ ९॥ उत्पत्ति, पालन और संहार आदि कर्मों में आपही सनातनी शक्तिरूपा हैं, सब गुणों के आश्रयवाली; गुणमयी, नारायणी! आपको नमस्कार है॥ १०॥ शरणागत, दीन और

शरणागतदीनार्त्त-परित्राणपरायणे ।
सर्व्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥
शंख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-गृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१६॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महामाये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥
सर्व्वस्वरूपे सर्व्वेशे सर्व्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२३॥
एतत् ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्व्वभूतेभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥२४॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२५॥
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव॥२६॥

आर्त की रक्षा करने वाली तथा सबकी पीड़ा हरने वाली देवी आपही हैं। हे नारायणी ! आपको नमस्कार है ॥११॥ हंसयुक्त विमान पर बैठ कर ब्रह्माणी का रूप धारण करके कमण्डलु से जल छिड़कने वाली नारायणी के निमित्त नमस्कार है॥ त्रिशूल, चन्द्रमा तथा सर्प धारण किये हुए माहेश्वरी रूप से नारायणी को नमस्कारहै ॥१३॥ मयूर पर सवार होकर महाशक्ति धारण कियेहुए, निष्पाप कौमारी रूप से स्थित नारायणी को प्रणाम है ॥ शंख, चक्र, गदा. शार्ङ्ग आदि परम आयुधों को धारण किये हुए वैष्णवी रूप से हम पर प्रसन्न हों हे नारायणी ! आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥ आप उग्र महाचक्र ग्रहण किये और अपनी दंष्ट्रा पर पृथ्वी को धारण किये हुए वाराही रूप से कल्याण करने वाली हैं। हे नारायणि ! आपको नमस्कार है ॥१६॥ उग्र नृसिंह रूप से दैत्योंका नाश करनेको उद्यत और त्रैलोक्य की रक्षा करनेमें तत्पर नारायणी को हमारा प्रणाम है ॥ १७ ॥ किरीट धारण किये हुए, महावज्र हाथ में लेकर हजार नेत्रों से प्रकाशमान, वृत्रासुर के प्राण हरने वाली, ऐन्द्रि शक्तिरूप नारायणी को प्रणाम है॥ १८ ॥ शिवदूती रूप से दैत्यों की विशाल सेनाको नाश करनेवाली घोर रूपवाली, भयानक शब्द करनेवाली नारायणी को नमस्कार है ॥ १९ ॥ बड़े-बड़े दाँत निकाले हुए कराल आकृति वाली, मुण्डोंकी माला धारण करने वाली, मुण्ड का वध करने वाली चामुण्डारूपी नारायणी को नमस्कार है ॥ २० ॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि और महा माया स्वरूप नारायणी ! आपको नमस्कार है ॥२१॥ हे मेधा, हे सरस्वति ! उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, रजोगुण और तमोगुण संयुक्त नारायणी देवी ! आप हम पर प्रसन्न हों, आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे देवि ! आप सर्वस्वरूपा, सर्वेशा और सर्व शक्ति से युक्तहो। हे दुर्गे ! हमको भयसे बचाइये, हम आप को नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ आपका ये सौम्य और त्रिलोचनयुक्त मुख हमारी सब जीवों की रक्षा करे। हे कात्यायनी ! आपको नमस्कार है ॥ हे भद्रकाली ! विकाल ज्वाला वाला, अत्यन्त उग्र और अशेष राक्षसोंको मारने वाला आपका त्रिशूल हमारी भय से रक्षा करे। आपको नमस्कारहै॥२५॥ हे देवि ! आपका वह घण्टा जो समस्त संसारको अपने शब्द से भर कर दैत्यों के तेज को हरता है हमारी पुत्रों के समान पापों से रक्षा करे ॥ २६ ॥

असुरासृग्वसापङ्क-चर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२७॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् । त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥२८॥
एतत् कृतं यत् कदनं त्वयाद्य धर्म्मद्विषां देवि महासुराणाम्। रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिं कृत्वाम्बिके तत् प्रकरोति कान्या ॥२९॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या । ममत्वगर्त्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३०॥
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र । दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३१॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् । विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३२॥
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथाऽसुरवधादधुनैव सद्यः। पापानि सर्व्वजगताञ्च शमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥३३॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्त्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३४॥

देव्युवाच

वरदाऽहं सुरगणा वरं यं मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥३५॥

देवा ऊचुः

सर्व्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्य्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३६॥

देव्युवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥३७॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।

हे चंडिके ! आपका उज्ज्वलहाथ जोअसुरोंके रुधिर और माँससे सना हुआहै वह हमारे लिये कल्याणकारी हो, हम आपको प्रणाम करते हैं ॥२७॥ आप संतुष्ट होकर अशेष रोगों को नष्ट करती हैं और यदि अप्रसन्न होजाँय तो सम्पूर्ण कामनाओं का नाश कर देती हैं, आपके आश्रित मनुष्य विपत्ति में नहीं पड़ते वरन् उनके ही आश्रित और मनुष्य भी हो जाते हैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! आपने जो इस प्रकार धर्मद्रोही राक्षसों का नाश अनेक रूप धारण करके किया है, ऐसा कौन दूसरा कर सकता है ॥ विद्या, शास्त्र,विवेक तथा वेद और उपनिषद् आदि के वाक्यों के होते हुए भी ममता के अन्धकारपूर्ण गर्त में विश्व को आपके अतिरिक्त और कौन गिरा सकता है ॥३०॥ जहाँ पर राक्षस हों अथवा महाविष या सर्प का भय हो, जहाँ पर वैरियों अथवा चोरों से पाला पड़जाय, जहाँ पर दावानल या समुद्रजन्य भय हो, वहाँपर आप जाकर भक्तों की रक्षा करती हैं ॥ ३१ ॥ विश्व का पालन करने के कारण आप विश्वेश्वरी हैं, विश्वको धारणकरने के कारण आप विश्वात्मिका कहलाती हैं, आप देवताओंसे वन्दितहैं और विश्वके आश्रित मनुष्य आपको भक्ति से नम्र होकर पूजते हैं ॥ ३२ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार आपने इस समय राक्षसों का वध करके हमारी रक्षा की है उसी प्रकार सदैव भय से हमारी रक्षा करें । सब जगत के पापों को और उत्पात करने वाले महाविघ्नों को भी शमन करके आप हमपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ हे विश्व की विपत्ति का नाश करने वाली देवी ! तीनों लोक के रहने वाले आपकी वन्दना करतेहैं । हम विनीतहैं, आप हमपर प्रसन्न होकर हमको वर दें ॥ ३४ ॥

देवी बोली—

हे देवताओ ! मैं वर देनेवाली हूँ, जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मुझ से माँगो, मैं जगत के कल्याणार्थ वही वर तुमको दूँगी ॥ ३५ ॥

देवता बोले—

हे अखिलेश्वरी ! जिस प्रकार आपने त्रिलोकी की बाधा इस समय शान्त कर दी है उसी तरह हमारे वैरियों का नाश किया करें ॥३६॥

देवी बोली—

अट्ठाईसवें युग में वैवस्वत मन्वन्तर के प्रगट होने पर जब दूसरे शुम्भ निशुम्भ दैत्य उत्पन्न होंगे तब ॥ ३७ ॥ मैं नन्द गोप के घर यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर उन दोनों का नाश करूँगी और

ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलवासिनी । ३८॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥३९॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान् महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाड़िमीकुसुमोपमाः ॥४०॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४१॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥४२॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्त्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥४३॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥४४॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥४५॥
दुर्गा देवीतिविख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।
रक्षांसि क्षययिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ॥४६॥
तदा मां मुनयः सर्व्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः ।
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥४७॥
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ।
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वासङ्ख्येयषट्पदम् ॥४८॥
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।
भ्रामरीति च मां लोकस्तदा स्तोष्यन्ति सर्व्वतः ४९
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदाऽवतीर्य्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥५०॥

विन्ध्याचल पर्वत पर रहूँगी ॥ ३८ ॥ इसके बाद अत्यन्त भयङ्कर रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतार लेकर विप्रचित्तिवंशी दानवोंका वध करूँगी ॥३९॥ उन विप्रचित्ती राक्षसों को भक्षण करने के कारण मेरे दाँत अनारके फूलके समान रक्तवर्ण होजावेंगे ॥४०॥ उस समय स्वर्ग लोक में देवता और मर्त्यलोक में मनुष्य स्तुति करतेहुए मुझको रक्तदन्तिका नाम से पुकारेंगे ॥ ४१ ॥ फिर पृथ्वी पर सौ वर्ष तक वर्षा नहीं होगी, उस समय में मुनियों से वन्दित होने पर पार्वती रूप से स्वयमेव उत्पन्न हो जाऊँगी ॥ ४२॥ फिर जो कि मैं सौ नेत्रों से उन मुनीश्वरों को देखूँगी इसलिये मनुष्य मुझको शताक्षी नाम से गान करेंगे ॥ ४३ ॥ हे देवताओ ! उस समय मैं अपने देह से उत्पन्न शाकों की वृष्टि से मनुष्यों का प्राण बचाऊंगी ॥ ४४ ॥ इसी कारण से मैं पृथ्वी पर शाकम्भरी नामसे विख्यातहोऊंगी और उसी समय दुर्गम नाम महान् राक्षस का वध करूंगी ॥ ४५ ॥ इससे मेरा नाम दुर्गा करके प्रसिद्ध होगा । फिर मैं हिमालय पर मुनियों के परित्राण के लिये भीम रूप धारण कर राक्षसों का वध करूंगी ॥ ४६ ॥ उस समय सब मुनि लोग नम्र मूर्ति होकर मेरी स्तुति करेंगे और मैं उस समय भीमा देवी के नाम से प्रसिद्ध होऊंगी॥४७॥ जब अरुण नाम का राक्षस त्रिलोकी में अत्यन्त कष्ट उत्पन्न करेगा तब मैं भ्रामर रूप धारण करके जिसमें कि असंख्य भौंरे मेरे चरणों में लिपटे हुए होंगे ॥ ४८ ॥ उस असुर का त्रैलोक्य के हितार्थ वध करूँगी, उस समय मुझको भ्रामरी कहकर सब लोग मेरी स्तुति करेंगे ॥४९॥ इस प्रकार जब जब दैत्यजन्य बाधा उपस्थित होगी तब-तब मैं अवतार लेकर शत्रुओं का क्षय करूंगी ॥ ५० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वंतरके देवीमाहात्म्यमें देवीस्तुति नाम ९१वां अ०स० ।

बानवेवां अध्याय

देव्युवाच

एभिस्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां शमयिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥
मधुकैटभनाशञ्च महिषासुरघातनम् ।

देवी बोली—

जो व्यक्ति दत्तचित्त होकर इन स्तोत्रोंसे मेरी वंदना करेगा उसकी सब बाधाओंका मैं निस्संदेह नाश कर दूँगी ॥ १ ॥ जो लोग मधुकैटभ का नाश

कीर्त्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भ-निशुम्भयोः ॥ २ ॥
अष्टम्यांच चतुर्दश्यां नवम्याञ्चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्॥ ३ ॥
न तेषां दुष्कृतं किंचिद्दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचित् सम्भविष्यति॥ ५ ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यञ्च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत्॥ ६ ॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ७ ॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम्॥८॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्य्ये महोत्सवे ।
सर्व्वं ममैतच्चरितमुच्चार्य्यं श्राव्यमेव च ॥ ९ ॥
जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम्॥१०॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः॥११
सर्व्वाबाधाविनिर्म्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१२॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथाचोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमञ्च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१३॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणञ्चोपपद्यते ।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१४॥
शान्तिकर्म्मणि सर्व्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीड़ासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१५॥
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीड़ाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नञ्च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१६॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षो-भूत-पिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१८॥
...र्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।

महिषासुरका वध और इसी प्रकार शुम्भ-निशुम्भ का वध आदि कथाओंका कीर्तन करेंगे ॥२॥ अथवा जो लोग अष्टमी, चतुर्दशी, या नवमीको एकचित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरे उत्तम माहात्म्य को सुनेंगे ॥ उनको कोई पाप, विघ्न, आपत्ति या दरिद्रता न न होगी और न कभी उनका प्रियजनों से वियोग होगा ॥ ४ ॥ उसको शत्रु, चोर, राजा, शस्त्र, अग्नि और जल आदि किसी से भी भय न होगा ॥ ५ ॥ अतः एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरा माहात्म्य पढ़ना और सुनना चाहिये क्योंकि यह परम कल्याण का कारण है ॥ ६ ॥ मेरा माहात्म्य महामारी से उत्पन्न अनेक उपसर्गों को तथा तीनों प्रकार के अर्थात् दैहिक, दैविक और भौतिक उत्पातों को शमन करता है ॥ ७॥ जिस गृह में मेरा पाठ नित्य पढ़ा जाताहै उसमें मेरी स्थिति होजाती है और मैं वहाँ के निवासियों को नहीं छोड़ती हूं ॥८॥ बलिप्रदान, पूजा, हवन अथवा महान् उत्सवों के अवसर पर मेरा चरित्र पढ़ना तथा सुनना चाहिये ॥ ९ ॥ ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी जो कोई बलि या पूजा करता है उसकी पूजा और होम को मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करती हूँ ॥१०॥ शरदऋतु में जो मेरी वार्षिक पूजा होती है उसमें जो भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्य को सुनेगा ॥ ११ ॥ वह मनुष्य मेरी कृपा से निस्संदेह सब बाधाओं से छूटकर धन-धान्य और पुत्रों से युक्त होग ॥१२॥ मेरे इस माहात्म्य, शुभ उत्पत्तियों और युद्धों में पराक्रमको सुनकर मनुष्यमात्र निर्भय होजावेंगे१३॥ मेरा माहात्म्य सुनने वाले मनुष्यों के शत्रुनाश को प्राप्त होते हैं तथा उनको कल्याण उत्पन्न होता है और उनके कुल को आनन्द होता है ॥१४॥ शान्ति कर्मों में, दुष्ट स्वप्नों के दीखने में तथा उग्र ग्रह-पीड़ाओं में मेरा माहात्म्य सुनना चाहिये ॥ १५ ॥ इससे विघ्न तथा दारुण ग्रहपीड़ा शान्त होजाती हैं और मनुष्यों के देखे हुए दुःस्वप्न भी उत्तम स्वप्नों में बदल जाते हैं ॥१६॥ पूतना आदि बाल-ग्रहों से त्रसित बालकों को मेरा माहात्म्य शान्ति-कारक है तथा मनुष्यों के परस्पर विरोध में यह मैत्री कराने वाला है ॥ १७ ॥ इसके पढ़नेसे अशेष दुष्ट जानवरों का और राक्षस, भूत, पिशाचों का बल नष्ट होजाता है ॥१८॥ यह मेरा माहात्म्य मेरी सामीप्यता उत्पन्न करता है। बलिदान, पुष्प तथा

पशु-पुष्पार्घ्य-धूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥१६॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥२०॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत् सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति ॥२१॥
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्त्तनं मम ॥२२॥
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिवर्हणम् ।
अस्मिन् श्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ॥२३॥
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ।
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्॥२४
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ।
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ॥२५॥
सिंह - व्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ।
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ॥२६॥
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ।
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ॥२७॥
सर्व्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ।
स्मरन् ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥२८॥
मम प्रभावात् सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ।
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥२९॥

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ।
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥३०॥
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ।
यज्ञभागभुजः सर्व्वे चक्रुर्विनिहतारयः ॥३१॥
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ।
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ॥३२॥
निशुम्भे च महावीर्य्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३३॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३४॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति॥३५॥
व्याप्तं तयैतत् सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३६॥

उत्तम अर्घ्य, धूप, गन्ध दीप आदि से ॥ १९॥ तथा ब्राह्मणों को भोजन, हवन, रात्रि दिन प्रोक्षण तथा अन्य विविध मार्गों से अथवा वस्त्राभूषण देने से ॥२०॥ जितनी मुझको प्रीति होती है उतनी उस मनुष्य से होती है जो एक दिन मेरे चरित्र को सुनता है। मेरा चरित्र सुनने से पाप दूर होकर आरोग्य बढ़ता है ॥ २१ ॥ मेरा कीर्तन मनुष्यों की भूत प्रेतादि से रक्षा करता है ॥२२ ॥ दुष्ट दैत्यों के वध के निमित्त जो चरित्र मैंने युद्धों में किया है उसके सुननेसे मनुष्योंको वैरियोंसे भय नहीं होता है ॥२३॥ आप देवताओं ने, ब्रह्मर्षियों ने अथवा ब्राह्मणों ने जो स्तुति की है उससे मनुष्यों को शुभ बुद्धि उत्पन्न होगी ॥२४॥ जंगल में अथवा अग्नि से घिर जाने की दशा में, चोरों से घिर जाने पर, अथवा एकान्त में शत्रुओं से मुकाबिला हो जाने पर ॥२५॥ सिंह, व्याघ्र या वन में जङ्गली हाथी की लपेट में आने पर, राजा के क्रोधित होकर वधकी अथवा कारागृह की आज्ञा देने पर ॥ २६ ॥ समुद्र में जहाज पर अटकने की दशा में अथवा हवा की चपेट में आने पर अथवा दारुण युद्ध में अस्त्रों की वर्षा होने पर ॥२७॥ इन सब घोर बाधाओं और कष्टों में मेरे चरित्र का स्मरण करने से मनुष्य सङ्कट से छूट जाताहै ॥ २८॥ मेरे चरित्रका स्मरण करते ही मेरे प्रभाव से सिंह, चोर और शत्रुआदि दूर ही से भाग जाते हैं ॥ २९ ॥

ऋषि बोले—

यह कहकर प्रचंड पराक्रम वाली भगवती चंडिका देवी देवताओं के देखते देखते वहीं पर अन्तर्ध्यान होगई ॥३०॥ वे देवता भी निर्भय होकर अपने अधिकारों का उपयोग करने लगे, शत्रुओं का नाश होजाने के कारण वे यज्ञभाग का भोग करने लगे ॥३१॥ जब देवी ने देवों के शत्रु शुम्भ और महा पराक्रमी निशुम्भ को उस उग्र और विध्वंसक युद्ध में वध कर दिया तो शेष दैत्य पाताल में भाग गये ॥ ३२-३३ ॥ हे राजन् ! देवी नित्या है और वह पुनः पुनः अवतार लेकर जगत की रक्षा करती हैं ॥ ३४ ॥ उसी देवी ने विश्व को मोहित कर रक्खा है और वही इस विश्व को उत्पन्न करती है। प्रार्थना करने पर वह ज्ञान और सन्तुष्ट होने पर ऐश्वर्य प्रदान करती है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड उसी महाकाली से व्याप्त है और प्रलयकाल में महामारी स्वरूप इसी

सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३७॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥३८॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्म्मे तथा शुभाम् ॥३९॥

में वह लय होजाताहै ॥३६॥ वही महाकाली प्रलय काल में संहार शक्ति, उत्पत्ति काल में सृष्टि शक्ति और स्थिति काल में सनातनी शक्ति होकर वर्तती है ॥ ३७ ॥ मनुष्यों के ऐश्वर्य काल में वही भगवती वृद्धिदायिनी लक्ष्मी होती है तथा अभाव के समय विनाश के हेतु वही दारिद्रयरूप होजाती है ॥३८॥ वह भगवती स्तुति और पुष्प, धूप, गन्ध आदिसे पूजन करने पर धन, पुत्र और धर्माचरण करने के लिये शुभ बुद्धि प्रदान करती है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणके सावर्णिक मन्वन्तरमें देवीका चरित्र माहात्म्य नाम ९२वां अ० समाप्त

तिरानवेवाँ अध्याय

ऋषिरुवाच

एतत् ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवम्प्रभावा सा देवी ययेदं धार्य्यते जगत् ॥ १ ॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ।
मोह्यन्ते मुहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ॥ २ ॥
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ।
आराधिता सैव नृणां भोग-स्वर्गापवर्गदा ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ।
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ॥ ४ ॥
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ।
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ॥ ५ ॥
सन्दर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ।
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ॥ ६ ॥
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्त्तिं महीमयीम् ।
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्प-धूपाग्नितर्पणैः ॥ ७ ॥
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।
ददतुस्तौ बलिञ्चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥ ८ ॥
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ।
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ ९ ॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आप से देवी के उत्तम माहात्म्य को कहा । यह उस भगवती का प्रभाव है जिसने कि सम्पूर्ण जगत को धारण कर रक्खा है ॥ १ ॥ वही भगवती भगवान् विष्णु की माया है और उसी से तुमको, इस वैश्य को और अन्य विवेकियों को ज्ञान उत्पन्न होताहै तथा उसी से दूसरे लोग मोहित होरहे हैं, हुए हैं और होंगे॥ हे महाराज ! आप उस परमेश्वरी की शरण में जाइये । आराधना करनेपर वह मनुष्यों को ऐश्वर्य स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करती है ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उनके यह वचन सुनकर राजा सुरथ ने उन महाभाग, व्रती ऋषि को प्रणाम किया ॥ ४ ॥ हे क्रौष्टुकि मुनि ! ममत्व तथा राज्यापहरणसे दुःखित होकर वह राजा और वैश्य दोनों तपस्या करने को चले ॥ ५ ॥ अम्बिका के दर्शन करने के लिये वे दोनों नदी के किनारे बैठ गये और परम देवी-सूक्त का जप करने लगे ॥ ६ ॥ उन दोनों ने नदी के किनारे देवी की मिट्टी की प्रतिमा बनाई और पुष्प, धूप, अग्नि आदि से उसका पूजन किया ॥ वे निराहार और नियताहारी होकर देवी में मन लगाकर रहने लगे और वे अपने शरीर से निकाले हुए रुधिर से देवी को बलि देते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार नियम से आराधना करते हुए जब उन्हें तीन वर्ष व्यतीत होगये तब जगत की माता चंडिका देवी प्रकट होकर उनसे बोली ॥ ९ ॥

देव्युवाच

यत् प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत् प्राप्यतां सर्व्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्र चैव निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥११॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्ग-विच्युतिकारकम् ॥१२॥

देव्युवाच

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वराज्यं प्राप्स्यते भवान् ।
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥१३॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ।
सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥१४॥
वैश्यवर्य्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ।
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥१५॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ।
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥१६॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।
सूर्य्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥१७॥

देवी बोली—

हे राजन् तथा कुलनन्दन वैश्य ! जो कुछ मुझसे माँगोगे वह मैं तुमको दूँगी । मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब राजा सुरथ ने दूसरे जन्म में बहुत काल तक राज्य माँगा तथा इस जन्म में भी उसने शत्रुओं का बल नष्ट करके राज्यप्राप्ति की इच्छा प्रकट की ॥ ११ ॥ उस वैश्य ने विरक्त होकर 'यह मेरा है' और 'मैं हूँ' आदि इस सांसारिक बन्धन का विच्छेद करने के तत्त्वज्ञान का वरदान माँगा ॥

देवी बोली—

हे राजन् ! थोड़े ही दिन में तुम अपना राज्य पाओगे और अपने शत्रुओं को मार कर एकछत्र राज्य करोगे ॥ १३ ॥ मरने पर तुम पुनः विवस्वान के पुत्र होकर पृथ्वी पर जन्म लोगे और सावर्णिक मनु के नाम से प्रसिद्ध होगे ॥ १४ ॥ हे वैश्यवर्य ! तुमने भी जो मुझसे वर माँगा है वह तत्व ज्ञानरूप सिद्धि मैं तुमको देती हूँ ॥१५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

देवी उन दोनोंको मनवांछित फल देकर और और उनके भक्ति पूर्वक किये हुए स्तोत्र को सुन कर शीघ्र अन्तर्ध्यान होगई ॥ १६ ॥ देवी से इस प्रकार वर प्राप्त कर क्षत्रियों में श्रेष्ठ राजा सुरथ सूर्य के पुत्र होकर सावर्णिक मनु हुए ॥ १७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय०में सावर्णिकमन्वन्तरमें देवीमाहात्म्य समाप्ति नाम ९३वाँ अ० स० ।

चौरानवेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदं सम्यक् प्रोक्तं मन्वन्तरं तव ।
तथैव देवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम् ॥ १ ॥
उत्पत्तयश्च या देव्या मातृणाञ्च महाहवे ।
तथैव सम्भवो देव्याश्चामुण्डाया यथा भवः ॥ २ ॥
शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधः शुम्भ-निशुम्भयोः ।
रक्तबीजवधश्चैव सर्व्वमेतत् तवोदितम् ॥ ३ ॥
श्रूयतां मुनिशार्द्दूल सावर्णिकमथापरम् ।
दक्षपुत्रश्च सावर्णो भावी यो नवमो मनुः ॥ ४ ॥
कथयामि मनोस्तस्य ये देवा मुनयो नृपाः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि मुनि ! मैंने तुमसे सावर्णिक मंवंतर तथा देवी माहात्म्य और महिषासुर वध को भली भांति वर्णन किया ॥१॥ भगवती की उत्पत्ति, महा युद्ध में शक्तियों का प्रकट होना, तथा उसी प्रकार चामुण्डा आदि देवियों की उत्पत्ति ॥२॥ शिवदूती का माहात्म्य, शुम्भ निशुम्भ का वध तथा रक्तबीज का हनन यह सब मैंने तुमसे कहा ॥३॥ हे मुनिश्रेष्ठ अब दूसरे सावर्णिक मन्वन्तरमें दक्षके पुत्र सावर्ण नाम जो नवें मनु होंगे उनको सुनो ॥ ४ ॥ अब मैं उस मनु के देवता, मुनियों और राजाओं को बतलाता हूँ। उस मन्वन्तर में पारा, मरीचि, भर्ग

पारामरीचिभर्गाश्च सुधर्म्माणस्तथा सुराः ॥ ५ ॥
एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्व्वे द्वादशका गणाः ।
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु सहस्राक्षो महाबलः ॥ ६ ॥
साम्प्रतं कार्त्तिकेयो यो वह्निपुत्रः षडाननः ।
अद्भुतो नाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ॥७॥
मेधातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान् द्युतिमांस्तथा ।
सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथान्यो हव्यवाहनः ॥ ८ ॥
धृष्टकेतुर्वर्हकेतुः पंचहस्तो निरामयः ।
पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान् भूरिद्युम्नो बृहद्भयः ॥ ९ ॥
एते नृपसुतास्तस्य दक्षपुत्रस्य वै नृपाः ।
मनोस्तु दशमस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज ॥१०॥
मन्वन्तरे च दशमे ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः ।
सुखासीना निरुद्धाश्च त्रिप्रकाराः सुराः स्मृताः॥११॥
शतसंख्या हि ते देवा भविष्या भाविनो मनोः ।
यत्प्राणिनां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् ॥१२॥
शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्व्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ।
सप्तर्षींस्तान् निबोध त्वं ये भविष्यन्ति वै तदा॥१३॥
आपोमूर्त्तिर्हविष्मांश्च सुकृतो सत्य एव च ।
नाभागोऽप्रतिमश्चैव वाशिष्ठश्चैव सप्तमः ॥१४॥
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूमिसेनश्च वीर्य्यवान् ।
शतानीकोऽथ वृषभो ह्यनमित्रो जयद्रथः ॥१५॥
भूरिद्युम्नः सुपर्व्वा च तस्यैते तनया मनोः ।
भविष्या धर्म्मपुत्रस्य सावर्णस्यान्तरं शृणु ॥१६॥
विहङ्गमाः कामगाश्च निर्म्माणरतयस्तथा ।
त्रिप्रकारा भविष्यन्ति एकैकस्त्रिंशतो गणाः ॥१७॥
मासर्त्तुर्दिवसा ये तु निर्म्माणरतयस्तु ते ।
विहङ्गमा रात्रयोऽथ मौहूर्त्ताः कामगा गणाः ॥१८॥
इन्द्रो वृषाख्यो भविता तेषां प्रख्यातविक्रमः ।
हविष्मांश्च वरिष्ठश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणिः ॥१९॥
निश्चरश्चानघश्चैव विष्टिश्चान्यो महामुनिः ।
सप्तर्षयोऽन्तरे तस्मिन्नग्निदेवश्च सप्तमः ॥२०॥
सर्व्वत्रगः सुशर्म्मा च देवानीकः पुरुद्वहः ।
हेमधन्वा दृढायुश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः ॥२१॥
द्वादशे रुद्रपुत्रस्य प्राप्ते मन्वन्तरे मनोः ।

और सुधर्मा नाम देवता होंगे ॥ ५॥ ये देवता तीन प्रकार के होंगे और प्रत्येक में बारह-बारह गण होंगे । इनके इन्द्र महाबली सहस्राक्ष होंगे ॥ ६ ॥ इस समय षडानन जो वह्नि-पुत्र कार्तिकेयजी हैं वे उस मन्वन्तर में अद्भुत नाम इन्द्र होंगे ॥ ७ ॥ मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान् तथा सबल और हव्यवाहन ये उस मन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे ॥ ८ ॥ धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और बृहद्भय ॥ ९ ॥ ये राजा लोग उस दक्ष-पुत्र की सन्तान रूप से उस मन्वन्तर में राज्य करेंगे । हे द्विज ! अब दसवें मन्वन्तर का हाल सुनो ॥ १० ॥ दसवें मन्वन्तर में ब्रह्मा के पुत्र धीमान् मनु होंगे । सुखासीन और निरुद्ध नामके तीन प्रकारके देवता उस मन्वन्तर में होंगे ॥११॥ उस मन्वन्तर में देवताओं की संख्या सौ होगी । देवताओं के शतवर्ष की गणना उतनी ही है जितनी कि मनुष्योंकी है ॥ इन्द्र के सब गुणों से युक्त शान्ति नाम इन्द्र उस मन्वन्तर में होगा और अब उस मन्वन्तर में होने वाले सप्तर्षियों को मुझसे सुनो ॥ १३ ॥ आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वाशिष्ठ यही सप्तर्षि होंगे ॥ १४ ॥ सुक्षेत्र, उत्तमौजा भूमिसेन, शतानीक, वृषभ, अनमित्र,जयद्रथ ॥१५॥ तथा भूरिद्युम्न और सुपर्वा ये उस मनुके पुत्रहोंगे अब धर्म के पुत्र सावर्ण का जो ग्यारहवाँ मन्वन्तर होगा उसकोसुनो॥१६॥विहङ्गम,कामग और,निर्माण-रति ये तीन प्रकार के देवता होंगे जिनमें प्रत्येक के तीस तीस गण होंगे॥१७॥ मास, ऋतु और दिन ये निर्माणरति कहलावेंगे । विहङ्गम रात्रियां और कामग गण मुहूर्त कहलावेंगे ॥ १८ ॥ उन देवताओं के प्रसिद्ध पराक्रमी वृषनाम इन्द्र होंगे । हविष्मान्, वरिष्ठ तथा अरुण-पुत्र ऋष्टि ॥ १९ ॥ और निश्चर अनघ, विष्टि तथा अग्निदेव यही सात उस मन्वंतर में सप्तर्षि होंगे ॥२०॥ सर्वत्रगा, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, हेमधन्वा, दृढायु ये सब राजा लोग उस मनु के वंशज होंगे ॥२१॥ द्वादश मन्वन्तर में रुद्र के पुत्र सावर्ण नाम मनु होंगे । उस मन्वन्तर के

सावर्णाख्यस्य ये देवा मुनयश्च शृणुष्व तान् ॥२२॥
सुधर्म्माणः सुमनसो हरिता रोहितास्तथा।
सुवर्णाश्च सुरास्तत्र पञ्चैते दशका गणाः ॥२३॥
तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महाबलः।
सर्व्वैरिन्द्रगुणैर्युक्तः सप्तर्षीनपि मे शृणु ॥२४॥
द्युतिस्तपस्वी सुतपास्तपोमूर्त्तिस्तपोनिधिः।
तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तु तपोधृतिः ॥२५॥
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः।
मित्रवान् मित्रविन्दश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः॥२६॥
त्रयोदशस्य पर्य्याये रौच्याख्यस्य मनोः सुतान्।
सप्तर्षींश्च नृपांश्चैव गदतो मे निशामय ॥२७॥
सुधर्म्माणः सुरास्तत्र सुकर्म्माणस्तथापरे।
सुशर्म्माणः सुरा ह्येते समस्ता मुनिसत्तम ॥२८॥
महाबलो महावीर्य्यस्तेषामिन्द्रो दिवस्पतिः।
भविष्यानथ सप्तर्षीन् गदतो मे निशामय ॥२९॥
धृतिमानव्ययश्चैव तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः।
निर्म्मोहः सुतपाश्चान्यो निष्प्रकम्पश्च सप्तमः॥३०॥
चित्रसेनो विचित्रश्च नयतिर्निर्भयो दृढः।
सुनेत्रः क्षत्रबुद्धिश्च सुव्रतश्चैव तत्सुताः ॥३१॥

देवताओं और मुनियों को मुझसे सुनो ॥ २२ ॥ सुधर्मा, सुमनस, हरित, रोहित और सुवर्ण यह पाँच प्रकार के देवता होंगे जिनमें प्रत्येक प्रकार के दस-दस गण होंगे ॥ २३ ॥ उनका इन्द्र महाबली ऋतधामा होगा जो कि इन्द्र होने के सब गुणों से युक्त होगा। अब उस मन्वन्तर के सप्तर्षियों को मुझसे सुनो ॥२४॥ द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति तथा तपोधृति यही सातों सप्तर्षि होंगे ॥ २५ ॥ देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रविन्द ये सब उस मनु के वंशज राजा होंगे ॥ २६ ॥ अब तेरहवें मन्वन्तर के मनु रौच्य के पुत्रों, सप्तर्षियों और राजाओं को मुझसे सुनो ॥२७॥ हे मुनिसत्तम! सुधर्मा, सुकर्मा, और सुशर्मा यही तीन प्रकार के देवता उस मन्वन्तर में होंगे ॥ २८ ॥ महाबली और पराक्रमी दिवस्पति नाम उनके इन्द्र होंगे, अब उस मन्वंतर के सप्तर्षियों को मुझसे सुनो ॥ २९ ॥ धृतिमान, अव्यय, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प यही सातों उस मन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे ॥३०॥ चित्रसेन, विचित्र, नयति, निर्भय, दृढ़, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत यही उस मनु के पुत्र राजा होंगे ॥ ३१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में रौच्य मन्वन्तर नाम ९५वाँ अध्याय समाप्त।

छियानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

रुचिः प्रजापतिः पूर्व्वं निर्म्ममो निरहङ्कृतः।
अत्रस्तो मितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥
अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम्।
विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरो मुनिम् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पूर्व काल में प्रजापति रुचि निर्मम और निरभिमानी होकर इधर उधर पृथ्वी पर घूमते थे तथा वे शयन भी बहुत कम करते थे ॥ १ ॥ बिना अग्नि, बिना गृह, एक बार भोजन करते हुए, बिना आश्रम, बिना सङ्गति ऐसे उस मुनि को देखकर पितर लोग उससे बोले ॥ २ ॥

पितर ऊचुः

वत्स कस्मात् त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः।
स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशं विना ॥ ३ ॥
गृही समस्तदेवानां पितॄणाञ्च तथार्हणाम्।
ऋषीणामतिथीनाञ्च कुर्व्वन् लोकानुपाश्नुते ॥ ४ ॥

पितर बोले—

हे वत्स! तुमने विवाह करके पुण्य क्यों न किया। विवाह स्वर्ग और मोक्ष का कारण है. विवाह के बिना जीव बन्धन से नहीं छूटता ॥ ३ ॥ गृहस्थी लोग समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और अतिथियों की पूजा करके उत्तम लोकों को

स्वाहोच्चारणतो देवान् स्वधोच्चारणतः पितॄन् ।
विभजत्यन्नदानेन भूताद्यानतिथीनपि ॥ ५ ॥
स त्वं दैवादृणाद्बन्धं बन्धमस्मदृणादपि ।
अवाप्नोषि मनुष्येभ्यो भूतेभ्यश्च दिने दिने ॥ ६ ॥
अनुत्पाद्य सुतान् देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा ।
अकृत्वा च कथं मौढ्यात् सुगतिं गन्तुमिच्छसि ॥ ७ ॥
क्लेशमेकैकं पुत्र मन्यामोऽत्र भवेत् तव ।
मृतस्य नरकं तद्वत् क्लेशमेवान्यजन्मनि ॥ ८ ॥

रुचिरुवाच

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतिस्तथा ।
भवत्यतो मया पूर्व्वं न कृतो दारसंग्रहः ॥ ९ ॥
आत्मनः संयमो योऽयं क्रियते सुनियन्त्रणात् ।
स मुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥ १० ॥
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः ।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्वरं हि तत् ॥ ११ ॥
अनेकभवसम्भूत-कर्म्मपङ्काङ्कितो बुधैः ।
आत्मा सद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः ॥ १२ ॥

पितर ऊचुः

युक्तं प्रक्षालनं कर्त्तुमात्मनो नियतेन्द्रियैः ।
किन्तु मोक्षाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्र वर्त्तसे ॥ १३ ॥
परन्तु दानैरशुभं नुद्यतेऽनभिसन्धितैः ।
फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्व्वकर्म्मशुभाशुभैः ॥ १४ ॥
एवं न बन्धो भवति कुर्व्वतः करुणात्मकम् ।
न च बन्धाय तत् कर्म्म भवत्यनभिसन्धितम् ॥ १५ ॥
पूर्व्वकर्म्म कृतं भोगैः क्षीयतेऽहर्निशं तथा ।
सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम् ॥ १६ ॥
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धैश्च रक्ष्यते ।
न त्वेवमविवेकेन पापपङ्केन गृह्यते ॥ १७ ॥

रुचिरुवाच

।वद्य पठ्यते वेदे कर्म्ममार्गः पितामहाः ।

प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ स्वाहा का उच्चारण करने से देवता, स्वधा कहने से पितर तथा अन्न का भाग देने से भूत और अतिथि आदि तृप्त होते हैं॥ ५ ॥ अतः तुम देवताओं के, हमारे, मनुष्यों के और भूतों के ऋण के बन्धन में दिन प्रतिदिन बंधते हो ॥ ६ ॥ पुत्रों को उत्पन्न किये विना, देवताओं का पूजन किये विना, पितरों का तर्पण किये बिना तुम इस मूर्खता से किस प्रकार उत्तम गति को प्राप्त करोगे ? ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! हम यह जानते हैं कि तुम्हारे विवाह न करने से हमको और तुमको क्लेश होगा । मरनेपर तुम नरक को जाओगे और दूसरा जन्म लेने पर भी तुमको दुःख प्राप्त होगा ॥

रुचि बोले—

विवाह से अत्यन्त दुःख और पाप होता है, और उस पाप से मनुष्य अधोगति को प्राप्त होता है, इसीलिये मैंने विवाह नहीं किया ॥ ९ ॥ भली प्रकार नियन्त्रण करके जो आत्मा का संयम किया जाता है उससे मुक्ति होती है, विवाह करने से ऐसा नहीं हो सकता ॥ १० ॥ विवाह न करने वाले प्रति दिन अपनी आत्मा की ममत्व रूपी कीचड़ को विरक्त चित्तरूपी जलसे धोते हैं ॥ ११ ॥ जितेन्द्रिय बुधजन अनेक जन्मों के कर्म रूपी कीचड़ से सनी हुई आत्मा को सद्वासना रूपी जल से धोते हैं ॥ १२ ॥

पितर बोले—

यह ठीक है कि आत्मा को जितेन्द्रिय होकर स्वच्छ किया जाता है । किन्तु हे पुत्र ! जिस मार्ग का तुम अनुसरण करते हो वह मोक्ष का है ॥ १३ ॥ ऋणों को अदा करने से पाप का क्षय होता है । पूर्व जन्म के किये हुए शुभ और अशुभ कर्मों का उपभोग विना किसी फल की इच्छा के करना चाहिये ॥ १४ ॥ विना कारणके कर्म करनेसे आत्मा को बन्धन नहीं होता । बिना फल की इच्छा से किये हुए कर्म से भी आत्मा को बन्धन नहीं होता ॥ १५ ॥ मनुष्यों का पाप-पुण्यात्मक पूर्व जन्म कृत कर्म सुख-दुःखात्मक भोगोंसे दिन रात क्षीण होता है ॥ १६ ॥ इसी प्रकार बुद्धिमान लोग आत्मा का प्रक्षालन करते हैं और बन्धनों से बचते हैं, और इस प्रकार उनकी आत्मा अविवेक और पापरूपी कीचड़ में नहीं फंसती ॥ १७ ॥

रुचि बोले—

हे पितरो ! यदि वेद-कथित कर्म-मार्ग से

तत् कथं कर्म्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् १८॥

पितर ऊचुः

अविद्या सत्यमेवैतत् कर्म्मणैतन्मृषा वचः।

किन्तु विद्यापरिप्राप्तो हेतुः कर्म्म न संशयः॥१९॥

विहिताकरणात् पुंभिरसद्भिः क्रियते तु यः।

संयमो मुक्तये सोऽन्ते प्रत्युताधोगतिप्रदः॥२०॥

प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानन्तु मन्यते।

विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वन्तु विदह्यसे॥२१॥

अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम्।

अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यापि नो हि सा॥२२॥

तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम्।

मा जन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्य तु लौकिकम्२३॥

रुचिरुवाच

वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः सम्प्रदास्यति।

भार्य्यां तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः॥२४॥

पितर ऊचुः

अस्माकं पतनं वत्स भवतश्चाप्यधोगतिः।

नूनं भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम।

बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वाताहता इव॥२६॥

अविद्या होती है तो किस प्रकार आप मुझे उस मार्ग में प्रेरित करते हैं? ॥१८॥

पितर बोले—

हे वत्स! यह सत्य है कि कर्म-मार्गमें अविद्या होती है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कर्महीं विद्या प्राप्ति का हेतु है॥१९॥ असत् पुरुषों से वेद के विरुद्ध किया जाताहै वह, तथा वह संयम जो ऐसे लोग मुक्ति के लिये करते हैं नरक का देने वाला है॥२०॥ हे वत्स! तुम तो यह मानते हो कि मैं आत्मा को प्रक्षालित करता हूँ परन्तु वस्तुतः तुम विहित कर्म को न करने के पाप से दग्ध होते हो॥ विहित कर्म को करने से अविद्या भी उसी प्रकार उपकार करती है जिस प्रकार कि शोधा हुआ विष अमृत का कार्य करता है। विहित कर्म को छोड़ देने से विद्या भी आत्मा को बन्धन देती है॥२२॥ हे वत्स! इसलिये तुम विधि पूर्वक विवाह करो जिससे कि लौकिक कर्म छोड़ने से तुम्हारा जन्म निष्फल न होजाय॥२३॥

रुचि बोले—

हे पितरो! मैं इस समय वृद्धहूँ, मुझको कौन कन्या देगा? दरिद्री को विवाह करना बड़ा दुष्कर होता है॥२४॥

पितर बोले—

हे वत्स! यदि तुम हमारे कथनानुसार न करोगे तो हमारा पतन और तुम्हारी अधोगति होगी॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकिमुनि! पितर लोग उससे यह कह कर इस प्रकार सहसा अदृश्य होगये जिस तरह कि वायु के लगने से दीपक बुझ जाता है॥२६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें रुचि उपाख्यान नाम ९५वाँ अध्याय स०।

छियानवेवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

स तेन पितृवाक्येण भृशमुद्विग्नमानसः।

कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम्॥१॥

कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्याग्निदीपितः।

चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः॥२॥

किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः।

क्षिप्रं भवेत् मत्पितृणां स चाभ्युदयकारकः॥३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पितरों के वचनों से उद्विग्न चित्त होकर वह विप्रर्षि कन्या की इच्छा करते हुए पृथ्वी पर घूमने लगे॥१॥ कोई स्त्री न मिलने पर वह पितरों के वाक्यों की अग्नि से दग्ध होकर अत्यन्त चिन्ता को प्राप्त हुए और उनका चित्त उद्विग्न होगया॥२॥ वह कहने लगे कि मैं क्या करूं, कहाँ जाऊँ? मुझको स्त्री किस प्रकार मिले जिससे कि

इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ४ ॥
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसः ।
आराधनाय स तदा परं नियममास्थितः ॥ ५ ॥
ततः स्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम्॥ ६ ॥
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् ।
पितॄणां वचनात् तेन यत् कर्त्तुमभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मा चाह रुचिं विप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः ।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान् विप्र समुत्पाद्य क्रियास्तथा॥ ८॥
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।
स त्वं तथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥ ९ ॥
कामश्चैममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् ।
त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितान् ।
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
नद्या विविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम् ॥११॥
तुष्टाव च पितॄन् विप्र स्तवैरेभिस्तथादृतः ।
एकाग्रः प्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२॥

रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धे ये वसन्त्यधिदेवताः ।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः ॥१३॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् ।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५॥
नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि ।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम्॥१६॥
नमस्येऽहं पितॄन् मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
श्रद्धयाऽभीष्ट-लोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥१७॥

पितरों का उद्धार हो ॥३॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन महात्मा को यह मति उपजी कि कमल-योनि ब्रह्माजी की तपस्या द्वारा आराधना कीजाय ॥ ४ ॥ फिर नियम पूर्वक उन्होंने सौ दिव्य वर्षों तक तप करके ब्रह्मा की आराधना की ॥ ५ ॥ तब जगत्पिता ब्रह्माजी ने उसको अपना दर्शन दिया और कहा, "मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारी इच्छा क्या है यह मुझे बताओ" ॥ ६ ॥ फिर रुचि ने जगत की गति ब्रह्माजी को प्रणाम कर पितरों के वचनों के अनुसार उनको जो कुछ अभीष्ट था वह कह सुनाया और ब्रह्माजी उनकी इच्छा को सुनकर बोले ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—

हे विप्र ! तुम प्रजापति होगे और प्रजा उत्पन्न करोगे । प्रजाओं को उत्पन्न करके तुम विहित क्रियाओं को करके सिद्धि को प्राप्त करोगे अतः तुम पितरों के कथनानुसार स्त्री ग्रहण करो ॥ ९ ॥ स्त्री की इच्छा करके तुम पितरों का पूजन करो । वही पितर संतुष्ट होकर तुम्हारे इच्छित पत्नी और पुत्रों को प्रदान करेंगे ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनि क्रौष्टुकिजी ! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी के वचन सुनकर रुचि ने नदी के किनारे पितरों का तर्पण किया ॥ ११॥ फिर एकाग्र चित्त होकर और भक्ति से प्रणाम करते हुए रुचि ने आदर पूर्वक स्तोत्रों से पितरों को सन्तुष्ट किया ॥ १२ ॥

रुचि बोले—

मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो श्राद्धमें देवता होकर निवास करते हैं और जिनका कि श्राद्धों में देवता भी स्वधा कहकर तर्पण करते हैं॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ जिनका कि स्वर्गमें भुक्ति और मुक्तिकी इच्छा करनेवाले महर्षि लोग भक्ति पूर्वक श्राद्धों से तर्पण करते हैं ॥ १४ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जिनको कि स्वर्ग में सिद्ध लोग श्राद्धों में दिव्य और उत्तम उपहारों से तृप्त करते हैं ॥ १५ ॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ जिनको ऋद्धि की इच्छा करते हुए परम एकाग्र चित्त होकर गुह्यक भी भक्ति पूर्वक पूजते हैं ॥ १६ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जिनकी कि पृथ्वी पर मनुष्य लोग सदैव अभीष्ट लोकों की प्राप्ति की इच्छा से श्रद्धा पूर्वक

नमस्येऽहं पितृन् विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८॥
नमस्येऽहं पितृन् ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ॥१९॥
नमस्येऽहं पितृन् विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥२०॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान्।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥२१॥
नमस्येऽहं पितृन् वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्प-धूपान्न-वारिभिः ॥२२॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः।
सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः २३॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैः पाताले ये महासुरैः।
सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भ-मदैः सदा ॥२४॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले।
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥२५॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान् सदा।
तत्रैव विधिवन्मन्त्र-भोगसम्पत्समन्वितैः ॥२६॥

पितृन् नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोके च तथान्तरीक्षे। महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥२७॥

पितृन् नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः। यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८॥

पितृन् नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ। प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥२९॥

तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान्। सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान् पशून् स्वानि बलं गृहाणि ॥३०॥

सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने

श्राद्धों में अर्चना करते हैं ॥ १७ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो कि ब्रह्मलोक को प्राप्त कराते हैं और जिनको कि पृथ्वीपर अभीष्ट साधन के लिये ब्राह्मण लोग पूजते हैं ॥१८॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जिनको कि वनवासी, निष्पाप तपस्वी और यताहारी लोग श्राद्ध करके वन के फूलों से पूजते हैं ॥१९॥ मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ जिनको कि निष्ठा व्रत वाले ब्राह्मण और जितेन्द्रिय लोग समाधियों से सदा तृप्त करते हैं॥ मैं उन त्रिलोकीका फल देनेवाले पितरोंको प्रणाम करता हूँ जिनको क्षत्रिय लोग अशेष कव्य पदार्थों से विधि पूर्वक श्राद्ध करके तृप्त करते हैं ॥ २१ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जिनको अपने कामों में लगे हुए वैश्य लोग पृथ्वी पर सदा पुष्प धूप, अन्न, जल आदि से तृप्त करते हैं ॥ २२ ॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ जो इस संसार में सुकाली नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनको कि शूद्र लोग भक्तिपूर्वक श्राद्धों में तृप्त करते हैं ॥२३॥ मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ जिनको कि पातालमें महान् राक्षस लोग दम्भ और मद छोड़ कर स्वधा कहकर श्राद्धों से तृप्त करते हैं ॥ २४ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जिनको कि रसातल में अनेक कामनाओं की इच्छाओं से नाग लोग विधि पूर्वक अनेक भोगों से पूजते हैं ॥ २५ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जिनको कि वहाँ रसातल में ही सर्प सदा मन्त्र, भोग और सम्पत्तियों से विधिवत् तृप्त किया करते हैं ॥ २६॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करताहूँ जो कि देवलोक आकाश और पृथ्वीतल पर रहते हैं और जो कि देवता आदिकों से पूजित हैं। वे पितर मेरे अर्पण किये हुए जल को ग्रहण करें ॥ २७ ॥ मैं परमात्मा स्वरूप उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो विमानों पर चढ़कर अन्तरिक्ष में निवास करते हैं और जिनको कष्ट से मुक्ति पानेके अभिप्रायसे योगीश्वर विमल चित्त से पूजते हैं ॥ २८ ॥ मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ जो कि स्वर्ग में रहते हैं और स्वधाभोजी हैं तथा जो कामना वालों की इच्छा पूरी करते और निष्काम लोगों को मुक्ति प्रदान करते हैं ॥२९ ॥ इससे वे सब पितर तृप्त हों जो कि इच्छा करने वालों की सब इच्छायें पूर्ण करते हैं और देवत्व, इन्द्रत्व तथा इससे भी अधिक ब्रह्मत्व तथा पुत्र, पशु बल और गृह आदि प्रदान करते हैं ॥ ३० ॥ वे पितर जो चन्द्रमा की किरणों

च सदा वसन्ति। तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयै-र्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥३१॥

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः। ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैः ॥३२॥

ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्य-मनोहरैश्च । कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ।३३॥

कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषाममरार्चितानाम्। तेषान्तु सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४॥

दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु। ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम् ॥३५॥

पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणाञ्च नवार्कवर्णाः। तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ॥३६॥

तेऽस्मिन् समस्ता मम पुष्पगन्धधूपान्न-तोयादि निवेदनेन। तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३७॥

ये देवपूर्व्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि । तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३८॥

रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान् निर्नाशयन्त-स्त्वशिवं प्रजानाम्। आद्याः सुराणाममरेशपूज्या-स्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३९॥

अग्निष्वात्ता वर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन् पितरस्तर्पिता मया॥४०॥
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम्।
तथा वर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ॥४१॥
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः।
रक्षो-भूत-पिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२॥
सर्व्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे।
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्म्मो धन्यः शुभाननः।

और सूर्य की ज्योतिमें तथा श्वेत विमानों में सदैव निवास करते हैं इन अन्न, जल, गन्ध आदिसे तृप्त होकर पुष्ट हों ॥३१॥ जो पितर अग्नि में हविष्य प्रदान करने से तृप्त होतेहैं तथा जो ब्राह्मणके शरीर में स्थित होकर भोजन करते हैं और जो पिण्ड दान से प्रसन्न होते हैं वे पितृ लोग इन अन्न और जलों से सन्तुष्ट हों॥ ३२॥ जो पितर गैंडेके मांस से अथवा देवताओं के दिये हुए काले तिलों से अथवा दिव्य मुहूर्त में महर्षियों के दिये हुए शाक से प्रसन्न होते हैं वे यहाँ मुझपर प्रसन्न हों ॥३३॥ जो पितर लोग देवताओं से पूजित होकर अशेष कव्यों को अभीष्ट मानते हैं वे मेरे सान्निध्य से पुष्प, गन्ध तथा अन्न आदि को ग्रहण करें ॥ ३४॥ जो पितर लोग नित्य-प्रति अर्घ्य ग्रहण करते हैं तथा पृथ्वी पर जिनकी अभ्युदय काल में अष्टका, मासान्त और वर्ष के अन्त की पूजा होती है, वे पितर यहाँ तृप्ति को प्राप्त हों ॥३५॥ जो पितर लोग चन्द्रमा के समान प्रकाशित होकर ब्राह्मणों से, बाल सूर्य की तरह ज्योतिष्मान् होकर क्षत्रियों से, सुवर्ण के समान कान्तियुक्त होकर वैश्यों से और श्यामवर्ण होकर शूद्रों से पूजित हैं ॥ ३६ ॥ वे सब मेरे पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न, जल आदि के निवेदन से तथा अग्नि में होम करने से तृप्त हों, मैं उन पितरों को सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ३७ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो अग्नि में हवन किये हुए कव्य को खाते हैं और जो तृप्त होकर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ३८ ॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जो राक्षसों, भूतों और प्रचण्ड दैत्यों का नाश करके प्रजा का कल्याण करते हैं। जो पितर कि देवताओं के पूर्ववर्ती और उनसे पूज्य हैं वे तृप्त हों ॥३९॥ वे पितर जोकि अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, आज्यपा और सोमपा हैं वे इस श्राद्ध में मुझसे तर्पित होकर तृप्ति को प्राप्त हों ॥४०॥ अग्निष्वात्ता पितर जो बर्हिषद कहलाते हैं मेरी दक्षिण दिशा में रक्षा करें॥ ४१ ॥ आज्यपा पितर पश्चिम दिशा में, तथा सोमपा उत्तर दिशा में राक्षस, भूत, पिशाच तथा असुरों से मेरी रक्षा करें ॥ ४२ ॥ उन सब पितरों के स्वामी यमराज मेरी रक्षा करें। विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद,

भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव ॥४३॥
कल्याणः कल्यताकर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः ।
कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ॥४४॥
वरो वरेण्यो वरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ।
विश्वपाता तथा धाता सप्तैवैते तथा गणाः ॥४५॥
महान् महात्मा महितो महिमावान् महाबलः ।
गणाः पंच तथैवैते पितृणां पापनाशनाः ॥४६॥
सुखदो धनदश्चान्यो धर्म्मदोऽन्यश्च भूतिदः ।
पितृणां कथ्यते चैतत् तथा गणचतुष्टयम् ॥४७॥
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदा हितम् ॥४८॥

भूतिकृत् और भूति पितरों के ये नौ गण ॥ ४३ ॥ कल्याण, कल्यताकर्त्ता, कल्य, कल्यतराश्रय, कल्याणहेतु और अनघ, ये छःहों गण ॥ ४४ ॥ वर वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपाता तथा धाता ये पितरों के सात गण ॥ ४५ ॥ महान्, महात्मा महित, महिमावान् और महाबल ये पापनाशक पितरों के पाँच गण ॥ ४६ ॥ सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद ये पितरों के चार गण ॥ ४७ ॥ इस प्रकार इकत्तीस पितृगणों से सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। ये सब पितरगण तृप्त होकर के सदा मेरी रक्षा करें ॥४८॥

इति श्रीमार्कण्डेय०में रुचि-उपाख्यानमें रुचिकृत पितृ-पुरुष स्तोत्र कथननाम ९६वाँ अ० स० ।



सतानवेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः ।
प्रादुर्ब्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥ १ ॥
तद्दृष्ट्वा सुमहत् तेजः समासाद्य स्थितं जगत् ।
जानुभ्यामवनिं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥ २ ॥

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्त्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥ ३ ॥
इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्ष-मारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान् ॥ ४
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान् नमस्याम्यहं सर्व्वान् पितॄनप्सूदधावपि ॥ ५ ॥
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥६ ॥
देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्व्वलोकनमस्कृतान् ।
अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ॥ ७ ॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ।

मार्कण्डेयजी बोले—

रुचि के इस प्रकार स्तुति करने पर एक तेज-समूह सहसा प्रगट हुआ और आकाश में व्याप्त होगया ॥ १ ॥ उस महान् तेज को जगत् में फैला हुआ देखकर रुचि ने पृथ्वी पर घुटने टेककर यह स्तोत्र गाया ॥ २ ॥

ऋषि बोले—

मैं अर्चित, अमूर्त, दीप्त-तेज वाले ध्यानी और दिव्यचक्षु वाले पितरों को नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ मैं उन अभिलाषा पूर्ण करने वाले पितरों को नमस्कार करता हूँ जो इन्द्र, दक्ष, मारीच, सप्तर्षि तथा अन्य देवताओं तक लेजाते हैं ॥४॥ मनु आदि मुनीन्द्रों और सूर्य चन्द्रमा तक लेजाने वाले तथा जल और समुद्र में रहनेवाले पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ मैं हाथ जोड़कर उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो नक्षत्र, गृह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथ्वी आदि प्राप्त कराते हैं ॥ मैं हाथ जोड़ कर उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो देवता और ऋषियों के पिता हैं तथा जिनको सब जगत् नमस्कार करता है और जो अक्षयफल के देनेवाले हैं ॥ ७ ॥ मैं हाथ जोड़ कर प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण और योगेश्वर पितरों को प्रणाम करता हूँ ॥८॥ मैं सातों लोक के सातों गणों

स्वयम्भुवं नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥ ९ ॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्त्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥१०॥
अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितॄनहम् ।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥११॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥१२॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥१३॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसा मुनिसत्तम ।
निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥१४॥
निवेदितञ्च यत् तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथ स तान् ददृशे पुरतः स्थितान् ॥१५॥
प्रणिपत्य पुनर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥१६॥
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ।
वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ॥१७॥

रुचिरुवाच

साम्प्रतं सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम ।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥१८॥

पितर ऊचुः

अत्रैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ।
तस्याञ्च पुत्रो भविता भवतो मनुरुत्तमः ॥१९॥
मन्वन्तराधिपो धीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
रुचे रौच्य इति ख्यातिं यो यास्यति जगत्त्रये ॥२०॥
तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥२१॥
त्वंच प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ।
क्षीणाधिकारो धर्मज्ञ ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२२॥
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मान् स्तोष्यति भक्तितः ।
तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञानं तथोत्तमम् ॥२३॥
शरीरारोग्यमर्थञ्च पुत्रपौत्रादिकं तथा ।
...द्भिः संततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥२४॥

तथा स्वायम्भुव और योगचक्षु ब्रह्माजी को प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥ मैं सोम और योगमूर्ति को धारण करने वाले पितरों तथा समस्त संसार के पितर चन्द्रमा को प्रणाम करता हूं ॥ १० ॥ मैं अग्नि रूप उन दूसरे पितरों को नमस्कार करता हूं जिनसे कि यह सम्पूर्ण जगत् अग्नीषोममय होरहाहै ॥११॥ वे पितर जो कि तेजमें चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि के समान हैं तथा जगत्स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं ॥ उन सब योगी, नियतात्मा और स्वधाभोजीपितरों को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ, वे मुझ पर प्रसन्न हों ॥ १३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि मुनि ! रुचि के इस प्रकार स्तुति करने पर पितरगण उस तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए निकले ॥ १४ ॥ रुचि ने जो कुछ पुष्प, गन्ध, चन्दन आदि निवेदन किया था रुचि ने उस सब से उनको भूषित हुआ अपने सामने खड़े हुए देखा ॥ १५॥ फिर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर और प्रणाम करके रुचि उनकी आदर पूर्वक पृथक्-पृथक् पूजा करने लगे और आपको प्रणाम है ऐसा बार-बार कहनेलगे ॥१६॥ तब प्रसन्न होकर पितरों ने मुनिश्रेष्ठ रुचि से कहा कि वर मांगो । इसपर वह प्रणामकर उनसे बोले ॥१७ ॥

रुचि बोले—

इस समय ब्रह्माजी ने मुझे सृष्टि रचनेके लिये आदेश किया है अतः मैं प्रजावती, सुन्दरी पतिव्रता स्त्री की अभिलाषा करता हूँ ॥ १८ ॥

पितर बोले—

यहाँ ही शीघ्र तुमको एक सुन्दरी स्त्री मिलेगी उससे तुम्हारा एक पुत्र होगा जो कि उत्तम मनु होगा ॥१९॥ वह मन्वन्तरका स्वामी और बुद्धिमान् तथा तुम्हारे नाम परही रौच्य नामसे तीनों लोकों में विख्यात होगा ॥ २० ॥ उसके भी महाबलवान, पराक्रमी और पृथ्वी-पालक बहुत से महात्मा पुत्र होंगे ॥ २१ ॥ तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करोगे । हे धर्मज्ञ ! उस अधिकार के क्षीण होने पर तुम सिद्ध हो जाओगे ॥२२॥ इस स्तोत्र से जो मनुष्य भक्ति पूर्वक हमारी स्तुति करेगा उससे सन्तुष्ट होकर हम उसे भोग और उत्तम आत्मज्ञान ॥२३॥ शरीर की आरोग्यता, धन, पुत्र, पौत्रादिक देंगे । जिन लोगोंको कुछ आकांक्षा हो उन्हें निरन्तर इस स्तोत्रसे हमारी स्तुति करनी

श्राद्धे च य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ।
पठिष्यति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः॥२५॥
स्तोत्रश्रवणसम्प्रीत्या सन्निधाने परे कृते ।
अस्माकमक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥२६॥
यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ।
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥२७॥
अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतम् ।
अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा ॥२८॥
अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य वा कृतम् ।
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् ॥२९॥
यत्रैतत् पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ।
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥३०॥
हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत् प्रयच्छति ।
शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम्॥३१॥
वसन्ते षोड़श समास्तृप्तये श्राद्धकर्म्मणि ।
ग्रीष्मे च षोड़शैवैतत् पठितं तृप्तिकारणम् ॥३२॥
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ।
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ॥३३॥
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ।
अस्माकमेतत् पुरुषैस्तृप्तिं पंचदशाब्दिकीम् ॥३४॥
यस्मिन् गृहे च लिखितमेतत् तिष्ठति नित्यदा ।
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ॥३५॥
तस्मादेतत् त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः ।
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिहेतुकम् ॥३६॥

चाहिये ॥२४॥ हमको प्रसन्न करने वाले इस स्तोत्र को यदि मनुष्य श्राद्ध में भोजन करते हुए ब्राह्मणों के आगे खड़ा होकर भक्तिपूर्वक पढ़े तो ॥ २५॥ इस स्तोत्र के सुनने को हम प्रसन्न होकर वहाँ रहेंगे और हमारा वह श्राद्ध अक्षय होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ चाहे श्राद्ध में पण्डित न हो, अथवा कोई विघ्न होजाय, अथवा अन्यायसे संचित धन से श्राद्ध किया जाय ॥ २७ ॥ तथा चाहे श्राद्ध के अयोग्य और जूंठे पदार्थों से उसको सम्पन्न किया जाय और उसे कुसमय, कुदेश और बिना विधि के ही किया जया ॥ २८॥ अथवा चाहे उसे श्रद्धा के बिना, दम्भ का आश्रय लेकर ही किसी मनुष्य ने किया हो परन्तु ऐसे श्राद्ध से भी यदि उसमें यह स्तोत्र पढ़ा जायगा तो हमारी तृप्ति होजायगी ॥ २९ ॥ हमको सुख देने वाला यह स्तोत्र जिस श्राद्ध में पढ़ा जाता है उससे हमारी बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है ॥ ३० ॥ हेमन्त ऋतु में श्राद्ध करके इस स्तोत्र को पढ़ने से हमारी बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है तथा शिशिर ऋतु में ऐसा करने से यह स्तोत्र चौबीस वर्ष तक हमको तृप्त रखता है ॥ ३१ ॥ वसन्त ऋतु में श्राद्ध करके इस स्तोत्र को पढ़ने से सोलह वर्ष तक और उसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में भी ऐसा करने से यह स्तोत्र हमको सोलह वर्ष तक तृप्त रखता है ॥ ३२ ॥ हे रुचि ! यदि श्राद्ध में कर्ता को विकलता होजाय, तो भी इस स्तोत्र की साधना से और वर्षा ऋतु में श्राद्ध करके इसको पढ़ने से हमारी अक्षय तृप्ति होती है ॥ ३३ ॥ शरद ऋतु में श्राद्ध-समय पढ़ा हुआ यह स्तोत्र हम लोगों को पन्द्रह वर्ष तक तृप्ति-कारक है ॥ ३४ ॥ जिस घर में कि इस स्तोत्र को लिख कर रक्खा जायगा वहाँ हम श्राद्ध में हर समय समीप रहेंगे ॥ ३५ ॥ इसलिये हे महाभाग ! तुमको श्राद्ध में भोजन करते हुए ब्राह्मणों के आगे खड़े होकर इस स्तोत्रको हमारी पुष्टिके लिये सुनाना चाहिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण के रौच्य मन्वन्तर में पितृवर-प्रदान नाम ९७वाँ अ० समाप्त ।

अट्ठानवेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्मान्नदीमध्यात् समुत्तस्थौ मनोरमा ।
प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सराः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके अनन्तर नदी के मध्यमें से एक सुन्दर और मनोहर अप्सरा प्रम्लोचा नाम निकली ॥१॥

सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् ।
प्रश्रयावनता सुभ्रूः प्रम्लोचा वै वराप्सराः ॥ २ ॥
अतीव रूपिणी कन्या मत्सुता तपतां वर ।
जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥ ३ ॥
तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेति तेन साप्युक्ता तस्मात् तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उज्जहार ततः कन्यां मालिनीं नाम नामतः ॥ ५ ॥
नद्याश्च पुलिने तस्मिन् स रुचिर्मुनिसत्तमः ।
जग्राह पाणिं विधिवत् समानाय्य महामुनीन् ॥ ६ ॥
तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महामतिः ।
रौच्योऽभवत् पितुर्नाम्ना ख्यातोऽत्र वसुधातले ॥७॥
तस्य मन्वन्तरे देवास्तथा सप्तर्षयश्च ये ।
तनयाश्च नृपाश्चैव ते सम्यक् कथितास्तव ॥ ८ ॥
धर्म्मवृद्धिस्तथारोग्यं धनधान्यसुतोद्भवः ।
नृणां भवत्यसन्दिग्धमस्मिन् मन्वन्तरे श्रुते ॥ ९ ॥
पितृस्तव तथा श्रुत्वा पितृणाञ्च तथा गणान् ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति तत्प्रसादान्महामुने ॥१०॥

वह सुन्दर अप्सरा प्रम्लोचा विनय पूर्वक मधुर वाणी से महात्मा रुचि से बोली ॥ २ ॥ मेरी एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या है जो कि वरुण के पुत्र महात्मा पुष्कर से उत्पन्न हुई है ॥ ३ ॥ उस सुन्दर वर्ण वाली कन्या को आप पत्नी रूप से ग्रहण करें, उससे आपके एक पुत्र महाबुद्धिमान् मनु होगा ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

'ऐसा ही होगा' इस प्रकार रुचि के कहने पर उस अप्सरा ने मालिनी नाम एक सुन्दर कन्या को जल में से निकाला ॥ ५ ॥ मुनिवर रुचि ने बहुत से मुनियों को बुला कर नदी के किनारे विधिवत् उस कन्या से पाणिग्रहण किया ॥ ६ ॥ उस कन्या से उसके महाबलवान् और बुद्धिमान् एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि पृथ्वी पर पिता के नाम पर रौच्य नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ उसके मन्वन्तर में देवता, सप्त ऋषि तथा उसके पुत्र जो राजा लोग हुए उनको मैं भली प्रकार तुम से कह चुका हूँ ॥ ८ ॥ इस मन्वन्तर के सुनने से मनुष्यों के लिये निस्संदेह धर्म की वृद्धि, आरोग्य, धन, धान्य और पुत्रादि की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ हे महामुनि क्रौष्टुकिजी ! पितरों तथा गणों की स्तुति सुनने से उनके प्रसाद से सब कामनायें सफल होती हैं ॥१०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणके रौच्य मन्वन्तर में मालिनी परिणय नाम ९८वां अ० समाप्त ।

निन्यानवेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः परन्तु भौत्यस्य समुत्पत्तिं निशामय ।
देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान् ॥ १ ॥
बभूवाङ्गिरसः शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः ।
चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥ २ ॥
तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववात्रतिनिष्ठुरम् ।
नातितापं रविश्चक्रे पर्ज्जन्यो नातिकर्दमम् ॥ ३ ॥
नातिशीतंच शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः ।
चकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः ॥ ४ ॥
ऋतवश्च क्रमं त्यक्त्वा वृक्षेष्वाश्रमजन्मसु ।
पुष्पफलं चक्रुराज्ञया सार्व्वकालिकम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद भौत्य मनु की उत्पत्ति तथा उनके मन्वंतर में जो देवता, ऋषि और उनके पुत्र राजा लोग हुए उनको सुनो ॥१॥ अङ्गिरा मुनिके शिष्य भूति बड़े क्रोधी थे। वे तनिक बात पर शाप देने के लिये उद्यत होजाते तथा बड़े कटुवादी थे ॥ २॥ उनके भयसे उनके आश्रम पर पवन कोई उत्पात नहीं करता था, सूर्य अधिक ताप नहीं करते तथा मेघ इतना जल न बरसाते जिससे कीचड़ हो ॥ उन क्रोधी मुनि के भय से चंद्रमा पूर्ण होकर भी अधिक शीत न करता था ॥ ४ ॥ ऋतुयें भी उनकी आज्ञा से अपने क्रमको छोड़कर आश्रम के आस-पासके वृक्षों में सब कालके फूल और फल दिया

मुहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः ।
कमण्डलुगताश्चैव भूतेर्भीता महात्मनः ॥ ६ ॥
नातिक्लेशसहो विप्र सोऽभवत् कोपनो भृशम् ।
अपुत्रश्च महाभागः स तपस्यकरोन्मनः ॥ ७ ॥
पुत्रकामो यताहारः शीतवातानलाहतः ।
तपस्यामि विचिन्त्येति तपस्येव मनो दधे ॥ ८ ॥
तस्येन्दुर्नातिशीताय नातितापाय भास्करः ।
अभवन्मातरिश्वा च ववौ नाति महामुने ॥ ९ ॥
आपीड्यमानो द्वन्द्वैश्च स भूतिर्मुनिसत्तमः ।
अनवाप्याभिलापं तं तपसः संन्यवर्त्तत ॥१०॥
तस्य भ्राता सुवर्चाभूद्यज्ञे तेनाभिमन्त्रितः ।
यियासुः शान्तिनामानं शिष्यमाह महामतिम्॥११॥
प्रशान्तमक्षमतिमं विनीतं गुरुकर्म्मणि ।
सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् ॥१२॥

भूतिरुवाच

अहं यज्ञं गमिष्यामि भ्रातुः शान्ते सुवर्चसः ।
तेनाहूतस्त्वया चेह यत् कर्त्तव्यं शृणुष्व तत् ॥१३॥
प्रति जागरणं वह्नेस्त्वया कार्य्यं ममाश्रमे ।
तथा तथा प्रयत्नेन यथाग्निर्न शमं व्रजेत् ॥१४॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याज्ञाप्य तथेत्युक्तो गुरुः शिष्येण शान्तिना ।
जगाम यज्ञं तं भ्रातुराहूतः स यवीयसा ॥१५॥
स च शान्तिर्वनाद्यावत् समित्पुष्पफलादिकम् ।
उपानयति भृत्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मनः ॥१६॥
अन्यच्च कुरुते कर्म्म गुरुभक्तिवशानुगः ।
प्रशान्तस्तावदनलो योऽसौ भूतिपरिग्रहः ॥१७॥
तं दृष्ट्वा सोऽनलं शान्तं शान्तिरत्यन्तदुःखितः ।
भीतश्च भूतेर्बहुधा चिन्तामाप महामतिः ॥१८॥
किं करोमि कथं वात्र भवितागमनं गुरोः ।
मयाद्य प्रतिपत्तव्यं किं कृते सुकृतं भवेत् ॥१९॥
प्रशान्ताग्निमिमं धिष्ण्यं यदि पश्यति मे गुरुः ।
ततो मां विषमे ह्यद्य व्यसने सन्नियोक्ष्यति ॥२०॥
यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थाने करोमि तत् ।
सर्व्वं प्रत्यक्षदृग्भस्म सोऽवश्यं मां करिष्यति ॥२१॥

करते थे ॥ ५ ॥ जल भी महात्मा भूति के भय से उसके आश्रम के पास तथा कमण्डलु में सदा भरा रहता था ॥६॥ हे विप्र क्रौष्टुकिजी ! वह क्लेश को सहन न करता तथा उसको अत्यन्त क्रोध बना रहता था। पुत्र न होने के कारण उस महाभाग ने तपस्या करने का विचार किया ॥ ७ ॥ पुत्र की इच्छासे जाड़ा, गर्मी, वायु सहकर और मिताहारी रहकर तपस्या करूँगा ऐसा विचार किया। हे क्रौष्टुकि मुनि ! उसके तपस्या करते हुए न चंद्रमा ने अत्यन्त शीतलता उत्पन्नकी और न सूर्य ने अति उष्णता, तथा वायु ने भी कोई उत्पात न किया ॥ ९ ॥ क्लेशों को सहकर तपस्या करने पर भी भूति मुनि की अभिलाषा पूर्ण न हुई तब उन्हों ने तपस्या करना छोड़ दिया ॥ १० ॥ तब उनके भाई सुवर्चा के यहां यज्ञ हुआ और निमन्त्रित होने पर उन्होंने वहाँ जाने की इच्छा से अपने शान्ति नामक शिष्य से कहा ॥११॥ वह शान्ति सतोगुणी, विनीत, गुरुकर्म में तत्पर, शुभ कर्म में रत और उदार था ॥१२॥

भूति बोले—

हे शान्ति ! अपने भाई सुवर्चा के निमंत्रण के कारण मैं उसके यज्ञ में जाऊँगा, अब जो तुमको करना है वह सुनो ॥१३॥ मेरे आश्रम पर अग्नि को जागृत रखना तुम्हारा कार्य होगा, तुम प्रत्येक प्रयत्न ऐसा करना जिससे अग्नि शांत न होनेपावे॥१४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस आज्ञा को सुनकर शिष्य शान्ति ने कहा कि ऐसा ही होगा। और तब भूति मुनि भाई के निमंत्रण पर उसके यज्ञ को चले गये ॥ १५॥ शांति भी वन से समिधा और फल, फूल लाकर गुरुदेव की आज्ञानुसार कार्य करने लगे ॥ १६ ॥ गुरु की भक्ति के वशवर्ती होकर उन्होंने दूसरा कर्म भी किया परन्तु भूति से परिग्रह की हुई अग्नि किसी प्रकार से शान्त होगई ॥ १७ ॥ उस अग्निको बुझा हुआ देखकर शान्ति को बड़ा दुःख हुआ और वह भूति के डर से अत्यन्त चिन्तित हुए ॥ १८ ॥ वे कहने लगे मैं क्या करूँ, गुरु के आगमन पर क्या उत्तर दूँगा, अब मैं क्या करूँ जिससे कि सुकृत हो ? ॥ १९ ॥ जब गुरु इस अग्नि को बुझा हुआ देखेंगे तो वे मुझपर क्रोध करेंगे जिससे मुझे बड़ा दुःख होगा ॥ २० ॥ यदि इस अग्नि के स्थान में दूसरी अग्नि लाकर रक्खूं तो सर्वदर्शी मेरे गुरु अवश्य ही मुझको भस्म कर डालेंगे ॥२१॥ मैं बड़ा

सोऽहं पापो गुरोस्तस्य निमित्तं कोप-शापयोः ।
तथात्मानं न शोचामि यथा पापं कृतं गुरोः ॥२२॥
दृष्ट्वा प्रशान्तमनलं नूनं शप्स्यति मां गुरुः ।
अथवा पावकः क्रुद्धस्तथावीर्य्यो हि स द्विजः॥२३॥
यस्य प्रभावाद्विभ्यन्तो देवास्तिष्ठन्ति शासने ।
कृतागसं स मां युक्त्या कया नाधर्षयिष्यति ॥२४॥

मार्कण्डेय उवाच

बहुधैवं विचिन्त्यासौ भीतस्तस्य सदा गुरोः ।
ययौ मतिमतां श्रेष्ठः शरणं जातवेदसम् ॥२५॥
स चकार तदा स्तोत्रं सप्तार्च्चेर्यतमानसः ।
स चैकचित्तो मेदिन्यां न्यस्तजानुः कृताञ्जलिः॥२६॥

शान्तिरुवाच

ओं नमः सर्व्वभूतानां साधनाय महात्मने ।
एकद्विपञ्चधिष्ण्याय राजसूये षडात्मने ॥२७॥
नमः समस्त देवानां वृत्तिदाय सुवर्च्चसे ।
शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः ॥२८॥
त्वं मुखं सर्व्वदेवानां त्वयात्तं भगवान् हविः ।
प्रीणयत्यखिलान् देवान् त्वत्प्राणाः सर्व्वदेवताः २९
हुतं हविस्त्वय्यमलमेधत्वमुपगच्छति ।
ततश्च जलरूपेण परिणाममुपैति यत् ॥३०॥
तेनाखिलौषधीजन्म भवत्यनिलसारथे ।
ओषधीभिरशेषाभिः सुखं जीवन्ति जन्तवः ॥३१॥
वितन्वते नरा यज्ञान् त्वत्सृष्टास्वोपधीषु च ।
यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक ॥३२॥
आप्याय्यन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन ।
अतः सर्व्वस्य योनिस्त्वं वह्ने सर्व्वमयस्तथा ॥३३॥
देवता दानवा यक्षा दैत्या गन्धर्व्वराक्षसाः ।
मानुषाः पशवो वृक्षा मृग-पक्षि-सरीसृपाः ॥३४॥
आप्याय्यन्ते त्वया सर्व्वे संवर्ध्यन्ते च पावक ।
त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम्॥३५॥
अपः सृजसि देव त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः ।
पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम्॥३६॥
देवेषु तेजोरूपेण कान्त्या सिद्धेष्ववस्थितः ।

पापी हूँ जो कि गुरु के क्रोध और शापका निमित्त हुआ। मैंने उस बात को न सोचा जिससे यह पाप हुआ ॥ २२ ॥ इस अग्नि को बुझा हुआ देख कर गुरु मुझको शाप देंगे और मैं उनके बल से इस प्रकार भस्म हो जाऊंगा जिस प्रकार क्रुद्ध होकर अग्नि प्रत्येक वस्तु को भस्म कर देती है ॥ जिसके प्रभाव से देवता लोग भी डर कर शासन में रहतेहैं ऐसे गुरुका मुझे शाप न लगे वह उपाय कौनसा है ॥२४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

गुरु के डरसे बहुत चिन्तित होकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ शान्ति मुनि ने अग्नि की शरण ली ॥ २५ ॥ वे एकाग्र चित्त होकर, घुटने पृथ्वी पर टेक कर और हाथ जोड़कर अग्नि की स्तोत्रों से स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥

शान्ति बोले—

सब जीवों के साधक, महात्मा एकद्विपंच-स्थानी, राजसूय यज्ञ में षड़ात्मा अग्नि को प्रणाम है ॥२७॥ मैं उस अग्नि को प्रणाम करता हूं जोसब देवताओं को वृत्तिदायक है और कान्तियुक्त,शुक्र रूप, अशेष जगतों की स्थिति का कारण है ॥२८॥ हे अग्नि ! तुम सब देवताओं के मुख हो। तुम्हारे द्वारा हविष्य भक्षण करके भगवान् सब देवताओं को तृप्त करते हैं अतः तुम सब देवताओं के प्राण हो ॥२९॥ आपके भीतर हवन किया हुआ हवि अमलमेधत्व को प्राप्त होकर परिणाम में जलरूप होजाता है ॥३०॥ हे अनिलसारथे ! उस जल से समस्त औषधियां तथा खाद्यपदार्थ उत्पन्न होते हैं जिनसे कि सब जीव सुखपूर्वक जीवित हैं ॥ ३१ ॥ हे पावक ! आपकी उत्पन्न औषधियों से मनुष्य यज्ञ करते हैं और उन यज्ञों से देवता, दैत्य और राक्षस ॥ ३२ ॥ तृप्त होते हैं। हे हुताशन ! आपही यज्ञों के आधार हैं। अतः आपही सब के कारण तथा सर्वमय हैं ॥ ३३ ॥ देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी तथा सर्प आदि ॥ ३४ ॥ सब आपके ही द्वारा तृप्त होते हैं। हे अग्नि ! आपही इनका संवर्द्धन करतेहैं तथा आपही से इनका उत्कर्ष और आपही में इनका लय है ॥ ३५ ॥ हे देव ! आपही जलों को उत्पन्न करते तथा आपही उनको पी जाते हैं। आपके द्वारा पचाया हुआ जल ही प्राणियोंकी पुष्टि करता है ॥३६॥ देवताओं में तेज रूपसे, सिद्धों में कान्ति

विषरूपेण नागेषु वायुरूपः पतत्रिषु ॥३७॥
मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पक्षि-मृगादिषु ।
अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति । ३८॥
जले द्रवत्वं भगवान् जलरूपी तथानिले ।
व्यापित्वेन तथैवाग्ने नभस्यात्मा व्यवस्थितः॥३९॥
त्वमग्ने सर्व्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् ।
त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ॥४०॥
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञमाद्यमकल्पयन् ।
त्वया सृष्टिमिदं विश्वं वदन्ति पर. यः ॥४१॥
त्वामृते हि जगत् सर्व्वं सद्यो नश्येद्धुताशन ।
तुभ्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्म्मविहितां गतिम्॥४२॥
प्रयाति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहाभ्युदीरणात् ।
परिणामात्मवीर्य्या हि प्राणिनाममरार्च्चित । ४३॥
दहन्ति सर्व्वभूतानि ततो निष्क्रम्य हेतयः ।
जातवेदस्तवैवेयं विश्वसृष्टिर्महाद्युते ॥४४॥
तवैव वैदिकं कर्म्म सर्व्वभूतात्मकं जगत् ।
नमस्तेऽनल पिङ्गाक्ष नमस्तेऽस्तु हुताशन ॥४५॥
पावकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन ।
त्वमेव भुक्तपीतानां पाचनाद्विश्वपावकः ॥४६॥
शस्यानां पाककर्त्ता त्वं पोष्टा त्वं जगतस्तथा ।
त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वं वीजं शस्यहेतुकम् ॥४७॥
पोषाय सर्व्वभूतानां भूतभव्यभवो ह्यसि ।
त्वं ज्योतिः सर्व्वभूतेषु त्वमादित्यो विभावसुः॥४८॥
त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान् ।
हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने हिरण्योद्भवकारणम् । ४९॥
हिरण्यगर्भश्च भवान् हिरण्यसदृशप्रभः ।
त्वं मुहूर्त्तं क्षणश्च त्वं त्वं त्रुटिस्त्वं तथा लवः ॥५०॥
कला-काष्ठा-निमेषादि-रूपेणासि जगत्प्रभो ।
त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान् ॥५१॥
या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो ।
भयान्नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५२॥
कराली नाम या जिह्वा महाप्रलयकारणम् ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५३॥
मनोजवा च या जिह्वा लघिमागुणलक्षणा ।

रूप से, नागों में विष रूप से तथा पक्षियों में वायु रूप से ॥ ३७ ॥ मनुष्यों में क्रोध रूप होकर, पशु-पक्षियों में मोह रूप होकर, वृक्षों में अवष्टम्भ रूप होकर और पृथ्वी में कठोरता रूप होकर ॥ ३८ ॥ जलमें द्रवत्वरूप और वायुमें वेगरूप तथा आकाश में व्यापकता रूप होकर हे भगवान् अग्नि ! आप स्थित हैं ॥३९॥ हे अग्नि आप सब जीवोंका पालन करते हुए उनके अंतस्तल में विचरतेहैं ! आप एक हैं, परन्तु कवियों ने आपको तीन प्रकार का कहा है ॥४०॥ परम ऋषि आपको यज्ञ के आदि में आठ प्रकार का कल्पित करते हैं और यह कहते हैं कि संसार आपसे ही उत्पन्न है ॥ ४१ ॥ हे हुताशन ! आपके मरनेपर सब जगत् नष्ट होजायगा । आपकी पूजा करके ब्राह्मण अपने विहित कर्म को ॥ ४२ ॥ स्वधा और स्वाहा आदि का उच्चारण करके हव्य कव्य आदि से प्राप्त होते हैं । हे देवताओंसे पूजित अग्निदेव ! सब प्राणियों का आत्मा और पराक्रम आपही से है ॥ ४३ ॥ हे जातवेद ! हे महाद्युति ! आपही की ज्वालायें सब भूतों को जलातीहैं तथा इस विश्व की सृष्टि आपही से है ॥ ४४ ॥ आपही वैदिककर्म और सब जीवों से युक्त जगत् रूप हैं । हे अनल ! हे पिंगाक्ष ! हे हुताशन ! आपको मैं वार वार प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ हे आदि पावक ! हे हव्यवाहन ! आपको नमस्कार है । आपही खाये और पिये हुए को पचाते हैं अतः आपही विश्व-पावक हैं ॥ ४६ ॥ आपही अन्नोंका पाक करते और जगत् का पालन करते हैं । आपही मेघ, वायु, और अन्नों के वीजरूपहैं ॥४७॥ सब जीवों के पालन और कल्याण के लिये आपका जन्म हुआ है । आप ही सब जीवों में ज्योति और आपही सूर्य हैं ॥४८॥ आपही दिनरात्रि तथा दोनों संध्याएँ हैं । हे अग्नि ! आपही हिरण्यरेता और सुवर्ण का कारण हैं॥४९॥ आपही हिरण्यगर्भ हैं और आपकी कान्ति सुवर्ण के समान है । मुहूर्त्त, क्षण, त्रुटि तथा लव आपही हैं ॥ ५० ॥ हे जगत् के प्रभु ! आपही कला, काष्ठा, निमेष आदि रूप से समस्त कालके स्वरूपहैं और आपही परिणामरूप हैं ॥ ५१ ॥ हे प्रभु ! आप की काली जिह्वा कालनिष्ठा करने वाली है ! उसी के द्वारा आप सांसारिक भय तथा पाप से हमारी रक्षा कीजिये ॥५२॥ आपकी कराली नाम की जिह्वा महाप्रलय करने वाली है, उससे आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥ ५३ ॥ लघिमा गुण लक्षणवाली जो आपकी मनोजा जिह्वा

तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५४॥
करोति कामं भूतेभ्यो या ते जिह्वा सुलोहिता ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५५॥
सधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदाहिका ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५६॥
स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गलाः ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५७॥
या ते विश्वा सदा जिह्वा प्राणिनां शर्म्मदायिनी ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥५८॥
पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्ण हुताशन ।
त्राहि मां सर्व्वदोषेभ्यः संसारादुद्धरेह माम् ॥५६॥
प्रसीद वह्ने सप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन ।
अग्नि-पावक-शुक्रादि-नामाष्टभिरुदीरितः ॥६०॥
अग्नेऽग्रे सर्व्वभूतानां समुद्भूत विभावसो ।
प्रसीद हव्यवाहाख्य अभिष्टुत मयाव्यय ॥६१॥

त्वमक्षयो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमान् दुष्प्रसहोऽतितीव्रः । त्वमव्ययं भीममशेषलोकं समूर्त्तको हन्त्यथवातिवीर्य्यः ॥६२॥

त्वमुत्तमं सत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुण्डरीकस्त्वमनन्तमीड्यम् । त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र ॥६३॥

त्वमक्षयः सगिरिवना वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् । महोदधेर्जठरगतश्च वाडवो भवान् विभूत्या परया करे स्थितः ॥६४॥

हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतौ नियमपरैर्महर्षिभिः । अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये॥६५॥

त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम् । त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्व्वकाले ॥६६॥

त्वं ब्रह्मा यजनपरस्तथैव विष्णुर्भूतेशः सुरपतिरर्य्यमा जलेशः । सूर्य्येन्दु सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥६७॥

अर्च्चिर्भिः परममहोपघातदुष्टं संस्पृष्टं तव शुचि

है उसके द्वारा आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥ ५४ ॥ आपकी सुलोहिता नाम जिह्वा जीवों की कामना पूर्ण करती है उसीसे आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥ ५५॥ प्राणियों के रोग नाशकरने वाली सधूम्रवर्ण नाम जिह्वा के द्वारा आप हमारे पापों और सांसारिक भय से हमारी रक्षा करें ॥ सब संसार का मन चंचल रखने वाली जो स्फुलिंगिनी नाम आपकी जिह्वा है उसके द्वारा हमारे पापों और सांसारिक महाभय से हमारी रक्षा करें ॥ ५७ ॥ प्राणियों को कल्याण देनेवाली अपनी विश्वासदा जिह्वा से हमारी पापों और सांसारिक भय से रक्षा करें ॥५८॥ हे पिंगाक्ष,हे लोहितग्रीव ! कृष्णवर्ण हुताशन ! मेरे सब दोषों को दूर करके इस संसार से मेरा उद्धार करो ॥ ५६ ॥ हे अग्नि ! आप प्रसन्न हों, आप सप्तार्चि, कृशान, हव्यवाहन, अग्नि, पावक, शुक्र आदि आठ नामों से पुकारे जाते हैं ॥ ६०॥ हे अग्नि ! आप सब जीवोंसे पहले उत्पन्न हुएहैं । हे हव्यवाहन,हे अभिष्टुत हे अव्यय! आप प्रसन्नहों ॥ ६१॥ आप अक्षय अग्नि, अचिंत्य रूप, समृद्धिशाली, दुष्प्रसह, अतितीव्र, अव्यय और भीम हैं । आप मूर्तिमान् होकर अशेष लोकों को नष्ट करते हैं तथा अति पराक्रमी हैं ॥ ६२ ॥ आप उत्तम जीव हैं, प्रत्येक जीव के हृदय कमलमें रहते हैं, आप अनन्त स्तुति करने योग्य तथा सब जगत् के व्याप्तहैं । हे हुताशन ! आप एक हैं परंतु अनेक प्रकार से संसार में स्थित हैं ॥ ६३ ॥ आप अक्षय हैं तथा पर्वत, वन, पृथ्वी, आकाश, चंद्रमा, सूर्य, दिन, रात्रि ये सब आपही हैं । समुद्रमें वड़वानल आपही हैं तथा परम विभूति को आप सदा हाथ में लिये रहते हैं ॥६४॥ हुताशन कहकर यज्ञों में आपको महान् ऋषि लोग पूजतेहैं । यज्ञ में आप की स्तुति करके सोमपान करते तथा वषट् उच्चारण करके हविष्य भक्षण करते हैं ॥ ६५ ॥ फलार्थी होकर ब्राह्मण सदैव आपका पूजन करते हैं तथा सब वेदाङ्गों में आपका गान करते हैं । ब्राह्मण लोग आपके निमित्त यज्ञपरायण होकर सदा वेदाङ्गों का अध्ययन करते हैं ॥ ६६ ॥ यज्ञपरायण होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, अर्यमा, वरुण, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब देवता व राक्षस आपको हविष्यों से संतुष्ट कर अमितफलों को पाते हैं ॥६७॥ चाहे कितने ही बड़े उपघात से दूषित क्यों न हो गया हो आपकी ज्वालाओं के

जायते समस्तम् । स्नानानां परममतीव भस्मना सत् सन्ध्यायां मुनिभिरतीव सेव्यसे तत् ॥६८॥

प्रसीद वह्ने शुचिनामधेय प्रसीद वायो विमलातिदीप्ते । प्रसीद मे पावक वैद्युताद्य प्रसीद हव्याशन पाहि मां त्वम् ॥६९॥

यत् ते वह्ने शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः । तः पाहि नः स्तुतो देव पिता पुत्रमिवात्मजम्॥७०॥

स्पर्श से सब शुद्ध होजाता है । संध्या समय के उपरान्त मुनि लोग आपकी भस्म शरीर लगाते हैं ॥६८॥ हे अग्नि ! हे शुचि ! हे वायु ! विमलातिदीप्ति ! हे पावक ! हे वैद्युत ! हे आद्य हे हव्याशन ! आप प्रसन्न हों और मेरी रक्षा करे ॥ ६९ ॥ हे अग्नि ! आपका जो कल्याणमय और सात ज्वालायें हैं वे हे देव ! हमारी प्रकार रक्षा करें जिस प्रकार कि पिता पुत्र की रक्षा करता है ॥ ७० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणके भौत्य मन्वंतरमें अग्नि स्तोत्र नाम ९९वां अ०स० ।



सौवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतस्ततस्तेन भगवान् हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृतस्तत्र तस्यासीदग्रतो मुने ॥ १ ॥
देवो विभावसुः प्रीतस्तोत्रेणानेन वै द्विज ।
तं शान्तिमाह प्रणतं मेघगम्भीरवागथ ॥ २ ॥

अग्निरुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते विप्र भक्त्या या ते स्तुतिः कृता ।
वरं ददामि भवते प्रार्थ्यतां यत् तवेप्सितम् ॥ ३ ॥

शान्तिरुवाच

भगवन् कृतकृत्योऽस्मि यत् त्वां पश्यामि रूपिणम् ।
तथापि भक्तिनम्रस्य भवता श्रूयतां मम ॥ ४ ॥
भ्रातृयज्ञं गतो देव ममाचार्य्यो निजाश्रमात् ।
आगतश्चाश्रमं धिष्ण्यं त्वत्सनाथं स पश्यतु ॥ ५ ॥
ममापराधात् सन्त्यक्तं धिष्ण्यं यत् ते विभावसो ।
तत् त्वयाधिष्ठितं सोऽद्य पूर्व्ववत् पश्यतां द्विजः ॥६॥
तथान्यदपि मे देव प्रसादं कुरुषे यदि ।
पुत्रो विशिष्टो भवतु तदपुत्रस्य मे गुरोः ॥ ७ ॥
यथा च मैत्रीं तनये स करिष्यति मे गुरुः ।
तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्य मनो मृदु ॥ ८ ॥
पश्यतां स्तोष्यते येन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय ।
स्तोत्रेण तस्य वरदो भवेथा मत्प्रसादितः ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम् ।

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार शान्ति मुनि द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् अग्निदेव बहुतसी ज्वालाओं से युक्त होकर शान्ति मुनिके सन्मुख आये॥१॥ स्तोत्र से प्रसन्न होकर अग्निदेव शान्ति मुनि से मेघ के सदृश गम्भीर वाणी से बोले ॥२॥

अग्नि बोले—

हे विप्र ! भक्ति पूर्वक जो स्तुति तुमने की है उससे मैं संतुष्ट हुआहूँ । मैं तुमको वर देनाचाहता हूँ, जो तुम्हारी इच्छा हो वह माँगो ॥३ ॥

शान्ति बोले—

हे भगवन् ! आपको प्रगट हुआ देखकर मैं कृतकृत्य हूँ । अब भक्तिसे नम्र मैं जो कुछ कहताहूँ वह सुनिये ॥ ४ ॥ हे देव ! मेरे गुरु अपने आश्रम से भाई के यज्ञ में गये हैं, आप ऐसा यत्न कीजिये कि जिससे वे आश्रमको लौटने पर आपको प्रज्वलित पावें ॥५॥ हे विभावसु ! मेरे अपराध से जो अग्नि शान्त होगई थी उसको मेरे गुरु लौटने पर पूर्ववत् प्रज्वलित देखें ॥ ६ ॥ हे देव ! यदि आप एक और कृपा मुझपर करें तो मेरे निपुत्री गुरु को एक उत्तम पुत्र उत्पन्न होजाय ॥७॥ और मेरे गुरु जैसी प्रीति उस पुत्र से रक्खें वैसी ही समस्त जीवों से कोमल भावयुक्त होकर रक्खें ॥ ८ ॥ हे अव्यय ! यदि मेरे इस स्तोत्र से आपको प्रीति उत्पन्न हुई है तो यही स्तोत्र मेरे गुरु की कामना पूर्ण करे ॥ ॥ ९

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार उस ब्राह्मण श्रेष्ठ के वचन सुनकर और उनके स्तोत्रसे आराधित अग्निदेव शान्ति

स्तोत्रेणाराधितो भूयो गुरुभक्त्या च पावकः ॥१०॥

अग्निरुवाच

गुरोरर्थे यतो ब्रह्मन् याचितं ते वरद्वयम् ।
नात्मार्थं तेन मे प्रीतिस्त्वय्यतीव महामुने ॥११॥
भविष्यत्येतदखिलं गुरोर्यत् प्रार्थितं त्वया ।
मैत्री समस्तभूतेषु पुत्रश्चास्य भविष्यति ॥१२॥
मन्वन्तराधिपः पुत्रो भौत्यो नाम भविष्यति ।
महाबलो महावीर्य्यो महाप्राज्ञो गुरुस्तव ॥१३॥
अनेन यश्च स्तोत्रेण स्तोष्यते मां समाहितः ।
तस्याभिलषितं सर्व्वं पुण्यश्चास्य भविष्यति ॥१४॥
यज्ञेषु पर्व्वकालेषु तीर्थेज्याहोमकर्म्मसु ।
धर्म्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५॥
अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतत् सकृद्द्विज ।
नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम् ॥१६॥
अहोमकालदोषादीन् नयोग्यैरपि तत्कृतैः ।
ये दोषास्तानिदं सद्यः शमयिष्यति संश्रुतम् ॥१७॥
पौर्णमास्याममावास्यां पर्व्वस्वन्येषु मस्तवः ।
ममैष संश्रुतो मर्त्त्यैर्भविता पापनाशनः ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने ।
बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्यो निर्वृतो तथा ॥१९॥
स च शान्तिर्गते वह्नौ परितुष्टेन चेतसा ।
हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः ॥२०॥
जाज्वल्यमानं तत्रासौ गुरुधिष्ण्ये हुताशनम् ।
ददर्श पूर्व्ववत् माप ततः स परमां मुदम् ॥२१॥
एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः ।
भ्रातुर्यवीयसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् ॥२२॥
तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रे पादाभिवन्दनम् ।
गृहीतासनपूजश्च तमाह स तदा गुरुः ॥२३॥
वत्सातिहार्द्दं त्वयि मे तथान्येषु च जन्तुषु ।
न वेद्मि किमिदं त्वञ्चेद्वत्सैतत् कथयाशु मे ॥२४॥
ततः स शान्तिस्तत् सर्व्वमाचार्य्याय महामुने ।
अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् ॥२५॥
तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्य स्नेहार्द्रनयनो गुरुः ।

मुनि की गुरुभक्ति देखकर कहने लगे ॥१०॥

अग्नि बोले—

हे ब्रह्मन्! आपने गुरुके लिये दो वरमांगे परंतु अपने लिये कुछ भी न माँगा, इससे हे महामुनि! तुममें मेरी प्रीति और भी अधिक होगई है ॥ ११ ॥ तुमने जो कुछ गुरु के लिये माँगा है वह सब पूर्ण होगा। मुनि की सब जीवों से प्रीति होजायगी, तथा उनको एक पुत्र भी होगा ॥ १२ ॥ तुम्हारे गुरु के भौत्य नाम एक पुत्र होगा जो कि महाबली, पराक्रमी, विद्वान् और मन्वन्तराधिप होगा ॥ १३॥ जो कोई एकाग्र चित्त होकर इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा उसकी सब मनोकामना पूर्ण होंगी॥ यज्ञों, पर्वों, तीर्थों, होमकर्मों आदि में धर्म के लिये इस स्तोत्र को पढ़ने से मेरी परम पुष्टि होगी॥१५॥ हे द्विज ! जो मेरे इस तुष्टिकारक स्तोत्र को एक बार सुनेगा उसका एक दिन रात्रि का किया हुआ पाप निस्संदेह नष्ट होजायगा ॥१६॥ इस स्तोत्र को भली प्रकार सुनने से अहोम, काल और अयोग्य कर्म सम्बन्धी सब दोष नष्ट होजायँगे ॥ १७ ॥ पूर्णमासी, अमावस अथवा अन्य पर्वों में जो पुरुष मेरे इस स्तोत्र को सुनेंगे उनके सम्पूर्ण पाप नाश को प्राप्त होंगे ॥१८॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि मुनि! भगवान् अग्नि यह कह कर उसके देखते-देखते इस प्रकार अदृश्य होगये जिस प्रकार दीपक बुझ जाता है ॥ १९ ॥ अग्निदेव के अदृश्य होने पर शान्ति मुनि ने भी प्रसन्न चित्त तथा रोमांचित शरीर होकर गुरु के आश्रम में प्रवेश किया ॥२०॥ वहाँ पर गुरु की अग्नि को पूर्ववत् प्रज्वलित देखकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ इसी अवसर पर उनके महात्मा गुरुभी अपने भाई के यज्ञ से लौटकर आश्रम पर पहुँचे ॥२२ ॥ उनके शिष्य शान्ति मुनि ने गुरु के आगे जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया तथा उनकी पूजा की। आसन ग्रहण कर गुरुजी बोले ॥ २३ ॥ हे वत्स ! मुझे तुमसे तथा अन्य जीवों से अब पहिले की अपेक्षा अधिक प्रीति होगई है । मैं नहीं जानता यह क्योंकर हुई, यदि तुम्हें कुछ मालुम हो तो शीघ्र कहो ॥२४॥ तब विप्र शान्ति ने अपने आचार्य महामुनि के प्रति अग्नि बुझ जाने आदि का सब वृत्तान्त पूर्णतया सुनादिया ॥२५॥ यह सुनकर गुरु स्नेह से नयनों में जल भरलाये और उन्होंने शांति

शिष्याय प्रददौ वेदान् साङ्गोपाङ्गान् महामुने॥२६॥
भौत्यो नाम मनुस्तस्य पुत्रो भूतेरजायत।
तस्य मन्वन्तरे देवानृषीन् भूपांश्च मे शृणु॥२७॥
भविष्यस्य भविष्यांस्तु गदतो मम विस्तरात्।
देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्म्मणः॥२८॥
चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा।
धाराष्टकाश्च इत्येते पञ्च देवगणाः स्मृताः॥२९॥
शुचिरिन्द्रस्तदा तेषां त्रिदशानां भविष्यति।
महाबलो महावीर्य्यः सर्व्वैरिन्द्रगुणैर्युतः॥३०॥
अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च शुचिर्मुक्तोऽथ माधवः।
शक्रोऽजितश्च सप्तैते तदा सप्तर्षयः स्मृताः॥३१॥
गुरुर्गभीरो ब्रध्नश्च भरतोऽनुग्रहस्तथा।
स्त्रीमाणी च प्रतीरश्च विष्णुः संक्रन्दनस्तथा॥३२॥
तेजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः।
चतुर्द्दश मयैतत् ते मन्वन्तरमुदाहृतम्॥३३॥
श्रुत्वा मन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम।
पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथाऽक्षीणाञ्च सन्ततिम्॥३४॥
श्रुत्वा मन्वन्तरं पूर्व्वं धर्म्ममाप्नोति मानवः।
स्वारोचिषस्य श्रवणात् सर्व्वकामानवाप्नुते॥३५॥
औत्तमे धनमाप्नोति ज्ञानञ्चाप्नोति तामसे।
रैवते च श्रुते बुद्धिं सुरूपां विन्दते स्त्रियम्॥३६॥
आरोग्यं चाक्षुषे पुंसां श्रुते वैवस्वते बलम्।
गुणवत्पुत्रपौत्रन्तु सूर्य्यसावर्णिके श्रुते॥३७॥
माहात्म्यं ब्रह्मसावर्णे धर्म्मसावर्णिके शुभम्।
मतिमाप्नोति मनुजो रुद्रसावर्णिके जयम्॥३८॥
ज्ञातिश्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते।
निशातयत्यरिबलं रौच्यं श्रुत्वा नरोत्तम॥३९॥
देवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते।
तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नुते॥४०॥
सर्व्वाण्यनुक्रमादेयश्च शृणोति मुनिसत्तम।
मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम्॥४१॥
तत्र देवानृषीनिन्द्रान् मनूंस्तत्तनयान् नृपान्।
वंशांश्च श्रुत्वा सर्व्वेभ्यः पापेभ्यो विप्र मुच्यते॥४२॥
देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः।

को छाती से लगा लिया और उसको सम्पूर्ण वेदाङ्गों का ज्ञान करा दिया॥ २६॥ फिर भूति के भौत्य मनु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। अब के मन्वन्तर के देवता, ऋषि तथा राजाओंको से सुनो॥ २७॥ उस मन्वन्तर के जो देवता तथा उनके जो विख्यातकर्मा इन्द्रहोंगे उनको॥ २८॥ चाक्षुष, कनिष्ट, पवित्र भ्राजिर तथा वृक ये पाँच देवगण होंगे॥ २९॥ उन देवताओं महाबली, पराक्रमी तथा इन्द्र होने के सब युक्त शुचि नामक इन्द्र होंगे॥३०॥ अग्नीध्र, बाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित यह सातों उस मन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे॥ ३१॥ गुरु, गभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, स्त्रीमाणी, प्रतीर, विष्णु और संक्रन्दन॥ ३२॥ तथा तेजस्वी और सुबल यह भौत्य मनु के पुत्र होंगे। हे क्रौष्टुकि! इस प्रकार मैंने आपसे चौदहों मन्वन्तरों का वृत्तान्त वर्णन किया॥ ३३॥ हे मुनिसत्तम! इन मन्वन्तरों को जो मनुष्य सुनेंगे वे अक्षय पुण्य तथा सन्तति प्राप्त करेंगे॥ ३४॥ पहिले मन्वन्तर को सुनने से मनुष्य को धर्म प्राप्त होता है तथा स्वारोचिष मन्वन्तर की कथा सुनने से सब कामनायें पूरी होती हैं॥ ३५॥ औत्तम मन्वन्तर को सुनने से धन, तामस के सुनने से ज्ञान तथा रैवत को सुनने से बुद्धि और सुन्दर स्त्री मिलतीहै॥३६॥ चाक्षुष मन्वन्तर को सुनने से मनुष्यों को आरोग्य वैवस्वत के सुनने से बल तथा सूर्य सावर्णिक मन्वन्तर के सुनने से गुणवान् पुत्र और पौत्र प्राप्त होते हैं॥ ३७॥ ब्रह्म सावर्णिक मन्वन्तर को सुनने से माहात्म्य, धर्मसावर्णिक के सुनने से शुभगति तथा रुद्रसावर्णिक को सुनने से मनुष्यों को विजय प्राप्त होती है॥ ३८॥ दक्ष-सावर्णिक मन्वन्तर को सुनने से मनुष्य अपनी जाति में श्रेष्ठ तथा गुणों से युक्त हो जाता है। रौच्य मन्वन्तर को सुनने से मनुष्यों के शत्रुओं का बल घट जाता है॥ ३९॥ भौत्य मन्वन्तर को सुनने से मनुष्य देवताओं की प्रसन्नता, अग्निहोत्र का फल तथा गुणी पुत्रों को प्राप्त करता है॥४०॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! जो क्रम से सब मन्वन्तरों को सुनते हैं उनको जो उत्तम फल मिलता है वह सुनो॥४१॥ हे विप्र! उन मन्वन्तरों के देवताओं, ऋषियों, इन्द्रों तथा मनुओं और उनके पुत्र राजाओं तथा उनके वंशों का हाल सुनकर सब पापों से मुक्ति होजाती है॥ ४२॥ देवता, ऋषि, राजा तथा मन्वन्तरों के स्वामी

ते प्रीयन्ते तथा प्रीताः प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥४३॥
ततः शुभां मतिं प्राप्य कृत्वा कर्म्म तथा शुभम् ।
शुभां गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४४॥
सर्व्वे स्युरृतवः क्षेम्याः सर्व्वे सौम्यास्तथा ग्रहाः ।
भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥४५॥

प्रसन्न होकर सुनने वालों को शुभ मति प्रदान करते हैं ॥४३॥ फिर शुभ मति पाकर उसके द्वारा मनुष्य शुभ कर्म करता है जिससे कि चौदहों इन्द्रों की अवधि तक उसको शुभ गति प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ क्रम से सब मन्वन्तरों की कथा सुनने से सब ऋतुऐं कल्याणकारी तथा सब ग्रह शुभ होजाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥४५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें चतुर्दश मन्वन्तर कथन नाम १००वाँ अध्याय स० ।

एकसौएकवां अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् कथिता सम्यक् त्वया मन्वन्तरस्थितिः ।
क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया चैवावधारिता ॥ १ ॥
ब्रह्माद्यमखिलं वंशं भूभुजां द्विजसत्तम ।
श्रोतुं ममेच्छतः सम्यग्भगवन् प्रब्रवीहि मे ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु वत्स नृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् ।
चरितंच जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ॥ ३ ॥
अयं हि वंशो भूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः ।
संग्रामजिद्भिर्धर्म्मज्ञैः शतसंख्यैरलङ्कृतः ॥ ४ ॥
श्रुत्वा चैषां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् ।
उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकुरनरण्यो भगीरथः ।
अन्ये च शतशो भूपाः सम्यक् पालितभूमयः॥ ६ ॥
धर्म्मज्ञा यज्विनः शूराः सम्यक् परमवेदिनः ।
श्रुते तस्मिन् पुमान् वंशे पापौघाद्विप्रमुच्यते ॥ ७ ॥
तदयं श्रूयतां वंशो यतो वंशाः सहस्रशः ।
भिद्यन्ते मनुजेन्द्राणामवरोहा यथा वटात् ॥ ८ ॥
ब्रह्मा प्रजापतिः पूर्व्वं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजत्द्विजसत्तम ॥ ९ ॥
वामांगुष्ठाच्च तत्पत्नीं जगत्सूतिकरो विभुः ।
ससर्ज्ज भगवान् ब्रह्मा जगतां कारणं परम् ॥१०॥
अदितिस्तस्य दक्षस्य कन्याऽजायत शोभना ।
कश्यपो देवं मार्त्तण्डं समजीजनत् ॥११॥

क्रौष्टुकिजी बोले—

हे भगवन् ! आपने मन्वन्तरों की स्थिति क्रम से विस्तार पूर्वक मुझ से कही तथा मैंने उसको सुना ॥ १ ॥ हे मार्कण्डेय जी ! ब्रह्माजी जिसके आदि में हैं, उस वंश के राजाओं को मैं सुनना चाहता हूँ, आप भली भाँति कहें ॥२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे वत्स, क्रौष्टुकि ! जगत के कारण ब्रह्मा जी जिस वंश के आदि में हैं उसके अशेष राजाओं की उत्पत्ति और चरित्र तुम सुनो ॥३॥ यह वंश अनेक यज्ञ करने वाले, संग्राम विजयी और धर्मज्ञ अनेक राजाओं से अलंकृत है ॥४॥ इन महात्मा राजाओं की उत्पत्ति और चरित्र सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥ इस वंश में मनु,इक्ष्वाकु अनरण्य भगीरथ तथा अन्य सैकड़ों राजा ऐसे हुए हैं जिन्होंने भली भाँति पृथ्वी का पालन किया है ॥ ६ ॥ वे राजा धर्मज्ञ, यज्ञ करने वाले, वीर और सब प्रकार वेद के परम ज्ञाता थे उनके वंश का चरित्र सुनने से मनुष्य पापसमूह से छूट जाता है ॥ ७ ॥ इस लिये अब इस वंश का हाल सुनो । इस वंश से हज़ारों और वंश इस प्रकार निकले हैं जिस प्रकार कि वड़ के पेड़ से हज़ारों शाखायें निकलती हैं ॥८॥ हे क्रौष्टुकि जी ! प्रजापति ब्रह्मा ने पहिले ही पहिले विविध प्रकार के प्रजाओं की सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से अपने दाहिने अँगूठे से दक्ष को उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ जगत के परम कारण भगवान ब्रह्मा ने बाँये अँगूठे से दक्ष की पत्नी को उत्पन्न किया ॥ १० ॥ उस स्त्री से दक्ष ने अदिति नाम कन्या उत्पन्नकी और अदिति से उसके पति कश्यप ने सूर्य देवता को उत्पन्न

ब्रह्मस्वरूपं जगतामशेषाणां वरप्रदम् ।
आदिमध्यान्तभूतंच सर्गस्थित्यन्तकर्म्मसु ॥१२॥
यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषञ्च स्थितं द्विज ।
यत्स्वरूपं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥१३॥
यः सर्व्वभूतः सर्व्वात्मा परमात्मा सनातनः ।
अदित्यामभवद्भास्वान् पूर्व्वमाराधितस्तया ॥१४॥

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि यत् स्वरूपं विवस्वतः ।
यत्कारणञ्चादिदेवः सोऽभवत् कश्यपात्मजः॥१५॥
यथा चाराधितो देव्या सोऽदित्या कश्यपेन च ।
आराधितेन चोक्तं यत् तेन देवेन भास्वता ॥१६॥
प्रभावंचावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम ।
भवता कथितं सम्यक् श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१७॥

मार्कण्डेय उवाच

निस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा ।
कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्यं संविदेव च ॥१८॥
बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिर्विज्ञानमेव च ।
इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वतः ॥१९॥
श्रूयताञ्च महाभाग विस्तराद्वदतो मम ।
यत् पृष्टवानसि रवेराविर्भावो यथाभवत् ॥२०॥
निष्प्रभेऽस्मिन् निरालोके सर्व्वतस्तमसावृते ।
बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारणं परम् ॥२१॥
तद्विभेद तदन्तःस्थो भगवान् प्रपितामहः ।
पद्मयोनिः स्वयं ब्रह्मा यः स्रष्टा जगतां प्रभुः ॥२२॥
तन्मुखादोमिति महानभूच्छब्दो महामुने ।
ततो भूस्तु भुवस्तस्मात् ततश्च स्वरनन्तरम् ॥२३॥
एता व्याहृतयस्तिस्रः स्वरूपं तद्विवस्वतः
ओमित्यस्मात् स्वरूपात् तु सूक्ष्मरूपं रवेःपरम् ॥२४॥
ततो महरिति स्थलं जनं स्थूलतरं ततः ।
ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्त्तानि सप्तधा ॥२५॥
स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च ।
स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संशयम् ॥२६॥

किया ॥ ११ ॥ फिर ब्रह्माजी ने उत्पत्ति, पालन, और प्रलय करने के निमित्त आदि, अन्त और मध्य में रहने वाले, जगत के वरप्रद स्वरूप को बनाया ॥ १२ ॥ हे द्विज ! उस स्वरूप में देवता, असुर और मनुष्य युक्त यह सम्पूर्ण जगत अशेष रूप से स्थित है ॥ १३ ॥ जो सर्वभूत, सर्वात्मा, परमात्मा, सनातन भास्वान् सूर्य हैं वे अदिति से जिसने कि पहिले उनकी आराधना की थी उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥

क्रौष्टुकि जी बोलेः—

हे भगवन् ! विवस्वान् के उस स्वरूप को सुनना चाहता हूं जिसके कारण कि आदि देव कश्यप के पुत्र होकर उत्पन्नहुए ॥१५॥ जिस प्रकार कि देवी अदिति और कश्यप ने उनकी आराधना की थी और आराधित होने पर जो कुछ सूर्य देव ने उनसे कहा था वह कहिये ॥ १६ ॥ हे मुनि मार्कण्डेय जी ! उनके अवतार का प्रभाव आपने पहिले अच्छी तरह कहा था, अब मैं उसको विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ १७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

स्पष्ट परम विद्या, शाश्वती और प्रकाशित ज्योति, कैवल्य ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य और संविद ॥१८॥ बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान, ये सब भगवान् सूर्य के रूप हैं ॥१९॥ हे महाभाग ! जो तुमने सूर्य का प्रकट होना पूछा सो मुझसे विस्तार पूर्वक सुनो ॥२०॥ इस प्रभाहीन सम्पूर्ण लोक में जब चारों ओर अन्धकार था उस समय परम कारण अक्षर रूप एक बृहत् अण्ड उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ उस अण्डे के फटने पर उसके अन्दर से भगवान्, पद्मयोनि जगतके सृष्टिकर्ता,पितामह स्वयं प्रभु ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ हे क्रौष्टुकि मुनि ! ब्रह्मा के मुख से 'ओम्' ऐसा महान् शब्द हुआ और उसी से भूः भुवः और स्वः शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ ॥ २३॥ ये तीन व्याहृतियाँ भगवान् सूर्य का स्वरूप हैं और 'ओम्' स्वरूप से सूर्य का सूक्ष्म रूप उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ उस सूक्ष्म स्वरूप से स्थूल 'महान्' की उत्पत्ति हुई और उस स्थूल से स्थूलतर 'जन' शब्द की उत्पत्ति हुई तथा उससे तप और उससे सत्य उत्पन्न हुआ । यही सात स्वरूप ॥ २५ ॥ सूर्य देव के हैं । इनका ध्यान करने से संशयात्मक भाव स्वभावतया नष्टहोजाते हैं॥२६॥

आद्यन्तं यत् परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम् ।
ओमित्युक्तं मया विप्र तत् परं ब्रह्म तद्वपुः ॥२७॥

हे विप्र क्रौष्टुकि जी! सब सृष्टि के आदि अन्त परम सूक्ष्म व परम अरूप हैं, उन्हीं को 'ओम्' तथा दूसरे नाम परब्रह्म से पुकारते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में वंशानुकीर्तन नाम १०१वाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौदोवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तस्मादण्डाद्विभिन्नात् तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
ऋचो बभूवुः प्रथमं प्रथमाद्वदनान्मुने ॥ १ ॥
जवापुष्पनिभाः सद्यस्तेजोरूपान्तसंहताः ।
पृथक् पृथग्विभिन्नाश्च रजोरूपवहास्ततः ॥ २ ॥
यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानि काञ्चनम् ।
यादृग्वर्णं तथा वर्णान्यसंहतिधराणि च ॥ ३ ॥
पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
आविर्भूतानि सामानि ततश्छन्दांसि तान्यथ ॥ ४ ॥
अथर्वाणमशेषञ्च भृङ्गाञ्जनचयप्रभम् ।
यावद्घोरस्वरूपं तदाभिचारिकशान्तिकम् ॥ ५ ॥
उत्तरात् प्रकटीभूतं वदनात् तस्य वेधसः ।
सुखसत्त्वतमःप्रायं सौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥ ६ ॥
ऋचो रजोगुणाः सत्त्वं यजुषाञ्च गुणा मुने ।
तमोगुणानि सामानि तमःसत्त्वमथर्व्वसु ॥ ७ ॥
एतानि ज्वलमानानि तेजसाऽप्रतिमेन वै ।
पृथक् पृथगवस्थानं भाञ्जि पूर्व्वमिवाभवन् ॥ ८ ॥
ततस्तदाद्यं यत् तेज ओमित्युक्त्वाभिशब्द्यते ।
तस्य स्वभावाद्यत् तेजस्तत् समावृत्य संस्थितम्॥ ६
अथ यजुर्म्मयं तेजस्तद्वत् साम्नां महामुने ।
एकत्वमुपयातानि परे तेजसि संश्रये ॥१०॥
शान्तिकं पौष्टिकञ्चैव तथा चैवाभिचारिकम् ।
ऋगादिषु लयं ब्रह्मन् त्रितयं त्रिष्वथागमत् ॥११॥
ततो विश्वमिदं सद्यस्तमोनाशात् सुनिर्म्मलम् ।
विभावनीयं विप्रर्षे तिर्य्यगूर्द्ध्वमधस्तथा ॥१२॥
ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम् ।
परेण तेजसा ब्रह्मन्नेकत्वमुपयाति तत् ॥१३
आदित्यसंज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत् ।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनि फिर अण्डे के फटने पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी के पूर्व मुख से ऋग्वेद की ऋचायें उत्पन्न हुईं ॥१॥ वे ऋचायें गुड़हल के फूल के समान अलग-अलग रजोगुणी रूप धारण किये हुए थीं और वे सब अंत भाग में तेजयुक्त थीं ॥२॥ ब्रह्माजी के दक्षिण मुख से यजुर्वेद के मंत्र उत्पन्न हुए। उन का वर्ण सुवर्ण के समान था ॥ ३ ॥ परमेष्ठि ब्रह्माके पश्चिम मुख से सामवेद के मन्त्र तथा छन्द उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ अथर्ववेद के मंत्र जो अभिचारिक और शान्तिक क्रियाओं को बतलाते हैं, भौंरों के समूह के समान कृष्णवर्ण तथा भयानक स्वरूप वाले ॥ ब्रह्माजी के उत्तर मुख से प्रगट हुए। वे मंत्र सतोगुण और तमोगुण युक्त सुन्दर व कुत्सित आकृति वाले थे ॥ ६ ॥ हे क्रौष्टुकिमुनि ! ऋग्वेद रजोगुण युक्त, यजुर्वेद सतोगुणयुक्त, सामवेद तमोगुणयुक्त तथा अथर्ववेद सतोगुण और तमोगुण युक्त हैं ॥ अतुल तेज से जाज्वल्यमान् होकर वे पृथक् २ पहिले की भांति प्रगट हुए ॥ ८ ॥ फिर पहिले तेज के साथ ओम् शब्द का तेज मिश्रित होकर स्थित हुआ ॥ ६ ॥ हे महामुनि ! फिर वह मिश्रित तेज यजुर्वेद के तेज के साथ मिला और इसके बाद सामवेद के तेज के साथ मिल गया ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! फिर शान्तिक पौष्टिक और अभिचारिक तेज ऋग्, यजुः और साम में मिलगये ॥ ११ ॥ हे विप्रर्षि ! तम के नाश होजाने से यह जगत् निर्मल होगया। इसीप्रकार तिर्यक् और ऊर्द्ध्व तथा निम्न आदि को समझना चाहिये ॥१२॥ हे ब्रह्मन् ! इसके बाद वेदों का वह उत्तम तेज जो एक दूसरे के साथ मिलकर एक समूह में होगया था ॥ १३ ॥ आदित्य नाम से विख्यात हुआ। हे महाभाग !

विश्वस्यास्य महाभाग कारणञ्चाव्ययात्मकम्॥१४॥
प्रातर्मध्यन्दिने चैव तथा चैवापराह्णिके।
त्रयी तपति सा काले ऋग्-यजुः-सामसंज्ञिता॥१५॥
ऋचस्तपन्ति पूर्व्वाह्ने मध्याह्ने च यजूंषि वै।
सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिसत्तम॥१६॥
शान्तिकं ऋक्षु पूर्व्वाह्णे यजुःष्वन्तरपौष्टिकम्।
विन्यस्तं साम्नि सायाह्ने आभिचारिकमन्ततः॥१७॥
मध्यन्दिनेऽपराह्णे च समे चैवाभिचारिकम्।
अपराह्णे पितॄणान्तु साम्ना कार्य्याणि तानि वै१८॥
विसृष्टौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितो विष्णुर्यजुर्म्मयः।
रुद्रः साममयोऽन्ते च तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनिः१९॥
तदेवं भगवान् भास्वान् वेदात्मा वेदसंस्थितः।
वेदविद्यात्मकश्चैव परः पुरुष उच्यते॥२०॥
सर्ग-स्थित्यन्तहेतुश्च रजःसत्वादिकान् गुणान्।
आश्रित्य ब्रह्म-विष्ण्वादि-संज्ञामभ्येति शाश्वतः२१॥

देवैः सदेड्यः स तु वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिराद्योऽखिलमर्त्त्यमूर्त्तिः। विश्वाश्रयं ज्योतिरवेद्यधर्म्मा वेदान्तगम्यः परमः परेभ्यः॥२२॥

यही तेज विश्व का अव्ययात्मक कारण है॥१४॥ ऋग, यजुः और साम तेज क्रमशः प्रातः, मध्याह्न और अपराह्न काल में तपित होता है॥१५॥ हे मुनि सत्तम! ऋग्वेद की ऋचायें पूर्वाह्न में, यजुर्मन्त्र मध्याह्न और साम छन्द अपराह्न में तप्त होते हैं॥ शान्तिक कर्म ऋग्तेज के समय पूर्वाह्न में, पौष्टिक कर्म यजुतेज के समय मध्याह्नमें और अभिचारिक कर्म अभिचारिक मन्त्र से सामतेजके समय संध्या को किये जाते हैं॥१७॥ अभिचारिक कर्म पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न में भी किया जाता है परन्तु पितरों का कर्म सामवेद के मन्त्रों से अपराह्न काल में ही किया जाता है॥१८॥ सृष्टि करने वाले ब्रह्मा रजोगुणी ऋग्तेजमय हैं, तथा पालन करने वाले विष्णु सतोगुणी यजुर्मय हैं। साम तेजमय रुद्र अन्त करने वाले तमोगुणी हैं, अतः सामवेद की ध्वनि अपवित्र है॥१९॥ इस प्रकार भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदसंस्थित, वेदविद्यात्मक परम पुरुष कहलाते हैं॥२०॥ उत्पत्ति, पालन और प्रलय के अनुसार वे रजोगुणी, सतोगुणी और तमोगुणी होकर क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे जाते हैं॥२१॥ देवताओं से सदा पूजित, वेदमूर्ति, आदि अमूर्ति, विश्व की आश्रय ज्योतिरूप, अवेद्यधर्मा और वेदान्तगम्य भगवान् सूर्य परे से भी परे हैं॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें मार्त्तण्ड माहात्म्य नाम १०२वाँ अ० स०।

एकसौतीनवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्द्धमधस्तथा।
सिसृक्षुश्चिन्तयामास पद्मयोनिः पितामहः॥१॥
सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यमितेजसः।
भास्वतः सृष्टि-संहार-स्थितिहेतोर्महात्मनः॥२॥
अप्राणाः प्राणिनः सर्व्वे आपः शुष्यन्ति तेजसः।
न चाम्भसा विना सृष्टिर्विश्वस्यास्य भविष्यति॥३॥
इति संचिन्त्य भगवान् स्तोत्रं भगवतो रवेः।
चकार तन्मयो भूत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः॥४॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ये यन्मयं सर्व्वमेतत्सर्व्वमयश्च यः।

मार्कण्डेयजी बोले—

सूर्य के उस तेज से समस्त आकाश तथा पृथ्वीतल को संतप्त होता देखकर पद्मयोनि पितामह ब्रह्माजी सृष्टि रचने की चिन्ता से व्याकुल हुए॥१॥ उत्पत्ति, पालन और प्रलय के कारण रूप भगवान् सूर्य के इस तेजसे मेरी रचीहुई सृष्टि नाश को प्राप्त होजायगी॥२॥ इस तेज से सब प्राणियों के प्राण निकल जावेंगे और जल सूख जाँयगे और इस संसारकी सृष्टि जलके विना नहीं चलेगी॥३॥ यह सोचकर लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा ने एकाग्र चित्त होकर सूर्य भगवान् की स्तुति की॥४॥

ब्रह्माजी बोले—

मैं उन विश्वमूर्ति, परमज्योति सूर्यको नमस्कार करता हूँ जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है और

विश्वमूर्त्तिः परं ज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्ति योगिनः॥ ५॥
य ऋङ्मयो यो यजुषां निधानं साम्नाञ्च यो योनिरचिन्त्यशक्तिः। त्रयीमयी स्थलतयार्द्धमात्रा परस्वरूपो गुणपारयोग्यः ॥ ६ ॥
तं सर्व्वहेतुं परमेड्यवेद्यमादौ परज्योतिरवह्नि-रूपम्। स्थूलञ्च देवात्मतया नमस्ये भास्वन्त-माद्यं परमं परेभ्यः ॥७॥
सृष्टिं करोमि यदहं तव शक्तिराद्या तत्प्रेरितो जल-मही-पवनाग्निरूपाम्। तद्देवतादिविषयां प्रण-वाद्यशेषां नात्मेच्छया स्थितिलयावपि तद्वदेव॥८॥
वह्निस्त्वमेव जलशोषणतः पृथिव्याः
सृष्टिं करोमि जगतांच तथाद्यपाकम्।
व्यापी त्वमेव भगवन् गगनस्वरूपं
त्वं पंचधा जगदिदं परिपासि विश्वम् ॥ ९ ॥
यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदो भवन्तं
विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिभयं विवस्वन्।
ध्यायन्ति चापि यतयो नियतात्मचित्ताः
सर्व्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामाः ॥ १० ॥
नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः।
परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः ॥११॥
उपसंहर तेजो यत् तेजसः संहतिस्तव।
सृष्टेर्विघाताय विभो सृष्टौ चाहं समुद्यतः ॥१२॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं संस्तुतो भास्वान् ब्रह्मणा सर्गकर्तृणा।
उपसंहृतवांस्तेजः परं स्वल्पमधारयत् ॥१३॥
चकार च ततः सृष्टिं जगतः पद्मसम्भवः।
तथा तेषु महाभागः पूर्व्वकल्पान्तरेषु वै ॥१४॥
देवासुरादीन् मर्त्यांश्च पश्वादीन् वृक्षवीरुधः।
ससर्ज्ज पूर्व्ववद्ब्रह्मा नरकांश्च महामुने ॥१५॥

जो सर्व्वमय हैं तथा जिनका योगी ध्यान करते हैं॥ और जो ऋग, यजुर, साममय और अचिंत्यशक्ति हैं तथा जो तीनों वेदमय स्थूलरूप और अर्द्धमात्रा संयुक्त परम स्वरूप और अपार गुण वाले हैं ॥ ६ ॥ मैं उन सूर्य भगवान् को प्रणाम करता हूँ जो सब जगत् के कारण और परम स्तुति के योग्य हैं, जो आदि में परम ज्योतिस्वरूप और अग्नि से पृथक् हैं तथा जो स्थूलरूप, देवताओं के आदि और परे से भी परे हैं ॥७॥ मैं आपकी आद्या शक्तिसे प्रेरित होकर जल, पृथ्वी, वायु, अग्निरूप, देवताओं तथा प्रणव आदि से संयुक्त, सृष्टि को रचता हूँ, इसी प्रकार स्थिति और प्रलय भी मेरी इच्छा से नहीं होता वरन् आपकी शक्तिसे ही होता है ॥८॥ पृथ्वी के जल को शोषण करने के लिये जल आप ही हैं, आपके पृथ्वी को संतप्त करने पर मैं सृष्टि रचताहूँ हे भगवन्! आकाश रूप होकर आपही व्याप्त हैं। आप पाँच रूप से इस विश्व का पालन करते हैं॥ हे विवस्वन्! परम आत्मज्ञानी यज्ञ करके आपको पूजते हैं और यती लोग अपनी मुक्ति की इच्छा से एकाग्र चित्त होकर विष्णु स्वरूप सर्व जगत्-सर्वेश्वर परम रूप आपका ध्यान करते हैं ॥ १० ॥ देवरूप, यज्ञरूप, परब्रह्म स्वरूप और योगियों से चिंत्यमान्! आपको नमस्कार है ॥११॥ हे विभो! मैं सृष्टि रचने में तत्पर हूँ, परन्तु आपका यह तेज समूह सृष्टि का नाश कर रहा है, अतः आप इस को हरण कर लीजिये ॥ १२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

सृष्टि रचते हुए ब्रह्माजी से इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् सूर्य ने अपने तेजको शमन करके थोड़ा सा तेज शेष रहने दिया ॥ १३ ॥ फिर पद्मयोनि ब्रह्माजी ने उसी प्रकार सृष्टि की रचना की जिस प्रकार कि उन्होंने पहिले कल्पों में की थी ॥ १४ ॥ हे महामुनि कौष्टुकिजी! ब्रह्माजी ने पहिले की तरह देवता, असुरों, पशु, वृक्ष लता और नरक इत्यादि का निर्माण किया ॥१५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में आदित्य स्तव नाम का १०३वां अध्याय समाप्त।



एकसौचारवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत् ।
वर्णाश्रम-समुद्राद्रि-द्वीपानां पूर्ववद्यथा ॥ १ ॥
देवदैत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्ववत् ।
देवेभ्य एव भगवानकरोत् कमलोद्भवः ॥ २ ॥
ब्रह्मणस्तनयो योऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः ।
कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् काश्यपो नाम नामतः ३ ॥
दक्षस्य तनया ब्रह्मन् तस्य भार्य्यास्त्रयोदश ।
बहवस्तत्सुताश्चासन् देव-दैत्योरगादयः ॥ ४ ॥
अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।
दैत्यान् दितिर्दनुश्चोग्रात् दानवानुरुविक्रमान् ॥ ५ ॥
गरुडारुणौ च विनता यक्ष-रक्षांसि वै खसा ।
कद्रुः सुपाव नागांश्च गन्धर्व्वान् सुषुवे मुनिः ॥ ६ ॥
क्रोधाया जज्ञिरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः ।
ऐरावतादीन् मातङ्गानिरा च सुषुवे द्विज ॥ ७ ॥
ताम्रा च सुषुवे श्येनी-प्रमुखाः कन्यका द्विज ।
यासां प्रसूताः खगमाः श्येन-भास-शुकादयः ॥ ८ ॥
इलायाः पादपा जाताः प्रधायाः पततां गणाः ।
अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः ॥ ९ ॥
तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्र-दौहित्रिकादिभिः ।
व्याप्तमेतज्जगत् सूत्या तेषां तासांश्च वै मुने ॥ १० ॥
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः ।
सात्त्विका राजसास्त्वेते तामसाश्च मुने गणाः ॥ ११ ॥
देवान् यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान् ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ १२ ॥
तानबाधन्त सहिताः सपत्ना दैत्य-दानवाः ।
राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत् सुदारुणम् ॥ १३ ॥
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु पराजीयन्त देवताः ।
जयिनश्चाभवन् विप्र बलिनो दैत्यदानवाः ॥ १४ ॥
ततो निराकृतान् पुत्रान् दैतेयैर्दानवैस्तथा ।
हृतत्रिभुवनान् दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तम ॥ १५ ॥
आच्छिन्नयज्ञभागांश्च शुचा सम्पीडिता भृशम् ।
आराधनाय सवितुः प्रचक्रमे ॥ १६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

ब्रह्माजी ने इस जगत् की रचना करके वर्ण और आश्रम के अनुसार विभाग किये तथा पहिले की तरह समुद्र, द्वीप आदि की रचना की ॥ १ ॥ पद्मयोनि ब्रह्माजीने देवता, दैत्य और सर्प आदिकों के स्वरूप और स्थान पूर्ववत् निर्माण कर दिये ॥ २ ॥ ब्रह्मा के पुत्र मरीचि या कश्यप नाम से विख्यात हुए तथा मरीचि के पुत्र काश्यप हुए ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन्! दक्ष की तेरह कन्यायें काश्यप की स्त्रियां हुईं जिनसे कि देव, दैत्य और नाग आदि बहुत पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ अदिति से त्रिभुवनपति देवताओंकी, दितिसे उग्र दैत्योंकी और दनुसे पराक्रमी दानवों की उत्पत्ति हुई ॥ ५ ॥ विनतासे गरुड़ और अरुण, खसा से यक्ष और राक्षस, कद्रु से नाग और मुनि से गन्धर्व उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ क्रोधा से समस्त कुल्या, रिष्टा से सब अप्सरायें तथा इरासे ऐरावत आदि हाथी उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ हे द्विज! ताम्रा ने श्येनी आदि कन्याओं को जना जिनसे कि बाज़, कबूतर, तोते आदि पक्षीगण उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ इला से सब वृक्षों का जन्म हुआ और प्रधासे सब तालाबों का। कश्यपकी अदितिसे जो संतान हुई ॥ ९ ॥ उनके पुत्र, धेवते, नाती और प्रपौत्रों से तथा अन्य स्त्रियों की सन्ततिसे यह संसार व्याप्त होगया ॥ १० ॥ कश्यप के पुत्रों में प्रधान देवताहुए जो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से युक्त थे ॥ प्रजापति परमेष्ठी ब्रह्माजी ने देवताओं को त्रिभुवन पति तथा यज्ञभोजी बनाया ॥ १२ ॥ उनके सौतेले भाई दैत्य, दानवों और राक्षसों ने देवताओं से वैर किया और उनका आपस में भीषण युद्ध हुआ ॥ १३ ॥ हे विप्र! एक हजार दिव्य वर्षों तक युद्ध होने के बाद देवता परास्त हुए तथा बलवान् दैत्य और दानव विजयी हुए ॥ १४ ॥ फिर दितिके पुत्र दैत्यों से अपने पुत्रों को पराजित और त्रिभुवनसे रहित किये गये देखकर अदिति को ॥ १५ ॥ बड़ा दुःख हुआ और उसने देवताओंका यज्ञभाग छिना हुआ देखकर भगवान सूर्य की आराधना करने का यत्न किया ॥ १६ ॥ उसने नियम से नियताहारी

एकाग्रा नियताहारा परं नियमास्थिता ।
तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् ॥१७॥

अदितिरुवाच

नमस्तुभ्यं परां सूक्ष्मां सौवर्णीं बिभ्रते तनुम् ।
धाम धामवतामीश धाम्नामाधार शाश्वत ॥१८॥
जगतामुपकाराय तथापस्तव गोपते ।
आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥१९॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनेन्दुमयं रसम् ।
बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥२०॥
तमेव मुञ्चतः सर्व्वं रसं वै वर्षणाय यत् ।
रूपमाप्यायकं भास्वंस्तस्मै मेघाय ते नमः ॥२१॥
वार्य्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषञ्चौषधीगणम् ।
पाकाय तव यद्रूपं भास्करं तं नमाम्यहम् ॥२२॥
यच्च रूपं तवातीव हिमोत्सर्गादिशीतलम् ।
तत्कालशस्यपोषाय तरणे तस्य ते नमः ॥२३॥
नातितीव्रञ्च यद्रूपं नातिशीतंच यत् तव ।
वसन्तर्त्तौ रवे सौम्यं तस्मै देव नमो नमः ॥२४॥
आप्यायनमशेषाणां देवानांच तथा परम् ।
पितृणांच नमस्तस्मै शस्यानां पाकहेतवे ॥२५॥
यद्रूपं जीवनायैकं वीरूधामसृतात्मकम् ।
पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः ॥२६॥
आभ्यां यदर्करूपाभ्यां रूपं विश्वमयं तव ।
समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गणात्मने ॥२७॥
यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव ।
विश्वमेतत् त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो ॥२८॥
यत् तु तस्मात् परं रूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम् ।
अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने ॥२९॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ॥३०॥
ततः कालेन महता भगवांस्तपनोऽम्बरे ।
प्रत्यक्षतामगादस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तम ॥३१॥
। ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।

और एकाग्र चित्त होकर आकाशस्थ तेजराशि भगवान् सूर्य की स्तुति की ॥ १७ ॥

अदिति बोली—

हे ईश! मैं आप के सौवर्णी और परम सूक्ष्म शरीर धारण करने वाले धामों के धाम, शाश्वत रूप को नमस्कार करती हूँ ॥१८॥ हे गोपते! जगत् के उपकार के लिये किरणों द्वारा जल खींचनेवाले आपके स्वरूप को नमस्कार है ॥ १९ ॥ आठ महीने तक अति तीव्र रूप से जल खींचने वाले आपके रूप को नमस्कार करती हूँ ॥२०॥ हे भास्वन्! उस जल को आप मेघों द्वारा वर्षा करके छोड़ते हैं ऐसे आप्यायक मेघरूप आपको नमस्कार है ॥२१॥ फिर वर्षे हुए जल को भास्कर रूप से पचाकर आप औषधियों को उत्पन्न करते हैं। मैं आपके इस भास्कर रूपको नमस्कार करतीहूँ ॥२२॥ हे तरणि! शस्य की वृद्धि के लिये आप जो हिमवत् शीतल रूप धारण करते हैं उस शीतल रूप को नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे रवि! वसन्त ऋतु में जो आपका न अति तीव्र और न अति शीतल सौम्य रूप होता है उसको नमस्कार है ॥२४॥ देवताओं तथा पितरों को तृप्त करने के लिये अनाजों को पकाने वाले! आपके रूप के निमित्त नमस्कारहै ॥२५॥ देवताओं पितरों और प्राणियों के पीने के लिये जो आप अमृतमय सोमरूप धारण करते हैं उस आप के सोमात्मा रूप को प्रणाम है ॥ २६ ॥ अग्नि और चन्द्रमा के सहित जो विश्वमय आपका स्वरूप है उस गणात्मक रूप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥२७॥ हे विभावसु! ऋक्, यजुः और सामके सम्मिश्रण से जो त्रयसंज्ञक तेज उत्पन्न होकर संसारको तृप्त करता है उस आपके स्वरूप को प्रणाम है ॥ २८ ॥ और उससे परे आपके सदात्मा रूप को जो प्रणव से युक्त तथा सूक्ष्म, अनन्त और अमल है मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि! इस प्रकार अदिति निराहारी और नियमित रूप से सूर्य की दिन रात्रि स्तुति करने लगी ॥ ३० ॥ बहुत समय व्यतीत होने पर भगवान् सूर्य ने आकाश में प्रकट होकर दक्षसुता अदिति को दर्शन दिया ॥ ३१ ॥ उसने आकाश में स्थित उस तेजपुञ्ज रूप सूर्य को पृथ्वीतक ज्योति फैलाते हुए देखा। उनका स्वरूप अत्यन्त जाज्व-

भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालामालातिदुर्दृशम् ३२
तं दृष्ट्वा सा तदा देवी साध्वसं परमं गता ।
जगाद मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ॥३३॥
यथा दृष्टवती पूर्व्वमम्बरस्थं सुदुर्दृशम् ।
निराहारा विवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ॥३४॥
संघातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भूतले ।
प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ।
भक्तानुकम्पक विभो भक्ताहं पाहि मे सुतान ॥३५॥
त्वं धाता विसृजसि विश्वमेतत्
त्वं पासि स्थितिकरणाय सम्प्रवृत्तः ।
त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं
त्वत्तोऽन्या न हि गतिरस्ति सर्व्वलोके ॥३६॥
त्वं ब्रह्मा हरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रो
वित्तेशः पितृपतिरम्बुपतिः समीरः
सोमोऽग्निर्गगनमहीधरोऽब्धिः
किं स्तव्यं तव सकलात्मरूप धाम्नः ॥३७॥
यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्म्मसक्ताः
स्तुवन्तो विधिपदैर्द्विजा यजन्ति ।
ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं
योगस्थाः परमपदं प्रयान्ति योगमूर्त्या ॥३८॥
तपसि पचसि विश्वं पासि भस्मीकरोषि
प्रकटयसि मयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ।
सृजसि कमलजन्मा पालयस्यच्युताख्यः
क्षपयसि च युगान्ते रुद्ररूपो त्वमेवः ॥३९॥

मान् होने के कारण देखा न जाता था ॥ ३२ ॥ वह देवी उस रूपको देखकर अत्यन्त दुःखित हुई और कहा, "हे गोपते ! आप प्रसन्न हों, मैं आपको नहीं देख सकती" ॥३३॥ हे सूर्य ! दुर्दृश आपको जिस प्रकार मैं पहिले देख सकती थी उस प्रकार अब निराहार होने के कारण नहीं देख सकती हूँ ॥३४॥ हे भक्तों पर दया करने वाले विभो ! जैसा तेज का समूह आपका आकाश में है वैसाही रूप मैं पृथ्वी पर देखती हूँ। हे दिवाकर ! मुझपर कृपा करके इस रूप को मेरे पुत्रों को दिखाइये और उनकी रक्षा कीजिये ॥ ३५ ॥ तुम ब्रह्मा होकर इस जगत् को उत्पन्न करते हो, पालन करने के लिये प्रवृत्त होकर रक्षा करते हो तथा अन्त में यह जगत् तुम में ही लीन होगा, सर्वलोक में तुम्हारे विना कोई गति नहीं है ॥ ३६ ॥ तुम ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुवेर, यम, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र सब हो। आपकी क्या स्तुति करूं आप सकलात्मा रूप हैं ॥ ३७ ॥ हे यज्ञेश ! प्रतिदिन अपने कर्मों में प्रवृत्त ब्राह्मण लोग अनेक पदों से आपका यजन करते हैं तथा योगी एकाग्र चित्त होकर आपकी योगमूर्ति का ध्यान करते हुए परमपद को प्राप्त करते हैं ॥ ३८॥ संसार को आप ही तप्त करते, पचाते और भस्म करते हैं तथा आपही उसकी रक्षा करते हैं। आमयूख किरणोंसे प्रगट करने तथा अम्बुगर्भ किरणों से हर्षित करते हैं। आप ब्रह्मा होकर उत्पत्ति, विष्णु होकर पालन और रुद्र होकर कल्पान्त में प्रलय करते हैं ॥३९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में दिवाकर स्तुति नाम १०४वाँ अ० समाप्त।

एकसौपाँचवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः ।
अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः ॥ १ ॥
अथ तां प्रणतां देवीं तस्य सन्दर्शनान्मुने ।
प्राह भास्वान् वृणुष्वेष्टं वरं मत्तो यमिच्छसि॥ २ ॥
प्रणता शिरसा सा च जानुपीडितमेदिनी ।

मार्कण्डेयजी बोले—

उस समय सूर्यदेव ने अपने तेज से तप्त ताम्र के समान रूप धारण कर अदिति को दर्शन दिया ॥ १ ॥ हे क्रौष्टुकि ! उनके दर्शन पाकर प्रणामकरती हुई अदिति से भगवान् सूर्य ने कहा कि जो इच्छा हो वर मांगो ॥ २॥ फिर वर देने के लिये उपस्थित हुए सूर्यदेव से शिर झुकाकर तथा पृथ्वी पर घुटने

प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥ ३ ॥
देव प्रसीद पुत्राणां कृतं त्रिभुवनं मम ।
यज्ञभागाश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिकैः ॥ ४ ॥
तन्निमित्तप्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते ।
अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा नाशय तद्रिपून् ॥ ५ ॥
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो ।
भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥ ६ ॥
तथानुकम्पां पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम ।
कुरु प्रपन्नार्त्तिहर स्थितिकर्ता त्वमुच्यते ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः ।
प्रणतामदितिं विप्र प्रसादसुमुखो विभुः ॥ ८ ॥
सहस्रांशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः ।
त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृताः ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् ।
निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता॥१०॥
ततो रश्मिसहस्रन्तु सौषुम्णाख्यो रवे करः ।
विप्रावतारं संचक्रे देवमातुरथोदरे ॥११॥
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि सा च चक्रे समाहिता ।
शुचिनी धारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज ॥१२॥
ततस्तां कश्यपः प्राह किंचित्कोपप्लुताक्षरम् ।
किं मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी॥१३॥
सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत् पश्यसि कोपन ।
न मारितं विपक्षाणां मृत्यवे तद्भविष्यति ॥१४॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज्ज सुरारनिः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥१५॥
तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा ऋग्भिराद्याभिरादरात् ॥१६॥
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥१७॥
अथान्तरीक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ।
सतोयमेघगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥१८॥
मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने ।
तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति॥१९॥

टेक कर अदिति ने कहा ॥३॥ हे देव ! आप प्रसन्न हों। बल में अधिक दैत्य और दानवों ने मेरे पुत्रों को त्रिभुवन और यज्ञ के अधिकारों से च्युत कर दिया है ॥४॥ हे गोपते ! उनके निमित्त मेरे ऊपर कृपा करो, तथा अपने अंश से उनके भ्रातृत्व को पाकर शत्रुओं का नाश करो ॥५॥ हे प्रभु दिवाकर! जिस प्रकार कि मेरे पुत्र यज्ञ के भोगकर्ता और त्रैलोक्य के स्वामी होजावें ॥ ६ ॥ हे रवि ! आप प्रसन्न होकर वैसी कृपा मेरे पुत्रों के ऊपर करें। आप स्थितिकर्ता कहलाते हैं, मेरे पुत्रों के कष्ट को हरिये ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे विप्र ! यह सुनकर भगवान् भास्कर प्रसन्न होकर प्रणाम करती हुई अदिति से बोले ॥ ८ ॥ हे अदिति ! मैं सहस्र अंश से तुम्हारे गर्भ में प्राप्त होऊँगा और जन्म लेकर तुम्हारे पुत्रों के शत्रुओं का नाश करूँगा ॥९॥ यह कहकर सूर्यदेव अंतर्द्धान होगये और अदिति भी अपनी मनोकामना पाकर तप से निवृत्त हुई ॥ १० ॥ इसके बाद सुषुम्णा आदि हज़ारों किरणों से सूर्य ने देवमाता अदिति के गर्भ से अवतार लिया ॥ ११ ॥ हे क्रौष्टुकिजी ! अदिति ने पवित्र होकर और कृच्छ्र चन्द्रायण आदि व्रत करके उस दिव्य गर्भ को धारण किया ॥१२॥ तब कश्यप ने कुछ क्रोधयुक्त होकर उससे कहा कि नित्य उपवास करके क्या तुम गर्भ को मारोगी ॥ १३ ॥ अदिति ने कहा कि इस गर्भ को कोई नहीं मार सकता। यह तो शत्रुओं की मृत्यु के लिये उत्पन्न होगा ॥ १४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

पति के वचन से कुपित हुई देवमाता अदिति ने यह कहकर उस तेजपुञ्ज गर्भ को अपने पतिको दिखाया ॥१५॥ कश्यप ने सूर्य की कान्ति के समान उस गर्भको देखकर उसे प्रणामकिया तथा ऋग्वेद की ऋचाओं से आदर पूर्वक उसकी स्तुति की॥ इस प्रकार स्तुति को प्राप्त हुआ वह गर्भ कमलपत्र के समान रक्तवर्ण और अपने तेजसे सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ अण्डसे प्रकट हुआ १७॥ मुनिश्रेष्ठ कश्यप को लक्ष्य करके मेघ सदृश गंभीर आकाशवाणी हुई॥१८॥ हे मुनि! तुमने जो अदिति से यह कहा था कि इसे मारोगी क्या ? इसलिये तुम्हारा यह पुत्र मार्तण्ड नाम से विख्यात होगा॥

सूर्य्याधिकारंच विष्णुर्जगत्येष करिष्यति ।
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ॥२०॥
देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागमन् ।
प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हृतौजसः ॥२१॥
ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ।
सह देवैर्मुदा युक्ता दानवाश्च समभ्ययुः ॥२२॥
तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ।
शस्त्रास्त्रदीप्तिसन्दीप्तं समस्तभुवनान्तरम् ॥२३॥
तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः।
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः ॥२४॥
ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्व्वे दिवौकसः ।
तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिं तथा ॥२५॥
स्वाधिकारांस्तथा प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्व्ववत् ।
भगवानपि मार्त्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६॥
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्द्ध्वंच रश्मिभिः ।
वृत्ताग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुरद्वपुः ॥२७॥

यह तुम्हारा सामर्थ्यवान् पुत्र सूर्य का अधिकार स्वयं करेगा तथा यज्ञ भाग के हरने वाले राक्षसों का हनन करेगा ॥ २०॥ उस आकाशवाणी को सुन कर देवताओंको अपार हर्ष हुआ और दानव बल-हीन होगये ॥ २१ ॥ फिर इन्द्रने दैत्योंको देवताओं से युद्ध करने के लिये आमंत्रित किया और दानव युद्ध करने के लिये उपस्थित हुए ॥ २२ ॥ फिर देवताओं और असुरों का तुमुल युद्ध हुआ । उनके अस्त्र-शस्त्रों से त्रिभुवन में उजाला होगया ॥ २३ ॥ उस युद्ध में भगवान मार्तण्ड के देखते ही सब राक्षस उनके तेज से जलकर भस्म होगये ॥ २४ ॥ उस समय समस्त देवता परम हर्ष को प्राप्त हुए और उन्होंने तेजयोनि मार्तण्ड और अदिति की स्तुति की ॥ २५ ॥ फिर देवताओं ने पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञ भाग को प्राप्त किया, भगवान मार्तण्ड ने भी अपने अधिकार में प्रवृत्ति की ॥२६॥ कदम्ब के पुष्प के समान ऊपर नीचे उनका शरीर गोल अग्निपिंड की तरह होगया । उन्होंने अत्यन्त प्रगट शरीर धारण नहीं किया ॥ २७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मार्तण्डोत्पत्ति नाम १०५वां अ० समाप्त ।

एकसौछःवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते ।
प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्म्मा प्रजापतिः ॥ १ ॥
वैवस्वतस्तु सम्भूतो मनुस्तस्यां विवस्वतः ।
पूर्व्वमेव तथाख्यातं तत्स्वरूपं विशेषतः ॥ २ ॥
त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः ।
द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्यांच यमुनां मुने ॥ ३ ॥
मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः ।
ततो यमो यमी चैव यमलौ सम्बभूवतुः ॥ ४ ॥
यत् तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्त्तण्डस्य विवस्वतः।
तेनातितापयामास त्रीन् लोकान् सचराचरान्॥५ ।
गोलाकारन्तु तं दृष्ट्वा संज्ञा रूपं विवस्वतः ।
असहन्ती महत् तेजः स्वच्छायां प्रेक्ष्य साऽब्रवीत्॥६॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद प्रजापति विश्वकर्माने प्रसन्न होकर अपनी कन्या जिसका कि नाम संज्ञा था विवस्वान् सूर्य को विवाह दी ॥१॥ उस कन्या के विवस्वान् से वैवस्वत मनुनाम पुत्र उत्पन्न हुए । उसकी विशेष कथा हम पहिले कह चुके हैं ॥ २ ॥ गोपति सूर्य ने उससे दो भाग्यवान् पुत्र और यमुना नाम की एक कन्या ये सन्तान उत्पन्न कीं ॥ ३ ॥ उनमें ज्येष्ठ पुत्र श्राद्धदेव प्रजापति वैवस्वत् मनु हुए और इसके बाद यम और यमुना नाम एक पुत्र और कन्या जुड़वाँ पैदा हुए ॥४ ॥ विवस्वान् मार्तण्डके अधिक तेज से चर और अचर युक्त तीनों लोग अत्यन्त संतप्त होगये ॥ ५ ॥ गोलाकार विवस्वान् के महान् तेज को सहन न करती हुई संज्ञा अपनी छाया से बोली ॥ ६ ॥

संज्ञोवाच

हं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ।
निर्विकारं त्वयाप्यत्र स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥ ७ ॥
मौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी ।
संभाव्यौ नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ॥ ८ ॥

छायोवाच

आ केशग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् ।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम्॥९॥
इत्युक्ता च्छायया संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम्।
तत्रावसत् पितुर्गेहे कंचित् कालं शुभेक्षणा ॥१०॥
भर्त्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनःपुनः।
अगच्छद्वड़वा भूत्वा कुरून् विप्रोत्तरांस्ततः ॥११॥
तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा महामुने ॥१२॥
पितुः समीपं यातायाः संज्ञाया वाक्यतत्परा ।
तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता ॥१३॥
तस्यांच भगवान् सूर्य्यः संज्ञायामिति चिंतयन् ।
तथैव जनयामास द्वौ सुतौ कन्यकां तथा ।१४॥
पूर्व्वजस्य मनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेन सोऽभवत् ।
यस्तयोः प्रथमं जातः पुत्रयोर्द्विजसत्तम ॥१५॥
द्वितीयो योऽभवच्चान्यः स ग्रहोऽभूच्छनैश्वरः ।
कन्या भूत् तपती या तां वव्रे संवरणो नृपः ॥१६॥
संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाकरोत् ।
स्नेहान्न पूर्व्वजातानां तथा कृतवती सती ॥१७॥
मनुस्तत् क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे ।
बहुशो याच्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः॥१८॥
स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
पदा सन्तर्ज्जयामास छायासंज्ञां यमो मुने।
ततः शशाप च यमं संज्ञा साऽमर्षिणी भृशम् ॥१९॥

छायोवाच

पदा तर्ज्जयसे यस्मात् पितृभार्य्यां गरीयसीम् ।
तस्मात् तवैव चरणः पतिष्यति न संशयः ॥२०॥
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीड़ितमानसः ।
मनुना सह धर्म्मात्मा सर्व्वं पित्रे न्यवेदयत् ॥२१॥

यम उवाच

... तुल्यमस्मासु माता देव न वर्त्तते ।

संज्ञा बोली—

मैं अपने पिता के घर जाती हूं तुम मेरी आज्ञा से निर्विकार होकर यहाँ रहो। तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ७ ॥ इन दोनों बालकों और सुन्दर कन्या की रक्षा करना और इस भेद को भगवान् मार्तण्ड से न कहना ॥ ८ ॥

छाया बोली—

हे देवि ! जब तक कि सूर्य मेरे केश न पकड़ेंगे या शाप देने को उद्यत न होंगे तब तक मैं तुम्हारा भेद नहीं कहूँगी, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो जाओ ॥ छाया से इस प्रकार कहे जाने पर संज्ञा पिता के घर चली गई और वहाँ पिताके घरपर कुछ काल तक रही ॥१०॥ पिता के बार बार कहने पर कि अपने पतिके घर जाओ, संज्ञा घोड़ीका रूप धारण करके उत्तर दिशा में कुरुक्षेत्र को गई ॥ ११ ॥ हे महामुनि क्रौष्टुकिजी ! वहां उस साध्वीने निराहार रहकर तपस्या की ॥१२॥ संज्ञा के पितृ-गृह चले जाने पर छाया उसका रूप धारण करके भगवान् सूर्य के पास रहने लगी ॥१३॥ भगवान् सूर्यने उसे संज्ञा समझकर उससे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न किये॥१४॥हे द्विजश्रेष्ठ ! उन दोनों पुत्रोंमें जो पहिले उत्पन्न हुआ वह वैवस्वत मनु के समान सावर्णि नाम मनु हुआ ॥ १५॥ दूसरा पुत्र शनैश्चर नाम ग्रह हुआ और कन्या तपती नाम हुई जिसका विवाह राजा सम्वरण के साथ हुआ ॥ १६ ॥ छाया रूपी संज्ञा जितना प्यार अपने पुत्रों से करती उतना संज्ञा के पुत्रों से न करती ॥ १७ ॥ मनु ने तो इस बात को क्षमा करदी परन्तु यम ने इसको न सहा यद्यपि दुःखित होकर छाया ने यम को बहुत समझाया ॥ १८ ॥ हे मुनि ! होने वाली बात बड़ी बलवान् होती है, यम ने लड़कपन से क्रोध में आ कर छाया संज्ञा को मारने के लिये लात दिखाई, जिससे अत्यन्त क्रोधित होकर छाया संज्ञा ने यम को शाप दिया ॥ १९ ॥

छाया बोली—

जो तू पिता की स्त्री को लात दिखाकर मारना चाहता था इसलिये तेरा यह चरण गिरेगा, इसमें संशय नहीं ॥ २० ॥ यम ने भी शाप से अत्यन्त पीड़ित होकर धर्मात्मा मनु के साथ सब वृत्तान्त पिता से निवेदन कर दिया ॥२१॥

यम बोले—

हे देव ! हमारी माताका स्नेह हमपर तुल्य नहीं है

विसृज्य ज्यायसोऽप्यस्मान् कनीयांसौ बुभूर्षति॥२२॥
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ।
बाल्याद्वा यदि वा मोहात् तद्भवान् क्षन्तुमर्हति॥२३॥
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः ।
ततो न मंस्ये जननीमिमां वै तपतां वर ॥२४॥
विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पितः ।
पादस्ते पततां पुत्र कथमेतत् प्रवक्ष्यति ॥२५॥
तव प्रसादाच्चरणो न पतेद्भगवान् यथा ।
मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥२६॥

रविरुवाच

असंशयमिदं पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम् ।
येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्॥२७॥
सर्व्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते ।
न तु मात्राऽभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्त्तनम्॥२८॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातुर्वचस्तव ।
किंचित् तव विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९॥
कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम् ।
कृतं तस्या वचः सत्यं त्वञ्च त्रातो भविष्यसि॥३०॥

मार्कण्डेय उवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयेषु वै ।
तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ॥३१॥
नूनं नैषां त्वं जननी संज्ञा कापि त्वमागता ।
विगुणेष्वप्यपत्येषु कथं माता शपेत् सुतम् ॥३२॥
सा तत् परिहरन्ती च नाचचक्षे विवस्वतः ।
स चात्मानं समाधाय मुक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥३३॥
तं शप्तुमुद्यतं दृष्ट्वा च्छायासंज्ञां दिवस्पतिम् ।
भयेन कम्पती ब्रह्मन् यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥३४॥
विवस्वांस्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमभ्यगात् ।
स चापि तं यथान्यायमर्च्चयित्वा दिवाकरम् ।
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास सुव्रतः ॥३५॥

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम् ।
असहन्ती ततः संज्ञा वने चरति वै तपः ॥३६॥

मुझे और मेरे बड़े भाईकी अपेक्षा वह दोनों छोटे भाइयों को अधिक प्यार करती है ॥ २२ ॥ उसको मैं लड़कपन अथवा मोह से उसे लात से मारने को उद्यत हुआ, वस्तुतः मेरी लात उसके शरीरमें नहीं लगी, इसको आप क्षमा करने के योग्य हैं ॥ २३ ॥ मुझको जोकि मैं उनका पुत्र हूँ उन्होंने क्रोध वश शाप दिया है इसलिये मैं समझता हूँ कि वे मेरी माता नहीं हैं ॥२४ ॥ हे पिता ! यद्यपि पुत्र दुर्गुणी हो तो भी माता उसके साथ दुर्गुण नहीं करती, उन्होंने यह किस प्रकार शाप दिया कि तेरा पाँव गिर जायगा ॥ २५ ॥ हे भगवन् गोपते ! आपकी कृपा से माता के शाप के कारण मेरा पाँव न गिरे ऐसा उपाय सोचिये ॥ २६ ॥

सूर्य बोले—

निस्सन्देह यह कोई कारण है जिससे हे पुत्र तुम जैसे धर्मज्ञ और सत्यवादी को क्रोध उत्पन्न हुआ ॥२७॥ सब शापों की निवृत्ति हो सकती है परन्तु माता के दिये हुए शाप की कभी निवृत्ति नहीं होसकती ॥२८ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारी माता के दिये हुए शाप को मैं मिथ्या नहीं कर सकता परंतु स्नेहवश होकर तुम्हारे ऊपर अवश्य कुछ अनुग्रह करूँगा ॥२९॥ जब कृमि माँस लेकर पृथ्वी तलपर जावेंगे तब उसका वचन सत्य होगा और तुम्हारा भी परित्राण होजायगा ॥३०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

सूर्य ने छाया से कहा, "समान पुत्रों में तुम कुछ को अधिक और कुछ को कम प्रेम किस कारण करती हो" ॥ ३१ ॥ यह बात निश्चय ही है कि तुम इनकी माता नहीं हो। तुम कोई दूसरी स्त्री संज्ञा बनकर आगई हो क्योंकि एक माता अपने अवगुणी पुत्रको भी शाप नहीं देती ॥ ३२ ॥ परन्तु छाया ने विवस्वान् को कुछ न बताया, तब सूर्य ने ध्यान किया और सच बात को जान लिया ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! फिर छाया संज्ञा ने सूर्य को शाप देने को उद्यत देखकर भय से काँपते हुए जो कुछ सत्य बात थी निवेदन करदी ॥ ३४ ॥ यह सुनकर भगवान् सूर्य क्रुद्ध होकर श्वसुर को भस्म कर देने की इच्छा से उसके पास गये परन्तु उस सुव्रत ने दिवाकर का अर्चन कर उनको शान्त किया ॥३५॥

विश्वकर्मा बोले—

तुम्हारे अति दुःसह तेजस्वी रूप को सहन न कर सकने के कारण संज्ञा वनमें तपस्या कर रही है ॥३६॥ आप देखिये कि आपकी शुभ आचरण

द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वभार्य्यां शुभचारिणीम् ।
रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत् तपः ॥३७॥
स्मृतं मे ब्रह्मणो वाक्यं यदि ते देव रोचते ।
रूपं निवर्त्तयाम्येतत् तव कान्तं दिवस्पते ॥३८॥

मार्कण्डेय उवाच

यतो हि भास्वतो रूपं प्रागासीत् परिमण्डलम् ।
ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः ॥३९॥
विश्वकर्म्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः ।
भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शातनायोपचक्रमे ॥४०॥
भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता ।
समुद्राद्रि-वनोपेता सारुरोह मही नभः ॥४१॥
गगनञ्चाखिलं ब्रह्मन् सचन्द्र-ग्रह-तारकम् ।
अधोगतं महाभाग बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥४२॥
विक्षिप्तसलिलाः सर्व्वे बभूवुश्च तथार्णवाः ।
व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥४३॥
ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तम ।
त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धानि अधो जग्मुः सहस्रशः ॥४४॥
वेगभ्रमणसञ्जात-वायुक्षिप्ताः समन्ततः ।
व्यशीर्य्यन्त महामेघा घोररावविचारिणः ॥४५॥
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाश-रसातलम् ।
जगादाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ॥४६॥
त्रैलोक्ये सकले विप्र भ्रममाणे सुरर्षयः ।
देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥४७॥
आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत् स्वरूपतः ।
सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥४८॥
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ धर्म्म-वर्षा-हिमाकर ।
जुषस्व शान्तिं लोकानां देवदेव दिवाकर ॥४९॥
इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत् ।
जय देव जगद्व्यापिन् जयाशेषजगत्पते ॥५०॥
ऋषयश्च ततः सप्त व शिष्ठात्रिपुरोगमाः ।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥५१॥
वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालिखिल्याश्च तुष्टुवुः ।
भास्वन्तं ऋग्भिराद्याभिर्लिख्यमानं मुदा युताः ॥५२॥
त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ।

वाली भार्या आपके रूप की शान्ति के निमित्त वन में घोर तपस्या कर रही है ॥ ३७ ॥ हे देव ! मुझे ब्रह्माजी का वाक्य याद है । यदि आपकी रुचि हो तो मैं आपके रूप का निवर्त्तन कर दूँ ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--

तब भगवान् सूर्यने विश्वकर्मा से कहा कि जो आप कहते हैं वही होगा ॥३९॥ विश्वकर्मा सूर्य की आज्ञा पाकर शाकद्वीप में गये और वहाँ जाकर उन्होंने तेज को घुमाकर उसको अलग करने का यत्न किया ॥४०॥ विश्वकर्मा की नाभि में स्थित सूर्य के घूमने से सम्पूर्ण जगत और समुद्र, पर्वत वन से युक्त पृथ्वी आकाश में पहुँच गई ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मन् ! चन्द्रमा, ग्रह, तथा तारागणों सहित सम्पूर्ण आकाश नीचे जाकर व्याकुल होरहा था ॥ उपरोक्त सब जल में निमग्न होगये तथा बड़े-बड़े पर्वत फट गये ॥ ४३॥ हे मुनिसत्तम ! जिन स्थानों के आधार ध्रुव थे वे हजारों राशियों के अलग होजाने से नीचे गिर पड़े ॥ ४४ ॥ भ्रमण के वेग से उत्पन्न हुई वायु से बादल घोर गर्जन करते हुए चारों ओर फैल गये ॥ ४५ ॥ हे मुनि सत्तम ! सूर्य के घूमने से भूमि आकाश और पाताल सब घूमने लगे । उस समय सम्पूर्ण जगत् अत्यन्त व्याकुल हुआ ॥ ४६ ॥ हे विप्र ! सम्पूर्ण त्रैलोक्य के घूमने पर ब्रह्माजी के साथ देवताओं तथा ऋषियों ने सूर्यकी स्तुतिकी ॥४७॥ हे सूर्य ! आपके इस स्वरूप से ज्ञात होता है कि आपही देवताओं के आदिदेव हैं तथा सृष्टि, पालन तथा प्रलय रूप होकर आप ही तीन प्रकार से स्थित हैं ॥ ४८ ॥ हे जगन्नाथ ! आपका कल्याण हो । हे धर्म-वर्षा-हिमाकर, हे देव देव दिवाकर ! इन लोकों को शान्त कीजिये ॥४९॥ इन्द्र ने भी उस समय आकर उनकी मूर्त्ति तैयार करके स्तुतिकी । "हे देव ! जगत्व्यापी ! जगत्पते! आपकी जय हो " ॥ ५० ॥ वशिष्ठ और अत्रि के नेतृत्व में सप्त ऋषियों ने स्वस्ति २ कहते हुए अनेक स्तोत्रों से सूर्य की पूजा की ॥ ५१ ॥ यालिखिल्य भी वेदोक्त आदि ऋषि प्रसन्न चित्त होकर सूर्य की मूर्ति की स्तुति करने लगे ॥५२॥ हे नाथ ! मोक्षार्थियों के लिये आप परमध्येय हैं तथा कर्म-

त्वं गतिः सर्व्वभूतानां कर्म्मकाण्डेऽपि वर्त्तताम् ५३॥
शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश शं नोऽस्तु जगतांपते।
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे॥५४॥
ततो विद्याधरगणा यक्ष-राक्षस-पन्नगाः ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्व्वे शिरोभिः प्रणता रविम्॥५५॥
ऊचुरेवंविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ।
सह्यं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ॥५६॥
ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा ।
उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशला रविम् ॥५७॥
षड्ज-मध्यम-गान्धार-ग्रामत्रयविशारदाः ।
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम् ॥५८॥
विश्वाची च घृताची च उर्व्वश्यथ तिलोत्तमा।
मेनका सहजन्या च रम्भाश्चाप्सरसां वराः॥५९॥
ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ ।
हावभावविलासाढ्यान्कुर्व्वन्त्योऽभिनयान्बहून् ६०॥
प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वेणुवीणादिदर्दुराः ।
पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः ।
देवदुन्दुभयः शंखाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥६१॥
गायद्भिश्चैव गन्धर्व्वैर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ।
तूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम् ॥६२॥
ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्व्वदेवताः ॥६३॥
ततः कोलाहले तस्मिन् सर्व्वदेवसमागमे ।
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्म्मा शनैः शनैः ॥६४॥
इति हिमजलधर्म्मकालहेतोर्हर-कमलासन-
विष्णुसंस्तुतस्य । तनुपरिलिखनं निशम्य भानो-
र्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोन्ते ॥६५॥

काण्ड में तत्पर लोगों की आप गति हैं ॥ ५३ ॥ हे देवेश ! हे जगत्पते ! आप हमारा, प्रजाओं का और दुपायों का कल्याण करें ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर विद्याधरों, यक्षों, राक्षसों और नागोंने हाथ जोड़ कर सूर्यदेव को प्रणाम किया ॥ ५५ ॥ वे सब मन और कान को सुख देनेवाले इस प्रकार वचन बोले "हे भूतभावन ! आपका तेज सब प्राणियोंको सह्य हो" ॥५६॥ इसके बाद हाहा-हूहू नाम गन्धर्व, नारद और तुम्बुरु जो गान-विद्या में निपुण थे भगवान सूर्य का गुण गान करने लगे ॥ ५७ ॥ षडज, मध्यम, गान्धार, तीन ग्राम, मूर्च्छना, ताल और प्रयोगके साथ वहाँ पर सुखदायक नृत्य होने लगा ॥ ५८ ॥ विश्वाची, घृताची, उर्व्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या और रम्भा आदि सुन्दर अप्सरायें॥५९॥ जगत् के स्वामी सूर्य की मूर्ति के सामने हाव, भाव विलास के साथ बहुतसे अभिनव करती हुईं नृत्य करने लगीं ॥ ६० ॥ वहाँ पर वेणु, वीणा, पणव, पुखराज, मृदङ्ग तथा देवताओं की सैकड़ों दुन्दु-भियां और हजारों शंख बजने लगे ॥६१॥ गन्धर्वों के गान, अप्सराओं के नृत्य, और बाजों के शब्द से जगत् में कोलाहल मचगया ॥ ६२ ॥ तब सब देवताओं ने हाथ जोड़ कर तथा भक्ति से नम्र हो कर सूर्य की मूर्ति को प्रणाम किया ॥ ६३ ॥ तब कोलाहलपूर्ण देवताओं के उस समागम में विश्व-कर्मा ने धीरे-धीरे सूर्य के तेज को शमन करके कम कर दिया ॥ ६४ ॥ जो लोग हिम-जल-उष्णकाल के कारण तथा विष्णु, ब्रह्मा और महेश से मूर्ति रूप में स्तुति किये गये सूर्य के चरित्र को सुनते हैं वे अपनी आयु के अन्तमें सूर्य लोक को जाते हैं ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में भानुतनु लिखनेनाम १०६वाँ अध्याय समाप्त ।



एकसौसातवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

लिख्यमाने ततो भानौ विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
उद्भूतपुलकः स्तोत्र मिदं चक्रे विवस्वतः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर प्रजापति विश्वकर्माने पुलकायमान होकर सूर्य की मूर्ति की इस प्रकार स्तुति की ॥ १ ॥

विवस्वते प्रणतहितानुकम्पिते महात्मने समजवसप्तसप्तये। सुतेजसे कमलकुलावबोधिते नमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥ २ ॥

पावनातिशयपुण्यकर्म्मणे नैककामविषयप्रदायिने। भास्वरानलमयूखशायिने सर्व्वलोकहितकारिणे नमः ॥ ३ ॥

अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय। नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्य्याय चक्षुःप्रभवालयाय ॥ ४ ॥

विवस्वते ज्ञानभृतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे। स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥ ५ ॥

क्षणमुदयाचलमौलिमालः सुरगणसहितो हितो जगतः। त्वमुरुमयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन् ॥ ६ ॥

भवतिमिरासवपानमदात् भवति विलोहितविग्रहात्। मिहिर विभासि यतः सुतरां त्रिभुवन पावनभानिकरैः ॥ ७ ॥

रथमधिरुह्य समावयवं चारु विकम्पितमुरुरुचिरम्। सततमखिलहयैर्भगवन् चरसि जगद्धिताय वितंतम् ॥ ८ ॥

अमृतसुधांशुरसेन समं विबुध पितॄनपि तपयसे। अरिगणसूदन तेन तव प्रणिपत्य लिखामि जगद्धिताय ॥ ९ ॥

शुकसमवर्णहयप्रथितं तव पदपांशुपवित्रतलम्। नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवनपावन पाहि रवे १०

इति सकलजगत्प्रसूतिभूतं त्रिभुवनपावनधामभूतम्। रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं देवं प्रणतोऽस्मि विश्वकर्म्माणम् ॥ ११ ॥

हे प्रणतपाल! सब लोगों के हितकारी, महात्मन्! सप्तकिरण, तेजवान्, कमल-वन प्रकाशक, अंधकार नाशक विवस्वान्! मैं आपको प्रणाम करताहूँ ॥२॥ अतिशय-पावन, पुण्यकर्मी, अनेक अभिवांछित विषयों के प्रदान करने वाले, अग्नि-किरणधारी, सर्वलोकहितकारी सूर्यदेव को नमस्कार है ॥ ३ ॥ जन्मरहित, तीनों लोक के कारण, भूतात्मा, गोपति वृष, महा कृपालु, सब के चक्षुओं में निवास करने वाले सूर्य को प्रणाम है ॥ ४ ॥ ज्ञानात्मा, जगत की प्रतिष्ठा, जगत् के हितकारी, स्वयम्भू, समस्त लोक के चक्षु, सुरोत्तम, अमित तेजस्वी सूर्य के प्रति नमस्कार है ॥ ५ ॥ हे देव! आप उदयाचल पर्वत से निकल कर देवताओं सहित समस्त संसार का कल्याण करने के लिये अन्धकार का नाश करके हजारों किरणों से प्रकाशमान् होते हैं ॥ ६ ॥ संसार के अन्धकार रूपी आसव को पान करने के कारण आपका शरीर रक्तवर्ण होगया है, आप अपनी किरणों से त्रिभुवन को प्रकाशित करते हुए इच्छा पूर्वक भ्रमण करते हैं ॥ ७ ॥ हे भगवन्! आप अपने घोड़ों से युक्त रथ पर सवार होकर शरीर को कम्पित करतेहुए जगत्की भलाई के लिये सब दिन भ्रमण करते हैं ॥८॥ हे शत्रुओंके नाश करनेवाले! आप अमृतयुक्त रसदेकर देवताओं तथा पितरों को तृप्त करते हैं। आपको प्रणाम करके जगत के हित के लिये ही आपकी प्रतिमा बनाई गई है ॥ ९॥ हे त्रिभुवन पावन! आपके घोड़े का रङ्ग तोते के रङ्ग के समान है आप के चरणों की रज से हम पवित्र होते हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं, हमारी रक्षा कीजिये ॥१०॥ समस्त जगत के उत्पत्तिकारक, त्रिभुवन के पवित्र धाम, सकल जगत् के दीपक, समस्त संसार की रचना करने वाले सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सूर्य-स्तवन नाम का १०७वां अध्याय समाप्त।



एकसौआठवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवं सूर्य्यस्तवं कुर्व्वन् विश्वकर्म्मा दिवस्पतेः।
तेजसः षोड़शं भागं मण्डलस्थमधारयत् ॥ १ ॥
शातितैस्तेजसो भागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा।
अतीव कान्तिमच्चारु भानोरासीत तदा वपुः॥ २ ॥
शातितश्चास्य यत् तेजस्तेन चक्रं विनिर्म्मितम्।
विष्णोः शूलंच शर्व्वस्य शिविका धनदस्य च।
दण्डः प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा ॥ ३ ॥
अन्येषाञ्चैव देवानामायुधानि स विश्वकृत्।
चकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये ॥ ४ ॥
इति शातिततेजाः स शुशुभे नातितेजसा।
वपुर्दधार मार्त्तण्डः सर्व्वावयवशोभनम् ॥ ५ ॥
स ददर्श समाधिस्थः स्वां भार्य्यां वड़वाकृतिम्।
अधृष्यां सर्व्वभूतानां तपसा नियमेन च ॥ ६ ॥
उत्तरांश्च कुरून् गत्वा भूत्वाऽश्वो भानुरागमत्।
सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया ॥ ७ ॥
जगाम सम्मुखे तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा।
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः ॥ ८ ॥
वड़वायाश्च तत् तेजो नासिकाभ्यां विवस्वतः।
देवौ तत्र समुत्पन्नावश्विनौ भिषजां वरौ ॥ ९ ॥
नासत्यदस्रौ तनयावश्ववक्त्राद्विनिर्गतौ।
मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि ॥ १० ॥
रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी धन्वी तनुत्रधृक्।
अश्वारूढ़ः समुद्भूतो वाण-तूणसमन्वितः ॥ ११ ॥
ततः स्वरूपममलं दर्शयामास भानुमान्।
तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे ॥ १२ ॥
स्वरूपधारिणीञ्चेमां स निनाय निजालयम्।
संज्ञां भार्य्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः॥ १३ ॥
ततः पूर्व्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः।
द्वितीयश्च यमः शापाद्धर्म्मदृष्टिरनुग्रहात् ॥ १४ ॥
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीड़ितमानसः।
धर्म्मोऽभिरोचते यस्माद्धर्म्मराजस्ततः स्मृतः ॥ १५ ॥
कृमयो मांसमादाय पादतस्ते महीतलम्।

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार सूर्यकी स्तुति करते हुए वि- ने उस तेज के सोलहवें भाग को मण्डलस्थ क- दिया ॥१॥ उस तेज के पन्द्रह भागों के कट से सूर्य भगवान् का शरीर अति कान्तियुक्त सुन्दर होगया ॥ २ ॥ जो पन्द्रह भाग तेज ... किया गया था, उससे विष्णु का सुदर्शन चक्र महादेव का शूल, कुवेर की पालकी, यमराज का दण्ड, देवताओं के सेनापति की शक्ति ॥ ३ ॥ तथा और देवताओं के अनेक आयुध विश्वकर्मा ने ... के उस तेज से असुरोंका नाश करनेके लिये वनाये ॥ ४ ॥ अधिक तेज के अलग होजाने से सूर्य का तेज सह्य होगया और वे अत्यन्त शोभायमान अवयवों से युक्त होकर सुन्दर शरीर वाले होगये ॥ ५ ॥ तव उन्होंने समाधिस्थ होकर अपनी स्त्री को घोड़ी के रूप में सब प्राणियों से अलग तप में लवलीन देखा ॥ ६॥ फिर सूर्य घोड़े का रूप धारण कर कुरुक्षेत्र की उत्तर दिशा में जहां कि उनकी स्त्री थी गये और संज्ञाभी उनको आया हुआ देख कर परपुरुष की आशंका से ॥ ७ ॥ अपने पिछले भाग की रक्षा करती हुई उनके सन्मुख आई, तव वहाँ उन दोनों की नाक से नाक मिलगई ॥ ८ ॥ सूर्य भगवान् का जो तेज नाक के मार्ग से घोड़ीके उदरमें गया उससे देवताओंके वैद्य दोनों अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ अश्वरूपधारी मार्तण्ड के नासत्य और दस्र नामक दोनों पुत्र अश्विनी के मुख से उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ तथा अन्त में उनके वीर्य से खड्ग और धनुष धारण किये, अश्व पर चढ़े हुए, वाण और तरकश लिये रेवन्त नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ फिर सूर्य ने अपने निर्मल स्वरूप को दिखाया और संज्ञा उनके उस शान्त स्वरूप को देखकर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुई ॥ फिर संज्ञा ने भी अपना असली स्वरूप धारण किया और सूर्य भगवान् उसको अपने घर लिवा कर लेगये। फिर संज्ञा और सूर्य में परस्पर प्रीति रहने लगी ॥ १३॥ उनका सबसे ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु हुआ और दूसरा पुत्र यम शापके कारण पिता के अनुग्रह से धर्म दृष्टि हुआ ॥ १४ ॥ छाया के शाप से यमराज के चित्त को वड़ा क्लेश हुआ। उनकी धर्म में रुचि होने के कारण वे धर्मराज कह लाये ॥१५॥ उनके पिता ने यह कहकर कि तुम्हारे

गतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम्॥१६॥
धर्म्मदृष्टियतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते।
ततो नियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः॥१७॥
तस्मै ददौ पिता विप्र भगवान् लोकपालताम्।
पितृणामाधिपत्यंच परितुष्टो दिवाकरः॥१८॥
यमुनाञ्च नदीं चक्रे कलिन्दान्तरवाहिनीम्।
अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना॥१६॥
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तो विनियोजितः।
एवमप्याह च ततो भगवाँल्लोकभावितः।
त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्यो वत्स भविष्यसि॥२०॥
अरण्यादिमहादाव-वैरि-दस्युभयेषु च।
त्वां स्मरिष्यन्ति ये मर्त्या मोक्ष्यन्ते ते महापदः॥२१॥
क्षेमं बुद्धिं सुखं राज्यमारोग्यं कीर्त्तिमुन्नतिम्।
नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः सम्प्रदास्यसि॥२२॥
छायासंज्ञासुतश्चापि सावर्णः सुमहायशाः।
भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णकोऽष्टमः॥२३॥
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरते प्रभुः।
भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः॥२४॥
यवीयसी तु या कन्यादित्यस्याभूद्द्विजोत्तम।
अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी॥२५॥
यस्तु ज्येष्ठो महाभागः सर्गो यस्येह साम्प्रतम्।
विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह॥२६॥
इदं यो जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा।
विवस्वतस्तनूजानां रवेर्माहात्म्यमेव च॥२७॥
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः।
अहोरात्रकृतं पापमेतच्छमयते श्रुतम्।
माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः॥२८॥

पाँव के माँस को कीड़े पृथ्वीतल पर ले जाँयगे, उनके शाप का अन्त कर दिया॥ १६॥ उस समय से यम धर्मदृष्टि होकर शत्रु और मित्रको समभाव से देखने लगे, तब सूर्य ने उनको दक्षिण दिशा में ले जाकर॥१७॥ लोकपाल बनाया तथा भगवान् दिवाकर ने प्रसन्न होकर उन्हें पितरों का आधिपत्य भी दिया॥१८॥ फिर महात्मा पिता ने यमुना को कलिन्द देश में नदी के रूप में बहने की आज्ञा दी तथा दोनों अश्विनी कुमारों को देवताओं का वैद्य बनाया॥१६॥ रेवन्त को गुह्यकों का स्वामित्व दिया तथा भगवान् सूर्य ने उससे यह भी कहा, "हे वत्स! तुम समस्त लोकों द्वारा पूजित होगे" ॥२०॥ वन, अग्नि, वैरी और चोर आदि के भयमें जो लोक तुम्हारा स्मरण करेंगे वे कठिन विपत्ति से छुटकारा पावेंगे॥ २१॥ जो मनुष्य तुम्हारा पूजन करेंगे उनको तुम प्रसन्न होकर क्षेम, बुद्धि, सुख, राज्य आरोग्य, कीर्ति और उन्नति प्रदान करोगे॥२२॥ और छाया के पुत्र जो महान् यश वाले सावर्णिक हैं वे भविष्य में आठवें मनु होंगे॥ सावर्णिक प्रभु मेरु पर्वत पर अब भी तपस्या करते हैं। उनके भाई शनैश्चर उनकी आज्ञा से ग्रह हुए॥ २४॥ हे द्विज श्रेष्ठ! सूर्य की जो छोटी कन्या यमुना थी वह लोकों को पवित्र करने वाली श्रेष्ठ नदी हुई॥ २५॥ सूर्य के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनुका यह सर्ग है, इसका मैं विस्तारपूर्वक वर्णन करूंगा॥२६॥ विवस्वान् के पुत्रों के जन्म और भगवान् सूर्य के माहात्म्य को जो पढ़ता या सुनता है॥२७॥ वह आपत्ति से मुक्त होकर महान् यश को प्राप्त करता है। आदिदेव महात्मा मार्तण्ड के माहात्म्य को दिन रात्रि सुनने से पापका शमन होताहै॥२८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें रवि-माहात्म्य नाम १०८वाँ अ० स०।

एकसौनौवाँ अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् कथितः सम्यग्भानोः सन्ततिसम्भवः।
माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपञ्चातिविस्तरात्॥ १॥

क्रौष्टुकि बोले:—

हे भगवन्! आपने आदिदेव सूर्य की सन्तति माहात्म्य तथा स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन

भूयोऽपि भास्वतः सम्यङ्माहात्म्यं मुनिसत्तम।
श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यं कथयामि ते।
विवस्वतो यच्चकार पूर्व्वमाराधितो जनैः ॥ ३ ॥
दमस्य पुत्रो विख्यातो राजाभूद्राज्यवर्द्धनः।
स सम्यक् पालनं चक्रे पृथिव्याः पृथिवीपतिः॥ ४ ॥
धर्म्मतः पाल्यमानन्तु तेन राष्ट्रं महात्मना।
ववृधेऽनुदिनं विप्र जनेन च धनेन च ॥ ५ ॥
हृष्टपुष्टमतीवासीत् तस्मिन् राजन्यशेषतः।
राजकं सकलञ्चोर्व्व्यां पौरजानपदो जनः ॥ ६ ॥
नोपसर्गो न च व्याधिर्न च व्यालोद्भवं भयम्।
न चावृष्टिभयं तत्र दमपुत्रे महीपतौ ॥ ७ ॥
स ईजे च महायज्ञैर्ददौ दानानि चार्थिनाम्।
सुधर्म्मस्याविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥ ८ ॥
तस्यैवं कुर्व्वतो राज्यं सम्यक् पालयतः प्रजाः।
सप्त वर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहोयथा ॥ ९ ॥
विदूरथस्य तनया दाक्षिणात्यस्य भूभृतः।
तस्य पत्नी बभूवाथ मानिनी नाम मानिनी ॥१०॥
कदाचित् तस्य सा सुभ्रूः शिरसोऽभ्यञ्जनोद्यता।
पश्यतो राजलोकस्य मुमोचाश्रूणि मानिनी ॥११
तदश्रुविन्दवो गात्रे यदा तस्य महीपतेः।
तदा वीक्ष्याश्रुवदनां तामपृच्छत मानिनीम् ॥१२॥
निःशब्दमश्रुमोक्षेण रुदतीं तां विलोक्य वै।
किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यवर्द्धनः ॥१३॥
पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी।
न किञ्चिदिति तां भूयः पप्रच्छ स महीपतिः॥१४॥
बहुशः पृच्छतस्तस्य भूभृतः सा सुमध्यमा।
दर्शयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम् ॥१५॥
एतत् पश्येति भूपाल किमिदं मन्युकारणम्।
ममातिमन्दभाग्याया जहासाथ नृपस्ततः ॥१६॥
स विहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्व्वभूभृताम्।
पौराणाञ्च महीपाला ये तत्रासन् समागताः॥१७॥
शोकेनालं विशालाक्षि रोदितव्यं न ते शुभे।

किया ॥१॥ हे मुनिसत्तम ! फिर भी मैं भली भांति सूर्य का माहात्म्य और सुनने की इच्छा करता हूं, आप प्रसन्न होकर उसको कहने के योग्य हैं ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

आदिदेव भगवान् सूर्य ने मनुष्योंके आराधना करने पर जो चरित्र किया उसका माहात्म्य मैं तुम से कहता हूँ सुनो ॥३॥ दम का पुत्र राज्यवर्द्धन नाम राजा विख्यात हुआ। उस राजा ने पृथ्वी का भली भांति पालन किया ॥४॥ हे विप्र ! उस महात्मा राजा से धर्म पूर्वक पालन किया हुआ वह राज्य दिन पर दिन जन और धन से बढ़ने लगा॥ समस्त पृथ्वी पर उसके राज्य में नगरनिवासी प्रजाजन अत्यन्त हृष्ट पुष्ट थे ॥ ६॥ दम के पुत्र राज्यवर्द्धन के राज्य में कोई विघ्न, व्याधि, सर्पों का भय अथवा अनावृष्टि भय कभी न हुआ ॥ ७ ॥ उसने महान् यज्ञ किये तथा अर्थियों को दानादि दिये तथा निर्विरोध होकर उसने विषयों का भोग किया ॥ ८ ॥ उसको राज्य करते हुए तथा भली प्रकार से प्रजा का पालन करते हुए सात हज़ार वर्ष एक दिनके समान व्यतीत होगये ॥९॥ दक्षिण देश के राजा विदूरथ की कन्या मानिनी नाम उस की स्त्री हुई ॥१०॥ एक दिन वह सुन्दरी मानिनी सोते हुए राजा के शिर पर एक श्वेत बालको देख कर अश्रु प्रवाहित करने लगी ॥ ११ ॥ उसके अश्रु-विन्दु जब राजा के शरीर पर पड़े तो वे जगे और मानिनी को रोते हुए देखकर उससे पूछने लगे ॥ राज्यवर्द्धन ने उसको मौन होकर अश्रु प्रवाहित करते हुए देखकर पूछा, "हे मानिनी ! ये क्या ?" ॥ १३॥ स्वामी के पूछने पर मनस्विनी ने कहा कुछ नहीं, इसपर राजा ने फिर पूछा ॥१४॥ के बहुत पूछने पर उस सुन्दर कमरवाली : नी ने पके हुए बाल को दिखाया ॥ १५ ॥ हे राजन् देखिये, यह क्या है, मैं बड़ी अभागी हूँ। यह सुन कर राजा हँसे ॥१६॥ उस समय जितने राजा वहां आये थे उनके तथा नागरिकों के सामने वह हँस कर पत्नी से कहने लगे ॥ १७ ॥ हे विशालाक्षि ! शुभे ! शोक करके रोना वृथा है। सब प्राणियों

जन्मर्द्धिपरिणामाद्या विकाराः सर्व्वजन्तुषु ॥१८॥
अधीताः सकला वेदा इष्टा यज्ञाः सहस्रशः ।
दत्तं द्विजानां पुत्राश्च समुत्पन्ना वरानने ॥१९॥
भुक्ता भोगास्त्वया सार्द्धं ये मर्त्यैरतिदुर्लभाः ।
सम्यक् च पालिता पृथ्वी साधु युद्धेष्वनुष्ठितम् ॥२०
मित्रैः सहेष्टैर्हसितं विहृतञ्च वनान्तरे ।
किमन्यन्न कृतं भद्रे पलितेभ्यो बिभेषि यत् ॥२१॥
भवन्तु केशाः पलिता वलयः सन्तु मे शुभे ।
शैथिल्यमेतु मे कायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि॥२२॥
मूर्द्धि यद्दर्शितं भद्रे भवत्या पलितं मम ।
चिकित्सामेष तस्याहं करोमि वनसंश्रयात् ॥२३॥
बाल्ये बालक्रिया पूर्व्वं तद्वत् कौमारके च या ।
यौवने चापि या योग्या वार्द्धके वनसंश्रया ॥२४॥
एवं मत्पूर्व्वकैर्भद्रे कृतं तत्पूर्व्वकैश्च यत् ।
अतो न तेऽश्रुपातस्य किंचित् पश्यामि कारणम्॥२५
अलं ते मन्युना भद्रे नन्वभ्युदयकारि मे ।
दर्शनं पलितस्यास्य मारोदीर्निष्प्रयोजनम् ॥२६॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रणम्य तं भूपाः पौराश्चैव समीपगाः ।
राज्ञा मोचमहीपाला महर्षे राज्यवर्द्धनम् ॥२७॥
न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप ।
रोदितव्यमिहास्माभिरथवा सर्व्वजन्तुभिः ॥२८॥
यं ब्रवीषि यथा नाथ वनवासाश्रितं वचः ।
यान्ति तेन नः प्राणा लालितानां त्वया नृप ॥२९॥
सर्व्वे यास्यामहे भूप यदि याति भवान् वनम् ।
ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्व्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०॥
भविष्यति न सन्देहस्त्वयि नाथ वनाश्रये ।
सा च धर्म्मोपघाताय यदि तत् प्रविमुच्यताम्॥३१॥
सप्तवर्षसहस्राणि त्वयेयं पालिता मही ।
तत्समुत्थं महापुण्यमालोकय नराधिप ॥३२॥
वने वसन् महाराज त्वं करिष्यसि यत् तपः ।
तन्महीपालनस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३३॥

ऐश्वर्य के अन्त होने पर विकारों की उत्पत्ति होती है ॥१८॥ हे वरानने ! मैंने समस्त वेदोंका अध्ययन किया, हजारों यज्ञ किये, ब्राह्मणों को दान दिया तथा मेरे पुत्र भी उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ मनुष्यों को अति दुर्लभ भोग भी तुम्हारे साथ भोगे। पृथ्वीका भली भांति पालन किया और युद्ध में वीरता से काम लिया ॥२०॥ इष्टमित्रों के साथ हँसी मज़ाक किया तथा वनोपवनों में विहार किया। मैंने और भी क्या नहीं किया जो तुम श्वेत बाल को देखकर डरती हो ॥२१॥ हे शुभे ! भले ही मेरे सब बाल पक कर श्वेत होजावें और देहभी शिथिल होजाय मुझे कुछ नहीं करना है मैं सब कुछ कर चुका ॥ हे भद्रे ! तुमने जो मेरे शिर में श्वेत बाल दिखाया है सो मैं इसका इलाज वन का आश्रम लेने के रूप में करूँगा ॥ २३ ॥ बाल्यावस्था तथा कुमारावस्था में बालक्रिया, यौवन में उसके योग्य क्रिया तथा बुढ़ापे में वनका आश्रय लेना चाहिये ॥२४॥ पहली तीन अवस्थाओं की क्रियायें तो मैं उनके अनुसार कर चुका। अब चौथी अवस्था उपस्थित होने पर तुम्हारे रोने का मैं कोई कारण नहीं देखता ॥२५॥ हे भद्रे ! अब रोने से क्या है, इससे मेरा कल्याण न होगा। श्वेत बाल को देख कर रोना निष्प्रयोजन है ॥ २६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे महर्षि क्रौष्टुकिजी ! राज्यवर्द्धनकी यह बात सुनकर पास बैठे हुए राजा लोग तथा नागरिक महीपाल से यह बोले ॥ २७ ॥ हे राजन् ! आपको चाहिये कि आप अपनी स्त्रीको, हमको तथा अन्य सब प्राणियों को रोने न दें ॥ २८॥ हे नाथ ! आप के यह कहने से कि हम वन का आश्रय लेंगे, हम लोगों के जिनका कि आपने पालन किया है प्राण निकलते हैं ॥ २९ ॥ यदि आप वन को जाते हैं तो हमसब लोग वनको जांयगे और उस दशा में समस्त पृथ्वी के निवासियों की अशेष क्रियाओं की हानि होगी ॥ ३० ॥ हे नाथ ! आपके वनवास करने पर यह मानिनी भी धर्म से च्युत होजाय तो कुछ आश्चर्य नहीं ॥ ३१ ॥ आपने सात हज़ार वर्ष तक इस पृथ्वी का पालन कियाहै। हे राजन् ! इससे उत्पन्न महापुण्य को अब देखिये ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! आप जो वनमें रहकर तप करेंगे तो उसका पुण्य पृथ्वी-पालन के पुण्य का सोलहवाँ भाग भी नहीं है ॥ ३३ ॥

राजोवाच

सप्तवर्षसहस्राणि मयेयं पालिता मही।
इदानीं वनवासस्य मम कालोऽयमागतः ॥३४॥
ममापत्यानि जातानि दृष्ट्वा मेऽपत्यसन्ततीः।
स्वल्पैरेव महाहोभिरन्तको न सहिष्यति ॥३५॥
यदेतत् पलितं मूर्द्धिन तद्विजानीत नागराः।
दूतभूतमनार्य्यस्य मृत्योरत्युग्रकर्म्मणः ॥३६॥
सोऽहं राज्ये सुतं कृत्वा भोगांस्त्यक्त्वा वनाश्रयः।
तपस्तप्स्ये समायान्ति न यावद्यमसैनिकाः ॥३७॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो यियासुः स वनं दैवज्ञानवनीपतिः।
पुत्रराज्याभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छत ॥३८॥
श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्वचो व्याकुलचेतसः।
दिनं लग्नञ्च होराश्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ॥३९॥
ऊचुश्च तं महीपालं दैवज्ञा वाष्पगद्गदम्।
ज्ञानानि नः प्रनष्टानि श्रुत्वैतत् ते वचो नृप ॥४०॥
ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यराष्ट्रेभ्य एव च।
ततस्तस्माच्च नगरात् प्राचुर्य्येणाभ्युपागमन् ॥४१॥
समुत्पत्य महीपालं तं यियासुं मुने वनम्।
प्रकम्पिशिरसो भूत्वा प्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥४२॥
प्रसीद पाहि नो राजन् पालिताः स्म यथा पुरा।
सीदिष्यत्यखिलो लोकस्त्वयि भूप वनाश्रये ॥४३॥
स कुरुष्व तथा राजन् यथा नो सीदते जगत्।
यावज्जीवामहे वीर स्वल्पकालमिमे वयम्।
नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रष्टुं सिंहासनं विभो ॥४४॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरःसरः।
भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च प्रोक्तः प्रोक्तः पुनः पुनः ॥४५॥
वनवासविनिर्व्वन्ध्यं नोपसंहरते यदा।
क्षमिष्यत्यन्तको नेति ददाति च तथोत्तरम् ॥४६॥
ततोऽमात्याश्च भृत्याश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः।
समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ॥४७॥
तेषां मन्त्रयतां विप्र निश्चयोऽयमजायत।

राजा बोले—

मैंने सात हजार वर्ष तक इस पृथ्वी का पालन किया, अब यह समय मेरे वनवास का आगया है ॥ ३४ ॥ यह देखकर कि मेरे पुत्र होगये हैं और उनके भी सन्तति हो चुकी है, यमराज मेरा, थोड़े दिन भी इस संसार में रहना न सह सकेंगे ॥३५॥ हे नागरिको ! मेरे शिर में जो यह श्वेत बाल निकला है इसको आप लोग अत्यन्त उग्र कर्म करने वाली मृत्यु का दुष्ट दूत समझें ॥ ३६ ॥ अतः मैं अपने पुत्र को राज्य देकर तथा सब भोगों को त्याग कर वन में जाऊँगा और जब तक कि यमराज के सैनिक आवें मैं वहाँ पर तपस्या करूँगा॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब वन जाने की इच्छा करके महाराज ने पुत्र के राज्याभिषेक के लिये ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त्त पूछा ॥ ३८ ॥ राजाके वचन सुनकर वे इतने व्याकुल होगये कि घबराहट में शास्त्र की दृष्टि से वे दिन, लग्न, होरा आदि कुछ भी न बता सके ॥ ३९ ॥ ज्योतिषी लोग हिलकी बाँध कर रोते हुए राजा से बोले, "हे राजन् ! आपके यह वचन सुन कर हम सब सुधि भूल गये हैं" ॥४०॥ फिर महाराज ने दूसरे नगरों व अधीन राज्यों से ज्योतिषियों को बुलवाया और वे प्रचुर संख्या में आये ॥४१॥ हे मुनि ! उन लोगों ने आकर जब यह सुना कि राजा वन जाने की इच्छा करते हैं तो उनके शिर हिल गये और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण राजासे बोले ॥ हे राजन् ! कृपा कर आप उस प्रकार रक्षा करें जिस प्रकार कि आपने अब तक पालन किया है । आपके वन जाने से समस्त जगत् को क्लेश होगा ॥४३॥ हे राजन् ! आप ऐसा यत्न करें जिससे कि जगत् को कष्ट न हो। हे वीर ! जिस थोड़े काल तक भी हम जीवित रहें, हम सिंहासन को आप से खाली न देखें ऐसी हमारी इच्छा है ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकारही सब ब्राह्मणों, नागरिकों, राजाओं सेवकों और मन्त्रियों आदि ने बार २ कहा ॥४५॥ परन्तु राजा के वन जाने की इच्छा निवृत्त न हुई और उन्होंने यही उत्तर दिया कि यमराज हमारा रहना नहीं सह सकेंगे ॥४६॥ फिर मंत्रियों, सेवकों, वृद्ध नागरिकों तथा ब्राह्मणों ने एकत्रित होकर विचार किया कि अब क्या करना चाहिये ॥४७॥ हे विप्र ! उन लोगों का उस धर्मात्मा राजा में अत्यन्त अनुराग था इसलिये उन्होंने आपस

अनुरागवतां तत्र महीपालेऽतिधार्म्मिके ॥४८॥
सम्यग्ध्यानपरा भूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः ।
तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य महीपते ॥४९॥
तत्रैकनिश्चयाः काय्ये केचिद्गेहेषु भास्करम् ।
सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥५०॥
अपरे मौनिनो भूत्वा ऋग्जापेन तथाऽपरे ।
यजुषामथ साम्नाञ्च तोषयाञ्चक्रिरे रविम् ॥५१॥
अपरे च निराहारा नदीपुलिनशायिनः ।
तपसा चक्रुरायस्ता भास्करारायनं द्विजाः ॥५२॥
अग्निहोत्रपराश्चान्ये रविसूक्तान्यहर्निशम् ।
जेपुस्तत्रापरे तस्थुर्भास्करे न्यस्तदृष्टयः ॥५३॥
इत्येवमतिनिर्ब्बन्धं भास्करारायनं प्रति ।
बहुप्रकारं चक्रुस्ते तं तं विधिमुपाश्रिताः ॥५४॥
तथा तु यततां तेषां भास्करारायनं प्रति ।
सुदामा नाम गन्धर्व्व उपगम्येदमब्रवीत् ॥५५॥
यद्याराधनमिष्टं वो भास्करस्य द्विजातयः ।
तदेतत् क्रियतां येन भानुः प्रीतिमुपैष्यति ॥५६॥
तस्माद्गुरुविशालाख्यं वनं सिद्धनिषेवितम् ।
कामरूपे महाशैले गम्यतां तत्र वै लघु ॥५७॥
तस्मिन्नाराधनं भानोः क्रियतां सुसमाहितैः ।
सिद्धक्षेत्रं हितं तत्र सर्व्वकामानवाप्स्यथ ॥५८॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते तद्वचः श्रुत्वा गत्वा तत् काननं द्विजाः ।
ददृशुर्भास्वतस्तत्र पुण्यमायतनं शुभम् ॥५९॥
तत्र ते नियताहारा वर्णा विप्रादयो द्विज ।
धूप-पुष्पोपहाराद्यां पूजां चक्रुरतन्द्रिताः ॥६०॥
पुष्पानुलेपनाद्यैश्च धूपगन्धादिकैस्तथा ।
जप-होमान्न-दीपाद्यैः पूजनं ते समाहिताः ।
कुर्व्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन् विवस्वन्तं द्विजातयः ॥६१॥

ब्राह्मणा ऊचुः

देव-दानव-यक्षाणां ग्रहाणां ज्योतिषामपि ।
तेजसाभ्यधिकं देवं प्रनाम शरणं रविम् ॥६२॥
दिवि स्थितं देवेशं द्योतयन्तं समन्ततः ।
धरां ... व्याप्नुवन्तं मरीचिभिः ॥६३॥

परामर्श कर यह निश्चय किया ॥४८॥ कि भली भाँति ध्यानावस्थित होकर एकाग्र चित्त से सूर्य का आराधन करें और राजा की आयु में वृद्धि की प्रार्थना करें ॥४९॥ इस प्रकार एक निश्चय करके कुछ लोग तो अपने-अपने घरोंमें अर्घोपचार व उपहारों से सूर्य की पूजा करने लगे ॥५०॥ दूसरे मौन व्रत धारण करके ऋक, यजुर्वेद और सामवेद के स्तोत्रों से सूर्य की स्तुति करने लगे ॥ ५१ ॥ अन्य ब्राह्मण लोग निराहार रहकर और नदी के किनारे शयन करके सूर्यदेव की आराधनाके लिये तपस्या करने लगे ॥५२॥जो लोग अग्निहोत्र में पारङ्गत थे वे सूर्य के सूक्तों का दिन रात जप करने लगे और कुछ लोग सूर्य की ओर दृष्टि लगाकर स्थित हो गये ॥ ५३ ॥ सूर्यकी उपासनाके प्रति जिस विधान की आवश्यकता थी उसको ही अनेक प्रकार से करके लोगों ने सूर्यकी अत्यन्त आराधना की ५४॥ सूर्य की आराधनामें यत्नवान् उन लोगोंसे सुदामा नाम गन्धर्व ने आकर यह कहा ॥५५॥ हे ब्राह्मणो ! यदि आप लोगों को सूर्य का आराधन ही अभीष्ट है तब आपको वह यत्न करना चाहिये जिससे कि सूर्यदेव प्रसन्न हों ॥५६॥ इसलिये आप लोग कामरूप पर्वत पर सिद्धों से सेवित गुरुविशाल नाम वन में जाइये ॥५७॥ वहाँ पर एकाग्र चित्त होकर आपको सूर्य का आराधन करना चाहिये । उस सिद्धि क्षेत्र में आपकी सब कामनायें पूर्ण होंगी ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

सुदामा के यह वचन सुनकर तथा उस वनमें जाकर उन ब्राह्मणों ने वहाँ पर एक अत्यन्त पुण्यवान् और शुभ सूर्यका मन्दिर देखा ॥५९॥हे द्विज ! वहाँ पर ब्राह्मण आदि सब वर्णों के लोग नियताहारी होकर धूप, पुष्प और उपहार आदि से जितेन्द्रिय होकर सूर्य की पूजा करने लगे ॥ ६० ॥ हे ब्रह्मन् ! उन द्विजातियों ने विवस्वान् की पुष्प, चन्दन, धूप, गन्ध, जप, होमान्न, दीप आदि से एकाग्र चित्त होकर पूजा की और उनको सन्तुष्ट किया ॥ ६१ ॥

ब्राह्मण बोले—

देव, दानव, यक्ष, ग्रह, ज्योति और तेज से अधिक सूर्यदेव की शरण में हम लोग स्थित हैं ॥ सूर्यदेव आकाश में स्थित होकर भी पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपनी किरणों से प्रकाशित करते हैं

आदित्यं भास्करं भानुं सवितारं दिवाकरम् ।
पूषाणमर्य्यमाणञ्च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ॥६४॥
चतुर्युगान्तकालाग्निं दुष्प्रेक्ष्यं प्रलयान्तगम् ।
योगीश्वरमनन्तंच रक्तं पीतं सितासितम् ॥६५
ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववस्थितम् ।
अक्षरं परमं गुह्यं मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६॥
छन्दोभिरश्वरूपैश्च सकृद्युक्तैर्विहङ्गमम् ।
उदयास्तमने युक्तं सदा मेरोः प्रदक्षिणे ॥६७॥
अनृतंच ऋतञ्चैव पुण्यतीर्थं पृथग्विधम् ।
विश्वस्थितिमचिन्त्यंच प्रपन्नाः स्म प्रभाकरम्॥६८॥
यो ब्रह्मा यो महादेवो यो विष्णुर्यः प्रजापतिः ।
वायुराकाशमापश्च पृथिवी-गिरि-सागराः ॥६९॥
ग्रह-नक्षत्र-चन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम् ।
व्यक्ताव्यक्तेषु भूतेषु धर्म्माधर्म्मप्रवर्त्तकः ॥७०॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः ।
त्रिधा यस्य स्वरूपन्तु भानोर्भास्वान प्रसीदतु॥७१॥
यस्य सर्व्वमजस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभोः ।
स नः प्रसीदतां भास्वान् जगतां यश्च जीवनम्॥७२॥
यस्यैकभास्वरं रूपं प्रभामण्डलदुर्द्दशम् ।
द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वान् प्रसीदतु ॥७३॥
ताभ्याञ्च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्म्मितम् ।
अग्नीषोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु ॥७४॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं स्तुत्वा तदा भक्त्या सम्यक् पूजयतां तथा ।
तुतोष भगवान् भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ॥७५॥
ततः स मण्डलादुद्यन्निजबिम्बसमप्रभः ।
अवतीर्य्य ददौ तेभ्यो दुर्द्दशो दर्शनं रविः ॥७६॥
ततस्ते स्पष्टरूपं तं सवितारमजं जनाः ।
पुलकोत्कम्पिनो विप्रा भक्तिनम्राः प्रणेमिरे ॥७७॥

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्ररश्मे सर्व्वस्य हेतुस्त्व-मशेषकेतुः । पाताद् त्वमीड्योऽखिलयज्ञधाम ध्येयस्तथा योगविदां प्रसीद ॥७८॥

॥ ६३ ॥ तथा जो आदित्य, भास्कर, भानु, सविता दिवाकर, पूषा, अर्य्यमा, स्वर्भानु, दीप्तदीधिति ॥ चतुर्युग के अन्त की कालाग्नि, दुर्द्दश, प्रलयांतग, योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सित, असित ॥६५॥ ऋषियों के अग्निहोत्रों और देवताओं के यज्ञों में स्थित, अक्षर, परमगुह्य और उत्तम मोक्ष द्वार हैं ॥ ६६ ॥ तथा जो छन्दरूप अश्वों से युक्त होकर उदय और अस्त होने में सदैव मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ६७ ॥ और जो असत्य, सत्य, पुण्यतीर्थ होकर पृथक्-पृथक् विश्व में स्थित हैं, उन अचिंत्य प्रभाकर सूर्यदेव की हम शरण हैं ॥, जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल हैं और पृथ्वी, पर्वत, सागर ॥ ६९ ॥ ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा आदिक तथा वनस्पति, वृक्ष, औषधि, व्यक्त और अव्यक्त प्राणियों में धर्म और अधर्म के प्रवर्तकहैं ॥७०॥ और जो ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी इन तीन स्वरूपों से स्थित हैं वे सूर्य हम पर प्रसन्न हों ॥७१ ॥ और जिन जगत्के स्वामी सूर्य के अङ्कमें यह संसार स्थितहै और जो जगत के जीवन हैं वे सूर्य भगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥ जो एक दुर्द्दश सूर्य रूप से प्रभामण्डल में स्थितहैं तथा दूसरे सौम्य रूप से चन्द्रमा होकर स्थित हैं ऐसे भास्वान् सूर्य हम पर प्रसन्न हों ॥ ७३॥ जिनके इन दोनों रूपों से ही संसार बना है ऐसे अग्निरूप और चन्द्रमा रूप सूर्य हम पर प्रसन्न हों ॥ ७४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार भक्ति पूर्वक स्तुति करने और भली भांति पूजा करने पर तीन महीने बाद भगवान् भास्कर सन्तुष्ट हुए ॥७५॥ और सूर्य भगवान् ने अपने मण्डल से निकल कर अपने बिम्बके समान प्रत्यक्ष होकर उन लोगोंको अपना दुर्द्दश दर्शन दिया ॥ ७६॥ तब उन ब्राह्मणों ने भक्ति से नम्र और पुलकित शरीर होकर उन स्पष्टरूप अज भगवान् सूर्य को प्रणाम किया ॥ ७७ ॥ और कहा कि हे सहस्र किरण वाले, सब के कारण, समस्त जगत की पताका, सब यज्ञों के धाम, योगियों के ध्येय सूर्य भगवान् ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥ ७८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में भानस्तव नाम १०९वां अ० स० ।

एकसौदसवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रसन्नो भगवान् भानुराहाखिलं जनम् ।
व्रियतां यदभिप्रेतं मत्तः प्राप्तुं द्विजादयः ॥ १ ॥
ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्र विप्रादयो जनाः ।
ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्य पुरः स्थितम् ।
ततस्तं प्रणिपत्योचुर्वरदं जगदीश्वरम् ॥ २ ॥

प्रजा ऊचुः

भगवन् यदि नो भक्त्या प्रसन्नस्तिमिरापह ।
दशवर्षसहस्राणि ततो नो जीवतां नृपः ॥ ३ ॥
निरामयो जितारातिः सुकेशः स्थिर यौवनः ।
दशवर्षसहस्राणि जीवतां राज्यवर्द्धनः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा जनान् भास्वान् दुदृशोऽभून्महामुने ।
तेऽपि लब्धवरा हृष्टाः समाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥ ५ ॥
यथावृत्तञ्च ते तस्मै नरेन्द्राय न्यवेदयन् ।
वरं लब्ध्वा सहस्रांशोः सकाशादखिलं द्विज ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा जहृषे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज ।
स च राजा चिरं दध्यौ नाह किंचिच्च तं जनम् ॥ ७ ॥
ततः सा मानिनी भूपं हर्षापूरितमानसा ।
दिष्ट्यायुषा महीपाल वर्द्धस्वेत्याह त पतिम् ॥ ८ ॥
तथा तया मुदा भर्त्ता मानिन्याथ सभाजितः ।
नाह किंचिन्महीपालश्चिन्ताजड़मना द्विज ॥ ९ ॥
सा पुनः प्राह भर्त्तारं चिन्तयानमधोमुखम् ।
कस्मान्न हर्षमभ्येषि परमाभ्युदये नृप ॥१०॥
दशवर्षसहस्राणि नीरुजः स्थिरयौवनः ।
भावी त्वमद्यप्रभृति किं तथापि न हृष्यसे ॥११॥
किन्तु तत्कारणं ब्रूहि यच्चिन्ताकुष्टमानसः ।
परमाभ्युदयेऽपि त्वं सम्प्राप्ते पृथिवीपते ॥१२॥

राजोवाच

कथमभ्युदयो भद्रे किं सभाजयसे च माम् ।
प्राप्तौ दुःखसहस्राणां किं सभाजनयिष्यते ॥१३॥
दशवर्षसहस्राणि जीविष्याम्यहमेककः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

तब उन सब लोगों से प्रसन्न होकर भगवान सूर्य बोले, "हे ब्राह्मणो! बोलिये, आप लोग मुझ से क्या प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं" ॥ १ ॥ इस पर वे ब्राह्मणादिक लोग सूर्य भगवान् को शान्त रूप से अपने सन्मुख देखकर उन वरदायी जगदीश्वर को प्रणाम कर बोले ॥ २ ॥

प्रजाजन बोले—

हे अन्धकारनाशक भगवन्! यदि आप हमारी भक्ति से प्रसन्न हैं तो हमारे राजा राज्यवर्द्धन दस हजार वर्ष और जीवित रहें ॥ ३ ॥ हम यही वर माँगते हैं कि राज्यवर्द्धन निरामय, शत्रुजित, सुकेश और स्थिर यौवन वाले होकर दस हज़ार वर्ष और जीवित रहें ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे महामुनि! "ऐसा ही होगा" यह उन लोगों से कह कर भगवान् सूर्य अदृश्य होगये और वे लोग भी वर प्राप्ति के कारण आनन्दित होकर राजा के पास गये ॥५॥ हे द्विज! फिर उन लोगों ने सूर्य भगवान् से जिस प्रकार वर प्राप्त किया था वह सब कथा राजा से कह सुनाई ॥ ६ ॥ हे द्विज! उस वृत्तान्त को सुनकर राजा की पत्नी मानिनी को अत्यन्त हर्ष हुआ और वह राजा किसी से कुछ न कहकर ध्यान करने लगा ॥ ७ ॥ हर्ष से उत्फुल्ल होकर वह मानिनी राजा से बोली, "हे स्वामिन्! बड़े भाग्य से आपकी आयु बढ़ी है यह और भी बढ़े ॥८॥ मानिनी के प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने पर भी राजा कुछ न बोले वरन् वे चिन्तासे और भी जड़ होगये ॥९॥ फिर वह अपने स्वामी को चिन्ता से मुख नीचा किये हुए देखकर बोली, "हे भगवन्! इस खुशी के समय में भी हर्ष नहीं होता" ॥१०॥ दस हज़ारवर्ष तक निरोग और स्थिर यौवन रहने की खबर पर भी आपको हर्ष क्यों नहीं होता है? ॥११॥ हे राजन्! इस अभ्युदय के समय में भी आपका चित्त चिन्ता से युक्त हुआ है, इसका कारण मुझसे कहिये ॥ १२ ॥

राजा बोले—

हे भद्रे! यह प्रसन्नता किस प्रकार हुई, तुम मुझको क्या समझाती हो? दस हजार वर्ष तक जीवित रहने में मुझको हजारों दुःख सहन करने पड़ेंगे ॥ १३ ॥ मैं अकेला दस हजारवर्ष तक जीवित

न त्वं तव विपत्तौ मे किं न दुःखं भविष्यति ॥१४॥
पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तथान्यानिष्टबान्धवान्।
पश्यतो मे मृतान् दुःखं किमल्पं हि भविष्यति॥१५॥
भृत्येषु चातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते।
भद्रे दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम् ॥१६॥
यैर्मदर्थं तपस्तप्तं कृशैर्धमनिसन्ततैः।
ते मरिष्यन्त्यहं भोगी जीवामीति न धिक् कथम्॥१७
सेयमापद्वरारोहे प्राप्ता नाभ्युदयो मम।
कथं वा मन्यसे न त्वं यत् सभाजयसेऽद्य माम्॥१८॥

मानिन्युवाच

महाराज यथात्थ त्वं तथैवं नात्र संशयः।
मया पौरश्च दोषोऽयं प्रीत्या नालोकितस्तव ॥१९॥
एवं गतेऽत्र किं कार्य्यं नरनाथ विचिन्त्यताम्।
नान्यथा भावि यत् प्राह प्रसन्नो भगवान् रविः॥२०॥

राजोवाच

उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम।
कथं भोक्ष्याम्यहं भोगान् गत्वा तेषामनिष्कृतिम् २१
सोऽहमद्यप्रभृत्याद्रिं गत्वा नियतमानसः।
तपस्तप्स्ये निराहारो भानोराराधनोद्यतः ॥२२॥
दशवर्षसहस्राणि यथाहं स्थिरयौवनः।
तस्य प्रसादाद्देवस्य जीविष्यामि निरामयः ॥२३॥
तथा यदि प्रजाः सर्व्वाः भृत्यास्त्वञ्च सुताश्च मे।
पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च सुहृदश्च वरानने ॥२४॥
जीवन्त्येवं प्रसादं नः करोति भगवान् रविः।
ततोऽहं भविता राज्ये भक्ष्ये भोगांस्तथा मुदा ॥२५॥
न चेदेवं करोत्यर्कस्तदद्रौ तत्र मानिनि।
तपस्तप्स्ये निराहारो यावज्जीवितसंक्षयः ॥२६॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ता सा तदा तेन तथेत्याह नराधिपम्।
जगाम तेन च समं साऽपि तं धरणीधरम् ॥२७॥
स तदायतनं गत्वा भार्य्यया सह पार्थिवः।
भानोराराधनं चक्रे शुश्रूषानिरतो द्विज ॥२८॥
निराहारकृशः सा च यथासौ पृथिवीपतिः।
तेपे तपस्तथैवोग्रं शीतवातातपक्षमा ॥२९॥

रहूँगा परन्तु तुम तो बीचमें ही मर जाओगी॥१४॥ पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्टमित्र और बान्धवों को मरते देखकर क्या मुझको कम दुःख होगा? ॥ १५ ॥ हे भद्रे! अत्यन्त भक्त, सेवकों और मित्रवर्गों के निरन्तर मरते रहने से मुझको अपार दुःख होता रहेगा ॥१६॥ जिन लोगों ने मेरे लिये अत्यन्त कृश होकर तप किया है वे तो मर जाँय और मैं भोग भोगूँ, यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझे धिक्कार है ॥१७॥ हे वरारोहे! यह अभ्युदय नहीं वरन् आपत्ति है। तुम इसे ऐसा क्यों नहीं मानती हो जो मुझको समझाने का प्रयत्न कर रही हो ॥ १८॥

मानिनी बोली—

हे महाराज! जो आप कहते हैं वह सब सत्य है। यह मेरा और नागरिकों का दोष है जो कि हम लोगों ने आपके प्रेम में आकर न देखा ॥१९॥ हे राजन्! ऐसी दशा में क्या करना चाहिये यह सोचिये, जो कुछ भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर कहा है वह मिथ्या नहीं हो सकता ॥२०॥

राजा बोले—

भृत्यों और प्रजाओं ने बड़े प्रेम से जो उपकार किया है सो उन भोगों को मैं उनके मरनेपर किस प्रकार भोगूंगा ॥२१॥ अतः मैं आज से ही पर्वतपर जाकर नियम से निराहार रहकर, सूर्यकी आराधना में उद्यत होकर तप करूँगा ॥२२॥ दस हजार वर्ष तक स्थिर यौवन होकर जीवित रहने का वर पाने के कारण मैं सूर्यदेव की कृपा से ऐसी दशा में भी सकुशल जीवित रहूँगा ॥ २३ ॥ यदि सब प्रजा सेवक, तुम, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्टमित्र ॥ २४ ॥ जीवित रहें ऐसी कृपा भगवान् सूर्य करदें तो मैं सहर्ष राज्य करके भोगों का उपयोग करूँगा ॥२५॥ हे मानिनी! यदि सूर्यदेव ऐसी कृपा न करेंगे तो मैं उस पर्वतपर आजीवन निराहार रहकर तपस्या करता रहूँगा ॥२६॥

मार्कण्डेयजी बोले—

राजाके इसप्रकार कहनेपर मानिनीने भी 'ऐसाही हो' यह कहा वह भी राजाके साथ तप करनेको गई॥ हे द्विज! उस राजाने स्त्री सहित उस मन्दिर में जाकर सेवा में निरत होकर सूर्यदेव की आराधना की। उस राजाने विना आहार के कृश होकर, और शीत, वायु और धूप को सहन करके उग्र तपस्या

तस्य पूजयतो भानुं तप्यतश्च तपो महत् ।
साग्रे संवत्सरे याते ततः प्रीतो दिवाकरः ॥३०॥
समस्तभृत्यपौरादि-पुत्राणाञ्च कृते द्विज ।
ददौ यथाभिलषितं वरं द्विजवरोत्तम ॥३१॥
लब्ध्वा वरं स नृपतिः समभ्येत्यात्मनः पुरम् ।
चकार मुदितो राज्यं प्रजा धर्म्मेण पालयन् ॥३२॥
ईजे यज्ञान् स च बहून् ददौ दानान्यहर्निशम् ।
मानिन्या सहितो भोगान् बुभुजे च स धर्म्मवित् ३३॥
दशवर्षसहस्राणि पुत्रपौत्रादिभिः सह ।
भृत्यैः पौत्रैः समुदितः सोऽभवत् स्थिरयौवनः॥३४॥
तस्येति चरितं दृष्ट्वा प्रमतिर्नाम भार्गवः ।
विस्मयाकृष्टहृदयो गाथामेतामगायत ॥३५॥
भानुभक्तेरहो शक्तिर्यद्राजा राज्यवर्द्धनः ।
आयुषो वर्द्धनो जातः स्वजनस्य तथात्मनः ॥३६॥
इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहं त्वया विभो ।
आदिदेवस्य माहात्म्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥३७॥
विप्रैस्तदखिलं श्रुत्वा भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
पठंश्च मुच्यते पापैः सप्तरात्रकृतैः नरः ॥३८॥
अरोगी धनवानाढ्यः कुले महति धीमताम् ।
जायते च महाप्राज्ञो यश्चैतद्धारयेद्बुधः ॥३९॥
मन्दाश्च येऽत्राभिहता भास्वतो मुनिसत्तम ।
जापः प्रत्येकमेतेषां त्रिसन्ध्यं पातकापहः ॥४०॥
समस्तमेतन्माहात्म्यं यत्र चायतने रवेः ।
पठ्यते तत्र भगवान् सान्निध्यं न विमुञ्चति ॥४१॥
तस्मादेतत् त्वया ब्रह्मन् भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
धार्य्यं मनसि जाप्यंच महत् पुण्यमभीप्सता॥४२॥
सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गी पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि । शृणोति चैतत् त्र्यहमेवमेव नरः समं तयोः पुण्यफलं द्विजाग्र्य ॥४३॥

की ॥ २९ ॥ इस प्रकार सूर्य की पूजा और महान् तप करते हुए राजा को पूरा एक वर्ष व्यतीत हो गया तब सूर्यदेव प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! सब सेवकों, प्रजाओं और पुत्र पौत्रों के लिये जो वर राजा ने माँगा था सूर्यदेव ने वही प्रदान किया ॥३१॥ वर पाकर राजा अपने नगर में आया और प्रसन्न होकर प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करता हुआ राज्य करने लगा ॥३२॥ उस धर्मज्ञ राजा ने बहुतसे यज्ञ किये और दिन रात्रि खूब दान दिये । उसने मानिनी सहित बहुत से भोगों का उपभोग किया॥ पुत्र, पौत्र, भृत्य और प्रजाओं सहित वह दस हजार वर्ष के लिये स्थिर यौवनवाला होगया॥३४॥ इसका इस प्रकार चरित्र देखकर भृगुवंशी प्रमति नाम विप्र ने विस्मय से आकृष्ट चित्त होकर इस प्रकार गीत गाया ॥ ३५ ॥ अहा ! सूर्य की भक्ति में बड़ी शक्ति है जिससे कि राजा राज्यवर्द्धन की उस के स्वजनों सहित आयु बढ़गई ॥३६॥ हे क्रौष्टुकि ! जो आपने आदिदेव सूर्य भगवान् का माहात्म्य पूछा सो मैंने इस प्रकार वर्णन कर दिया ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य सूर्यदेव के इस उत्तम माहात्म्य को ब्राह्मणों से सुनते हैं वे सात रात्रि तक ऐसा करने पर पापों से छूट जाते हैं ॥ ३८ ॥ जो ज्ञानी लोग इस माहात्म्य को धारण करेंगे वे नीरोगी, धनवान् और बुद्धिमान् होंगे तथा उनका जन्म बड़े कुल में होगा ॥३९॥ हे मुनिसत्तम ! इस माहात्म्य में मैंने सूर्यदेव के सब मन्त्रों को कहा है । उनमें से एक-एक मन्त्र तीनों काल में पापों का नाश करने वाला है ॥ ४० ॥ जिस घर में भगवान सूर्य का यह माहात्म्य पढ़ा जाता है वहाँ से भगवान् सूर्य अपना सान्निध्य नहीं छोड़ते ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसलिये आप सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को मनमें धारण कीजिये, इससे आपका महान् पुण्य होगा ॥ ४२ ॥ हे द्विजाग्र्य ! सुवर्ण के सींग वाली, अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली और दुधारू गायके दान करने से जो फल होता है वही फल तीन दिन तक इस माहात्म्य को सुनने से होता है ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में भानुमाहात्म्य नाम ११०वाँ अ० समाप्त ।

एकसौग्यारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

एवम्प्रभावो भगवाननादिनिधनो रविः ।
यस्य त्वं क्रौष्टुके भक्त्या माहात्म्यं मयि पृच्छसि १॥
परमात्मा स योगीनां युञ्जतां चेतसां लयम् ।
क्षेत्रज्ञः सांख्ययोगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥ २ ।
सूर्य्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेधसः ।
मनुस्तस्याभवत् पुत्रश्छिन्नसर्व्वार्थसंशयः ।
मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम् ॥ ३ ॥
इक्ष्वाकुर्नाभगो रिष्टो महाबलपराक्रमाः ।
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः पृषध्रो धृष्ट एव च ॥ ४ ॥
एते पुत्रा मनोस्तस्य पृथग्राज्यस्य पालकः ।
विख्यातकीर्त्तयः सर्व्वे सर्व्वे शास्त्रास्त्रपारगाः ॥ ५ ।
विशिष्टतरमन्विच्छन् मनुः पुत्रं तथा पुनः ।
मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनां वरः ॥ ६ ॥
यत्र चापहृते होतुरपचारान्महामुने ।
इला नाम समुत्पन्ना मनोः कन्या सुमध्यमा ॥ ७॥
तां दृष्ट्वा कन्यकां तत्र समुत्पन्नां ततो मनुः ।
तुष्टाव मित्रावरुणौ वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥ ८॥
भवत्प्रसादात् तनयो विशिष्टो मे भवेदिति ।
कृते मखे समुत्पन्ना तनया मम धीमतः ॥ ६ ॥
यदि प्रसन्नौ वरदौ तदियं तनया मम ।
प्रसादाद्भवतोः पुत्रो भवत्वतिगुणान्वितः ॥१०॥
तथेति चाभ्यामुक्ते तु देवाभ्यां सैव कन्यका ।
इला समभवत् सद्यः सुद्युम्न इति विश्रुतः ॥११॥
पुनश्चेश्वरकोपेण मृगव्यामटता वने ।
स्त्रीत्वमासादितं तेन मनुपुत्रेण धीमता ॥१२॥
पुरूरवसनामानं चक्रवर्त्तिनमूर्ज्जितम् ।
जनयामास तनयं यत्र सोमसुतो बुधः ॥१३॥
जाते सुते पुनः कृत्वा सोऽश्वमेधं महाक्रतुम् ।
पुरुषत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नः पार्थिवोऽभवत् ॥१४॥
सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा उत्कलो विनयो गयः ।
पुरुषत्वे महावीर्य्या यज्विनः पृथुलौजसः ॥१५॥
पुरुषत्वे तु ये जातास्तस्य राज्ञस्त्रयः सुताः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि ! आदिदेव भगवान् सूर्य का जिन का माहात्म्य तुम भक्ति पूर्वक पूछते हो प्रभाव इस प्रकार का है ॥ १ ॥ वह योगियों के परमात्मा और उनके चित्त के लयस्थान हैं । वे सांख्य-योगियों के क्षेत्रज्ञ और यज्ञ करने वालों के यज्ञेश्वर हैं ॥२॥ सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा और महेश के अधिकारों को वहन करतेहैं । सावर्णि नाम उनके पुत्र सब संशय का नाश करके सातवें मन्वन्तर के स्वामी मनु हुए ॥३॥ इक्ष्वाकु ! नाभग, रिष्ट तथा महाबली और पराक्रमी नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट ॥ ४॥ सावर्णि मनुके यह विख्यात कीर्तिवाले और शास्त्र विशारद पुत्र पृथक्-पृथक् राज्य के पालक हुए ॥५॥ फिर मनु ने और अधिक सन्तान उत्पन्न होने की इच्छा से मित्रावरुण नाम श्रेष्ठ यज्ञ किया ॥ ६ ॥ हे क्रौष्टुकि मुनि ! यज्ञ में होम करनेके समय होता के उपचार से मनु के इला नाम की एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ फिर मनु ने उस कन्या को उत्पन्न हुई देखकर मित्रावरुण को सन्तुष्ट किया और यह कहा ॥ ८ ॥ आपकी कृपा से मेरे एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होवे । यज्ञ के करने पर मेरे एक कन्या उत्पन्न हुई ॥६॥ यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो यह कन्याही आपके प्रसाद से अति गुणी पुत्र होजाय ॥ १० ॥ मित्रावरुण नाम दोनों देवताओं के 'तथास्तु' कहने पर वह कन्या इला पुत्र होकर सुद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हुई ॥११॥ फिर एक दफा वन में आखेट करते हुए सुद्यु महादेवजी के कोप से स्त्रीत्व को प्राप्त होगया ॥ चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उससे पुरूरवा नाम म वली और चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ के उत्पन्न होजाने पर उसने अश्वमेध नाम किया जिससे सुद्युम्न फिरसे पुरुषत्व पाकर हुआ ॥१४॥ पुरुषत्व प्राप्त होनेपर महाराज सुद्युम्न के उत्कल, विनय और गय नामक तीन पुत्र बड़े पराक्रमी, यज्ञ करने वाले और तेजस्वी हुए ॥१५॥ पुरुषत्व पाने पर जो तीन पुत्र राजा सुद्युम्न

बुभुजुस्ते महीमेतां धर्म्मे नियतचेतसः ॥१६॥
स्त्रीभूतस्य तु यो जातस्तस्य राज्ञः पुरूरवाः ।
न स लेभे महीभागं यतो बुधसुतो हि सः ॥१७॥
ततो वशिष्ठवचनात् प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ।
तस्मै दत्तं स राजाभूत् तत्रातीवमनोहरे ॥१८॥

हुए उन्होंने धर्म में चित्त को स्थित करके इस पृथ्वी का पालन किया ॥१६॥ राजा के स्त्रीत्व की दशा में जो पुरूरवा नाम पुत्र उत्पन्न हुआ उसको बुध का पुत्र होने के कारण राज्य का कोई भाग न मिला ॥१७॥ परन्तु गुरु वशिष्ठ के कहनेसे राजा सुद्युम्न ने पुरूरवा को प्रतिष्ठान नामक एक सुन्दर नगर दे दिया और वह उसी अत्यन्त मनोहर नगर का राजा होगया ॥१८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में वंशानुक्रम नाम १११वां अ० समाप्त ।

एकसौबारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्राख्यो मनोः पुत्रो मृगव्यामगमद्वनम् ।
तत्र चंक्रममाणोऽसौ विपिने निर्ज्जने वने ॥ १ ॥
नाससाद मृगं कञ्चिद्भानुदीधितितापितः ।
क्षुत्तृट्तापपरीताङ्ग इतश्चेतश्च चंक्रमन ॥ २ ॥
स ददर्श तदा तत्र होमधेनुं मनोहराम् ।
न तावता न सम्बद्धां ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥
स मन्यमानो गवयमिषुणा तामताड़यत् ।
पपात सापि तद्बाण-विभिन्नहृदया भुवि ॥ ४ ॥
ततोऽग्निहोत्रिणः पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरतिः ।
शप्तवान् स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनुं निपातिताम् ॥ ५ ॥
गोपालः प्रेषितः पुत्रो बाभ्रव्यो नाम नामतः ।
कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततो मुने ।
चुकोप विगलत्स्वेद-जललोलाविलेक्षणः ॥ ६ ॥
तं क्रुद्धं प्रेक्ष्य स नृपः पृषध्रो मुनिदारकम् ।
प्रसीदेति जगौ कस्माच्छूद्रवत् कुरुषे रुषम् ॥ ७ ॥
न क्षत्रियं न वा वैश्यमेवं क्रोध उपैति वै ।
यथा त्वं शूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मणः कुले ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति निर्भर्त्सितस्तेन स राज्ञा मौलिनः सुतः ।
शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यति ॥ ९ ॥
प्रयास्यति क्षयं ब्रह्म यत् तेऽधीतं गुरोर्मुखात् ।
होमधेनुर्मम गुरोर्यदियं हिंसिता त्वया ॥१०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

सावर्णि मनु के पुत्र राजा पृषध्र एक बार मृगया के लिये वन में गये और वे वहाँ पर घूमते घूमते बहुत दूर एक निर्जन वन में पहुँच गये ॥१॥ परन्तु उनको कोई मृग न मिला और वे सूर्य की गर्मी से संतप्त होकर इधर-उधर घूमने लगे ॥ २ ॥ उनको दूर से एक होमधेनु दीख पड़ी जो कि वस्तुतः एक अग्निहोत्री ब्राह्मण की थी ॥ ३ ॥ राजा पृषध्र ने उसको नीलगाय समझकर उसके एक बाण मारा जिसके लगते ही उसकी छाती फट गई और वह पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ४ ॥ तब उस अग्निहोत्री के ब्रह्मचारी और तपस्वी पुत्र ने पिता की होमधेनु को देखकर राजा को शाप दिया ॥ ५ ॥ हे मुनि! बाभ्रव्य नाम उस पुत्र को गाय चराने के लिये भेजा गया था उसकी चित्त वृत्ति क्रोधयुक्त होगई और गुस्से से उसे पसीना आ गया तथा उसके नेत्र चंचल होगये ॥ ६ ॥ राजा पृषध्र उस मुनि कुमार को क्रोधित हुआ देखकर उससे कहने लगे, "प्रसन्न हूजिये, आप शूद्र की तरह क्रोध क्यों करते हैं ?" ॥ ७ ॥ विशिष्ट ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भी आप शूद्रवत् होगये, ऐसा क्रोध तो क्षत्रिय और वैश्य भी नहीं करते ॥ ८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

जब राजा ने मौलि पुत्र बाभ्रव्य की इस तरह भर्त्सनाकी तो उन्होंने राजासे कहा, "हे दुरात्मन्! तू शूद्र ही होगा" ॥ ९ ॥ चूंकि तुमने मेरे गुरु की होमधेनु को मारा है इसलिये जो कुछ वेद-वाक्य तुमने अपने गुरुसे पढ़े हैं वे तुम सब भूल जाओगे ॥१०॥

एवं शप्तो नृपः क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः।
प्रतिशापपरो विप्र तोयं जग्राह पाणिना ॥११॥
सोऽपि राज्ञो विनाशाय कोपं चक्रे द्विजोत्तमः।
तमभ्येत्य त्वरायुक्तो वारयामास वै पिता ॥१२॥
वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनायतिवैरिणा।
ऐहिकामुष्मिकहितः शम एव द्विजन्मनाम् ॥१३॥
कोपस्तपो नाशयति क्रुद्धो भ्रश्यत्यथायुषः।
क्रुद्धस्य गलते ज्ञानं क्रुद्धश्चार्थाच्च हीयते ॥१४॥
न धर्म्मः क्रोधशीलस्य नार्थश्चाप्नोति रोषणः।
नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५॥
यदि राज्ञा हता धेनुरियं विज्ञानिना सता।
युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनो हितबोधिना ॥१६॥
अथवाऽज्ञानता धेनुरियं व्यापादिता मम।
तत् कथं शापयोग्योऽयं दुष्टं नास्य मनो यतः ॥१७॥
आत्मनो हितमन्विच्छन् बाधते योऽपरं नरः।
कर्त्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः ॥१८॥
अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति बुधा यदि।
बुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनो नराः ॥१९॥
नाद्य शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक।
स्वकर्म्मणैव पतिता गौरेषा दुःखमृत्युना ॥२०॥

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्रोऽपि मुनेः पुत्रं प्रणम्यानम्रकन्धरः।
प्रसीदेति जगादोच्चैरज्ञानाद्घातितेति च ॥२१॥
मया गवयबुद्ध्या गौरवध्या घातिता मुने।
अज्ञानाद्धोमधेनुस्ते प्रसीद त्वञ्च नो मुने ॥२२॥

ऋषिपुत्र उवाच

आ जन्मनो महीपाल न मया व्याहृतं मृषा।
क्रोधश्चाद्य महाभाग नान्यथा मे कदाचन ॥२३॥
तन्नाहमेनं शक्नोमि शापं कर्तुं नृपान्यथा।
यस्ते समुद्यतः शापो द्वितीयः स निवर्त्तितः ॥२४॥
इत्युक्तवन्तं तं बालमादाय स पिता ततः।
जगाम स्वाश्रमं सोऽपि पृषध्रः शूद्रतामगात् ॥२५॥

इस प्रकार शाप दिये जाने पर राजा को दुःखऔर कोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने मुनिपुत्र को शाप देने के लिये हाथ में जल ले लिया ॥ ११ ॥ उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने भी राजा के नष्ट करने के लिये कोप किया। दैवात् उसी समय मुनिकुमार के पिता ने शीघ्र वहां पहुँच कर उनको रोका ॥१२॥ उसने कहा कि हे पुत्र! व्यर्थ इतना कोध मत करो, क्रोध ब्राह्मण का शत्रु है। इस लोक और परलोक में ब्राह्मण का हित इसी में है कि वह शान्त रहे॥ कोप तप को नष्ट करता है। क्रोधी का ज्ञान तथा धन नाश को प्राप्त होजाता है ॥१४॥ क्रोधी का धर्म नहीं रहता और न उसको धन ही मिलता है। अभिलाषा पूर्ण होने पर भी क्रोधियों को सुख नहीं मिलता है ॥ १५ ॥ यदि राजा ने अनजान में इस गाय को मार दिया है तो हमको अपने हित का विचार करके इन पर दया करना चाहिये ॥ १६॥ अर्थात् जब इन्होंने विना जाने भूल से मेरीको गाय मार दिया है तो यह शाप के योग्य किस प्रकार है कारण इनका मन शुद्ध है ॥ १७ ॥ वे मनुष्य दूसरे हैं जो अपनी भलाई के लिये दूसरे को दुःख देते हैं, जो लोग कर्तव्य का ज्ञान न होने पर अर्थात् भूल से अपराध करते हैं वे केवल दया के पात्र हैं ॥ १८ ॥ यदि ज्ञानी लोग अज्ञान से किये हुए कार्य को दण्डित करें तो उन ज्ञानियों से मैं अज्ञानी लोगों को अधिक अच्छा समझता हूँ ॥ १९ ॥ हे पुत्र! तुम्हें राजाको शाप नहीं देना चाहिये कारण इस गौने अपनी आयु समाप्त करके मृत्यु पाई है॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद पृषध्र ने प्रणाम कर मुनिकुमार से कहा, "आप प्रसन्न हों, मैंने अज्ञान में इस गाय को मारा है" ॥२१॥ हे मुनि! मैंने विना जाने अवध्या गायको नीलगाय समझकर मारा है। हेमुनि! आप मुझपर कृपा करें ॥ २२ ॥

ऋषिपुत्र बोले—

हे राजन्! मैंने आजन्म कभी मिथ्या नहीं बोला अतः हे महाभाग! मेरा क्रोध झूठा न होगा ॥ २३॥ अतः अब मैं इस शाप को अन्यथा नहीं करसकता परन्तु दूसरा शाप जो कि मैं देने को उद्यत था अब न दूँगा ॥ २४ ॥ इस प्रकार कहते हुए उस मुनिकुमार को उसके पिता आश्रममें लेगये और राजा पृषध्र भी शापवश शूद्र होगये ॥ २५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें पृषध्र उपाख्यान कथन नाम ११२वाँ अध्याय स०।

एकसौतेरहवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

कारुषाः क्षत्रियाः शूराः करुषस्याभवन् सुताः ।
ते तु सप्तशता वीरास्तेभ्यश्चान्ये सहस्रशः ॥ १ ॥
दिष्टपुत्रस्तु नाभागः स्थितः प्रथमयौवने ।
ददर्श वैश्यतनयामतीव सुमनोहराम् ॥ २ ॥
तस्यां स दृष्टमात्रायां मदनाक्षिप्तमानसः ।
बभूव भूपतनयो निश्वासासेपतत्परः ॥ ३ ॥
तस्यां स गत्वा जनकं वव्रे तां वैश्यकन्यकाम् ।
ततोऽनङ्गपरायीन-मनोवृत्तिं नृपात्मजम् ॥४॥
तमाह स पिता तस्या राजपुत्रं कृताञ्जलिः ।
बिभ्यत् तस्य पितुर्विप्र प्रश्रयावनतं वचः ॥ ५ ॥
भवन्तो भूभुजो भृत्या वयं वः करदायकाः ।
कथं सम्बन्धमस्माभिरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥ ६ ॥

राजपुत्र उवाच

साम्यं मानुषदेहस्य काममोहादिभिः कृतम् ।
तथापि काले तैरेव योज्यते मानुषं वपुः ॥७॥
तथैव चोपकाराय जायन्ते तस्य तान्यपि ।
अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमतां सताम्॥८॥
तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः ।
योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्या हि योग्यता॥६
आप्याय्यते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः ।
कालं ज्ञात्वा तया भुक्तं तदेव परिशिष्यते ॥१०॥
इत्थं ममैषाभिमता तनया दीयतां त्वया ।
अन्यथा मच्छरीरस्य विपत्तिरुपलक्ष्यते ॥११॥

वैश्य उवाच

परतन्त्रा वयं त्वञ्च परतन्त्रो महीभुजः ।
पित्रा तेनाभ्यनुज्ञातस्त्वं गृहाण ददाम्यहम् ॥१२॥

राजपुत्र उवाच

प्रष्टव्याः सर्व्वकार्य्येषु गुरवो गुरुवर्त्तिभिः ।
न त्वीदृशेष्वकार्य्येषु गुरूणां वाक्यगोचरः ॥१३॥
क्व मन्मथकथालापो गुरूणां श्रवणं कथम् ।

मार्कण्डेयजी बोले—

करुष के पुत्र सातसौ कारुष क्षत्रिय हुए, उन सातसौ वीरों से हजारों क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ दिष्ट के पुत्र नाभाग ने अपने प्रथम यौवन में एक अत्यन्त सुन्दर वैश्य कन्या को देखा ॥ २ ॥ उसको देखते ही राजकुमार काम के वश में होकर ठण्डी श्वास लेने लगे ॥ ३ ॥ फिर राजपुत्र उस वैश्य कन्या के पिता के पास गये और उस कन्या को माँगा। वैश्य ने राजकुमार को कामासक्त देखकर ॥ ४ ॥ उनसे हाथ जोड़ कर तथा राजा के डर से यह कहा ॥ ५ ॥ आप राजा हैं तथा हम आपके सेवक और कर देने वाले हैं । हम और आप असमान हैं, हमारा आपका सम्बन्ध कैसा ॥ ६ ॥

राजपुत्र बोले—

सब मनुष्यों के देह में काम और मोह समान है। समय पाकर काम सभी के शरीर में प्रबल होता है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार काल पाकर काम आदि मनुष्यों के शरीर का उपकार करते हैं और अलग अलग जाति में एक शरीर का काम दूसरे शरीर से प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार काल पाकर अयोग्य मनुष्य योग्य अयोग्य होजाते हैं। वस्तुतः योग्यता काल के वश में है ॥ ९ ॥ जो शरीर कि इच्छित आहार आदि से तृप्त किया जाताहै समय पाकर वह ही किसी जीव द्वारा खालिया जाता है अतः समय ही बलवान है ॥ १० ॥ मेरा मत इस प्रकार है, अब तुम मुझे अपनी कन्या दो अन्यथा मेरे शरीर को भारी आपत्ति की आशङ्का है ॥११॥

वैश्य बोला—

आप और हम राजा के वश में हैं, यदि आप के पिता आज्ञा देदें तो मैं अपनी कन्या आपको दे दूँगा ॥ १२ ॥

राजपुत्र बोले—

समस्त कार्यों में गुरुजनों से पूछना चाहिये परन्तु इस तरह के कार्यों को वहाँ तक पहुँचाना ठीक नहीं ॥ १३ ॥ कहाँ तो कामदेव की कथावार्ता और कहाँ गुरुजनों के वाक्यों को सुनना ? यह दोनों परस्पर विरोधी हैं. अतः मनुष्यों को चाहिये

विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः ॥१४॥
वैश्य उवाच
एवमेतत् स्मरालापस्तवार्यं पृच्छतो गुरुम् ।
अहं पृच्छामि नालापो मम कामकथाश्रयः ॥१५॥
मार्कण्डेय उवाच
इत्युक्तः सोऽभवन्मौनो राजपुत्रः स चापि तत् ।
तत्पित्रे सर्व्वमाचष्ट राजपुत्रस्य यन्मतम् ॥१६॥
ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन् द्विजोत्तमान् ।
प्रवेश्य राजपुत्रञ्च यथाख्यातं न्यवेदयत् ॥१७॥
निवेद्य च ततः प्राह मुनीनेवं व्यवस्थितः ।
यत् कर्त्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्ति द्विजसत्तमाः ॥१८॥
ऋषय ऊचुः
राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ ।
तदस्तु धर्म्म एवैष किन्तु न्यायक्रमेण सः ॥१९॥
मूद्धर्भिषिक्ततनया-पाणिग्राहोभवेत् पुरा ।
भवत्वनन्तरञ्चेयं तव भार्य्या भविष्यति ॥२०॥
एवं न दोषो भवति तथेमामुपभुञ्जतः ।
अन्यथाऽभ्येति ते जातिरुत्कृष्टा बालिकां हरन्॥२१॥
मार्कण्डेय उवाच
इत्युक्तस्तदपास्यैव वचस्तेषां महात्मनाम् ।
विनिष्क्रम्य गृहीत्वा तामुद्यतासिरथाब्रवीत् ।२२॥
राक्षसेन विवाहेन मया वैश्यसुता हृता ।
यस्य सामर्थ्यमत्रास्ति स एतां मोचयत्विति॥२३॥
ततः स वैश्यस्तां दृष्ट्वा गृहीतां तनयां द्रुतम् ।
त्राहीति पितरं तस्य प्रययौ शरणं द्विज ॥२४॥
ततस्तस्य पिता क्रुद्ध आदिदेश बलं महत् ।
हन्यतां हन्यतां दुष्टो नाभागो धर्म्मदूषकः ॥२५॥
ततस्तद्युयुधे सैन्यं तेन भूभृत्सुतेन वै ।
कृतास्त्रेण तदास्त्रेण तत् प्राचुर्य्येण पातितम्॥२६॥
स श्रुत्वा निहतं सैन्यं राजपुत्रेण भूपतिः ।
स्वयमेव ययौ योद्धुं स्वसैन्यपरिवारितः ॥२७॥
ततो युद्धमभूत् तस्य भूभुजः स्वसुतेन यत् ।

कि दूसरे मामलों में गुरुजनों से पूछें ॥ १४ ॥
वैश्य बोला—
हे राजकुमार! आपके लिये तो ये बात पिताजी से पूछना कामालाप होगा परन्तु मेरे लिये तो ऐसी कुछ बात नहीं है, मैं पूछूँगा ॥ १५ ॥
मार्कण्डेयजी बोले—
उसके यह कहने पर राजकुमार मौन होगये और फिर वैश्य ने राजकुमार का मत पिता से प्रकट किया ॥ १६ ॥ फिर राजा दिष्ट ने ऋचीक आदि उत्तम ब्राह्मणों को बुला कर राजकुमार की उपस्थिति में सब वृत्तान्त उनसे कह सुनाया ॥ इस प्रकार निवेदन कर उसने मुनियों से कहा कि इस प्रकार की व्यवस्था है, अब आप जो आदेश दें वह मैं करूँ ॥१८॥
ऋषि बोले—
हे राजकुमार! यदि तुम्हारा अनुराग इस वैश्य की कन्या ही से है तो यह धर्मके अनुरूप है परन्तु यह होनाचाहिये न्यायके क्रमसे॥१९॥पहिले आपका विवाह क्षत्रिय की कन्या के साथ होना चाहिये। उसके बाद यह वैश्य कन्या आपकी स्त्री होसकती है ॥२०॥ इस प्रकार इसमें दोष न होगा और आप इस वैश्य कन्या से भोग भी कर सकेंगे। न्यायके विरुद्ध कर्म करने से दोष होगा, क्योंकि आपकी जाति उत्कृष्ट है और यह कन्या निम्न वर्ण की है॥
मार्कण्डेयजी बोले—
इस प्रकार कहे जाने पर भी उस राजकुमारने महात्माओं की बातों पर कुछ ध्यान न दिया और बाहर निकल कर उस कन्या को पकड़ लिया और हाथ में तलवार लेकर बोला ॥२२॥ मैंने इस कन्या को हरण करके राक्षस विधि से इसके सा॰ विवाह किया है जिसकी सामर्थ्य हो वह इसे कर छुड़ावे ॥ २३ ॥ हे क्रौष्टुकिजी! उस कन्या के इस प्रकार हरण किये जानेपर उसका पिता त्राहि-त्राहि कहता हुआ महाराज की शरण में गया ॥२४॥ तब उसके पिता दिष्ट ने क्रुद्ध होकर एक महान् सेना को आज्ञादी कि धर्मदोषी दुष्ट न ॥ को मारो ॥२५॥ तब वह सेना राजकुमार के युद्ध करने लगी और राजकुमार ने अपने अस्त्र से उस सब सेना को काट डाला ॥ २६ ॥ राजकुमार के हाथों सब सेना का नाश हुआ सुनकर स्वयं महाराज अपनी सेना लेकर उससे युद्ध करने को गये ॥२७॥ इसके बाद राजा का पुत्र के साथ युद्ध हुआ और उस युद्ध में राजकुमार ने अपने शस्त्र-

राजपुत्रेण शस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितः पिता ॥२८॥
ततोऽन्तरीक्षादागत्य परिव्राट् सहसा मुनिः।
प्रत्युवाच महीपालं विरमस्वेति संयुगात् ॥२९॥
त्वत्पुत्रस्य महाभाग विधर्म्मोऽयं महात्मनः।
तवापि वैश्येन सह न युद्धं धर्म्मवन्नृप ॥३०॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणीपूर्व्वं कुर्व्वन् दारपरिग्रहम्।
ब्राह्मण्यात् सर्व्ववर्णेषु न हानिमुपगच्छति ॥३१॥
तथैव क्षत्रियसुतां क्षत्रियः पूर्व्वमुद्वहन्।
इतरे च ततो राजंश्च्यवन्ते न स्वधर्म्मतः ॥३२॥
पूर्व्वं वैश्यस्तथा वैश्यां पश्चात् शूद्रकुलोद्भवाम्।
न हीयते वैश्यकुलादयं न्यायः क्रमोदितः ॥३३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सवर्णापाणिसंग्रहम्।
अकृत्वाऽन्यतरापाणेः पतन्ति नृप संग्रहात् ॥३४॥
यस्या यस्या हि हीनायाः कुरुते पाणिसंग्रहम्।
अकृत्वा वर्णसंयोगं नापि तद्वस्तुभाग्भवेत् ॥३५॥
सोऽयं वैश्यत्वमापन्नस्तव पुत्रः स मन्दधीः।
नास्याधिकारो युद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ॥३६॥
वयमेतन्न जानीमः कारणं नृपनन्दन।
यथा भविष्यतीदञ्च निवर्त्त रणकर्म्मतः ॥३७॥

अस्त्रों से पिता को बहुत पीड़ित किया ॥२८॥ इसके अनन्तर परिव्राट् नाम मुनि सहसा आकाश मार्ग से आकर महाराज दिष्ट से बोले कि आप युद्ध न करें ॥ २९ ॥ हे राजन्! आपका पुत्र धर्मसे च्युत होकर वैश्य होगया है और वैश्य के साथ आपका युद्ध करना उचित नहीं ॥ ३०॥ एक ब्राह्मण ब्राह्मणी के साथ पाणिग्रहण करने के पश्चात् अन्य वर्णों की स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है, ऐसा करने में उसको कोई दोष नहीं लगता है ॥ इसी प्रकार क्षत्रिय पहिले क्षत्रिय कन्या से विवाह करके फिर इतर वर्ण अर्थात् वैश्य और शूद्र की कन्या के साथ विवाह कर सकता है ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार यदि वैश्य वैश्य की कन्या से विवाह करने के बाद शूद्र की कन्या के साथ विवाह करले तो वैश्य कुल से हीन नहीं होता है। यह मैंने क्रमसे न्यायकर्म कहा ॥३३॥ हे राजन्! जो ब्राह्मण,क्षत्रिय या वैश्य क्रमशः अपने वर्ण की कन्या से विवाह करने के पूर्व दूसरे वर्ण की कन्याय से विवाह कर लेता है वह पतित होजाता है ॥ ३४ ॥ अर्थात् जो व्यक्ति पहिले अपने वर्ण की कन्या से विवाह न करके हीन वर्ण की कन्या से विवाह कर लेताहै उसकी जाति पतित होकर उसी हीन-वर्ण कन्या की जाति हो जाती है ॥३५॥ आपका यह बुद्धिहीन पुत्र वैश्यत्व को प्राप्त होगया है। आप क्षत्रिय हैं, आपके साथ इस वैश्य को युद्ध करनेका अधिकार नहीं है ॥३६॥ हे नृपनन्दन! हम इसका कारणनहीं जानते हैं कि यह किस प्रकार हुआ, परन्तु आप इसके साथ युद्ध कर्म से निवृत्त हों ऐसा हमारा आदेश है ॥ ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में नाभागचरित (१) नाम ११३वाँ अध्याय समाप्त।

एकसौचौदहवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

निवृत्तोऽसौ ततो भूपः संग्रामात् स्वसुतेन वै।
उपयेमे च तां वैश्य-तनयां सोऽपि तत्सुतः ॥ १ ॥
ततः स वैश्यतां प्राप्तः समुत्पत्याह पार्थिवम्।
भूपाल यन्मया कार्य्यं तत् समादिश्यतां मम ॥ २ ॥

राजोवाच

...धकर... युक्ता बाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः।

मार्कण्डेयजी बोले—

तब परिव्राट् मुनि के कहने पर राजा दिष्ट ने अपने पुत्रसे युद्ध करना छोड़ दिया और उस पुत्र ने भी फिर वैश्य कन्या के साथ विवाह कर लिया ॥ १ ॥ फिर वह पुत्र वैश्यता को प्राप्त होकर राजा के पास आया और कहने लगा, "हे राजन्! अब जो कुछ मुझे कर्तव्य है वह बताइये" ॥२॥

राजा बोले—

बाभ्रव्य आदि तपस्वी लोग धर्माधिकारों के

यदस्य कर्म्म धर्म्माय तद्वदन्तु तथा चर ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यं तथा कृषिम् ।
वाणिज्यंच परं धर्म्ममाचचक्षुः सभासदः ॥ ४ ॥
तथा च चक्रे स सुतस्तस्य राज्ञो यथोदितम् ।
तैर्धर्म्मवादिभिर्धर्म्मं च्युतस्य निजधर्म्मतः ॥ ५ ॥
तस्य पुत्रस्ततो जातो नाम्ना ख्यातो भनन्दनः ।
स मात्रा प्रहितोऽगच्छद्गोपालो भव पुत्रक ॥ ६ ॥
मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम् ।
राजर्षिमगमत्तीपं हिमवत्पर्व्वताश्रयम् ॥ ७ ॥
तं समेत्य स जग्राह तस्य पादौ यथाविधि ।
प्रणिपत्याह चैवैनं राजर्षिं स भनन्दनः ॥ ८ ॥
आदिष्टो भगवन् मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै ।
मया च पालनीया क्ष्मा तस्याः स्वीकरणं कथम् ९॥
मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत् ।
आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायादैः पृथिवी मम॥१०॥
तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो ।
तथादिश करिष्यामि तवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते ॥११॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः समीपे राजर्षिस्तस्मै निरवशेषतः ।
भनन्दाय ददौ ब्रह्मन्नस्त्रग्रामं महात्मने ॥१२॥
प्राप्तास्त्रविद्यः स ययौ पितृव्यतनयान् द्विज ।
वसुरातादिकान् पुत्रानादिष्टः स महात्मना ॥१३॥
अयाचत स राज्यार्द्धं पितृपैतामहोचितम् ।
ते चोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वं कथं भोक्ष्यसि मेदिनीम्॥१४॥
ततस्तैर्युद्धमभवद्भनन्दस्यात्मवंशजैः ।
वसुरातादिभिः क्रुद्धैः कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ॥१५॥
स जित्वा तानशेषांस्तु शस्त्रविक्षतसैनिकान् ।
जहार पृथिवीं तेषां धर्म्मयुद्धेन धर्म्मवित् ॥१६॥
स निर्ज्जितारिः सकलां पृथ्वीं राज्यं तथा पितुः ।

ज्ञाता हैं, उन्हीं के द्वारा तुमको अपना धर्म या कर्तव्य मालूम होगा, जैसा वे कहें करो ॥ ३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब उन मुनियों ने नाभाग को गोपालन, कृषि और वाणिज्य आदि जोकि वैश्योचित परम कर्तव्य हैं उसको बतला दिये ॥ ४ ॥ फिर नाभाग धर्म से च्युत होकर राजा की आज्ञानुसार उन धर्मज्ञों द्वारा अपने धर्म-कर्म को पूछ कर उसी के अनुसार आचरण करने लगा ॥ ५ ॥ नाभाग के उस वैश्य कन्या से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम भनन्दन प्रसिद्ध हुआ। भनन्दन के पूछने पर उसकी माता ने उससे गोपालन का कार्य करने को कहा ॥ ६ ॥ माता से इस प्रकार आज्ञा पाकर उसने अपनी माता को प्रणाम किया और फिर हिमालय पर्वत पर स्थित राजर्षि के पास गया॥ उनके पास जाकर उसने विधि पूर्वक उनके चरण पकड़ लिये और फिर वह भनन्दन उनको प्रणाम कर बोला ॥ ८ ॥ हे भगवन्! मेरी माता ने मुझको आदेश किया है कि मैं गोपालन करूँ, परन्तु मुझे तो पृथ्वी का पालन करना चाहिये, मैं उनका कथन किस प्रकार मानूं ॥९॥ मुझे उन गौओं का पालन भी करना चाहिये जिनकी कि मुझको आज्ञा मिली है, तथा मुझे उस पृथ्वी रूपी गौ को भी पालना चाहिये जिसको कि मेरे भाइयोंने छीन लिया है ॥ १०॥ हे प्रभो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपकी कृपा से उस पृथ्वी को मैं फिर प्राप्त करूँ ऐसा आदेश कीजिये ॥ ११ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे ब्रह्मन्! फिर राजर्षि ने निःशेष रूपसे संपूर्ण शस्त्र विद्या भनन्दन को सिखलादी ॥१२॥ हे द्विज! सम्पूर्ण अस्त्रविद्या को सीख कर भनन्दन महात्मा राजर्षिकी आज्ञा लेकर वसुरात आदि अपने चचेरे भाइयों के पास गया ॥१३॥ फिर उसने अपने बाप दादों के राज्य का आधा भाग उनसे माँगा। इस पर वे बोले कि तुम तो वैश्य-पुत्र हो, तुम किस प्रकार पृथ्वी का पालन करोगे ॥ १४ ॥ इसके बाद भनन्दन का उसके वसुरात आदि भाइयों के ... युद्ध हुआ जिसमें कि उन्होंने क्रुद्ध होकर उसके ऊपर शस्त्र अस्त्रों की वर्षा की ॥ १५ ॥ उस धर्मज्ञ भनन्दन ने अपने शस्त्रों से उनकी सेना का संहार करके युद्ध को जीता और उनसे राज्य ले लिया॥ सब शत्रुओं को जीतकर भनन्दन ने राज्य वापिस लिया और अपने पिताको,उसे निवेदन कर...

नवेदयामास ततस्तत्पिता जगृहे न च ।
त्युवाच च तं पुत्रं भार्य्यायाः पुरतस्तदा ॥१७॥

नाभाग उवाच

ानन्द राज्यमेतत् ते क्रियतां पूर्व्वजैः कृतम् ।
ग्रहं न कृतवान् राज्यं नासामर्थ्ययुतः पुरा ॥१८॥
ैश्यतान्तु पुरस्कृत्य तथैवाज्ञाकरः पितुः ।
कृत्वाऽप्रीतिं पितुरहं वैश्यकन्यापरिग्रहात् १९॥
न पुण्यलोकभाग्राजा यावदाहूतसंप्लवः ॥२०॥
ग्लङ्घ्याज्ञां पुनस्तस्य पालयामि महीं यदि ।
नास्ति मोक्षस्ततो नूनं मम कल्पशतैरपि ॥२१॥
न चापि युक्तं त्वद्बाहु-निर्ज्जितं मम मानिनः ।
राज्यं भोक्तमनीहस्य दुर्व्वलस्येह कस्यचित् ॥२२॥
राज्यं कुरु स्वयं यावद्दायादेभ्यो विसृज्य वा ।
ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्न क्षितिपालनम् ॥२३॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहस्य तद्भार्य्या सुप्रभा नाम भाविनी ।
प्रत्युवाच पतिं भूप गृह्यतां राज्यमूर्ज्जितम् ॥२४॥
न त्वं वैश्यो न चैवाहं जाता वैश्यकुले नृप ।
क्षत्रियस्त्वं तथैवाहं क्षत्रियाणां कुलोद्भवा ॥२५॥
पूर्व्वमासीन्महीपालः सुदेव इति विश्रुतः ।
तस्याभूच्च सखा राज्ञो धूम्राश्वस्य सुतो नलः॥२६॥
स तेन सख्या सहितो जगामाम्रवणं वनम् ।
पत्नीभिः स समं रन्तुं माधवं मासि पार्थिव॥२७॥
ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि बुभुजे तथा ।
भार्य्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः॥२८
ततः पुष्करिणीतीरे ददर्शातिमनोरमाम् ।
पत्नीं च्यवनपुत्रस्य प्रमतेः पार्थिवात्मजाम् ॥२९॥
सखा तस्य नलो मत्तो जगृहे ताञ्च दुर्म्मतिः ।
पश्यतस्तस्य राज्ञश्च त्रात त्रातेतिवादिनीम् ॥३०॥
आक्रन्दितं निशम्यैव स तस्याः प्रमतिः पतिः ।
आजगाम त्वरायुक्तः किमेतदिति वै वदन् ॥३१॥
ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् ।
गृहीताञ्च तथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना ॥३२॥
ततः सुदेवं प्रमतिः प्राहेदं शास्यतामिति ।

परन्तु उसके पिता नाभाग ने उसे अङ्गीकार नहीं किया और वे अपनी स्त्रीके सामने पुत्र से कहनेलगे॥

नाभाग बोले—

हे मनन्दन ! पूर्वजों का यह राज्य तुम्हारा ही है। मैंने पहिले कभी राज्य नहीं किया, अतः मैं इसकी सामर्थ्य नहीं रखता हूँ ॥१८॥ वैश्य कन्या के साथ विवाह करने के कारण मैं पिताकी आज्ञानुसार वैश्यता को प्राप्त होगया हूँ ॥१९॥ जब तक कि वे मुझको न बुलावें और मुझपर प्रसन्न हों, तब तक मुझे पुण्यलोक नहीं मिलेगा ॥ २० ॥ उन की आज्ञा का उल्लंघन कर यदि मैं पृथ्वीका पालन करूँगा तो मेरी सौ कल्प तक भी कभी मोक्ष न होगी ॥ २१ ॥ तुम्हारा जीता हुआ राज्य मुझको न भोगना चाहिये। मैं दुर्बल होने के कारण राज्य के भोगने की सामर्थ्य भी नहीं रखता हूँ ॥ २२ ॥ तुम चाहे स्वयं राज्य करो अथवा अपने भाइयों को देदो, मैं तो पिता की आज्ञा पालन करता हुआ राज्य नहीं करूँगा ॥ २३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब सुप्रभा नाम उसकी स्त्री हँस कर अपने पति से बोली, "हे राजन् ! जीते हुए राज्य को आप ग्रहण करें" ॥ २४ ॥ हे महाराज ! न तो आप वैश्य हैं और न मैं ही वैश्यकुल में उत्पन्न हुई हूँ। आप क्षत्रिय हैं और मैं भी क्षत्रिय कुलोत्पन्न हूँ ॥ पूर्व काल में सुदेव नाम का एक राजा हुआ जिस का मित्र राजा धूम्राश्व का पुत्र नल था ॥ २६ ॥ हे राजन् ! वसन्त ऋतु में एक दिन वे राजा अपने मित्रों के साथ आम के वन में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने को गये ॥२७॥ वहाँ उन्होंने उन स्त्रियों और अपने मित्र के साथ भोजन और मद्यपान आदि किया ॥ २८ ॥ वहाँ पुष्करिणी के किनारे पर उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दरी राजा की कन्या को जो च्यवन के पुत्र प्रमति की स्त्री थी देखा ॥ २९ ॥ सुदेव के मित्र दुर्मति नलने जो उस समय उन्मत्त होरहा था उस स्त्री को पकड़ लिया और वह राजा को देखकर 'त्राहि-त्राहि' कहने लगी ॥ ३० ॥ उसके रोने की आवाज़ सुनकर उसके पति प्रमति बड़ी शीघ्रता से वहाँ पहुँचे और कहने लगे कि क्या बात है ॥ ३१ ॥ वहाँ पर उन्होंने देखा कि राजा सुदेव बैठे हुए हैं और दुरात्मा नल उनकी स्त्री को पकड़े हुए है ॥ ३२ ॥ फिर प्रमति सुदेव से बोले, "हे राजन् ! आप दुष्टों का शासन करने के

त्वंच शास्ता भवान् राजा दुष्टश्चायं नलो नृप॥३३॥

लिये हैं और यह नल दुष्ट है, इसको शान्त कीजिये" ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तस्यार्त्तस्य वचः श्रुत्वा सुदेवो नलगौरवात्।
प्राह वैश्योऽस्मि गच्छान्यं क्षत्रियं त्राणकारणात्॥३४
ततः स प्रमतिः क्रुद्धस्तेजसा निर्दहन्निव।
प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम्॥३५॥

मार्कण्डेयजी बोले—

दुःखी प्रमति के वचन सुनकर राजा सुदेव नल का पक्ष करके बोले, "मैं वैश्य हूँ, आप किसी क्षत्रिय से कहकर अपनी स्त्री की रक्षा कराइये" ॥ ३४ ॥ इस पर प्रमति क्रोध की अग्नि से जलने लगे और अपने को वैश्य बताने वाले राजा सुदेव से बोले ॥ ३५ ॥

प्रमतिरुवाच

एवमस्तु भवान् वैश्यः क्षत्रियः क्षतरक्षणात्।
क्षत्रियैर्धार्य्यते शास्त्रं नार्त्तशब्दो भवेदिति।
स त्वं न क्षत्रियो भावी वैश्य एव कुलाधमः॥३६॥

प्रमति बोले—

ऐसा ही हो, क्षत्रियोचित रक्षण कार्य न करने के कारण आप वैश्य ही होंगे। क्षत्रियों के शस्त्र ग्रहण करते हुए किसी की आर्तवाणी नहीं सुनाई देती है। तुम वस्तुतः क्षत्रिय नहीं हो, तुम कुलाधम वैश्य ही होगे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में नाभागचरित (२) नाम ११४वाँ अध्याय समाप्त।



एकसौपंद्रहवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तस्मै दत्त्वा ततः शापं नलं क्रुद्धोऽब्रवीद्द्विज।
प्रमतिर्भार्गवः कोपात् त्रैलोक्यं निर्दहन्निव॥१॥
मदोन्मत्तो यदा भार्य्यां भवानत्र ममाश्रमे।
बलाद्गृह्णासि भस्मत्वं तस्माद्व्रजतु मा चिरम्॥२॥
तेनोदाहृतमात्रे च वाक्ये तस्मिन् तदा नलः।
देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत्॥३॥
दृष्ट्वा प्रभावं तत् तस्य सुदेवो विमदस्ततः।
प्रणामनम्रः प्राहेदं क्षम्यतां क्षम्यतामिति॥४॥
यदुक्तवांस्त्वं भगवन् सुरापानमदाकुलम्।
तत् क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोऽयं विनिवर्त्यताम्॥५॥
एवं प्रसादितस्तेन प्रमतिः प्राह भार्गवः।
गतकोपो नले दग्धे भावहीनेन चेतसा॥६॥
नान्यथा भावि तद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम्।
तथापि ते करिष्यामि प्रसन्नोऽनुग्रहं परम्॥७॥
भविता वैश्यजातीयो भवान् नास्त्यत्र संशयः।
भविता क्षत्रियो भूयस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि॥८॥
ग्रहीष्यति बलात् कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भवः।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकिजी! राजा सुदेव को शाप देकर भृगुवंशी प्रमति अपनी क्रोधाग्नि से तीनों लोकोंको दग्ध करते हुए नल से बोले ॥१॥ मदोन्मत्त होकर जो तुमने मेरे आश्रम से मेरी स्त्री को पकड़ा है, इस कारण तुम शीघ्र भस्म होजाओ ॥ २ ॥ प्रमति के इस प्रकार कहते ही नल अपने शरीरसे निकली हुई अग्नि से फौरन भस्म होगया ॥ ३ ॥ उनका प्रभाव देखकर राजा सुदेव का नशा उतर गया और वे नम्रता पूर्वक प्रणाम करते हुए उनसे बोले कि क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये ॥ ४ ॥हे भगवन्! सुरापान के मद में जो कुछ मैंने आपसे कहा है उसे क्षमा कीजिये जिससे आपके दिये हुए शाप की निवृत्ति हो ॥ ५ ॥ राजा सुदेव के इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भृगुवंशी प्रमति जिनका कोप नल के भस्म हो जाने से शान्त होगयाथा विकाररहित चित्त से बोले ॥ ६॥ जो कुछ मैंने कहा है वह तो मिथ्या न होगा परन्तु मैं प्रसन्न होकर तुमपर एक अनुग्रह करूँगा ॥ ७ ॥ आप वैश्य तो बिना संशय के होंगे ही परन्तु उसी जन्म में फिर शीघ्र क्षत्रिय होजावेंगे ॥ ८ ॥ जब तुम्हारी कन्या को बल पूर्वक एक क्षत्रिय ले जायगा तब तुम पुनः वैश्य से

तदा त्वं क्षत्रियो वैश्य स्वगृहीतो भविष्यति ॥ ९ ॥
एवं स वैश्यो भूपाल सुदेवोऽस्मत्पिताऽभवत् ।
अहञ्च या महाभाग तत् सर्व्वं श्रूयतां त्वया ॥१०॥
सुरथो नाम राजर्षिः प्रागासीद्गन्धमादने ।
तपस्वी नियताहारस्त्यक्तसङ्गो वनाश्रयः ॥११
ततः श्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वा शारिकां भुवि ।
कृपाऽभूज्जनिता मूर्च्छा तथा तस्य महात्मनः॥१२॥
ततो मूर्च्छावसानेऽहं तस्योत्पन्ना शरीरतः ।
स मां दृष्ट्वा च जग्राह स्निह्यमानेन चेतसा ॥१३॥
यस्मात् कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा ।
तस्मात् कृपावती नाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो॥१४॥
ततोऽहमाश्रमे तस्य वर्द्धमाना दिवानिशम् ।
सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च ॥१५॥
ततो मुनेरगस्त्यस्य भ्रातागस्त्य इव श्रुतः ।
स चिन्वन् काननेवन्यं,सखीभिः कोपितोऽशपत् १६॥
यन्मां वैश्यमिति प्राह भवति तेन ते शपे ।
भविष्यसि वैश्यजा तु इत्युक्ते च तमब्रवम् ॥१७॥
नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम ।
अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि ॥१८॥

ऋषिरुवाच

दुष्टतां दुष्टसंसर्गाददुष्टमपि गच्छति ।
सुराबिन्दुनिपातेन पञ्चगव्यघटी यथा ॥१९॥
प्रणिपत्य न दुष्टास्मि यत् त्वयाहं प्रसादितः ।
तस्मादनुग्रहं बाले शृणु यत् ते करोम्यहम् ॥२०॥
वैश्ययोनौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि ।
राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥२१॥
ततो भूयः क्षत्रजातिं प्राप्ता त्वं पतिना सह ।
दिव्यानवाप्स्यसे भोगान् गच्छ भीतिरपैतु ते ॥२२॥
एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्व्वं महर्षिणा ।
पिता च मे पूर्व्वमेवं शप्तः प्रमतिनाऽभवत् ॥२३॥
एवं वैश्यो न राजंस्त्वं न च वैश्यः पिता मम ।
न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् ॥२४॥

क्षत्रियत्व को प्राप्त होगे ॥९॥ हे राजन्! वही राजा सुदेव मेरे पिता वैश्य हुए। हे महाभाग! अब मेरा वृत्तान्त सुनिये ॥ १० ॥ प्राचीन काल में गंधमादन पर्वत पर राजर्षि सुरथ तपस्वी, मिताहारी, विरक्त और वनवासी होकर रहते थे ॥ ११ ॥ उन्होंने बाज़ के मुँह से छूटकर पृथ्वी पर गिरी हुई एक शारिका पर दया की और उसे मूर्च्छा से छुड़ाया ॥ १२ ॥ उसकी मूर्च्छा समाप्त होने पर उसके शरीर से मैं उत्पन्न होगई और वे राजर्षि मुझे देखकर प्रेम पूर्वक मुझे अपने आश्रम पर ले गये ॥ १३ ॥ मेरे दयार्द्र होने से जो इसका जन्म हुआ है इसलिये यह मेरी पुत्री होकर कृपावती नाम वाली होगी, ऐसा उन राजर्षि ने कहा ॥१४॥ फिर मैं उस आश्रम पर रहकर दिन-प्रति दिन बढ़ने लगी और अपने समान अवस्था वाली सखियों के साथ वनों में विचरने लगी ॥१५॥ इसके अनन्तर अगस्त्य मुनि के भाई जिनका नाम भी अगस्त्य प्रसिद्ध था, वन के फलों को खोजते हुए वहाँ पहुंचे और किसी कारणवश सखियों समेत मुझको शाप दे दिया ॥ उनके यह कहने पर कि जो तुम लोगों ने मुझसे वैश्य कहा है इसलिये तुम निस्संदेह वैश्य कुल में ही उत्पन्न होगी, मैंने उनसे कहा ॥ १७ ॥ हे द्विज-सत्तम! मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया दूसरों के अपराध के लिये आप मुझे क्यों शाप देते हैं ॥

ऋषि बोले—

अदुष्ट भी दुष्टों के संसर्ग से दुष्टता को प्राप्त होता है, जिस प्रकार कि पंचगव्य का घड़ा एक बूंद मदिरा की गिर जाने से भ्रष्ट होजाता है ॥१९॥ और जो तुमने प्रणाम करके कहा है कि मैं दुष्टा नहीं हूँ तो हे बाले! मैं तुम पर अनुग्रह करके जो कहता हूं वह सुनो ॥ २० ॥ वैश्य योनि में होकर जब तुम राज्य के लिये अपने पुत्र को बोध करोगी उसी समय तुमको अपनी जाति का स्मरण हो जावेगा ॥ २१ ॥ फिर तुम पति के साथ क्षत्रियत्व को प्राप्त होकर दिव्य भोगों का उपभोग करोगी। जाओ, अब तुमको कुछ भय नहीं है ॥ २२ ॥ हे राजन्! मैं इस प्रकार से महर्षि द्वारा शापित हुई थी और मेरे पिता को पहिले प्रमति ने शाप दिया था ॥२३॥ इस तरह न तो मैं वैश्य हूं और न मेरे पिता। मेरे साथ विवाह करनेसे आपको दोष नहीं लगा कारण मैं क्षत्रिय हूँ, और आपभी ऐसेही हैं॥२४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में सुदेवचरित्र नाम का ११५वां अध्याय समाप्त।

एकसौसोलहवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा पुत्रस्य स च पार्थिवः ।
पुनः प्रोवाच धर्म्मज्ञस्तां पत्नीं तनयां तथा ॥ १ ॥
यन्मया पितुरादेशात् त्यक्तं राज्यं न तत् पुनः ।
ग्रहीष्यामि वृथोक्तेन किमात्माऽकृष्यते त्वया ॥२॥
अहं ते सम्प्रदास्यामि करं वैश्यव्रते स्थितः ।
भुङ्क्ष्व राज्यमशेषं त्वमिच्छया वा परित्यज ॥ ३ ॥
इत्युक्तः स तदा पित्रा राजपुत्रो भनन्दनः ।
चकार राज्यं धर्म्मेण तद्वदारपरिग्रहम् ॥ ४ ॥
अव्याहतं तस्य चक्रं पृथिव्यामभवद्द्विज ।
न चाधर्म्मे मनो भूपास्तस्य सर्व्वेऽभवन् वशे ॥ ५ ॥
तेनेष्टो विधिवद्यज्ञः सम्यक् शास्ति वसुन्धराम् ।
स एवैकोऽभवद्भर्त्ता पृथिव्यां व्याप्तशासनः ॥ ६ ॥
अजायत सुतस्तस्य वत्सप्रीर्नाम नामतः ।
पितातिशयितो युन गुणौघेन महात्मना ॥ ७ ॥
तस्यापि भार्य्या सौनन्दा विदूरथसुताऽभवत् ।
पतिव्रता महाभागा सा प्राप्ता तेन वीर्य्यतः ।
हत्वा पुरन्दररिपुं कुजृम्भं दितिजेश्वरम् ॥ ८ ॥

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवंस्तेन सम्प्राप्ता कुजृम्भनिधनात् कथम् ।
एतदाख्यानमाख्याहि प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

विदूरथो नाम नृपः ख्यातकीर्त्तिरभूद्भुवि ।
तस्य पुत्रद्वयं जातं सुनीतिः सुमतिस्तथा ॥१०॥
एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः ।
ददर्श गर्त्तं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ॥११॥
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास किमेतदिति भैरवम् ।
पातालविवरं मन्ये नैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥१२॥
चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजने वने ।
ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम् ॥१३॥
स तं पप्रच्छ च नृपः किमेतदिति विस्मितः ।

मार्कण्डेयजी बोले--

राजा नाभाग अपनी स्त्री और पुत्रके ये वचन सुनकर अपनी पत्नी और पुत्र से कहने लगे ॥ १ ॥ जो राज्य कि मैंने पिता की आज्ञा से छोड़ा है उसको मैं अब ग्रहण न करूँगा। तुम वृथा ही मेरी आत्मा को आकर्षित करना चाहते हो ॥ २ ॥ मैं वैश्य रह कर ही तुमको कर देता रहूँगा। तुम चाहे अपना राज्य भोग करो या त्यागो, मुझको कुछ नहीं कहना है ॥ ३ ॥ पिता के इस प्रकार कहने पर राजकुमार भनन्दन धर्म पूर्वक, विवाह करके राज्य करने लगे ॥ ४ ॥ हे द्विज ! भनन्दन पृथ्वी पर चक्रवर्ती राजा हुए। उनका चित्त अधर्म की ओर कभी नहीं गया और सब लोग उनके वश में होगये ॥ ५ ॥ उन्होंने विधि पूर्वक यज्ञ किये तथा भली भांति पृथ्वी पर शासन किया। वह सम्पूर्ण पृथ्वी के पालक हुए और उनका शासन सब ओर व्याप्त था ॥ ६ ॥ उनका वत्सप्री नाम एक पुत्र हुआ जो कि गुणों में अपने पिता से भी अधिक उत्कृष्ट था ॥ ७ ॥ विदूरथ की पुत्री सौनंदा उसकी स्त्री हुई जोकि बड़ी पतिव्रता और सौभाग्यवती थी और जिसको वत्सप्री ने अपने पराक्रम से इन्द्र के शत्रु दैत्यराज कुजृम्भ को मार कर जीता था ॥ ८ ॥

क्रौष्टुकिजी बोले—

हे मार्कण्डेयजी ! कुजृम्भ की मृत्यु से किस प्रकार सौनन्दाकी प्राप्ति हुई ? उस कथाको प्रसन्न होकर मुझसे कहिये ॥९॥

मार्कण्डेयजी बोले —

पृथ्वी पर विदूरथ नाम का एक राजा हुआ जिसके सुनीति और सुमति नाम दो पुत्र थे ॥१०॥ एक बार राजा विदूरथ मृगया के लिये जो वन में गये तो उन्होंने एक विशाल गड्ढा पृथ्वी में जैसे मुँह होगया हो वैसा देखा ॥ ११ ॥ उसको देखकर उन्होंने सोचा कि किस प्रकार यह भीषण गर्त्त पाताल की तरह होरहाहै और यह अधिक पुराना भी नहीं मालूम होता है ॥१२॥ जब वे उस एकान्त वनमें इस प्रकार सोच विचार कर रहे थे तब उन्होंने सुव्रत नाम एक तपस्वी ब्राह्मण को आते हुए देखा ॥ १३॥ राजा ने उस ब्राह्मण से कहा कि यह कैसे आश्चर्य की बात है कि यहाँ एक अति

अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितान्तर्गतोदरम् ॥१४॥

ऋषिरुवाच

किं न वेत्सि महीपाल वागर्थस्त्वं हि मे मतः ।
ज्ञेयं सर्व्वं नरेन्द्रेण वर्त्तते यन्महीतले ॥१५॥
दानवः सुमहावीर्य्यो वसत्युग्रो रसातले ।
स जृम्भयति यत् पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः॥१६॥
क्रियते तेन यत् किञ्चिद्भूतं भूतं महीतले ।
त्रिदिवे चानरपते तं कथं वेत्ति नो भवान् ॥१७॥
सुनन्दं नाम मुषलं त्वष्ट्रा यन्निर्म्मितं पुरा ।
तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून् ॥१८॥
पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम् ।
ततोऽसुराणां सर्व्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः ॥१६॥
तेन भिन्नात्र वसुधा सुनन्दमुषलायुधा ।
भोक्ष्यते वसुधामेतां तमजित्वा कथं भवान् ॥२०॥
यज्ञान् विध्वंसयत्युग्रो देवानामुपरोधकः ।
आप्याययति दैतेयान् स वली मुषलायुधः ॥२१॥
यद्यरिं घातयस्येनं पातालान्तरगोचरम् ।
ततः समस्तवसुधा-पतिस्त्वं परमेश्वरः ॥२२॥
मुषलं तस्य वलिनः सौनन्दं प्रोच्यते जनैः ।
तथा वलावलञ्चैव तं वदन्ति विचक्षणाः ॥२३॥
तत् तु निर्वीर्य्यतां याति संस्पृष्टं योषिता नृप ।
तस्मिन् दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्य्यवत् तदुदीर्य्यते॥२४॥
न स वेत्ति दुराचारः प्रभावं मुषलस्य तत् ।
योषित्कराग्रसंस्पर्शे दोषं वीर्य्यविशातनम् ॥२५॥
एवं तस्य वलं भूप दानवस्य दुरात्मनः ।
मुषलस्य च ते प्रोक्तं यदुक्तं तत् समाचर ॥२६॥
आसन्नमेतद्भवतः पुरस्य पृथिवीपते ।
कृतं तेन महीरन्ध्रं निश्चिन्तः किं भवान् यथा ॥२७॥
इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् पुरं गत्वा महीपतिः ।
मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः पुरमध्ये तु मन्त्रिभिः ॥२८॥
यथाश्रुतमशेषं तत् कथयामास मन्त्रिणाम् ।
मुषलस्य प्रभावञ्च वीर्य्यशातनमेव च ॥२६॥
मन्त्रं क्रियमाणन्तु मन्त्रिभिस्तेन भूभृता ।

गम्भीर गड्ढा दिखाई दे रहा है ॥१४॥

ऋषि वोले—

हे राजन् ! पृथ्वी के पालक होकर आप यह वात क्यों नहीं जानते हैं. पृथ्वी में जो कुछ मौजूद है वह एक राजा को अवश्य जानना चाहिये ॥१५॥ पाताल में एक अत्यन्त उग्र और पराक्रमी दानव रहता है, चूंकि वह पृथ्वी का जृम्भन करता है इसलिये वह कुजृम्भ कहलाता है ॥१६॥ उस दैत्य ने जो कुछ पृथ्वी या स्वर्ग में किया है उसको आप क्यों नहीं जानते ? ॥१७॥ पूर्व कालमें सुनन्द नाम मूशल जो विश्वकर्मा ने वनाया था उसको उस दुष्ट राक्षस ने छीन लिया है और अव वह उससे शत्रुओं को मारता है ॥१८॥ पातालके अंदर से वह इस पृथ्वी को उस मूसल से फाड़ता है और राक्षसों के लिये आने जाने का मार्ग वनाता है ॥ १६ ॥ उस सुनन्द नाम मूसल से राक्षस ने इस पृथ्वी को फाड़ा है। उस राक्षसको जीते विना आप इस पृथ्वी का उपभोग किस प्रकार करेंगे ॥ उस मूसल रूपी हथियार से वह उग्र राक्षस देवताओं पर आक्रमण कर उनके यज्ञों को नष्ट करता है और दैत्यों का पालन करता है ॥ २१ ॥ यदि आप पाताल में जाकर इस शत्रु को मारेंगे तो निस्संदेह आप इस समस्त पृथ्वी के अधिपति होंगे ॥२२॥ उस वलवान् दैत्यको कुछ लोग सौनन्द और कुछ ज्ञानी लोग वलवान् कहते हैं ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उस मूसल के विषय में यह प्रसिद्ध है कि यदि वह किसी स्त्री द्वारा छू लिया जाय तो उस दिन वह निर्वल होजाता है परन्तु दूसरे दिन फिर वलवान होजाता है ॥२४॥ मूसल के इस प्रभाव को वह दुराचारी दैत्य भी नहीं जानता है कि यह स्त्री के हाथ के स्पर्श से ही निर्वल होजाता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! मैंने आपसे उस दुष्ट दानव और उसके मूसल के वल का यह हाल कहा, अव आप वह कीजिये जिसको करने के लिये मैंने आपसे कहा है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! आपके नगर के पास ही उस राक्षस ने यह विशाल गर्त वनाया है, अतः आप को निश्चिन्त नहीं रहना चाहिये ॥ २७ ॥ यह कह कर वह ब्राह्मण चले गये और राजा ने भी अपने नगर में जाकर चतुर मन्त्रियों से परामर्श किया ॥ जो कुछ इन्होंने मूसल के प्रभाव और उसके निर्वल होजाने के विषय में सुना था वह सव मन्त्रियों से कह दिया ॥ २६ ॥ जवकि वे राजा मन्त्रियों से परामर्श कर रहे थे उस समय उनके

तत्पार्श्ववर्त्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती ॥३०॥
ततः कतिपयाहे तु तां कन्यां वयसान्विताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्यः कुजृम्भः स सखीवृताम् ॥३१॥
तच्छ्रुत्वा स महीपालः क्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ।
पुत्रावुवाच त्वरितं गच्छतं वनकोविदौ ॥३२॥
निर्व्विन्ध्यायास्तटे गर्त्तस्तेन गत्वा रसातलम् ।
स हन्यतां योऽपहर्त्ता मुदावत्याः सुदुर्म्मतिः॥३३॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ तत्सुतौ प्राप्य तं गर्त्तं तत्पदानुगौ ।
युयुधाते कुजृम्भेण स्वसैन्येनातिकोपितौ ॥३४॥
ततः परिघ-निस्त्रिंश-शक्ति-शूल-परश्वधैः ।
वाणैश्चाविरतं युद्धं तेषामासीत् सुदारुणम् ॥३५॥
ततो मायावलवता तेन दैत्येन तावुभौ ।
राजपुत्रौ रणे बद्धौ निहताशेषसैनिकौ ॥३६॥
तच्छ्रुत्वा स महीपालः प्राहेदं सर्व्वसैनिकान् ।
बद्धपुत्रः परामार्त्तिमुपेतो मुनिसत्तम ॥३७॥
यस्तं निहत्य दैतेयं मोचयिष्यति मे सुतौ ।
तस्याहं सम्प्रदास्यामि तामेवायतलोचनाम् ॥३८॥
इत्येवं घोषयाञ्चक्रे स राजा स्वपुरे तदा ।
निराशः पुत्र-तनया-बन्धमोक्षाय वै मुने ॥३९॥
ततः शुश्राव वत्सप्रीर्भनन्दनसुतो हि तत् ।
आघोष्यमाणं वलवान् कृतास्त्रः शौर्य्यसंयुतः॥४०॥
स चागम्याभिवाद्यैनं प्राह पार्थिवसत्तमम् ।
विनयावनतो भूत्वा पितुर्मित्रमनुत्तमम् ॥४१॥
आज्ञापयाशु मामेव तनयौ मोचयामि ते ।
तवैव तेजसा हत्वा तं दैत्यं तनयाञ्च ते ॥४२॥

मार्कण्डेय उवाच

स तं मुदा परिष्वज्य प्रियसख्युरथात्मजम् ।
गम्यतामिति संसिद्ध्यै वत्सेत्याह स पार्थिवः॥४३॥
स्थाने स्थास्यति मे वत्सो यद्येवं कुरुते विधिम् ।
वत्सैतत् क्रियतामाशु यद्युत्साहि मनस्तव ॥४४॥

पास बैठी हुई उनकी कन्या मुदावती ने वह सब वृत्तान्त सुन लिया ॥ ३० ॥ फिर कुछ दिन बाद जब कि वह कन्या सखियों के साथ उपवन में गई थी उस समय कुजृम्भ ने उसको हरण करलिया ॥ इसको सुनकर राजा विदूरथ के नेत्र क्रोध से चंचल हो उठे और उन्होंने अपने दोनों पुत्रों से जो वन जाने में प्रवीण थे जाने के लिये कहा ॥३२॥ निर्विन्ध्या नदी के तट पर जो गड्ढा है उसमें होकर तुम पाताल में जाओ और वहाँ जाकर मुदावती के हरण करने वाले उस दुर्बुद्धि राक्षस का वध करो ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब वे दोनों पुत्र अत्यन्त क्रोध करके अपनी सेना को साथ लेकर उस गर्त्त के मार्ग से कुजम्भ से युद्ध करने को गये ॥ ३४ ॥ फिर परिघ, शक्ति, शूल, परशा और बाणों से उन दोनों का भीषण युद्ध निरन्तर होता रहा ॥ ३५ ॥ माया के बलसे उस दैत्य ने समस्त सेना को मारकर उन दोनों राजकुमारों को बन्दी बना लिया ॥३६॥ हे क्रौष्टुकि मुनि ! उन पुत्रों के बन्दी होजाने की खबर सुनकर राजा विदूरथ को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने सब सैनिकों को बुलाकर कहा ॥ ३७ ॥ जो पुरुष उस दैत्य का वध करके मेरे पुत्रों को वहाँ से, छुड़ावेगा उसी को मैं अपनी मुदावती नाम कन्या देदूंगा ॥ ३८ ॥ हे क्रौष्टुकि जी ! पुत्रों और कन्या की मुक्ति से निराश होकर राजा विदूरथ ने उपरोक्त घोषणा अपने नगर में करादी ॥ ३९ ॥ उस घोषणा को बलवान्, शस्त्रास्त्रों के जानने वाले, वीर वत्सप्री ने जो कि भनन्दन के पुत्र थे सुना ॥४०॥ उन्होंने अपने पिता के मित्र राजा विदूरथ के पास आकर उनको प्रणाम करके विनय पूर्वक कहा ॥४१॥ आप मुझको आज्ञा कीजिये, मैं आपके प्रताप से उस राक्षस को मारकर आपके पुत्रों और कन्या को छुड़ालाऊँगा ॥४२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

राजा विदूरथ ने अपने मित्र के पुत्र को छाती से लगाया और कहा, "हे वत्स ! शीघ्र जाओ और मेरी पुत्री को भय से छुड़ाओ" ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! यदि तुम्हारे मन में उत्साह है तो उसी प्रकार शीघ्र जाओ जिस प्रकार बछड़ा गाय के पास से जाकर शीघ्र उसके पास वापिस आजाता है ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सखड्गः सधनुर्व्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
जगाम वीरः पातालं तेन गर्त्तेन सत्वरः ॥४५॥
ततो ज्यास्वनमत्युग्रं स चक्रे पार्थिवात्मजः ।
येन पातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६॥
ततो ज्यास्वनमाकर्ण्य कुजृम्भो दानवेश्वरः ।
आजगामातिकोपेन स्वसैन्यपरिवारितः ॥४७॥
ततो युद्धमभूत् तस्य तेन पार्थिवसूनुना ।
ससैन्यस्य ससैन्येन वलिनो वलशालिना ॥४८॥
दिनानि त्रीणि स यदा योधितस्तेन दानवः ।
ततः कोपपरीतात्मा मुषलायाभ्यधावत ॥४९॥
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति ।
अन्तःपुरे महाभाग प्रजापतिविनिर्म्मितः ॥५०॥
ततो विज्ञानमुषल प्रभावा सा मुदावती ।
स्पर्श मुषलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोधरा ॥५१॥
पुनर्यावत् स गृह्णाति मुषलं तं महासुरः ।
तावत् सा वन्दनव्याजात् पस्पर्शानेकशः शुभा॥५२॥
ततः स गत्वा युयुधे मुषलेनासुरेश्वरः ।
व्यर्था मुषलपातास्ते संजग्मुस्तेषु शत्रुषु ॥५३॥
परमास्त्रे तु निर्व्वीर्य्ये सौनन्दे मुषले मुने ।
...ैः शस्त्रैश्च दैतेयः सोऽयुध्यत रणेऽरिणा॥५४॥
...स्त्रास्त्रैर्न समस्तस्य राजपुत्रस्य सोऽसुरः ।
मुषलेन वलं तस्य तच्च बुद्ध्या निराकृतम् ॥५५
ततः पराजित्य स भूपसूनुरस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य । चकार सद्यो विरथं ततश्च सचर्म्म-खड्गः पुनरप्यधावत ॥५६॥
तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं विस्पष्टकोपं त्रिदशेन्द्रशत्रुम् । अस्त्रेण वह्नेर्भुवि राजपुत्रो जघान कालानलसमप्रभेण ॥५७॥
स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मनः । वभूव सद्यश्च महोरगाणां रसातलान्तेषु महानथोत्सवः । ५८॥
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि ।
गन्धर्व्वपतयो देववाद्यानि सस्वनुः ॥५९॥

मार्कण्डेयजी वोले—

फिर वत्सप्री अपना कवच धारण करके और धनुष वाण तथा तलवार हाथ में लेकर उस गर्त्त के मार्ग से शीघ्र पाताल में गये ॥ ४५ ॥ उन राज कुमार वत्सप्री के धनुष चढ़ाने की इतनी आवाज़ हुई कि उससे समस्त पाताल गूंज उठा ॥४६॥ फिर उनके धनुष चढ़ाने की आवाज़ सुनकर अत्यन्त कोप करता हुआ दैत्यराज कुजृम्भ अपनी सेना के साथ वहाँ आया ॥ ४७ ॥ फिर दोनों की वलवान् सेनाओं सहित कुजृम्भ और राजकुमार वत्सप्री का युद्ध होने लगा ॥ ४८ ॥ जव उस दैत्यको लड़ते लड़ते तीन दिन होगये तव वह क्रोधित हो मूसल लाने के लिये दौड़ा ॥ ४९ ॥ विश्वकर्मा का वह मूसल गन्ध, माला और धूप आदि से पूजित होकर महलके भीतर रक्खा रहता था ॥५०॥ परन्तु मुदावती ने जो मूसल के प्रभाव को जानती थी उस श्रेष्ठ मूसल को नम्रता पूर्वक प्रणाम करके स्पर्श कर लिया ॥ ५१ ॥ फिर जव तक कि वह दैत्य उस मूसल को ले तव तक उसने वन्दना करने के वहाने उस मूसल को अनेक वार स्पर्श कर लिया ॥५२॥ फिर उस दैत्यराज ने जाकर मूसल से युद्ध किया परन्तु शत्रुओं पर उस मूसल का कुछ असर न हुआ ॥ ५३ ॥ हे मुनि ! उस परम अस्त्र सौनन्द नाम मूसल के निर्वल होजाने पर राक्षस ने अन्य अस्त्र, शस्त्रोंसे शत्रुओंपर वार किया॥५४॥ जव वह असुर सव अस्त्र, शस्त्रों को राजकुमार वत्सप्री पर चला चुका तव उसने फिर मूसल को अपने हाथ में लिया परन्तु वह व्यर्थ हुआ ॥ ५५ ॥ फिर तो राजकुमार ने उस दैत्यके सव अस्त्र शस्त्रों को काट डाला और उसको रथहीन करदिया। इस पर वह दैत्य ढाल तलवार लेकर राजकुमार पर दौड़ा ॥ ५६ ॥ फिर उस राक्षस को कोपयुक्त अपशब्द कहते हुए आते देखकर राजकुमार ने उस इन्द्र के शत्रु को अग्निवाण से मारा ॥५७॥ जव अग्निवाण उसकी छाती में लगा तो अत्यन्त दुःख पाकर उस देवताओं के शत्रु ने प्राण त्याग कर दिया। उसके मरने पर पाताल के नागों ने वड़ा उत्सव मनाया ॥५८॥ फिर राजकुमार पर पुष्पों की वर्षा होने लगी, गन्धर्व लोग गान करने लगे तथा देवता वाजे वजाने लगे ॥ ५९ ॥ उस राजकुमार ने

स चापि राजपुत्रस्तं हत्वा तौ नृपतेः सुतौ ।
मोचयामास तन्वङ्गीं ताञ्च कन्यां मुदावतीम् ॥६०॥
तश्चापि मुषलं तस्मिन् कुजृम्भे निनिपातिनि ।
जग्राह नागाधिपतिरनन्तः शेषसंज्ञितः ॥६१॥
तस्याश्च परितुष्टोऽसौ शेषः सर्वोरगेश्वरः ।
मुदावत्या मुदा ध्यात-मनोवृत्तिस्तपोधनः ॥६२॥
सुनन्दमुषलस्पर्शं चचकार पुनः पुनः ।
योषित्करतलस्पर्श-प्रभावज्ञातिशोभना ॥६३॥
मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दामिति सानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ॥६४॥
स चापि राजपुत्रस्तां भ्रातृभ्यां सहितां पितुः ।
समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह चैव तम् ॥६५॥
आनीतौ तनयौ तात तथैवेयं मुदावती ।
तवाज्ञया मयान्यद्यत् कर्त्तव्यं तत् समादिश ॥६६॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहर्षसम्पूर्ण-हृदयः स महीपतिः ।
साधु साध्वित्यथाहोच्चैर्वत्स वत्सेति शोभनम् ॥६७॥
सभाजितोऽस्मि त्रिदशैर्वत्साहं कारणैस्त्रिभिः ।
त्वं जामाता च यत् प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातितः ॥६८॥
आगतान्यक्षतान्यत्र यच्चापत्यानि मे पुनः ।
तद्गृहाणाद्य शस्तेऽह्नि पाणिमस्या मयोदितम् ॥६९॥
त्वं राजपुत्र चार्व्वङ्गयाः कन्याया दुहितुर्मम ।
मुदावत्या मुदा युक्तः सत्यवाक्यं कुरुष्व माम् ॥७०॥

राजपुत्र उवाच

तातस्याज्ञा मया कार्य्या यत्त्वब्रवीषि करोमि तत् ।
त्वमेव तात जानीषे नैवात्राविकृता वयम् ॥७१॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकं क्रमम् ।
मुदावत्याश्च दुहितुर्भनन्दनसुतस्य वै ॥७२॥
ततः सह तया रेमे वत्सप्रीर्नवयौवनः ।
रमणीयेषु देशेषु प्रासादशिखरेषु च ॥७३॥
कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भनन्दनः ।

दैत्य को मारकर राजा विदूरथ के दोनों पुत्रों और सुन्दरी कन्या को बन्धन से छुड़ाया ॥ ६० ॥ कुजृम्भ के मरने पर उस मूसल को नागों के अधिपति अनन्त शेष भगवान् ने ले लिया ॥ ६१ ॥ नागों के ईश्वर तपोधन शेषजी मुदावती से बहुत प्रसन्न हुए ॥६२॥ वह यह जानती थी कि स्त्री के स्पर्श से मूसल का प्रभाव घट जाता है और इसी कारण से उसने बार बार उस मूसल को छूकर उसका तेज घटा दिया ॥ ६३ ॥ हे द्विज ! सौनन्द नाम मूसल के गुण को जानने के कारण मुदावती का नाम प्रसन्न होकर शेषजी ने सुनन्दा रख दिया ॥६४॥ वह राजकुमार वत्सप्री उन दोनों पुत्रों और कन्या को लेकर राजा विदूरथ के पास आये और उनको प्रणाम करके बोले ॥६५॥ हे तात ! मैं आपके पुत्रों और कन्या मुदावती को तो ले आया, अब आपकी क्या आज्ञा है सो और मुझसे कहिये ॥६६॥

मार्कण्डेयजी बोले:—

इसके अनन्तर हर्ष से पूर्ण होकर वह राजा बड़े ऊँचे स्वर से कहने लगे, " हे वत्स ! आपने बड़ा उत्तम कार्य किया "॥६७॥ " हे वत्स ! मुझको तीन कारणों से देवताओं ने सम्मानित किया है। एक तो यह कि तुम मेरे जामाता हुए, दूसरे यह कि शत्रु का वध होगया ॥ ६८ ॥ और तीसरे मेरे पुत्र और पुत्री कुजम्भ से बचकर आगये। अब तुम उत्तम मुहूर्त्त में मेरी प्रतिज्ञानुसार इस कन्या के साथ पाणिग्रहण करो ॥ ६९ ॥ तुम राजपुत्र हो और मेरी यह सुन्दरी कन्या है। इस मुदावती नाम मेरी कन्या के साथ विवाह करके मेरे वचन को सत्य प्रमाणित करो ॥ ७० ॥

राजपुत्र बोले:—

हे तात ! जो आपने आज्ञा दी वह मैंने किया और अब आप जो आज्ञा दें वह मैं करूँ। मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता॥ ७१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब राजा विदूरथ ने भनन्दन-पुत्र वत्सप्री का मुदावती के साथ विधि पूर्वक विवाह कर दिया ॥ फिर युवक वत्सप्री ने रमणीक देशों और महलों में मुदावती के साथ विहार किया ॥ ७३ ॥ समय व्यतीत होने पर भनन्दन वृद्ध हुए और वत्सप्री

वनं जगाम वत्सप्रीः स बभूव महीपतिः ॥७४॥
इयाज यज्ञान् सततं प्रजा धर्म्मेण पालयन् ।
पुत्रवत् पाल्यमानास्तु प्रजास्तेन महात्मना ॥७५॥
ववृधुर्विषये तस्य न चाभूद्वर्णसङ्करः ।
न दस्यु-व्यालदुर्वृत्त-भयमासीच्च कस्यचित् ।
नोपसर्गभयञ्चैव तस्मिन् शासति भूपतौ ॥७६॥

को राज्य देकर बनको चले गये ॥७४॥ उसने अनेक यज्ञ किये और धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन किया। महात्मा वत्सप्री ने प्रजा को पुत्रवत् पाला ॥ ७५ ॥ उस राजा के शासन में चोर, सर्प, अकाल का कभी भय न हुआ और सब लोग विघ्नोंसे रहित होकर जीवन व्यतीत करते थे ॥७६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में भनन्दन-वत्सप्री चरित्र नाम ११६वां अ० समाप्त।

एकसौसत्रहवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
प्रांशुः प्रवीरः शूरश्च सुचक्रो विक्रमः क्रमः ॥ १ ॥
बलो बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः ।
स्वरूपश्च महाभागाः सर्व्वे संग्रामजित्तमाः ॥ २ ॥
तेषां ज्येष्ठो महावीर्य्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः ।
इतरे भृत्यवत् तस्य बभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥ ३ ॥
तस्य यज्ञे द्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ।
न्यूनवर्णविसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा ॥ ४ ॥
सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान ।
योऽभूद्धनचयः कोषे तेन निष्पादितास्तु ये ॥ ५ ॥
क्रतवः शतसाहस्रास्तेषां संख्या न विद्यते ।
अयुताद्यैन कोटीभिर्न च पद्मादिभिर्मुने ॥ ६ ॥
प्रजातिस्तस्य पुत्रोऽभूद्यस्य यज्ञे शतक्रतुः ।
अवाप्य तृप्तिमतुलां यज्ञभागैः सुरैः सह ॥ ७ ॥
दानवानां सुवीर्य्याणां जघान नवतीर्नव ।
बलश्च बलिनां श्रेष्ठो जम्भञ्चासुरसत्तमम् ।
अन्यांश्च सुमहावीर्य्यानाजघानामरद्विषः ॥ ८ ॥
प्रजातेस्तनयाः पंच खनित्रप्रमुखा मुने ।
तेषां खनित्रो राजाभूत् प्रख्यातो निजविक्रमैः॥ ९॥
स शान्तः सत्यवाक् शूरः सर्व्वप्राणिहिते रतः ।
स्वधर्म्माभिरतो नित्यं वृद्धसेवी बहुश्रुतः ॥१०॥
वाग्मी विनयसम्पन्नः कृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ।
सर्व्वलोकप्रियो नित्यमुवाचैतदहर्निशम् ॥११॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर वत्सप्री से सुनन्दा के बारह पुत्र उत्पन्न हुए जो कि क्रमशः प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम क्रम ॥ १ ॥ बल, बलाक, प्रचण्ड, सुविक्रम, और स्वरूप थे। ये सब भाग्यवान् तथा संग्राम जीतने वाले थे ॥ २ ॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ महापराक्रमी राजा प्रांशु थे। उनके अन्य ग्यारह भाई सेवक की तरह उनके वशवर्ती थे ॥ ३ ॥ उनके यज्ञ में ब्राह्मणों तथा सेवकों द्वारा छोड़ी हुई धन राशि से पृथ्वी पूर्ण होकर अपने वसुन्धरा नाम को सार्थक करने लगी ॥ ४ ॥ वे प्रजा को पुत्रवत् पालन करते थे और कोष में जो धन इकट्ठा होता था ॥५॥ उससे वे सैकड़ों, हज़ारों, करोड़ों अनगिनती यज्ञ करते थे ॥ ६ ॥ इनके सबसे बड़े पुत्र प्रजाति हुए जिनके यज्ञ में इन्द्र ने देवताओं सहित अतुल तृप्ति प्राप्त कर ॥ ७ ॥ जम्भ आदि महापराक्रमी दानवों तथा उनकी बलवान् सेनाओं सहित निन्यानवे पराक्रमी राक्षसों को मारा तथा अन्य भी अनेकों देवशत्रु बलवान् राक्षसों को मारा ॥ ८ ॥ हे क्रौष्टुकि जी! प्रजाति के खनित्र आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सब से बड़े खनित्र राजा हुए ॥९॥ वे खनित्र शान्त, सत्यवक्ता, वीर, सबकी भलाई चाहनेवाले, सदैव अपने धर्म पर चलने वाले, बड़ों की सेवा करने वाले तथा विद्वान् थे ॥१०॥ वे वक्ता, विनय सम्पन्न, शस्त्र अस्त्रों में विशारद, अपनी बड़ाई कभी न करने वाले तथा सब संसार के प्रिय थे और दिनरात यह कहा करते ॥ ११ ॥ सब प्राणियों

नन्दन्तु सर्व्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि ।
स्वस्त्यस्तु सर्व्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च ॥१२॥
मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ।
मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने ॥१३॥
शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम् ।
समृद्धिः सर्व्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्म्मणाम् ॥१४॥
हे लोकाः सर्व्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः ।
यथात्मनि तथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्व्वदा ॥१५॥
तथा समस्तभूतेषु वर्त्तध्वं हितबुद्धयः ।
एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते ॥१६॥
यत् करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मूढमानसः ।
तं समभ्येति तन्नूनं कर्तृगामि फलं यतः ॥१७॥
इति मत्वा समस्तेषु भो लोकाः कृतबुद्धयः ।
सन्तु मा लौकिकं पापं लोकान प्राप्स्यथ वै बुधाः १८
यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ।
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु १९
एवंस्वरूपः पुत्रोऽभूत खनित्रस्तस्य भूपतेः ।
समस्तगुणसम्पन्नः श्रीमानब्जदलेक्षणः ॥२०॥
तेन ते भ्रातरः प्रीत्या पृथग्राज्येषु योजिताः ।
स्वयञ्च पृथिवीमेतां बुभुजे सागराम्बराम् ॥२१॥
प्राच्यां तेन कृतः शौरिर्दक्षिणायामुदावसुः ।
दिशि प्रतीच्यां सुनय उत्तरस्यां महारथः ॥२२॥
तेषां तस्य च भूपस्य पृथग्गोत्राः पुरोहिताः ।
बभूवुर्मुनयश्चैव मन्त्रिवंशक्रमागताः ॥२३॥
शौरेरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रो नाम वै द्विजः ।
उदावसोः कुशावर्त्तो गौतमान्वयजोऽभवत् ॥२४॥
काश्यपः प्रमतिर्नाम सुनयस्य पुरोहितः ।
महारथस्य वाशिष्ठः पुरोधाऽभून्महीभृतः ॥२५॥
बुभुजुस्ते स्वराज्यानि चत्वारोऽपि नराधिपाः ।
खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः ॥२६॥
तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः स महीपतिः ।
प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदा हितः ॥२७॥
एकदा मन्त्रिणा शौरिः स प्रोक्तो विश्ववेदिना ।
विविक्ते पृथिवीपाल किंचिद्वक्तव्यमस्ति नः ॥२८॥

को आनन्द हो और वे गैरों में भी प्रीति रक्खें। सब जीवों का कल्याण हो और वे आतङ्क रहित हो जावें ॥ १२ ॥ प्राणियों को कोई आधि, व्याधि न हों और मनुष्यों में परस्पर मैत्री हो तथा सब लोग फलें फूलें ॥ १३ ॥ ब्राह्मणों का कल्याण हो और उनमें आपस में प्रीति हो तथा सब वर्णों को ऐश्वर्य और उनके कर्मों में सिद्धि हो ॥ १४ ॥ हे लोगो ! आपकी बुद्धि सब प्राणियों में कल्याणवती हो। जिस तरह अपना हित लोग चाहें उसी तरह अपने पुत्रों का भी चाहें ॥ १५ ॥ सब प्राणियों में परस्पर हित करने वाली बुद्धि की वृद्धि हो। जब एक का दूसरे में हित होगा तो अपराध कौन करेगा ? ॥१६॥ यदि कोई किसी का मूढ़तावश थोड़ा भी अहित करता है तो उसका फल उसको अत्यन्त दुःखदाई होता है ॥१७॥ ये बात मान कर लोग आपस में एक दूसरे के हितैषी हों, इस तरह लौकिक पाप न होगा और लोग उत्तम लोकों को प्राप्त करेंगे ॥ १८ ॥ इस पृथ्वी पर जो मुझसे प्रीति रखता है उसका तथा जो मेरे विरुद्ध है उसका भी कल्याण हो ॥ १९ ॥ राजा प्रजाति के इसप्रकार सर्व गुण सम्पन्न और कमल के समान नेत्र वाले पुत्र खनित्र हुए ॥२०॥ उन्होंने अपने भाइयों को पृथक् पृथक् राज्य देकर अलग कर दिया और स्वयं इस समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी पर राज्य करने लगे ॥२१॥ उन्होंने पूर्व दिशा का राज्य शौरिको, दक्षिण का उदावसु को, पश्चिम का सुनय और उत्तर का महारथ को दिया ॥२२॥ उनमें से हरेक राजा के पृथक् पृथक् गोत्र, पुरोहित, पुत्र और मन्त्री गण हुए ॥ २३ ॥ शौरि के पुरोहित अत्रि कुल में उत्पन्न सुहोत्र नाम ब्राह्मण हुए और [गौतम] वंश में उत्पन्न कुशावर्त उदावसु के पुरोहित हु[ए] ॥ २४ ॥ कश्यप कुल में उत्पन्न प्रमति सुनय [के] और वशिष्ठ कुलोत्पन्न वाशिष्ठ जी राजा महारथ के पुरोहित हुए ॥२५॥ वे चारों राजा अपने राज्य का उपभोग करते परन्तु खनित्र उन सब [के] अधिपति और समस्त पृथ्वी के स्वामी थे ॥२[६]॥ उन चारों भाइयों पर तथा समस्त प्रजा पर महाराज खनित्र पुत्रवत् स्नेह करते थे ॥२७॥ एक बार शौरि से उनके मन्त्री विश्ववेदि ने कहा, "हे राजन् ! मुझे आपसे कुछ कहना है" ॥२८॥

यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपा वशानुगाः ।
स राजा तस्य पुत्रश्च तत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ॥२९॥
इतरे भ्रातरस्तस्य प्राक् स्वल्पविषयाधिपाः ।
तत्पुत्रश्चाल्पकस्तस्मात् तत्पौत्राश्चाल्पकालकाः ३०॥
कालेन ह्रासमासाद्य पुरुषात् पुरुषान्तरम् ।
कृष्योपजीविनो भूप भवन्तीति तदन्वयाः ॥३१॥
नोद्धारं कुरुते भ्राता भ्रातृस्नेहबलार्पणः ।
स्नेहकः पृथिवीपाल परयोर्भ्रातृपुत्रयोः ॥३२॥
तत्पुत्रयोः परतरा मतिर्भवति पार्थिव ।
तत्पुत्रः केन कार्य्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति ॥३३॥
अथवा येन तेनैव सन्तोषं कुरुते नृपः ।
क्रियते तद् किमर्थन्तु भूपैर्मन्त्रिपरिग्रहः ॥३४॥
भुज्यते सकलं राज्यं मया ते मन्त्रिणा सता ।
तत् किं मुधा धारयसे सन्तोषं कुरुते यदि ॥३५॥
कार्य्यनिष्पादकं राज्यं करणं कर्तुरिष्यते ।
राज्यलब्धुश्च ते कार्य्यं त्वं कर्त्ता करणं वयम् ॥३६॥
सोऽस्माभिः करणै राज्यं पितृपैतामहं कुरु ।
फलप्रदा भविष्यामः परलोके न ते वयम् ॥३७॥

राजोवाच

ज्येष्ठो राजा महीपाल वयं तस्यानुजा यतः ।
ततः स भुङ्क्ते पृथिवीं वयश्चाल्पवसुन्धराम् ॥३८॥
वयन्तु भ्रातरः पंच पृथ्वी चैका महामते ।
ततोऽस्याः पृथगैश्वर्य्यं कथं कृत्स्नं भविष्यति॥३९॥

विश्ववेद्युवाच

त्वमेतद्भवांस्तत्र यद्येका वसुधा नृप ।
तां त्वमेवाभिपद्यस्व ज्येष्ठः शास्तु महीं भवान्॥४०॥
सर्वाधिपत्यः सर्व्वेभ्यो भव त्वमखिलेश्वरः ।
यतन्ते च यथाऽहं ते तेषामाहितमन्त्रिणः ॥४१॥

राजोवाच

ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेऽस्मान् सुतानिव ।

यह समस्त पृथ्वी है उसी के वशवर्ती सब राजा हैं तथा वह स्वयं और उसके पुत्र, पौत्र आदि उसके राजा रहेंगे ॥ २९ ॥ उसके भाई तो पहिले ही से छोटे छोटे प्रदेशों के राजा हैं। उन भाइयों के पुत्रों के पास उनसे भी कम तथा पौत्रों के पास पुत्रों से भी कम राज्य रह जायगा ॥ ३० ॥ यहाँ तक कि पुत्र, पौत्रों के बाद जो सन्तति होगी वह समय पाकर घटते घटते खेती पर जीवन निर्वाह करने वाली रह जायगी ॥३१॥ भाई कभी भाई पर प्रेम करके उसका उद्धार नहीं चाहता है। हे राजन्! फिर भाई का भाई के पुत्रों पर तो प्रेम कहाँ से आया ॥३२॥ हे राजन्! जब भाई के पुत्रों में प्रीति नहीं होती है तब उसके पुत्र के पुत्रों आदि में कहाँ से होगी ॥३३॥ हे राजन्! यदि आप यह कहें कि आपको इतने पर ही सन्तोष है तो फिर राजाओं द्वारा मन्त्रियों का रक्खा जाना तथा उनसे सलाह लेना व्यर्थ है ॥३४॥ मेरी आपको यही मन्त्रणा है कि आप समस्त राज्य का उपभोग करें और यदि आप सन्तोष करेंगे तो आपको सुख प्राप्त न होगा ॥ ३५ ॥ राज्य सब सिद्धि का देने वाला है परन्तु उसके लिये उपाय करना चाहिये। आपको राज्य प्राप्त करना चाहिये, उसमें आप कर्ता होंगे और हम साधक ॥३६॥ इसलिये हमको साधन बनाकर आप अपने बाप दादा का राज्य प्राप्त कीजिये. हम इस लोक में ही आपके काम आवेंगे परलोक में नहीं ॥ ३७ ॥

राजा बोले—

बड़ा भाई ही समस्त पृथ्वी का मालिक होता है, हम तो छोटे भाई हैं। अतः वह ही पृथ्वी पर राज्य करते हैं और हम छोटे छोटे राज्यों के स्वामी हैं ॥ ३८ ॥ हे महामति! हम तो पाँच भाई हैं परन्तु पृथ्वी एक ही है अतः एक एक के पास समस्त पृथ्वी का राज्य किस प्रकार होगा ॥३९॥

विश्ववेदि मन्त्री बोले:—

हे राजन्! जिस प्रकार आप कहते हैं पृथ्वी एक ही है। उसका स्वामित्व आप ही ग्रहण करें और बड़े भाई को रहने दें ॥ ४० ॥ आप ही सबके अधिपति और स्वामी हूजिये, तथा जिस प्रकार मैं यत्न करता हूँ उसी प्रकार आपके भाइयों के मन्त्री भी उनकी राज्य प्राप्तिके लिये यत्न करते हैं॥

राजा बोले:—

हमारे ज्येष्ठ भ्राता हमपर पुत्रवत् स्नेह करते

कथं तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ॥४२॥

विश्ववेद्युवाच

राज्यस्थितः पूजयेथा ज्येष्ठो भूपार्हखैर्नवैः।

कनिष्ठज्येष्ठता केयं राज्यं प्रार्थयतां नृणाम् ॥४३॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजा तेन सत्तम।

विश्ववेदी ततो मन्त्री तद्भ्रातॄननयद्वशम् ॥४४॥

तेषां पुरोहितांश्चैव आत्मना शान्तिकादिषु।

नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारके ॥४५॥

बिभेद तस्य निभृतान् सामदानादिभिस्तथा।

चक्रे च परमोद्योगं निजदण्डप्रबाधने ॥४६॥

आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनि कुर्व्वताम्।

पुरोधसां चतुर्णाञ्च जज्ञे कृत्या चतुष्टयम् ॥४७॥

विकरालं महावक्त्रमतिभीषणदर्शनम्।

समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥४८॥

ततस्तदागतं तत्र खनित्रो यत्र पार्थिवः।

निरस्तञ्चाप्यदुष्टस्य तस्य पुण्यचयेन तत् ॥४९॥

कृत्याचतुष्टयं तेषु निपपात दुरात्मसु।

पुरोहितेषु भूपानां तथा वै विश्ववेदिनि ॥५०॥

ततो निहन्त्या निर्दग्धाः कृत्यया ते पुरोहिताः।

विश्ववेदी तदा मन्त्री स शौरेर्दुष्टमन्त्रदः ॥५१॥

हैं, हम उनके राज्य पर किस प्रकार दृष्टि डालें॥४२

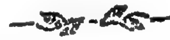
विश्ववेदि बोलेः—

राज्य में स्थित होकर आप बड़े भाई की तरह वस्त्र और आभूषणों द्वारा पूजित होंगे। राज्य की इच्छा करने वालों को बड़े छोटे की बात न देखनी चाहिये॥४३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि जी! राजा शौरि के प्रतिज्ञा कर लेने पर मन्त्री विश्ववेदि ने उनके भाइयों को अपने वश में कर लिया॥४४॥ इसके पश्चात् उनके पुरोहितों को खनित्र पर शान्तिक आदि प्रयोगों द्वारा अभिचारिक कर्म करने के लिये तत्पर किया॥४५॥ साम, दाम, दण्ड, भेद आदि द्वारा उन पुरोहितों को अपने वश में किया तथा अपने दण्ड का भय दिखाकर उद्योग में तत्पर कराया॥ ४६॥ नित्य-प्रति चारों पुरोहितों ने महाराज खनित्र के नाश होने के निमित्त अभिचारिक कर्म किया जिससे चार कृत्या उत्पन्न हुए॥ ४७॥ वे विकराल थे तथा देखने में भयानक मुखवाले थे। महाशूल धारण कर वे महाराज के नाश करने को उद्यत हुए॥४८॥ और वे वहाँ पहुँचे जहाँ महाराज खनित्र थे परन्तु उनके पुण्य समूह के कारण उनकी एक न चली॥ फिर वे कृत्या चारों भाइयों के दुष्टात्मा पुरोहितों और मन्त्री विश्ववेदि पर गिरे॥५०॥ उन कृत्याओं के गिरने से वे पुरोहित और शौरि का दुष्ट मन्त्री विश्ववेदि जल कर भस्म होगये॥५१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में खनित्र चरित्र(१) नाम ११७वां अ० स०।



एकसौअठारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः समस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान्।

यदेककालं नेशुस्ते पृथक् पुरनिवासिनः॥ १॥

ततः शुश्राव निधनं यातान् भ्रातृपुरोहितान्।

मन्त्रिणञ्च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम्॥ २॥

किमेतदिति सोऽतीव विस्मितो मुनिसत्तम।

खनित्रोऽभून्महाराजो नाजानात् तच्च कारणम्॥ ३॥

ततो वशिष्ठं पप्रच्छ स राजा गृहमागतम्।

मार्कण्डेयजी बोले—

अलग अलग ग्रामों में रहने वाले पुरोहितों और मन्त्री विश्ववेदि के एक ही समय में मर जाने पर समस्त प्रजा को बड़ा आश्चर्य हुआ॥ १॥ भाइयों के पुरोहितों और शौरि नामक भाई के मन्त्री विश्ववेदि के एक साथ भस्म होजाने का समाचार सुनकर॥२॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! महाराज खनित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह कहने लगे कि यह क्या हुआ। परन्तु इसका कारण उन्हें ज्ञात न हुआ॥ ३॥ इसके अनन्तर वशिष्ठ मुनि के घर

यत्कारणं विनेशुस्ते भ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥ ४ ॥
तेन पृष्टस्तदा प्राह यथावृत्तं महामुनिः ।
यच्छौरिमन्त्रिणा प्रोक्तं यच्च शौरिरुवाच तम्॥ ५ ॥
यथा चानुष्ठितं तेन भ्रातॄणां भेदकारि वै ।
मन्त्रिणा तेन दुष्टेन यच्चक्रुश्च पुरोहिताः ॥ ६ ॥
यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः ।
पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयापराः ॥ ७ ॥
स तच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन् ।
निनिन्दात्मानमत्यर्थं वशिष्ठस्याग्रतो द्विजः ॥ ८ ॥

राजोवाच

धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् ।
दैवदोषकृतं पापं सर्व्वलोकविगर्हितम् ॥ ९ ॥
तन्निमित्तं विनष्टं यत् तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।
मत्तः कोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान् भुवि ॥१०॥
नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले ।
ततस्ते न विनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ॥११॥
धिग्राज्यं धिक् च मे जन्म भूभुजां महतां कुले ।
कारणत्वं गतो योऽहं विनाशस्य द्विजन्मनाम्॥ १२॥
कुर्व्वन्तः स्वामिनां तेऽर्थं भ्रातॄणां मम याजकाः ।
नाशं ययुर्न दुष्टास्ते दुष्टोऽहं नाशकारणे ॥१३॥
किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मत्तो हि पापकृत् ।
पृथिव्यामस्ति हेतुत्वं द्विजनाशस्य यो गतः ॥१४॥
इत्थमुद्विग्नहृदयः खनित्रः पृथिवीपतिः ।
वनं यियासुः पुत्रस्य कृतवानभिषेचनम् ॥१५॥
अभिषिच्य सुतं राज्ये क्षुपसंज्ञं महीपतिः ।
भार्य्याभिस्तिसृभिः सार्द्धं तपसे स वनं ययौ ॥१६॥
तत्र गत्वा तपस्तेपे वानप्रस्थविधानवित् ।
शतानि त्रीणि वर्षाणां सार्द्धानि नृपसत्तमः ॥१७॥
तपसा क्षीणदेहस्तु राजवर्य्यो द्विजोत्तम ।
निगृह्य सर्व्वस्रोतांसि तत्याजासून् वनेचरः ॥१८॥
ततः पुण्यान्ययौ लोकान् सर्व्वकामदुहोऽक्षयान् ।
वमे दि ... ये नराधिपैः ॥१९॥

आने पर महाराज ने उनसे भाइयों के पुरोहितों और विश्ववेदि मन्त्री के एक साथ भस्म होजाने का कारण पूछा ॥ ४ ॥ उनके पूछने पर महामुनि वशिष्ठ ने जो कुछ वृत्तान्त था वह तथा जो कुछ शौरिके मन्त्री विश्ववेदि ने शौरिसे और फिर शौरि ने विश्ववेदि से कहा था वह सब कह सुनाया ॥५॥ तथा जिस प्रकार उस दुष्ट मन्त्री ने भाइयों में भेद कराया और पुरोहितों को कुमन्त्रणा दी ॥ ६ ॥ और चूंकि राजा खनित्र पापी न थे और शत्रुओं पर भी दया रखते थे इसलिये वे पुरोहित स्वयं नष्ट होगये ॥ ७ ॥ इस सब वृत्तान्त को सुनकर महाराज खनित्र ने कहा, "हा ! मैं मारा गया !" और उन्होंने अपनी ही द्विज वशिष्ठ के सन्मुख खूब निन्दा की ॥ ८ ॥

राजा बोलेः—

मुझ पापी, मन्दभागी, दुष्ट को धिक्कार है जिसके कि दुर्भाग्य से यह संसार में निन्दा करने वाला पाप हुआ ॥ ९ ॥ मेरे ही निमित्त वे चार ब्राह्मण मारे गये। इस पृथ्वी पर मेरे बराबर दूसरा पापी कौन है ? ॥१०॥ यदि मैं पृथ्वी पर इस तरह का पापी मनुष्य न होता तो मेरे भाइयोंके पुरोहित क्यों मारे जाते ? ॥ ११ ॥ मेरे राज्य करने, जन्म लेने और कुल को धिक्कार है कि जिसके कारण मैं चार ब्राह्मणों के नाश का हेतु हुआ ॥१२ ॥ वे तो अपने स्वामियों का जो कि मेरे भाई हैं कार्य कर रहे थे, वे मेरे लिये नाश को प्राप्त हुए। अतः वे दुष्ट नहीं वरन् उनके नाश का कारण रूप दुष्ट मैं हूँ ॥१३॥ क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे समान इस पृथ्वी पर कोई पापी नहीं है जो कि मैं ब्राह्मणों के नाश का हेतु हुआ ॥१४॥ यह विचार कर महाराज खनित्र बड़े व्याकुल हुए और वे पुत्र को राज्य तिलक देकर वनको चले गये ॥ १५ ॥ महाराज खनित्र अपने क्षुप नाम पुत्र का राज्याभिषेक करके तीन पत्नियों सहित तप करने को वन में गये॥१६॥ वहाँ जाकर उन श्रेष्ठ राजा ने वानप्रस्थ विधान से साढ़े तीनसौ वर्ष तक तपस्या की ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तम ! वे श्रेष्ठ राजा तपके कारण अत्यन्त दुर्बल होगये और फिर उन्होंने सब तीर्थों के जल से स्नान करके उसी वन में प्राण त्याग दिये ॥१८॥ प्राण त्यागने पर वे सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन अक्षय पुण्यलोकों को प्राप्त हुए जो कि अश्वमेध आदि यज्ञ करने पर राजाओं को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

भार्य्याश्च तस्य तास्तिस्रः समं तेनैव तत्यजुः ।
प्राणान् वापुः समालोक्यं तेनैव सुमहात्मना ॥२०॥
एतत् खनित्रचरितं श्रुतं कल्मषनाशनम् ।
पठताञ्च महाभाग क्षुपस्यातो निशामय ॥२१॥

उस महात्मा राजा के समान उसकी तीनों स्त्रियों ने भी उसके साथ साथ प्राणों को त्याग अक्षय लोकों को प्राप्त किया ॥ २० ॥ हे क्रौष्टकि जी! महाराज खनित्र का यह चरित्र सुनने और पढ़ने से पापों का नाश करता है । अब आप क्षुप का वृत्तान्त सुनिये ॥२१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में खनित्र चरित्र (२) नाम ११८वाँ अ० स० ।



एकसौउन्नीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

क्षुपः खनित्रपुत्रस्तु प्राप्य राज्यं यथा पिता ।
तथैव पालयामास प्रजा धर्म्मेण रञ्जयन् ॥ १ ॥
स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनीपतिः ।
समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिवर्त्मनि ॥ २ ॥
एकदा स महीपालो निजस्थानगतो मुने ।
सूतैरुक्तो यथा पूर्व्वं क्षुपो राजा तथाऽभवत् ॥ ३ ॥
ब्रह्मणस्तनयः पूर्व्वं क्षुपोऽभूत् पृथिवीपतिः ।
यादृक् चरितमस्यासीत् तादृक् तस्यैव चेष्टितम् ॥४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

खनित्र पुत्र राजा क्षुप ने राज्य पाकर पिता की भाँति प्रजा का धर्म पूर्वक पालन किया ॥ १ ॥ महाराज क्षुप बड़े दानी तथा यज्ञों के करने वाले हुए । व्यवहार में वे शत्रु और मित्र को समान दृष्टि से देखते थे ॥२॥ हे मुनि! एक बार जब कि महाराज क्षुप अपने स्थानपर बैठे हुए थे तब पौराणिक ब्राह्मणों ने उनसे कहा कि पूर्वकाल में भी एक महाराज क्षुप हुए थे ॥३॥ जिस प्रकार ब्रह्मा जी के पुत्र उन महाराज क्षुप का चरित्र था उसीप्रकार आपका भी होना चाहिये ॥४॥

राजोवाच

श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः ।
यदि तादृङ्मया शक्यं चेष्टितुं तत् करोम्यहम् ॥ ५ ॥

राजा बोले:—

मैं महात्मा क्षुप का चरित्र सुनने की इच्छा करता हूँ, यदि मेरी शक्ति भी उनके अनुसार होगी तो मैं भी वैसी ही चेष्टा करूँगा ॥५॥

सूता ऊचुः

स चकाराकरान् भूप राजा गोब्राह्मणान् पुरा ।
षष्ठांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ॥ ६ ॥

पौराणिकों ने कहा:—

हे राजन्! उन महाराज क्षुप ने गो ब्राह्मणोंको इतना दान दिया कि वे अयाचित होगये । उन महात्मा ने प्रजा से छठा भाग लेकर अनेकों यज्ञ भी किये ॥ ६ ॥

राजोवाच

तेषां महात्मनां राज्ञां कोऽनुयास्यति मद्विधः ।
तस्याप्युत्कृष्टचेष्टानां चेष्टासूत्रमवान् भवेत् ॥ ७ ॥
तच्छ्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया ।
क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ॥ ८ ॥
त्रींस्त्रीन् यज्ञान् करिष्यामि शस्यापाते गतागते ।
पृथिव्यां चतुरर्णायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ॥ ९ ॥
यश्च गोब्राह्मणाः पूर्व्वमददन् भूभृते करम् ।
तमेव प्रतिदास्यामि ब्राह्मणानां तथा गवाम् ॥१०॥

राजा बोले:—

मुझ सरीखा राजा उन महात्मा राजाओं का कहाँ तक अनुकरण कर सकेगा तथापि मैं उन श्रेष्ठ राजाओं के कार्यानुसरण की चेष्टा करूँगा ॥ ७ ॥ अतः महाराज क्षुप के चरित्र का अनुकरण करने के निमित्त जो प्रतिज्ञा मैं करता हूँ वह सुनो॥ ८ ॥ जब जब पृथ्वी पर अकाल पड़ेगा तब तब मैं तीन तीन यज्ञ करूँगा ॥९॥ पूर्व काल में गो ब्राह्मण ने जो कर राजा को दिया है वही मैं गो ब्राह्मणों को दान के रूप में दूँगा ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच

ति प्रतिज्ञाय वचः क्षुपस्तत् कृतवांस्तथा ।
ास्यापाते स यज्ञस्त्रीनयजद्दयजतां वरः ॥११॥
ोब्राह्मणः पुराराज्ञामददद्दयश्च वै करम् ।
ावत्सङ्ख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणाय सः ॥१२॥
ास्य पुत्रोऽभवद्वीरः प्रमथायामनिन्दितः ।
ास्य प्रताप-शौर्य्याभ्यां कृता वश्या महीभृतः॥१३॥
ास्यापि नन्दिनी नाम वैदर्भी दयिताभवत् ।
विविंशं तनयं तस्यां जनयामास स प्रभुः ॥१४॥
विविंशे शासति महीं महीपाले महौजसि ।
महीतलमभूद्व्याप्तं निरन्तरतया नरैः ॥१५॥
ववर्ष काले पर्ज्जन्यो मही शस्यवती तथा ।
सुफलानि च शस्यानि रसवन्ति फलानि च ॥१६॥
रसाः पुष्टिकराश्चासन् पुष्टिर्नोन्मादकारिणी ।
न वित्तनिचया नृणां प्रभूता मदहेतवः ॥१७॥
तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने ।
स्वास्थ्यञ्च नः सुहृद्वर्गो मुदमिष्टाभिरिकाम् ॥१८॥
इष्ट्वा स यज्ञान् सुबहून् सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम् ।
संग्रामे निधनं प्राप्य शक्रलोकमितो गतः ॥१९॥

मार्कण्डेयजी बोले—

राजा क्षुप ने अपनी इस प्रतिज्ञा के अनुसार अकाल पड़ने पर तीन तीन श्रेष्ठ यज्ञ किये ॥ ११ ॥ गो ब्राह्मणों ने जो कर पहिले राजा को दिया था वही महाराज ने गो ब्राह्मणों को दान में दे दिया ॥१२॥ उनके प्रमथा नाम पत्नी से एक पुत्र वीर नामक हुए जिनका चरित्र निन्दा रहित था तथा जिनकी शूरता और प्रताप से सब राजा उनके वश होगये थे ॥ १३ ॥ विदर्भराज की कन्या नन्दिनी महाराज वीर की पत्नी हुई जिससे कि उन्होंने विविंश नाम का एक पुत्र उत्पन्न किया ॥१४॥ जब राजा विविंश पृथ्वी का शासन करने लगे तब उन तेजस्वी राजा के शासन में समस्त पृथ्वी पर प्रजा ने सुख शांति का अनुभव किया ॥ १५ ॥ उनके शासन में समय पर वर्षा होती, सुन्दर औषधियाँ पृथ्वी से उत्पन्न होतीं, खूब फसलें होतीं और फल रसदार उत्पन्न होते ॥१६॥ वे रस पुष्ट करने वाले होते थे परन्तु वह पुष्टि उन्माद पैदा न करती थी। लोगों का धनैश्वर्य उनके मद का कारण न होता था ॥१७॥ उनके प्रताप से शत्रुओं को भय लगा रहता तथा उनके इष्ट मित्र सदैव प्रसन्न और स्वस्थ रहते ॥ १८ ॥ राजा विविंश बहुत से यज्ञ करके तथा भली भाँति पृथ्वी का पालन करके संग्राम में मृत्यु पाकर स्वर्ग-लोक को गये ॥ १९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में विविंश चरित्र नाम ११९वाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौबीसवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तस्य पुत्रः खनीनेत्रो महाबलपराक्रमः ।
यस्य यज्ञेष्वगायन्त गन्धर्व्वा विस्मयान्विताः॥ १ ॥
खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति ।
तेन यज्ञायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी ससागरा ॥ २ ॥
दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
तपसा द्रव्यमासाद्य मोचयेत् साधितेन यः ॥ ३ ॥
पतश्च प्राप्य वित्तर्द्धिमतुलां दातृसत्तमात् ।
जगृहुर्ब्राह्मणा विप्र नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ॥ ४ ॥
सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च ।

मार्कण्डेयजी बोले—

राजा विविंश के पुत्र खनीनेत्र बड़े बली और पराक्रमी हुए। उनके यज्ञों में गन्धर्वों ने विस्मित होकर यह गाया ॥ १ ॥ खनीनेत्र के समान पृथ्वी पर दूसरा यज्ञ करने वाला राजा न होगा जिसने दस हज़ार यज्ञ समाप्त करके समुद्र सहित सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर दी ॥ २ ॥ उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को महात्मा ब्राह्मणों को दान में देकर तपस्या द्वारा पुनः द्रव्य प्राप्त कर पृथ्वी को फिर लेलिया ॥ ३ ॥ उस धनैश्वर्य को जो कि राजा ने दान में दिया था प्राप्त कर ब्राह्मण लोगों ने भिक्षावृत्ति छोड़दी॥ ४ ॥ महाराज खनीनेत्र ने सड़सठ हज़ार, सड़सठ सौ

सप्तषष्टिश्च यो यज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥ ५ ॥
अपुत्रः स महीपालो मृगयामुपचक्रमे ।
पुत्रार्थं पितृयज्ञाय मांसकामो महामुने ॥ ६ ॥
अश्वारूढो बिना सैन्यमेक एव महावने ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणो बाणखड्गधनुर्द्धरः ॥ ७ ॥
तं वाहयन्तं तुरगमन्यतो गहनाद्वनात् ।
विनिष्क्रम्य मृगः प्राह मां हत्वाभिमतं कुरु ॥ ८ ॥

राजोवाच

अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम् ।
कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्यवे कर्त्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥

मृग उवाच

अपुत्रोऽहं महाराज वृथा जन्मप्रयोजनम् ।
विचारयन् न पश्यामि प्राणानामिह धारणम्॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

अथाभ्येत्य मृगः प्राह तमन्यो वसुधाधिपम् ।
मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमेतेन पार्थिव ॥११॥
घातयस्वेति मां मांसैर्मम्कर्म्म समाचर ।
यथा कृतार्थता ते स्यान्मम चाप्युपकारि तत् ॥१२॥
पुत्रार्थं त्वं महाराज स्वपितॄन् यष्टुमिच्छसि ।
अपुत्रस्यास्य मांसेन लप्स्यसे वाञ्छितं कथम्॥१३॥
यादृक् कर्म्म विनिष्पाद्यं तादृग्द्रव्यमुपाहरेत् ।
दुर्गन्धैर्न सुगन्धानां गन्धज्ञानविनिर्णयः ॥१४॥

राजोवाच

वैराग्यकारणं प्रोक्तमनेनापुत्रता मम ।
कथ्यतां प्राणसन्त्यागे यत् ते वैराग्यकारणम्॥१५॥

मृग उवाच

बहवो मे सुता भूप बह्वयो दुहितरस्तथा ।
यच्चिन्तादुःखदावाग्नि-ज्वालामध्ये वसाम्यहम्॥१६॥
सर्व्वसाध्या नरेन्द्रेयं मृगजातिः सुकातरा ।
तेष्वपत्येषु मे चातिममत्वं तेन दुःखितः ॥१७॥
मनुष्य-सिंह-शार्द्दूल-वृकादिभ्यो बिभेम्यहम् ।

और सड़सठ कुल इतने यज्ञ किये और ... को प्रचुर दक्षिणा दी ॥ ५ ॥ हे महामुनि ! वह ... अपुत्र थे, अतः उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के लिये ... करने का विचार किया और यज्ञ के लिये ... लाने के निमित्त आखेट करनेका विचार किया ॥६॥ घोड़े पर सवार होकर बिना ही सेना के कवच धारण कर और धनुषबाण खड्ग हाथ में लेकर वे महावन में प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥ जब कि वे घोड़े को दौड़ाते हुए चले जारहे थे उस समय एक दूसरे गहन बन से एक हरिण निकला और उनसे बोला, "मुझे मार कर आप अपना कार्य साधिये।" ॥ ८ ॥

राजा बोलेः—

दूसरे हरिण तो मुझे देखकर डर से भाग जाते हैं। तुम किस कारण मृगया के हेतु आत्म समर्पण कररहे हो ? ॥९॥

मृग बोलाः—

हे महाराज ! मैं निपुत्री हूँ, इस कारण मेरा जीवन वृथा है, इस संसार में अपने प्राणोंके रखने की मुझे कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती॥१०॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इतने में ही एक दूसरा मृग राजा के पास आकर बोला, "महाराज ! इसको न मारिये" ॥११॥ मुझे मार कर मेरे माँस से अपना कार्य कीजिये जिससे कि आपके कार्य में सिद्धि हो और मेरा भी उपकार हो ॥१२॥ हे महाराज ! आप पुत्रप्राप्ति के लिये अपने पितरों का यज्ञ करना चाहते हैं, ऐसी दशा में इस निपुत्री मृग के मांस से आपका कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा ॥ १३ ॥ जैसा कर्म हो उसके लिये वैसा ही द्रव्य उपस्थित करना चाहिये। दुर्गन्ध से कभी सुगन्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥१४॥

राजा बोलेः—

इस मृग ने वैराग्य का कारण मुझे अपुत्रता बताई, अब तुम्हारा प्राण त्यागने में क्या वैराग्य का हेतु है वह कहो ॥१५॥

मृग बोलाः—

हे राजन् ! मेरे बहुत से पुत्र और पुत्रियाँ हैं, उन्हीं की चिन्ता रूपी अग्नि में मैं जला करता हूँ ॥१६॥ हे नरेन्द्र ! मृग जाति को सब लोग अपना साधन बना लेते हैं तथा यह अति निर्बल है इस कारण मुझे अपनी सन्तान का बहुत ख्याल रहता है और इसी से मैं दुःखित हूं ॥१७॥ हे प्रभो ! चूंकि

हीनाद्भयत् सर्व्वसत्त्वेभ्यः श्व-शृगालादपि प्रभो॥१८
सोऽहं निमित्तं बन्धूनामिमां शून्यां वसुन्धराम् ।
नृ-सिंहादिभयात् सर्व्वामिच्छामि सुसृशं सकृत्॥१९
तृणान्यन्येऽपि खादन्ति गोऽजावितुरगादिकाः ।
तांस्तेषां पोषणायाहमिच्छामि निधनं गतान्॥२०॥
निष्क्रान्तेषु ततस्तेषु ममापत्येषु वै पृथक् ।
भवन्ति चिन्ताः शतशो ममत्वाहृतचेतसः ॥२१॥
किं कूटपाशं किं वज्रं वागुरां किं सुतो मम ।
प्राप्तश्चरन् वने किं वा नृ-सिंहादिवशं गतः ॥२२॥
प्राप्तोऽयमेकः सम्प्राप्तास्तेऽवस्थां कीदृशीं मम ।
साम्प्रतं विचरन्तो वै ये गताः सुमहावनम् ॥२३॥
दृष्ट्वा प्राप्तान ममाभ्यासमहं तानात्मजान् नृप ।
ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामि रजनीं पुनः ॥२४॥
प्रभाते दिवसं क्षेममस्तगेऽर्के निशामपि ।
वाञ्छाम्यहं कदा क्षेमं सर्व्वकालं भविष्यति ॥२५॥
एतत् ते कथितं भूप ममोद्वेगस्य कारणम् ।
अतः प्रसादं कुरु मे बाणोऽयं पात्यतां मयि ॥२६॥
इति दुःखशताविष्टः प्राणानपि त्यजामि यत् ।
तत्कारणं निबोध त्वं ब्रुवतो मम पार्थिव ॥२७॥
असूर्य्या नाम ते लोका यान् गच्छन्त्यात्मघातकाः ।
यज्ञोपयुक्ताः पशवः सम्प्रयान्त्युच्छ्रितीः प्रभो॥२८॥
अग्निः पशुरभूत् पूर्व्वं पशुरासीज्जलाधिपः ।
भास्वानथोच्छ्रितीः प्राप्तो यज्ञे निष्ठामुपागतः॥२९॥
तन्ममैतां कृपां कृत्वा नय मामुच्छ्रितिं नृप ।
आत्मनश्चेप्सितं कामं पुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥३०॥

पूर्व्वमृग उवाच

राजेन्द्र नैष हन्तव्यो धन्योऽयं सुकृती मृगः ।
बहवस्तनया यस्य हन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥३१॥

उत्तरमृग उवाच

एकदेहभवं यस्य दुःखं धन्यः स वै भवान् ।

हरिण सब जीवों से यहाँ तक कि कुत्ते और सियार से भी कमज़ोर है मैं मनुष्य, सिंह, चीता, भेड़िया आदि सबसे डरता रहताहूँ॥१८॥ इसलिये मैं अपने बाल बच्चों और भाई बन्धुओं के निमित्त यह चाहता हूँ कि ये मनुष्य और सिंह आदि के भय से रहित हों॥ १९ ॥ जैसे मृग घास खाते हैं उसी तरह, गाय, बकरी, भेड़ और घोड़े भी घास खाते हैं इसलिये मेरी इच्छा यह रहती है कि मनुष्य इन दूसरों पशुओं को ही मारा करें, मृगों को नहीं ॥२०॥ जब मेरे पुत्र, पौत्रादि अलग होकर चरने के लिये निकल जाते हैं उस समय उनकी रक्षा के विचार से मेरा चित्त बड़ा चिन्तित रहता है ॥ २१ ॥ कहीं मेरे पुत्र किसी व्याध के पाश में न फँस जाँय अथवा किसी ऐसे वन में चरते हुए न चले जाँय जहाँ कि वे मनुष्य या सिंह के वश में हो जाँय यही चिन्ता रहती है ॥२२॥ जिस बन में कि मैं एक हूं वहाँ तो मेरी यह दशाहै परन्तु जिस विशाल वन में वे सब होंगे वहाँ क्या दशा होगी॥ हे राजन् ! जब मेरे पुत्र सायंकाल को वापिस आ जाते हैं तो मैं कुछ देर सोकर फिर रात्रि में भी उनकी मङ्गल-कामना किया करता हूँ ॥२४॥ प्रातः, सन्ध्या, दिन, रात्रि प्रत्येक समय मैं यही सोचता रहता हूँ कि उनकी कुशल किस प्रकार रहे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! यह मैंने आपसे अपने उद्वेग का कारण कहा, अब आप ऐसी कृपा करें जिससे कि आपका यह बाण मेरे ऊपर गिरे॥ २६ ॥ हे राजन् ! जिस लिये कि मैं दुःखित होकर इन प्राणों को त्यागना चाहता हूँ उसका कारण मुझसे सुनो ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! जो लोग आत्मघात करते हैं वे असूर्यानाम लोकों को प्राप्त होते हैं और यज्ञ के उपयोगमें आये हुए पशु उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥२८॥ पहिले अग्नि, वरुण और सूर्य पशु थे परन्तु यज्ञ में वधको प्राप्त होकर वे उच्च गति को पहुंचे ॥२९॥ हे राजन्! इसलिये मेरे ऊपर कृपा करके मुझको वध कीजिये जिससे मैं उत्तम गति को पहुँचूं और आप पुत्र प्राप्त करें॥ ३० ॥

पहिला मृग बोलाः—

हे राजेन्द्र ! इस पुण्यवान् मृग को न मारिये, यह धन्य है कि इसके इतने पुत्र हैं । आप तो मुझ बिना पुत्र के मृग का वध करें ॥३१॥

दूसरा मृग बोलाः—

जिसको एक शरीर का ही दुःख है वह धन्य

बहूनि यस्य देहानि तस्य दुःखान्यनेकधा ।।३२।।
एको यदाहमासन्तु प्राक् तदा देहजं मम ।
दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्य्यायास्तद्भूद्द्विधा।।३३।।
यदा यातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै ।
तावच्छरीरभूर्मीणि मम दुःखान्यथाभवन् ।।३४।।
सकृतार्थो भवान् यस्य नातिदुःखाय सम्भवः ।
इह दुःखाय मत्सूतिः परत्र च विरोधिनी ।।३५।।
यतो रक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमि तत् ।
चिन्तयामि च सम्भूतिस्तेन मे नरके ध्रुवा ।।३६।।

राजोवाच

न वेद्मि किं सन्ततिमान् धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग ।
पुत्रार्थश्चायमारम्भो मम दोलायते मनः ।।३७।।
दुःखाय सन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकाय तत् ।
तथाप्यतनयान् यान्ति ऋणानीति श्रुतं मया ।।३८।।
सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृते प्राणिवधं मृग ।
तपसैव प्रचण्डेन यथा पूर्व्वमहीपतिः ।।३९।।

है। जिसके अनेकों देह हों उसके दुःख भी अनेकों हैं॥३२॥जब मैं एक था तो मुझे अपने शरीर का ही दुःख था लेकिन जब मेरी स्त्री आई तब वही मेरा दुःख दुगना होगया ॥३३॥परन्तु जब स्त्रीसे मेरे पुत्र, पुत्रियाँ उत्पन्न हुए तब उसी प्रकार मेरा दुःख बढ़ता गया ॥ ३४ ॥ तुम धन्य हो कि तुमको इस संसार में अधिक दुःख नहीं है। मेरा जन्म लेना तो इस लोक और परलोक दोनों में दुखदायी है ॥ चूंकि मैं अपनी संतान की रक्षा और पालन आदि की चिन्ता में लगा रहता हूँ इसलिये हरिस्मरण न करने के कारण अवश्य नरकमें जाऊँगा ॥ ३६ ॥

राजा बोले—

हे मृगो ! मैं नहीं जानता कि तुम दोनों में धन्य कौन है सन्तति वाला या निपुत्री। परन्तु पुत्र-प्राप्ति के लिये मृगका वध करने को मेरा चित्त स्थिर नहीं ॥ ३७ ॥ यह सत्य है कि सन्तति इस लोक और परलोक में दुःख का कारण है। तथापि मैंने सुना है कि निपुत्री लोग ऋणी रहते हैं॥ ३८ ॥ इसलिये मैं ऐसा यत्न करूँगा कि पुत्र प्राप्तिके लिये मृग का वध न करके प्रचण्ड तप ही करूँ जैसा कि पूर्वकाल में राजाओं ने किया था ॥ ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में खनीनेत्र चरित्र नाम १२०वाँ अध्याय समाप्त ।



एकसौइकीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् ।
तत्र तुष्टाव नियतो भूत्वा देवं पुरन्दरम् ॥ १ ॥
तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः ।
तुष्टाव प्रयतः शक्रमपत्यार्थं महीपतिः ॥ २ ॥
तस्य स्तोत्रेण तपसा भक्त्या चापि सुरेश्वरः ।
तुतोष भगवानिन्द्रः प्राह चैनं महामुने ॥ ३ ॥
अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च ।
परितुष्टोऽस्मि ते भूप व्रियतां भवता वरः ॥ ४ ॥

राजोवाच

अपुत्रस्य सुतो मेऽस्तु सर्व्वशस्त्रभृतां वरः ।
सदा चाव्याहतैश्वर्य्यो धर्म्मकृद्धर्म्मवित् कृती।। ५ ।।

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके अनन्तर राजा खनीनेत्र ने पापनाशिनी गोमती नदी के किनारे पर जाकर नियत चित्त होकर इन्द्रदेव की आराधना की ॥ १ ॥ पुत्र प्राप्ति के लिये महाराज ने प्राण और शरीर को निवृ करके उग्र तपस्या करते हुए इन्द्र की स्तुति की हे क्रौष्टुकि मुनि ! उनकी स्तुति, तपस्या, और भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने महाराज से कहा ॥ २ ॥ आपके भक्ति पूर्वक तपस्या और स्तुति करने से मैं संतुष्ट हूं। आप वर माँगिये ॥ ४ ॥

राजा बोलेः—

मुझ निस्संतान को एक पुत्र हो जो कि सर्व अस्त्र, शस्त्रों से युक्त होकर ऐश्वर्यवान्, धर्मात्मा ज्ञानी और पुण्यात्मा हो ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेति चोक्तः शक्रेण राजा प्राप्तमनोरथः।
प्रजाः पालयितुं भूप आजगाम निजं पुरम् ॥ ६ ॥
तत्रास्य कुर्व्वतो यज्ञं सम्यक् पालयतः प्रजाः।
अजायत सुतो विप्र तदा शक्रप्रसादतः ॥ ७ ॥
तस्य नाम पिता चक्रे बलाश्व इति भूपतिः।
अस्त्रग्राममशेषञ्च ग्राहयामास तं सुतम् ॥ ८ ॥
पितर्य्युपरते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितो नृपः।
स बलाश्वो वशं निन्ये भुवि सर्व्वमहीक्षितः ॥ ६ ॥
करञ्च दापयामास सारग्रहणपूर्व्वकम्।
स सर्व्वभूमिपान् राजा पालयामास च प्रजाः॥१०॥
अथाखिलनरेन्द्रास्ते दायादास्तस्य दुर्म्मदाः।
न चाभ्युत्थाय सततं ते चास्मै प्रददुः करान्॥११॥
व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोषपरास्ततः।
भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः ॥१२॥
स गृहीत्वा स्वकं राज्यं पृथिवीशोऽबलो मुने।
तस्थौ स्वनगरे भूपैर्विरोधो बहुभिः कृतः ॥१३॥
समेत्य सुमहावीर्य्याः ससाधनधनास्ततः।
रुरुधुस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः ॥१४॥
पुररोधेन तेनाथ कुपितः स महीपतिः।
स्वल्पकोषोऽल्पदण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः ॥१५॥
अपश्यमानः शरणं सबलो द्विजसत्तम।
करौ मुखाग्रतः कृत्वा निशश्वासार्त्तमानसः ॥१६॥
ततोऽस्य हस्तविवरान्मुखानिलसमाहताः।
निर्ज्जग्मुः शतशो योधा रथ-नाग-तुरङ्गमाः ॥१७॥
ततः क्षणेन तत् सर्व्वं नगरं तस्य भूपतेः।
व्याप्तमासीद्बलौघेन सारेणातिबलान्मुने ॥१८॥
अथ सोऽतिबलौघेन महता तेन संवृतः।
निर्गम्य नगरात् तस्मात् तान् विजिग्ये नराधिपः१६
जित्वा च वशमानीय चकार करदान् पुनः।
यथा पूर्व्वं महाभाग महाभाग्यो नरेश्वरः ॥२०॥
धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम्।
बलं करन्धमस्तस्मात् स बलाश्वोऽभिधीयते २१॥
स धर्म्मात्मा महात्मा च स मैत्रः सर्व्वजन्तुषु।

मार्कण्डेयजी बोले—

इन्द्र ने कहा कि ऐसा ही होगा और राजा भी अपना मनोरथ प्राप्त कर प्रजा पालन के लिये अपने नगर में आये ॥ ६ ॥ हे विप्र ! वहाँ यज्ञ करते और भली भाँति प्रजा का पालन करते हुए राजा खनीनेत्र के इन्द्र की कृपासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ राजा ने उसका नाम बलाश्व रक्खा, और उसको सम्पूर्ण अस्त्र, शस्त्रों की विद्या पढ़ा दी ॥ ८ ॥ हे विप्र ! महाराज खनीनेत्र के मरने पर बलाश्व राजा हुए जिन्होंने कि पृथ्वी के सम्पूर्ण राजाओंको अपने वश में कर लिया ॥ ६ ॥ महाराज बलाश्व ने सब राजाओं से कर वसूल किया तथा प्रजाका पालन किया ॥ १० ॥ परन्तु कुछ काल बाद उन राजाओं ने तथा अन्य कर देने वालों ने मदोन्मत्त होकर बलाश्व को कर देना बन्द कर दिया ॥ ११ ॥ उन राजाओं ने अपने अपने राज्यों पर सन्तोष न करके महाराज बलाश्व का राज्य छीन लिया ॥ १२ ॥ हे मुनि ! परन्तु महाराज बलाश्व ने अपने राज्य को पुनः वापिस ले लिया और राजाओं के अत्यन्त विरोध करने पर भी वे अपने नगर में राज्य करने लगे ॥ १३ ॥ परन्तु फिर उन पराक्रमी राजाओं ने अनेकों साधनों से युक्त होकर बहुत-सी सेना इकट्ठी की और राजा बलाश्व के नगर को घेरलिया ॥१४॥ नगर के घिर जाने से महाराज बड़े क्रुद्ध हुए तथा खजाना खाली होने और प्रभाव कम होने से भी उन्हें बड़ी विकलता हुई ॥१५॥ हे द्विजसत्तम ! जब बलाश्व को बचाव की कोई सूरत न दीखी तब वे दुःखी मनसे अपने मुख पर दोनों हाथ रख कर लम्बी लम्बी श्वाँस लेने लगे ॥ १६ ॥ फिर महाराज बलाश्वके मुख की वायु से उनकी अँगुलियों के बीच की जगह से सैकड़ों योद्धा, रथ हाथी और घोड़े निकल पड़े ॥ १७ ॥ हे मुनि ! फिर तो उन महाराज बलाश्व का नगर एक बड़ी सेना से व्याप्त होगया ॥१८॥ तब वे उस विशाल सेना को लेकर नगर से बाहर निकले और उन शत्रुओं को परास्त किया ॥ १६ ॥ फिर बड़भागी महाराज बलाश्व ने उन राजाओं को जीत कर उनसे पहिले की भाँति कर वसूल किया ॥ २० ॥ काँपते हुए उनके हाथों से जो शत्रुओं को दग्ध करने वाली सेना उत्पन्न हुई थी इसलिये बलाश्व को करन्धम भी कहा जाता है ॥ २१ ॥ महाराज करन्धम बड़े धर्मात्मा, महात्मा तथा सब जीवों के मित्र होकर

करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२२॥
सम्प्राप्तस्य परामार्त्तिं ददावरिविनाशनम् ।
बलं धर्म्मेण चाक्षिप्तमभ्युपेत्य स्वयं नृपः ॥२३॥

तीनों लोकों में विख्यात हुए ॥ २२ ॥ वह सेना जो कि महाराज के धर्म से उत्पन्न हुई थी स्वयं कष्ट उठाकर और शत्रुओं को नष्ट कर महाराज बलाश्व में ही विलीन होगई ॥२३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में करन्धम चरित्र नाम १२१वाँ अ० समाप्त ।

एकसौबाईसवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

वीर्य्यचन्द्रसुता सुभ्रूर्वीरा नाम शुभव्रता ।
स्वयंवरे सा जगृहे महाराजं करन्धमम् ॥ १ ॥
तस्यां पुत्रं स राजेन्द्रो जनयामास वीर्य्यवान् ।
अवीक्षितमिति ख्यातिमुपेतं जगतीतले ॥ २ ॥
जाते तस्मिन् सुते राजा स दैवज्ञानपृच्छत ।
कच्चित् प्रशस्तनक्षत्रे शस्तलग्ने सुतो मम ॥ ३ ॥
कच्चिच्चालोकितं जन्म मम पुत्रस्य शोभनैः ।
ग्रहैः कच्चिन्न दुष्टानां ग्रहाणां दृक्पथं गतम् ॥ ४ ॥
इत्युक्तास्तेन दैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिं ततः ।
शस्ते मुहूर्त्ते नक्षत्रे लग्ने चैव सुतस्तव ॥ ५ ॥
समुत्पन्नो महावीर्य्यो महाभागो महाबलः ।
भविष्यति महाराज महाराजस्तवात्मजः ॥ ६ ॥
अवैक्षतेमं देवानां गुरुः शुक्रश्च सप्तमः ।
सोमश्चतुर्थस्तनयं तवैनं समवेक्षते ॥ ७ ॥
उपान्तसंस्थितश्चैव सोमपुत्रोऽप्यवेक्षते ।
नावक्षतेमं सविता न भौमो न शनैश्चरः ॥ ८ ॥
तव पुत्रं महाराज धन्योऽयं तनयस्तव ।
सर्व्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतो भविष्यति ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दैवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिपः ।
हर्षपूर्णमनाः प्राह निजस्थानगतस्तदा ॥१०॥
अवैक्षतेमं देवानां गुरुः सोमसुतो बुधः ।
नावैक्षतनमादित्यो नार्कसूनुर्न भूमिजः ॥११॥
अवैक्षतेति यत् प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः ।
अवीक्षितेति तेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति ॥१२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

राजा वीर्य्यचन्द्रकी शुभव्रतवाली और सुन्दरी पुत्री वीरा ने स्वयम्वर में महाराज करन्धम को वरण किया ॥ १ ॥ महाराज करन्धम ने उस पत्नी से एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम इस पृथ्वी पर अवीक्षित प्रसिद्ध हुआ ॥ २ ॥ उस पुत्र के उत्पन्न होने पर राजा ने ज्योतिषियोंसे पूछा कि मेरा पुत्र प्रशस्त नक्षत्र और लग्न में पैदा हुआ या नहीं ॥ ३ ॥ तथा मेरे पुत्र का जन्मस्थान शुभ ग्रहों द्वारा दृष्ट है अथवा दुष्ट ग्रहों द्वारा यह आप लोग बताइये ॥ ४ ॥ राजा के इस प्रकार कहने पर ज्योतिषियों ने उनसे कहा, " हे महाराज ! आपका यह पुत्र प्रशस्त मुहूर्त्त, नक्षत्र और लग्न में उत्पन्न हुआहै । यह अत्यन्त बलवान्,भाग्यवान्, पराक्रमी और राजाओं में महाराजा होगा ॥५-६॥ बृहस्पति और शुक्र इसके सप्तम स्थान में तथा चन्द्रमा चतुर्थ स्थान में इसको देखते हैं और इसकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥ दशम स्थान में स्थित होकर बुध इसकी रक्षा करते हैं । सूर्य, मङ्गल और शनैश्चर आदि पापग्रह इसके जन्मस्थान को नहीं देखते हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज ! आपका यह पुत्र धन्य है । यह कल्याण और सम्पत्ति से युक्त होगा ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

ज्योतिषियों के यह वचन सुनकर महाराज करन्धम प्रसन्न चित्त होकर बोले ॥ १० ॥ चूंकि बृहस्पति, शुक्र और बुध इसको देखते हैं और सूर्य, शनिश्चर और मङ्गल नहीं ॥११॥ देखते ऐसा आप लोग कहते हैं इसलिये इसका नाम अवीक्षित प्रसिद्ध होगा ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अवीक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः ।
अस्त्रग्राममशेषं स कण्वपुत्रादथाग्रहीत् ॥१३॥
स रूपेणाति भिषजौ देवानां पार्थिवात्मजः ।
बुद्ध्या वाचस्पतिं कान्त्या शशाङ्कं तेजसा रविम् १४
धैर्य्येणाब्धिं तथोर्व्वीञ्च सहिष्णुत्वेन वीर्य्यवान् ।
शौर्य्येण न समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः ॥१५॥
स्वयंवरे तं जगृहे हेमधर्म्मात्मजा वरा ।
सुदेवतनया गौरी सुभद्रा बलिनः सुता ॥१६॥
लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुतानिभा ।
भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती ॥१७॥
याश्चैवं नाभिनन्दन्ति स्वयंवरकृतक्षणाः ।
ताश्चापि स बलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः ॥१८॥
निराकृत्य नृपान् सर्व्वांस्तासां पितृकुलानि च ।
स्वकं हि वीर्य्यमाश्रित्य बलवान् स बलोद्धतः ॥१९॥
एकदा तु विशालस्य वैदिशाधिपतेः सुताम् ।
वैशालिनीं स सुदतीं स्वयंवरकृतक्षणाम् ॥२०॥
परिभूयाखिलान् भूपान् स्वेच्छया न वृतस्तया ।
बलाज्जग्राह विमर्षे यथान्या बलगर्व्वितः ॥२१॥
ततस्ते भूभृतः सर्व्वे बहुशस्तेन मानिना ।
निराकृताः सुनिर्व्विण्णा प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः॥२२
सतां ललनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम् ।
बहूनामेकवर्णानां जन्म धिग्वो महीभृताम् ॥२३॥
क्षत्रियो यः क्षतत्राणं वध्यमानस्य दुर्म्मदैः ।
करोति तस्य तन्नाम वृथैवान्ये हि बिभ्रति ॥२४॥
आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्व्वताम् ।
भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः ॥२५॥
उच्चार्य्यते स्तुतिर्या च सूत-मागध-वन्दिभिः ।
सा सत्या मा वृथा वीरा भवत्वरिविनाशनात्॥२६॥
भवतां मा वृथैवैषां भूपशब्दो दिगन्तरः ।
वीरपाश्रयिणः सर्व्वे विशिष्टकुलसम्भवात् ॥२७॥
बिभेति को न मरणात् को युद्धेन विनाऽमरः ।
विचिन्त्यैतन्न हातव्यं पौरुषं शस्त्रवृत्तिभिः ॥२८॥
तन्निशम्य ते भूपा विस्पष्टामर्षपूरिताः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

करन्धम के पुत्र अवीक्षित वेद और वेदाङ्ग में पारङ्गत हुए तथा उन्होंने अस्त्र शस्त्र की सम्पूर्ण विद्या कण्व मुनि के पुत्र से सीखी ॥ १३ ॥ वह अवीक्षित रूपमें अश्विनी कुमारों, बुद्धिमें बृहस्पति कान्ति में चन्द्रमा और तेज में सूर्य के समान था ॥ १४ ॥ वह धैर्य में समुद्र के समान, सहिष्णुता में पृथ्वीके समान था और वीरता में उसके समान पृथ्वी पर कोई न था ॥ १५ ॥ स्वयम्वर में हेमधर्म की कन्या वरा, सुदेव की कन्या गौरी और बलि की कन्या सुभद्रा ने उसको वरण किया ॥ १६ ॥ वीर की कन्या लीलावती, वीरभद्र की पुत्री निभा, भीम की कन्या मान्यवती, दम्भ की पुत्री कुमुद्वती ने ॥१७॥ स्वयम्वरों में अवीक्षित को अपना पति चुना और अवीक्षित ने उनको बलपूर्वक ग्रहण किया ॥१८॥ इन सब पत्नियोंको उसने सब राजाओं तथा पत्नियों के पिताओं के कुल वालों को अपने पराक्रम से परास्त करके ग्रहण किया ॥१९॥ एक बार अवीक्षित ने वैदिश के राजा विशाल की पुत्री वैशालिनी को स्वयम्वर में देखा ॥२०॥ हे क्रौष्टुकि जी ! उस कन्या ने सब राजाओं की उपेक्षा की और जब वह अवीक्षित को भी न वरके दूसरे की ओर झुकी तब अवीक्षित ने उसको बल पूर्वक पकड़ लिया ॥२१॥ इस प्रकार अपमानित होकर वे राजा बहुत दुःखी हुए और व्याकुल होकर आपस में एक दूसरे से कहने लगे ॥ २२ ॥ हम बलवान् क्षत्रियों के होते हुए यदि इस प्रकार इस ललना का हरण होजाय और हम हरण करनेवाले को क्षमा करदें तो हमारे जीवन को धिक्कार है॥ २३॥ क्षत्रिय वही है कि जो अन्यायियों से पीड़ित मनुष्यों का त्राण करता है। जो ऐसा नहीं करता है उसका क्षत्रिय नाम वृथा है ॥२४॥ जो हम लोगों ने इस दुष्ट से अपनी रक्षा न की तो क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हम लोगों की मति भ्रष्ट हो गई है ऐसा जानना चाहिये ॥२५॥ जो कि हमारी स्तुति सूत, मागध और वन्दीजन करते हैं वह सत्य होते हुए भी इस वैरी को न मारने से वृथा होजायगी ॥२६॥ हम लोग वीर हैं और सब सभ्य कुल में उत्पन्न हुए हैं, दिग्दिगान्तरों में हमारा राज्य फैला हुआ है, ये सब बातें वृथा हुआ चाहती हैं ॥२७॥ संसार में कौन नहीं मरता है तथा युद्ध न करने पर भी कौन अमर रहेगा यह विचार कर क्षत्रियों को पुरुषार्थ न छोड़ना चाहिये ॥२८॥ यह सुनकर वे

ऊचुः परस्पर सर्व्वे समुत्तस्थुश्च सायुधाः ॥२६॥
केचिद्रथानारुरुहुः केचिन्नागांस्तथा हयान् ।
अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताः पदातयः ॥३०॥

सब राजा क्रोध से युक्त होगये और सब अ... ले लेकर खड़े होगये ॥ २६ ॥ कुछ रथों पर ... कुछ हाथियों तथा घोड़ों पर बैठकर और कु... क्रोध से उन्मत्त हो पैदल ही अवीक्षित के ... पहुंचे ॥ ३० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें अवीक्षित चरित्र (१) नाम १२२वाँ अध्याय स० ।

एकसौतेईसवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच
इति संग्रामसज्जास्ते भूपा भूपसुतास्तथा ।
निराकृता सुबहुशस्तत्कालञ्चाप्यवीक्षिताः ॥१॥
ततो बभूव संग्रामस्तस्य तैः सह दारुणः ।
एकस्य बहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ॥ २ ॥
तेऽसिशक्तिगदाबाण-पाणयस्तं सुदुर्म्मदाः ।
अभिघ्नन्तो युयुधिरे तैः समस्तैरसावपि ॥ ३ ॥
स तान् शरशतैरुग्रैर्बिभेद नृपनन्दनः ।
कृतास्त्रो बलवान् बाणैस्ते च तं बिभिदुः शितैः ॥४॥
कस्यचिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधरम् ।
हृदि विव्याध चैवान्यमन्यं वक्षस्यताड़यत् ॥ ५ ॥
करं चिच्छेद करिणस्तुरगस्य तथा शिरः ।
तथान्येषां तथैवाश्वान् रथस्थान्यस्य सारथिम् ॥६॥
बाणानापततश्चक्रे द्विधा बाणैस्तथा द्विषाम् ।
चिच्छेदान्यस्य खड्गञ्च धनुरन्यस्य लाघवात् ॥७॥
तनुत्रेऽपहते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः
अवीक्षिताहतश्चान्यः पदातिः प्रजहौ रणम् ॥८॥
इत्याकुलीकृते तस्मिन् समग्रे राजमण्डले ।
तस्थुः सप्तशता वीरा मरणे कृतनिश्चयाः ॥ ९ ॥
आभिजात्य-वयः-शौर्य्य-लज्जाभारसमन्विताः ।
निर्ज्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे ॥१०॥
तैः समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः ।
युयुधे धर्म्मयुद्धेन तेन तेनातिकोपितः ॥११॥
विच्छिन्नयन्त्र-कवचान् स तानपि महाबलः ।
कर्त्तुं व्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्ध्वा महामुने ॥१२॥
धर्म्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्म्मतः ।

मार्कण्डेयजी बोले—
तब बहुत से राजाओं और राजकुमारों ने संग्राम के लिये सुसज्जित होकर अवीक्षित के सम्मुख गमन किया ॥ १ ॥ हे क्रौष्टुकि मुनि ! तब उस अकेले राजकुमार का उन बहुत-से राजाओंके साथ दारुण युद्ध हुआ ॥ २ ॥ वे सब दुर्मद होकर तलवार, शक्ति, गदा, बाण आदि अवीक्षितपर चलाते थे और अवीक्षित भी अकेले उन राजाओं से युद्ध कर रहे थे ॥ ३ ॥ उस राजकुमार ने उनको सैकड़ों तीव्र बाणों से छेदा तथा उन राजाओं ने भी अपने बाणों से अवीक्षित पर प्रहार किया ॥ ४ ॥ राजकुमार अवीक्षित ने किसी राजा की बाहु, ... का शिर, किसीका हृदय और किसी का वक्षःस्थल काट डाला ॥५॥ उसने हाथियों की सूंड़ और घोड़ों के सिर काट डाले तथा दूसरे रथों के घोड़ों और सारथियों को भी मारा ॥ ६ ॥ शत्रुओं के आते हुए बाणों को अवीक्षित ने टुकड़े टुकड़े कर दिया तथा उसने किसी के धनुष और किसी की तलवार को काट डाला ॥७॥ राजकुमार अवीक्षितने शत्रुओं की सेना को नष्ट कर डाला, कुछ तो उसके बाणों से मारे गये और कुछ युद्ध से भाग गये ॥ ८ ॥ इस प्रकार राजकुमार से व्याकुल किये जानेपर समस्त राजमण्डल के सात सौ वीर मरनेका निश्चय करके वहाँ आये ॥ ९ ॥ सब सेना के पराजय होने और पलायन करने पर उन वीरों को अपनी जाति तथा पराक्रम पर लज्जा आई ॥१०॥ उन सब राजाओं से राजकुमार अवीक्षित अत्यन्त क्रुद्ध होकर धर्म-युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ हे महामुनि क्रौष्टुकि जी ! जब उन राजाओं के हथियार और कवच कट गये और उनके भी मारे जाने की बारी आई तब वे क्रुद्ध होकर ॥१२॥ धर्म को छोड़ कर अवीक्षित से जो कि धर्म पूर्वक युद्ध कर रहा था युद्ध करने लगे,

नरेन्द्रपुत्राः प्रस्वेद-जलक्लिन्नाननाः समम् ॥१३॥
विव्याध कश्चिद्बाणौघैः कश्चिच्चिच्छेद कार्म्मुकम् ।
ध्वजमस्यापरो बाणैश्छित्त्वा भूमावपातयत् ॥१४॥
जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान् बभञ्जुश्चापरे रथम् ।
गदापातेनाथ चान्ये बाणैः पृष्ठमताड़यन् ॥१५॥
छिन्ने धनुषि सक्रोधः स तदा नृपतेः सुतः ।
जग्राहासिं तथा चर्म्म तदप्यन्योऽन्वपातयत् ॥१६॥
च्छिन्नासिचर्म्मा जग्राह स गदां गदिनां वरः ।
तामप्यन्यः क्षुरप्रेण चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥१७॥
अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्ये नराधिपाः ।
बिभिदुः कोष्ठकीकृत्य धर्म्मयुद्धपराङ्मुखाः ॥१८॥
स विह्वलः पपातोर्व्यामेको बहुभिरर्दितः ।
राजपुत्रा महाभागा बबन्धुस्ते च तं ततः ॥१६
तमधर्म्मेण ते सर्व्वे गृहीत्वा नृपतेः सुतम् ।
विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः पुरम् ॥२०॥
हृष्टाः प्रमुदिता बद्धं तमादाय नृपात्मजम् ।
स्वयंवरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः पुरः॥२१॥
पुनः पुनश्च पित्रोक्ता तथापि च पुरोधसा ।
आलम्ब्यतामिति वरो यस्ते राजसु रोचते ॥२२॥
यदा सा मानिनी कञ्चिन्न जग्राह वरं मुने ।
तदा पप्रच्छ दैवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः ॥२३॥
विशिष्टतरमेतस्या विवाहाय दिनं वद ।
अद्य तदीदृक् सञ्जातं युद्धं विघ्नोपपादकम् ॥२४॥

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टो नरेन्द्रेण स दैवज्ञो विमृष्य तत् ।
दुर्म्मनाः प्राह विज्ञात-परमार्थो महीपतिम् ॥२५॥
भविष्यन्त्यपराणीह दिनानि पृथिवीपते ।
प्रशस्तलग्नयुक्तानि शोभनान्यचिरेण च ॥२६॥
करिष्यति विवाहार्थं तेषु प्राप्तेषु मानद ।
अलमेतेन यत्रायं महाविघ्न उपस्थितः ॥२७॥

उस समय उनके मुख पर पसीना आरहा था ॥१३॥ किसी ने उसको बाणों से वेधा और किसीने उनके धनुष को काटा। एक दूसरे वीर ने उनकी ध्वजा को काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥१४॥ एक वीर ने उनके घोड़ों को मारा, दूसरे ने रथ को तोड़ा तथा तीसरे ने गदा से और चौथे ने बाणों से अवीक्षित की पीठ में मारा ॥१५॥ जब उनका धनुष टूट गया तो अवीक्षित ने क्रोधित होकर ढाल और तलवार को उठाया परन्तु उनको भी किसी राजा ने काट गिराया ॥१६॥ जब ढाल और तलवार भी टूट गये तब गदाधारियों में श्रेष्ठ अवीक्षित ने गदा उठाई परन्तु उसको भी शत्रुओं ने काट डाला ॥ १७ ॥ फिर उन राजाओं ने धर्म से विमुख होकर एक साथ मिलकर अकेले अवीक्षित पर हज़ारों बाण छोड़े ॥१८॥ बहुत-से राजाओंके आक्रमण को अकेला न सह सकनेके कारण वह विह्वल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर राजाओं ने उसे बाँध लिया ॥ १६ ॥ वे सब राजा उस राजकुमार को अधर्म से बाँध कर राजा विशाल के पास ले आये ॥२०॥ राजकुमार को बाँध कर तथा उस स्वयम्वरा कन्या को नगर में लाकर राजालोग बड़े प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ इसके बाद राजा विशाल तथा पुरोहितों ने बार बार कन्या से कहा कि इन राजाओं में जिसको तुम चाहो वर लो ॥ २२ ॥ हे मुनि! जब कि उस मानिनी ने किसी राजा को वरना स्वीकार न किया तब राजा विशालने उसके विवाह के विषय में ज्योतिषी से पूछा ॥२३॥ इसके विवाह के लिये अच्छा मुहूर्त्त बताइये। इस मुहूर्त्त में तो इतना युद्ध आदि विघ्न उपस्थित होगया॥२४

मार्कण्डेयजी बोले—

राजा विशाल के पूछने पर परमार्थ के जानने वाले ज्योतिषी ने विचार करके उदास होकर राजा से कहा ॥२५॥ हे राजन्! बहुत शीघ्र प्रशस्त लग्न-युक्त शुभ दिन आने वाले हैं ॥२६॥ हे सम्मान देने वाले! उन दिनों के आने पर विवाह का मुहूर्त्त बताऊँगा, इस समय जब कि यह महाविघ्न उपस्थित हुआ है इसपर विचार करना ठीक नहीं॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अवीक्षित चरित्र (२) नाम का १२३वां अध्याय समाप्त।



एकसौचौबीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ततः शुश्राव तं बद्धं तनयं स करन्धमः।
तस्या पत्नी तथा वीरा अन्ये चापि महीभृतः॥ १ ॥
तमधर्म्मेण तनयं बद्धं श्रुत्वा महीपतिः।
समन्तैः पृथिवीपालैश्चिरं दध्यौ महामुने ॥ २ ॥
केचिदूचुर्महीपाला बध्याः सर्व्वे महीभृतः।
यैरेकः संयुगे बद्धः समस्तैस्तैरधर्म्मतः ॥ ३ ॥
युज्यतां वाहिनी शीघ्रमूचुरन्यैः किमास्यते।
विशालो बध्यतां दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागताः ॥ ४ ॥
अन्ये तथोचुर्धर्म्मोऽत्र त्यक्तः पूर्व्वं महीक्षितः।
अन्यायेन बलाद्वयेन गृहीता तमवाञ्छती ॥ ५ ॥
स्वयंवरेष्वशेषेषु तेन राजसुतास्तदा।
खलीकृतास्ततः सर्व्वे समेत्य स वशीकृतः॥ ६ ॥
तेषामेतद्वचः श्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती।
वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता।
उवाच भर्त्तुः प्रत्यक्षमन्येषाञ्च महीक्षिताम् ॥ ७ ॥
भद्रं कृतं भद्रभुजा मम पुत्रेण पार्थिवाः।
गृहीता यद्बलात् कन्या जित्वा सर्व्वमहीक्षितः॥ ८ ॥
तदर्थं युध्यमानोऽयं युद्ध एको न धर्म्मतः।
तदप्यसमत्सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम् ॥ ९ ॥
एतदेव हि पौरुष्यं यदधर्म्मवशान्नरः।
नीतिं न गणयत्येवं जिघांसुरिव केशरी ॥ १० ॥
स्वयंवराय विन्यस्ता मम पुत्रेण कन्यकाः।
बह्वयो गृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम् ॥ ११ ॥
क्व क्षत्रियकुले जन्म क्व याच्ञा हीनसंश्रिता।
बलादेव समादत्ते क्षत्रियो बलिनां पुरः ॥ १२ ॥
लोहशृङ्खलबद्धा वा न वशं यान्ति कातराः।
प्रसह्यकारिणो यान्ति राजानो धर्म्मशालिनः॥ १३ ॥
तदलं दौर्म्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य बन्धनम्।
युष्माकमप्यायुधानामङ्गमूर्द्धसु पातनम् ॥ १४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद अवीक्षित के बन्दी होजाने का समाचार महाराज करन्धम, उनकी पत्नी तथा अन्य राजाओं ने सुना ॥१॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! राजा करन्धम ने सुना कि उनके पुत्र को अन्याय से राजाओं ने बाँध लिया है। इस पर वे विचार करने लगे ॥ २ ॥ कुछ राजाओं ने आकर महाराज से कहा कि वे राजा जिन्होंने अधर्म से अकेले राजकुमार को बाँध लिया है कैद किये जाने के योग्य हैं ॥ ३ ॥ दूसरे राजाओं ने कहा कि आप चुप क्या बैठे हैं शीघ्र सेना को इकट्ठी कीजिये और दुष्ट विशाल व उसके साथी राजाओं को पकड़िये ॥ ४ ॥ दूसरे राजाओं ने कहा कि राजाओं ने कुपित होकर धर्म इसलिये छोड़ा कि अवीक्षित ने अन्याय से उस कन्या को बलपूर्वक पकड़लिया जो कि उसे अङ्गीकार नहीं कर रही थी ॥५॥ और भी स्वयम्वरों में अवीक्षित ने राजकन्याओं को हरण किया है इसीलिये राजाओं ने एका करके उसे बाँध लिया है ॥ ६ ॥ उनके ये वचन सुनकर वीर कुल में उत्पन्न वीर जननी, वीर रमणी महारानी वीरा बहुत प्रसन्न हुईं और दूसरे राजाओं के सामने अपने पति से बोलीं ॥ ७ ॥ हे राजाओ! मेरे पुत्र ने सब राजाओं को जीतकर जो बलपूर्वक कन्याएं हरण कीं है यह बहुत अच्छी बात है ॥८॥ उनके निमित्त युद्ध करने से चाहे वह युद्ध न्याय पूर्वक न हुआ हो मैं अपने पुत्र की इसमें कोई अयोग्यता नहीं देखती हूँ ॥९॥ पौरुष यही है कि येन केन प्रकारेण शत्रु को जीते, मारते समय सिंह नीति को नहीं सोचता ॥ १० ॥ मेरे पुत्र ने स्वयम्वर में आई हुई कन्याओं को अत्यन्त मानी राजाओं के देखते देखते बलपूर्वक ग्रहण कियाहै॥ कहाँ तो क्षत्रिय कुल में जन्म और कहाँ हीनों द्वारा किये जाने वाली भिक्षावृत्ति! बलवानों के सामने क्षत्रिय ही बलपूर्वक कोई वस्तु ले सकता है ॥ १२ ॥ लोहे की जंज़ीरों में बँध कर भी क्षत्रिय वश में नहीं होते, वश में तो कायर होजाते हैं। धर्मात्मा राजा लोग भी कभी कभी हठ पूर्वक ऐसा कर लेते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये अब चिन्ता करने से क्या है? उसका बन्दी होना तो प्रशंसनीय है। आप लोगों के अङ्गों तथा शिरों पर अस्त्र शस्त्र लगे हुए हैं ॥ १४ ॥ हरण करनेही से राजाओं को पृथ्वी

इत्थैव पृथिवीशानां पृथ्वी पुत्रादिकं वसु।
भार्य्या चार्य्यनिमित्तानि ततो यातानि गौरवम् १५
तत् त्वर्य्यतां रणायाशु स्यन्दनान्यधिरोहत।
सज्जीकुरुत नागाश्वमचिरेण ससारथिम् ॥१६॥
सन्यध्वं किं महीपालैर्बहुभिः सह विग्रहम्।
प्रभूता एव तोषाय शूरस्याल्परणे क्रियाः ॥१७॥
कस्य नाल्पेषु सामर्थ्यं नरेन्द्रादिष जायते।
येभ्यो न विद्यते भीतिः कातरस्यापि शत्रुषु ॥१८॥
व्याप्तलोकान् समस्तान् यो ह्यभिभूय यतो नरः।
व्यरोचतेति शूरः स तमांसीव दिवाकरः ॥१९॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थमुद्धर्षितो राजाऽनया पत्न्या करन्धमः।
चकार स बलोद्योगं हन्तुं पुत्राहितान् मुने ॥२०॥
ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः।
बभूव बद्धपुत्रस्य तैरशेषैर्महामुने ॥२१॥
दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञा समं तदा।
करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्व्वताम् ॥२२॥
यदा पराजयमायं तं सर्व्वं भूपमण्डलम्।
तदा विशालोऽर्घ्यकरः करन्धममुपास्थितः ॥२३॥
करन्धमोऽपि सम्प्रीत्या तेन राज्ञाभिपूजितः।
विमुक्ते तनये तत्र निशां तां सुखमावसत् ॥२४॥
ताञ्च कन्यामुपादाय विशाले समुपस्थिते।
अवीक्षित् प्राह विप्रर्षे विवाहार्थं पितुः पुरः ॥२५॥
नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप।
परैर्यस्या निरीक्षन्त्याः संग्रामेऽहं पराजितः ॥२६॥
अन्यस्मै सम्प्रयच्छेमामियञ्चान्यं वृणोतु तम्।
अखण्डितयशो वीर्य्यो यः परैर्नापमानितः ॥२७॥
परैः पराजितोऽहं यत् कातरेयं यथाऽबला।
किमत्र मानुषत्वं मे न तस्या मम चान्तरम् ॥२८॥
स्वतन्त्रता मनुष्याणां परतन्त्रा सदाबला।
नरोऽपि परतन्त्रो यस्तस्य कीदृङ्मनुष्यता ॥२९॥

पुत्र, धन स्त्री आदि मिलती हैं, और इन वस्तुओं को प्राप्त करने से ही उनका गौरव बढ़ता है॥ १५॥ इसलिए रण के निमित्त शीघ्रता से रथों पर सवार होइये तथा घोड़ों और हाथियों को उनके वाहकों सहित तयार होने की आज्ञा दीजिये॥ १६॥ क्या आप नहीं मानते कि युद्ध बहुत-से राजाओं के साथ होना और उस युद्ध में बहुत-से राजाओं को अपनी वीरता से संतुष्ट करना पड़ेगा ॥१७॥ थोड़े से युद्ध में कौन से राजा ऐसे हैं जो अपना जौहर नहीं दिखलाते? वीर वे ही हैं जो शत्रुओं से नहीं डरते हैं॥ १८॥ शूरवीर लोग सबको अपने वश में करके अपना प्रकाश उसी प्रकार सब लोकों में फैलाते हैं जिस प्रकार कि सूर्य अन्धकार को हटा कर प्रकाश फैलाते हैं॥ १९॥

मार्कण्डेयजी बोलेः—

हे मुनि! जब रानी वीरा ने महाराज करन्धम को इस प्रकार समझाया तब उन्होंने अपने पुत्रके शत्रुओं को मारने के लिये सेना तयार की॥ २०॥ हे महामुनि क्रौष्टुकिजी! तब उनमें और अवीक्षित को बन्दी करने वाले विशाल के साथी राजाओं में घोर युद्ध होने लगा ॥२१॥ राजा विशालके समर्थक राजाओं के साथ महाराज करन्धम का तीन दिन तक युद्ध होता रहा ॥२२॥ जब वे सब राजा लोग करीब करीब परास्त होचुके तब राजा विशाल अर्घ्य लेकर महाराज करन्धम के सम्मुख उपस्थित हुए ॥२३॥ राजा विशाल से पूजित होकर महाराज करन्धम बड़े प्रसन्न हुए और पुत्र के छूट जाने पर उन्होंने वह रात्रि वहाँ ही सुख से बिताई ॥२४॥ हे विप्रर्षि! विवाह के लिये उस कन्या को लेकर राजा विशाल के उपस्थित होने पर अवीक्षित ने अपने पिता के सन्मुख विशाल से कहा॥ २५॥ हे राजन्! मैं अब इसको अथवा किसी दूसरी स्त्री को भी ग्रहण न करूँगा क्योंकि मैं इसके सामने युद्ध में परास्त हुआ हूँ ॥२६॥ इस कन्या का किसी दूसरे ऐसे पुरुष के साथ विवाह कर दीजिये जिसका यश और पराक्रम अखण्डित हो और जो किसी के द्वारा अपमानित न किया गया हो ॥२७॥ मैं दूसरों से पराजित किया हुआ हूँ इसलिये यह अबला दुःखित होगी। मुझमें मनुष्यत्व ही क्या है? मुझ में और इसमें बड़ा अन्तर है ॥२८॥ पुरुष स्वतन्त्र होते हैं तथा स्त्रियाँ अबला होनेके कारण परतन्त्र होती हैं। परन्तु जहाँ पुरुष भी परतन्त्र हो वहाँ मनुष्यता ही क्या रह गई? ॥ २९॥ जो कि

सोऽहमस्या मुखं भूयो द्रष्टुं दर्शयिता कथम् ।
योऽहमस्याः पुरो भूमौ परैर्भूपैः खिलीकृतः ॥३०॥

इस के सामने ही मुझे राजाओं ने परास्त करके पृथ्वी पर गिरा दिया इसलिये मैं किस प्रकार इसका मुख देखूं और अपना इसे दिखाऊँ ॥ ३० ॥

इत्युक्ते तेन तनयामुवाच जगतीपतिः ।
श्रुतं ते वचनं वत्से वदतोऽस्य महात्मनः ॥३१॥

अवीक्षित के ऐसा कहनेपर राजा विशालने अपनी कन्या से कहा, "हे वत्से ! जो कुछ महात्मा अवीक्षित ने कहा वह तुमने सुना या नहीं ?" ॥३१॥

वरयान्यं पतिं तत्र मनस्ते रमते शुभे ।
वयं वासं प्रयच्छामो यस्मिंस्तस्मिंस्त्वादृताः ।
एतयोर्द्वैकमातिष्ठ मार्गयो रुचिरानने ॥३२॥

हे शुभे ! अब तुम किसी दूसरे पुरुष को जिसको कि तुम चाहो वरलो अन्यथा जिसको हम कहें उसको अपना पति चुनो । हे सुन्दर मुखवाली ! इन दोनों मार्गों में से एक मार्ग का अवलम्बन करो ॥३२॥

कन्योवाच

पराजितोऽयं बहुभिर्न सम्यक् सम्यगाचरन् ।
संग्रामे यद्वयशोवीर्य्य-हानिकारिणि पार्थिव ॥३३॥
एको बहूनां युद्धाय गतानामिव केशरी ।
यत् संस्थितः परं शौर्य्यं तेनास्य प्रकटीकृतम् ॥३४॥
न केवलमयं तस्थौ युद्धे तेऽप्यखिला जिताः ।
बहुशोऽनेन यत् तेन विक्रमोऽपि प्रकाशितः ॥३५॥
शौर्य्यविक्रमसंयुक्तमिमं सर्व्वमहीक्षितः ।
धर्म्मयुद्धमधर्म्मेण जितवन्तोऽत्र का त्रपा ॥३६॥
न चापि रूपमात्रेऽहं लोभमस्य गता पितः ।
शौर्य्य-विक्रम-धैर्य्याणि हरन्त्यस्य मनो मम ॥३७॥
तत् किमुक्तेन बहुना यांच्यतां मत्कृते नृपः ।
त्वया महानुभावोऽयं नान्यो मे भविता पतिः ३८॥

कन्या बोलीः—

हे पिता ! यह बहुत से राजाओं द्वारा अकेले परास्त हुए हैं, इस कारण युद्ध में इनके यश और पराक्रम की हानि नहीं समझी जायगी ॥३३॥ यह अकेले ही युद्ध में उन सब के सामने सिंहकी तरह डटे रहे इससे ही इनकी वीरता प्रगट होगई ॥३४॥ उन राजाओं ने ही केवल इनको नहीं जीताहै वरन् इन्होंने भी कई बार उनको जीता है इसलिये इनका पराक्रम तो स्पष्ट ही है ॥ ३५ ॥ शौर्य और पराक्रम से युक्त इनको यदि सब राजाओं ने धर्मयुद्ध में अधर्म से जीत भी लिया तो इसमें इनके लिये कौन-सी लज्जा की बातहै ॥३६॥ हे पिता ! मैं इनके रूप से ही इन पर आसक्त नहीं हूँ । इनके शौर्य, पराक्रम और धैर्य ने मेरे मन को हरण कर लिया है ॥ ३७ ॥ हे पिता ! बहुत कहने से क्या है, तुमतो इनसे मेरे लिये प्रार्थना करो । इनके सिवाय कोई दूसरा मेरा पति नहीं होसकता है ॥ ३८ ॥

विशाल उवाच

राजपुत्र सुता प्राह ममैतच्छोभनं वचः ।
एवञ्चैव त्वया तुल्यः कुमारो न महीतले ॥३९॥
अविसंवादि ते शौर्य्यमनीव च पराक्रमः ।
पावयास्मत्कुलं वीर दुहितुर्मे परिग्रहात् ॥४०॥

विशाल बोलेः—

हे राजकुमार ! मेरी पुत्री ने कितने सुन्दर वचन कहे हैं । आपके समान पराक्रमी राजकुमार दूसरा इस पृथ्वी पर नहीं है ॥ ३९ ॥ आपका शौर्य और पराक्रम अकथनीय है । हे वीर ! मेरी कन्या का पाणिग्रहण करके हमारे कुलको पवित्र करो॥४०

राजपुत्र उवाच

नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप ।
आत्मन्येव हि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर ॥४१॥

राजपुत्र बोलेः—

हे राजन् ! न तो मैं इसको ग्रहण करूँगा और न किसी अन्य पत्नी को । कारण कि इस . . स्वयं मैं स्त्रीवत् होरहा हूँ ॥४१॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमः प्राह पुत्रेयं गृह्यतां त्वया ।
विशालतनया सुभ्रूस्त्वयि हार्द्दवती दृढम् ॥४२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब महाराज करन्धम बोले, हे पुत्र ! विशाल की पुत्री इस सुन्दरी कन्याको ग्रहण करो, क्योंकि यह तुम्हारी प्रीति में दृढ़ है ॥४२॥

राजपुत्र उवाच

नाज्ञाभङ्गः कदाचित् ते कृतपूर्व्वो मया प्रभो ।

राजकुमार बोलेः—

हे प्रभो ! मैंने पहिले कभी आपकी आज्ञा

तथाज्ञापय मां तात यथाज्ञां करवाणि ते ॥४३॥

मार्कण्डेय उवाच

अत्यन्तनिश्चितमतौ तस्मिन् राजसुते सुताम् ।
तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ॥४४॥
निवर्त्त्यतां मनः पुत्रि एतस्माच्च प्रयोजनात् ।
अन्यं वरय भर्त्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ॥४५॥

कन्योवाच

वरं वृणोम्यहं तात मामेष यदि नेच्छति ।
तपसोऽन्यो न मे भर्त्ता जन्मन्यस्मिन् भविष्यति॥४६॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमो राजा विशालेन समं मुदा ।
स्थित्वा दिनत्रयं तत्र निजमभ्याययौ पुरम् ॥४७॥
अवीक्षितोऽपि तेनैव पित्राऽन्यैश्च नराधिपैः ।
निदर्शनैः पुरावृत्तैः सान्त्वितोऽभ्यागमत् पुरम्॥४८॥
तापि कन्या वनं गत्वा निरस्ता निजबान्धवैः ।
तपस्तेपे निराहारा वैराग्यं परमास्थिता ॥४९॥
निराहारा यदा सा तु मासत्रयमवस्थिता ।
तम्पाप परमामार्त्तिं कृशा धमनिसन्तता ॥५०॥
मन्दोत्साहातितन्वङ्गी मुमूर्षुरपि बालिका ।
देहत्यागाय सा चक्रे तदा बुद्धिं नृपात्मजा ॥५१॥
आत्मत्यागाय तां ज्ञात्वा कृतबुद्धिं सुरास्ततः ।
समेत्य प्रेषयामासुर्देवदूतं तदन्तिकम् ॥५२॥
तमुपेत्य स तां प्राह दूतोऽहं पार्थिवात्मजे ।
प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत् कार्य्यं तन्निशामय ॥५३॥
न भवत्या परित्याज्यं शरीरमतिदुर्लभम् ।
त्वं भविष्यसि कल्याणि जननी चक्रवर्त्तिनः ॥५४॥
पुत्रेण च महाभागे भोक्तव्या निहतारिणा ।
अव्याहताज्ञेन चिरं सप्तद्वीपवती मही ॥५५॥
हन्तव्यस्तेन तरुजिद्देवानां पुरतो रिपुः ।
अयःशंकुस्तथा क्रूरो धर्म्मे स्थाप्यास्ततः प्रजाः॥५६॥
परिपालनीयमखिलं चातुर्व्वर्ण्यं स्वधर्म्मतः ।
हन्तव्या दस्यवो म्लेच्छा ये चान्ये दुष्टचेष्टिताः॥५७॥
कर्व्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।

उल्लंघन नहीं किया है। अतः आप मुझे ऐसी आज्ञा दें जिसको कि मैं भङ्ग न कर सकूं ॥४३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

राजकुमार अवीक्षित का अत्यन्त निश्चित मत जानकर राजा विशाल ने व्याकुल होकर अपनी पुत्री से कहा ॥४४॥ हे पुत्री! अब तू अपना मन इनकी ओर से हटाले। किसी दूसरे पुरुष को अपना पति चुन ले, संसार में बहुत-से राजकुमार हैं ॥४५॥

कन्या बोली—

हे पिता! मैं इन्हीं को अपना पति बनाऊँगी, यदि वे मुझको न चाहेंगे तो मैं तप करूँगी। इस जन्म में कोई दूसरा पुरुष मेरा पति नहीं होगा॥४६॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर महाराज करन्धम प्रसन्नता पूर्वक राजा विशाल के यहाँ तीन दिन ठहर कर अपने नगरको गये ॥ ४७ ॥ जब अवीक्षित को उनके पिता तथा अन्य राजाओं ने बहुत ऊँच नीच समझाया तो वे भी उनके साथ अपने नगर को गये ॥ ४८ ॥ वह कन्या भी अपने बन्धु बांधवों को छोड़ कर वनको गई और वहाँ वैराग्य में स्थित होकर निराहार रहकर तप करने लगी ॥४९॥ वह तीन महीने तक निराहार रही और इससे वह अत्यन्त कृश होगई, तथा उसने बहुत कष्ट उठाया ॥ ५० ॥ वह बालिका उत्साहरहित होकर मृतप्राय होगई। फिर उस राजकुमारी ने देह त्यागने का विचार किया॥ ५१ ॥ जब देवताओं ने यह जाना कि वह आत्मघात करने पर उद्यत है तो उन्होंने इकट्ठे होकर एक देवदूत को उसके पास भेजा ॥५२॥ वह दूत उसके पास आकर बोला, "हे राजकुमारी! मुझे तुम्हारे पास देवताओं ने भेजा है, अब जो कार्य है वह सुनो ॥" आप इस दुर्लभ शरीर को न छोड़ें। हे कल्याणि! तुम चक्रवर्ती महाराज की माता होओगी ॥५४॥ हे महाभागे! आपका पुत्र अपने शत्रुओं को मार कर सातद्वीपों से युक्त पृथ्वी का अखण्ड राज्य करेगा॥ वह पुत्र देवताओं के सामने शत्रु तरुजित् तथा दुष्ट अयःशंकु को मार कर प्रजाओं को धर्म में स्थित करेगा ॥५६॥ वह चारों वर्णोंको अपने २ धर्म में स्थित कर उनका पालनकरेगा तथा चोर, म्लेच्छ और दुष्टों का वध करेगा ॥५७॥ हे भद्रे! वह अनेकों यज्ञ करेगा तथा उन यज्ञों को उत्तम दक्षिणाएँ

वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रैश्च संख्यया । ५८॥

तथा दान देकर समाप्त करेगा। वह अश्वमेधादि छः हज़ार यज्ञ करेगा ॥५८॥

मार्कण्डेय उवाच

तं दृष्ट्वा सान्तरीक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम् ।
देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततो मृदुः ॥५९॥
सत्यं त्वमागतः स्वर्गाद्देवदूतो न संशयः ।
किन्तु भर्त्रा विना पुत्रः स कथं मे भविष्यति ॥६०॥
अवीक्षितमृते भर्त्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि ।
भवितेति प्रतिज्ञातं मयैतत् सन्निधौ पितुः ॥६१॥
स च नेच्छति मां प्रोक्तो मत्पित्रा जनकेन च ।
करन्धमेनाथ सम्यग्याचितश्च मया तथा ॥६२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

आकाश में स्थित तथा दिव्यमाला पहिने और चन्दन लगाये उस देवदूत को देखकर राजकन्या कोमल वाणी से यह वचन बोली ॥५९॥ हे देवदूत ! तुम स्वर्ग से आये हो, यह निस्संदेह सत्य है परन्तु पति के विना मेरे पुत्र किस प्रकार होगा॥६०॥ मैंने अपने पिता के सामने प्रतिज्ञा की है कि अवीक्षित को छोड़कर इस जन्म में मेरा कोई दूसरा पति न होगा ॥ ६१ ॥ यद्यपि मेरे पिता विशाल तथा उसके पिता राजा करन्धम ने उससे कहा है तथा मैंने प्रार्थना की है तो भी वह मुझे नहीं चाहता है ॥६२॥

देवदूत उवाच

किमनेन महाभागे बहुनोक्तेन ते सुतः ।
समुत्पत्स्यति मा त्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्म्मतः॥६३॥
अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणाञ्च पोषय ।
तपःप्रभावादेतत् ते सर्व्वं साधु भविष्यति ॥६४॥

देवदूत बोला—

हे महाभागे ! बहुत कहने से क्या ? तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा, तुम अधर्म से अपने शरीर को न त्यागो ॥ ६३ ॥ तुम इसी वन में रहो और अपने कृश शरीर को पोषण करके स्वस्थ करो। तपस्या के प्रभाव से तुम्हारा कल्याण होगा ॥६४॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा देवदूतोऽसौ यथागतमगच्छत ।
चकारानुदिनं सुभ्रूः साप्यात्मतनुपोषणम् ॥६५॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह कहकर वह देवदूत जहाँ से आया था वहाँ चला गया और वह राजकुमारी भी दिन प्रति दिन अपने शरीर का पोषण करने लगी ॥६५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अवीक्षित चरित्र(३) नाम १२४वां अ० स० ।



एकसौपचीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

अथ साऽवीक्षितो माता वीरा वीरप्रजावती ।
पुण्येऽह्नि समाहूय प्राह पुत्रमवीक्षितम् ॥ १ ॥
पुत्राहमभ्यनुज्ञाता तव पित्रा महात्मना ।
उपवासं करिष्यामि दुष्करोऽयं किमिच्छकः ॥ २ ॥
स चायत्तस्तव पितुस्त्वया साध्यो मयापि च ।
प्रतिज्ञाते त्वया पुत्र ततस्तत्र यताम्यहम् ॥ ३ ॥
द्रव्यस्यार्द्धं महाकोषात् तव दास्याम्यहं पितुः ।
धनं ते पितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मि तेन च ॥ ४ ॥
क्लेशसाध्यो मदायत्तः स हि श्रेयो भविष्यति ।

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके बाद वीर जननी वीरा ने एक शुभ दिन अपने पुत्र अवीक्षित को बुलाकर कहा ॥१॥ हे पुत्र ! तुम्हारे महात्मा पिता की आज्ञा से मैं एक दुष्कर उपवास करूँगी जिसका नाम किमिच्छक है ॥२॥ यह व्रत तुम्हारे पिता का बताया हुआ है, इसलिये यह मुझे और तुम्हें दोनों को साधना चाहिये। परन्तु तुमने पिता के आगे प्रतिज्ञा की है, इसलिये मैं यत्न करती हूँ ॥ ३ ॥ मैं तुम्हारे पिता के खज़ाने का आधा धन तुमको दूँगी और ऐसा करने के लिये तुम्हारे पिता ने मुझे आज्ञा दे दी है ॥४॥ यह व्रत कष्ट साध्य होगा परन्तु यह अत्यन्त श्रेष्ठ व्रत है। यदि तुम अपना बल, पराक्रम प्रदर्शित करोगे

साध्यो भवेद्वा यदि ते कश्चिद्बलपराक्रमे ॥ ५ ॥
स तेऽसाध्यो ह्यन्यथा वा दुःखसाध्यो भविष्यति ।
तत् त्वं प्रतिज्ञां कुरुषे यदि पुत्रात्र चैव ते ।
तदेतदहमावाप्स्ये कथ्यतां यन्मतं तव ॥ ६ ॥

अवीक्षित उवाच

वित्तं मे पितुरायत्तं मत्स्वामित्वं न तत्र वै ।
यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत् करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७ ॥
किमिच्छकं व्रतं मातर्निश्चिन्ता भव निर्व्यथा ।
राज्ञा पित्राऽभ्यनुज्ञातं यदि वित्तेश्वरेण मे ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सा राजमहिषी तद्व्रतं समुपोषिता ।
यथोक्तां साकरोत् पूजां राजराजस्य संयता ॥ ९ ॥
निधीनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च ।
लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्कायमानसा ॥ १० ॥
विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजा करन्धमः ।
आसीन उक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥

सचिवा ऊचुः

राजन् वयः परिणतं तवैतच्छासतो महीम् ।
एकस्ते तनयोऽवीक्षित् त्यक्तदारपरिग्रहः ॥ १२ ॥
अपुत्रः स च ते निष्ठां यदा भूप गमिष्यति ।
तदारिपक्षं पृथिवी निश्चितं तव यास्यति ॥ १३ ॥
वंशक्षयस्ते भविता पितृपिण्डोदकक्षयः ।
एतन्महत् तेऽरिभयं क्रियाहान्या भविष्यति ॥ १४ ॥
तस्मात् कुरु तथा भूप यथा ते तनयः पुनः ।
करोति सततं बुद्धिं पितृणामुपकारिणीम् ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शब्दं शुश्राव जगतीपतिः ।
पुरोहितस्य वीराया गदतो ह्यर्थिनं प्रति ॥ १६ ॥
कः किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य किं साध्यतामिति ।
करन्धमस्य महिषी किमिच्छकमुपोषिता ॥ १७ ॥
राजपुत्रोऽप्यवीक्षित् तु श्रुत्वा पौरोहितं वचः ।
प्रत्युवाचार्थिनः सर्व्वान् राजद्वारमुपागतान् ॥ १८ ॥
मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः ।
माता महाभागा किमिच्छकमुपोषिता ॥ १९ ॥

तो यह व्रत सफल हो जावेगा ॥ ५ ॥ यह व्रत साध्य हो अथवा असाध्य? हे पुत्र! यदि तुम प्रतिज्ञा करो तो मैं व्रत आरम्भ करूँ अथवा जो तुम्हारा मत हो वह कहो ॥ ६ ॥

अवीक्षित ने कहाः—

धन तो मेरे पिताका है, उस पर मेरा स्वामित्व नहीं है, जो मेरे शरीर के योग्य हो उसे कहिये मैं करूँगा ॥ ७ ॥ हे माता! आप निश्चिन्त होकर पिता जी द्वारा आज्ञा किये गये किमिच्छक व्रत को करिये ॥ ८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर उस रानी ने राजा की आज्ञानुसार व्रत करना आरम्भ किया और उसने राजा का ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण निधियोंका तथा निधियोंके पालक गणपति का और लक्ष्मीजी का मन, वचन और कर्मसे भक्ति पूर्वक पूजन किया ॥ १० ॥ जब महाराज करन्धम घर में बैठे हुए थे उस समय नीति और शास्त्र के जानने वाले मन्त्रियों ने कहा ॥ ११ ॥

मन्त्री बोलेः—

हे राजन्! इस पृथ्वी पर शासन करते हुए आपकी अवस्था बीत चुकी है। अवीक्षित ही आपके एक पुत्र हैं और उन्होंने स्त्री ग्रहण करना छोड़ दिया है ॥ १२ ॥ निस्संतान होते हुए जब वे राज्य सिंहासन पर बैठेंगे तो निश्चय ही शत्रु लोग आपके राज्य को उनसे छीन लेंगे ॥ १३ ॥ पितरों को पिण्ड और जल देने वाला न रहने से आप का वंश क्षीण होजायगा। इससे आपको शत्रु-भय है तथा क्रियाओं की हानि भी ॥ १४ ॥ हे राजन्! इस लिये ऐसा यत्न कीजिये जिससे आपके पुत्र की ऐसी बुद्धि हो जिससे पितरों का हित हो ॥ १५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसी अवसर पर महाराज ने अपनी स्त्री वीरा के पुरोहित की आवाज़ सुनी जो कि याचकों से यह कह रहे थे ॥ १६ ॥ बोलो, कौन क्या चाहता है? दुःसाध्य हो अथवा साध्य, सब मिलेगा महाराज करन्धम की रानी वीरा किमिच्छक व्रत कर रही हैं ॥ १७ ॥ पुरोहितके वचन सुनकर राजकुमार अवीक्षितने भी राजद्वार पर आये हुए सब याचकों से कहा ॥ १८ ॥ मेरी सौभाग्यवती माता किमिच्छक व्रत कर रही हैं, जो मेरे शरीर से सम्भव हो वह माँगो मैं दूँगा ॥ १९ ॥

शृण्वन्तु मेऽर्थिनः सर्व्वे प्रतिज्ञातं मया तदा।
किमिच्छथ ददाम्येष क्रियमाणे किमिच्छके ॥२०॥

हे याचको! सुनो! मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि किमिच्छक व्रत के अवसर पर जो कोई जो कुछ इच्छा करेगा वह मैं पूरी करूँगा ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो राजा निशम्यैतद्वाक्यं पुत्रमुखाच्च्युतम्।
समुत्पत्याब्रवीत् पुत्रमहमर्थी प्रयच्छ मे ॥२१॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस समय पुत्र के मुख से यह वचन सुनकर राजा करन्धम पुत्र के पास गये और बोले, "हे पुत्र! मैं याचक हूँ, मुझे दो" ॥ २१ ॥

अवीक्षिदुवाच

दातव्यं यन्मया तात भवते तद्ब्रवीहि माम्।
कर्त्तव्यं दुष्करं वाऽतिसाध्यं दुःसाध्यमेव वा॥२२॥

अवीक्षित बोलेः—

हे तात! मुझे आपको जो कुछ देना चाहिये वह आप मुझे बतावें, वह चाहे साध्य हो अथवा दुःसाध्य और कितना ही कठिन क्यों न हो ॥ २२ ॥

राजोवाच

यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम्।
पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गगतस्य तत् ॥२३॥

राजा बोलेः—

यदि तुम सत्य-प्रतिज्ञ हो और जो कोई जो कुछ याचना करता है उसे वही देते हो तो मुझे मेरी गोद में पौत्र का मुख दिखलाओ ॥ २३ ॥

अवीक्षिदुवाच

अहं तवैकस्तनयो ब्रह्मचर्य्यञ्च मे नृप।
न मे पुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथं मुखम्॥२४॥

अवीक्षित बोलेः—

हे राजन्! मैं आपका एक ही पुत्र हूँ और मेरा ब्रह्मचर्य जीवन है। मेरे कोई पुत्र नहीं है अतः मैं आपको नाती का मुख किस प्रकार दिखलाऊँ?॥

राजोवाच

पापाय ब्रह्मचर्य्यं ते यदिदं धार्य्यते त्वया।
तस्मात् त्वं मोचयात्मानं मम पौत्रञ्च दर्शय॥२५॥

राजा बोले—

तुमको ब्रह्मचर्य-धारण से पाप होगा अतः तुम आत्मा का उद्धार करके मुझे नाती का मुख दिखलाओ ॥२५॥

अवीक्षिदुवाच

विषमं स्यान्महाराज यदन्यत् तत् समादिश।
वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसम्भोगस्तथास्तु सः॥२६

अवीक्षित बोलेः—

हे महाराज! यह कठिन है, और जो कुछ आज्ञा हो वह मैं करूँ। मैंने वैराग्य से स्त्री संभोग छोड़ दिया है ॥ २६ ॥

राजोवाच

बहुभिर्युध्यमानानां दृष्टो वै वैरिणां जयः।
तत्रापि यदि वैराग्यमुपैषि तदपण्डितः ॥२७॥
किं वा नो बहुनोक्तेन ब्रह्मचर्य्यं परित्यज।
मातुस्त्वमिच्छया वक्त्रं पौत्रस्य मम दर्शय ॥२८॥

राजा बोलेः—

बहुत से राजाओं ने मिलकर तुमको युद्ध में जीता है इसलिये तुमको वैराग्य न होना चाहिये। यदि इससे तुम्हें वैराग्य होता है तो यह तुम्हारी मूर्खता है ॥ २७ ॥ बहुत कहने से क्या है? तुम ब्रह्मचर्य को छोड़ कर अपनी माताकी इच्छानुसार मुझे नाती का मुख दिखलाओ ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

यदा स बहुभिस्तेन प्रोक्तः पुत्रेण पार्थिवः।
नान्यत् प्रार्थयते किञ्चित् तदा पुत्रोऽब्रवीत् पुनः २९
दत्त्वा किमिच्छकं तुभ्यं प्राप्तोऽहं तात सङ्कटम्।
तत् करिष्यामि निर्लज्जो भूयो दारपरिग्रहम्॥३०॥
स्त्रियः समक्षं विजितः पातितो धरणीतले।
स्त्री पतिर्भविता भूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥३१॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यद्यपि अवीक्षित ने राजा को बहुत समझाया परन्तु उन्होंने नाती को छोड़कर और किसी वस्तु की इच्छा न की, इस पर अवीक्षित बोले ॥२९॥ हे तात! आपसे प्रतिज्ञा करके मैं सङ्कट में पड़ गया हूं। अतः अब लज्जा छोड़कर स्त्री ग्रहण करूँगा ॥ हे तात! जिस स्त्री के सन्मुख मैं परास्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा अब उस स्त्री का पति होना मुझे बड़ा दुष्कर मालुम होता है ॥ ३१ ॥ परन्तु मैं

तथापि किं करोम्येष सत्यपाशवशं गतः ।
करिष्यामि यथात्थ त्वं भुज्यतां निजशासनम् ॥३२॥

क्या करूँ ? सत्य के पाश में बँधा हूँ, जो आपने आज्ञा दी है वही करूँगा। आप अपना राज्य कीजिये ॥ ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अवीक्षित चरित्र (४) नाम १२५वाँ अ० स० ।



एकसौछब्बीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद्वने ।
मृगान् विध्यन् वराहांश्च शार्दूलादींश्च दंष्ट्रिणः॥१॥
शुश्राव सहसा शब्दं त्राहि त्राहीति योषितः ।
विक्रोशन्त्याः सुबहुशो भयगद्गदमुच्चकैः ॥ २ ॥
मा भैर्मा भैरिति वदन् राजपुत्रः स वेगितः ।
चोदयामास तुरगं यतः शब्दः समागतः ॥ ३ ॥
ततश्च सापि चुक्रोश कन्यका विजने वने ।
गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥ ४ ॥
करन्धमसुतस्याहं भार्य्या चाहमवीक्षितः ।
हरत्यनार्य्यो विपिने पृथिवीशस्य धीमतः ॥ ५ ॥
यस्य सर्व्वे महीपालास्तथा गन्धर्व्व-गुह्यकाः ।
न समर्थाः पुरः स्थातुं तस्य भार्य्या हृतास्म्यहम् ॥६॥
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ।
करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्य्या हृतास्म्यहम् ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

एक वार मृगया के लिये गये हुए राजकुमार अवीक्षित वन में विचर रहे थे और हरिण, शूकर, सिंह, चीते आदि का शिकार कर रहे थे ॥१॥ वहाँ पर उन्होंने बड़े ऊँचे स्वर से एक स्त्री के रोने की आवाज़ सुनी। मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, ऐसी आवाज़ आरही थी ॥ २ ॥ मत डरो ! मत डरो ! यह कहते हुए राजकुमार ने उधर ही घोड़े को शीघ्रता से बढ़ाया जिधर से आवाज़ आरही थी ॥ फिर उस निर्जन वनमें दनुके पुत्र दृढ़केशसे पकड़ी हुई वह कन्या रोती हुई इस प्रकार कह रही थी ॥ मैं महाराज करन्धम के पुत्र अवीक्षित की स्त्री हूँ। मुझको यह दुष्ट हरण कर लिये जाता है ॥ ५ ॥ जिस अवीक्षित के सामने कोई राजा, गन्धर्व, गुह्यक खड़े होने को समर्थ नहीं हैं उसकी स्त्री मैं इस प्रकार हरण की जा रही हूँ ॥६॥ जिसका क्रोध मृत्यु के समान और पराक्रम इन्द्र के समानहै उस महाराज करन्धम के पुत्र की पत्नी मैं इस प्रकार हरण की जारही हूँ ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य महीपाल-तनयः स शरासनी ।
चिन्तयामास किमिदं मम भार्य्यात्र कानने ॥ ८ ॥
मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम् ।
अथवागत एवाहं सर्व्वं वेत्स्यामि कारणम् ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार यह सुनकर धनुषधारी अवीक्षित यह सोचने लगे कि इस वन में मेरी स्त्री कहाँ से आई ॥ ८ ॥ ऐसा प्रतीत होता है कि यह वन में रहने वाले दुष्ट राक्षसों की माया है परन्तु जब कि मैं यहाँ पर आही गया हूँ, मैं इसका कारण जान लूंगा ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वरितः स ततो गत्वा ददर्शातिमनोरमाम् ।
कानने कन्यकामेकां सर्व्वालङ्कारभूषिताम् ॥१०॥
गृहीतां दनुपुत्रेण दृढकेशेन दण्डिना ।
त्राहि त्राहीतिकरुणं विक्रोशन्तीं पुनः पुनः ॥११॥
मा भैरिति स तामाह हतोऽसीति च तं वदन् ।

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर शीघ्र ही उन्होंने उस वनमें पहुंच कर सब आभूषणों से युक्त एक अत्यन्त मनोहर कन्या को देखा ॥१०॥ उसको दनुके पुत्र दृढ़केश ने पकड़ रक्खा था और वह रोती हुई "बचाओ, बचाओ" ऐसा वार वार कह रही थी ॥ ११ ॥ उन्होंने उस कन्या से न डरने के लिये कह कर उस राक्षस से

शासतीमां महीं दुष्टः को भूपेऽत्र करन्धमे ।
यस्य प्रतापावनता भुवि सर्व्वे महीक्षितः ॥१२॥
ततस्तमागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्म्मुकम् ।
मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी हृतास्म्येनेति चासकृत् १३॥
राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्य्याप्यवीक्षितः ।
हृतास्म्येतेन दुष्टेन सनाथाऽनाथवद्वने ॥१४॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो विममृषे वाक्यमवीक्षित् स तयोदितम् ।
कथमेषा हि मे भार्य्या स्नुषा तातस्य वा कथम् १५॥
अथ वा मोचयाम्येतां तन्वीं वेत्स्यामि तत् पुनः ।
क्षत्रियैर्धार्य्यते शस्त्रमार्त्तानां त्राणकारणात् ॥१६॥
ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरो दानवं तं सुदुर्म्मतिम् ।
जीवन् गच्छ विमुच्यैनामन्यथा न भविष्यसि ॥१७॥
ततः स तां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः ।
तमप्यधावत् सोऽप्येनं शरवर्षैरवाकिरत् ॥१८॥
स वार्य्यमाणो बाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः ।
राजपुत्राय चिक्षेप दण्डं शंकुशतावृतम् ॥१९॥
तमापतन्तं चिच्छेद शरैर्भूपसुतस्ततः ।
सोऽप्यासन्नं गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौ व्यवस्थितः ॥२०॥
सृजतः शरवर्षाणि तं चिक्षेप ततो द्रुमम् ।
स च तं तिलशश्चक्रे भल्लैः कार्म्मुकमोचितैः ॥२१॥
ततश्चिक्षेप च शिलां राजपुत्राय दानवः ।
सापि मोघा पपातोर्व्यामुज्झिता तेन लाघवात् ॥२२॥
राजपुत्राय कुपितो यद्यच्चिक्षेप दानवः ।
तत् तच्चिच्छेद बाणौघैर्भूभृत्सुतः स लीलया ॥२३॥
ततो विच्छिन्नदण्डोऽसौ विच्छिन्नसकलायुधः ।
मुष्टिमुद्यम्य सक्रोधो राजपुत्रमधावत ॥२४॥
तस्यापतत एवासौ करन्धमसुतः शिरः ।
छित्त्वा वैतसपत्रेण पातयामास वै भुवि ॥२५॥
तस्मिन् विनिहते देवैर्दानवे दुष्टचेष्टिते ।
करन्धमसुतः सर्व्वैः साधु साध्विति भाषितः ॥२६॥

कहा, "तुम मारे जाओगे, जिन महाराज करन्धम के प्रताप से सब राजा लोग नम्र होकर रहते हैं उनके राज्य में कोई दुष्ट नहीं रह सकता" ॥ १२ ॥ फिर धनुष लेकर उनको आते हुए देखकर उस सुन्दरी ने कहा कि मुझे बचाइये, यह दुष्ट मुझे हरण कर लिये जाता है ॥१३॥ मैं महाराज करन्धम की पुत्रवधू और अवीक्षित की स्त्री हूँ और इस वन में अनाथ की तरह इस दुष्ट द्वारा हरण की जा रही हूँ ॥१४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उस कन्या के ये वाक्य सुनकर राजकुमार अवीक्षित यह सोचने लगे कि यह महाराज की पतोहू और मेरी स्त्री किस प्रकार हुई ॥१५॥ फिर सोचा कि पहिले इसे छुड़ालूं और पीछे यह सब मालूम करूँगा। क्षत्रिय लोग पीड़ितों की रक्षा के निमित्त ही शस्त्र धारण करते हैं ॥ १६ ॥ वे क्रुद्ध होकर उस दुर्बुद्धि दानव से बोले, "इसको छोड़ कर अपने घर जाओ, अन्यथा तुम्हारा जीवन न रहेगा।" ॥ १७ ॥ वह दैत्य उस कन्या को छोड़ कर एक ऊँचा दण्ड लेकर अवीक्षित की ओर दौड़ा और अवीक्षित ने भी उसको सैकड़ों तीरों से ढक दिया ॥१८॥ उन बाणों को निवारण करते हुए उस मदोन्मत्त राक्षस ने राजकुमार पर तीरों से ढके हुए उस दण्ड को चला दिया ॥ १९ ॥ उस गिरते हुए दण्ड को राजकुमार ने बाणों से काट डाला और फिर वह दैत्य एक ऊँचे पेड़को उखाड़ कर वहाँ पर स्थित हुआ ॥ २० ॥ वह पेड़ उस दैत्य ने बाणों की वर्षा करते हुए अवीक्षित के ऊपर फेंका। परन्तु अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों द्वारा अवीक्षित ने उस पेड़ को टुकड़े २ कर दिया॥२१॥ फिर दैत्य ने राजकुमार पर एक शिला फेंकी जो कि उस राक्षस की निर्बलता से राजकुमार को न लग कर पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ २२ ॥ क्रुद्ध होकर दानव ने जो जो हथियार राजकुमार पर फेंके उन सबको राजकुमार ने अपने बाणों से कौतूहल में ही काट डाला ॥२३॥ फिर तो सब आयुधों से रहित होकर वह राक्षस मुष्टिका तान कर राजकुमार पर दौड़ा ॥२४॥ राजकुमार अवीक्षित ने उस दैत्य का शिर तलवार से काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २५ ॥ उस दुष्ट दानव के मरने पर सब देवताओं ने राजकुमार अवीक्षित को साधुवाद दिया ॥ २६ ॥ देवताओं ने कहा, "हे राजकुमार!

वरं वृणीष्वेति तदा देवैरुक्तो नृपात्मजः।
वव्रे पुत्रं महावीर्य्यं पितुः प्रियचिकीर्षया ॥२७॥

देवा ऊचुः

भविष्यति हि ते पुत्रश्चक्रवर्त्ती महाबलः।
अस्यामेव हि कन्यायां मोक्षितायां त्वयानघ॥२८॥

राजपुत्र उवाच

पित्राहं सत्यपाशेन बद्ध इच्छाम्यहं सुतम्।
राजभिर्निर्ज्जितेनाजौ त्यक्तो मे दारसंग्रहः ॥२९॥
सा च मे यावता त्यक्ता विशालनृपतेः सुता।
तया च मत्कृते त्यक्तो मामृते नरसङ्गमः ॥३०॥
तत् कथं तामपास्याद्य विशालतनयामहम्।
नृशंसात्मा करिष्यामि अन्यनारीपरिग्रहम् ॥३१॥

देवा ऊचुः

इयमेव हि ते भार्य्या श्लाघ्यते या त्वया सदा।
विशालस्य सुता सुभ्रूस्त्वत्कृते याश्रिता तपः ॥३२॥
तस्यामुत्पत्स्यते वीरः सप्तद्वीपप्रसाधकः।
यष्टा यज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्ती सुतस्तव ॥३३॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्चार्य्य ययुर्देवा करन्धमसुतं द्विज।
सोऽप्याह तां तदा पत्नीं कथ्यतां भीरु किं त्विदम्॥३४॥
सा चास्मै कथयामास त्यक्ताहं भवता यदा।
त्यक्तबन्धुजनारण्यं निर्व्वेदात् समुपागता ॥३५॥
तत्राहं तपसा वीर क्षीणप्रायं कलेवरम्।
त्यक्तुकामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता ॥३६॥
भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्त्ती महाबलः।
प्रीणयिष्यति यो देवानसुरांश्च हनिष्यति ॥३७॥
इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता।
न सन्त्यक्तवती देहं त्वत्सङ्गमनोरथा ॥३८॥
परश्वश्च महाभाग स्नातुं गङ्गाह्रदं गता।
अवतीर्णा विकृष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित् ॥३९॥
ततो रसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरः।
नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥४०॥

वर माँगो।" अवीक्षित ने पिता की इच्छानुसार देवताओं से एक पराक्रमी पुत्र माँगा ॥ २७ ॥

देवता बोले—

हे निष्पाप! इस कन्या से जिसको कि तुमने छुड़ाया है, तुम्हारे एक महाबली पुत्र होगा ॥२८॥

राजकुमार बोले—

पिता के प्रति सत्य के पाश में बँध कर मैं पुत्र की इच्छा करता हूँ। राजाओं द्वारा परास्त होने पर मैंने स्त्री न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा की थी ॥२९॥ मैंने राजा विशाल की कन्या को जो कि मेरी याचना कर रही थी छोड़ दिया, परन्तु उसने मेरे कारण किसी दूसरे पुरुष से विवाह न किया अतः किस प्रकार राजा विशालकी कन्या को छोड़ कर मैं कठोर हृदय होकर दूसरी स्त्री को ग्रहण करूँ? ॥ ३१ ॥

देवता बोले—

यह ही तुम्हारी सुन्दर पत्नी विशालकी कन्या है जिसकी कि तुम सदा प्रशंसा करते रहते हो और जिसने कि तुम्हारे कारण तपस्या की है ॥३२॥ हे वीर! इसी से तुम्हारे एक पुत्र होगा जो सातों द्वीप का चक्रवर्ती राजा होगा तथा वह हज़ारों यज्ञों का करने वाला होगा ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकिजी! देवता लोग अवीक्षित से यह कह कर चले गये। इसके बाद अवीक्षित ने उस स्त्री से कहा, "हे भीरु! तुम अपना वृत्तान्त सुनाओ" ॥३४॥ स्त्री ने अवीक्षित से कहा कि जब आपने मुझे छोड़ दिया तो दुःखी होकर मैंने भाई बन्धुओं को छोड़कर वन की राह ली ॥ ३५ ॥ हे वीर! वहाँ तप से मेरा शरीर क्षीण होगया, और जब मैंने शरीर त्यागने का विचार किया तब एक देवदूत ने आकर मुझे रोका ॥ ३६ ॥ देवदूतने मुझ से कहा कि तुम्हारे एक महाबली चक्रवर्ती पुत्र होगा जो देवताओं को प्रसन्न और असुरों का संहार करेगा ॥ ३७ ॥ देवताओं की आज्ञानुसार उस देवदूत ने मुझे रोका और तुम्हारे मिलने की आशा में मैंने देह का त्याग न किया ॥ ३८ ॥ हे महाभाग! एक बार मैं गङ्गा कुण्ड पर स्नान करने गई और जब मैं जल में उतरी तो एक वृद्ध नाग मुझे जल में खींच कर लेगया ॥ ३९ ॥ फिर वह नाग मुझे रसातल में लेगया, जहाँ कि हजारों नाग, नागपत्नी और नागकुमारथे ॥४०॥ कुछ नागों

तुष्टुवुर्मां समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा ।
ययाचिरे सविनयं नागा मामङ्गनास्तथा ॥४१॥
प्रसादं कुरु सर्व्वेषां त्वमस्माकं सुतस्त्वया ।
अपराधमुपेतानां सन्निवार्य्यो वधोन्मुखः ॥४२॥
अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।
तन्निमित्तं निवार्य्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति॥४३॥
तथेति च मया प्रोक्ते दिव्यैः पातालभूषणैः ।
भूषिताहं तथा पुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ॥४४॥
समानीता तथालोकमिमं तेनानिलाशिना ।
पुरा यथा कान्तिमती पूर्व्ववद्रूपशालिनी ॥४५॥
इति रूपवतीं दृष्ट्वा सर्व्वालङ्कारभूषिताम् ।
जग्राह दृढ़केशोऽयं हर्त्तुकामः सुदुर्म्मतिः ॥४६॥
युष्मद्बाहुबलेनाहं राजपुत्र विमोक्षिता ।
तत् प्रसीद महाबाहो मां प्रतीच्छ त्वया समः ।
भूर्लोके राजपुत्रोऽन्यो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ४७॥

ने मेरी आराधना की और कुछ ने स्तुति । मुझ से उन नाग और नागपत्नियों ने एक नम्रतापूर्वक याचना की ॥४१॥ आपका पुत्र जिसका कि हम अपराध करेंगे जब हमको मारने को उद्यत हो तब आप उसे ऐसा करने से रोकने की कृपा करें ॥४२॥ हम नाग लोग आपके पुत्र का अपराध करेंगे, उस को आप निवारण करदें, आपकी यही कृपा हमको चाहिये ॥४३॥ जब मैंने उनसे ऐसा करनेको स्वीकार करलिया तब उन्होंने मुझे पाताल के दिव्य आभूषणों तथा पुष्प, सुगन्धि और उत्तम वस्त्र आदि से विभूषित किया ॥४४॥ फिर वही वृद्ध नाग मुझे इस लोक में पहुँचा गया और मैं पहिले की तरह कान्तिमान् तथा रूपवती होगई ॥ ४५ ॥ सब आभूषणों से युक्त मुझ रूपवती को देखकर इन दुष्ट दृढ़केश ने हरण करने की इच्छा से मुझे पकड़ लिया ॥४६॥ हे राजकुमार ! मेरा छुटकारा आपके बाहुबल से हुआ है । हे महाबाहु ! इसलिये कृपा कर मुझको ग्रहण कीजिये । मैं सत्य कहती हूँ संसार में आपके तुल्य दूसरा राजकुमार नहीं है ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अवीक्षित चरित्र (५) नाम १२६वाँ अध्याय समाप्त ।



एकसौसत्ताईसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा पितृवचः शुभम् ।
किमिच्छके प्रतिज्ञाते यदुक्तं तेन भूभृता ॥ १ ॥
प्रत्युवाच स तां कन्यामवीक्षिन्नृपतेः सुतः ।
सानुरागमनाः कन्यां त्यक्तभोगाञ्च तत्कृते ॥ २ ॥
यदाहं त्यक्तवांस्तन्वीं त्वामरातिपराजितः ।
विजित्य शत्रून् सम्प्राप्तां त्वं मयात्र करोमि किम्॥३॥

कन्योवाच

मम पाणिं गृहाण त्वं रमणीयेऽत्र कानने ।
सकामायाः सकामेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ ४ ॥

राजपुत्र उवाच

एवं भवतु भद्रं ते विधिरेवात्र कारणम् ।
अन्यथा कथमन्यत्र त्वमहञ्च समागतः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

अवीक्षित ने विशालिनी के वचन सुनकर अपने पिता के वचनों को याद किया जोकि उन्हों ने अवीक्षित से उसके किमिच्छक व्रत के अवसर पर प्रतिज्ञा करने पर कहे थे ॥१॥ फिर राजकुमार अवीक्षित ने उस कन्या से जिसने कि उनके लिये सब भोगों को छोड़ दिया था और जिसका कि अनुराग अवीक्षित में था यह कहा ॥२॥ हे सुंदरी ! जो कि मैंने तुमको शत्रुओं से हार जाने पर छोड़ दिया था, अब शत्रुओं को जीतने के बाद स्वीकार न करूँगा तो क्या करूँगा ? ॥ ३ ॥

कन्या बोली—

इस रमणीय वन में आप मेरा पाणिग्रहण करो सकामा स्त्री से सकाम पुरुष का सङ्गम फलवान् होता है ॥ ४ ॥

राजकुमार बोले—

तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा ही होगा । इसका कारण विधाता ही है, अन्यथा मैं यहाँ पास कैसे आता ? ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो गन्धर्व्वस्तुनयो मुने।
वराप्सरोभिः सहितो गन्धर्व्वैरपरैर्वृतः ॥ ६ ॥

गन्धर्व्व उवाच

राजपुत्र सुतेयं मे भामिनी नाम मानिनी।
अभिशापादगस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ॥ ७ ॥
बालभावेन योऽगस्त्यः कोपितः क्रीड़मानया।
ततस्तेन तदा शप्ता मानुषी त्वं भविष्यसि ॥ ८ ॥
प्रसादितः स चास्माभिर्बालेयमविवेकिनी।
तवापराधाद्विप्रर्षे प्रसादः क्रियतामिति ॥ ९ ॥
प्रसाद्यमानः सोऽस्माभिरिदमाह महामुनिः।
बालेति मत्वा शापोऽल्पो दत्तोऽस्या नान्यथैव तत् ॥
इति शापादगस्त्यस्य विशालभवने शुभा।
जातेयं मत्सुता सुभ्रूर्भामिनी नाम नामतः ॥११॥
तदस्याहं कृते प्राप्तो गृहाणेमां नृपात्मजाम्।
ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्त्ती भविष्यति ॥१२॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वेति तस्याश्च स पाणिं पार्थिवात्मजः।
जग्राह विधिवद्धोमं चक्रे तत्र च तुम्बुरुः ॥१३॥
प्रजगुर्देव-गन्धर्व्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
पुष्पाणि ससृजुर्मेघा देववाद्यानि सस्वनुः ॥१४॥
विवाहे राजपुत्रस्य तया तत्र समेयुषः।
समस्तवसुधात्राण-कर्त्तृकारणभूतया ॥१५॥
ततो गन्धर्व्वलोकं ते सह तेन महात्मना।
निःशेषेण ययुः सा च स च राजसुतो मुने ॥१६॥
भामिन्या मुमुदे सार्द्धमवीक्षिन्नृपनन्दनः।
सा च तेन समं तत्र भोगसम्पत्समन्विता ॥१७॥
कदाचिदतिरम्येऽसौ नगरोपवने तया।
विक्रीड़ति समं तन्व्या कदाचिदुपपर्व्वते ॥१८॥
कदाचित् पुलिने नद्या हंससारसशोभिते।
कदाचिद्भवनस्यान्ते प्रासादे चातिशोभने ॥१९॥
विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्निशम्।
रेमे स हितस्तन्व्या सा च तेन महात्मना ॥२०॥
...ले नं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम्।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि मुनि! इसी अवसर पर नय नाम एक गन्धर्व वहाँ बहुत से गन्धर्वों और अप्सराओं के साथ आया ॥६॥

गन्धर्व बोला—

हे राजकुमार! यह मानिनी मेरी पुत्री भामिनी है जो कि अगस्त्य मुनि के शाप से विशाल की पुत्री हुई ॥ ७ ॥ खेलते हुए इसने बालकपन में एक बार अगस्त्य मुनि को कुपित करदिया जिससे कि उन्होंने इसे मनुष्य होजाने का शाप दे दिया ॥ ८ ॥ फिर हम लोगों ने मुनि को प्रसन्न करके कहा, "यह अबोध बालिका है इससे इसने आपका अपराध किया है, आप प्रसन्न होकर कृपा करें" ॥ ९ ॥ वह महामुनि फिर प्रसन्न होकर हमसे यह बोले कि बालिका समझकर ही हमने यह थोड़ा सा शाप दिया है, यह अन्यथा नहीं होसकता ॥ १० ॥ अगस्त्य के शाप से ही यह मेरी सुन्दर पुत्री भामिनी राजा विशाल के घर उत्पन्न हुई ॥११॥ मैं इसके लिये ही यहाँ आया हूँ, आप मेरी पुत्री इस राजकुमारी को ग्रहण कीजिये, इससे आपका एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

राजकुमार ने उस गन्धर्व से कहा कि ऐसाही होगा और विधिवत् उस कन्या का पाणिग्रहण किया, उस समय तुम्बुरु मुनि ने वहाँ पर हवन किया ॥ १३ ॥ उस अवसर पर देव और गन्धर्व गाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं, मेघ पुष्प वर्षा करने लगे तथा देवता लोग बाजे बजाने लगे ॥१४॥ चूंकि उस कन्या का विवाह राजकुमार के साथ समस्त पृथ्वी के त्राण के लिये हुआ था इसलिये ये सब मंगलकृत्य वहाँ पर हुए ॥ १५ ॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! फिर उस महात्मा गन्धर्व के साथ वे सब तथा राजकुमार और कन्या गन्धर्व लोक को गये ॥ १६ ॥ वहाँ सब भोग सम्पत्तियों से युक्त होकर राजकुमार अवीक्षित और भामिनी ने खूब विहार किया ॥१७॥ अवीक्षित अपनी स्त्री के साथ कभी अत्यन्त रमणीक नगर या उपवन में और कभी पर्वत पर क्रीड़ा करते ॥१८॥ कभी हंस और सारस से युक्त नदी के किनारे और कभी भवन के अन्त में अति सुन्दर महलमें ॥१९॥ तथा और भी विहार करने योग्य रमणीक देशों में राजकुमार अवीक्षित और विशाल-कन्या दिन रात रमण करते ॥ २० ॥ मुनि, गन्धर्व और किन्नर आदि उन दोनों के लिये

उपजह्नुस्तयोस्तत्र मुनिगन्धर्व्वकिन्नराः ॥२१॥
तथा च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे।
गन्धर्व्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा ॥२२॥
तस्मिन् जाते महावीर्य्ये गन्धर्व्वाणां महोत्सवः।
बभूव मनुजव्याघ्रे तेन कार्य्यमवेक्षताम् ॥२३॥
जगुः केचित् तथैवान्ये मृदङ्ग-पटहानकान्।
अवादयन्त चैवान्ये वेणु-वीणादिकांस्तथा ॥२४॥
ननृतुश्च तथा तत्र बहवोऽप्सरसां गणाः।
पुष्पवृष्टिमुचो मेघा जगर्ज्जुर्मृदुनिस्वनाः ॥२५॥
तथा कोलाहले तस्मिन् वर्त्तमानेऽथ तुम्बुरुः।
तुनयेन स्मृतोऽभ्येत्य जातकर्म्माकरोन्मुने ॥२६॥
देवाः समाययुः सर्व्वे तथा देवर्षयोऽमलाः।
पातालात् पन्नगेन्द्राश्च शेषवासुकि-तक्षकाः ॥२७॥
तथा देवासुराणाञ्च ये प्रधाना द्विजोत्तम।
यक्षाणां गुह्यकानाञ्च वायवश्च तथाखिलाः ॥२८॥
तदाऽगतैरशेषर्षि-देव-दानव-पन्नगैः।
मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्व्वाणां महापुरम् ॥२९॥
ततः स तुम्बुरुः कृत्वा जातकर्म्मादिकां क्रियाम्।
चक्रे स्वस्त्ययनं तस्य वालस्य स्तुतिपूर्व्वकम् ॥३०॥
चक्रवर्त्ती महावीर्य्यो महाबाहुर्महाबलः।
महान्तं कालमीशित्वमशेषायाः क्षितेः कुरु ॥३१॥
इमे शक्रादयः सर्व्वे लोकपालास्तथर्षयः।
स्वस्ति कुर्व्वन्तु ते वीर वीर्य्यञ्चारिविनाशनम् ३२॥
मरुत् तव शिवायास्तु वाति पूर्व्वो न यो रजः।
मरुत् ते विमलोऽक्षीणोऽवैयम्यायास्तु दक्षिणः ३३॥
पश्चिमस्ते मरुद्वीर्य्यमुत्तमं ते प्रयच्छतु।
बलं यच्छतु चोत्कृष्टं मरुत् ते च तथोत्तरः ॥३४॥
इति स्वस्त्ययनस्यान्ते वागुवाचाशरीरिणी।
मरुत् तवेति बहुशो यदिदं गुरुरब्रवीत्।
मरुत्त इति तेनायं भुवि ख्यातो भविष्यति ॥३५॥
भुवि चास्य महीपाला यास्यन्त्याज्ञावशा यतः।
एष सर्व्वक्षितीशानां वीरः स्थास्यति मूर्द्धनि ॥३६॥
चक्रवर्त्ती महावीर्य्यः सप्तद्वीपवतीं महीम्।
आक्रम्य पृथिवीपालानयं भोक्ष्यत्यवारितः ॥३७॥

भोजन की सामग्री, चन्दन, वस्त्र, माला और अनेकों पेय पदार्थ उपस्थित करते थे ॥२१॥ फिर उस भामिनी के साथ दुर्लभ गन्धर्व लोक में रमण करते करते वीर अवीक्षित का एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ उस महापराक्रमी पुरुषसिंहके उत्पन्न होने पर गन्धर्वों में बड़ा उत्सव हुआ, कारण गन्धर्व उससे अपना काम निकालना चाहते थे ॥ २३॥ कुछ गन्धर्व गाने लगे, कुछ मृदङ्ग बजाने लगे तथा कुछ वेणु और वीणा बजाने लगे ॥२४॥ वहाँ बहुत-सी अप्सराओं ने नृत्य किया तथा मेघों ने मीठे स्वर से गरज कर पुष्प-वर्षा की ॥ २५ ॥ उस कोलाहल के वर्तमान होते हुए भी नय गन्धर्व ने तुम्बुरु मुनि को बुलाया और मुनि ने बालक का जातकर्म संस्कार किया ॥२६॥ उस उत्सव में सब देवता, देवर्षि तथा पाताल से शेष, वासुकि और तक्षक आदि नागेन्द्र आये ॥२७॥ हे द्विजोत्तम! इनके अतिरिक्त देवताओं, असुरों, यक्षों, गुह्यकों और समस्त वायवों में जो प्रधान थे वे सब आये॥ उन आये हुए ऋषि, देवता, दानव, नाग और मुनियों से गन्धर्वों का वह महा नगर एक दम भर गया ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर तुम्बुरु मुनि ने उस बालक की जातकर्म आदि क्रिया करके स्तुति पूर्वक स्वस्तिवाचन किया ॥ ३० ॥ और कहा कि तुम चक्रवर्ती, महापराक्रमी, महाबाहु, महाबली, होकर बहुत काल तक समस्त पृथ्वी का राज्य करो ॥३१॥ हे वीर! इन्द्र आदिक सब लोकपाल तथा सप्तर्षि तुम्हारा कल्याण करें और तुम्हारा पराक्रम शत्रुओं का नाश करने वाला हो ॥३२॥ पूर्व की वायु तुम्हारे कल्याण के निमित्त धूलि रहित होकर बहे तथा दक्षिण की विमल वायु तुमको आरोग्य प्रदान करे ॥ ३३ ॥ पश्चिमी वायु तुमको उत्तम पराक्रम प्रदान करे तथा उत्तर की वायु तुम को उत्कृष्ट बल दे ॥ ३४ ॥ स्वस्त्ययन के ..५ आकाशवाणी हुई कि गुरु तुम्बुरु ने जो मरुत शब्द बहुत उपयोग किया है इसलिये ये पृथ्वी पर मरुत्त नाम से विख्यात होगा ॥३५॥ पृथ्वी पर सब राजा लोग इसकी आज्ञा में चलेंगे और यह वीर उन सब राजाओं का शिरमौर होगा ॥ ३६ ॥ यह चक्रवर्ती महाराज होगा और सातों द्वीप युक्त पृथ्वी को राजाओंसे लेकर निर्विघ्न राज्योपभोग करेगा

ाधानः पृथिवीशानां भविष्यत्येष यज्विनाम् ।
प्राधिक्यं शौर्य्यवीर्य्येण भविष्यत्यस्य राजसु॥३८॥

मार्कण्डेय उवाच

त्याकर्ण्य वचः सर्व्वे केनाप्युक्तं दिवौकसाम् ।
ुतुषुर्विप्र-गन्धर्व्वाश्चास्य माता तथा पिता ॥३६॥

यज्ञ करने वाले राजाओं में यह प्रधान होगा तथा इसकी वीरता और पराक्रम अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक होंगे ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय बोले—

हे विप्र ! देवताओं में से किसी के द्वारा कहे हुए इन शब्दों को सुनकर वे सब गन्धर्व तथा उस बालक के माता पिता बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में अवीक्षित चरित्र (६) नाम १२७वाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौअट्ठाइसवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

ातः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् ।
ाद्भार्याञ्चानुगतो विप्र गन्धर्व्वैराययौ पुरम् ॥ १ ॥
ा पितुर्भवनं प्राप्य ववन्दे पितुरादरात् ।
ारणौ सा च तन्वङ्गी ह्रीमती नृपतेः सुता ॥ २ ॥
ाथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
ार्म्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्धमम् ॥ ३ ॥
ुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया ।
केमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ॥ ४ ॥
त्युक्त्वा पितुरुत्सङ्गे तं कृत्वा तनयं ततः ।
ाथावृत्तमशेषं स कथयामास तस्य तत् ॥ ५ ॥
ा परिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ।
ाभाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ६ ॥
ातः सोऽर्घ्यादिना सम्यग्गन्धर्व्वान् समुपागतान् ।
ाम्मानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥ ७ ॥
ातः पुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु ।
अस्माकं सन्ततिर्जाता नाथस्येति महामुने ॥ ८ ॥
ृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन् गीतवाद्यैर्वराङ्गणे ।
वेलासिन्योऽतिचार्व्वङ्ग्यो ननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥६॥
ाजा च द्विजमुख्येभ्यो रत्नानि च वसूनि च ।
वस्त्राण्यलङ्कारानदद्धृष्टमानसः ॥१०॥
स बालो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ।
ा प्रीतिजनको जनस्येष्टश्च सोऽभवत् ॥११॥
आचार्य्याणां सकाशात् स प्राग्वेदान् जगृहे मुने ।
ातः शास्त्राण्यशेषाणि धनुर्व्वेदं ततः परम् ॥१२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

हे क्रौष्टुकि जी ! फिर राजकुमार अवीक्षित अपने प्रिय पुत्र को लेकर गन्धर्वों के साथ अपने नगर को आये ॥ १ ॥ फिर उन्होंने पिता के भवन में पहुंच कर बड़े आदर से पिता की वन्दना की तथा लज्जायुक्त विशाल-कन्या ने भी अपने श्वसुर के चरणों में शिर नवाया ॥२॥ फिर राजकुमार ने बालक को हाथ में लेकर राजाओं के मध्य में धर्मासन पर बैठे हुए महाराज करन्धम से कहा॥३॥ जैसी कि मैंने माता के किमिच्छक व्रत के अवसर पर आपसे प्रतिज्ञा की थी आप अब अपनी गोद में लेकर नाती का मुख देखिये ॥४॥ यह कह कर उन्होंने पुत्र को अपने पिता की गोद में देदिया तथा जो कुछ वृत्तान्त जब से अबतक हुआ था उनको सुना दिया ॥ ५ ॥ उस पौत्र को छाती से लगाकर महाराज करन्धम के नेत्र अश्रु से पूर्ण होगये और उन्होंने बार बार अपने भाग्य की सराहना की ॥ ६ ॥ फिर महाराज करन्धमने प्रसन्न चित्त से आये हुए गन्धर्वों की अर्घ्य आदि देकर भली भाँति पूजा की ॥ ७ ॥ हे महामुनि क्रौष्टुकि जी ! फिर उस नगर के नागरिकों के घरोंमें महान् उत्सव हुआ । प्रजाजन कहतेथे कि हमारे महाराज के सन्तान हुई ॥ ८ ॥ फिर उस हर्षोल्लास-युक्त नगर में विलासिनी वराङ्गनाएं गीत वाद्य सहित उत्तम नृत्य कर रहीं थीं ॥६॥ महाराज ने भी हर्षित होकर ब्राह्मणों को रत्न, धन, गाय, वस्त्र और अलङ्कार आदि दिये ॥१०॥ फिर पितरों को प्रीति-दायक और मनुष्यों को प्रिय वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा ॥ ११ ॥ हे मुनि ! आचार्यों के पास उसने वेदों, समस्त शास्त्रों और धनुर्वेद की शिक्षा पाई ॥१२॥

कृतोद्योगो यदा सोऽभूत् खड्गकार्म्मुककर्म्मणि।
अन्येषु च तथा वीरः शस्त्रेषु विजितश्रमः ॥१३॥
ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद्भृगुसम्भवात्।
विनयावनतो विप्र गुरोः प्रीतिपरायणः ॥१४॥
गृहीतास्त्रः कृती वेदे धनुर्व्वेदस्य पारगः।
निष्णातः सर्व्वविद्यासु न बभूव ततः परः ॥१५॥
विशालोऽपि सुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम्।
हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्य च योग्यताम् ॥१६॥
अथ राजा सुतसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथः।
यज्ञाननेकान् निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् ॥१७॥
कृताशेषक्रियो युक्तः सवर्णैर्धर्म्मतो महीम्।
परिपाल्यारिविजयी बलबुद्धिसमन्वितः ॥१८॥
स यियासुर्वनं पुत्रमवीक्षितमभाषत।
पुत्र वृद्धोऽस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे ॥१९॥
कृतकृत्योऽस्मि नास्त्यन्यत् किंचित् त्वदभिषेचनात्
सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयार्पितम् ॥२०॥
इत्युक्तः पितरं प्राह सोऽवीक्षिन्नृपनन्दनः।
प्रश्रयावनतो भूत्वा यियासुस्तपसे वनम् ॥२१॥
नाहं तात करिष्यामि पृथिव्याः परिपालनम्।
नार्पति ह्रीर्मे मनसो राज्येऽन्यं त्वं नियोजय ॥२२॥
तातेन मोक्षितो बद्धो न स्ववीर्य्यादहं यतः।
ततः कियत् पौरुषं मे पुरुषैः पाल्यते मही ॥२३॥
योऽहं न पालनायालमात्मनोऽपि वसुन्धराम्।
स कथं पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप ॥२४॥
मन्त्री सधर्म्मः पुरुषो यश्चान्येनावबुध्यते।
आत्माऽमोहाय भवतो बन्धनाद्येन मोक्षितः।
सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्म्मा महीपतिः ॥२५॥

पितोवाच

न भिन्न एव पुत्रस्य पिता पुत्रस्तथा पितुः।
नान्येन मोक्षितो वीर यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः ॥२६॥

फिर उस वीर ने खड्ग, धनुष तथा अन्य अस्त्र, शस्त्रों की विद्या जानने की इच्छा की ॥ १३ ॥ हे विप्र! फिर उसने विनय से नम्र होकर तथा गुरु का प्रीतिभाजन बनकर भृगुवंशमें उत्पन्न शुक्राचार्य से अस्त्रों की विद्या ग्रहण की ॥ १४ ॥ वह अस्त्र-विद्या का ज्ञाता, वेदों का पण्डित तथा धनुर्वेद में पारगामी हुआ। वह सब विद्याओं में कुशल हुआ, उससे कोई विद्या न बची ॥१५॥ राजा विशाल भी अपनी पुत्री का सब वृत्तान्त जानकर तथा अपने धेवते की योग्यताका हाल सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१६॥ फिर महाराज करन्धम ने पौत्र रूप में अपने मनोरथ को सफल हुआ देखकर अनेकों यज्ञ किये और याचकोंको दान दिये ॥१७॥ उन्होंने अपने कुटुम्बियोंसे युक्त होकर अशेष क्रियाओं को किया तथा धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करते हुए बल और बुद्धि से युक्त होकर शत्रुओं को जीता ॥ फिर वन जाने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षित को बुलाकर कहा, "हे पुत्र! अब मैं वृद्ध हुआ, मैं अब वन को जाता हूँ, तुम राज्य को ग्रहण करो" ॥ १९ ॥ मैं कृतकृत्य हूँ, तुमको राज-तिलक देने के अतिरिक्त मुझे कुछ और नहीं करना है, अब तुम मेरे दिये हुए इस निष्कंटक राज्य को ग्रहण करो ॥ २० ॥ ऐसा कहे जाने पर राजकुमार अवीक्षितने विनयसे नम्र होकर तपस्या के लिये वन जाने की इच्छा करनेवाले अपने पिता से कहा ॥ २१ ॥ हे तात! मैं पृथ्वी पालन नहीं करूँगा, मेरे मनमें बड़ी लज्जा आती है, आप किसी दूसरे को यह राज्य दीजिये ॥ २२ ॥ जब राजाओं ने मुझको बाँध लिया था तब मैं अपने बल से न छूटकर पिता के द्वारा छुड़ाया गया था तो इसमें मेरा क्या पौरुष हुआ? पृथ्वी का पालन पुरुषार्थयुक्त मनुष्य ही कर सकते हैं ॥२३ ॥ जोकि मैं अपनी आत्मा का भी पालन न कर सका तो मैं पृथ्वीका पालन किस तरह कर सकूंगा? इसलिये ये राज्य किसी और को दे दीजिये ॥ २४ ॥ मन्त्री धर्मात्मा पुरुष वही है जो किसी के आधीन न हो, मेरा तो ममत्ववश आपने बन्धन छुड़ाया है अतः स्त्री के सदृश धर्म वाला मैं राजा किस प्रकार हो सकता हूँ? ॥ २५ ॥

पिता बोले—

पुत्र से पिता और पिता से पुत्र भिन्न नहीं है। हे वीर! अगर तुमको पिता ने बन्धन से छुड़ाया तो किसी दूसरे ने नहीं छुड़ाया ॥२६॥

पुत्र उवाच

हृदयं नान्यथा नेतुं मया शक्यं नरेश्वर ।
हृदये ह्रीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया ॥२७॥
पित्रोपात्तां श्रियं भुङ्क्ते पित्रा कृच्छ्रात् समुद्धृतः ।
विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुले २८॥
स्वयमर्ज्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम् ।
स्वयं निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिः साऽस्तु मे गतिः ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याह बहुशः पित्रा यदाप्युक्तोऽप्यसौ मुने ।
तदा तस्य सुतं राज्ये मरुत्तमकरोन्नृपम् ॥३०॥
स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।
चकार सम्यक् सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥३१॥
राजा करन्धमश्चापि वीरामादाय तां तथा ।
वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ॥३२॥
तत्र वर्षसहस्रं स तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ॥३३॥
सास्य पत्नी तदा वीरा वर्षाणाममरं शतम् ।
तपश्चचार विप्रर्षे जटिला मलपङ्किनी ॥३४॥
सालोक्यमिच्छती भर्त्तुः स्वर्गतस्य महात्मनः ।
फल-मूलकृताहारा भार्गवाश्रमसंश्रया ।
द्विजातिपत्नीमध्यस्था द्विजशुश्रूषणारता ॥३५॥

पुत्र बोला—

हे राजेश्वर ! आप मेरे हृदय को नहीं वदल सकते हैं, आपके द्वारा बन्धन से छुड़ाये जाने की मेरे हृदय में बड़ी लज्जा है ॥२७॥ जो पिता के उपार्जित धन से जीविकोपार्जन करते हैं, पिता द्वारा कष्ट से छुटकारा पाते हैं अथवा उनके नाम से ही ज्ञात होते हैं वे पुरुष हमारे कुल में नहीं होते ॥२८॥ जो अपने ही द्वारा उपार्जित धन से जीविकोपार्जन करते हैं या अपनी ही करनी से ख्याति प्राप्त करते हैं तथा जो अपने वल से ही कष्टों से छुटकारा पाते हैं ऐसे पुरुषों की गति मैं चाहता हूँ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यद्यपि पिता ने वहुत कुछ कहा परन्तु अवीक्षितने वही उत्तर दिया। तव महाराजने अवीक्षित के पुत्र मरुत्त को राज्य दे दिया ॥३०॥ उसने पिता की आज्ञा से पितामह द्वारा राज्य प्राप्त कर मित्र-वर्गों को वहुत आनन्द पहुँचाया ॥ ३१ ॥ राजा करन्धम भी अपनी स्त्री वीरा के साथ शरीर और मन को वश में करके तप करने के लिये वनको चले गये ॥ ३२ ॥ वहाँ पर वे एक हजार वर्ष तक कठिन तप करके अपना शरीर त्याग कर इन्द्रलोक को गये ॥३३॥ हे क्रौष्टुकि ! इसके वाद उनकी स्त्री वीरा ने अपने शरीर पर भस्म रमा कर देवताओं के सौ वर्षों तक तप किया ॥ ३४ ॥ उन दिनों वह फल, मूल भक्षण करती हुई, शुक्राचार्य के आश्रम पर ब्राह्मणियों के मध्य में विप्र-सेवा में तत्पर होकर रहती थी ॥३५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें अवीक्षित चरित्र (७) नाम १२८वाँ अध्याय स० ।



एकसौउनतीसवां अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् विस्तरात् सर्व्वं ममैतत् कथितं त्वया ।
करन्धमस्य चरितमवीक्षिच्चरितश्च यत् ॥ १ ॥
... नृपतेर्मरुत्तस्य महात्मनः ।
श्रोतुमिच्छामि चरितं श्रूयते सोऽतिचेष्टितः ॥ २ ॥
चक्रवर्त्ती महाभागः शूरः कान्तो महामतिः ।
धर्म्मविद्धर्म्मकृच्चैव सम्यक् पालयिता भुवः ॥ ३ ॥

क्रौष्टुकिजी बोले—

हे भगवन् ! आपने मुझसे महाराज करन्धम व राजकुमार अवीक्षित का चरित्र विस्तार पूर्वक कहा ॥१॥ अब मैं अवीक्षित के पुत्र मरुत्तका चरित्र सुनना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि महाराज मरुत्त वड़े चेष्टावान् थे ॥ २ ॥ उन चक्रवर्ती, महाभाग, शूरवीर, रूपवान्, वुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धर्मात्मा ने पृथ्वी का भली भांति पालन किया ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।
धर्म्मतः पालयामास पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ ४ ॥
इयाज सुबहून् यज्ञान् यथावत् स्वाप्तदक्षिणान् ।
ऋत्विक्पुरोहितादेश-रम्यचित्तो महीपतिः ॥ ५ ॥
तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु ।
गतिश्चाप्यनवच्छिन्ना ख-पाताल-जलादिषु ॥ ६ ॥
ततः प्राप्य धनं विप्र यथावत् स्वक्रियापरः ।
अयजत् स महायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ७ ॥
इतरे च यथा वर्णाः स्वे स्वे कर्म्मण्यतन्द्रिताः ।
तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाः क्रियाः ॥ ८ ॥
पाल्यमाना मही तेन मरुत्तेन महात्मना ।
पस्पर्द्ध त्रिदशावास-वासिभिर्द्विजसत्तम ॥ ६ ॥
तेनातिशायिताः सर्व्वे केवलं न महीक्षितः ।
यज्विना देवराजोऽपि शतयज्ञाभिसन्धिभिः ॥१०॥
ऋत्विक् तस्य तु संवर्त्तो बभूवाङ्गिरसः सुतः ।
भ्राता वृहस्पतेर्विप्र महात्मा तपसां निधिः ॥११॥
सौवर्णो मुञ्जवान् नाम पर्व्वतः सुरसेवितः ।
पातितं तेन तच्छृङ्गं हृतं तस्य महीपतेः ॥१२॥
तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज ।
प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्व्वकाञ्चनाः ॥१३॥
गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति मरुत्तचरिताश्रयाः ।
सातत्येनर्षयः सर्व्वे कुर्व्वन्तोऽध्ययनं यथा ॥१४॥
मरुत्तेन समो नाभूद्द्वयजमानो महीतले ।
सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव काञ्चनाः ॥१५॥
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
विप्राणां परिवेष्टारः शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥१६॥
यथा यज्ञे मरुत्तस्य तथा कस्य महीपतेः ।
सुवर्णमखिलं त्यक्तं रत्नपूर्णगृहे द्विजैः ॥१७॥
प्रासादादि समस्तञ्च सौवर्णं तस्य यत् कृतौ ।
त्रयो वर्णा ह्यलभ्यन्त तस्मात् केचित् तथा ददुः १८॥
तेन त्यक्तेन शिष्टा ये जनाः पूर्णमनोरथाः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

पिताकी आज्ञानुसार उन्होंने पितामहसे राज्य प्राप्त कर प्रजा का औरस पुत्र की भांति धर्म्मपूर्वक पालन किया ॥ ४ ॥ उन महाराज मरुत्त ने ऋत्विक पुरोहित आदि के आदेश से प्रसन्न चित्त होकर बहुत से यज्ञ किये और ब्राह्मणों को दक्षिणा दी ॥ ५ ॥ उसका राज्य सातों द्वीपों में अखण्ड था तथा आकाश, पाताल और जल आदि में उसकी गति अबाध थी ॥ ६ ॥ हे विप्र ! फिर उन्होंने धन संग्रह करके यथावत् अपनी क्रियाओं में तत्पर होकर महायज्ञ किये और इन्द्र आदि देवताओं का पूजन किया ॥ ७ ॥ उनके राज्य में चारों वर्ण अपने-अपने वर्ण और आश्रम में प्रवृत्त होकर महाराज से धन लेकर अरिष्टनाशक क्रियाएँ करते थे ॥ ८ ॥ हे श्रेष्ठ द्विज ! उन महात्मा मरुत्त ने पृथ्वी का भली प्रकार पालन किया । उनके ऐश्वर्यसे इन्द्रादिक देवताओं को महाराज से स्पर्द्धा होने लगी ॥ ६ ॥ उसने सब प्रजाओं को धन आदि देकर अपने से भी अधिक कर दिया, अन्तर केवल इतना ही था कि वे राजा न कहलाते थे । उन्होंने सौ यज्ञ करके देवराज इन्द्र को भी अतिक्रमण किया ॥ १० ॥ हे विप्र ! उसके पुरोहित अङ्गिरा मुनि के पुत्र, बृहस्पति के भाई, तपोनिधि महात्मा संवर्त हुए ॥ ११ ॥ देवताओं से सेवित मुञ्जवान् नाम पर्वत सुवर्ण का था । महाराज मरुत्त उसका शिखर तोड़कर अपने घर ले आये ॥ १२ ॥ हे द्विज ! उन्होंने उस सुवर्ण से यज्ञ का भूमिभाग तथा महल इत्यादि सोने के बनवाये ॥ १३ ॥ मरुत्त के चरित्र की इन गाथाओं को ऋषि लोग इस प्रकार गाते थे जिस प्रकार कि वेदाध्ययन किया जाता है ॥ १४ ॥ इस पृथ्वी पर मरुत्त के समान कोई यज्ञ करने वाला राजा नहीं हुआ जिसकी कि यज्ञशालायें और महल सुवर्ण के बने हुए थे ॥१५॥ उनके यज्ञों में इन्द्र सोमपान करके उन्मत्त होगये और ब्राह्मणों को जो दक्षिणा दी गई उससे देवताओं सहित इन्द्र बहुत लज्जित हुए ॥ १६ ॥ जिस प्रकार राजा मरुत्त के यज्ञ हुए उस प्रकार किसी अन्य राजा के न हुए, कारण-ब्राह्मण लोग जिनके घर रत्नादिकों से पूर्ण थे, सुवर्ण को यज्ञों में ही छोड़ जाते थे ॥ १७ ॥ उनके महल और यज्ञों में ब्राह्मणों द्वारा छोड़े हुए उस सुवर्ण को अन्य वर्णों के लोग लेआये और उन्होंने उसमें से दान पुण्य किया ॥ १८ ॥ उस छोड़े हुए धन को पाकर उन लोगोंके मनोरथ सफल होगये

ं च यज्ञान् यजन्त्येव देशे देशे पृथक् पृथक् ॥१६॥
स्यैवं कुर्व्वतो राज्यं सम्यक् पालयतः प्रजाः ।
तपस्वी कश्चिदभ्येत्य तमाह मुनिसत्तम ॥२०॥
पेतुर्माता तवाहेदं दृष्ट्वा तापसमण्डलम् ।
वेषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ॥२१॥
पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम् ।
तपश्चरणशक्ताऽहमिह चौर्व्वाश्रमे स्थिता ॥२२॥
साहं पश्यामि वैकल्यं तव राज्यं प्रशासतः ।
पितामहस्य ते नाभूद्यत् पूर्व्वेषाञ्च ते नृप ॥२३॥
नूनं प्रमत्तो भोगेषु सक्तो वाऽविजितेन्द्रियः ।
चारान्धता यतस्तेषां दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् ॥२४॥
पातालादभ्युपेतैस्तु भुजगैर्दंशशालिभिः ।
दष्टा मुनिसुताः सप्त दूषिताश्च जलाशयाः ॥२५॥
स्वेदमूत्रपुरीषेण दूषितंच हुतं हविः ।
अपराधं समुद्दिश्य दत्तो नागबलिश्चिरात् ॥२६॥
एते समर्था मुनयो भस्मीकर्त्तुं भुजङ्गमान् ।
किन्त्वेषां नाधिकारोऽत्र त्वमेवात्राधिकारवान्॥२७
तावत् सुखं भूपतिजैर्भोगजं प्राप्यते नृप ।
अभिषेकजलं यावन्न मूर्द्धिन्न विनिपात्यते ॥२८॥
कानि मित्राणि कः शत्रुर्मम शत्रोर्बलं कियत् ।
कोऽहं के मन्त्रिणः पक्षे के वा भूपतयो मम ॥२९॥
विरक्तो वा परैर्भिन्नः परेषामपि कीदृशः ।
कः सम्यगत्र नगरे विषये वा जनो मम ॥३०॥
धर्म्मकर्म्माश्रयी मूढ़ः कः सम्यगपि वर्त्तते ।
को दण्ड्यः परिपाल्यः कः के वा प्रेक्ष्या नरा मया३१
सन्धिभेदभयादत्र देशकालमवेक्षता ।
चारांश्च चारयेदन्यैरज्ञातान् भूपतिश्वरैः ॥३२॥
...चिवादिषु सर्व्वेषु चरान् दद्यान्महीपतिः ॥३३॥
...त्यादौ भूपतिर्नित्यं कर्म्मण्यासक्तमानसः ।
नयेद्दिनं तथा रात्रिं न तु भोगपरायणः ॥३४॥
राज्ञां शरीरग्रहणं न भोगाय महीपते ।

और उन्होंने उस धन के द्वारा देश-विदेशों में अनेकों यज्ञ किये ॥ १९ ॥ हे मुनिसत्तम ! उसके इस प्रकार प्रजा को पालते तथा राज्य करते हुए किसी तपस्वी ने आकर उससे कहा ॥ २० ॥ हे नरेश्वर ! तुम्हारे पिता की माता ने तपस्वियों के समूह को मदोन्मत्त सर्पों के त्रिय से व्याकुल देख कर जो कुछ मुझसे कहा है वह सुनो ॥ २१ ॥ तुम्हारे पितामह भली प्रकार पृथ्वी का पालन कर स्वर्ग को गये और मैं और्व्वजी के आश्रम पर रह कर तपस्या करती हूँ ॥ २२ ॥ मैं देखती हूँ कि तुम्हारे राज्य में जो विकलता पितरों को है वह तुम्हारे पितामहके राज्यमें न थी ॥२३॥ तुम निश्चय ही भोगों में उन्मत्त हो रहे हो अथवा इन्द्रियों के वशीभूत होकर इतने अन्धे हो रहे हो कि साधु और असाधु को नहीं पहिचानते ॥२४॥ पाताल से आकर सर्पों ने सात मुनि कुमारों को काट खाया है तथा जलाशयोंको अपने विषसे दूषित कर दिया है ॥२५॥ चूंकि पहिलेसे ही नागों की बलि दी जाती है अतः इसको अपराध समझकर सर्पों ने होम और हवियों को अपने पसीने, मूत्र और विष्ठा से दूषित किया है ॥२६॥ वे मुनि उन सर्पों को भस्म करने के समर्थ हैं किन्तु इसका उनको अधिकार नहीं है, इसका अधिकार केवल तुमको ही है॥२७॥ जब तक राजकुमारों का अभिषेक नहीं होता है तब ही तक उनको सुख हो सकताहै ॥२८॥ राज्याभिषेक होने पर उनको सोचना चाहिये कि मेरे मित्र कौन हैं, शत्रु कौन हैं तथा शत्रुओं की सेना कितनी है, मैं कौन हूँ तथा मेरे पक्षमें कितने राजा हैं ? ॥ २९ ॥ कौन विरक्तहै, कौन दूसरों से अलग तथा कौन उनमें मिला हुआ है ? इस नगरमें कौन मनुष्य विषय भोग में लिप्त हैं ? ॥ ३० ॥ यहाँ कौन धर्म, कर्म में प्रवृत्त हैं तथा कौन मूर्ख हैं ? किसको दण्ड देना चाहिये, कौन पालन करने योग्य हैं, तथा किस मनुष्य को निर्वासित कर देना चाहिये ॥३१॥ राजाको साम, दाम, दण्ड, भेद करके आचरण करते हुए देश काल का विचार रखना चाहिये तथा दूतों की भी नियुक्ति कर प्रजा का हाल जानना चाहिये ॥३२॥ सब मन्त्रियों पर भी राजा को चाहिये कि गुप्तचरों को लगा दे ॥३३॥ आरम्भ से ही राजा को इन कार्यों में ध्यान देना चाहिये, उसको दिन रात्रि भोगों में लिप्त न रहना चाहिये ॥३४॥ हे राजन् ? राजाओं का शरीर भोग करने के लिये नहीं होता है । उनको अपना धर्म और

क्लेशाय महते पृथ्वीस्वधर्म्मपरिपालने ॥३५॥
सम्यक् पालयतः पृथ्वीं स्वधर्म्मञ्च महीपते ।
इह क्लेशो महान् स्वर्गे परमं सुखमक्षयम् ॥३६॥
तदेतदवबुध्य त्वं हित्वा भोगान् नरेश्वर ।
पालनाय क्षितेः क्लेशमङ्गीकर्त्तुमिहार्हसि ॥३७॥
इति वृत्तमृषीणां यद्व्यसनं त्वयि शासति ।
भुजङ्गहेतुकं भूप चारान्धो नापि वेत्सि तत् ॥३८॥
बहुनात्र किमुक्तेन दुष्टे दण्डो निपात्यताम् ।
शिष्टान् पालय राजंस्त्वं धर्म्मषड्भागमाप्स्यसि ३९॥
अरक्षन् पापमखिलं दुष्टैरविनयात् कृतम् ।
समवाप्स्यस्यसन्दिग्धं यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥४०॥
एतन्मयोक्तं सकलं यत् तवाहं पितामही ।
कुरुष्वैवं स्थिते यत् ते रोचते वसुधाधिप ॥४१॥

पृथ्वी का पालन करने में बड़ा क्लेश होताहै ॥३५॥ राजाओं को भली भांति पृथ्वी का तथा अपने धर्म का पालन करते हुए इस संसार में महान् कष्ट होता है परन्तु स्वर्ग में पहुंच कर उनको अक्षय सुख होता है॥ ३६॥ हे नरेश्वर! अतः यह सब समझकर तुमको भोगोंको छोड़कर पृथ्वीके पालन के लिये क्लेश को अङ्गीकार करना चाहिये ॥३७॥ तुम्हारे शासन में जो व्यसन है उसके कारण ऋषियों की यह दशा है। हे राजन्! तुम सर्पों द्वारा मुनि कुमारों के मरण का वृत्तान्त भी नहीं जानते हो? ॥३८॥ अधिक कहने से क्या है, दुष्टों को दण्ड दीजिये और सज्जनों का पालन कीजिये जिससे कि हे राजन्! उनके धर्म का छुटा भाग तुमको मिले॥३९॥ यदि तुम प्रजा की रक्षा न करोगे तो जो पाप दुष्टों के दुर्विनय से होगा उस के निस्संदेह तुम भागी होओगे, अब जो तुम्हारी इच्छा हो करो ॥४०॥ हे पृथ्वीपति! यह मैंने आप से वह सब कहा जो आपकी दादी ने आप से कहने के लिये मुझसे कहा था ऐसी स्थिति में जो आपको अच्छा लगे वह करें ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मरुत्त चरित्र नाम १२९वां अ० स० ।



एकसौतीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच
इति तापसवाक्यं स श्रुत्वा लज्जापरो नृपः ।
धिङ्मां चारान्धमित्युक्त्वा निश्वस्य जगृहे धनुः ॥१॥
ततः स त्वरितं गत्वा तमौर्व्वस्याश्रमं प्रति ।
ववन्दे शिरसा वीरां मातरं पितुरात्मनः ॥२॥
तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः ।
दृष्ट्वा च तापसान् सप्त नागैर्दष्टान् सुतान् भुवि ॥३॥
निनिन्दात्मानमसकृत् पुरस्तेषां महीपतिः ।
उवाच चैतदद्याहं मद्वीर्य्यमवमन्यताम् ॥४॥
यत् करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्विषाम् ।
तत् पश्यतु जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम् ॥५॥
मार्कण्डेय उवाच
इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं संवर्त्तकं नृपः ।

मार्कण्डेयजी बोले—
तपस्वी के इस प्रकार वचन सुनकर राजा मरुत्त बड़े लज्जित हुए। उन्होंने अपनेको अविवेकी और अन्ध आदि कहकर लम्बी सांस ली और धनुष उठा लिया॥१॥ फिर उन्होंने शीघ्र और्व्व मुनि के आश्रम पर पहुँच कर अपनी दादी वीरा को शिर से प्रणाम किया ॥२॥ उन्होंने न्यायपूर्वक तपस्वियों को प्रणाम किया जिन्होंने कि आशीर्वाद देकर राजा की स्तुति की। सात मुनिकुमारों को सर्पों द्वारा काटे जाने से पृथ्वी पर पड़ा हुआ देख कर ॥३॥ उन्होंने अपने को बहुत धिक्कारा और फिर महाराज मरुत्त ने उनसे कहा कि आप लोग अब मेरे पराक्रम को देखिये॥४॥ अब इन ब्राह्मणों के शत्रु दुष्ट सर्पों का जो कुछ मैं करता हूँ वह देवता, राक्षस और मनुष्य सहित सब जगत् देखे ॥५॥
मार्कण्डेयजी बोले—
यह कहकर महाराज मरुत्त ने क्रोध करके पाताल और पृथ्वी में विचरने वाले नागों का

नाशायाशेषनागानां पातालोर्व्वीविचारिणाम् ॥६॥
ततो जज्वाल सहसा नागलोकः समन्ततः ।
महास्त्र तेजसाविप्र दह्यमानोऽनिवारितः ॥ ७ ॥
हा हा तातेति हा मातर्हा हा वत्सेति सम्भ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाभवन् ॥ ८ ॥
केचित् ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्यभुजङ्गमाः ।
गृहीतपुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ॥ ९ ॥
पातालमुत्सृज्य ययुः शरणं भामिनीं तदा ।
मरुत्तमातरं पूर्व्वं यया दत्तं तदाऽभयम् ॥१०
तामुपेत्योरगाः सर्व्वे समप्रणामं भयातुराः ।
ऊगद्गदमिदं प्रोचुः स्मर्य्यतां नः पुरोदितम् ॥११॥
प्रणमाभ्यर्चितं पूर्व्वं यदस्माभी रसातले ।
तस्य कालोऽयमायातस्त्राहि वीरप्रजायिनि ॥१२॥
पुत्रो निवार्य्यतां राज्ञि प्राणैः सायोऽस्मस्तु नः ।
दह्यते सकलो लोको नागानामस्त्रवह्निना ॥१३॥
एवं सन्दह्यमानानामस्माकं तनयेन ते ।
त्वामृते शरणं नान्यत् कृपां कुरु यशस्विनि ॥१४॥

मार्कण्डेय उवाच

ते श्रुत्वा वचस्तेषां संस्मृत्यादौ च भाषितम् ।
भर्त्तारमाह सा साध्वी ससम्भ्रममिदं वचः ॥१५॥

भामिन्युवाच

मयैव तवाख्यातं पाताले यद्भुजङ्गमैः ।
एकमभ्यर्थनापूर्व्वं ममासीत् तनयं प्रति ॥१६॥
इमेऽभ्यागता भीता दह्यन्ते तस्य तेजसा ।
मेते शरणं पूर्व्वं दत्तमेभ्यो मयाऽभयम् ॥१७॥
मां शरणमापन्नास्ते त्वां शरणमागताः ।
युग्धर्म्मचरणा यताहं शरणं तव ॥१८॥
निवारय पुत्रं त्वं मरुत्तं वचनात् तव ।
। चाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति ॥१९॥

अवीक्षिदुवाच

।ःराधे नियतं मरुत्तः क्रोधमागतः ।

करने के लिये सम्वर्त नाम अस्त्र को उठा लिया॥ हे विप्र ! तब उस महान् अस्त्र के तेज से सहसा नागलोक चारों ओर से जलने लगा, यद्यपि उस अग्नि के निवारण करने का प्रयत्न किया गया तो भी वह जलता ही रहा ॥७॥ उस अस्त्र से उत्पन्न हुए विभ्रम से हा तात ! हा माता ! हा वत्स ! आदि कह कहकर नाग लोग चिल्लाने लगे ॥ ८ ॥ कुछ सर्पों की पूंछ जलगई और कुछ के फण। ऐसी दशा में वे अपने वस्त्राभूषणों को छोड़कर अपने स्त्री पुत्रों के साथ ॥ ९ ॥ पाताल छोड़कर महाराज मरुत्त की माता भामिनी की शरणमें गये जिसने कि पहिले उनको अभयदान दिया था॥१०॥ उनके पास पहुंच कर भय से आतुर हुए सर्पों ने प्रणाम करते हुए गद्गद वाणीसे भामिनीसे कहा, "आपने जो हमसे पहिले प्रतिज्ञा की थी उसको स्मरण कीजिये" ॥११॥ हमने जब पाताल में प्रणाम करके आपकी पूजा की थी तो आपने हमको वचन दिया था, उसका समय अब आया है । हे वीर जननी ! अब हमारी रक्षा करो ॥१२॥ हे महारानी! अपने पुत्र को रोक कर हमारे प्राणों की रक्षा कीजिये । आपके पुत्र के अस्त्र की अग्नि से समस्त नागलोक जल रहा है ॥१३॥ आपके पुत्र हम लोगों को दग्ध कर रहे हैं, आपके अतिरिक्त हम किस की शरण में जाँय । हे यशस्विनी ! कृपा करो॥१४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उनके यह वचन सुनकर उस साध्वी ने अपनी प्रतिज्ञाका स्मरणकिया और अपने पति अवीक्षित से बोली ॥ १५ ॥

भामिनी बोली—

मैं आपसे पहिले ही कह चुकी हूँ कि किस प्रकार पाताल में नागों ने मेरी पूजा करके हमारे पुत्र के प्रति अपने भय को कहा था ॥१६॥ वे उस के तेज से दग्ध होते हुए भयभीत होकर यहाँ पर मेरी शरण में आये हैं और मैं इनको अभय दान दे चुकी हूँ ॥१७॥ चूंकि ये मेरी शरण में आये हैं इसलिये ये आपकी शरण में हुए कारण-मेरा और आपका धर्माचरण एक ही है और मैं भी आपकी शरण हूँ ॥१८॥ इसलिये आप अपनी आज्ञासे अपने पुत्र मरुत्त को रोकिये । साथ ही मेरे कहने पर भी वह अवश्य शान्त होजायगा ॥१९॥

अवीक्षित बोले—

नागों के महान् अपराध करने पर मरुत्त को

दुर्निवर्त्यमहं मन्ये तस्य क्रोधं सुतस्य ते ॥२०॥

नागा ऊचुः

शरणागतास्तव वयं प्रसादः क्रियतां नृप ।
क्षतस्यार्त्तपरित्राण-निमित्तं शस्त्रधारणम् ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

नागानां तद्वचः श्रुत्वा भूतानां शरणैषिणाम् ।
तथा चाभ्यर्थितः पत्न्या प्राहावीक्षिन्महायशाः॥२२
गत्वा ब्रवीमि तं भद्रे तनयं त्वरया तव ।
परित्राणाय नागानां न त्याज्याः शरणागताः॥२३॥
नोपसंहरते शस्त्रं यदि मद्वचनान्नृपः ।
तदस्त्रैर्वारयिष्यामि तस्यास्त्रं तनयस्य ते ॥२४॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो गृहीत्वा स धनुरवीक्षित् क्षत्रियोत्तमः ।
भार्य्यया सहितः प्रायात् त्वरावान् भार्गवाश्रमम् २५

क्रोध हुआ है। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे पुत्र का क्रोध निवृत्त होना कठिन है ॥२०॥

नाग बोले—

हे राजन्! हम आपकी शरण में आये हैं, हम पर दया करें। क्षत्रिय लोग दुःखीजनों की रक्षा के निमित्त ही शस्त्र धारण करते हैं ॥ २१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

शरण में आये हुए नागों के वे वचन तथा अपनी पत्नी की प्रार्थना सुनकर यशस्वी अवीक्षित ने कहा ॥ २२ ॥ हे भद्रे! मैं अभी जाकर नागों की रक्षा के लिये तुम्हारे पुत्रों से कहता हूँ। शरणागतों को त्यागना उचित नहीं ॥२३॥ यदि मेरे कहने पर राजा अपने अस्त्र को शान्त न करेंगे तो मैं तेरे पुत्र के अस्त्रों को अपने अस्त्रोंसे निवारण करदूँगा॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर क्षत्रिय श्रेष्ठ अवीक्षित धनुष को उठाकर स्त्री सहित शीघ्र भार्गव मुनिके आश्रम पर पहुँचे ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मरुत्त चरित्र(२) नाम का १३०वां अध्याय समाप्त।



एकसौइकत्तीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

स तु तस्याः सुतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्म्मुकम् ।
धनुःशस्त्रञ्च तस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १ ॥
उद्गिरन्तं महावह्निं दीपिताखिलभूतलम् ।
पातालान्तर्गतं प्राप्तमसह्यं घोरभीषणम् ॥ २॥
स तं दृष्ट्वा महीपालं भृकुटीकुटिलाननम् ।
मा क्रुधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥ ३॥
प्राहासकृत् त्वरालुप्त-वर्णक्रममुदारधीः ।
स निशम्य गुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तञ्च पुनः पुनः ॥ ४ ॥
गृहीतकार्म्मुकः पित्रोः प्रणिपत्य सगौरवम् ।
प्रत्युवाचापराद्धा मे सुभृशं पन्नगाः पितः ॥ ५ ॥
शासतीमां मयि महीं परिभूय बलं मम ।
संप्ताश्रमसुपागम्य दष्टा मुनिकुमारकाः ॥ ६ ॥
ऋषीणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते ।
मयि शासति दुष्टैर्दूषितानि हवींषि च ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

अवीक्षित ने अपने पुत्र महाराज मरुत्त को धनुष हाथ में लिये हुए तथा उग्र ज्वालासे समस्त दिशाओं को व्याप्त होते हुए देखा ॥ १ ॥ महाराज मरुत्त के अस्त्र से निकली हुई अग्नि से समस्त पृथ्वीतल दीप्त होगया, वह अग्नि पाताल के भीतर तक फैल गई तथा वह असह्य, घोर और भीषण थी ॥ २ ॥ उन्होंने राजा को क्रोध से टेढ़ी भ्रकुटी किये देखा। फिर अवीक्षितजी ने राजा से कहा, 'हे मरुत्त! क्रोध न करो, अपना अस्त्र खींचलो॥' पिता के वचन सुनकर तथा उनको देखकर जल्दी से मरुत्त ने अवीक्षित से कुछ कहा परन्तु वह उनकी समझ में न आया ॥४॥ हाथ में धनुष लिये हुए ही उन्होंने गौरव सहित पिताको प्रणामकिया और उत्तर दिया कि हे पिता! इन नागों ने मेरा बड़ा अपराध किया है ॥५॥ पृथ्वी पर मेरे शासनमें मेरे बल की उपेक्षा करके इन्होंने यहाँ आकर सात मुनिकुमारों को काट खाया है ॥ ६ ॥ मेरे शासन करते हुए इन दुष्टों ने ऋषियों के हविष्यों को दूषित किया है ॥७॥

जलाशयास्तथाप्येतैः सर्व्व एव हि दूषिताः ।
तदेतत् कारणं किञ्चिन्न वक्तव्यं त्वया पितः ।
न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान् प्रति पन्नगान् ॥८॥

सब जलाशयोंको भी दूषित करदिया है। हे पिता! इस कारण आपको कुछ न कहना चाहिये। इन ब्रह्मघाती नागों के वध करने से आप मुझको न रोकिये ॥८॥

अवीक्षिदुवाच

यद्येभिर्निहता विप्रा यास्यन्ति नरकं मृताः ।
ममैतत् क्रियतां वाक्यं विरमास्त्रप्रयोगतः ॥९॥

अवीक्षित बोले—

इनका वध करने से तो मरे हुए मुनि कुमार नरकको जाँयगे इसलिये मेरा कहना मानकर अपने अस्त्र को शान्त करो ॥९॥

मरुत्त उवाच

अहमेव गमिष्यामि नरकं यदि पापिनाम् ।
न निग्रहे यतास्म्येषां मां निवारय मा पितः ॥१०॥

मरुत्त बोले—

इन पापियों का वध करने से अगर मुझे भी नरक में जाना पड़े तो मैं जाऊँगा, मैं इनके पकड़ने का यत्न न करूँगा, हे पिता! आप मुझे न रोकिये॥

अवीक्षिदुवाच

ममैते शरणं प्राप्ताः पन्नगा मम गौरवात् ।
उपसंह्रियतामस्त्रमलं कोपेन ते नृप ॥११॥

अवीक्षित बोले—

ये नाग मेरी शरण में आकर प्राप्त हुए हैं। हे राजन्! मेरे सम्मानार्थ ही तुम अस्त्र को शान्त करो और क्रोध न करो ॥११॥

मरुत्त उवाच

नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् ।
स्वधर्म्ममुल्लङ्घ्य कथं करिष्यामि वचस्तव ॥१२॥
दण्ड्ये निपातयन् दण्डं भूपः शिष्टांश्च पालयन् ।
पुण्यलोकानवाप्नोति नरकांश्चाप्युपेक्षकः ॥१३॥

मरुत्त बोले—

मैं इन दुष्ट अपराधियों को क्षमा न करूँगा, अपने धर्म का उल्लंघन कर मैं आपके वचनों का पालन किस तरह करूँ? ॥१२॥ जो राजा दंडनीयों को दण्ड देता और सज्जनों का पालन करता है वह पुण्य लोकों को पाता है तथा इसके विपरीत जो इन सिद्धान्तों की उपेक्षा करता है वह नरक को जाता है ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स बहुशः पित्रा वार्य्यमाणो यदा सुतः ।
नोपसंहरते सोऽस्त्रं ततोऽसौ पुनरब्रवीत् ॥१४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार पिता के बहुत कुछ समझाने पर भी जब पुत्र ने अस्त्र को वापिस न लिया तब अवीक्षित ने मरुत्त से कहा ॥१४॥

अवीक्षिदुवाच

हिंससे पन्नगान् भीतान् ममैतान् शरणं गतान् ।
वार्य्यमाणोऽपि तस्मात् ते करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ॥
ममाप्यस्त्राण्यवाप्तानि न त्वमेकोऽस्त्रविद्भुवि ।
ममाग्रतः सुदुर्वृत्त पौरुषञ्च कियत् तव ॥१६॥

अवीक्षित बोले—

जो तुम मेरे मना करने पर भी भयभीत हुए और मेरी शरणमें आये हुए इन नागों का वध कर रहे हो इसलिये मैं इसका प्रतिकार करूँगा ॥१५॥ मैंने अस्त्र-विद्या पढ़ी है, तू ही अकेला पृथ्वी पर अस्त्रों का जानने वाला नहीं है। हे दुष्ट! मेरे आगे तेरा पौरुष क्या है?

मार्कण्डेय उवाच

ततः कार्म्मुकमारोप्य कोपताम्रविलोचनः ।
अवीक्षिदस्त्रं जग्राह कालस्य मुनिपुङ्गव ॥१७॥
ततो ज्वालापरीवारमरिसङ्घप्रमुत्तमम् ।
कालास्त्रन्तु महावीर्य्यं योजयामास कार्म्मुके ॥१८॥
ससक्षोभ जगती संवर्त्तास्त्रप्रतापिता ।

मार्कण्डेयजी बोले—

हे मुनिश्रेष्ठ क्रौष्टुकिजी! फिर क्रोधसे ताम्रवर्ण नेत्र होरहे हैं जिनके, ऐसे अवीक्षित ने धनुष को संधान कर कालास्त्र को उठाया ॥ १७ ॥ महाज्वाला-संयुक्त उस सम्वर्त अस्त्र का संहार करने के हेतु उन्होंने उत्तम और सुदृढ़ कालास्त्र को धनुष पर चढ़ाया ॥ १८ ॥ हे विप्र! समुद्र और पर्वतों सहित वह पृथ्वी जो कि सम्वर्त्त अस्त्र से

साब्धिशैलाऽखिला विप्र कालस्यास्त्रे समुद्यते॥१९॥
कालास्त्रमुद्यतं पित्रा मरुत्तः सोऽपि वीक्ष्य तत्।
प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मे दुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥२०॥
न त्वद्वधाय कालास्त्रं मयि मुञ्चति किं भवान्।
सद्धर्म्मचारिणि सुते सदैवाज्ञाकरे तव ॥२१॥
मया कार्य्यं महाभाग प्रजानां परिपालनम्।
त्वयैवं क्रियते कस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ॥२२॥

अवीक्षित उवाच

शरणागतसन्त्राणं कर्त्तुं व्यवसिता वयम्।
तस्य व्याघातकर्त्ता त्वं न मे जीवन् विमोक्ष्यसे॥२३
मां वा हत्वास्त्रवीर्य्येण जहि दुष्टानिहोरगान्।
त्वां वा हत्वाऽहमस्त्रेण रक्षिष्यामि महोरगान्॥२४
धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम्।
यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥२५॥
क्षत्रियोऽहमिमे भीताः शरणं मामुपागताः।
अपकर्त्ता त्वमेवैषां कथं वध्यो न मे भवान्॥२६॥

मरुत्त उवाच

मित्रं वा बान्धवो वापि पिता वा यदि वा गुरुः।
प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूभृता ॥२७॥
सोऽहं ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः।
स्वधर्म्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि॥२८॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति।
समुत्पत्यान्तरे तस्थुर्मुनयो भार्गवादयः ॥२९॥
ऊचुश्चैनं न मोक्तव्यं त्वयास्त्रं पितरं प्रति।
त्वया च नायं हन्तव्यः पुत्रः प्रख्यातचेष्टितः॥३०॥

मरुत्त उवाच

मया दुष्टा निहन्तव्याः सन्तो रक्ष्या महीक्षिता।
इमे च दुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः॥३१॥

अवीक्षिदुवाच

शरणागतसन्त्राणं मया कार्य्यमयञ्च मे।

तप्त होरही थी कालास्त्र के उपस्थित होते ही कम्पायमान होगई ॥१९॥ अपने पिताको कालास्त्र लिये हुए देखकर मरुत्त ने उच्च स्वर से कहा, 'यह अस्त्र मैंने दुष्टों के शासन के लिये चलाया है' ॥ २० ॥ यह आपके वध के लिये नहीं चलाया है, फिर आप धर्म में प्रवृत्त और आज्ञाकारी अपने पुत्र पर कालास्त्र क्यों चलाते हैं? ॥ २१ ॥ हे महाभाग! मुझको तो प्रजाओं का पालन करना है। आप इस प्रकार मेरा वध करने के लिये अस्त्र किस लिये उठाते हैं? ॥२२॥

अवीक्षित बोले—

हम शरण में आये हुओंकी रक्षा करना चाहते हैं और चूंकि तुम उन्हीं का वध करना चाहते हो इसलिये हम तुमको भी जीवित नहीं छोड़ेंगे ॥२३॥ या तो तुम अपने अस्त्र-बल से मुझे मार कर इन दुष्ट नागों को मारो अथवा मैं तुमको मार कर इन नागों की रक्षा करूँ ॥२४॥ उस मनुष्य का जीवन धिक्कार है जो शरण में आये हुए पर दया न करे, फिर चाहे वह शरणार्थी वैरी ही क्यों न हो ॥२५॥ मैं क्षत्रिय हूँ, ये भयभीत हुए नाग मेरी शरण में आये हैं, तुम इनके विरोधीहो, अब बताओ तुम्हारा वध क्यों न किया जाय? ॥२६॥

मरुत्त बोले—

प्रजा-पालन में विघ्नकारी यदि मित्र, बान्धव, पिता या गुरु भी हो तो वह राजा द्वारा वध किये जाने योग्य है ॥२७॥ अतः मैं आपके ऊपर प्रहार करूंगा। हे पिता! आप फिर क्रोध न करें, मैं तो अपने धर्म का पालन करता हूँ, आपके ऊपर मेरा क्रोध नहीं है ॥ २८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर उन दोनों को एक दूसरे के बध करने पर उतारू देखकर भार्गव आदि मुनि वहाँ आकर उपस्थित हुए ॥ २९ ॥ उन्होंने पुत्र से कहा कि उसका पिता पर अस्त्र चलाना उचित नहीं तथा इसी प्रकार पिता से भी अपने धर्मात्मा पुत्र को वध करने का निषेध किया ॥३०॥

मरुत्त बोले—

हे ब्राह्मणो! राजा होने के कारण मेरा कर्तव्य है कि मैं दुष्टोंको मारूँ और सज्जनों की रक्षा करूँ। ये नाग लोग दुष्ट हैं, मेरा इसमें क्या अपराध है?

अवीक्षित बोले—

हे ब्राह्मणो! मुझे शरण में आये हुए की रक्षा करना चाहिये। ये मेरा पुत्र मेरे शरणागतों

अपराध्यः सुतो विप्रा यो हन्ति शरणागतान्॥३२॥
ऋषय ऊचुः
इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलविलोचनाः ।
सञ्जीवयामस्तान् विप्रान् ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ॥३३॥
तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्य्यौ प्रसीदताम् ।
उभावपि विनिर्मूढ़ प्रतिज्ञौ धर्म्मकोविदौ ॥३४॥
मार्कण्डेय उवाच
सा तु वीरा समभ्येत्य पुत्रमेतदभाषत ।
मद्वाक्यादेष ते पुत्रो हन्तुं नागान् कृतोद्यमः ॥३५॥
तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति तथा मृताः ।
संजीवन्तश्च मुच्यन्ते यद्वयुष्मच्छरणं गताः ॥३६॥
भामिन्युवाच
अहमभ्यर्थिता पूर्व्वमेभिः पातालसंश्रयैः ।
तन्निमित्तमयं भर्त्ता मयात्र विनियोजितः ॥३७॥
तदेतदार्य्यनिर्वृत्तमुभयोरपि शोभनम् ।
मम भर्त्तुश्च पुत्रस्य त्वत्पौत्रास्यात्मजस्य च ॥३८॥
मार्कण्डेय उवाच
ततः सञ्जीवयामासुस्तान् विप्रांस्ते भुजङ्गमाः ।
दिव्यैरोषधिजातैश्च विषसंहरणेन च ॥३९॥
पित्रोर्ननाम चरणौ स ततो जगतीपतिः ।
मरुत्तश्च स तं प्रीत्या परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥४०॥
मानहा भव शत्रूणां चिरं पालय मेदिनीम् ।
पुत्र-पौत्रैश्च मोदस्व मा च ते सन्तु विद्विषः ॥४१॥
ततो द्विजैरनुज्ञातो वीरया च नरेश्वरौ ।
समारूढ़ौ रथं सा च भामिनी स्वपुरं गता ॥४२॥
वीराऽपि कृत्वा सुमहत् तपो धर्म्मभृतां वरा ।
भर्त्तुः सलोकतां प्राप्ता महाभागा पतिव्रता ॥४३॥
मरुत्तोऽपि चकारोर्व्या धर्म्मतः परिपालनम् ।
विनिर्ज्जितारिषड्वर्गो भोगांश्च बुभुजे नृपः ॥४४॥
तस्य पत्नी महाभागा विदर्भतनया तथा ।
प्रभावती सुवीरस्य सौवीरी चाभवत् सुता ॥४५॥
[illegible] केतुवीर्य्यस्य मागधस्यात्मजाऽभवत् ।
च सिन्धुवीर्य्यस्य मद्रराजस्य केकयी ॥४६॥

वध करता है, इसलिये ये मेरा अपराधी है॥ ३२ ॥

ऋषिगण बोले—

भय से चंचल होरहे हैं नेत्र जिनके, ऐसे ये नाग लोग कहते हैं कि दुष्ट सर्पों द्वारा काटे हुए मुनिकुमारों को ये जीवित करदेंगे ॥३३॥ इसलिये आप दोनों राजवर्य प्रसन्न हों और युद्ध को बन्द करें। यद्यपि आप दोनों धर्म ज्ञाता हैं परन्तु व्यर्थ बातों की प्रतिज्ञा पर आरूढ़ हैं॥ ३४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

महारानी वीरा भी अपने पुत्र अवीक्षित के पास आकर बोली, "मेरी आज्ञा से ही तुम्हारे पुत्र ने सर्पों को मारने का उद्यम किया है" ॥ ३५ ॥ इस लिये ऐसा उपाय करो जिससे ये मृत तपस्वी जीवित होजाँय। उनके जीवित होनेपर ही तुम्हारे शरणार्थी छूटेंगे ॥३६॥

भामिनी बोलीः—

एक वार पहिले इन पातालवासी नागों ने मेरी पूजा की थी, उसी विचार से अपनी प्रतिज्ञानुसार इनकी रक्षा करने को मैंने अपने स्वामी को प्रेरित किया है ॥ ३७ ॥ इसलिये इन दोनों के जो कि मेरे स्वामी और पुत्र हैं और आपके पुत्र तथा नाती हैं युद्ध का वन्द होजाना ही अच्छा है ॥३८॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर उन सर्पों ने मरे हुए मुनिकुमारों को विष के शमन करनेसे व दिव्य औषधियों से पुनर्जीवित कर दिया ॥ ३९॥ तब महाराज मरुत्त ने पिता के चरणों में शिर नवाया और अवीक्षितजी उनको छाती से लगाकर यह बोले ॥४०॥ तुम शत्रुओं का मान खण्डन करने वाले होओ, पृथ्वी का पालन करो तथा बहुत से पुत्र, पौत्रों के साथ आनन्द मनाओ और तुम्हारे कोई शत्रु न हों ॥ ४१ ॥ फिर ब्राह्मणों और वीरासे आज्ञा लेकर अवीक्षित,मरुत्त और भामिनी रथ पर बैठकर अपने नगर को गये ॥४२॥ इसके बाद महाभागा, पतिव्रता वीरा कठिन तप करके अपने स्वामी के लोक को गई॥ ४३ ॥ महाराज मरुत्त ने भी छःहों प्रकार के शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी का धर्मपूर्वक पालन किया और अनेक भोगों को भोगा ॥ ४४ ॥ विदर्भ की कन्या सौभाग्यवती प्रभावती तथा सुवीर की कन्या सौवीरी ये दोनों उनकी रानियाँ हुईं ॥ ४५॥ मगध देश के राजा केतुवीर्य की कन्या सुकेशी, मद्र देश के राजा सिन्धुवीर्य की कन्या केकयी ॥ ४६ ॥ तथा

केकयस्य च सौरिन्ध्री सिन्धुभर्त्तुर्वपुष्मती ।
चेदिराजसुता चाभूद्भार्य्या तस्य सुशोभना ॥४७॥
तासां पुत्रास्तस्य चासन् भूभृतोऽष्टादश द्विज ।
तेषां प्रधानो ज्येष्ठश्च नरिष्यन्तः सुतोऽभवत् ॥४८॥
एवंवीर्य्यो मरुत्तोऽभून्महाराजो महाबलः ।
तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु ॥४६॥
यस्य तुल्योऽपरो राजा न भूतो न भविष्यति ।
सत्त्वविक्रमयुक्तस्य राजर्षेरमितौजसः ॥५०॥
तस्यैतच्चरितं श्रुत्वा मरुत्तस्य महात्मनः ।
जन्म चायं द्विजश्रेष्ठ मुच्यते सर्व्वकिल्बिषैः ॥५१॥

राजा केकय की पुत्री सैरिन्ध्री और सिन्धुपति कन्या वपुष्मती तथा चेदिराजकी कन्या ... ये सब भी उनकी भार्या हुईं ॥४७॥ हे क्रौ ... जी उसके उन स्त्रियों से अठारह पुत्र हुए, उनमें से प्रधान और बड़े नरिष्यन्त हुए ॥ ४८॥ महाबली महाराज मरुत्त का पराक्रम इस प्रकार का हुआ कि सातों द्वीपों में उनका अखण्ड राज्य था ॥४६॥ उनके समान कोई दूसरा राजा न हुआ और न होगा। वे पराक्रम और सत्व से युक्त, राजाओं में ऋषि और बड़े तेजस्वी थे ॥ ५० ॥ हे द्विज श्रेष्ठ क्रौष्टुकिजी ! महात्मा मरुत्त का यह चरित्र और जन्म-कथा सुनने से सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥५१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में मरुत्त चरित्र (३) नाम १३१वाँ अ० स० ।



एकसौबत्तीसवाँ अध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच

मरुत्तचरितं कृत्स्नं भगवन् कथितं त्वया ।
तत्सन्ततिमशेषेण श्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥ १ ॥
तत्सन्ततौ क्षितीशा ये राज्यार्हा वीर्य्यशालिनः ।
तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वयाख्यातान् महामुने॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत् सुतः ।
अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ॥ ३ ॥
वर्षाणाञ्च सहस्राणि सप्ततिं दश पंच च ।
बुभुजे पृथिवीं कृत्स्नां मरुत्तः क्षत्रियर्षभः ॥ ४ ॥
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण इष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् ।
नरिष्यन्तं सुतं ज्येष्ठमभिषिच्य ययौ वनम् ॥ ५ ॥
एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत् ।
आरुरोह दिवं विप्र यशसावृत्य रोदसी ॥ ६ ॥
नरिष्यन्तः सुतः सोऽस्य चिन्तयामास बुद्धिमान् ।
पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्येषाञ्च भूभृताम्॥ ७ ॥
अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्व्वजाः ।
यज्विनो धर्म्मतः पृथ्वीं पालयामासुरूर्ज्जिताः॥८॥
दातारश्चापि वित्तानां संग्रामेष्वनिवर्त्तिनः ।
तेषां कश्चरितं शक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ॥ ६ ॥

क्रौष्टुकि जी बोले:—

हे भगवन् ! आपने महाराज मरुत्त का सविस्तर चरित्र तो कहा । अब मेरी इच्छा उनके सन्तानक चरित्र सुनने की है ॥१॥ हे महामुनि मार्कण्डेयजी उनकी सन्तान में जो राजा पराक्रमी हुए उनकी कथा मैं सुनना चाहता हूँ, आप कहनेके योग्य हैं ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

महाराज मरुत्तके अठारह पुत्रों में सबसे बड़ और श्रेष्ठ नरिष्यन्त नाम से विख्यात हुआ ॥ ३ ॥ क्षत्रियों में श्रेष्ठ महाराज मरुत्त ने समस्त पृथ्वी पर पिचासी हज़ार वर्ष तक राज्य किया ॥ ४ ॥ वे धर्मपूर्वक राज्य और उत्तम यज्ञोंको करके अपने बड़े पुत्र नरिष्यन्त को राजतिलक देकर वन को गये ॥ ५ ॥ एकाग्र चित्त होकर वहाँ राजाने महा तप किया और इस प्रकार अपने यश को समस्त पृथ्वी पर फैला कर वे स्वर्ग को गये ॥ ६ ॥ फि, महाराज मरुत्त के बुद्धिमान् पुत्र नरिष्यन्तने अप पिता तथा अन्य पूर्वज राजाओं के चरित्र प मनन करके सोचा ॥ ७ ॥ मेरे वंश में मेरे पूर्व महात्मा और पराक्रमी राजाओं ने बड़े बड़े य किये हैं तथा धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन किया है वे अतुल धन के देनेवाले थे तथा संग्राम में उन्हों कभी पीठ नहीं दिखाईथी, उन महात्माओंके चरि का अनुकरण करने को कौन समर्थ है ? ॥ ६ ॥

किन्तु तेन कृतं कर्म्म धर्म्मयमाहवनादिभिः ।
तदहं कर्त्तुमिच्छामि तच्च नास्ति करोमि किम् ॥१०॥
धर्म्मतः पाल्यते पृथ्वी को गुणोऽत्र महीपतेः ।
असम्यक्पालनात् पापी नरेन्द्रो नरकं व्रजेत् ॥११॥
सति वित्ते महायज्ञाः कर्त्तव्या एव भूभृता ।
दातव्यञ्चात्र किं चित्रं सीदतामीश्वरो गतिः॥१२॥
आभिजात्यं तथा लज्जा कोपश्चारिजनाश्रयः ।
कारयन्ति स्वधर्म्मांश्च संग्रामादपलायनम् ॥१३॥
एतत् सर्व्वं यथा सम्यङ्मत्पूर्व्वैः पुरुषैः कृतम् ।
पित्रा च मे मरुत्तेन तथा तत् केन शक्यते ॥१४॥
तदहं किं करिष्यामि यन्न तैः पूर्व्वजैः कृतम् ।
ये यज्विनो वरा दान्ताः संग्रामाच्चानिवर्त्तिनः॥१५॥
महत्संग्रामसंसर्गा विसंवादितपौरुषाः ।
कर्म्मणाहं करिष्यामि कर्म्म चानभिसन्धितम्॥१६॥
अथवा तैः स्वयं यज्ञाः कृताः पूर्व्वजनेश्वरैः ।
अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत् करोम्यहम्॥१७॥

मार्कण्डेय उवाच

इति सञ्चिन्त्य यज्ञं स चकारैकं नरेश्वरः ।
यादृशं न चकारान्यो वित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥१८॥
द्विजानां जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम् ।
ततः शतगुणं तेषां यज्ञेऽन्नमददन्नृपः ॥१९॥
गावो वस्त्राण्यलङ्कारं धान्यागारादिकं तथा ।
तथा प्रत्येकमददत् तेषां पृथ्वीनिवासिनाम् ॥२०॥
ततस्तेन यदा यज्ञः प्रारब्धो भूभुजा पुनः ।
प्रारब्धे स मखे यष्टुं ततो नालभत द्विजान् ॥२१॥
यान् यान् वृणोति स नृपो विप्रानार्त्विज्यकर्म्मणि ।
ते ते तमूचुर्यज्ञाय वयमन्यत्र दीक्षिताः ॥२२॥
अन्यं वरय यद्वित्तं त्वयास्माकं विवर्ज्जितम् ।
तस्यान्तो नास्ति यज्ञेषु दद्यास्तु नृपते धनम्॥२३॥

मार्कण्डेय उवाच

न चाप ऋत्विजो विप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः ।
बहिर्व्वेद्यां तदा दानं स दातुमुपचक्रमे ॥२४॥
...पि जगृहुर्नैव धनसम्पूर्णमन्दिराः ।

चाहता हूँ कि यज्ञादिक जो धर्म-कर्मादि उन्होंने किये थे वह मैं भी करूँ, परन्तु मुझमें सामर्थ्य नहीं है, मैं क्या करूँ ? ॥१०॥ पृथ्वी को धर्म से ही पालन किया जाता है, इसमें राजा का गुण ही क्या है ? भली प्रकार पालन न करनेसे पापी राजा नरक को जाता है ॥११॥ धन होने पर राजा को महान् यज्ञ करने ही चाहिये, इसमें आश्चर्य की क्या बात है, दरिद्रों का तो ईश्वर ही मालिक है ॥ १२ ॥ अपने कुल की मान-मर्यादा को स्थिर रखना, वैरियों पर क्रोध करना, प्रजाओं को अपने अपने धर्म में प्रवृत्त करना, संग्राम में पीठ न दिखाना ॥ १३ ॥ ये सब हमारे पूर्वज राजा लोग तथा मेरे पिता महाराज मरुत्त कर गये हैं, इस प्रकार कौन करने को समर्थ है ? ॥ १४ ॥ जो उन पूर्वजों ने किया उसको अब यदि मैं न करूँ तो क्या करूँ ? वे बड़े यज्ञ करने वाले, जितेन्द्रिय तथा युद्ध में पीछे न हटने वाले थे ॥ १५ ॥ उन्होंने बड़े युद्ध किये और उनके पुरुषार्थ की चर्चा आज तक है । उनके अनुरूप कर्म हम कहाँ तक करें ॥ तथा उन पूर्व पुरुषों ने स्वयं यज्ञ किये थे, किसी दूसरे से न कराये थे, अतः मैं भी यज्ञ करूँगा॥१७॥

मार्कण्डेयजी बोले—

ऐसा विचारकर महाराज नरिष्यन्तने एक ऐसा यज्ञकिया जिसकी-सी दक्षिणा कभी दूसरे किसी यज्ञ में न दी गई थी ॥१८॥ राजा ने ब्राह्मणों को उनके जीवन भरके लिये प्रचुर धन दिया तथा उससे सौगुना अन्न भी उनको दिया ॥१९॥ उन पृथ्वी के निवासी ब्राह्मणों में से प्रत्येक को गाय, वस्त्र, आभूषण, धान्य आदि दिये गये ॥ २० ॥ इसके बाद जब राजा ने दूसरा यज्ञ करने का विचार किया तो उस यज्ञ का आरम्भ करने के लिये भी उनको ब्राह्मण न मिले ॥२१॥ राजा जिन ब्राह्मणों को यज्ञ कर्म के लिये वरण करते वे ही उनसे कह देते कि हम दूसरे यज्ञ के लिये नियत हो चुके हैं ॥ २२ ॥ वे लोग कहते, "रे राजन् ! आप किसी दूसरे ब्राह्मण को ढूंढ़ लीजिये, हमको धन की इच्छा नहीं है, कारण-जो धन आपने हमको पहिले यज्ञ में दिया है वही नहीं घटता है" ॥ २३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

जब राजाको कोई पुरोहित न मिला तो उन्होंने ब्राह्मणों के घरों पर जाकर उनको दान देने की योजना की ॥२४॥ ऐसा करने पर भी किसी ब्राह्मण ने धन ग्रहण न किया, कारण उनके घर धन-धान्य

द्विजाय दातुं भूयोऽसौ निर्विण्ण इदमब्रवीत् ॥२५॥
अहोऽतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नाधनः क्वचित् ।
अशोभनञ्च यत् कोषो विफलोऽयमयज्विनः ॥२६॥
नार्त्विज्यं कुरुते कश्चिद्यजमानोऽखिलो जनः ।
द्विजानां न च नो दानं ददतां सम्प्रतीच्छते ॥२७॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः कांश्चिद् द्विजान् भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रुर्महामखम् ॥२८॥
अत्यद्भुतमिदञ्चासीद्यदा तस्य महीपतेः ।
स यज्ञोऽभूत् तदा पृथ्व्यां यजमानोऽखिलो जनः २९
द्विजन्मनामभून्नासीत् सदस्यस्तत्र कश्चन ।
यजमाना द्विजाः केचित् केचित् तेषान्तु याजकाः ३०
नरिष्यन्तो नरपतिरियाज स यदा तदा ।
तत्प्रदातुर्धनैर्यागं कुर्य्युः पृथ्व्यामशेषतः ॥३१॥
प्राच्यां कोट्यस्तु यज्ञानामासन्नष्टादशाधिकाः ।
प्रतीच्यां सप्त वै कोट्यो दक्षिणायां चतुर्दश ॥३२॥
उत्तरस्याञ्च पञ्चाशदेककालं तदाभवन् ।
मुने ब्राह्मण यज्ञानां नरिष्यन्तो यदायजत् ॥३३॥
एवं स राजा धर्म्मात्मा नरिष्यन्तोऽभवत् पुरा ।
मरुत्ततनयो विप्र विख्यातबलपौरुषः ॥३४॥

से भरे पड़े थे, फिर राजाने निश्चिन्त होकर कहा ॥ २५ ॥ अहा ! कितनी सुन्दर बात है कि पृथ्वी पर कोई ब्राह्मण निर्धन नहीं है, परन्तु यह बात अच्छी नहीं ! यज्ञ न करने के कारण यह धन निष्फल है ॥ २६ ॥ कोई पुरोहित बनना स्वीकार नहीं करता है. सभी लोग यजमान हैं, दूसरे ब्राह्मणों के दिये हुए दानको कोई नहीं लेता ॥२७॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इसके अनन्तर राजा ने कुछ ब्राह्मणों को भक्ति से बार बार प्रणाम करके अपने यज्ञ का पुरोहित होना स्वीकार कराया और उन्होंने उस महायज्ञकी तयारी की ॥२८॥ यह अत्यन्त आश्चर्य की बात हुई कि जिस समय महाराज नरिष्यन्त ने यज्ञ किया उस समय पृथ्वी के समस्त निवासी यजमान हो गये ॥२९॥ ब्राह्मणों में कोई दान लेने वाला न हुआ सब ब्राह्मणों में कुछ तो यजमान होगये और कुछ उनके यज्ञ करानेवाले हुए ॥३०॥ महाराज नरिष्यंत ने जो पहिले यज्ञ किया था उससे पृथ्वी के सब ब्राह्मण धनवान् होकर स्वयं यज्ञ करने लगे ॥३१॥ हे मुनि ! पूर्व दिशा में अठारह करोड़, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ और उत्तर में पचास करोड़ यज्ञ एक साथ उसी समय हुए, जिस समय कि महाराज नरिष्यन्त ने अपना वह यज्ञ किया ॥३२ ॥ ३३॥ हे क्रौष्टुकिजी ! पूर्वकाल में मरुत्त के पुत्र धर्मात्मा राजानरिष्यन्त की कथा इस प्रकारहै । उनका बल और पुरुषार्थ विख्यात था ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में नरिष्यन्त चरित्र नाम १३२वाँ अ० समाप्त ।



एकसौतेतीसवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्तस्य तनयो दुष्टारिदमनो दमः ।
शक्रस्येव बलं तस्य दया शीलं मुनेरिव ॥१॥
बाभ्रव्यामिन्द्रसेनायां स जज्ञे तस्य भूभृतः ।
नव वर्षाणि जठरे स्थित्वा मातुर्महायशाः ॥ २ ॥
यद्ग्राहयामास दमं मातरं जठरे स्थितः ।
दमशीलश्च भविता यतश्चायं नृपात्मजः ॥ ३ ॥
ततस्त्रिकालविज्ञानः स हि तस्य पुरोहितः ।
दम इत्यकरोन्नाम नरिष्यन्तसुतस्य तु ॥४॥

मार्कण्डेयजी बोले—

महाराज नरिष्यन्त के पुत्र दुष्टों और वैरियों का दमन करने वाले दम नाम हुए । उनका बल इन्द्रके समान तथा शील मुनियोंके सदृश था ॥१॥ महाराज नरिष्यन्त ने इनको बाभ्रव्य की कन्या इन्द्रसेना से उत्पन्न किया और ये यशस्वी अपनी माता के गर्भ में नौ वर्ष तक स्थित रहे ॥२ ॥ चूंकि ये अपनी माता के उदर में नौ वर्ष तक स्थित रहे अतः यह स्पष्ट ही है कि इन्होंने अपनी दम व शीलता का परिचय गर्भ से ही दिया ॥ ३ ॥ इस कारण महाराज नरिष्यन्तके त्रिकालदर्शी

स दमो राजपुत्रस्तु धनुर्वेदमशेषतः ।
जगृहे नरराजस्य सकाशाद्वृषपर्वणः ॥ ५ ॥
दुन्दुभेर्दैत्यवर्य्यस्य तपोवननिवासिनः ।
सकाशाज्जगृहे कृत्स्नमस्त्रग्रामश्च तत्त्वतः ॥ ६ ॥
शक्तेः सकाशाद्वेदांश्च वेदाङ्गान्यखिलानि च ।
तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहे योगमात्मवान् ॥ ७ ॥
तं स्वरूपमहात्मानं गृहीतास्त्रं महाबलम् ।
स्वयंवरे कृता पित्रा जगृहे सुमना पतिम् ॥८॥
सुता दशार्णाधिपतेर्वलिनश्चारुकर्म्मणः ।
पश्यतां सर्व्वभूतानां ये तदर्थमुपागताः ॥ ९ ॥
तस्याश्च सानुरागोऽभून्मद्रराजस्य वै सुतः ।
सुमनायां महानादो महाबलपराक्रमः ॥१०॥
तथा विदर्भाधिपतेः पुत्रः संक्रन्दनस्य च ।
वपुष्मान् राजपुत्रश्च महाधनुरुदारधीः ॥११॥
तेऽथ तया वृतं दृष्ट्वा दुष्टारिदमनं दमम् ।
मन्त्रयामासुरन्योन्यं तत्रानङ्गविमोहिताः ॥१२॥
एतामस्य बलात् कन्यां गृहीत्वा रूपशालिनीम् ।
गृहं प्रयामस्तस्येयमस्माकं यं ग्रहीष्यति ॥१३॥
भर्तृबुद्ध्या वरारोहा स्वयंवरविधानतः ।
तस्येच्छया नो भवित्री भार्य्या धर्म्मोपपादिता॥१४
अथ नेच्छति सा कश्चिदस्माकं मदिरेक्षणा ।
ततस्तस्य भवित्री सा यो दमं घातयिष्यति ॥१५॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते निश्चयं कृत्वा त्रयः पार्थिवनन्दनाः ।
जगृहुस्तां सुचार्व्वङ्गीं दमपार्श्वानुवर्त्तिनीम् ॥१६॥
ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुक्रुशुः ।
चुक्रुधुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥१७॥
ततो दमस्तान् भूपालानवलोक्य समन्ततः ।
अनाकुलमना वाक्यमिदमाह महामुने ॥१८॥

दम उवाच

भो भूपा धर्म्मकृत्येषु यद्वदन्ति स्वयंवरम् ।
अधर्म्मो वाऽथवा धर्म्मो यदेभिर्गृह्यते बलात्॥१९॥
न मे कार्य्यमन्यभार्य्या भविष्यति ।

ने इनका नाम दम रक्खा ॥४॥ राजकुमार दम ने धनुर्वेदकी निःशेष विद्या महाराज वृषपर्वासे सीखी ॥५॥ तथा उन्होंने तपोवन निवासी दैत्य श्रेष्ठ दुन्दुभि से तत्वपूर्वक समस्त विद्या ग्रहण की ॥६॥ शक्ति से उन्होंने वेद और वेदाङ्गों को सीखा तथा राजर्षि अर्ष्टिषेण से योग विद्या प्राप्त की ॥७॥ फिर उन स्वरूपवान् महात्मा, शस्त्रधारी, महाबली दम को सुमना ने अपने पिता द्वारा रचेहुए स्वयंवर में अपना पति चुना ॥ ८ ॥ वह सुमना दशार्ण के राजा चारुकर्मा की पुत्री थी। उस स्वयम्वरमें उस के निमित्त बहुत लोग आये थे ॥ ९ ॥ मद्रदेश के राजकुमार महानाद का जो कि बड़े बली और पराक्रमी थे उस सुमना में अनुराग होगया ॥१०॥ तथा यही हाल विदर्भ देश के राजा संक्रन्दन के पुत्र राजकुमार वपुष्मान का जो बड़े धनुर्धारी और उदार बुद्धि वाले थे हुआ ॥ ११ ॥ दुष्टों का नाश करने वाले दम को वहाँ आया हुआ देखकर कामदेव के वशीभूत होकर उन्होंने आपस में विचार किया ॥ १२ ॥ इस रूपवती कन्या को बल पूर्वक ग्रहण कर हम घर ले चलें अन्यथा ये दम को वरण करलेगी ॥ १३ ॥ इसकी इच्छा स्वयम्बर के विधान से दम को वरने की है और उस दशा में यह धर्मानुकूल उसकी पत्नी होजायगी ॥१४॥ यह मदिरा के से नेत्र वाली हम में से किसी को नहीं चाहती है। यह तो उसी की भार्या होगी जो दम का वध करेगा ॥१५॥

मार्कण्डेयजी बोले—

उन तीनों राजकुमारों ने इस प्रकार निश्चय करके उस सुन्दरी कन्या को जो दम के निकट थी पकड़ लिया ॥ १६ ॥ तब कुछ राजालोग जो उनके पक्ष में थे चिल्लाये, दूसरे इस व्यवहार से रुष्ट हुए तथा कुछ मध्यस्थ होगये ॥ १७ ॥ हे महामुनि क्रौष्टुकिजी ! फिर उन राजाओं को चारों ओर देखकर राजकुमार दम ने उदास मन होकर यह वचन कहे ॥ १८ ॥

दम बोले—

हे राजाओ ! स्वयम्वर की गणना धर्मकृत्यों में में है. जो इस कन्या को इन लोगों ने बल पूर्वक ग्रहण किया है यह धर्म है या अधर्म ? यदि यह धर्म है तो यह कन्या किसी दूसरे की स्त्री भले ही होजावे, परन्तु यदि अधर्म है तो उन लोगों को

धर्म्मो वा तदलं प्राणैर्यैः रक्ष्यन्तेऽरिलङ्घने ॥२०॥
ततो दशार्णाधिपतिश्चारुधर्म्मा नराधिपः।
निःशब्दं कारयित्वा तत् सदः प्राह महामुने ॥२१॥
दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्म्माधर्म्माश्रितं नृपाः।
तद्वदध्वं यथा धर्म्मो ममास्य च न लुप्यते ॥२२॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम्।
परस्परानुरागेण गान्धर्व्वो विहितो विधिः ॥२३॥
क्षत्रियाणां परमयं न विट्शूद्रद्विजन्मनाम्।
दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥२४॥
इति धर्म्माद्दमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव।
योऽन्यथा वर्त्तते मोहात् कामात्मा सम्प्रवर्त्तते॥२५॥
तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानो हि भूभृताम्।
पक्षे ये भूभृतो विप्र दशार्णाधिपतेर्वचः ॥२६॥
मोहात् किमाहुर्धर्म्मोऽयं गान्धर्व्वः क्षत्रजन्मनः।
न त्वेष शास्ता नान्यो हि राक्षसः शस्त्रजीविनाम्॥२७
बलादिमां यो हरति हत्वा तु परिपन्थिनः।
तस्यैवासौ राक्षसेन विवाहेनावनीश्वराः ॥२८॥
प्रधानतर एषोऽत्र विवाहद्वितये मतः।
क्षत्रियाणामतो धर्म्मो महानन्दादिभिः कृतः॥२९॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ प्रोचुः पुनर्भूपा यैः पूर्व्वमुदिता नृपाः।
परस्परानुरागेण जातिधर्म्माश्रितं वचः ॥३०॥
सत्यं शस्तो राक्षसोऽपि क्षत्रियाणां परो विधिः।
किन्त्वसौ जनकस्वाम्ये कुमार्य्यानुमतो वरः॥३१॥
हत्वा तु पितृसम्बन्धं बलेन ह्रियते हि या।
स राक्षसो विधिः प्रोक्तो नान्यभर्त्तृकरे स्थिता॥३२॥
पश्यतां सर्व्वभूपानामनया यद्वृतो दमः।
गान्धर्व्वस्येह निष्पत्तौ विवाहो राक्षसोऽत्र कः॥३३॥
विवाहितायाः कन्यायाः कन्यात्वं नैव विद्यते।
कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्धः पृथिवीश्वराः॥३४॥
त इमे ये बलादेनां दमादादातुमुद्यताः।

धिक्कारहै जो धर्म का उल्लंघन होते हुए अपने प्राणों की रक्षा करें ॥२०॥ हे क्रौष्टुकिजी! इसके अनन्तर दशार्ण देश के स्वामी, राजा चारुधर्मा ने वहाँ शोरगुल को शान्त कर यह वचन कहे ॥२१॥ हे राजाओ! राजकुमार दम ने धर्म व अधर्म का निर्णय करने के हेतु जो कहा है उसपर आप लोग अपना मत प्रगट करो जिससे हमारा और इनका धर्म लुप्त न हो ॥२२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

तब कुछ राजा लोग राजा चारुकर्मा से बोले, "परस्पर प्रेम होजाने से गन्धर्व विवाह की विधि है ॥२३॥ परन्तु यह क्षत्रियों में ही उचित है वैश्य, शूद्र और ब्राह्मणों में नहीं। इस विचार से आपकी पुत्री का विवाह राजकुमार दम के साथ होचुका॥ हे राजन्! इस न्याय से आपकी यह कन्या राजकुमार दम की होचुकी। जो मोहवश इसके विपरीत चलता है वह कामी है ॥२५॥ हे विप्र! फिर दशार्ण के राजा के पक्ष में जो महात्मा राजा लोग थे उनसे दूसरे राजा यह वचन बोले ॥२६॥ क्षत्रियों के लिये गान्धर्व विधि को उचित बताना भ्रम है। क्षत्रियों के लिये तो राक्षसी विधि ही उचित है॥ हे राजाओ! शत्रुओं को मारकर बलपूर्वक जो इस कन्या को ग्रहण करताहै वही इसके साथ राक्षसी विधि से विवाह कर सकता है ॥२८॥ क्षत्रियों में यही विवाह विशेष रूप से विहित है। महानन्द आदि ने जो इस कन्या को हरण करने का कार्य किया है वह क्षत्रियोचित है ॥२९॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर वे राजा जो कि पहिले बोले थे अब पुन प्रेमपूर्वक जातिधर्म के अनुसार वचन बोले ॥३०॥ यह सत्य है कि क्षत्रियोंके लिये विवाहकी राक्षसी विधि श्रेष्ठ है परन्तु कन्या ने अपने पिता की जानकारीमें राजकुमार दमको अपना पति चुना है ॥३१॥ उसके पिता के सम्बन्ध को विच्छेद करके जो कन्या बलपूर्वक हरण की जाती है उसे राक्षसी विधि कहते हैं, दूसरे को पति मानकर उसके पास बैठीहुई के लेजानेको नहीं ॥३२॥ सब राजाओं के देखते-देखते इस कन्या ने दम को पसन्द किया तो यह गन्धर्व विवाह हुआ, इसमें राक्षसी विधि अब कैसे चलेगी ॥ ३३ ॥ हे राजाओ! विवाहित कन्या का कन्यात्व नहीं रहता, विवाह होजाने पर कन्या का सम्बन्ध होजाता है ॥ ३४ ॥ जो कि यह राजा लोग बलपूर्वक दम से इस कन्या को

बलिनस्ते यदि ततः कुर्व्वन्तु न तु साधु तत् ॥३५॥

मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वाऽसौ दमः कोप-कषायीकृतलोचनः।
आरोपयामास धनुर्वचनश्चेदमब्रवीत् ॥३६॥
ममापि भार्य्या बलिभिः पश्यतो ह्रियते यदि।
तत्कुलेन भुजाभ्यां वा को गुणः क्लीवजन्मनः॥३७॥
धिङ्मास्त्राणि धिक् शौर्य्यं धिक् शरान्धिक्शरासनम्
धिग्व्यर्थं मे कुले जन्म मरुत्तस्य महात्मनः॥३८॥
यदि भार्य्यामिमे मूढाः समादाय बलान्विताः।
प्रयान्ति जीवतो धिक् तां मम व्यर्थधनुष्मताम्॥३९
इत्युक्त्वा तान् महीपालान् महानन्दमुखान् बली।
अथाब्रवीत् तदा सर्व्वान् महारिदमनो दमः॥४०॥

दम उवाच

एषातिशोभना बाला चार्व्वङ्गी मदिरेक्षणा।
किं तस्य जन्मना भार्य्या न यस्येयं कुलोद्भवा॥४१॥
इति सञ्चिन्त्य भूपालास्तथा यतत संयुगे।
यथा निर्ज्जित्य मामेतां पत्नीं कुरुत मानिनः॥४२॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याभाष्य ततस्तत्र शरवर्षमुमुञ्चत।
छादयन् पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ॥४३॥
तेऽपि वीरा महीपालाः शर-शक्त्यृष्टि-मुद्गरान्।
मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्च दमश्चिच्छेद लीलया ॥४४॥
तेऽपि तत्प्रहितान् बाणांस्तेषाञ्चासौ शरोत्करान्।
चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने ॥४५॥
वर्त्तमाने तदा युद्धे दमस्य क्षितिपात्मजैः।
प्रविवेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतो दमः ॥४६॥
तमायान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृधे।
मुमोच शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥४७॥
तदस्त्राणि ततस्तानि शरजालानि तत्क्षणात्।
महानन्दः प्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवंचयत् ॥४८॥
ततो रोषात् समारुह्य तं दमस्य तदा रथम्।
महावीर्य्यो दमेन युयुधे सह ॥४९॥

उद्यत हैं यह उचित तो नहीं है परन्तु ये बलवान् हैं इसलिये ऐसा करते हैं॥ ३५॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह सुनकर राजकुमार दम के नेत्र क्रोध से लाल होगये और वे धनुष को चढ़ाकर यह वचन बोले॥ ३६॥ यदि मेरी पत्नी इन बलवान् राजाओं से मेरे देखते-देखते हरण की जाती है तो मुझ जैसे नपुंसक के कुल और भुजाओं का क्या गुण है॥ ३७॥ ऐसी दशा में मेरे अस्त्रों, शूरता, बाणों और धनुष को अनेक बार धिक्कार है तथा महात्मा राजा मरुत्त के वंश में मेरे जन्म लेने को धिक्कार है॥ ३८॥ यदि मेरे जीते जी ये मूर्ख राजा लोग मेरी स्त्री को बल पूर्वक लेजाँय तो मेरे इस धनुषधारीपन को धिक्कार है॥ ३९॥ यह कहकर शत्रुओं का नाश करने वाले, बलवान् दम उन महानन्द आदि राजाओं से यह बोले॥४०॥

दम बोले—

यह अत्यन्त सुन्दरी, मदिरा के से नेत्र वाली कन्या जिसकी भार्या न हो उसके जन्म लेने और क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने से क्या लाभ है?॥४१॥ इसलिये हे मानी राजाओ! युद्ध में आप ऐसा यत्न करें जिससे कि मुझे जीतकर आप इस कन्या को अपनी पत्नी बना सकें॥४२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह कहकर राजकुमार दम ने बाणों की वर्षा कर उन राजाओं को इस प्रकार ढक दिया जिस तरह अन्धकार वृक्षों को ढक देता है॥ ४३॥ उन वीर राजाओं ने भी बाण, शक्ति, ऋष्टि, मुद्गर आदि उन पर छोड़े जिनको कि राजकुमार दम ने खेल मात्र में काट डाला॥ ४४॥ हे क्रौष्टुकि मुनि! राजकुमार दम के चलाये हुए बाणों को राजालोग तथा राजाओं के बाणों को नरिष्यन्त-पुत्र दम काट रहे थे॥ ४५॥ जिस समय कि राजकुमार दम और राजाओं का युद्ध होरहा था उस समय महानन्द हाथ में तलवार लिये हुए वहाँ पहुँचे जहाँ कि राजकुमार दम थे॥ ४६॥ उस महायुद्ध में तलवार लेकर महानन्द को आते हुए देखकर दम ने उस पर इस प्रकार बाणों की वर्षा की जिस प्रकार कि इन्द्र जल की वर्षा करते हैं॥४७॥ फिर महानन्द ने अपनी तलवार से राजकुमार दम के अस्त्रों और बाणों को उसी क्षण काट कर दूसरे राजकुमारों को बचा लिया॥४८॥ फिर महावीर महानन्द क्रोध से रथ पर सवार होगया और दम के साथ युद्ध

बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लाघवात् ।
दमो मुमोच हृदये शरं कालानलप्रभम् ॥५०॥
तं लग्नमात्मनोत्कृष्य विभिन्नेन ततो हृदि ।
दमं प्रति विचिक्षेप महानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥५१॥
पतन्तञ्चैनमुल्काभं शक्त्या चिच्छेद तं दमः ।
शिरो वेतसपत्रेण महानन्दस्य चाच्छिनत् ॥५२॥
तस्मिन् हते महानन्दे प्राचुर्य्येण पराङ्मुखाः ।
बभूवुः पार्थिवास्तस्थौ वपुष्मान् कुण्डिनाधिपः५३॥
दमेन युयुधे चासौ बलगर्व्वमदान्वितः ।
दाक्षिणात्यमहीपाल-तनयो रणगोचरः ॥५४॥
युध्यमानस्य तस्योग्रं करवालं स वै लघु ।
चिच्छेद सारथेश्चैव शिरः संख्ये तथा ध्वजम् ॥५५॥
छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् ।
तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ॥५६॥
यावदन्यत् समादत्ते स वपुष्मान् वरायुधम् ।
तावच्छरेण तं विद्ध्वा दमो भूमावपातयत् ॥५७॥
स पातितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गः सवेपथुः ।
विनिवृत्तमतिर्युद्धाद्बभूव क्षितिपात्मजः ॥५८॥
तमालोक्य तथाभूतमयुद्धमतिमात्मवान ।
उत्सृज्यादाय सुमनां सुमनाः प्रययौ दमः ॥५९॥
ततो दशार्णाधिपतिः प्रीतिमानकरोत् तयोः ।
दमस्य सुमनायाश्च विवाहं विधिपूर्व्वकम् ॥६०॥
कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपतेः पुरे ।
स्थित्वाऽल्पकालं प्रययौ सभार्य्यो निजमन्दिरम् ६१
दशार्णाधिपतिश्चासौ दत्त्वा नागांस्तुरङ्गमान् ।
रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्च दासीदासांस्तथा बहून् ॥६२॥
वस्त्रालङ्कारचापादि वरोपस्करमात्मनः ।
अन्यैस्तैश्च तथा भाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्ज्जयत् ॥६३॥

करने लगा ॥४९॥ महानन्द के साथ युद्ध करते हुए उसकी कमज़ोरी का अनुभव करके दमने उसके हृदय में एक बाण मारा जो कालरूप अग्नि के समान था ॥५०॥ उसके हृदय में छिद जाने पर महानन्द ने तत्क्षण उसे निकाल डाला और दमके ऊपर एक तेज़ तलवार फेंकी ॥ ५१ ॥ उस तलवार को बिजली की तरह आते देखकर दम ने उसे शक्ति से काट डाला तथा अपनी तलवार से महा-नन्द का शिर काट लिया ॥ ५२ ॥ महानन्द के मरने पर सब राजा युद्ध से विमुख होकर भाग खड़े हुए केवल कुण्डिन देश का राजा वपुष्मान् वहाँ पर रहा आया ॥ ५३ ॥ वह दक्षिण देश का राजकुमार बल के गर्व से उन्मत्त होकर दम के साथ युद्ध करने लगा ॥ ५४ ॥ उस युद्ध में दम ने वपुष्मान् के हाथकी तलवार, सारथी का शिर तथा उसके रथ की ध्वजा को काट डाला ॥ ५५ ॥ तलवार के टूटने पर वपुष्मान् ने बहुकंटक नाम गदाको उठालिया परन्तु जब तक कि वह गदा उसके हाथ ही में थी दम ने उसे काट कर गिरा दिया ॥ ५६ ॥ जब तक वपुष्मान् किसी दूसरे हथियार को ग्रहण करे उस को दम ने बाण से बेधकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥५७॥ पृथ्वी पर गिरते ही उसका शरीर व्याकुल होगया और काँपने लगा । तब उस राजकुमार ने भी युद्ध करना बन्द कर दिया ॥ ५८ ॥ उसको इस प्रकार युद्ध से निवृत्त होते देखकर राजकुमार दम प्रसन्न चित्त से सुमना को लेकर वहाँ से चल दिये॥५९॥ तब दशार्ण देश के राजा ने प्रीति युक्त होकर दम और सुमना का विधि पूर्वक विवाह करदिया॥६०॥ विवाह होजाने पर कुछ काल तक राजकुमार दम दशार्ण देश के राजा के नगर में ठहरे और फिर स्त्री सहित अपने घर को चले ॥६१॥ चलते समय उनको दशार्ण देश के राजा ने बहुत से हाथी, घोड़े रथ, गाय, दासी और दास आदि दिये ॥ ६२ ॥ तथा दशार्ण देश के राजा ने उनको बहुत से वस्त्र आभूषण, धनुप, उत्तम उत्तम आयुध और बर्तन आदि देकर बिदा किया ॥ ६३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में दम चरित्र (१) नाम १३३वां अ० समाप्त ।



एकसौचौंतीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

तां लब्ध्वा तथा पत्नीं सुमनां सुमहामुने ।
णम्य स पितुः पादौ मातुश्च क्षितिपात्मजः ॥ १ ॥
ा च तौ श्वशुरौ सुभ्रूर्ननाम सुमना तदा ।
ाभ्यां तौ च तदा विप्र आशीभिरभिनन्दितौ ॥२॥
होत्सवश्च सञ्जज्ञे नरिष्यन्तस्य वै पुरे ।
ातदारे च सम्प्राप्ते दशार्णाधिपतेः पुरात् ॥ ३ ॥
म्बन्धिनं दशार्णेशं जितांश्च पृथिवीश्वरान् ।
ात्वा पुत्रेण मुमुदे नरिष्यन्तो महीपतिः ॥ ४ ॥
ोऽपि रेमे सुमनया महाराजसुतो दमः ।
रोद्यान-वनोद्देश-प्रासाद-गिरिसानुषु ॥ ५ ॥
थ कालेन महता रममाणा दमेन सा ।
वाप गर्भं सुमना दशार्णाधिपतेः सुता ॥ ६ ॥
ोऽपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः ।
यःपरिणतिं प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ॥ ७ ॥
ं जगामेन्द्रसेना पत्नी चास्य यशस्विनी ।
ानप्रस्थविधानेन स तत्र समतिष्ठत ॥ ८ ॥
ाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तः संक्रन्दनसुतो वने ।
ापुष्मान् स मृगान् हन्तुं ययावल्पपदानुगः ॥ ९ ॥
तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तं तापसं मलपङ्किनम् ।
न्द्रसेनाञ्च तत्पत्नीं तपसातिसुदुर्बलाम् ॥१०॥
ाच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः ।
ा नप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ॥११॥
ो मौनव्रती भूपो न हि तस्योत्तरं ददौ ।
न्द्रसेना च तत् सर्व्वमाचष्टास्मै यथातथम् ॥१२॥

मार्कण्डेय उवाच

ात्वा तश्च नरिष्यन्तं वपुष्मान् पितरं रिपोः ।
सोऽस्मीति वदन् कोपात् जटासु परिगृह्य च ॥१३॥
हेति चेन्द्रसेनायां रुदन्त्यां वाष्पगद्गदम् ।
ार्ष कोपात् खड्गञ्च वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥१४॥
हा र्जितः समरे येन येन मे सुमना हृता ।

मार्कण्डेय बोले—

हे क्रौष्टुकिजी ! तब राजकुमार दम ने जो कि अपने साथ अपनी स्त्री सुमनी को ले आये थे। अपने पिता और माता के चरणों में प्रणाम किया ॥ १ ॥ सुन्दरी सुमना ने भी अपने सास, श्वसुर को प्रणामकिया। हे विप्र ! माता पिताने उन दोनों को प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥ जब राजकुमार दम अपनी पत्नी को लेकर दशार्ण देश से आये तब महाराज नरिष्यन्त के नगर में बड़ा उत्सव हुआ ॥३॥ महाराज नरिष्यन्त अपने पुत्र से यह सुनकर कि उसने बहुतसे राजाओं को जीत कर दशार्ण देश के राजा को अपना सम्बन्धी बनाया है, बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ फिर राजकुमार दम सुमना के साथ सुन्दर उद्यानों, वनप्रदेशों, महलों और पर्वतों पर रमण करते रहे ॥ ५ ॥ फिर बहुत काल तक दम के साथ विहार करते-करते दशार्ण राज की पुत्री सुमना गर्भवती होगई ॥ ६ ॥ राजा नरिष्यन्त भी अनेक भोगों को भोग कर वृद्धावस्था को प्राप्त हुए। तब वे राजकुमार दम को राजतिलक देकर ॥७॥ अपनी यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेना के साथ वनको गये और वहाँ वानप्रस्थ में स्थित होकर रहने लगे ॥ ८ ॥ एक बार उसी वन में दक्षिण का रहने वाला, संक्रन्दन का पुत्र, दुष्टात्मा वपुष्मान् मृगया करता हुआ जा पहुँचा ॥ वह तपस्वी नरिष्यन्त को भस्म लगाये हुए तथा तप से अत्यन्त निर्बल हुई उनकी पत्नी इन्द्रसेना को देखकर ॥१०॥ पूछने लगा कि मुझे बताओ तुम कौन हो, ब्राह्मण, क्षत्रिय या वानप्रस्थमें स्थित वैश्य हो ? ॥ ११॥ महाराज नरिष्यन्त ने जो मौन व्रत धारण किये हुएथे उसको कुछ उत्तर न दिया फिर इन्द्रसेना ने उसको सचसच सब वृत्तान्त सुना दिया ॥१२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

जब वपुष्मान्ने यह मालूम किया कि वह उस के शत्रु का पिता नरिष्यन्त है तब उसने क्रोध से उनकी जटायें पकड़ लीं और कहा कि मैं आगया हूं ॥ १३ ॥ तब इन्द्रसेना हाय-हाय करके रोने लगी और उसकी हिलकी बँध गई। क्रोध से तलवार खींचकर वपुष्मान् ने यह कहा ॥ १४ ॥ जिसने कि युद्ध में मुझे जीता और जो कि मेरी सुमना को हरण कर लेगया उसके पिता का मैं बध करता हूँ

दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तं दमः ॥१५॥
येनाखिलमहीपाल-पुत्राः कन्यार्थमागताः ।
अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्म्मतेः ॥१६॥
योधनेषु स्वरूपेण दमो यस्य दुरात्मनः ।
स दमो वारयत्वेष हन्मि तस्य रिपोर्गुरुम् ॥१७॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स दुराचारो वपुष्मानवनीपतिः ।
क्रन्दन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च ॥१८॥
ततो धिग्धिङ्मुनिजना अन्ये च वनवासिनः ।
तमूचुः स च तं दृष्ट्वा जगाम स्वपुरं वनात् ॥१९॥
गते तस्मिन् विनिश्वस्य सेन्द्रसेना वपुष्मति ।
प्रेषयामास पुत्रस्य समीपं शूद्रतापसम् ॥२०॥
गच्छेथा आशु मे पुत्रं दमं ब्रूहि वचो मम ।
अभिज्ञो ह्यसि मद्भर्त्तृ-वृत्तान्तं प्रोच्यतेऽत्र किम् २१॥
तथापि वाच्यः पुत्रो मे यद्ब्रवीम्यतिदुःखिता ।
लङ्घनामीदृशीं प्राप्तां विलोक्यैतां महीपतेः ॥२२॥
स भर्त्ताऽधिकृतो राजा चतुर्णां परिपालकः ।
त्वमाश्रमाणां किं युक्तं तापसान् यन्न रक्षसि॥२३॥
भर्त्ता मम नरिष्यन्तस्तापसस्तपसि स्थितः ।
विलपन्त्यास्तथानाथो यथा नास्ति तथा त्वयि२४॥
आकृष्य केशेषु बलादपराधं विना ततः ।
हतो वपुष्मता ख्यातिमिति ते भूपतिर्गतः ॥२५॥
एवं स्थिते तत् क्रियतां यथा धर्म्मो न लुप्यते ।
तथा च नैव वक्तव्यमतोऽस्मात् तापसी ह्यहम् ॥२६॥
पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दूषितः ।
निहतो येन यत् तस्य कर्त्तव्यं तद्विचिन्त्यताम्॥२७॥
सन्ति ते मन्त्रिणो वीराः सर्व्वशास्त्रार्थकोविदाः ।
तैः सहालोच्य यत् कार्य्यमेवम्भूते कुरुष्व तत्॥२८॥
नास्माकमधिकारोऽत्र तापसानां नराधिप ।
कुरुष्वैतदितीत्थं त्वमेवं भूपतिभाषितम् ॥२९॥
विदूरथस्य जनको यवनेन यथा हतः ।
तथायं तव पुत्रस्य कुलं तेन विनाशितम् ॥३०॥

वह हो तो यहाँ आवे ॥१५॥ उस कन्याके लिये आये हुए सब राजकुमारों को जिसने तिरस्कृत किया और भगा दिया उस दुष्ट के पिता को मारता हूँ ॥१६॥ जिस दुष्ट दम को देखतेही शत्रु का दमन होजाता है उस दमके पिताको मैं मारता हूँ वह आकर इसकी रक्षा करे ॥ १७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह कहकर उस दुरात्मा वपुष्मान् ने इन्द्रसेना के रोते हुए महाराज नरिष्यन्त का शिर काटलिया ॥ १८ ॥ फिर सब मुनि लोग व अन्य वनवासी उसको धिक् धिक् कहने लगे और वपुष्मान् फिर अपने नगर को चला गया ॥१९॥ वपुष्मान् के चले जाने पर इन्द्रसेना ने एक श्वास ली और अपने पुत्र के पास एक शूद्र तपस्वी को भेजा ॥ २० ॥ उसने उस तपस्वी से कहा, "तुम शीघ्र जाओ मेरे पति की मृत्यु का जो कुछ वृत्तान्त है वह मेरे पुत्र दम से कहो, तुमने सब स्वयं देखा है, मैं तुम से क्या कहूँ ॥ २१ ॥ तो भी मेरे पुत्र से यह कहना जो कुछ कि मैं अत्यन्त दुःख से कह रही हूँ कि राजा की ऐसी दशा मुझसे देखी नहीं जाती मेरे पति ने तुमको चारों आश्रमों का पालन करने के वास्ते राजा बनाया था फिर यह कितनी अनुचित बात है कि तुम आश्रमवासी तपस्वियों की रक्षा नहीं करते ? ॥ २३ ॥ मेरे स्वामी नरिष्यन्त तपस्वी होकर तपस्या में स्थित थे, अब मैं ऐसे विलाप करती हूँ जैसे कि वह जिसका कोई न हो ॥ २४ ॥ यह विख्यात होते हुए भी कि तुम राजा हो वपुष्मान् ने तुम्हारे पिता को बिना किसी अपराध के बलपूर्वक केश पकड़ कर खींचा और मार डाला ॥२५ ॥ ऐसी स्थिति में तुम वही करो जिस से धर्मका लोप न हो । मुझे कुछ न कहना चाहिये क्योंकि मैं तपस्विनी हूँ ॥२६॥ तुम्हारे वृद्ध तपस्वी पिता को जिसने बिना किसी अपराध के मारा है उसकी भी वही गति हो, इसपर तुमको विचार करना चाहिये ॥२७॥ तुम्हारे मन्त्रिगण वीर और सब शास्त्रों के जानने वाले हैं उनके साथ परामर्श करके जो उचित हो वह करो ॥ २८ ॥ हे राजन्! हम तपस्वियों का यह अधिकार नहीं है, इसका प्रतीकार तुमको ही करना है कारण-यह राजा का कर्तव्य है ॥२९॥ जिस प्रकार विदूरथ के पिता को यवन ने मारा था उसी प्रकार तुम्हारे पिता को वपुष्मान् ने मारा है । विदूरथ ने यवन के कुल का नाश कर दिया था ॥३०॥ असुरराज जम्भ के

जम्भस्यासुरराजस्य पिता दष्टो भुजङ्गमैः ।
तेनाप्यखिलपाताल-वासिनाः पन्नगा हताः ॥३१॥
पराशरेण पितरं शक्तिञ्च रक्षसा हतम् ।
श्रुत्वाग्नौ पातितं कृत्स्नं रक्षसामभवत् कुलम् ॥३२॥
अन्यस्यापि स्ववंशस्य लंघना क्रियते हि या ।
तां नालं क्षत्रियः सोढुं किं पुनः पितृमारणम् ३३॥
नायं पिता ते निहतो नास्मिन शस्त्रं निपातितम् ।
त्वामत्र निहतं मन्ये त्वयि शस्त्रं निपातितम् ॥३४॥
बिभेत्यस्य हि कः शस्त्रं न्यस्तं येन वनौकसाम् ।
तव भूपस्य पुत्रस्य मारिते तु बिभेतु वा ॥३५॥
तवेयं लंघना युक्ता यदस्मिंस्तत् समाचर ।
वपुष्मति महराज सभृत्य-ज्ञाति-बान्धवे ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

इति संक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेना विसृज्य तम् ।
पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥३७॥

को सर्पों ने काटा था इस कारण जम्भ ने समस्त पातालवासी नागों को मार डाला ॥ ३१ ॥ पराशर ने जिनके कि पिता शक्ति को राक्षस ने मार डाला था यह सुनकर समस्त राक्षस कुल को अग्नि में झोंक कर भस्म कर दिया ॥ ३२ ॥ और भी किसी प्रकार की खुटाई को जो कि उसके साथ कीजाय एक क्षत्रिय नहीं सह सकता हैं, पिता के वध के आगे क्या है ? ॥३३॥ ये तुम्हारे पिता नहीं मारेगये हैं और न उनपर कोई अस्त्र ही गिरा है, मेरे मत से यह तुम हो जो मर गये हो तथा तुम्हारे ऊपर ही शस्त्र का प्रहार हुआ है ॥ ३४ ॥ जिस पापी ने तपस्वी पर हथियार चलाया है उसको वध करने में क्या डरते हो ? ॥३५॥ जिस प्रकार वपुष्मान् ने तुम्हारी दुर्गति की है उसी प्रकार भाई बन्धुओं और जाति वालों सहित उसकी हो ऐसा तुमको प्रयत्न करना चाहिये ॥३६॥

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार संदेश देकर इन्द्रसेना ने उस शूद्र तापस को विदा किया और वह मनस्विनी स्वयं अपने पति के शवके साथ अग्निमें प्रवेश कर गई ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में दम चरित्र(२) नाम का १३४वां अध्याय समाप्त ।



एकसौ पैंतीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

इन्द्रसेनासमाज्ञप्तः स गत्वाशूद्रतापसः ।
समाचष्टे यथाप्रोक्तं दमाय निधनं पितुः ॥ १ ॥
तापसेन समाख्याते दमस्तेन पितुर्वधे ।
क्रोधेनातीव जज्वाल हविषेवाग्निरुद्धतः ॥ २ ॥
स तु क्रोधाग्निना धीरो दह्यमानो महामुने ।
करं करेण निष्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥
अनाथ इव मे तातो मयि पुत्रे तु जीवति ।
घातितः सुनृशंसेन परिभूय कुलं मम ॥ ४ ॥
न्यायवादो जने तस्याप्येष क्लैब्यात् क्षमाम्यहम् ।
दुष्टं त्वशान्तौ शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ।
पितरंचापि निहतं दृष्ट्वा जीवन्ति शत्रवः ॥ ५ ॥
... किमेते बहुना हा तातेति च किं पुनः ।

मार्कण्डेयजी बोले—

इन्द्रसेना से आज्ञा पाकर उस शूद्र तापस ने दम के पास जाकर जिस प्रकार कि उससे महाराज दम के पिता की मृत्यु के विषय में कहा गया था सब उनको कह सुनाया ॥ १ ॥ उस तपस्वी से अपने पिता के वध का समाचार सुनकर महाराज दम की क्रोधाग्नि इस तरह भड़क उठी जिस तरह हविष्य पड़ने से अग्नि प्रज्वलित होजाती है ॥ २ ॥ हे महामुनि क्रौष्टुकिजी ! वे धैर्यवान् महाराज क्रोध की अग्नि से दग्ध होने लगे और दोनों हाथ मीड़ कर यह वचन बोले ॥३॥ मुझ पुत्र के जीवित होते हुए भी मेरे पिता को निर्दयी वपुष्मान् ने मेरे कुल का अपमान करके अनाथ की तरह मारा है ॥ ४ ॥ यदि मैं इसको क्षमा करता हूँ तो न्यायवादी लोग मुझको नपुंसक कहेंगे, हमारा अधिकार दुष्टों को मिटाने और सज्जनों का पालन करने के लिये है, पिता को मार कर यदि शत्रु जीवित रहता हो तो ॥ ५ ॥ फिर हा तात, हा तात ! इस प्रकार बहुत

विलापेनात्र यत् कृत्यं तदेपोऽत्र करोम्यहम् ॥ ६ ॥

यद्यहं तस्य रक्तेन देहोत्थेन वपुष्मतः ।
न करोमि गुरोस्तृप्तिं तत् प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥ ७ ॥

तच्छोणितेनोदककर्म्म तस्य तातस्य संख्ये विनिपातितस्य । मांसेन सम्यग्द्विजभोजनञ्च न चेत् प्रवेक्ष्यामि हुताशनं तत् ॥ ८ ॥

साहाय्यमस्यासुर-देव-यक्ष-गन्धर्व्व - विद्याधर-सिद्धसंघाः । कुर्व्वन्ति चेत् तानपि चास्त्रपूगै-र्भस्मीकरोम्येष रुपा समेतः ॥ ६ ॥

निःशूरमाधर्म्मिकमप्रशस्तं तं दाक्षिणात्यं समरे निहत्य । भोक्ष्ये ततोऽहं पृथिवीञ्च कृत्स्नां वह्निं प्रवेक्ष्याम्यनिहत्य तं वा ॥१०॥

सुदुर्म्मतिं तापसवृद्धमौनिनं वनस्थितं शान्त-वचोविविग्रम् । हन्ताहमद्याखिलवन्धुमित्र-पदाति-हस्त्यश्व-बलैः समेतम् ॥११॥

एपोऽहमादाय धनुः सखड्गो रथी तथैवारि-बलं समेत्य । करोमि वै यत् कदनं समस्ताः पश्यन्तु मे देवगणाः समेताः ॥१२॥

यो यः सहायो भवितास्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूयः । तस्याशु निःशेषकुलक्षयाय समुद्यतोऽहं निजवाहुसैन्यः ॥१३॥

यदि कुलिशकरोऽस्मिन् संयुगे देवराजः
पितृपतिरथ चोग्रं दण्डमुद्यम्य कोपात् ।
धनपति-वरुणार्का रक्षितुं तं यतन्ते
निशितशरवरौघैर्घातयिष्ये तथापि ॥१४॥

नियतमतिरदोषः काननाखण्डलौको-
निपतितफलभक्षः सर्व्वभूतेषु मैत्रः ।
प्रभवति मयि पुत्रे हिंसितो येन तातः
पिशितरुधिरतृप्तास्तस्य सन्त्वद्य गृध्राः ॥१५॥

कहने और विलाप करने से क्या है। अब जो करने योग्य कार्य है उसे मैं करता हूँ ॥ ६ ॥ यदि वपुष्मान् के शरीर में से निकाले हुए रक्त से अपने पिता की तृप्ति न करूँ तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा ॥७॥ यदि वपुष्मान् के रुधिरसे अपने मृत पिता का तर्पण न करूँ और युद्ध में उसको मार कर उसका माँस ब्राह्मणों को श्राद्ध में न खिलाऊँ तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ८ ॥ अगर उसकी सहायता पर राक्षस देवता, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर और सिद्धों के समूह भी होंगे तो उनको भी अपने अस्त्रों की अग्नि से भस्म कर दूँगा ॥ ६ ॥ या तो मैं उस कायर, अधर्मी, दुष्ट दक्षिण-निवासी वपुष्मान् को समर में मार कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करूँगा अन्यथा अग्नि में प्रवेश कर के मर जाऊँगा ॥१०॥ जिस दुष्टने मेरे वृद्ध तपस्वी, मौना-वलम्बी, वनवासी, शान्तवाची पिता को मारा है उसको मैं उसके सब भाई, बन्धु, मित्र, पैदल, घोड़ों और सेना सहित मारूँगा ॥ ११ ॥ मैं धनुष, बाण और तलवार लेकर तथा रथ पर आरूढ़ हो कर जिस तरह शत्रु का सेना सहित दलन करता हूँ वह सब लोग देवताओं सहित अवश्य देखें ॥ १२ ॥ जो उस वपुष्मान् की सहायता करेगा उससे युद्ध करने के लिये और उसके समस्त कुल का नाश करने के लिये मैं अपनी भुजाओं से तयार हूँ ॥१३॥ यदि उस युद्ध में वज्र लेकर इन्द्र, उग्र दण्ड लेकर क्रोध करते हुए यमराज, कुवेर, वरुण और सूर्य भी उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे तो उनको भी मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से मारूँगा ॥ १४ ॥ मुझ पुत्र के होते हुए जिसने नियमशील, निर्दोष, वन-वासी, गिरे हुए फल खाने वाले, सब प्राणियों के मित्र ऐसे मेरे पिता को मारा है उसके मांस रुधिर से गिद्ध तृप्त हों ॥१५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणमें दम चरित्र (३) नाम १३५वाँ अध्याय स० ।

एकसौछत्तीसवां अध्याय

मार्कण्डेय उवाच

इति प्रतिज्ञाय तदा नरिष्यन्तसुतो दमः ।
कोपामर्षविवृताक्षः श्मश्रुमावृत्य पाणिना ॥ १ ॥
हा हतोऽस्मीति पितरं ध्यात्वा दैवं विनिन्द्य च ।
प्रोवाच मन्त्रिणः सर्व्वानानिनाय पुरोहितम् ॥ २ ॥

दम उवाच

यदद्य युक्तं तद्ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम् ।
श्रुतं भवद्भिर्यत् प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना ॥ ३ ॥
वृद्धस्तपस्वी स नृपो वानप्रस्थे व्रते स्थितः ।
मौनव्रतधरः शास्ता मन्मात्रा चेन्द्रसेनया ॥ ४ ॥
प्रोक्त संपृष्टया सर्व्वं तथा तथ्यं वपुष्मते ।
स च खड्गं समाकृष्य तथा सव्येन पाणिना ॥ ५ ॥
कृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत् ।
माता च मां समुद्दिश्य धिक्शब्दं कुर्व्वती सती ॥६॥
मन्दभाग्यं गतश्रीकं प्रविष्टा हव्यवाहनम् ।
समालिंग्य नरिष्यन्तं प्रविष्टा त्रिदशालयम् ॥ ७ ॥
सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुरुदीरितम् ।
हस्त्यश्वरथपादातं सैन्यश्च परिकल्पताम् ॥ ८ ॥
अनिवार्य्य पितुर्वैरमहत्वा पितृघातकम् ।
अकृत्वा च वचो मातुर्जीवितुं किमिहोत्सहे ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मन्त्रिणस्तद्वचः श्रुत्वा हा हेत्युक्त्वा तथा च तत् ।
कृतवन्तो विमनसः सभृत्यबलवाहनाः ॥१०॥
निर्ययुः सपरीवाराः खड्गशक्त्यर्ष्टिपाणयः ।
गृहीत्वा चाशिषो विप्रात् त्रिकालज्ञात् पुरोधसः ॥११॥
अहिराड़िव निश्वस्य दमः प्रायाद्वपुष्मतम् ।
सीमापालादि सामन्तान् निघ्नन् याम्यदिशि त्वरन् ॥
...न दमो ज्ञातो वपुष्मता ।

मार्कण्डेयजी बोले—

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके नरिष्यन्त के पुत्र दम की आँखें क्रोध के मारे टेढ़ी होगईं और उन्होंने अपने हाथ से मूछों को पेंठा ॥ १ ॥ अपने पिता को स्मरण करके उन्होंने कहा, "हाय! मैं मारा गया।" फिर अपने भाग्य की निन्दा की। इसके बाद सब मन्त्रियों और पुरोहित को बुला कर उनसे कहा ॥ २ ॥

दम बोले—

जो कुछ शूद्र तपस्वी ने कहा है वह सब आप लोगों ने सुना होगा। पिता के स्वर्ग पहुंचने पर अब क्या करना उचित है सो कहिये ॥३॥ वे वृद्ध तपस्वी मेरे पिता वानप्रस्थ व्रत में रहकर मौन धारण किये हुए थे। मेरी माता इन्द्रसेना से ॥४॥ पूछने पर उसने अपना नाम, पता इत्यादि सच-सच वपुष्मान् को बता दिया। इसपर वपुष्मान्ने तलवार खींचकर बाँये हाथ से ॥ ५ ॥ महाराज की जटा पकड़ कर अनाथों की तरह उनका शिर काट डाला और मेरी माता भी मेरे प्रति धिक्कार पूर्वक शब्द कह कर ॥ ६ ॥ तथा मुझको मन्दभागी और श्रीविहीन जानकर महाराज नरिष्यन्त को आलिङ्गन करती हुई अग्नि में प्रवेश करके स्वर्ग को चली गई ॥ ७ ॥ अब मैं वही करूँगा जिसको करने की मेरी माता ने आज्ञा दी है। अतः हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना को तयार कीजिये ॥ ८ ॥ पिता का बदला लिये विना तथा पिता के मारने वाले को मारे विना और माताके कहे हुए को किये विना मुझे जीवित रहने का उत्साह नहीं है ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—

मन्त्रियों ने यह वचन सुनकर हाहाकार मचा दिया तथा व्याकुल मन होते हुए भी उन्होंने सेवकों और वाहनों सहित सेनाको तयार किया ॥ फिर वे मंत्री लोग तलवार, शक्ति, ऋष्टि, आदि हाथ में लेकर अपने परिवारों सहित बाहर निकले, त्रिकालदर्शी पुरोहित से उन्होंने आशीर्वाद ग्रहण किया ॥ ११ ॥ महाराज दम शेषनाग की तरह फुंफकार मारते हुए वपुष्मान् की सीमाओं तक जा पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने रक्षकों को मार कर दक्षिण दिशा की ओर शीघ्रता से क़दम बढ़ाया ॥ १२ ॥ संक्रन्दन के पुत्र वपुष्मान् को भी यह

आयातः सपरीवारः सामात्यः सपरिच्छदः ॥१३॥
अकम्पितेन मनसा स्वसैन्यान्यादिदेश ह ।
दूतंच प्रेषयामास निर्गम्य नगराद्बहिः ॥१४॥
त्वं शीघ्रतरमागच्छ नरिष्यन्तः प्रतीक्षते ।
सभार्य्यः क्षत्रबन्धो त्वं समायाहि ममान्तिकम् ॥१५॥
एते मद्बाहुनिर्म्मुक्ताः पीता बाणाः शिलाशिताः ।
भित्त्वा शरीरं संग्रामे पास्यन्ति रुधिरं तव ॥१६॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वा दमस्तु तत् सर्व्वं दूतप्रोक्तं ययौ त्वरन् ।
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पूर्व्वोक्तां निश्वसन्नुरगो यथा ॥१७॥
आहूय समरे चैनं पुमान् स न विकत्थते ।
ततो युद्धमतीवासीद्दमस्य च वपुष्मतः ॥१८॥
रथी च रथिना नागो हस्तिना हयिना हयी ।
अयूयुध्यत विप्रर्षे स युद्धस्तुमुलोऽभवत् ॥१९॥
पश्यतां सर्व्वदेवानां सिद्धगन्धर्व्वयक्षिनाम् ।
चकम्पे वसुधा ब्रह्मन् युध्यमाने दमे क्रुधा ॥२०॥
न गजो न रथी नाश्वस्तस्य बाणसहस्तु यः ।
ततो दमेन युयुधे सेनाध्यक्षो वपुष्मतः ॥२१॥
हृदि विव्याध च दमं इषुणा गाढ़मन्तिके ।
तस्मिन् निपतिते सैन्यं पलायनपरं ययौ ।
सस्वामिकं ततः प्राह दमः शमदमस्तथा ॥२२॥

दम उवाच

क्व याहि दुष्ट पितरं घातयित्वा तपस्विनम् ।
अशस्त्रञ्च तपस्यन्तं क्षत्रियोऽसि निवर्त्तताम् ॥२३॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो निवर्त्त्य स दम्भो योधयामास सानुजः ।
सपुत्रः सह सम्बन्धि-बान्धवैर्युयुधे रथी ॥२४॥
ततः शरासनान्मुक्तैर्बाणैर्व्याप्तं नभो दिशः ।
दमंच सरथं साश्वं बाणजालैरपूरयत् ॥२५॥
ततः पितृवधोत्थेन कोपेन स दमस्तथा ।

मालूम होगया कि महाराज दम परिवार, मंत्रियों, और सेवकों सहित आ पहुँचे हैं ॥ १३ ॥ उसने विना घबराये हुए अपनी सेनाओं को तैयार होने का आदेश किया तथा नगर से बाहर निकल कर दूत को दम के पास भेजा ॥ १४ ॥ और उससे कहा कि तुम दम से यह कह कर शीघ्र आओ कि "महाराज नरिष्यन्त पत्नी सहित तुम्हारी स्वर्ग में प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि तुम क्षत्रिय हो तो शीघ्र मेरे पास आओ ॥ १५ ॥ यह मेरी भुजासे निकले हुए बाण शिलाओं का भी भेदन कर देते हैं। यह युद्ध में तुम्हारे शरीर को छेद कर तुम्हारे रुधिर से अपनी तृषा शान्त करेंगे" ॥ १६ ॥

मार्कण्डेयजी बोलेः—

महाराज दम ने भी दूतकी कही हुई उस वार्ता को सुनकर अपनी पहिली प्रतिज्ञा की याद की और सर्प की तरह श्वास लेते हुए शीघ्र बढ़े ॥१७॥ फिर वपुष्मान् ने भी युद्ध में दम को ललकारा। इसके अनन्तर दम और वपुष्मान् का घोर युद्ध हुआ ॥ १८ ॥ हे विप्रर्षि! रथी रथी से, हाथी हाथी से और घुड़सवार घुड़सवार से भिड़ गया और और वहाँ पर तुमुल युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥ जिस को कि देवता, सिद्ध, गन्धर्व और यक्ष आदि देख रहे थे। जिस समय कि क्रुद्ध होकर दम युद्ध कर रहे थे उस समय हे ब्रह्मन्! पृथ्वी काँपने लगी ॥ उसके बाण को कोई हाथी, रथी या अश्व नहीं सहनकर सकताथा। फिर अपनी सेनाका अध्यक्ष होकर वपुष्मान् दम के साथ युद्ध करनेलगा ॥२१॥ तब एक बाण से दम ने वपुष्मान् को छाती में मारा जिससे कि वह गिर पड़ा और उसकी सब सेना भाग गई। इसके अनन्तर शम और दमशील महाराज दम ने उस वपुष्मान् से कहा ॥२२॥

दम बोले—

हे दुष्ट! मेरे निःशस्त्र, तपस्या करतेहुए, तपस्वी पिता को मार कर तू कहाँ जाता है? तू यदि क्षत्रिय है तो आ युद्ध कर ॥२३॥

मार्कण्डेयजी बोले—

फिर लौट कर वपुष्मान् रथ पर सवार होकर अपने भाई, पुत्र, सम्बन्धियों और बान्धवों सहित युद्ध करने लगा ॥ २४ ॥ फिर उसके धनुष से छूटे हुए बाणों से सब दिशायें व्याप्त होगईं और उसने अपने बाणों के जाल से दम को अश्व और रथ सहित घेर लिया ॥ २५ ॥ परन्तु दम ने जो अपने पिता के वध के कारण कुपित हो रहे थे,

चिच्छेद तान् शरांस्तेषां विव्याधाङ्गेषु तानपि॥२६॥
एकैकेन बाणेन सप्त पुत्रांस्तथानुजान्।
सम्बन्धिनस्तथामित्राण्यनयद्यमसादनम् ॥२७॥
वपुष्मान् स रथी क्रोधान्निहतात्मजबान्धवः।
युयुधे च दमेनाजौ शरैराशीविषोपमैः ॥२८॥
चिच्छेद तस्य तान् बाणान् स चास्य च महामुने।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ ॥२९॥
परस्परशराघात-विच्छिन्नधनुषौ तथा।
गृहीतखड्गावुत्तीर्य्य चिक्रीड़ाते महाबलौ ॥३०॥
दमः क्षणं नृपं ध्यात्वा निहतं पितरं वने।
केशेष्वाकृष्य चाक्रम्य निपात्य धरणीतले।
शिरोधरायां पादेन भुजमुद्यम्य चाब्रवीत् ॥३१॥

दम उवाच

पश्यन्तु देवताः सर्व्वा मानुषाः सिद्ध-पन्नगाः।
पाट्यमानं हि हृदयं क्षत्रबन्धोर्वपुष्मतः ॥३२॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा च स दमो हृदयं पाट्यचासिना।
स्नातुकामैश्च स सुरैः क्षतजेन निवारितः ॥३३॥
ततश्च कारितस्तस्य रक्तेनैवोदकक्रियाम्।
वपुष्मतश्च मांसेन पिण्डदानं चकार ह ॥३४॥
ब्राह्मणान् भोजयामास रक्षःकुलसमुद्भवान्।
आनृण्यं प्राप्य स पितुः पुनः प्रायात् स्वकं पुरम् ३५॥
एवंविधा हि राजानो बभूवुः सूर्य्यवंशजाः।
अन्येऽपि सुधियः शूरा यज्वानो धर्म्मकोविदाः३६॥
वेदान्तपारगास्तांश्च न संख्यातुमिहोत्सहे।
एतेषां चरितं श्रुत्वा नरः पापाद्विमुच्यते ॥३७॥

उन बाणों को काट डाला तथा और भी बाण छोड़े ॥ २६ ॥ उन्होंने एक-एक बाण से वपुष्मान् के सातों पुत्र, भाइयों, सम्बन्धियों और मित्रों को यमराज के घर भेज दिया ॥ २७ ॥ अपने पुत्र और बान्धवों के मर जाने से कुपित होकर वपुष्मान् रथ पर सवार होकर दम से पुनः युद्ध करने लगा और उसने विष के बुझे हुए बाण दम पर छोड़े ॥२८॥ हे महामुनि क्रौष्टुकिजी ! परन्तु दम ने उन सब बाणों को काट गिराया। वे दोनों एक दूसरे के बध की इच्छा से भीषण युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥ एक दूसरे के बाणों के आघात से दोनों के धनुष टूट गये। फिर दोनों महाबली योद्धा तलवार हाथ में लेकर युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥ उसी क्षण दम को वन में अपने पिता के वध का ख़्याल हो उठा और उन्होंने वपुष्मान् के केश पकड़ कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और उसके शिर पर पाँव रखकर अपनी भुजा उठाकर यह वचन बोले ॥३१॥

दम बोले—

सब देवता, मनुष्य, सिद्ध और नाग लोग क्षत्रिय वपुष्मान् का हृदय फटता हुआ देखें ॥३२॥

मार्कण्डेयजी बोले—

यह कह कर दम ने उसका हृदय तलवार से चीर डाला। उसके हृदय से निकले हुए रुधिर में जो देवता स्नान करना चाहते थे उन्हें दम ने निषेध किया ॥३३॥ फिर दम ने वपुष्मान् के रक्तसे अपने पिता का तर्पण किया तथा उसके माँस से पिण्ड दान किया ॥ ३४ ॥ और उस पिण्ड को राक्षस कुल में उत्पन्न ब्राह्मणों को खिलाया। इस प्रकार वे अपने पिता के ऋण को चुका कर अपने नगर को गये ॥ ३५ ॥ ऐसे-ऐसे राजा लोग सूर्य वंश में होगये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य विद्वान्, शूरवीर, यज्ञकर्ता और धर्मज्ञ ॥ ३६ ॥ तथा वेदान्त में पारङ्गत राजा लोग हुए जिनकी संख्या बताने को मैं समर्थ नहीं हूँ। इन राजाओंकी कथासुनकर मनुष्य पाप से मुक्त होजाता है ॥३७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में दम चरित्र(४) नाम १३६वां अ० स०।

एकसौसैंतीसवाँ अध्याय

पक्षिण ऊचुः

स मुनिर्मार्कण्डेयो महातपाः।
क्रौष्टुकिञ्चापि चक्रे माध्याह्निकीः क्रियाः॥

पक्षी बोले—

यह सब कहकर महातपस्वी मुनिमार्कण्डेयजी ने क्रौष्टुकिको विदाकर अपनी नैमित्तिक मध्याह्नकी

अस्माभिश्च श्रुतं तस्माद्यत् ते प्रोक्तं महामुने।
अनादिसिद्धमेतद्धि पुरा प्रोक्तं स्वयम्भुवा ॥ २॥
मार्कण्डेयाय मुनये यदुक्तं कथितं तव।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३॥
पठतां शृण्वताञ्चापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।
आदावेव कृता ये च प्रश्ना हि चतुरस्त्वया ॥ ४॥
पितापुत्रस्य संवादस्तथा सृष्टिः स्वयम्भुवः।
तथामनूनामुत्पत्तीः राज्ञाञ्च चरितं मुने ॥ ५॥
अस्माभिरेतत् ते प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।
एतान् सर्व्वान् नरः शृण्वन् पठन्नपि सभासु च।
विधूय सर्व्वपापाणि ब्रह्मण्येव लयंव्रजेत् ॥ ६॥
अष्टादश पुराणानि यानि प्राह पितामहः।
तेषान्तु सप्तमं ज्ञेयं मार्कण्डेयं सुविश्रुतम् ॥ ७॥
ब्राह्मयं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयंच सप्तमम् ॥ ८॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं स्मृतम्।
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं नृसिंहैकादशं तथा ॥ ९॥
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दमत्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनकं कौर्म्मं पंचदशं तथा ॥१०॥
मात्स्यंच गारुडञ्चैव ब्रह्माण्डंच ततः परम्।
अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत् ॥११॥
त्रिसन्ध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
चतुःप्रश्नसमोपेतं पुराणं मार्कण्डसंज्ञकम् ॥१२॥
श्रुतेन नश्यते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम्।
ब्रह्महत्यादिपापानि तथान्यान्यशुभानि च ॥१३॥
तानि सर्व्वाणि नश्यन्ति तूलं वाताहतं यथा।
पुष्करस्नानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते ॥१४॥
वन्ध्या वा मृतवत्सा वा शृणोति यदि तत्त्वतः।
सापि वै लभते पुत्रं सर्व्वलक्षणसंयुतम्।
धनधान्यमवाप्नोति स्वर्गलोकं तथाक्षयम् ॥१५॥
सुरापश्चोग्रकर्म्मा च श्रुत्वैतत् सकलं नरः।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥१६॥
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं धनधान्यसुतादिकम्।

किया की ॥ १ ॥ हे महामुनि जैमिनिजी! हमने भी उन्हीं से यह कथा सुनी थी जिसको कि आपसे कह दिया यह कथा अनादि सिद्ध है और सबसे पहिले ब्रह्माजी ने ॥ २ ॥ मुनि मार्कण्डेयजी से कही, जिस पुण्यवती, पवित्र आयु बढ़ाने वाली, और सब कामनाओं को सिद्ध करने वाली कथा को हमने आपसे वर्णन कर दिया ॥ ३ ॥ इस कथा को जो कोई पढ़ता या सुनता है उसके सब पाप छूट जाते हैं। आपने जो शुरू में चार प्रश्न किये थे ॥ ४ ॥ उनके उत्तर स्वरूप हमने पिता-पुत्र सम्वाद, ब्रह्मा की सृष्टि, मनुओं की उत्पत्ति और उनका वर्णन, तथा राजाओं के चरित्र आदि का वर्णन ॥ ५ ॥ आपसे कर दिया है, अब आप क्या और सुनना चाहते हैं। इन प्रश्नोत्तरोंको सुनकर या सभाओं में पढ़कर मनुष्य सब पापों से छूट कर ब्रह्म में लय हो जाता है ॥ ६ ॥ पितामह ब्रह्मा ने जो अठारह पुराण कहे हैं उनमें प्रख्यात मार्कण्डेय पुराण को सातवां समझना चाहिये ॥७॥ (१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णु पुराण, (४) शिवपुराण, (५) श्रीमद्भागवत पुराण, (६) नारदपुराण, (७) मार्कण्डेय पुराण ॥ ८ ॥ (८) अग्निपुराण, (९) भविष्यपुराण (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) नृसिंह ॥ ९ ॥ (१२) वाराह, (१३) स्कन्द, (१४) वामन, (१५) कूर्म, ॥ १० ॥ (१६) मत्स्य, (१७) गरुड़, (१८) ब्रह्माण्ड। इन अठारह पुराणों के नामों को जो कोई पढ़ता है और ॥ ११ ॥ तीनों संध्याओं में इस का जप करता है उसको अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। चारों प्रश्नों से युक्त मार्कण्डेय पुराण को ॥ १२ ॥ सुनने से करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा अन्य अरि ॥ १३ ॥ इस प्रकार नष्ट होजाने हैं जैसे हवा के लगने से रुई उड़ जाती है। इस पुराण के केवल सुनने से ही पुष्कर स्नान का फल होता है ॥१४॥ इस कथा को तत्त्वपूर्वक जो कोई बाँझ स्त्री ... के बच्चे मर जाते हों सुने तो उसको सब ... लक्षणों से युक्त पुत्र की प्राप्ति होती है तथा खूब धनधान्य प्राप्त करती और मरने पर स्वर्ग को जाती है ॥ १५ ॥ मदिरा पान करने वाले, उग्र कर्म करने वाले मनुष्य भी इस कथा को सुनकर सब पापों से मुक्त होजाते हैं और मरने पर स्वर्ग को जाते हैं ॥ १६ ॥ हे द्विजोत्तम! इस कथा के सुनने वाला आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन,

शश्चैव ह्यव्यवच्छेदी प्राप्नोति द्विजसत्तम ॥१७॥
श्रुत्वैतत् सकलं विप्र यत् कुर्य्यात् तन्निशामय ।
अग्निं समाधाय ततो होमं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥१८॥
ध्यात्वा पुराणं गोविन्दं हृत्पद्मे मुनिसत्तम ।
पूजां वपुष्मतैर्वैद्यैर्गन्धमाल्याम्बरैस्तथा ॥१९॥
वाचकन्तु सपत्नीकं पूजयेन्मुनिसत्तम ।
वाचकाय ततो देया गौः सवत्सा पयस्विनी ॥२०॥
भूमिः शस्यवती विप्र हिरण्यं रजतं तथा ।
यथाशक्त्या च दातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् ॥२१॥
वाचकं तोषयित्वा तु स्वस्तीति समुदीरयेत् ।
अपूज्य वाचकं यस्तु श्लोकमेकं शृणोति हि ॥२२॥
नासौ पुण्यमवाप्नोति शास्त्रचौरः स्मृतो बुधैः ।
न तस्य देवाः प्रीणन्ति पितरो नैव पुत्रकान् ॥२३॥
दत्तं श्राद्धं न चेच्छन्ति स्नानतीर्थफलं न च ।
लभते शास्त्रचौरोऽसौ निन्दितो वेदपाठकैः ॥२४॥
मार्कण्डेयसमाप्तौ तु ह्युत्सवं कारयेद्बुधः ।
धेनुं पयस्विनीं दद्यात् सर्व्वपापविमुक्तये ॥२५॥
वसनानि च रत्नानि सपत्नीकद्विजातये ।
कुण्डले कञ्चुकोष्णीषं शय्यां सोपस्करामपि ॥२६॥
उपानत् करकं स्वर्ण-मुद्रिकां सप्तधान्यकम् ।
कांस्यपात्रं भोजनार्थं घृतपात्रसमन्वितम् ॥२७॥
एवं कृते द्विजश्रेष्ठ कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ॥२८॥
फलं वै समवाप्नोति श्रुत्वा सम्यग्विधानतः ।
न चैव यमभीतिः स्यान्न तस्य नरकाद्भयम् ॥२९॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
अविच्छिन्नः सदा वंशो भविष्यति न संशयः ॥३०॥
गच्छेदिन्द्रलोकंच ब्रह्मलोकं सनातनम् ।
च्युतस्ततः पुनर्नैव स भविष्यति मानवः ॥३१॥
पुराणश्रवणादेव परं योगमवाप्नुयात् ।
नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके ॥३२॥
गुरुविद्वेषके चैव तथा भग्नव्रतेषु च ।
पितृमातृपरित्यागे सुवर्णस्तेयिने तथा ॥३३॥

पुत्र और वंश आदि की प्राप्ति करता है ॥ १७ ॥ हे विप्र ! इसको सुनकर जो करना चाहिये वह हमसे सुनो । चतुर मनुष्य को चाहिये कि पहिले तो अग्नि प्रज्वलित करके हवन करे ॥१८॥ हे मुनिसत्तम ! फिर गोविन्दरूप पुराणका हृदय में ध्यान करके पुराण की नैवेद्य, गन्ध, माला और वस्त्र आदि से पूजा करे ॥ १९ ॥ हे जैमिनिजी ! फिर वाचक की उसकी स्त्री के सहित पूजा करे और वाचक को बच्चे वाली, एक दुधारू गाय दे ॥२०॥ हे विप्र ! राजाओं को कथा बाँचने वालों को उपजाऊ भूमि, सोना, चाँदी, ग्राम और वाहनादि यथाशक्ति देने चाहियें ॥ २१ ॥ बाँचने वाले को सन्तुष्ट करके "स्वस्ति" कहना चाहिये । बाँचक को सन्तुष्ट किये विना जो एक श्लोक भी सुनताहै ॥ २२ ॥ उसको कोई पुण्य नहीं होता और विद्वान् उसको शास्त्र का चोर कहते हैं। ऐसे मनुष्य पर देवता और पितर भी प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ २३ ॥ उसके दिये हुए दान और श्राद्ध को पितर ग्रहण नहीं करते, उस शास्त्र के चोर को स्नान और तीर्थादि का फल नहीं मिलता और वेदपाठी उसकी निन्दा करते हैं ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयपुराण की कथा की समाप्ति पर बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिये कि वे उत्सव करें और सब पापों की शान्ति के लिये दुधारू गाय का दान करें ॥ २५ ॥ और स्त्री सहित उस ब्राह्मण को वस्त्र, रत्न, कुण्डल, पगड़ी, शय्या तथा ओढ़ने बिछाने के वस्त्र ॥ २६ ॥ जूता, अँगूठी सोने की, सप्तधान्य, और भोजन के लिये घृत-संयुक्त कांसे का पात्र दे ॥ २७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! ऐसा करने पर मनुष्य कृतकृत्य होजाता है । एक हज़ार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञों का ॥२८॥ फल उसको यह कथा अच्छी तरह सुननेसे होता है । उसको यमराज का डर तथा नरक का भय नहीं रहता ॥ २९ ॥ वह सब पापों से मुक्त होकर कृतकृत्य होजाता है और इसमें सन्देह नहीं कि उसका वंश सदैव चलता रहता है ॥ ३० ॥ वह मनुष्य इन्द्रलोक और सनातन ब्रह्मलोकमें पहुँचता है तथा वहाँ से वह कभी च्युत नहीं होता ॥ ३१ ॥ पुराण के श्रवण करने से मनुष्य परम योग को प्राप्त होता है । वाचक को चाहिये कि नास्तिक, नपुंसक और वेदनिन्दक को यह कथा न सुनावे ॥ ३२ ॥ गुरु के विरोधी, व्रत भङ्ग करने वाले, माता पिता को छोड़ देने वाले और सुवर्ण की चोरी करने वाले को ॥ ३३ ॥ तथा मर्यादा के

भिन्नमर्य्यादके चैव तथैवज्ञातिदूषके
एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥३४॥
लोभाद्वा यदि वा मोहाद्भयाद्वापि विशेषतः
पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ३५॥

जैमिनिरुवाच

भारते नाभवद्ययन्मे सन्देहस्फोटनं द्विजाः
तद्भवद्भिः कृतं मैत्रात् कश्चिदन्यः करिष्यति३६॥
यूयं दीर्घायुषः स्थोच्चैर्नीरोगा वृत्तिसंयुता
सांख्ययोगे तथा चास्तु बुद्धिरव्यभिचारिणी३७॥
पितृशापकृतादोषाद्दौर्म्मनस्यं व्यपैतु वः
एतावदुक्त्वा वचनं स जगाम स्वमाश्रम॥३८॥
चिन्तयन् परमोदारं पक्षिणां वाक्यमीरितं।
जैमिनिः सुमहाभागः पूजयित्वा द्विजोत्तम॥३९॥

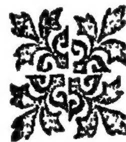
तोड़ने वाले और जाति से च्युत होजाने वाले को इस पुराण की कथा प्राणों के कण्ठ में आजाने पर भी न सुनावे ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य लोभ से, मोह से अथवा भय से इस कथा को पढ़ता या पढ़ाता है वह निश्चय ही नरक को जाता है ॥ ३५ ॥

जैमिनिजी बोले—

हे पक्षियो ! महाभारत में हुए सन्देहों को जिस प्रकार आपने निवारण किया है उस प्रकार दूसरा और कोई नहीं करेगा ॥३६॥ आप दीर्घ आयु वाले होकर नीरोग रहें और उच्च वृत्ति वाले हों। सांख्य योग में आपकी बुद्धि अचल रहे ॥ ३७ ॥ पिता के शाप-जन्यदोष से आपको जो उदासी है वह भी शान्त होजाय ! यह कह कर मुनि जैमिनि पक्षियों के उदार वाक्यों का स्मरण करते हुए तथा उनकी पूजा करके अपने आश्रम को चले गये ॥३८॥ ३९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण में १३७वाँ अध्याय समाप्त।

॥ शुभम्भूयात ॥



श्री शिवमहापुराण।

अनुवादक-श्री १०८ इन्द्र ब्रह्मचारी जी महाराज

एक बार श्री गङ्गा-कालिन्दी सङ्गम, धर्मक्षेत्र परम पावन प्रयाग में सत्यव्रत-परायण, महातेजस्वी मुनियों का एक बड़ा भारी समारोह था। इसमें भगवान् व्यासजी के शिष्य पौराणिकोत्तम श्री सूतजी भी पधारे। उनकी उपस्थिति का लाभ उठाकर मुनियों ने उनसे कलि-काल के प्राणियों के कल्याणार्थ शिवमहापुराण के सुनने की इच्छा की। प्रस्तुत शिव महापुराण की कथा उन्हीं श्रेष्ठ पौराणिक सूतजी के मुखारविंद से शौनकादिक ऋषियों के प्रति वर्णन की गई थी।

इसमें भगवान् शिव की महिमा का बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन है। तत्व पूर्ण विषयों के साथ २ सैकड़ों मनोरंजक कथाओं से यह ग्रन्थ पूर्ण है। जिस देव, ऋषि या राजा का चरित्र इसमें आप पढ़ना आरम्भ कीजिये उसको जब तक समाप्त न कर दिया जायगा आपकी तबियत ग्रन्थ छोड़ने को न करेगी। इस १७०० पृष्ठ के ग्रन्थ में २४००० श्लोक हैं। यह ग्रन्थ दो जिल्दों में है (१) पूर्वार्द्ध और (२) उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में (१) श्री विद्येश्वर संहिता और (२) रुद्र संहिता हैं। उत्तरार्द्ध में (३) शतरुद्र संहिता (४) कोटिरुद्र संहिता (५) उमा संहिता (६) कैलाश संहिता और (७) वायवीय संहिता हैं।

इन सब संहिताओं में भगवान् शिव सम्बन्धी अतुल तत्त्वज्ञान तथा शिवजी के सैकड़ों अवतारों की मनोहर कथाऐं वर्णित हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो जिल्दों में समाप्त हुआ है। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ५) तथा दोनों भाग एक साथ लेने पर १०) का वी० पी० किया जावेगा। पोस्टेज माफ।

नोटः-पुराणों का हिन्दी अनुवाद हिन्दी-साहित्य की एक भारी आवश्यकता है। अब तक दो चार पुराणों को छोड़कर सभी पुराण संस्कृत या संस्कृत टीका में ही उपलब्ध थे। परन्तु अब हमने इस अभाव की पूर्ति करने का निश्चय कर लिया है। हम एक एक करके अठारहों पुराण भाषा टीका सहित प्रकाशित करेंगे। आशा है हिन्दी-भाषी जनता हमारे इस प्रयत्न में हमको प्रोत्साहित करेगी।

मिलने का पता—

लाला श्यामलाल हीरालाल

श्यामकाशी प्रेस मथुरा।